इकाई 1 आधुनिक राज्य और राजनीति

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

आपने यूरोपीय इतिहास के इस पाठ्यक्रम की पाठ्यक्रम प्रस्तावना तथा खंड प्रस्तावना को तो पढ़ ही लिया होगा। हम समझते हैं कि आप इस पाठ्यक्रम की व्यापक रूपरेखा तथा बुनियादी महत्व को समझ गए होंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों को समझाने की स्थिति में होंगे :

- आधुनिक राज्य की प्रकृति तथा नौकरशाही की भूमिका;
- राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र राज्य का विकास; और
- आधुनिक राज्य में न्यायपालिका तथा राजनीतिक दलों की भूमिका तथा लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया।

1.1 प्रस्तावना

आधुनिक यूरोपीय राज्यों में सत्ता का इस्तेमाल पहले के राज्यों में विद्यमान सत्ता के किसी भी स्वरूप से भिन्न था। इसकी विशेषता थी : (क) आधुनिक राज्य की पूर्ण सत्ता; और (ख) ये राज्य जिस जनता पर अपनी सत्ता का इस्तेमाल करते थे उसकी जबरदस्त लामबंदी।

यह आवश्यक नहीं कि पूर्ण सत्ता (निरंकुश शक्ति) का अर्थ केवल तानाशाही या अत्याचारी शासन से लगाया जाए, क्योंकि इसमें किसी न किसी रूप में जनता की सहमति जरूरी होती है। फिर भी, इसका यह अर्थ तो है ही कि (क) आधुनिक यूरोपीय राज्य ने असीम शक्तियां प्राप्त कर लीं और ये पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती ही चली गईं; और (ख) ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां राज्य का प्रवेश निषेध हो। दूसरे शब्दों में, सत्ता तथा क्रियाकलापों का क्षेत्र दोनों ही असीम हैं और इनका विस्तार भी हो रहा है।

यह स्थिति यूरोपीय तथा यूरोप से बाहर के भी पूर्व-आधुनिक राज्यों के बिल्कुल उलट है। भारी दिखावों के बावजूद, इन राज्यों की क्रियात्मक क्षमता सीमित थी। जब ये राज्य क्रियाकलाप या कार्रवाई करते भी थे तो उसमें दिखावा ज्यादा होता था और उनका उद्धेश्य जनता को प्रभावित और आतंकित करना होता था; लेकिन इस प्रकार के प्रदर्शन और नाटक नियंत्रण की उस दैनिक प्रक्रिया के स्थानापन्न थे, जो आधुनिक राज्य की तुलना में अत्यंत सीमित थी। इसके अतिरिक्त, जिन क्षेत्रों में राज्य कार्रवाई करते थे, वे बहुत कम थे। इन राज्यों की कार्यवाई मुख्य रूप से सैनिक और वित्तीय, अथवा युद्ध और कर लगाने के क्षेत्रों तक सीमित थी; दूसरे अधिकांश मामलों में अपेक्षाकृत कम दखल दिया जाता था और उनका नियंत्रण दूर से ही किया जाता था।

आधुनिक यूरोपीय राज्य इस ढंग से कार्य करने में समर्थ था तो इसके अनेक कारण थे। इनमें से प्रमुख थे :

- वैध बल प्रयोग पर एकाधिकार के माध्यम से प्रत्यक्ष शासन;

- राज्य का अपनी जनता पर सांस्कृतिक एकरूपता थोपने के माध्यम से राष्ट्रवाद; और
- जनता की इच्छा को मूर्त रूप देने के राज्य के दावे के माध्यम से इसकी लोकतांत्रिकता को वैध करना।

इस इकाई में आधुनिक राज्य तथा राजनीति की मुख्य विशेषताओं से आपका परिचय कराया जाएगा।

1.2 प्रत्यक्ष शासन एवं नौकरशाही

कालक्रम के अनुसार आधुनिक यूरोपीय राज्य का पहला और शायद सबसे अधिक महत्वपूर्ण आधार तो प्रत्यक्ष शासन था। पंद्रहवीं शताब्दी के बाद से यूरोपीय राजाओं ने अपनी प्रजाओं पर प्रत्यक्ष शासन को अधिकाधिक लगाया और सारी सत्ता को अपने हाथों में केंद्रित कर लिया। इस उद्धेश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने सामंतों तथा रियासतों के हाथों से सत्ता छीन कर ऐसे शाही अधिकारियों अथवा अमीरों को नियुक्त कर दिया जो सीधे-सीधे राजा के प्रति उत्तरदायी थे अथवा केवल उसी पर निर्भर थे। यहीं से आधुनिक नौकरशाही की शुरुआत हुई। पंद्रहवीं से ले कर अठाहरवीं, इन तीन शताब्दियों का इतिहास राज्य अथवा किसी राजा और सामंतों अथवा इलाकाई सरदारों के बीच इस प्रकार के कटु संघर्ष से भरा पड़ा है, और इन सभी का अंत शाही निरंकुशता की घटनाओं में हुआ। इस प्रकार के सर्वाधिक उल्लेखनीय राज्य निर्माता थे रूस के इवान चतुर्थ (भयंकर) तथा पीटर प्रथम (महान), फ्रेडरिक विलियम तथा फ्रेडरिक द्वितीय (प्रशा के), फ्रांस के कार्डिनल रिशलू तथा लुई चौदहवां, और इंगलैंड के हेनरी अष्टम तथा टॉमस क्रॉमवेल। इस तरह, केवल राजा सेनाएं रख सकता तथा युद्ध कर सकता था, जनता पर कर लगा सकता था, झगड़ों का निपटारा कर सकता था, अपराधियों को दंड दे सकता था, तथा विशेषकर अपनी प्रजा के किसी सदस्य की जान ले सकता था, और यह सब वह अपनी नई राजसी नौकरशाही के माध्यम से करता था।

नौकरशाही तो बड़े-छोटे के क्रम में अधिकारियों का एक प्रशासनिक तंत्र होता है जिसका आदर्श ये विशेषताएं होती हैं : ये अधिकारी वेतनभोगी पेशेवर होते हैं और ये जो भी निर्णय लेते अथवा लागू करते हैं उसमें इनका कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता, ये अधिकारी अपने से वरिष्ठ अधिकारियों के आदेश का पालन करते तथा अपने से नीचे स्तर के अधिकारियों को आदेश देते हैं, और ये निचले स्तर के अधिकारी भी उसी प्रकार इन आदेशों को लागू करते हैं, ये अधिकारी अपनी व्यक्तिगत सनक अथवा पसंद के अनुसार नहीं, अपितु कानून के बनाए नियमों के अनुसार कार्य करते हैं, उनका चुनाव उनके व्यक्तिगत, परिवारिक अथवा वर्गीय संबंधों के आधार पर नहीं, अपितु क्षेत्र विशेष में उनकी विशेष योग्यता के आधार पर किया जाता हैं, उन्हें मशीन के पुरजों की तरह ही बदला जा सकता है, और उनकी जगह आने वाला नया अधिकारी भी उसी की तरह काम करता है और केवल व्यक्ति पर कुछ निर्भर नहीं करता। नौकरशाही का यह आदर्श रूप है, और कार्य करने के इस विशेष ढंग को तार्किक - वैधानिक (रैशनल-लीगल) कहा गया है। मैक्स वेबर ने आधिकारिक तौर पर इस ढंग को इसी रूप में वर्णित किया है। लेकिन जब व्यवहार की बात आती है तो इस आदर्श रूप से वह हमेशा अत्यंत भिन्न होता है, जैसाकि होना ही चाहिए, किंतु इसके बहाने हमें आधुनिक प्रशासनिक ढांचों की कार्यप्रणाली के भीतर झांकने का अवसर मिल जाता है, चाहे यह प्रशासनिक कार्य प्रणाली राज्य की हो, राजनीतिक दल की हो, किसी व्यापारिक निगम की हो, ईसाई धर्म संस्था (चर्च) की तरह की किसी धार्मिक सोपानिकी (हाइराकी) की हो, अथवा क्लब जैसे किसी सामान्य से संगठन की हो।

इस तरह की नौकरशाहियों से क्योंकि हमारा पाला आए दिन पड़ता ही रहता है और क्योंकि हम सरकार से इसी आदर्श के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा रखते हैं, इसलिए हम बिल्कुल भी यह महसूस नहीं कर पाते कि यह अन्य प्रकार के शासन से कितनी भिन्न है। सच तो यह है कि जब हमारा पाला दूसरी किस्म के शासन से पड़ता है तो हम स्वाभाविक तौर पर उन्हें मनमाना और भ्रष्ट बताते हैं। उदाहरण के लिए, यदि अधिकारियों की नियुक्ति उनके पारिवारिक संबंधों के आधार पर या उनसे रिश्वत ले कर की जाए, यदि वे इस आधार पर निर्णय करें कि व्यक्तिगत तौर उन्हें यह जंचता है अथवा उनकी मौज थी सो उन्होंने कर दिया, यदि उन्हें आदेशों के बिना अथवा आदेशों के विपरीत अथवा कानून से बाहर जा कर कार्रवाई करनी हो, यदि उनकी नियुक्ति उस पद के लिए आवश्यक विशेष योग्यता के बिना कर दी जाए अथवा सब कुछ किसी एक व्यक्ति पर यह मान कर छोड़ दिया जाए कि उसका कोई विकल्प नहीं, तो ऐसी स्थिति में इस प्रकार के तंत्र को हम अतार्किक, भ्रष्ट

तथा पुरातन कह कर खारिज कर देते हैं। किंतु, आधुनिक समय से पूर्व यही सब बिल्कुल सामान्य हुआ करता था और केवल अब यह अवांछनीय दिखाई देता है। हमने इस पठित आदर्श को आत्मसात कर लिया है और समस्त प्रशासनों को हम इसी पैमाने से मापते हैं। हमें यह मान भी नहीं रहता कि यह पैमाना अभी दो सौ से भी कम वर्षों पूर्व यूरोप में लागू किया गया था और उसके बाद से पूरी दुनिया में इसे मानदंड के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इस अर्थ में जो कुछ भी "आधुनिक" नहीं है, उसे हम स्वाभाविक तौर पर "पारंपरिक" कह देते हैं अथवा उसके लिए किसी निंदासूचक शब्द का प्रयोग करते हैं।

ऐसे "तार्किक-वैधानिक" रूप में ही नौकरशाही, प्रभावी होने के अर्थ में आधुनिक राज्य को इतनी अधिक शक्तिशाली बना देती है। नौकरशाही एक ऐसा साधन है जो किसी भी अन्य साधन की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वसनीय तथा अनुकूल प्रतिक्रिया देने वाला है और किसी भी क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। अवैयक्तिता, विशेषज्ञता, नियमों के अनुसार कार्रवाई, अनम्य सोपानिकी और आसान स्थानापन्नता जैसे कुछ गुणों के कारण नौकरशाही के लिए सटीक तथा पूर्वानुमानित परिणामों वाले निर्णय करना संभव होता है। जो शासक ऐसे मातहतों पर निर्भर करते हैं जिनका अपना व्यक्तिगत स्वार्थ होता है, जो आदेशों का पालन नहीं करते, जिनके पास विशेष योग्यता नहीं होती, ऐसे शासक प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकते।

यही कारण है कि आधुनिक समय की तुलना में पूर्व-आधुनिक काल के शासकों के कार्य अत्यधिक दिखावटी तथा नाटकीय, परंतु अपेक्षाकृत कहीं कम प्रभावी होते थे। पूर्व-आधुनिक काल में सत्ता का प्रदर्शन तो व्यक्तिगत धन-दौलत के दिखावे के रूप में सामने आता था। जैसे, राजाओं का तड़क-भड़क वाला पहनावा तथा रहन-सहन, दरबारी नियम-कानून, ताजपोशी जैसे कुछ विशेष अवसरों पर राजाओं की ओर से खुल कर दान दक्षिणा देना, अपराधियों को मनमाना क्षमादान, और राजनीतिक विरोधियों के साथ असाधारण हिंसा का व्यवहार आदि। लेकिन ये प्रदर्शन किसी निश्चित अवधि में ही जनता को प्रभावित करने के लिए होते थे और इनका प्रभाव सीमित होने के कारण इन्हें नियमित रूप से दोहराना पड़ता था। आधुनिक नौकरशाही ने ऐसे अधिकांश नियमित प्रदर्शनों को तिलाजलि देते हुए जनता को प्रभावित करने के इरादे से उन्हें महान राष्ट्रीय पर्वों के लिए सुरक्षित रखा है। वैसे, दिन प्रतिदिन के शासन तथा नियंत्रण के लिए आधुनिक नौकरशाही को इस प्रकार के प्रदर्शनों की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि अब उसमें समस्याओं के पूर्वानुमान की क्षमता है और वह उनमें से अनेक मसलों को उग्र रूप धारण करने से पहले ही हल कर सकती है, अत्यंत सटीक ढंग से किसी अपराधी अथवा राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी को निशाना बना सकती है और कार्रवाई को सुनिश्चित कर सकती है। इन अर्थों में, आधुनिक राज्य किसी पुराने ढर्रे के निरंकुश शासन अथवा तानाशाही की अपेक्षा कहीं अधिक निरंकुश है, हालांकि यह लोकतंत्र के साथ साथ चलता है और लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित रहता है। इस विलक्षण स्थिति की व्याख्या आवश्यक हो जाती है।

सत्ता की इस विशद अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप, ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसमें आधुनिक राज्य कोई क्रिया कलाप न करता हो। पहले यह स्थिति थी कि राज्य धनी और शक्तिशाली लोगों पर कार्यकलाप करते थे और शेष जनता पर कर लगाते थे। इसके अतिरिक्त वे कुछ नहीं करते थे लेकिन आधुनिक राज्य समस्याओं का पूर्वानुमान करने की कोशिश में लगा रहता है, राजद्रोह की टोह लगाता है और जनता क्या सोच रही है इस बात का आकलन करता रहता है। आधुनिक राज्य अपने नागरिकों की जिंदगी के सभी पहलुओं के बारे में खुफिया जानकारी एकत्र करने के तंत्र स्थापित करता है, जिससे कि वह किसी भी समस्या का पूर्वानुमान कर सके या यह तय कर सके कि किन्हीं कल्पित स्थितियों में किस प्रकार अच्छी से अच्छी कार्रवाई की जा सकती है। इसी प्रकार, इन राज्यों ने सभी प्रकार के झगड़ों में मध्यस्थता करनी भी शुरू कर दी, चाहें वे औद्योगिक, सामाजिक अथवा व्यावसायिक विवाद हों अथवा स्थानीय या पारिवारिक और उन्होंने जिंदगी के इन सभी पहलुओं से संबंधित नियम-विनियम भी जारी करने शुरू कर दिए। इन राज्यों ने गरीबों, बूढ़ों, बच्चों, यहां तक कि अजन्मे शिशुओं तक की हालत तथा शिक्षा, कल्याण, स्वास्थ्य की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले ली। इन राज्यों ने जिंदगी के छोटे से छोटे पहलुओं को इन हजारों विभिन्न तरीकों से नियंत्रित करना शुरू कर दिया। जिसे आज हम बिल्कुल सामान्य और आवश्यक भी मानते हैं।

इसके अतिरिक्त, हिंसा तथा दमन के मामले में आधुनिक राज्य की सामर्थ्य इतिहास के किसी भी मशहूर से मशहूर अत्याचारी की सामर्थ्य से हजारों गुना अधिक है। इसका कारण केवल हिंसा पर इसका एकाधिकार नहीं है, अपितु

आधुनिक शस्त्रास्त्र व्यवस्था का तकनीकी विकास और सैनिक तंत्रों का गठन बेहतर है। पूर्व-आधुनिक काल में, कोई भी बड़ा सामंत शाही सेना को चुनौती दे सकने वाली सेना रख सकता था, किंतु आधुनिक सेनाएं रखने का बूता तो केवल राज्य का है और कोई अमीर से अमीर धनपति भी इसके सपने नहीं देख सकता। पहला अंतर तो संख्या का ही है। फ्रांसीसी क्रांति ने यह दिखा दिया था कि आधुनिक सेना तथा संपूर्ण युद्ध का क्या अर्थ हो सकता है, जब शारीरिक रूप से समर्थ सभी नागरिकों को सेना में भरती हो जाने को कहा गया था। यह इतिहास की पहली पूर्ण स्तर की भरती थी और अपने आप में असाधारण रूप से नई चीज थी। सामंती सरदार तो मात्र कुछ हज़ार सैनिकों की फौज रख पाते थे, किंतु आधुनिक राज्य अब लाखों सैनिकों की फौज रखने में समर्थ था और बीसवीं शताब्दी में सैनिकों की संख्या लाखों से भी ऊपर जा पहुँची। सामंती सरदार तो किसी खास अभियान या युद्ध के लिए सेना बनाते थे और मकसद पूरा हो जाने पर उसे तोड़ देते थे, क्योंकि ऐसी सेनाओं में शामिल होने वाले मुख्य रूप से किसान होते थे जिन्हें अपनी रोजी रोटी कमाने के लिए लौट कर जाना होता था। आधुनिक राज्य ने एक स्थायी सेना पालने की परंपरा शुरू की। इतनी बड़ी सेना को स्थायी रूप से रखना केवल राज्य के लिए संभव था, किसी व्यक्ति अथवा स्वतंत्र समूह के लिए नहीं, भले ही वे कितने भी अमीर हों।

इसी प्रकार शस्त्र प्रौद्योगिकी ने भी राज्य का ही पलड़ा भारी किया। सामंती सरदार घुड़सवार और पैदल सेना तो तैयार कर सकते थे, किंतु तोपखाने का खर्च केवल राज्य ही उठा सकता था। यह बात पंद्रहवीं शताब्दी में ही स्पष्ट हो चुकी थी। लेकिन हाथ में पकड़ कर चलाई जा सकने वाली बंदूकों में जो नए-नए प्रयोग हुए उनसे यह एक सटीक हथियार तो बना ही, अधिक महंगा भी हो गया और इसका लाभ भी राज्य को ही मिला। समुद्री लड़ाई में इस प्रकार की प्रौद्योगिकी का प्रभाव तब देखने को मिला जब अठारहवीं शताब्दी के आते-आते समुद्री डाकुओं का लगभग सफाया ही हो गया। बीसवीं शताब्दी में इन आग्नेयास्त्रों में दो और भंयकर नई वस्तुएं आई जिनके परिणामस्वरूप टैंकों और हवाई हमलों का पर्दापण हुआ और इन पर शुरू से ही राज्य का एकाधिकार रहा। टैंकों और हवाई बमबारी की मिली-जुली विध्वंसक शक्ति राज्य को चुनौती देने वाली किसी भी असैनिक आबादी को काबू में रखने में समर्थ थी। इसलिए, जैसा कि वीरगाथा काल के साहित्य अथवा पूर्व-आधुनिक काल में होता था, राज्य का विरोध भी सीधे-सीधे टकराव का रूप नहीं ले सकता था, अपितु यह जनता की राजनीतिक और सामाजिक लामबंदी के रूप में प्रकट होता था। इनमें से कुछ तो हथियारबंद संघर्ष के रूप में सामने आता था, किंतु वह भी छापामार युद्ध अथवा विद्रोह के रूप में, क्योंकि राज्य से सीधी हथियारबंद लड़ाई में टकराना संभव नहीं था। इसी कारण, बीसवीं शताब्दी में ऐसी क्रांतिकारी लामबंदियां तथा बगावतें अधिक आम हो गई हैं। यदि किसी देश के भीतर सीधी हथियारबंद लड़ाइयां होती हैं तो इसका कारण यह है कि राज्य स्वयं खंडित हो गया होता है और एक ही भूभाग में दो या दो से अधिक संभावी राज्य आपस में टकरा रहे होते हैं। इसके उदाहरण हैं : चालीस के दशक के चीनी क्रांतिकारी संघर्ष, 1918-1921 का रूसी गृह युद्ध अथवा 1861-1864 का अमरीकी गृह युद्ध। इसलिए हिंसा पर राज्य का एकाधिकार वास्तविक भी है और घोषित भी।

1.3 राष्ट्रवाद एवं राष्ट्र राज्य

संसाधनों के इस विस्मयकारी संचयन के साथ, आधुनिक यूरोपीय राज्य ने फिर अपने नागरिकों पर एकरूपता थोपी, जिसके फलस्वरूप 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रवाद' का जन्म हुआ। यदि समस्त नागरिक एक ही संस्कृति की उपज हों तो उन पर कार्रवाई करने, उनकी ओर से होने वाली प्रतिक्रिया का पूर्वानुमान करने, प्राथमिकताओं को संतुष्ट करने तथा वास्तव में समान विकल्पों की रचना करने की क्षमता तो बढ़ ही जानी थी। दूसरी ओर, खंडित जनता का अर्थ होता था एक खंडित राज्य अथवा अनेक अलग-अलग सत्ता केंद्र। सामंतवाद में एक अकेले केंद्र की इच्छा थोपने वाले निरंकुश शासनवाद ने इस स्थिति पर काबू पाया। इस तरह एक अकेले राज्य का अर्थ होता था एक अकेली प्रजाति या सम्प्रदाय और आधुनिक बनते राज्य ने जानबूझ कर इस प्रकार के अकेले राज्य के निर्माण का बीड़ा उठाया। यह काम आम लोगों ने अथवा जनता ने किया, जिन्हें अब नागरिक कहा जाता था। इन नागरिकों से अपेक्षा की गई कि वे उन्हीं सिद्धांतों का पालन करेंगे जिनसे उनका समाज शासित होता है। इनमें से सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा विशिष्ट सिद्धांत था कानून के समक्ष सबकी समानता का सिद्धांत; जीवन के अन्य क्षेत्रों में इसके समकक्ष सिद्धांत थे कि ज्ञान सबके लिए समान रूप से उपलब्ध हो, कि एक व्यक्ति का श्रम मूल्य में दूसरे व्यक्ति के श्रम के समान है कि एक व्यक्ति का वोट दूसरे व्यक्ति के वोट के समान हों, कि प्रत्येक वयस्क को वोट देने का अधिकार हो और यह कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा तथा व्यवसाय का समान अवसर हो।

एकरूपीकरण अथवा इस प्रकार की एकरूपताएं बनाने का सर्वाधिक शक्तिशाली साधन शायद शिक्षा रही। अपने पूर्ववर्ती राज्यों के विपरीत, आधुनिक यूरोपीय राज्य एक मन से शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय रहा। इसने प्राथमिक और फिर माध्यमिक शिक्षा को भी अधिकाधिक सर्वव्यापक और अनिवार्य बना दिया, इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से आधुनिक यूरोपीय राज्य ने समान मूल्यों तथा एक भाषा को सुनिश्चित किया। यह एक भाषा स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली भाषा थी, जबकि उनके घर की अथवा इलाके की भाषा उससे अलग हो सकती थी। इस प्रकार, आधुनिक यूरोपीय राज्य ने एक भाषा तथा एक संस्कृति वाली ऐसी एक कौम तैयार की कि प्रत्येक नागरिक अन्य किसी भी नागरिक की नकल था और सब के सब एक ही सांस्कृतिक कारखाने के समान उत्पाद थे। इस प्रकार एक अकेले सत्ता केंद्र से शासित होने वाले भूभाग पर एक ही संस्कृति का प्रसार हो गया और इसी को हम राष्ट्र राज्य के रूप में जानते हैं। एक विशिष्ट भूभाग में इस प्रकार की समान संस्कृति के प्रति अपनत्व के बोध को ही हम राष्ट्रवाद के रूप में जानते हैं। राष्ट्रवाद की रचना आधुनिक काल में उन राज्यों ने की जिन्होंने इस प्रकार के राष्ट्रों का निर्माण किया।

यह रचना कितनी ताजा है और इसमें कितनी कठिनाई आई है, इसे यूरोप के सर्वाधिक मशहूर राष्ट्र राज्यों के उदाहरण में देखा जा सकता है। इस प्रकार हम एक ढर्रे में ब्रिटिश कौम और ब्रिटिश राष्ट्र की बात करते हैं और इस बात को बिल्कुल अनदेखा कर जाते हैं कि इसमें कम से कम अंग्रेज, वेल्श और स्कॉट लोग तो आते ही हैं। इनके भीतर विशिष्ट अस्मिता अथवा पहचान वाले क्षेत्र भी हैं। जैसे इंग्लैड में कॉर्नवॉल और स्कॉटलैंड में हाइलैंड्स। अठारहवीं शताब्दी में जाकर ही अंग्रेजी ग्रेट ब्रिटेन के इन सभी देशों की भाषा बनी। इसी प्रकार, एक और विशिष्ट तथा सफल राष्ट्र राज्य फ्रांस में भी अनेक अलग अस्मिता वाले क्षेत्र हैं। जिनकी आज भी अपनी भाषाएं हैं। इनमें से सर्वाधिक विख्यात हैं उत्तर-पश्चिम का ब्रिटनी और दक्षिण का गैसकनी। 1789 में फ्रांस की केवल 12.13% जनता फ्रांसीसी बोलती थी। इस तरह फ्रांस राष्ट्र का निर्माण वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान ऊपर वर्णित प्रक्रिया से हुआ। इसी प्रकार, 1860 में एकीकरण के समय इटली की केवल 2.5% के आसपास जनता इतालवी भाषा बोलती थी, अन्य लोग विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएं बोलते थे, जिनमें से कुछ तो आज भी प्रचलित हैं। फिर, नए इतालवी राज्य को समूची जनता पर इतालवी भाषा थोपनी पड़ी थी जिससे उसे इतालवी राष्ट्र के निर्माण में मदद मिली थी। ऐसी ही प्रक्रियाएं यूरोप के सभी राष्ट्रों तथा राज्यों में चली और राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान देश-देश की बातें हो गई।

ऐसा कोई आधुनिक राज्य नहीं था जिसने अपने ही राष्ट्रवाद को प्रायोजित न किया हो और रूसी तथा आस्ट्रो हंगरी राज्यों की घातक समस्या यह रही कि वे अपने आप में बहुराष्ट्रीय साम्राज्यों पर शासन कर रहे थे और इस भय से राष्ट्रवाद को बढ़ावा नहीं दे पाए कि कहीं साम्राज्य ही न टूट जाए। वे अपने-अपने यहां क्रमश: रूसी अथवा जर्मन राष्ट्रवाद के चलते जीवित रहने की आशा कर सकते थे और अपने-अपने साम्राज्यों में अन्य संस्कृतियों को उसी प्रकार नष्ट कर सकते थे जैसे ब्रिटिश राष्ट्रवाद ने हाइलैंड स्कॉटस की, वेल्स की अथवा कॉर्नवॉल की संस्कृति को समाप्त किया था, या जैसे फ्रांस राज्य ने विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों को नष्ट करके उन सभी को फ्रांसीसी बना दिया था। लेकिन इस प्रक्रिया को बहुत पहले शुरू हो जाना चाहिए था, क्षेत्रीय राष्ट्रवाद का विकास होने से भी पहले। जैसे रूसी साम्राज्य में यूक्रेन, लिथेवेनिया, एसतोनिया, लातविया अथवा तातारस्तान या ऑस्ट्रो-हंगरी साम्राज्य में चेक, हंगरी, क्रोएशियाई अथवा सर्ब जैसे क्षेत्रीय राष्ट्रवादों के विकसित होने से पहले। इन दोनों में से कोई भी एक अकेला राष्ट्र नहीं बन सका, क्योंकि दोनों के भीतर प्रतिस्पर्धी राष्ट्रवाद विकसित हो रहे थे और बिखरना दोनों ही साम्राज्यों की नियति रही। एक महत्वपूर्ण हद तक, यह समय का सवाल था। फिर भी, ऐसा कोई भी राज्य जो एक आधुनिक राज्य के रूप में अस्तित्व में रहने का आकांक्षी था, या ऐसा कोई भी गुट जो एक आधुनिक स्वतंत्र राज्य बनने की इच्छा रखता था (जैसे, उपर्युक्त ऑस्ट्रो - हंगरी साम्राज्यों की विभिन्न राष्ट्रीयताओं में से कोई), उसने अपने आपको राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र निर्माण की राजनीति में ही लिप्त पाया।

इस प्रकार, यूरोप ऐसे राष्ट्र राज्यों का जमावड़ा बन गया जो अपने भूभागों के अंदर प्रभुता संपन्न, सिद्धांत में एक-दूसरे के प्रति समान तथा एक दूसरे के साथ एक ऐसी व्यवस्था में संबद्ध थे जो अपने आप में अंतर्राष्ट्रीय संबंध नाम की एक स्वतंत्र विशेषज्ञता बन गई। इसलिए यूरोप में आधुनिक राजनीति का अर्थ अंतर्राष्ट्रीय

संबंधों के एक विचित्र ढांचे से लिया जाने लगा, जो उसके बाद से एक सार्वभौम आदर्श के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। तार्किक तौर पर यह वैध बल प्रयोग के एकाधिकार के राज्य के दावे के अनुरूप भी था, जैसे इसे अपने अधिकार वाले भूभाग के अंदर किसी अन्य सत्ता स्रोत का होना स्वीकार्य नहीं था, ठीक उसी प्रकार इसे उसी भूभाग के अंदर किसी बाहरी सत्ता स्रोत का होना भी स्वीकार्य नहीं था। इस प्रकार, एक ऐसे तंत्र का विकास हुआ जिसमें वे राज्य थे जो भौतिक संसाधनों के मामले में समान नहीं होते हुए भी सिद्धांत तथा कानून की दृष्टि से एक दूसरे से स्वतंत्र तथा प्रभुता संपन्न थे। वास्तविक शक्ति तथा संसाधनों की दृष्टि से, इन राज्यों में बड़े छोटे का क्रम था, किंतु सिद्धांत में वे एक दूसरे के समान हैसियत रखते थे। इसके परिणामस्वरूप राज्यों के बीच स्थायी राजदूतों के आदान-प्रदान तथा व्यापक कूटनीति की स्थिति बनी। इस प्रकार की कूटनीति के माध्यम से, प्रत्येक राज्य अब अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के रंगमंच पर एक अभिनेता था जिसकी भूमिका थी उसके कथित "राष्ट्रीय हित" की रक्षा करना तथा उसे बढ़ावा देना, क्योंकि अब वह राष्ट्र के नाम पर बोलता था। इस तरह, राजनीति में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में लिप्त होना तथा "राष्ट्रीय हित" की रक्षा करना शामिल हो गया। प्रत्येक राजनीतिक दल तथा विचारधारा का यह दायित्व हो गया कि वह "राष्ट्रीय हित" का ध्यान रखे और जो राजनीतिक दल तथा विचारधाराएं समुचित रूप में ऐसा करती दिखाई नहीं पड़ी, वे सत्ता के संघर्ष में अत्यंत कमज़ोर पड़ गई। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का ऐसा तंत्र सोलहवीं शताब्दी से ही आकार ले रहा था। 1648 में हुई वेस्टफेलया की शांति (संधि) के साथ इसे प्रभुसत्ता संपन्न तथा समान राज्यों के बीच संबंधों के एक तंत्र की परिभाषा दी गई, किंतु आधुनिक राजनीति का अंग यह उन्नीसवीं शताब्दी में ही जाकर बना।

बोध प्रश्न 1

1) नौकरशाही की प्रमुख विशेषताएं क्या है? पांच वाक्यों में समझाइए।

....

....

....

....

....

....

2) आधुनिक राज्य ने राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा का किस प्रकार इस्तेमाल किया? 50 शब्दों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

3) अंतर्राष्ट्रीय संबंध क्या हैं? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

1.4 लोकतांत्रिक राज्यतंत्र

यह विरोधाभास ही है कि एक ओर तो आधुनिक राज्य ने इतनी अधिक शक्तियां अपने हाथों में केंद्रित कर लीं और दूसरी ओर राष्ट्र की राजनीति "लोकतांत्रिक" हो गई । एक अर्थ में विरोधाभास नहीं भी होना चाहिए क्योंकि राज्य का दावा यह था कि वह "लोक की इच्छा" का प्रतिनिधित्व करता है और उसका आधार "लोक (जनता) की प्रभुसत्ता" है। सिद्धांत रूप में, लोग अब प्रभुसत्ता संपन्न ही थे, जैसा कि चुनाव व्यवस्था में परिलक्षित होता है। इसलिए इतनी अधिक शक्तियों का इस्तेमाल करने वाला यह लोकतांत्रिक अथवा जनता का राज्य ही था।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में अमरीका, ब्रिटेन तथा फ्रांस में होने वाले क्रांतिकारी घटनाक्रमों से आधुनिक राज्य का उदय हुआ और यह राज्य जनता के प्रतिनिधित्व के दावे पर आधारित था। सवाल यह नहीं है कि इसने वास्तव में लोक इच्छा का प्रतिनिधित्व किया या नहीं और किया तो उसमें कितनी ईमानदारी थी। पते की बात तो यह है कि इसे ऐसा करने का दावा करना पड़ा और ऐसा करते हुए दिखाई भी देना पड़ा। सभी यूरोपीय राज्यों ने अधिकाधिक मात्रा में ऐसा किया है, फिर चाहे उनकी विचारधाराएं भले ही एक दूसरे की कितनी भी विरोधी क्यों न रही हों। यह बात उत्तर-पश्चिमी यूरोप के उदारवादी लोकतांत्रिक राज्यों पर भी उतनी ही लागू होती है, जितनी उन फासीवादी किस्म के राज्यों पर जो यूरोप का इतना अधिक भाग घेरे हुए थे, विशेषकर बीसवीं शताब्दी के मध्य यूरोप पर और पूर्वी यूरोप तथा सोवियत संघ के समाजवादी राज्यों पर भी।

लोकतांत्रिक राजनीति का अर्थ इसके सिवाय कुछ और ही था कि जनता ही शासक होती है। जनता के लोग कभी असली शासक नहीं हो सकते। वे प्रत्यक्ष तौर पर तभी शासन कर सकते थे जब वे संख्या में इतने कम होते, अधिक से अधिक कुछ सौ, क्योंकि तभी लोग नियमित रूप से मिल-बैठ सकते थे, निर्णय कर सकते थे, और सार्वजनिक पदों पर आसीन हो सकते थे। किंतु आधुनिक राष्ट्रों में कम से कम भी लाखों लोग होते हैं, इसलिए लोकतंत्र की ऐसी धारणाएं अवास्तविक हैं। इसका समाधान अठारहवीं शताब्दी से यूरोप तथा अमेरिका में ढूंढ लिया गया है जहां लोग अपने प्रतिनिधि चुनते हैं, ये प्रतिनिधि फिर अपने शासकों को चुनते हैं। आधुनिक लोकतांत्रिक गठन का यह आदर्श रूप है। जनता ने अपने अधिकार उन प्रतिनिधियों को दे दिए जिन्होंने अपने निर्णय के अनुसार कार्य किया और इन प्रतिनिधियों ने अपने अधिकार सरकार को दे दिए, जिसने खुद अपने विवेक पर कार्य किया। जनता के हाथों में कोई प्रभावी नियंत्रण था तो बस यही कि सरकार और प्रतिनिधियों दोनों को ही एक निश्चित अवधि में चुनाव का सामना करना पड़ता था, जब उन्हें हटा कर दूसरों को लाया जा सकता था। ये 'दूसरे' प्रतिनिधि दूसरे दलों तथा विचारधाराओं के होते थे। इस प्रकार, विविध विचारधाराएं तथा दल एक निश्चित अवधि में शासक बदलने की लोकतांत्रिक राजनीति का एक आवश्यक अंग थे। इस विविधता को हम बहुलवाद (प्लूरलिज्म) के रूप में जानते हैं। वैसे, चुनावों के बीच की अवधि में प्रतिनिधित्व तथा शासन दोनों के ही कार्यों में जनता की कोई भूमिका नहीं होती थी। किंतु सभी को यह अच्छी तरह से पता होने के कारण कि चुनाव आने वाले हैं, ऐसे लोकतांत्रिक शासक तथा प्रतिनिधि नियमित रूप से जनता के मूड को टटोलते रहते थे, यह सुनिश्चित करते रहते थे कि उनके कार्य जनप्रिय थे और अपने व्यवहार को लोक इच्छा के अनुसार बता कर उसे उचित ठहराते थे। इसीलिए चुनावों को तथा चुनावों से जुड़े तमाम अधिकारों तथा प्रक्रियाओं को असाधारण महत्व दिया गया। जैसे सभी को वोट का अधिकार, गुप्त मतदान तथा निष्पक्ष चुनावी प्रक्रिया आदि और इन सब के साथ ही यह धारणा भी बनी कि नियमित चुनाव करने मात्र से लोकतांत्रिक राजनीति सुनिश्चित हो जाती है। ऊपर हमने जिस नमूने का वर्णन किया है वह उदारवादी लोकतांत्रिक राजनीति का आदर्श रूप है जिसे वाम ओर के समाजवादियों ने तथा दक्षिण ओर के अनुदारवादियों ने स्वीकार किया किंतु वाम ओर के क्रांतिकारियों (साम्यवादी, अराजकतावादी आदि) ने तथा दक्षिण ओर के प्रति क्रांतिकारियों (फासीवादी, राष्ट्रीय-समाजवादी आदि) ने अस्वीकार कर दिया।

क्रांतिकारियों तथा प्रति-क्रांतिकारियों ने लोकतांत्रिक राजनीति के एक और ही तर्क का सहारा लिया। उदावादी लोकतांत्रिक राजनीति की तरह उन्होंने भी जनता के समर्थन और पसंद को अपनी शक्ति और वैधता का स्रोत बनाया। इसलिए हमेशा की तरह ही इसका प्रदर्शन चुनावों तथा वोटों के माध्यम से हुआ। चुनावों का आयोजन

कई अलग अलग तरीकों से करने की गुंजाइश थी। बल प्रयोग भी हो सकता था, मतदाताओं को मतदान से बाहर रखा जा सकता था अथवा उनके मतपत्रों पर दूसरे लोगों से मुहर लगवाई जा सकती थी और सब से बड़ी बात तो यह कि कई-कई प्रत्यक्षियों को चुनाव में खड़ा होने से रोका जा सकता था जिससे कि मतदाता केवल एक ही प्रत्याक्षी को मतदान कर सकें। इस प्रकार के शासनों को जनता का ठीक-ठीक कितना समर्थन प्राप्त था यह स्वतंत्र पड़ताल का विषय है और यह मानकर भी नहीं चलना चाहिए कि चाहे वह स्टालिन रहा हो या हिटलर, उन्हें किन्हीं विशेष क्षणों में जनता का पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं था। किंतु महत्वपूर्ण बात फिर भी यही रह जाती है कि उन्होंने चुनाव की समस्त प्रक्रियाओं के माध्यम से ही इस प्रकार की लोकप्रियता के प्रदर्शन की चेष्टा की।

इस तरह, तानाशाही को सर्वथा लोकतांत्रिक माध्यमों से भी थोपने का रास्ता बना लिया गया। राजनीति की इस कला का इस्तेमाल सबसे पहले लूई नेपोलियन ने फ्रांस में 1851 में किया जब उसने चुनाव के लिए जनमत संग्रह का सहारा लिया, बाद में उसने अपने आप को सम्राट घोषित कर दिया और बुनियादी तौर पर इस लोकतांत्रिक आधार पर फरमान जारी करवा कर शासन किया। अनेक तानाशाहों ने अपने लोकतांत्रिक होने का प्रमाण प्रस्तुत करने हेतु जनमत संग्रह तथा जनादेश का सहारा लिया है, जो जनता के मत का ही दूसरा रूप हैं। इनमें सबसे अधिक कुख्यात उदाहरण हिटलर का है जो 1932 के आम चुनाव जीत कर जर्मनी का चांसलर बना था और उसने 1933 के समर्थकारी अधिनियम (इनेबलिंग एक्ट) के माध्यम से राइखस्टैग (जर्मन संसद) से तानाशाही अधिकार प्राप्त कर लिए थे। सोवियत संघ का बोल्शेविक शासन भी लोकतांत्रिक संस्थाओं की एक सोपानिकी पर निर्भर रहा और इन सोवियतों (परिषदों) का चुनाव जनता ही करती थी। भले ही चुनाव में मात्र एक प्रत्याक्षी को खड़ा होने दिया जाता हो, शासन इस प्रकार के चुनाव नियमित रूप से करवाता था। इसके बिना शासन अपने आपको वैध नहीं महसूस करता था। वास्तव में, 1936-1938 के स्टालिन के सबसे खराब दौर में चुनावों का एक भयंकर दौर देखने में आया जिनके माध्यम से "जनता के शत्रुओं" की पहचान करके उनकी निंदा की गई।

जनता के बीच मान्य होने को प्रमाणित करने की यह समूची प्रक्रिया लोकतांत्रिक वैधीकरण कहलाती है और इसे प्राप्त करने का सर्वाधिक प्रभावी साधन किसी न किसी प्रकार की चुनावी प्रक्रिया में ही देखा गया। जो लोग सम्राटों के वंश में पैदा होने के कारण सम्राट बने उनका अधिकाधिक स्थान सत्ता के वास्तविक केंद्र के रूप में चुने हुए शासकों ने अथवा कभी कभी चुने हुए सम्राटों ने भी ले लिया (जैसे फ्रांस का नेपोलियन तृतीय) किंतु जैसे हम ऊपर बता चुके हैं, ऐसी स्थिति में भी सत्ता राज्य के हाथों में ही केंद्रित रही, अर्थात प्रत्यक्ष शासन तथा वैध बल प्रयोग पर एकाधिकार का दावा राज्य का ही विशेषाधिकार रहा। इस तरह, राज्य के आधार तो अधिक लोकतांत्रिक हो गए, किंतु इसके निरंकुश शासन के अधिकार नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से और बढ़ गए। फिर (जन्मजात सम्राट के मामले में) परंपरा, (करिश्माई नेता के मामले में) व्यक्तित्व का प्रभाव अथवा (सैनिक तानाशाह के मामले में) शारीरिक बल जैसे किसी भी अन्य स्रोत की तुलना में जनता का समर्थन किसी भी शासक को हमेशा कहीं अधिक शक्ति प्रदान करता रहा है। जनता के हितों को बढ़ावा देने के कारण सत्ता के इस्तेमाल का दावा क्योंकि राज्य के पास था, इसलिए वह इस प्रकार का समर्थन देने के लिए जनता को लामबंद कर सकता था। फ्रांसीसी क्रांति के बाद जल्दी ही राजनीतिज्ञों को यह पता चल गया कि वे ईश्वर, रीति, किसी व्यक्ति, यहां तक कि सेना को लामबंद करके भी उतनी सत्ता अर्जित और इस्तेमाल नहीं कर सकते थे जितनी जनता को लामबंद करके।

फिर भी, शासन के सभी अंगों ने चुनावों जैसी किसी लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाने का कार्य नहीं किया। सशस्त्र बलों, अर्धसैनिक बलों तथा पुलिस के साथ साथ नौकरशाही ने भी स्पष्ट रूप में लोकतांत्रिक होने का कोई अधिक दिखावा नहीं किया, फिर भी ये सब मिल कर आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य के सर्वशक्तिशाली साधन रहे। समान रूप में, न्यायपालिका तथा समूचा कानूनी तंत्र भी इसी प्रकार का एक और प्रमुख साधन रहा। यह विडंबना ही है कि पहले भी और आज भी इसे आम तौर पर लोकतंत्र के लिए अनिवार्य माना गया है, हालांकि इसकी पूरी तौर पर नियुक्ति ही की जाती है और यह किसी भी अर्थ में जनता के प्रति जवाबदेह नहीं होता। न्यायपालिका के दो महत्वपूर्ण कार्य थे : यह कानून को लागू करके विवादों का निर्णय करती थी और कानून को लागू करते समय वह इसकी विवेचना भी करती थी, अर्थात् वह यह बताती थी कि वास्तविक कानून क्या है। इसलिए, न्यायपालिका केवल विवादों का निपटारा ही नहीं करती थी, अपितु वास्तव में कानून की विवेचना

करके कानून बनाती भी थी, अथवा यह भी बताती थी कि किसी कानून का वास्तविक अर्थ क्या है। विवादों को निपटाने की प्रक्रिया में, वह केवल व्यक्तियों के बीच ही नहीं, अपितु व्यक्तियों तथा राज्य के बीच भी मामलों को सुलटाती थी। राज्य भले ही जनता का प्रतिनिधि होने का दावा करे, न्यायाधीश तो राज्य के विरूद्ध व्यक्तियों के पक्ष में निर्णय कर सकते थे। यह एक कारण है कि चुने हुए नेताओं ने भी कभी कभी प्रतिक्रियावादी बता कर न्यायपालिका की निंदा की है, क्योंकि उसने लोकतांत्रिक ढंग से चुने गए नेताओं की इच्छा का विरोध किया था। किंतु ऐसा करते हुए न्यायपालिका शायद नौकरशाही के उत्पीड़न से व्यक्तियों की रक्षा कर रही होती थी। यह पहला कारण है कि एक स्वतंत्र न्यायपालिका को लोकतंत्र के लिए आवश्यक माना जाता है, हालांकि न्यायपालिका का न तो चुनाव होता है और न ही यह किसी के प्रति जवाबदेह होती है।

इस प्रकार की न्यायपालिका को लोकतंत्र के लिए अनिवार्य क्यों समझा जाता है, इसका अगला कारण है न्यायिक समीक्षा की शक्ति। इसका अर्थ यह होता है कि देश की सर्वोच्च अदालत, जिसे सामान्यतया सर्वोच्च न्यायालय कहा जाता है, वह किसी भी विधान की जांच-परख करके यह तय कर सकती है कि उससे संविधान का उल्लंघन होता है या नहीं। इस प्रकार, यदि जनता के प्रतिनिधि कोई कानून बनाते हैं तो इस प्रकार के सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीश उस कानून को रद्द भी कर सकते हैं। इस प्रकार की स्वतंत्र न्यायपालिका के अधिकार अत्यधिक होते हैं। और उनके कुछ अधिकार तो विधायिका से भी बड़े होते हैं। इस प्रकार के असाधारण अधिकारों को यह मान कर स्वीकार कर लिया जाता है कि राजनीतिक व्यवस्था का लोकतांत्रिक सार लिखित संविधान में निहित होता है और यह भी कि केवल विधि विशेषज्ञ ही यह निर्णय करने में समर्थ होते हैं कि नए कानून संविधान के अनुरूप हैं या नहीं। न्यायिक समीक्षा की सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा विस्तृत शक्ति अमरीका में स्थापित हुई है। यूरोप के विभिन्न देशों में विभिन्न रीतियां प्रचलन में हैं। किंतु समान रूप से प्रसिद्ध ब्रिटिश व्यवस्था में न्यायिक समीक्षा का प्रावधान नहीं है, हालांकि पहले के कानूनों की विवेचना के माध्यम से न्यायाधीश का बनाया गया कानून सामान्य बात होती है। फिर भी, एक स्वतंत्र न्यायपालिका के हाथों लोकतंत्र की शक्ति का सीमित किया जाना एक ऐसा सच है जो समस्त बहुलवादी उदारवादी लोकतंत्रों पर लागू होता है और इन सीमाओं को उस सिद्धांत के माध्यम से लोकतांत्रिक सिद्धांत का एक अंग बना दिया गया है। जिसे हम शक्तियों के अलगाव अथवा न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधायिका के अलगाव का सिद्धांत कहते हैं। तो अंततोगत्वा, जनता के प्रतिनिधियों के निर्णयों को अविश्वसनीय माना जाता है, लोकतांत्रिक प्रक्रिया तो लोकतंत्र की रक्षा के लिए अपर्याप्त होती है और वस्तुत: स्वनियुक्ति करने वाले व्यक्तियों के एक छोटे से गुट को लोकतंत्र की रक्षा करने का एक सबसे अच्छा साधन समझा जाता है।

इस प्रकार, हमेशा से आदर्श लोकतंत्र कहलाने वाले देशों में भी आधुनिक लोकतांत्रिक राजनीति अनेक अनिवार्य अर्थों में लोकतांत्रिक नहीं होती। जनता शासन नहीं करती, न्यायिक समीक्षा तथा न्याय करने का काम उस व्यक्ति समूह के हाथों में हैं जो अपने सिवाय और किसी के भी प्रति जवाबदेह नहीं होते और राज्य अपनी विशाल नौकरशाही तथा सैनिक तंत्र के माध्यम से लगभग असीम तथा लगातार बढ़ते अधिकारों का इस्तेमाल करता है। इस सब में लोकतंत्र का कोई नामो-निशान भी नहीं मिलता, फिर भी चुनावी राजनीति तथा नौकरशाही निरंकुशता के इसी संगम को आधुनिक राजनीति में लोकतंत्र बताया गया है। इसका एक कारण तो हम पहले ही देख चुके हैं कि तानाशाही शासनों में भी इन अधिकारों का प्रयोग जनता के नाम पर होता है और चुनावी शासनों में जनता अपने शासकों का चुनाव एक निश्चित अवधि में करती है। लेकिन इसका एक और कारण है, जो शायद अधिक महत्वपूर्ण है और वह है मानव इतिहास में पहली बार राजनीति में ऊंचे स्तरों पर जनता की भागीदारी। जनता स्वयं शासन नहीं करती, किंतु वह अनेक प्रक्रियाओं के माध्यम से भागीदारी करती है, जिनमें चुनाव सर्वाधिक स्पष्ट होते हैं।

इस प्रकार की भागीदारी लामबंदी के माध्यम से होती है। आधुनिक राजनीति में, अठारहवीं शताब्दी के अंत तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में होने वाले क्रांतिकारी घटनाक्रमों के दौरान राजनीतिक दल (पार्टी) नाम की एक नई संस्था का उदय हुआ। ये दल नौकरशाही के भीतर अथवा दरबार में उपस्थित रहने वाले मात्र गुट नहीं थे। अब वे ऐसे संगठन थे जो विचारधारा से परिभाषित थे। विचारधारा तो किसी वर्ग, समूह, क्षेत्र, धर्म, राष्ट्र आदि के हित का मूर्त रूप हो सकता था किंतु यह आने वाले विश्व की तसवीर थी। इस प्रकार के दल अब अपनी विशेष वैचारिक स्थिति के लिए तथा उसके साथ ही स्वयं अपने लिए भी जनता के बीच लामबंदी की चेष्टा करने लगे। कई-कई राजनीतिक दल सक्रिय रूप से जनता के बीच समर्थन बनाने की चेष्टा करने

लगे तो जनता का एक बड़ा वर्ग राजनीति से अधिकाधिक संलिप्त होने लगा। जनता से कहा जाने लगा कि वह राजनीतिक विकल्पों का चुनाव करे और अपना मत व्यक्त करे, तथा विभिन्न तरीकों से किसी भी विषय पर अपनी स्थिति प्रकट करे। इसका रूप यह हो सकता था कि नागरिकों से वोट देने को कहा जाए, किसी श्रमिक संगठन का सदस्य होने को कहा जाए, किसी याचिका (पिटीशन) पर हस्ताक्षर करने को कहा जाए, प्रदर्शन - जुलूस में भाग लेने को कहा जाए, किसी अखबार का ग्राहक बनने को कहा जाए, किसी सभा में तथा अन्य अनेक ऐसी ही गतिविधियों में शामिल होने को कहा जाए। आज हम इसे बिल्कुल आम बात मानते हैं कि विभिन्न किस्म के इतने सारे लोग हमें प्रति दिन इतने सारे तरीकों से परेशान करें, और यह मांग करें कि हम वैसा ही करें जैसा वे चाहते हैं, किंतु ये सारे उन्नीसवीं शताब्दी की ईजाद है। उससे पहले, जनता को अकेला छोड़ दिया जाता था और उससे कभी कभार ही अतिरिक्त कर देने अथवा युद्ध में भाग लेने की मांग की जाती थी।

इन नए तरीकों से, प्रत्येक हित समूह ने समर्थन जुटा कर राजनीतिक दल बना लिए। ये दल किसी प्रमुख नागरिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते थे। जनता से की जाने वाली इस लगातार मांग ने कि वह राजनीति में भाग ले तथा अपनी स्थिति तय करें, अर्थात जनता को लामबंद करने की प्रक्रिया ने ही राजनीति को लोकतांत्रिक बना दिया। अब इस दावे का भी वास्तव में एक आधार रहा होगा कि शासक वर्ग जनता के नाम पर क्रिया कलाप कर रहा था, अर्थात जनता के पास यह जताने का अवसर था कि वे ऐसे शासकों का समर्थन करते हैं या नहीं। ये राजनीतिक दल ऐसे साधन बन गए जिनके माध्यम से ऐसे शासकों को चुना जाता था और जिनके माध्यम से शासक अपनें आपको वैध ठहराते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान क्रमिक अंशों में, पहले ब्रिटेन, फ्रांस, तथा अमरीका और फिर शेष यूरोप की राजनीति और उसके बाद शेष विश्व की राजनीति से यही तर्क उजागर होता है। सबसे अधिक यही आधुनिक राजनीति का मर्म है, अर्थात लामबंदी के साधन के रूप में एक गैर सैनिक दल के साथ एक लामबंद जनता। जनता के लोग स्वयं शासन नहीं करते, अपितु उसमें शामिल रहते हैं और चाहे उन्हें यह बात पसंद हो या नहीं उनके लिए इसमें शामिल होना आवश्यक होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह प्रतीत होता है कि आधुनिक जनता पर नौकरशाही की निरंकुशता का और पार्टी की लामबंदी का राज है। और वहां किसी व्यक्ति अथवा समूह की स्वतंत्रता अथवा पसंद की कोई वास्तविकता अथवा अर्थ नहीं रह जाता, जबकि लोकतंत्र के यही मुख्य गुण होने चाहिए। तो फिर क्या लोकतांत्रिक राजनीति अत्याचारी शासन का ही व्यापक रूप है? बिल्कुल नहीं, भले ही यह वह नहीं हो जो होने का यह दावा करती है।

अपने शासन के वैध होने का राज्य का दावा और जनता के समर्थन हेतु राजनीतिक दलों की लामबंदी, इन दोनों का ही आधार नागरिकों के अधिकार हैं। 'नागरिकों के अधिकार' जुमले का इस्तेमाल फ्रांसीसी क्रांति के दौरान किया गया था, जबकि बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसे 'मानव अधिकार' का नाम दिया। आधुनिक राजनीतिक चर्चा में अधिकार का अर्थ होता है वह सब जिसके साथ व्यक्ति का जन्म होता है और जिसे उससे छीना नहीं जा सकता, ये मानवाधिकार शासकों की ओर से दिए गए विशेषाधिकार नहीं होते, जैसा कि पूर्व-आधुनिक काल में समझा जाता था। इसलिए नागरिकों की ओर से की गई राजनीतिक गतिविधि उन अधिकारों के इस्तेमाल का रूप ले लेती है जो सभी के लिए सारा समय समान रूप में उपलब्ध रहते हैं। अधिकारों का दावा कोई भी रूप ले सकता है और लेता भी है और जहां राज्य तथा राजनीतिक दल अपर्याप्त पाए गए है, वहां नागरिकों ने अपने आपको नई प्रकार की (राजनीतिक) गतिविधियों में तथा नए संगठनों के माध्यम से लामबंद किया है। इस प्रकार की लामबंदी का सहारा मात्र राज्य की सत्ता हथियाने की आकांक्षा करने वाले राजनीतिक दल ही नहीं लेते, जैसा कि पश्चिमी यूरोप की उदारवादी अथवा बहुलवादी चुनावी व्यवस्थाओं में होता है और न ही केवल एक दल के माध्यम से कार्य करने वाले राज्य ही लेते है, जैसा कि फासीवादी और साम्यवादी (कम्युनिस्ट) राज्यों में होता है।

असंख्य नागरिक कार्रवाई गुट अपना गठन करते हैं और सत्ता पाने के सिवाय अन्य उद्देश्यों के लिए कार्य करते हैं, वे उस प्रकार के मकसदों के लिए कार्य करते हैं जो अधिक सीमित हो सकते हैं, जैसे अन्याय के शिकार किसी व्यक्ति की रक्षा करना, पर्यावरण की सुरक्षा करना, उपभोक्ताओं के अधिकारों का समर्थन करना आदि। इसके अतिरिक्त ये मात्र दबाव गुटों के रूप में किसी हित की रक्षा के कार्य में भी लग सकते हैं। ये हित व्यापारिक भी हो सकते हैं अथवा व्यावसायिक भी और इसका सर्वाधिक स्पष्ट उदाहरण है श्रमिक संगठनों की सक्रियता। व्यक्तियों की ओर से राजनीतिक कार्रवाई का एक रूप यह भी हो सकता है कि वे जनहित के मामलों पर टिप्पणी

करें और इस प्रकार के तमाम व्यक्तियों को एक साथ रखें तो वह जनमत बन जाता है। इसलिए जनता अपने अधिकारों के इस्तेमाल की दिशा में सक्रिय होती है, वह केवल राजनीतिक तंत्र के तमाशों में अपना समर्थन जताने वाली मूक भीड़ नहीं होती, हालांकि अक्सर ऐसा ही होता है। सक्रिय नागरिक के बिना आधुनिक राजनीति का अस्तित्व नहीं है। इसके अतिरिक्त, ऊपर नौकरशाही तथा लामबंदी और नीचे सक्रिय नागरिक के बीच एक लगातार बना रहने वाला तनाव आधुनिक राजनीति को परिभाषित करता है, चाहे उसे हम लोकतांत्रिक कहें अथवा अधिनायकवादी, किंतु लोकतांत्रिक वैधता तथा प्रक्रिया का उसका दावा हमेशा बना रहता है।

आधुनिक राजनीति की एक और महत्वपूर्ण विशेषता दिखाई देती है जिसका उद्‌भव अठारहवीं शताब्दी के अंत तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ की इस अर्ध शताब्दी में हुआ है। यह एक विचित्र प्रारूप है जिसे हम आम मान बैठे हैं, किंतु यह भी उस समय अत्यधिक नया था। इसमें वाम, मध्य, तथा दक्षिण पंथी राजनीतिक विचारधाराएं और राजनीतिक दल आते हैं जो वाम से दक्षिण तक के पंथ में किसी निश्चित दृष्टिकोण से प्रतिबद्ध होते हैं। वाम पंथ में वे सभी विचारधाराएं आ जाती हैं जिनमें परिवर्तन, निरंतर प्रवर्तन तथा अतीत एवं परंपरा से भविष्य की ओर जाने का आग्रह रहता है। वाम पंथ का आग्रह यह था कि परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रवर्तन अथवा अतीत एवं परंपरा का पूरी तरह रूपांतरण शामिल हो। इसलिए क्रांति का संबंध वामपंथी विचारधाराओं से होता है, इनमें से समाजवाद तथा साम्यवाद सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। दूसरी ओर मध्य मार्ग परिवर्तन की प्रक्रिया को तो स्वीकार करता है किंतु उसकी चेष्टा यही रहती है कि प्रवर्तन की गति को धीमा ही रखा जाए। मध्य मार्ग अतिवाद से डरता है और क्रांतिकारी नहीं होना चाहता। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, उदारवादी आंदोलन तथा विचारधाराएं व्यापक अर्थ में राजनीतिक वर्णक्रम के मध्य में स्थित मानी जाती थी। क्योंकि समाजवादी वाम की ओर झुके हुए थे। किंतु समाजवाद से पहले के दिनों अर्थात 1830 के दशक में उदारवादी भी उसी तर्क के आधार पर क्रांतिकारी अथवा वामपंथी हो सकते थे जिस तर्क से समाजवादी थे। विचारधारा की दृष्टि से फ्रांसीसी क्रांति के आदोलन भी उदारवादी थे। समाजवादी नहीं, किंतु फिर भी वे क्रांतिकारी थे क्योंकि उनका उद्‌देश्य परंपरा को उखाड़ फेंकना ही था। दक्षिण पंथी विचारधाराओं का उद्‌देश्य क्रांति को लगाम देना और जो कुछ अस्तित्व में आ चुका है उसे मज़बूत करना था। उनकी चेष्टा यह रहती थी कि परंपरा का इस्तेमाल किया जाए, उसमें सुधार किया जाए, उसे एक एक कर बदला जाए, किंतु उसे उखाड़ कर फेंका नहीं जाए, जैसा कि वामपंथ करना चाहता था और अधिकांश मध्य मार्ग भी करने को तैयार रहता था। दक्षिण पंथ में अनुदारवादी आते थे, जैसे यूरोप में क्रिश्चियन लोकतंत्र और ब्रिटेन में टोरी अथवा अनुदारपंथ। किंतु अनुदारपंथ कोई निर्धारित दृष्टिकोण नहीं था क्योंकि यह अपने आपको मध्य मार्ग तथा वामपंथ के सापेक्ष परिभाषित करता था, उसने 1815 तक तो फ्रांसीसी क्रांति के लाए परिवर्तनों को स्वीकार किया किंतु उससे अधिक की उसने चाह नहीं की, 1848 की क्रांतियों के बाद, उसने उन परिवर्तनों को भी स्वीकार किया किंतु यह भी आशा बांधी रखी कि आगे किसी भी क्रांति को रोका जाएगा। इस प्रकार उसने प्रवर्तनों तथा क्रांतियों की नवीनतम श्रृंखला से तो अपने आपको संबद्ध किया और उसके बाद यथास्थिति को बनाए रखने की चेष्टा की। यह एक मनोवृति थी जिसका सटीक राजनीतिक दृष्टिकोण दशक प्रति दशक बदलता रहा क्योंकि उसकी दिशा अतीत के उत्कृष्ट भाग को बनाए रखने की ओर थी जबकि अतीत निरंतर लुप्त हो रहा था। जैसा कि एक प्रसिद्ध दार्शनिक ने कहा है, अनुदारपंथ उस अतीत को विकसित करने की चेष्टा करता है जो वर्तमान में रह जाता है, समाजवाद उस भविष्य को विकसित करने की चेष्टा करता है जो वर्तमान में अंतर्निहित होता है और मध्यमार्ग वर्तमान का ही यशगान करने की चेष्टा करता है।

वैसे, दक्षिणपंथ अक्सर ही एक अतिवादी दृष्टिकोण की ओर झुका है जिसे प्रति क्रांति कहते हैं। क्रांति के विचार के प्रति घृणा के भाव में अथवा सब कुछ को एक नए रूप में ढालने के विचार के प्रति घृणा भाव में, दक्षिणपंथ के एक भाग की यह इच्छा रही कि क्रांति के मूल विचार को ही रद्‌द कर दिया जाए। इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए दक्षिण पंथ वापस अतीत की ओर नहीं मुड़ा, अपितु उसने आधुनिक काल की क्रांतियों की रची हरेक चीज़ पर प्रहार किया। यह प्रति क्रांति थी, जो अनुदारपंथ समेत आधुनिक क्रांतियों के स्वप्न के प्रति इतने भीषण रूप में विरोधी था कि इसने स्वाभाविक रूप में अपने आपको अपनी नकारात्मकता में ही नष्ट कर लिया। बीसवीं शताब्दी में इसका सर्वोत्तम प्रतीक फासीवाद तथा राष्ट्रीय समाजवाद थे, किंतु दोनों ही इससे पहले भी महत्वपूर्ण रूप में विद्यमान थे। इस तिहरे वैचारिक विभाजन को हमारे समय के एक प्रसिद्ध दार्शनिक ने यूरोप का वैचारिक गृह युद्ध बताया है, यह भी कि उन्नीसवीं शताब्दी का यूरोपीय गृह युद्ध वामपंथ की ओर सोवियत संघ के नेतृत्व में साम्यवाद, मध्य में मित्र राष्ट्रों के नेतृत्व में उदारवाद तथा दक्षिणपंथ की ओर धुरी (संधि) देशों के नेतृत्व

में प्रति क्रांति के बीच लड़ा गया, 1945 के बाद, यह उसी वामपंथ तथा मध्य मार्ग के बीच शीत युद्ध में बदल गया और 1991 में सोवियत संघ तथा साम्यवादी यूटोपियाई स्वप्न के बिखर जाने के बाद कथित उत्तर-आधुनिक काल में मध्य मार्ग का नियंत्रण बना रह गया है।

बोध प्रश्न 2

1) लोकतांत्रिक राज्यतंत्र स आप क्या समझते हैं? 50 शब्दों में लिखिए।

....

....

....

....

....

2) न्यायपालिका के महत्व पर दस वाक्य लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की भूमिका को दस वाक्यों में समझाइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.5 सारांश

इस इकाई मे हमने पढ़ा कि आधुनिक राज्य किन अर्थों में पूर्व-आधुनिक राज्य से भिन्न है, कैसे यह व्यापक, केंद्रीभूत तथा नौकरशाही शक्ति का इस्तेमाल करता है और कैसे यह जनता की संप्रभुता के सिद्धांत के माध्यम से अपने शासन को वैध ठहराता है। इस प्रकार यह राज्य के लिए समर्थन जुटाता है और इसके लिए विशेषकर राष्ट्रवाद का सहारा लेता है जो कि एक राजनीतिक भूभाग पर एकरूपी संस्कृति को थोपने का ही एक रूप है। समर्थन जुटाने के लिए यह आधुनिक राजनीतिक दल का सहारा लेता है, जो उन्नीसवीं शताब्दी की ईजाद है

और आधुनिक राजनीति को बहुलवादी कहलाने वाली बहुदलीय व्यवस्था तथा अक्सर तानाशाही कही जाने वाली एक दलीय व्यवस्था दोनों के माध्यम से संचालित किया जा सकता है। किंतु आधुनिक राजनीति में नागरिक उन अधिकारों के इस्तेमाल के सहारे काम करते हैं जो उनके पास जन्म से ही होते हैं और जिन्हें बाद में उनसे छीना नहीं जा सकता, इस प्रकार वे राज्य से स्वतंत्र रहते हुए तमाम प्रकार के गुटों में अपने आपको संगठित कर लेते हैं। इस स्थिति को अक्सर लोकतांत्रिक कहा जाता है, किंतु यह एहसास अपने आपमें कहीं अधिक महत्वपूर्ण है कि आधुनिक नागरिक पहले की अपेक्षा राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय होने में अधिक समर्थ हैं, चाहे राज्य लोकतांत्रिक हो अथवा नहीं, और यह अभूतपूर्व स्तर पर उन्हें सक्रिय रूप में लामबंद करने की राज्य की सामर्थ्य का पूरक है। ये दो प्रवृत्तियां मिल कर आधुनिक राजनीति को जन्म देती हैं, सक्रिय नागरिक तथा लामबंद करने वाला नौकरशाही राज्य।

1.6 शब्दावली

पूर्ण सत्ता/ निरंकुश शक्ति : राज्य पर शासन करने हेतु असीमित अधिकार का सिद्धांत।

अनुदारपंथ : किसी भी प्रकार के परिवर्तन का विरोध करने की प्रवृत्ति।

प्रति-क्रांति : वह क्रांति जो पहले की किसी क्रांति से स्थापित राजनीतिक शासन को बदल देती है।

फासीवाद : दक्षिण पंथी तानाशाही शासन की विचारधारा। फासीवादी विचारों का उद्भव बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इटली में हुआ।

सामंतवाद : मध्ययुगीन यूरोप में विकसित विचार, जिनके अनुसार लोग उस सामंत से बंधे थे जिसका अपने अधीन काम करने वाले लोगों पर पूरा अधिकार था।

उदारवाद : किसी पूर्वाग्रह से मुक्त होकर नरमपंथी राजनीतिक तथा सामाजिक सुधार में विश्वास करना।

बहुलवाद : अलग-अलग राजनीतिक तथा धार्मिक मान्यताओं वाले अलग-अलग गुटों का एक ही समाज में रहना।

समाजवाद : निजी स्वामित्व का उन्मूलन तथा राज्य के स्वामित्व एवं सबकी समानता का सिद्धांत।

संप्रभुता : बिना किसी बाहरी नियंत्रण के राष्ट्र, राज्य अथवा शासक के पास शक्ति/सत्ता का होना।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 1.2।
2) राज्य के नियंत्रण में, शिक्षा राज्य के वांछित उद्देश्यों को बढ़ावा देने का एक महत्वपूर्ण साधन है। भाग 1.3 को पढ़िए, उसमें आपको उत्तर मिल जाएगा, फिर उसे आप अपने शब्दों में लिखिए।

3) विभिन्न राज्यों के बीच विकसित कूटनीतिक संबंध। पढ़िए भाग 1.3।

बोध प्रश्न 2

1) जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों से संचालित सरकार। देखिए भाग 1.4।
2) देखिए भाग 1.4।
3) स्पष्ट विचारधारा वाला राजनीतिक दल आधुनिक राजनीति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। पढ़िए भाग 1.4।

इकाई 2 ब्रिटेन में राजनीतिक संक्रमण : 1780-1850

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- ब्रिटिश राज्यतंत्र तथा विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं की प्रकृति को समझ पाएंगे,
- स्वतंत्रता की धारणा तथा सुधारों की बढ़ती मांगों की पृष्ठभूमि के बारे में जान पाएंगे,
- जनता की मांगें पूरी करने की दिशा में राज्य की ओर से उठाए गए कदमों की व्याख्या कर पाएंगे, और
- श्रमिक वर्ग के आंदोलन की गतिशीलता को समझ पाएंगे।

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक ब्रिटेन का अध्ययन इतिहास के क्षेत्रों के लिए अनेक कारणों से दिलचस्पी का विषय रहा है। आप जानते होंगे कि 1780 और 1850 के बीच इंग्लैंड, वेल्स तथा स्कॉटलैंड से मिल कर बने, ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के कारण जबरदस्त परिवर्तन का दौर आया था। इस एतिहासिक परिवर्तन ने कारखानों की व्यवस्था शुरू करके न केवल निर्माण के क्षेत्र में क्रांति ला दी, अपितु शेष विश्व पर भी दीर्घकालीन प्रभाव छोड़े।

इस प्रक्रिया में नेतृत्वकारी स्थिति बनाते हुए, ब्रिटेन सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उभरा। उसने अपने कब्जे वाले बाजारों तथा संसाधनों का शोषण करते हुए बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक औद्योगीकरण की दौड़ में अपनी बढ़त बनाए रखी। इस विषय में हम खंड 3, इकाई 10 में और विस्तार से चर्चा करेंगे।

दिलचस्प तथ्य यह भी है कि लगभग उन्हीं वर्षों में ब्रिटेन में एक 'उदारवादी राज्यतंत्र' ने स्पष्ट आकार लेना

SCOTLAND
IRELAND
R. BOYNE
ENGLAND
LONDON
DENMARK
HOLLAND
THE EMPIRE
PARIS
SWITZERLAND
FRANCE
VENICE
SAVOY
TOULON
BARCELONA
MINORCA
PORTUGAL
SPAIN
BRITAIN IN EARLY 18TH CENTURY
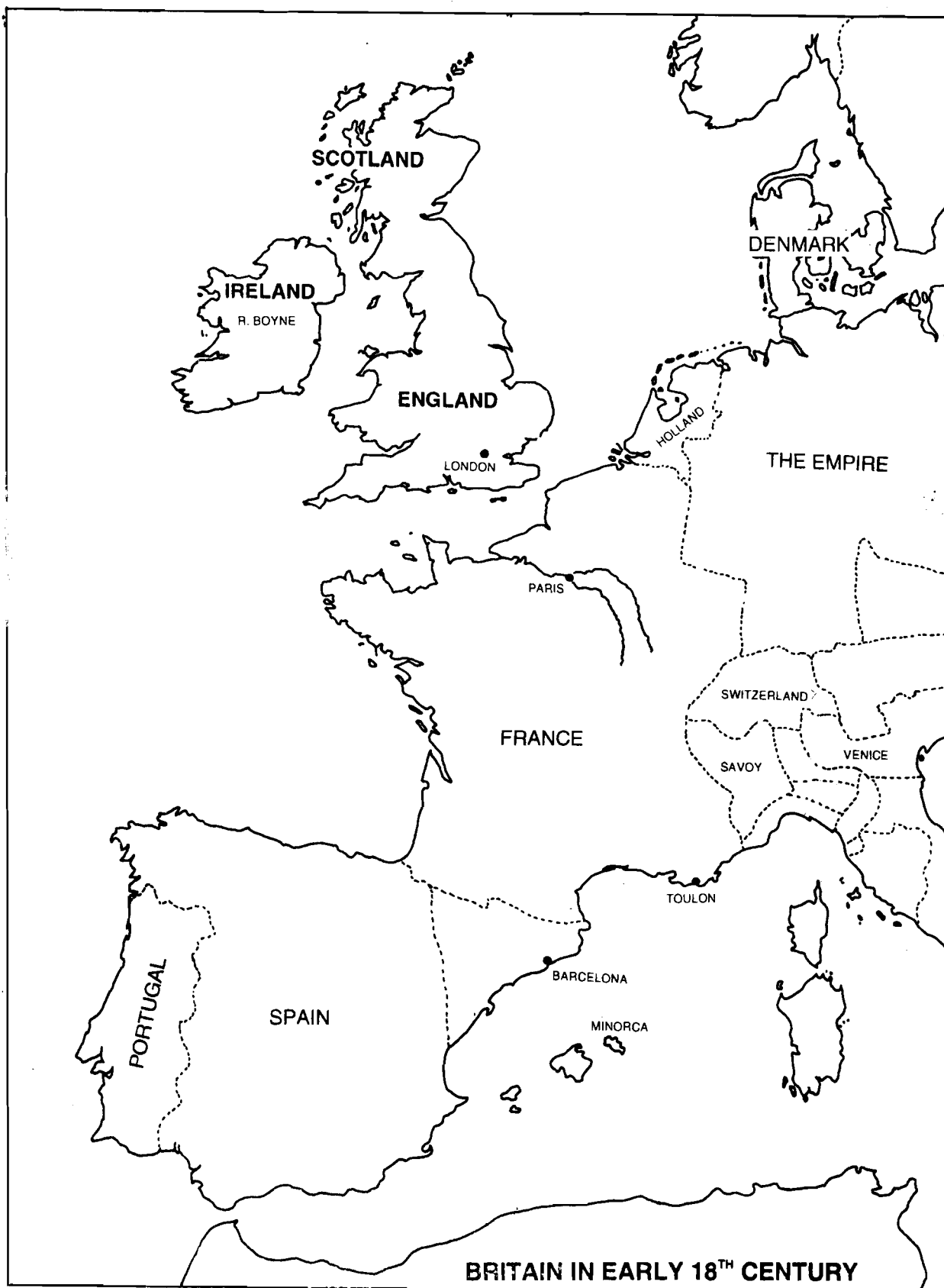
शुरू किया, जिसने आज तक अनेक पूंजीवादी राज्यों के लिए एक आदर्श का काम किया है। इस प्रकार का राज्यतंत्र अपने नागरिकों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति, सभा, धार्मिक विश्वास, असहमति रखने तथा कानून के समक्ष समान व्यवहार के अधिकार की गारंटी देता है। किंतु यह अधिक से अधिक मुनाफा कमाने वाले उद्यमियों की पैदा की गई कृत्रिम मांग के साथ जुड़े 'स्वतंत्र' बाजार के अपव्यय तथा संपत्ति पर आधारित असमानताओं की भी रक्षा करता है। इस इकाई में, हम अठारहवीं शताब्दी के अंत तथा मध्य उन्नीसवीं शताब्दी के बीच ब्रिटेन में इस प्रकार के राज्य के उदय की भी सूक्ष्म पड़ताल करेंगे।

ब्रिटिश इतिहास का यही काल एक नई किस्म की राजनीति के विकास के लिए भी स्मरणीय रहेगा जो संगठित दलों के बीच चुनावी प्रतिस्पर्धा तथा संसदीय चुनावों पर केंद्रित थी। यह राजनीति शासनाधीन प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार देने वाली लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए होने वाले संघर्षों के लिए भी स्मरणीय रहेगा। उभरते हुए मध्यम वर्ग जहां इस नई राजनीति के प्रति विशेष रूप से सरोकार रखते थे, वहीं औद्योगिक श्रमिक वर्ग ने इस लोकतांत्रिक व्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आगे के पृष्ठों में, हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि इन राजनीतिक परंपराओं ने ब्रिटेन में किस विशिष्ट ढंग से प्रतिस्पर्धा की तथा आधुनिक राज्यतंत्र के लिए उनके व्यापक प्रभाव क्या रहे।

2.2 ब्रिटिश राज्यतंत्र की प्रकृति

हम 'राजनीति' तथा 'राज्य' से क्या समझते हैं और आधुनिक काल में उनमें किस प्रकार से सामान्य परिवर्तन हुए हैं, इसकी समीक्षा कर लेना हमारे लिए उपयोगी रहेगा। राजनीति का संबंध सत्ता के लिए होने वाले संघर्ष से होता है। जिनके पास सत्ता होती है वे इसे बनाए रखने की कोशिश करते हैं, जबकि जो लोग सत्ता से बाहर होते हैं वे इसका प्रतिरोध करते अथवा इसे हथियाने की कोशिश करते हैं। एक तरह से, यह संघर्ष सभी प्रकार के सामाजिक संबंधों तथा संस्थाओं में व्याप्त रहता है, किंतु, राज्य के स्तर पर इसकी गहनता विशेष रूप में उल्लेखनीय होती है, चाहे वह सत्ताधारी वर्गों के बीच गुटीय टकरावों के रूप में हो या समय समय पर खुल कर सामने आने वाले गरीब तथा अमीर या शासक तथा शासितों के बीच होने वाले व्यापक संघर्षों के रूप में हो।

दूसरी बात यह कि वैचारिक संघर्ष भी राज्य पर केंद्रित राजनीति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सत्ता में बैठे लोग तो धार्मिक अथवा धर्म निरपेक्ष आदर्शों के संदर्भ में मौजूदा व्यवस्था को उचित ठहराने की कोशिश करते हैं, जबकि सत्ता से बाहर के लोग उन बदलावों को लागू करने की फिराक में रहते हैं जो क्रांतिकारी रूप में नए अथवा प्रतिक्रियावादी उद्देश्यों वाले होते हैं। सामान्य अर्थों में, इस प्रकार के राजनीतिक आवेगों को मध्यमार्गी, वामपंथी तथा दक्षिणपंथी कहा जा सकता हैं। किंतु उनका विचार तत्व संदर्भ के अनुसार अलग अलग हो सकता है। और उन्हें मात्र सापेक्ष दृष्टिकोणों के रूप में देखना उपयोगी हो सकता है।

वैसे, आधुनिक काल में 'वामपंथ' की धारणा को श्रमिक वर्ग के या उनके समानतवादी आंदोलनों से जोड़कर देखा गया है, जबकि मध्यमार्गी राजनीति का संबंध अधिकतर बुर्जुआ वर्ग से माना गया है जो व्यक्तिगत अधिकारों की तो वकालत करता है किंतु सामाजिक एकता की नहीं। 'दक्षिणपंथी' राजनीति ने इधर कुछ समय से और भी अनेक रूप ले लिए हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार के नवजागरणवादी आंदोलनों से लेकर धर्मनिरपेक्ष तानाशाही तथा फासीवादी राज्य तक आ जाते हैं।

नए नए रंगों की राजनीतिक विचारधाराएं पैदा करने के अतिरिक्त, आधुनिक काल ने उन तरीकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन भी देखें हैं जिनके सहारे गुटों तथा वर्गों ने सत्ता हथियाई अथवा उसका प्रतिरोध किया है। इस प्रकार, उभरते मध्यम वर्ग ने उस स्थिति का समर्थन किया है जिसमें 'कानून और व्यवस्था' बनाए रखने का काम एक प्रतिनिधि राज्य करें जिसमें अधिकाधिक उत्पादकता तथा संसाधन जुटाने के कार्य आसान हों और संपत्ति तथा संसाधनों के वितरण में विद्यमान असमानता की बुनियादी स्थिति को छोड़ना भी न पड़े। संगठित राजनीतिक दलों तथा प्रचार के माध्यम से जनता की सहमति जुटाना और मतदाता का समर्थन तथा संसदीय बहुमत हासिल करना इसके मुख्य सरोकार रहे हैं। दूसरी ओर, वामपंथी आंदोलन ने एक अत्यंत असमतावादी सामाजिक व्यवस्था के भीतर संसदीय राजनीति की वैधता पर ही सवालिया निशान लगाया है और जब भी आवश्यक हुआ है उसने वर्ग भेद को संरक्षण देने वाले अत्याचारी राज्यों के विरूद्ध सर्वहारा की हिंसक बगावत खड़ी करने में

हिचकिचाहट भी नहीं दिखाई है। वैसे तो ये राजनीतिक आवेग उन अधिकांश समाजों में समान रूप से विद्यमान रहे हैं जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से होकर गुजरे हैं, फिर भी उनका सही सही स्वरूप तथा चरित्र अलग अलग देशों में स्पष्ट रूप से अलग अलग रहा है।

इस संदर्भ में, आधुनिक ब्रिटेन का इतिहास स्थिर राज्यतंत्र की एक असाधारण मिसाल देश करता है, जिसमें उदारवादी लोकतांत्रिक परिवर्तन भी हुआ और उसके शासक वर्ग को उखाड़ फेंकने के लिए हिंसा का सहारा भी नहीं लिया गया। यह स्थिति यूरोप महाद्वीप के अधिकांश देशों से सर्वथा विपरीत थी जहां सामंती शासनों के विरूद्ध और उनके बाद आने वाले बुर्जुआ राज्यों के विरूद्ध भी बार बार विद्रोह हुए। दूसरी ओर, ब्रिटिश उपद्वीप में (आयरलैंड को छोड़ते हुए) इस 'क्रांति युग' में होने वाला परिवर्तन हिंसक राजनीतिक विद्रोह की अपेक्षा औद्योगीकरण के माध्यम से अधिक हुआ।

इसका यह अर्थ नहीं है कि ब्रिटेन में संसदीय राजनीति के श्रमिकों की सभा तथा श्रमिक सहकारिता प्रधान अर्थव्यवस्था जैसे विकल्पों को नहीं आजमाया गया। किंतु 'वामपंथी' विकल्पों के रूप में या तो उनको पर्याप्त समर्थन नहीं मिल पाया या फिर उनके लक्ष्य अपेक्षाकृत नरमपंथी रहे। इसके परिणामस्वरूप, मध्य उन्नीसवीं शताब्दी तक आते आते ब्रिटेन के उभरते मध्यम वर्ग तथा सत्ताधारी कुलीन वर्ग ने समझौते के दृष्टिकोण को अपना लिया और वे इस प्रयास में भी सफल हो गए कि बढ़ते श्रमिक आंदोलनों को संसदीय राजनीति तक ही सीमित कर दिया जाए जो निजी संपत्ति को संरक्षण देने हेतु प्रतिबद्ध थी। यह सब कैसे हुआ? और आधुनिक राजनीति की ओर ब्रिटेन के विचित्र संक्रमण के पीछे किन किन कारकों का हाथ रहा, यह अपने आप में क्रमबद्ध अध्ययन का विषय है।

किंतु इस सबका अध्ययन करने से पहले यहां यह जानना प्रासंगिक होगा कि इस काल के प्रारंभ में ब्रिटेन को किस प्रकार की राजनीतिक संस्थाएं विरासत में मिली।

2.3 राजनीतिक संस्थाओं की प्रकृति

आधुनिक काल के प्रारंभिक वर्षों (लगभग 1500-1800) के दौरान यूरोप के अन्य राज्य अपने आपमें संप्रभुता संपन्न राजनीतिक इकाइयों के रूप में उभरे। ये राज्य अपने शासित भूभागों में रहने वाली समस्त प्रजाओं की राजभक्ति पर दावा ठोंक रहे थे, और फ्रांस के लुई चौदहवें तथा प्रशा के फ्रेडरिक महान जैसे निरंकुशतावादी सम्राटों के अधीन अपने प्रशासनिक तथा आर्थिक कार्यों का तेजी से विस्तार भी कर रहे थे।

किंतु, ब्रिटेन तथा नीदरलैंड्स जैसे देशों में एक संप्रभुतासंपन्न राष्ट्र के उदय के साथ साथ संवैधानिक शासन की व्यवस्था ने भी आकार लिया। इस शासन (सरकार) का आधार सम्राट की मनमानी इच्छा न होकर कानून का शासन था जो संसदीय संविधानों तथा कानूनी परिपाटियों के अनुसार था। ब्रिटेन में विशेष रूप से यह कार्य सत्तरहवीं शताब्दी के दौरान हुई क्रांतियों के बाद हुआ था, ये क्रांतियां स्टुअर्ट वंश के राजाओं की निरंकुशतावादी महत्वाकांक्षाओं के विरूद्ध थीं। जिनमें इन राजाओं को हटा कर एक नए वंश तथा एक नए संविधान को प्रतिष्ठित किया गया और इस नए संविधान में सम्राट, संसद तथा अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र एक न्यायपालिका के बीच अधिकारों के विभाजन को सुनिश्चित किया गया। संसद वास्तव में ब्रिटेन की सरकार का विशिष्ट अंग थी। इसमें दो सदन होते थे। ऊपरी सदन 'हाउस ऑव लॉर्ड्स' कहलाता था जिसमें उच्च पुरोहित वर्ग तथा कुलीन वंश का प्रतिनिधित्व होता था। निचला सदन 'हाउस ऑव कॉमन्स' कहलाता था और इसका चुनाव सीमित मताधिकार के आधार पर होता था। सत्तरहवीं शताब्दी की क्रांतियों के बाद, निचले सदन ने सम्राट के राजनीतिक अधिकारों पर कुछ महत्वपूर्ण प्रतिबंध लगाने तथा शासन प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका बनाने में सफलता प्राप्त कर ली थी। उदाहरण के लिए, नए कर लगाने तथा सेना समेत सभी राजकीय विभागों पर खर्च करने के सम्राट के अधिकार सहित उसके वित्त पर हाउस ऑव कॉमन्स का नियंत्रण था और यह नियंत्रण अनिवार्य वार्षिक बजट के माध्यम से होता था। इसी प्रकार, सभी नए कानूनों को संसद से पारित करवा कर ही सम्राट की मंजूरी के लिए भेजना होता था। इसके अतिरिक्त, संसद के विधायी तथा बजट संबंधी अधिकारों ने सम्राट की अधिशासी शक्ति पर महत्वपूर्ण प्रतिबंध लगा रखा था और सम्राट बाध्य होता था कि वह अपने

मंत्रियों की नियुक्ति अधिकतर उन व्यक्तियों में से करे जिनके पीछे हाउस ऑव कॉमन्स के सदस्यों की कुछ संख्या हो। इस महत्वपूर्ण परिपाटी ने भविष्य में होने वाले आधुनिक 'कैबिनेट (मंत्रिमंडल) व्यवस्था' के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इस केबिनेट व्यवस्था में मंत्री परिषद् को सामूहिक रूप से संसद के प्रति जवाबदेह माना जाता है और वह तब तक सत्ता में रह सकती है जब तक उसके पास हाउस ऑव कॉमन्स में बहुमत हो।

ब्रिटेन के मिश्रित संविधान की तरह के अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों तक विश्व में बहुत कम संविधान थे। फिर भी, अधिकार विभाजन की इसकी प्रसिद्ध परंपरा तथा इसकी नियंत्रण एवं संतुलन की विशेषताओं की भी अपनी गंभीर सीमाएं और समस्याएं थीं। हाउस ऑव कॉमन्स के अधिकारों पर सम्राट तथा हाउस ऑव लॉर्ड्स का स्पष्ट नियंत्रण था। इसके अतिरिक्त, हाउस ऑव कॉमन्स के अंदर होने वाली कार्यवाहियों पर निश्चित कार्यक्रमों तथा विचारधाराओं वाले सुसंगठित राजनीतिक दलों का नहीं बल्कि गुटों तथा प्रभाव का दबदबा रहता था। इस प्रकार, 1688 की गौरवशाली क्रांति के बाद से ब्रिटिश संसद में 'विग' तथा 'टोरी' नाम के जो दो प्रमुख राजनीतिक दल थे वे धार्मिक तथा राजनीतिक असहमति के सवालों पर व्यापक तौर पर उन्हीं कुलीन वर्गीय हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। टोरी दल के लोग राजनीतिक दृष्टि से अनुदारवादी थे और वे सत्ताधारी एंग्लिकन कुलीनों के प्रति समर्पित थे, जबकि विग के लोग इंगलैंड तथा स्कॉटलैंड में भी संगठित धार्मिक असहमति के समर्थक थे और अधिक राजनीतिक स्वतंत्रता तथा समानता की मध्यम वर्गीय मांग के प्रति अधिक उदार थे। वैसे, कुल मिलाकर संसद में दलों का अनुशासन तथा संगठन अभी भी कमजोर था। इस स्थिति ने संसद में संरक्षण के माध्यम से सम्राट के अनुचित प्रभाव का मार्ग प्रशस्त किया।

तीसरी बात यह कि हाउस ऑव कॉमन्स के सदस्यों का मतदाताओं में आधार अत्यंत ही सीमित था और हाउस ऑव लॉर्ड्स की तरह निचले सदन में भी जमींदार वर्ग के हितों का ही वर्चस्व था। इस प्रकार, अठारहवीं शताब्दी के अंत में इंगलैंड की मात्र 2% जनता के पास ही वोट देने का अधिकार था। देहाती इलाकों में तो केवल उन्हीं लोगों को मतदान का अधिकार था जिनके पास कम से कम 40 शिलिंग की फ्रीहोल्ड संपत्ति थी, जबकि शहरी क्षेत्रों में चुनाव क्षेत्रों के बीच भारी असमानताएं थीं। वेस्टमिनिस्टर जैसे कुछ बड़े केंद्रों में कई हजार मतदाता थे जबकि ओल्ड सैरम जैसे परित्यक्त कसबों में मतदाताओं की संख्या केवल सात थी। चुनावों के समय दबदबे और पैसे का जो गलत इस्तेमाल होता था उसने सीमित मतदान की इस स्थिति को ओर भी दूषित कर दिया था।

वैसे तो उस समय के अनेक लोगों ने राजनीतिक प्रक्रिया में व्याप्त इस 'भ्रष्टाचार' पर गौर करते हुए उसकी आलोचना भी की थी, फिर भी यह तथ्य भी अपने आपमें कम दिलचस्प नहीं है कि संसद के संकीर्ण सामाजिक आधार का अठारहवीं शताब्दी के अधिकांश सिद्धांतविदों ने समर्थन ही किया था। उस समय की संसदीय प्रणाली के जो प्रमुख सांसद थे, वास्तव में उनका भी यह मानना था कि देश में केवल जमींदारों का ही दावा था इसलिए संसद में उनके अधिकार का प्रतिनिधित्व आवश्यक था। यहां तक कि एडमंड बर्क जैसे सुधारक भी गरीबों के प्रति तिरस्कार का भाव रखते थे और वे किसी भी जन-आंदोलन को सुधार की दिशा में सहायक न मान कर उससे भय ही खाते थे।

उस समय के स्थानीय शासन की प्रकृति की चर्चा के बगैर ब्रिटिश राज्य का कोई भी विवरण अधूरा ही रह जाएगा। यह वह समय था जब दैनिक अखबार केंद्र सरकार के निर्णयों की खबर घर-घर तक नहीं पहुंचाते थे, इसलिए उन दिनों अधिकांश नागरिक वास्तविक शासन के नाम पर गिरजाघर अथवा ग्राम परिषद, नगरपालिका तथा निचली अदालतों के शासन से ही परिचित थे। औसत ब्रिटिश नागरिकों के लिए कस्बों में मेयर तथा उपनगरपाल (ऑल्डर्मन) और जिलों में कानून व्यवस्था के जिम्मेदार लॉर्ड्स लेटिनेंट तथा मजिस्ट्रेट (या जस्टिस ऑव पीस) ही राज्य का प्रतीक होते थे। वास्तव में जस्टिस ऑव पीस स्थानीय स्तर पर अनेक कार्य करता था, जिनमें राजस्व अधिकारी तथा गरीबों के लिए कल्याण अथवा राहत के आयोजक का काम शामिल था। यह अपने आपमें उल्लेखनीय है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों तक ब्रिटेन में कोई नियमित पुलिस इन अवैतनिक स्थानीय अधिकारियों की सहायता के लिए नहीं थी। बस रक्षक सेना की एक छोटी सी टुकड़ी होती थी जिसे अशांति के समय मदद के लिए बुलाया जा सकता था। इस समय महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला एक और प्रमुख अधिकारी होता था - सुधार आयुक्त। इनकी नियुक्ति आमतौर पर संसद के अधिनियमों के माध्यम से होती थी और उनका काम होता था जिलों में सड़कों, पुलों, नहरों आदि का निर्माण करवाना।

यह बात तो स्पष्ट हो ही चुकी है कि ब्रिटेन में केंद्र तथा स्थानीय दोनों स्तरों पर कर निर्धारण करने तथा राज्य के व्यय और गरीबों की राहत पर व्यय होने वाले धन को नियंत्रित करने का अनूठा काम वहां की प्रतिनिधि संस्थाएं करती थी। अब यह बात भी याद रखने योग्य है कि सभी स्तरों पर जमींदार कुलीनों का दबदबा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक अटूट था। ब्रिटिश कुलीन तंत्र की वास्तव में कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं थीं। जिनकी यहां संक्षेप में चर्चा की जा सकती है।

शीर्ष पर, कोई 350 परिवारों का एक शक्तिशाली गुट था जिनके पास बड़ी बड़ी जागीरें थीं। आमतौर पर इन लोगों के पास 'अमीर' (नोबल) की पदवी थी। हाउस ऑव लॉर्ड्स में सदस्यता का होना तो उनका विशेषाधिकार था ही, राज्य के अन्य महत्वपूर्ण पदों पर भी उनका कब्जा था। अमीरों के इस विशिष्ट गुट के नीचे कोई 4000 परिवार और थे जो 'भद्रजन' (जेन्ट्री) की श्रेणी में आते थे। इन भद्रजनों के पास भी काफी जमीन जायदाद होती थी। इनमें से कुछ के पास तो 'सामंतों' (लॉर्ड्स) के बराबर ही धन संपदा थी, किंतु उनकी पदवी 'सरदार' (नाइट) या 'नवाब' (बैरन) की होती थी और उनकी महत्वाकांक्षा अवैतनिक जस्टिस ऑव पीस बनना या हाउस ऑव कॉमन्स की सदस्यता प्राप्त करना थी।

ब्रिटिश कुलीन तंत्र की एक और विचित्र विशेषता इसका अत्यंत सुसंगठित और छोटा आकार था। जहां अधिकांश यूरोपीय राष्ट्रों में शासक वर्ग में अमीर परिवारों के समस्त वंशजों को शामिल किया जाता था। वहीं ब्रिटेन में पदवी धारकों की संख्या अत्यंत सीमित होती थी। इसका कारण था 'ज्येष्ठाधिकार' की प्रथा अर्थात् पिता की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति पर सबसे बड़े पुत्र का अधिकार होना और पदवीधारकों के छोटे बच्चों का लगातार सेनाओं, कूटनीतिक दलों, धर्म संस्था (चर्च) तथा वित्त के क्षेत्र में उच्च पदों पर भरती होते रहना। इसके अतिरिक्त, सफल व्यापारी अथवा पेशेवर लोग भी पर्याप्त जागीर खरीदकर पदवियां हासिल करने के स्वपन देख सकते थे। अंत में, यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ब्रिटिश कुलीन तंत्र के भीतर, विशेषकर अठारहवीं शताब्दी के दौरान झगड़ों तथा अंतर्वर्गीय हिंसा के रूकने के साथ साथ सज्जनता के आदर्श का भी विकास हुआ और रियासतों के सुधार की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया गया तथा मारधाड़ की जगह सीखने सिखाने के चलन को महत्व दिया गया।

2.4 स्वतंत्रता की धारणा

यहां हमें ब्रिटिश राज्यतंत्र की एक और विशेषता की ओर ध्यान होगा और वह है अपनी प्रजा के लिए 'स्वतंत्रता' को बढ़ावा देने का उसका दावा। अनेक ब्रिटिश टिप्पणीकारों के अतिरिक्त, कई विदेशी पर्यवेक्षकों (मांतेस्क्यू एवं वाल्तेयर जैसे चिंतकों समेत) ने भी अठारहवीं शताब्दी के दौरान इस बात पर जोर दिया कि ब्रिटिश राज्यतंत्र केवल अपनी शक्तिशाली संसद के कारण ही विशिष्ट नहीं था अपितु उसके सामान्य नागरिकों को प्राप्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार तथा जानमाल की सुरक्षा की गारंटी के कारण भी विशिष्ट था। कुछ आधुनिक चिंतकों ने भी यह टिप्पणी की है कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ होते होते ब्रिटेन श्रमिक वर्ग से अतिरिक्त आय की वसूली के लिए प्रत्यक्ष बल प्रयोग की जगह कानून के शासन का अधिकाधिक इस्तेमाल कर रहा था।

यह बात निश्चित रूप से सच है कि नए कर लगाने के कार्यपालिका के अधिकार पर संसद के नियंत्रण, निजी संपत्ति की पवित्रता, अंगरेजी सामान्य कानून की स्वाधीन परंपरा, बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeus Corpus) जैसे कानूनी प्रावधानों की शक्ति तथा अपेक्षाकृत स्वतंत्र समाचार माध्यमों (प्रेस) के कारण ब्रिटेन के उच्च तथा मध्य वर्गों को एक ऐसे समय में महत्वपूर्ण अधिकारों की गारंटी मिली हुई थी जब इस प्रकार की स्वतंत्रता और कहीं प्राप्त नहीं थी। इसके साथ ही यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि व्यवहार में इन स्वतंत्रताओं का लाभ केवल धनी लोग ही उठा सकते थे जो कानून की लंबी समय तक खिंचने वाली प्रक्रियाओं की मदद ले सकते थे। वास्तव में ब्रिटेन की अदालतों तथा हॉब्स एवं लॉक से लेकर बेंथम एवं बैजट जैसे राजनीतिक चिंतकों तक ने निजी संपत्ति की पवित्रता को बनाए रखने की जोरदार वकालत की जबकि कानून तो गरीबों के प्रति बेहद कठोर ही रहे।

यह सब जानते हैं कि सभी असमतावादी समाजों में प्रथाएं तथा प्रधान मूल्य तो शासक वर्गों के पक्ष में ही पूर्वाग्रह ग्रस्त होते हैं। जमीन और पूंजी के मालिक जहां बिना कोई प्रयास किए अंधाधुंध मुनाफा और लगान की कमाई करते हैं, वहीं धन के असली जनक-मजदूर लोग अक्सर बहुत कम दिहाड़ी पर मेहनत करने को विवश होते हैं। स्त्रियां अक्सर घर के काम काज में जुटी रहती हैं, जिसके लिए उन्हें कोई पैसा नहीं मिलता। निचले वर्ग के खिलाफ राजनीतिक तथा कानूनी स्तर पर जो भेदभाव होता है उससे इस वर्ग की आर्थिक अभाव वाली स्थिति और भी खराब हो जाती है।

इस मामले में ब्रिटिश समाज भी कोई भिन्न नहीं था। यह सच है कि ब्रिटेन में कानून बनाने वाले तथा उन्हें लागू करने वाले भी लगभग सारे के सारे जमींदार कुलीन वर्ग के व्यक्ति होते थे। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि सरकार भी इस वर्ग के पक्ष में पूर्वाग्रह ग्रस्त थी। स्त्रियों, मजदूरों तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों को राजनीतिक तथा मतदान के अधिकारों से वंचित रखने के अतिरिक्त, अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश राज्य ने मजदूरों के स्वतंत्र आवागमन पर अनेक प्रतिबंध लगा कर रखे और उसकी यह भी चेष्टा रही कि कीमतों तथा मजदूरी

की दर को जमींदार कुलीन वर्ग के पक्ष में रखा जाए। इनमें से कुछ प्रतिबंध बाद में औद्योगिक पूंजीवाद की राह में बाधक सिद्ध होने लगे और इसीलिए उन्हें उन्नीसवीं शताब्दी में धीरे धीरे हटा लिया गया। आगे हम इसी बारे में पढ़ेंगे।

वैसे, पूरी अठारहवीं शताब्दी के दौरान ब्रिटिश राज्य का सबसे अधिक ध्यान इस बात पर केंद्रित रहा कि खेती से जुड़े भद्रजनों को स्वाधीन किसानों तथा मजदूरों की कीमत पर मजबूत किया जाए। इसका एक उदाहरण बाड़ाबंदी (एनक्लोजर) आंदोलन था जिसे संसदीय विधान का पर्याप्त समर्थन प्राप्त था। इस आंदोलन में धनी लोगों ने व्यावसायिक खेती के लिए बड़ी बड़ी भूसंपत्तियां बना डाली, और इसके लिए उन्होंने गरीब किसानों को बेदखल करके ग्रामीणों की साझा भूमि पर कब्जा कर लिया। दूसरी ओर, वही संसद इस सीमा तक चली गई कि उसने साझा भूमि पर शिकार करने तथा जंगलों से 'चोरी' करने जैसे छोटे छोटे अपराधों के लिए मौत की सजा का प्रावधान कर दिया। गरीब जनता के दिमाग में जमींदार वर्ग का आतंक बैठाने के उद्देश्य से यह भी प्रावधान कर दिया गया कि इस प्रकार के अपराधियों को फांसी पर चढ़ा दिया जाए। अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटेन में मृत्यु दंड के योग्य पाए गए दोषियों में चालीस शिलिंग से ऊपर कीमत का सामान चुराने वाले बच्चे और जंगल में खरगोश का शिकार करने की कोशिश करने वाले भूख से तड़पते मजदूर भी हो सकते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटेन के आम आदमी के लिए 'स्वतंत्रता' के दावों का कोई अर्थ नहीं था।

'जॉन विल्क्स का मामला' इस का एक अच्छा उदाहरण है कि ब्रिटेन के सत्ताधारी वर्गों को 'स्वतंत्रता' किस हद तक और किस स्वरूप में स्वीकार्य थी, तथा अठारहवीं शताब्दी के अंत में मध्यम वर्ग में इसके क्षेत्र के विस्तार की आकांक्षा क्या थी। यहां हम जो सारांश प्रस्तुत कर रहे हैं, उसे पढ़ते हुए आप अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटेन की राजनीतिक संस्कृति तथा मुगल/ मांचू दरबारों की उन संस्कृतियों के बीच कुछ महत्वपूर्ण अंतरों की सूची बनाइए जिनके बारे में आप पहले पढ़ चुके हैं।

विल्क्स एक देहाती डिस्टलर (अर्क निकालने वाला) का बेटा था, जिसने शादी करके एक देहाती भद्र पुरूष की हैसियत बना ली थी। वह 1757 में संसद में पहुंचा और धीरे धीरे जॉर्ज तृतीय के एक कट्टर आलोचक के रूप में सामने आया उसके प्रकाशन **नॉर्थ ब्रिटेन** ने भी राजा के चहेते मंत्रियों पर हमलों के लिए एक प्रमुख मंच का काम किया। 1763 में जब ब्रिटेन ने पेरिस समझौते पर हस्ताक्षर किए तो विल्क्स ने इस समझौते के कुछ अलोकप्रिय प्रावधानों के लिए राजा की ही आलोचना कर डाली।

इस स्थिति पर गृह मंत्री, हैलीफैक्स ने एक आम वारंट जारी किया कि 'नॉर्थ ब्रिटेन के प्रकाशन से संबंधित सभी व्यक्तियों' को गिरफ्तार कर लिया जाए। किंतु विल्क्स विशेषाधिकार का दावा लेकर अदालत की शरण में गया और उसने गिरतारी के आम वारंट की वैधता को भी चुनौती दी। इन दोनों ही मुद्दों पर वह अदालती लड़ाई जीत गया और उसने मंत्री के विरूद्ध हरजाने का दावा ठोक दिया। उसके बाद विल्क्स के शत्रु उसे मान हानि के आरोप में संसद से निकलवाने में सफल हो गए। तब विल्क्स ने फ्रांस में शरण ली। लेकिन उससे पहले वह लंदन में नायक की हैसियत बना चुका था और उसने जनता की दृष्टि में सरकार को उपहास का पात्र बना दिया था।

वर्ष 1768 में विल्क्स फ्रांस से लौट आया और मिडिलसेक्स से संसद के चुनावों में खड़ा हो गया। उसने अत्याधिक रोमांच तथा पूरे लंदन में 'विल्क्स और आजादी' के नारों के बीच यह सीट जीत भी ली। सांसदों को यह बात रास नहीं आई कि एक घोषित अपराधी उनके बीच बैठेगा और उन्होंने दो बार विल्क्स को संसद से निकलवा दिया। लेकिन दोनों ही बार मिडिलसेक्स के मतदाताओं ने उसे वापस संसद में भेज दिया। इस स्थिति पर आकर, उग्र सुधारवादी होर्न टुक ने 'सोसायटी फॉर दि डिफेंस ऑव बिल ऑव राइट्स' की स्थापना की और लॉर्ड चैटैम जैसे नेताओं ने भी यह स्वीकार किया कि एक गंभीर संवैधानिक मुद्दा दांव पर था और अंत में विल्क्स को संसद में वापस लेना पड़ा।

'विल्क्स प्रकरण' का तीसरा प्रसंग 1771 में शुरू हुआ जब संसद की कार्यवाही छापने वाले मिडिलसेक्स के एक अखबार के मालिक को अधिकारियों ने गिरफ्तार करना चाहा। किंतु विल्क्स उस समय मजिस्ट्रेट था। उसने संसद के भेजे हुए एक संदेशवाहक को ही गिरफ्तार कर लिया और उसके सम्मन की तामील करने से इंकार कर दिया। अंत में, हाउस ऑव कॉमन्स को मजबूर होकर अपनी बहसों को छापने के अखबारों के अधिकार को स्वीकार करना पड़ा।

बोध प्रश्न 1

1) क्या आप सोचते हैं कि ब्रिटेन में होने वाला राजनीतिक बदलाव दूसरे यूरोपीय देशों से भिन्न था? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) ब्रिटिश संसद के गठन तथा प्रकृति की 100 शब्दों में व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

3) ब्रिटिश राज्यतंत्र में कुलीन तंत्र की क्या भूमिका थी? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

4) 'ब्रिटिश कानून गरीबों की पहुंच से बाहर था।' 50 शब्दों में व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

2.5 सुधार की मांग

पूरी अठारहवीं शताब्दी के दौरान, ब्रिटेन में जनसंख्या, कृषि उत्पादन तथा व्यापार और वाणिज्य में जबरदस्त विस्तार हुआ। इस लगातार आर्थिक विकास ने शताब्दी के अंत तक देश में नई सामाजिक तथा राजनीतिक ताकतों को उन्मुक्त कर दिया। इंग्लैंड, स्कॉटलैंड और वेल्स तेजी से शहरीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहे थे और वहां एक नई सामाजिक व्यवस्था का उदय हो रहा था जिसमें पुराने पुरोहित वर्ग, जमींदारों तथा खेतिहार कामगारों के स्थान पर मध्यम तथा श्रमिक वर्ग का दबदबा था। इसके अतिरिक्त, नए सामाजिक गुटों के बीच जो संबंध थे वे गुणों की दृष्टि से पुराने सामाजिक गुटों के संबंधों से भिन्न थे। अपेक्षाकृत अधिक प्रतिस्पर्धा तथा विरोध ने इन वर्गों के बीच संबंधों को जान दी थी। क्योंकि ऊंच-नीच के आधार पर भिन्नताओं को स्वीकार करने अथवा सम्मान देने की स्थिति अब समाप्त हो रही थी।

राजनीतिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण बदलाव जो देखने में आ रहा था वह था जानकार जनमत का विकास, अखबारों की बढ़ती संख्या और ऐसी अनेक समितियों तथा दबाव गुटों का उदय जो चुनाव सुधार, वित्तीय

अनुशासन, दासता उन्मूलन तथा स्वतंत्र व्यापार जैसे जनहित के विभिन्न कार्यों के प्रति समर्पित थे। 1760 से 1820 तक ब्रिटेन पर शासन करने वाले जॉर्ज तृतीय की हेकड़ी, उसके शासनकाल में फॉक्स तथा विल्क्स जैसे नेताओं की अगुवाई में उदारवादी अधिकारों के लिए लड़ाई और 1776 के बाद अमेरिका में ब्रिटिश उपनिवेशों की आजादी से उठे मुद्‌दों ने असंतोष की इस आग में घी का काम किया। कोई आश्चर्य नहीं कि अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में संसद की कार्य प्रणाली में सम्राट के अनुचित हस्तक्षेप के विरूद्ध तथा सरकार के हाथों व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हनन के विरूद्ध भी बड़े विरोध प्रदर्शन हुए।

ब्रिटेन में उन क्रांतिकारी दशकों से ही उदारवादी सोच की परंपरा चली आ रही थी जब जॉन लॉक जैसे दार्शनिकों ने एक ऐसे राज्य के सिद्धांत का समर्थन किया था जो लोगों के जान माल की रक्षा हेतु प्रतिबद्ध था। प्रेस की स्वतंत्रता तथा 1760 और 1770 के दशकों में मनमानी गिरतारी के विरूद्ध सुरक्षा पर केंद्रित विल्क्स प्रकरण से पैदा हुए नए विवादों ने नागरिक अधिकारों के मुद्‌दों को ब्रिटिश राजनीति में और आगे ला दिया। 1769 में 'सोसायटी फॉर दि डिफेंस ऑफ बिल ऑव राइट्स' तथा 1780 में 'सोसायटी फॉर कांस्टीट्यूशनल इनफार्मेशन' के गठन से इस प्रकार के संघर्षों को संगठित रूप मिल गया।

वैसे, उस समय के अधिकांश मध्यम वर्गीय नेता स्वतंत्रता के बारे में केवल जमींदार वर्गों के दृष्टिकोण से सोचते थे। मैरी कॉलस्टोनक्राट जैसी कुछ अग्रणी नारी मुक्तिवादियों तथा रॉबर्ट ओवन जैसे प्रारंभिक समाजवादियों ने निजी संपत्ति की पवित्रता तथा पितृसत्ता के अधीन स्त्रियों के दमन जैसे मुद्‌दों पर सवालिया निशान लगाने की कोशिश की। किंतु, अधिक सामान्य स्थिति तो यही थी कि मजदूरों, धार्मिक अल्पसंख्यकों तथा स्त्रियों के हितों की अनदेखी उस उदारवादी विचारधारा में भी होती रही जिसका उस दौर में ब्रिटेन में बोलबाला था।

इन वर्षों के दौरान उदारवादियों की सर्वाधिक चिंता का विषय ऊंचे कर तथा सरकारी खर्च में होने वाली बरबादी रही। संसद और समाचार पत्र वे महत्वपूर्ण मंच थे जिनके माध्यम से इन बुराइयों के विरूद्ध 'आर्थिक सुधारों' की मांग उठाई गई। 1779 में, भद्रजनों के प्रभावशाली तबकों ने वाइविल के नेतृत्व में इस प्रकार की मांगों को आगे समर्थन दिया। इसके परिणामस्वरूप, एडमंड बर्क जैसे अनुदारवादी नेताओं तथा पिट (कनिष्ठ) जैसे उदारवादियों ने ऐसे अनेक सुधारों की शुरुआत की जिनके परिणामस्वरूप सम्राट के संरक्षकत्व की परंपरा का अंत हुआ तथा ब्रिटेन में आधुनिक बजट पद्धति का शुभारंभ हुआ।

सरकारी खर्च में मितव्ययता के अतिरिक्त, उभरते हुए मध्यम वर्गों की दिलचस्पी व्यापक स्तर पर बाजार सुधारों में भी थी। यह मांग विशेषकर लंदन के बैंक वालों तथा व्यापारियों और बरमिंघम तथा मैनचेस्टर जैसे उभरते औद्योगिक केंद्रों के उद्योगपतियों ने उठाई। ये लोग मुक्त बाजार सिद्धांतों के घोर समर्थक हो गए और उन्होंने व्यापार तथा निर्माण के क्षेत्रों में राज्य समर्थित एकाधिकारों तथा ऊंचे सीमा शुल्क को समाप्त करने के लिए अभियान चलाया। बाजार में राज्य के कम से कम हस्तक्षेप तथा आर्थिक उद्यम की स्वतंत्रता को सिद्धांत रूप में उचित ठहराने वाली ऐडम स्मिथ की पुस्तक 'दि वेल्थ ऑफ नेशन्स' इन लोगों के विचारों का समर्थन करने वाला एक प्रभावकारी ग्रंथ बन गया।

पूंजीवादी निर्माताओं तथा व्यापारियों तथा शिक्षित पेशेवरों को अपने में समेटे उभरते हुए बुर्जुआ वर्ग ने यह मांग उठाई कि बाजार में राज्य का कम से कम हस्तक्षेप हो। इसके साथ ही उन्होंने ये नई मांगें रखीं कि राज्य में कमजोर ही सही किंतु सक्षम तंत्र हो जो तर्कसंगत सिद्धांतों पर काम करें और देश में निजी उद्यमों के सुचारू ढंग से कार्य करने को सुनिश्चित करें। उस समय के एक और प्रभावशाली चिंतक जेरेमी बेंथम के 'उपयोगितावाद' के सिद्धांत ने इस प्रकार की मांगों के औचित्य के लिए एक दार्शनिक धरातल प्रस्तुत किया। इस सिद्धांत की यह मांग थी कि समाज के तमाम कानूनों तथा संस्थाओं की परख उनकी अधिकतम उपयोगिता के आधार पर की जाए, उनकी पारंपरिक पवित्रता अथवा सैद्धांतिक अधिकारिकता के आधार पर नहीं।

इस दौर में जनता की चिंताओं के अन्य विषय थे : जन स्वास्थ्य एवं शिक्षा, अपराध एवं नैतिकता, कैदियों के साथ व्यवहार, इधर-उधर फैली औद्योगिक मलिन बस्तियों में रहने वाले गरीब लोगों की स्थिति तथा असहमति रखने वाले धार्मिक गुटों के अधिकार जैसे मुद्‌दे। उदारवादियों के अतिरिक्त उपयोगितावादियों तथा यूटोपियाई समाजवादियों, इवेंजेलिकल तथा मैथोडिस्ट जैसे पंथों के धार्मिक आंदोलनों ने भी समकालीन ब्रिटिश राजनीति में इन मुद्‌दों को उठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस बीच, चुनावी तथा संसदीय सुधारों की मांग मजदूर तथा कारीगर वर्गों और मध्यम वर्ग के तबकों के बीच जोर पकड़ रही थी। टॉम पेन तथा मेजर कार्टराइट जैसे उग्र सुधारवादियों (रैडिकल्स) के लेखन ने इस सिलसिले में एक शक्तिशाली उत्प्रेरक का काम किया। 1789 में फ्रांसीसी क्रांति की शुरुआत ने भी ब्रिटेन में उग्र सुधारवादी आंदोलन पर सकारात्मक प्रभाव डाला, क्योंकि इस ने उन लोकतांत्रिक सुधारों में लोगों की दिलचस्पी को फिर जगा दिया जो लंदन में 1780 में कैथोलिकों के विरूद्ध गॉर्डन के बदनाम दंगों के बाद हाशिए पर चले गए थे। यह वह समय था जब 'दि सोसायटी फॉर कांस्टीट्यूशनल इनफॉरमेंशन' को फिर से स्थापित किया गया और प्रांतों में अनेक रिपब्लिकन क्लब खोले गए। इनमें 'लंदन कोरिस्पांडिग सोसायटी' एक सर्वाधिक उग्र सुधारवादी संस्था थी। इस संगठन ने लंदन के टॉमस हार्डी के दिशा निर्देशन में संसदीय सुधार तथा श्रमिक अधिकारों के लिए एक राष्ट्र व्यापी विरोध बनाने का प्रयास किया और फ्रांस के 'रिवोल्यूशनरी कन्वेंशन' के साथ संपर्क भी स्थापित किया।

हालांकि ब्रिटेन के उग्र सुधारवादियों की मांगे तथा आकांक्षाएं इतनी उग्र नहीं थी, फिर भी फ्रांस में होने वाली क्रांतिकारी हिंसा ने ब्रिटिश अधिकारियों को अत्यधिक चौकन्ना कर दिया। 1793 और 1815 के बीच, यूरोप के अन्य साम्राज्यों के साथ गठबंधन में ब्रिटेन का क्रांतिकारी फ्रांस के साथ लगातार युद्ध चलता रहा। इस दौरान ब्रिटिश राज्य ने अपनी सत्ता को पक्का करने के लिए न केवल राष्ट्रवादी भावनाओं का इस्तेमाल किया, अपितु उग्र सुधारवादियों तथा उभरते श्रमिक आंदोलन के विरूद्ध भी अपूर्व दमन चक्र चला दिया। इसमें 1794 में गठबंधन विरोधी कानूनों का लागू करना शामिल था। इसके अतिरिक्त राजद्रोह के अनेक मुकदमें चलाए गए और तमाम उग्र सुधारवादी संगठनों का हिंसक दमन भी किया गया।

फिर भी, ब्रिटेन में उग्र सुधारवादी आंदोलन को दमन से भी नहीं दबाया जा सका। कार्टराइट जैसे पुराने धुरंधरों तथा कॉबेट जैसे नए नेताओं के दिशा निर्देशन में अनेक कस्बों में हैम्पडेन क्लबों का गठन किया गया जिनका उद्देश्य संसदीय सुधारों के लिए दबाव बनाना तथा विशेषकर 1803 के बाद मताधिकार का विस्तार करना था।

इस बीच ब्रिटेन में श्रमिक आंदोलन भी गति पकड़ रहा था। औद्योगिकरण के शुरुआती दौर में सर्वहारा वर्ग के लोगों को बहुत मुसीबतों का सामना करना पड़ा। उन्हें बहुत कम वेतन पर कई कई घंटे बेहद प्रतिकूल स्थितियों में काम करना पड़ता था और अधिकारों तथा सामाजिक सुरक्षा के नाम पर उनके पास कुछ भी नहीं था। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि इन पाशविक स्थितियों के चलते मजदूरों ने कई स्थानों पर विधिवत उन मशीनों को ही तोड़ डाला जो उनके लिए नई व्यवस्था की प्रतीक थीं। इन मशीन भंजकों को उनके मिथकीय नेता नेड लुड के नाम पर लडाइट कहा गया है।

लेकिन ब्रिटेन में श्रमिक आंदोलन वास्तव में एकजुट न होकर अलग अलग शाखाओं के रूप में फैला हुआ था। इसमें आत्म सहायतार्थ ऋण संस्थाओं से लेकर श्रमिक सहकारी समितियां और अधिक उग्र सुधारवादी लोकतंत्रवादी (डेमोक्रैट) तथा समाजवादी तक शामिल थे। लोकतंत्रवादियों की आस्था तो सार्वजनिक मताधिकार (यूनिवर्सल फ्रैंचाइज) तथा संसदीय सुधारों में थी और वे श्रमिल संगठन (यूनियन) बनाने तथा बेहतर स्थितियों के लिए हड़ताल करने के मजदूरों के अधिकार के पक्षधर थे। रॉबर्ट ओवन (1771-1858) जैसे समाजवादियों ने यह भी तर्क रखा कि सारी संपदा की उपज श्रम से ही होती है इसलिए श्रमिक वर्गों को अपने काम के पूरे पूरे फल की मांग करनी चाहिए। लेकिन, पूंजीवादी व्यवस्था में संपदा का सबसे बड़ा हिस्सा तो पूंजी के मुट्ठी भर मालिक ही हड़प जाते हैं।

इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को किस प्रकार बदला जाए? हर कहीं समाजवादियों के सामने यही प्रमुख मुद्दा था। ओवन ने स्वयं राज्य से सीधा टकराव मोल न लेकर श्रमिकों की सहकारी समितियों तथा आत्म सहायता पर ही जोर दिया। इन विचारों को साकार करने के लिए उसने पहले ग्लासगों में न्यू लैनार्क स्पिनिंग मिल तथा बाद में इंडियाना (अमेरिका) में न्यू हार्मनी सोसायटी की स्थापना उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में की। आगे हम ब्रिटेन के श्रम आंदोलन के बारे में और भी जानकारी हासिल करेंगे।

2.6 राज्य द्वारा उठाए गए कदम

इस बीच ब्रिटिश राज्य ने इन विभिन्न मांगों का अलग अलग ढंग से ज़वाब दिया। उभरते मध्यम वर्गों की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कुछ आर्थिक तथा प्रशासनिक सुधारों को स्वीकार कर लिया गया। वास्तव में ब्रिटिश अल्पतंत्र (ऑलिगाकी) के इस प्रकार के 'सुधारवादी अनुदारवाद' ने उसे उस समय के अधिकांश यूरोपीय शासनों से स्पष्ट रूप से अलग छवि प्रदान की और इससे वहां के कुलीन तंत्र तथा बुर्जुआ वर्ग के बीच प्रारंभिक गठबंधन बनाने में मदद मिली। किंतु मजदूरों की मांगों को संदेह की दृष्टि से ही देखा गया और उन्हें औद्योगीकरण के प्रारंभिक वर्षों में ही साफ तौर पर दबा दिया गया।

इस प्रकार, 1815 में वाटरलू में नेपोलियन की हार का जश्न पूरे ब्रिटेन में मनाया गया। किंतु सुधारों की प्रतीक्षा कर रहे मैनचेस्टर तथा बरमिंघम के लिए युद्ध की समाप्ति वास्तव में और अधिक बेरोजगारी तथा आर्थिक परेशानियां ही लेकर आई। फिर भी, लॉर्ड लिवरपूल की टोरी सरकार (1812-27) ने अपनी दमनकारी नीतियों को जारी रखा। 1816 में मैनचेस्टर के बुनकरों ने लंदन की ओर जो विरोध जुलूस 'मार्च ऑफ दि ब्लैकंटियर्स' निकाला था, उसे वापस खदेड़ दिया गया। भूमि के फिर से बंटवारे की मांग करने वाले स्पेंस के विद्रोह को भी राजद्रोह मानते हुए ही कुचल दिया गया।

किंतु राज्य की ओर से सबसे पाशविक कार्रवाई 1819 में मैनचेस्टर के पीटरलू पार्क में देखने को मिली जहां 60,000 लोगों की भीड़ लोकतांत्रिक सुधारों पर हेनरी हंट का भाषण सुनने को एकत्र हुई थी। भीड़ पर अंधाधुंध गोलिया चलाई गईं। इस घटना में ग्यारह लोग मारे गए और चार सौ से भी अधिक घायल हो गए। पीटरलू को पुरानी पीढ़ी के नेतृत्व के देसी वाटरलू के रूप में याद रखा गया। पीटरलू की घटना से घबराकर पुरानी पीढ़ी के नेतृत्व ने बदनाम 'छः कानूनों' को पारित कर दिया और इस प्रकार समाचार पत्रों तथा राज़नीतिक सभाओं आदि पर नए प्रतिबिंध लगा दिए।

किंतु 1820 के बाद, लिवरपूल सरकार के दृष्टिकोण में विशेषकर आर्थिक तथा प्रशासनिक सुधारों के प्रति मध्यम वर्ग की मांगों के प्रति कुछ झुकाव दिखाई दिया। कैनिंग, हसकिसन तथा रॉबर्ट पील जैसे नए मंत्रियों के एक गुट ने अब सरकारी वित्त, सीमा शुल्क, पुलिस तथा अदालत आदि के क्षेत्र में कई सुधार लागू करने शुरू कर दिए। लॉर्ड ग्रे तथा लॉर्ड रसेल की विग सरकारों ने 1830 के दशक के दौरान कुछ और संवैधानिक तथा प्रशासनिक सुधार किए। इन सुधारों ने ब्रिटेन को एक आधुनिक अर्थ व्यवस्था तथा प्रशासन की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस प्रकार के सुधारों को लागू करने की तत्परता ने देश के जमींदार तथा पूंजीवादी वर्गों के बीच संबंध बनाने की दिशा में अच्छा कार्य किया।

फिर भी यह काल पूरी तरह से टकरावों से मुक्त नहीं रहा। 1831-32 के संसदीय सुधार को लेकर होने वाला संघर्ष तथा 1839 और 1848 के बीच उभरने वाला चार्टिस्ट आंदोलन ऐसी दो उल्लेखनीय घटनाएं हैं जो ब्रिटेन में विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच चलने वाले तनावों की गंभीरता को व्यक्त करती हैं।

2.7 सुधार अधिनियम, 1832

ब्रिटेन में 1832 के संसदीय सुधार अधिनियम का पारित होना वास्तव में आधुनिक राजनीति की ओर ब्रिटेन के संक्रमण की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी, क्योंकि इसके चलते ब्रिटिश राज्यतंत्र में उभरते मध्यम वर्गों के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान तथा उसकी स्थिरता में इनका दावा सुनिश्चित हो गया।

अठारहवीं शताब्दी के अंत में औद्योगीकरण होने के समय से ही ब्रिटेन में संसदीय व्यवस्था में सुधार की मांग जोर पकड़ती जा रही थी। नए औद्योगिक केंद्रों का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए, विशेषकर 1780 दशक से अनेक विधेयक संसद में लाए जा चुके थे। किंतु इनमें से किसी को भी पर्याप्त समर्थन नहीं मिला। जहां बर्डेट तथा ब्रूम एवं रसेल जैसे विग नेताओं के नेतृत्व में उग्र सुधारवादी सुधार के प्रति समर्पित थे, वहीं सत्ताधारी टोरी अभी भी किसी किस्म के संवैधानिक प्रवर्तन के विरूद्ध थे। इसके अतिरिक्त दोनों प्रमुख संसदीय गुट इस दृष्टिकोण पर एकमत थे कि लोकतंत्र अथवा मताधिकार का विस्तार देश के लिए खतरनाक था।

वर्ष 1830 में उदारवादी सम्राट विलियम चतुर्थ के गद्दी संभालने के साथ ही विग लोगों की एक लंबे अंतराल के बाद सत्ता में वापसी हुई। इस बार उनके नेता हुए लॉर्ड ग्रे। इससे सीमित संसदीय सुधार की संभावनाएं अच्छी हो गई। उसी वर्ष यूरोप के अनेक देशों में क्रांति हो गई और इससे ब्रिटेन में सुधारों के प्रयास को और बल मिल गया। इस प्रकार के दबावों में, हाउस ऑफ कॉमन्स ने एक के बाद एक दो सुधार विधेयक पारित कर दिए। किंतु इन दोनों ही विधेयकों को हाउस ऑफ लॉर्डस ने निरस्त कर दिया। इस बीच, ब्रिटेन के अनेक शहरों में सुधार समर्थक संगठन बन गए और बरमिंघम में टॉमस ऐटवुड तथा लंदन में फ्रांसिस प्लेस जैसे नेताओं ने दुकानदारों, कारीगरों तथा मज़दूरों को संसदीय सुधार के पक्ष में लामबंद करने का प्रयास किया। संसद में चल रहे गतिरोध को समाप्त करने के लिए 1831 में कराए गए चुनावों में सुधार समर्थक विग एक बार फिर बहुमत से जीत कर आ गए। अंत में, हाउस ऑफ लॉर्डस को भी राजा की इस चेतावनी के आगे झुकना पड़ा कि वह नए सुधारवादी लॉर्ड खड़े कर देंगे और इस प्रकार 1832 में पहला सुधार अधिनियम लागू हो गया।

बहरहाल, इस अधिनियम का लक्ष्य ब्रिटेन के मौजूदा संविधान को बरकरार रखना था, इसे बदलना नहीं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हाउस ऑफ कॉमन्स के चुनाव में कुछ सुधार लागू करने का प्रयास किया गया। इस अधिनियम में जहां एक ओर निचले सदन की 143 सीटों को औद्योगिक ब्रिटेन की आबादी के नए किस्म के फैलाव के अनुसार फिर से बांटने का प्रावधान था, वहीं इस अधिनियम के अंतर्गत उन 'जीर्ण शीर्ण' पुरों (बरो) अर्थात ऐसे संसदीय चुनाव क्षेत्रों को समाप्त कर दिया गया जहां सदस्यों की संख्या नगण्य थी और जनपदों तथा पुरों दोनों में ही मताधिकार के क्षेत्र को थोड़ा बहुत बढ़ा दिया गया। जनपदों में ऐसे तमाम पुरूषों को मतदान का अधिकार मिल गया जो 10 पौंड के पट्टेदार (कॉपीहोल्डर), तथा 50 पौंड के 'ऐच्छिक काश्तकार' और 40 शिलिंग के माफीदार (फ्रीहोल्डर) थे। दूसरी ओर पुरों में ऐसे तमाम मकानदारों को मतदान का अधिकार दिया गया जिनके पास 10 पौंड प्रति वर्ष अथवा उससे अधिक के आवास थे। इस नए मतदाता वर्ग की गिनती फिर भी छः लाख पुरूष से कम ही रही जो उस समय की ब्रिटेन की कुल आबादी का मात्र 3% थी।

इस प्रकार, इस अधिनियम ने यह सुनिश्चित कर दिया कि संपति का प्रभुत्व ब्रिटेन में जारी रहेगा। किंतु, स्थापित कुलीन तंत्र के साथ साथ इस अधिनियम में उभरते मध्यम वर्गों को भी देश की संसदीय सरकार में प्रतिनिधित्व दिया गया। इससे बुर्जुआ तथा जमींदार कुलीन वर्ग के बीच समझौते की स्थिति बनाने में बहुत मदद मिली और इस प्रकार ब्रिटेन में एक आधुनिक उदारवादी राज्यंतंत्र की ओर शांतिपूर्ण संक्रमण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

राज्य के वर्ग चरित्र को फिर से परिभाषित करने के अतिरिक्त, इस अधिनियम के कुछ अन्य दीर्घकालीन निहितार्थ भी थे, जिन पर गौर करना यहां महत्वपूर्ण होगा। पहली बात, इस अधिनियम को जिस ढंग से पारित किया गया उससे ऊपरी सदन के संबंध में हाऊस ऑफ कॉमन्स का महत्व और बढ़ गया और इससे विधायकों के ऊपर संसद से बाहर के दबावों की एक महत्वपूर्ण मिसाल भी कायम हुई। दूसरी बात, संसद के भीतर सुधारवादी कार्यक्रम 1832 के बाद बेहद मजबूत हो गया, क्योंकि प्रतिनिधित्व पा लेने वाले नए औद्योगिक केंद्रों से और भी अधिक सुधारवादी संसद में चुन कर आ गए और विग तथा टोरी दलों को भी मध्यम वर्ग में अपने समर्थन का विस्तार करने के लिए नए कार्यक्रम बनाने को विवश होना पड़ा।

आधुनिक राजनीतिक दलों के उभरने से चुनावी प्रतिस्पर्धा की स्थिति बनी और जनमत की लामबंदी ने भी अब राजनीति पर खासा प्रभाव डाला। 1832 तक विग तथा टोरी दल राजा की सरकार में असर बनाने के लिए गुटबंदी करने वाले गुटों के रूप में कार्य करते आए थे, किंतु संसद के भीतर या बाहर उनमें न कोई संगठन था, न कोई अनुशासन। सुधार अधिनियम के बाद, वे इस बात के लिए बाध्य हो गए कि वे अपने कार्यक्रमों को घोषित करें तथा देश के प्रत्येक स्थान तक अपने सांगठनिक तंत्र को फैलाएं और इन घोषित कार्यक्रमों तथा विस्तारित सांगठनिक तंत्र के आधार पर संसद में सत्ता प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्धा करें और अपने आपको आधुनिक राजनीतिक दलों के रूप में परिवर्तित करें। अब राजनीतिक दलों का अनुशासन संसद के भीतर ह्विप (Whip) के माध्यम से और चुनाव क्षेत्रों में केंद्रीय क्लबों तथा समितियों के निर्देशन में काम करने वाली प्रांतीय समितियों के माध्यम से संचालित होना था।

इस प्रकार टोरी लोगों ने कार्लटन क्लब की स्थापना की आर 1835 के टेमवर्थ घोषणापत्र के साथ सुधारवादी अनुदारवाद की नीति को अपनाया। उसी वर्ष, विग, उग्र सुधारवादियों तथा आयरिश प्रतिनिधियों के बीच हुए

लिचफील्ड समझौते ने उन्नीसवीं शताब्दी की लिबरल पार्टी (उदारवादी दल) की नींव रख दी। संसद के नए सदस्यों को अपने चुनाव क्षेत्रों तथा राजनीतिक दलों दोनों के ही दबावों का भी सामना करना पड़ा। 1841 तक अखबारों के लिए चुनाव परिणामों को लिबरल तथा कंजर्वेटिव दलों के फायदे के रूप में वर्गीकृत करके देखना आम बात हो गई थी। यह राजनीति में उस क्रांति की बाहरी अभिव्यक्ति थी जिसका निर्माण लगभग दो शताब्दियों से हो रहा था।

ब्रिटेन में संसदीय राजनीति का परिपक्व होना जिन अन्य कारकों पर निर्भर रहा, वे हैं संसद की कार्यवाही के संचालन के संबंध में राजनीतिक परिपाटियों का विकास, एक जिम्मेदार विपक्ष की भूमिका, कैबिनेट की सामूहिक जिम्मेदारी तथा सरकारों की उस स्पष्ट संसदीय बहुमत पर निर्भरता जिसके साथ उदारवादी राज्यतंत्र के सुचारू संचालन को जोड़ा जाता है। एक लिखित संविधान न होने की स्थिति में भी तमाम राजनीतिक पात्र उसका पालन करें तथा उसे मानें, यह ब्रिटेन के राज्यतंत्र की एक अनूठी विशेषता है। हालांकि इस प्रकार की परिपाटियों तथा प्रक्रियाओं को बनने में कई साल लग गए और इतिहास की किसी एक घटना के साथ इन्हें जोड़ कर देखना अभी भी कठिन हैं, फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य के दशकों को इनकी निर्माण प्रक्रिया का एक निर्णायक काल माना जा सकता है, यह वह समय था जब रॉबर्ट पील तथा विलियम ग्लैडस्टोन जैसे नेता सत्ता तथा विपक्ष में भी इनके पालन पर अधिक जोर दे रहे थे।

इस काल में ब्रिटेन में उदारवादी राज्यतंत्र के परिपक्व होने का एक महत्वपूर्ण प्रमाण था उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में संसदीय राजनीति के दायरे में कॉर्न लॉ (अन्न व्यापार कानून) विवाद का समाधान। कॉर्न लॉ को 1815 में ब्रिटेन के जमींदार वर्ग को उनकी प्रधान उपज पर अच्छा मुनाफा दिलाने के उद्देश्य से पारित किया गया था। इसके लिए विदेशों से आने वाले सस्ते अनाज पर बढ़ा-चढ़ा कर सीमा शुल्क लगाया गया। इससे स्पष्ट रूप से उन सभी के हितों को चोट पहुंची जिन्हें बाजार से अनाज खरीदना पड़ता था। इनमें मजदूर तथा मध्यम वर्गों के लोग शामिल थे। उद्योगपतियों ने भी इन कानूनों को एक गंभीर बोझ ही माना क्योंकि इनके चलते उन्हें श्रमिकों को और भी अधिक गुजारा भत्ता देना होता था। बाजार के प्रगतिशील उदारीकरण के युग में, ये कानून सचमुच असंगत लगते थे और इन्हें अधिकांश लोगों ने 'रोटी पर कर लगाने वाले अल्पतंत्र' की ओर से राज्य द्वारा लोभपूर्ण शोषण का प्रतीक माना।

अन्न व्यापार कानूनों के विरोध ने उस शताब्दी के दूसरे चतुर्थांश (पच्चीस वर्ष की अवधि) में जोर पकड़ा। 1839 में, मध्यम वर्गों ने रिचर्ड कॉबडेन के नेतृत्व में अन्न व्यापार कानून विरोधी लीग का गठन किया और इन घृणित कानूनों की समाप्ति के लिए एक राष्ट्रव्यापी अभियान छेड़ दिया। यह अभियान इस बात का अच्छा उदाहरण था कि एक राजनीतिक आंदोलन किस तरह संसदीय विधान के माध्यम से प्राप्त किए जाने वाले एक सुस्पष्ट उद्देश्य के लिए प्रचार के आधुनिक साधनों का इस्तेमाल करता है। हालांकि लीग ने कई क्षेत्रों में मजदूरों का समर्थन जुटाया, फिर भी उसने अपने आपको अन्न व्यापार कानूनों की समाप्ति के एकमात्र उद्देश्य तक सीमित रखा और कुलीन तंत्र की संपदा तथा विशेषाधिकारों को और बड़ी चुनौती देने से अपने आपको अलग रखा। साथ ही यह बात भी दिलचस्प है कि इन कानूनों को समाप्त करने का काम किसी उदारवादी नहीं, अपितु रॉबर्ट पील की जमींदार समर्थक टोरी सरकार ने 1846 में किया। इससे ब्रिटेन में एक बार फिर जमींदार तथा पूंजीवादी कुलीन वर्ग के बीच सामंजस्य की भावना को स्थापित किया, जबकि ये वर्ग अब संसदीय राजनीति के ढांचे के अंदर क्रियाकलाप करने को प्रतिबद्ध थे।

बोध प्रश्न 2

1) सुधार की कुछ प्रमुख मांगों का विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

2) सुधार अधिनियम, 1832 की प्रमुख विशेषताएं क्या थीं? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) कॉर्न लॉ (अन्न व्यापार कानून) क्या था? 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

2.8 आधुनिकीकरण की ओर राज्य

उदारवादी राज्य को अनेक पूंजीवादी देशों ने एक आदर्श रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार के विकास को जिन देशों ने सबसे पहले अपनाया, उनमें ब्रिटेन भी एक था। इस सिलसिले में इसके सबसे आगे रहने का एक कारण था जल्दी औद्योगीकरण कर लेने में इसका सफल रहना। दूसरे, अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश राज्य के पास पहले से ही अपनी कुछ अलग विशेषताएं थीं जिन्होंने वहां एक आधुनिक उदारवादी राज्यतंत्र के उभरने के लिए एक मजबूत नींव का काम किया।

उदाहरण के लिए, ब्रिटेन उन कुछ देशों में था जो आधुनिक काल के प्रारंभ में एक राष्ट्र राज्य के रूप में उभरे। ट्यूडर और फिर हनोवर वंशों के काल में भी ब्रिटेन ने राजनीतिक स्थिरता हासिल की। इन अवधियों में सामंती गुटों के बीच लड़ाईयां बंद हुईं, किसी बाहरी आक्रमण के विरूद्ध मजबूत प्रतिरक्षा व्यवस्था बना ली गई और उसमें अपने 'मिश्रित संविधान' के प्रति अभिमान का भाव बना। 1688 की 'गौरवशाली क्रांति' के बाद इस शताब्दी में ब्रिटिश राज्यतंत्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही व्यापक राजनीतिक हिंसा में अपेक्षाकृत कमी, चाहे वह सत्ताधारी वर्गों के बीच गुटीय लड़ाईयों के रूप में रही हो, चाहे व्यापक स्तर पर होने वाली जन अशांति के रूप में, और चाहे हिंसक सरकारी दमन (या संगठित अपराध) के रूप में। इसके साथ ही 'संसद में राजा' के राजकीय अधिकार में वृद्धि हुई और ब्रिटेन के भीतर चर्च, सामंतों तथा स्वायत्तशासी समुदायों को अधीनता की स्थिति मिली। ब्रिटेन के नागरिकों में (आयरलैंड के बाहर) एक राष्ट्रीय अस्मिता का विकास अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, इस बीच ब्रिटिश राज्यतंत्र सम्राटों के मनमाने अधिकारों पर रोक लगाना भी शुरू कर रहा था और यह स्थिति उसे यूरोप के निरंकुशतावादी राज्यों से अलग करती थी। इसमें अन्य बातों के अतिरिक्त अधिकारों का बंटवारा तथा विधान के ऊपर संसद का नियंत्रण, कॉमन लॉ की परंपरा तथा अत्यधिक स्वाधीन न्यायपालिका और कम से कम जमींदार वर्गों के लिए उदारवादी 'अधिकारों' का वायदा शामिल थे।

इन विशिष्ट विशेषताओं के बावजूद, अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटेन को अभी भी आधुनिक नहीं कहा जा सकता था। उसके पास न तो पेशेवर नौकरशाही थी, न पुलिस और न ही वित्तीय तथा मुद्रा संबंधी व्यवस्थाएं और उसके लिए यह जरूरी था कि वह एक 'स्वतंत्र/ मुक्त बाजार' का और भी विकास करें, चुनावी सुधार लागू करे और कैथोलिक, मजदूरों तथा स्त्रियों जैसे अल्पसंख्यक वर्गों तक नागरिक अधिकारों का विस्तार करे। एक आधुनिक उदारवादी राज्यतंत्र के अधीन संसाधन तथा पूंजी जुटाने का काम न केवल एक पेशेवर प्रशासन के विकास पर, अपितु मजदूर वर्ग के दमनपूर्ण नियंत्रण तथा उभरते मध्यम वर्गों को समायोजित करने हेतु संसदीय सरकार के विकास पर भी निर्भर करता था। इसके लिए कुछ और बातें भी आवश्यक थीं, जैसे, नौकरशाहीकरण तथा लोकतंत्रीकरण के बीच एक सतर्क संतुलन स्थापित करना, नागरिक अधिकारों के विस्तार तथा स्थानीय

शासन के सुधार के साथ केंद्रीकरण, और सामाजिक सेवाओं तथा कल्याण योजनाओं के साथ मुक्त बाजार का विकास और सर्वोपरि या राज्य के वैचारिक अधिपत्य को बनाए रखने के नए तथा अधिक सूक्ष्म तरीके।

2.8.1 संवैधानिक सुधार

प्रतिनिधि संस्थाओं तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था का विकास ब्रिटेन में उभरते आधुनिक राज्य की एक बुनियादी विशेषता थी। इस प्रक्रिया के धीरे धीरे आगे बढ़ने की प्रकृति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ब्रिटेन को संसदीय सरकारों की जननी के रूप में याद किया जाता है और ब्रिटिश संसद की शक्तियों के विकास की शुरुआत सामंती युग में देखी जा सकती है। दूसरी ओर, यह एक दिलचस्प तथ्य है कि ब्रिटेन में आज भी सम्राट ही आधिकारिक शासनाध्यक्ष होता है और अधिकारविहिन ऊपरी सदन में जन्म के आधार पर आने वाले सदस्य (लॉर्ड) होते हैं। इसी प्रकार, यह माना जाता है कि ब्रिटेन में नागरिक अधिकारों का लंबा इतिहास है, किंतु ब्रिटिश राज्य धर्म निरपेक्ष होने का दावा नहीं करता और चर्च ऑफ इंग्लैंड आज भी अधिकारिक धर्म का प्रतीक है। वैसे, राजनीतिक सत्ता के तत्व में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ, हालांकि परंपरा का बाहरी स्वरूप बरकरार रहा।

हमने देखा कि कैसे कैबिनेट व्यवस्था का विकास, सम्राट के संरक्षकत्व की समाप्ति तथा संसदीय कार्यवाहियों का प्रभावित होना, चुनाव सुधार, तथा राजनीतिक दलों का विकास, सभी 1780 और 1850 के बीच एक महत्वपूर्ण संक्रमण की स्थिति से गुजरे। इनमें से अधिकांश मामलों में भी बदलाव के प्रति उसी क्रमिकता के दृष्टिकोण को लेकर चला गया। लोकतांत्रिक सुधारों को किश्तों में संसदीय सुधार अधिनियमों के माध्यम से 1832, 1867, 1870, 1884, 1911 तथा 1918 में लागू किया गया।

2.8.2 प्रशासनिक पुनर्संरचना

संविधानगत सुधारों के साथ प्रशासनिक ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन इस काल के दौरान राज्य के आधुनिकीकरण का एक ओर प्रमुख पहलू था। नए प्रशासनिक दृष्टिकोण का मुख्य स्वर था केंद्र सरकार के अधीन प्रत्येक विभाग से जुड़े निरीक्षकों के कार्यालय और जांच आयोगों के माध्यम से केंद्रीकरण तथा नियंत्रण।

वित्तीय तथा सीमा शुल्क संबंधी सुधारों की मांग भी उभरते माध्यम वर्गों की कार्य सूची में काफी ऊपर थी। उदारवादियों, उग्र सुधारवादियों तथा उपयोगितावादियों और अनुदारवादियों सहित सभी राजनीतिक गुटों ने अलग अलग ढंग से इस प्रक्रिया का समर्थन किया। विलियम पिट की सरकार (1783-1801) ने इस सिलसिले में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए। 1820 के दशक में एक बार फिर लॉर्ड लिबरलपूल की सरकार के मंत्रियों हसकिसन तथा ग्लैडस्टोन ने सीमा शुल्क में कटौती को तेज किया और वित्तीय क्षेत्र में और अधिक अनुशासन लागू किया।

इसी अवधि में दंड कानूनों तथा जेलों में सुधार किए गए, एक स्थायी पुलिस बल का गठन किया गया तथा सशस्त्र बलों में सुधार लागू किए गए। किंतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण बदलाव था एक पेशेवर नौकरशाही का विकास। इस नौकरशाही की कार्यप्रणाली का आधार तर्कसंगत होता था और इसकी नियुक्ति तथा प्रोन्नति का आधार संरक्षकत्व या गुटीय निष्ठा न होकर प्रतियोगी परीक्षाएं तथा योग्यता होती थी। किंतु, उन्नीसवीं शताब्दी के ब्रिटेन में इसके लगातार विस्तार करने को चिंता की दृष्टि से देखा गया।

2.8.3 बाजार सुधार

उभरते आधुनिक राज्य की चिंता का एक और अहम विषय था तेज औद्योगिक विकास के लिए एक 'मुक्त बाजार' का निर्माण। राज्य ने अब समूची अर्थव्यवस्था के विकास को सुगम बनाने का लक्ष्य अपनाया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राज्य ने किन्हीं विशेष कंपनियों अथवा व्यापार समूहों को सीधे सीधे सहारा देने के स्थान पर अनुबंधों, संपति तथा निजी उद्यम को कानूनी संरक्षण तथा व्यवस्था का वातावरण देना शुरू किया। साथ ही, राज्य के दमनकारी तंत्र तथा कानूनों का इस्तेमाल मजदूरों को पूंजीपति वर्ग की जरूरतों के अनुसार दबाने के लिए किया गया। इस प्रकार के 'मुक्त बाजार' को स्थापित करने के लिए अनेक उपाय आवश्यक थे। इसके

लिए अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से अनेक उन्मूलनों की शुरुआत की गई, जैसे, कीमतों तथा वेतन (दिहाड़ी) पर नियंत्रण को समाप्त किया गया, व्यापार पर लागू प्रतिबंधों तथा उपदान (सब्सिडी) को समाप्त किया गया और राज्य समर्थित एकाधिकारों को भी समाप्त किया गया। आंतरिक बाजार को एकजुट करने का भी इसमें आग्रह रहा और 1786 तथा 1820 के दशक के सीमा शुल्क के सुधारों की परिणति 1846 में अन्न व्यापार कानून की समाप्ति में हुई।

वर्ष 1834 के नव दरिद्र कानून (न्यू पुअर लॉ) में गरीबों के लिए स्थानीय कल्याण अथवा राहत की शर्तों को अत्यधिक कठोर बना दिया गया और इस प्रकार इस कानून ने एक मुक्त बाजार की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आर्थिक सुधारों के अन्य महत्वपूर्ण पहलू थे 1737 तथा 1844 के करेंसी तथा बैंकिंग सुधार, 1844 का कंपनी कानून और 1849 में नेवीगेशन कानूनों की समाप्ति। 1860 की कॉबडेन-शवाल्ये संधि से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में एक मुक्त व्यापार शासन की स्थापना का कार्य बहुत हद तक संपन्न हो गया।

2.8.4 कल्याण राज्य की ओर

एक मुक्त बाजार शासन की स्थापना के बाद पुराने समय से चली आ रही समर्थक व्यवस्थाओं को हटाने से उत्पन्न स्थितियों को संतुलित करने के लिए जवाब में केंद्र तथा स्थानीय सरकारों को नए कल्याणकारी उपायों को बढ़ावा देना पड़ा। नए औद्योगिक शहरों की दारूण स्थितियों तथा मजदूर वर्गों की बढ़ती मांगों ने आधुनिक राज्य को इस दिशा में बढ़ने को बाध्य कर दिया। एक सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली की शुरुआत 1833 के अधिनियम से हुई, जब सहायक अनुदान (ग्रांट्स इन एड) तथा स्कूल निरीक्षण की व्यवस्था भी शुरू की गई। किंतु धार्मिक गुटों के बीच चलने वाले विवादों ने इस प्रमुख मुद्दे पर बदलाव की गति को धीमा कर दिया।

इसी प्रकार, जब चैडविक ने 1848 में स्थापित सार्वजनिक स्वास्थ्य परिषद् (पब्लिक हेल्थ बोर्ड) के माध्यम से सफाई योजनाओं को लागू करने के लिए ज़ोरदार किंतु विवादास्पद प्रयास किए तो उसके बाद एक सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति का विकास हुआ। 1835 के नगरपालिका सुधार अधिनियम के अंतर्गत सार्वजनिक सुविधाओं के विकास का अनुबंध स्थानीय निकायों को दे दिया गया, किंतु इसने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जाकर ही गति पकड़ी, जब चैम्बरलेन जैसे नेताओं ने 'गैस एवं जलगत समाजवाद' की हिमायत की।

आम कल्याणकारी योजनाओं के अतिरिक्त, आधुनिक उदारवादी राज्यतंत्र के सामने अलग अलग सामाजिक गुटों की विशिष्ट मांगों को पूरा करने की भी चुनौती थी। इस संदर्भ में मजदूरों की समस्याएं विशेष रूप से गंभीर थीं। किंतु प्रारंभिक औद्योगिक राज्य मजदूरों को यूनियन बनाने या शांतिपूर्वक हड़ताल करने के मौलिक अधिकार देने में भी सुस्त रहा। यूनियन बनाने के विरूद्ध गठबंधन विरोधी अधिनियम 1799 में पारित किया गया और शुरुआती दौर के मजदूर आंदोलनों को हिंसक ढंग से दबा दिया गया। दरिद्रों को राहत देने की मौजूदा व्यवस्था को भी व्यर्थ मानते हुए 1834 के नव दरिद्र कानून के अंतर्गत समाप्त कर दिया गया। सर्वहारा वर्ग की बढ़ती तंगहाली तथा मानवतावादी गुटों की ओर से पड़ने वाले दबावों तथा स्वयं मजदूर आंदोलनों ने राज्य को बाध्य कर दिया कि वह अब सीमित सुधार के लिए कदम उठाए। गठबंधन विरोधी कानूनों को 1824 में समाप्त कर दिया गया। पहला फैक्ट्री अधिनियम 1833 में पारित किया गया और वह भी (एक सुधारवादी धार्मिक संगठन) इवेंजोलिकल्स के दबाव में बच्चों को कुछ संरक्षण देने के लिए। आगे के सुधार छोटी छोटी किस्तों में आए, जैसे खदान अधिनियम (1842), दस घंटे का कार्य दिवस (1847), यूनियनों को वैधता की मंजूरी (1871) और शांतिपूर्ण धरना (1876)।

मजदूरों के अतिरिक्त, सुधारों की मांग करने वाले अन्य सामाजिक वर्ग थे धार्मिक अल्पसंख्यक तथा स्त्रियां। मैरी वॉलस्टोनक्राट तथा जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे कुछ उदारवादियों के स्त्रियों के अधिकारों की वकालत करने के बावजूद, स्त्रियों को वोट का अधिकार प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही मिल पाया। हम कह चुके हैं कि ब्रिटिश राज्य अधिकारिक तौर पर आज भी धर्म निरपेक्ष नहीं है। हालांकि यहां पर सांस्कृतिक बहुलवाद की प्रथा है। वैसे हमारे काल के पहले अल्पसंख्यकों, विशेषकर कैथोलिकों के साथ अहितकारी भेदभाव बहुत आम थे। 1828 के टेस्ट एवं कारपोरेशन अधिनियम तथा 1829 के कैथोलिक राहत अधिनियम के परिणामस्वरूप और अधिक नागरिक समानता की स्थिति बनी। जन्म, विवाह तथा मृत्यु का सरकारी पंजीकरण भी 1836 में शुरू किया गया।

बोध प्रश्न 3

1) अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटिश राज्य की प्रमुख विशेषताएं क्या थीं? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) ब्रिटिश राज्य ने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए क्या क्या उपाय किए? 10 वाक्यों में अपनी विवेचना प्रस्तुत कीजिए।

....

....

....

....

2.9 श्रमिक आंदोलन

राज्य मजदूर वर्ग की मांगों को पूरा नहीं कर पाया। वास्तव में, मजदूर वर्गों की समझ में यह बात जल्दी ही आ गई थी कि संपति के स्वामित्व से जुड़े सीमित मताधिकार पर टिकी कोई भी संसद उनके कष्टों के प्रति सहानुभूति नहीं रखेगी। इसका परिणाम यह रहा कि उनमें से अनेक ने स्वाधीन मजदूरों की सभा या सहकारी समितियों जैसी गैर संसदीय संस्थाओं के निर्माण की ओर अपना रूख किया या फिर सार्वजनिक मताधिकार, गुप्त मतदान तथा सभी सांसदों के लिए वजीफा जैसी क्रांतिकारी मांगें उठानी शुरू कर दीं। कुछ ने तो भूमि के फिर से बंटवारे, कारखानों पर मजदूरों के कब्जे तथा एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था का भी प्रचार कर डाला जिसका आधार व्यक्ति-व्यक्ति के बीच आर्थिक प्रतिस्पर्धा न होकर समानता के सामूहिक आदर्श रहें।

किंतु, उच्च वर्ग ऐसी तमाम मांगों को रद्द करने हेतु कटिबद्ध थे। उनका इरादा था कि औद्योगीकरण के प्रारंभिक चरण में जो पूंजी का तेज गति से विकास हुआ है, उसकी भारी कीमत मजदूरों से वसूली जाए। उन्नीसवीं शताब्दी के आते आते कारीगरों तथा कुछ मध्यमवर्गीय कार्यकर्ताओं के सामूहिक नेतृत्व में उग्र सुधारवादी आंदोलन भी हुए। ब्रिटिश राज्य ने इनके विरूद्ध दमन का रवैया अपनाया, जिसकी परिणति 1819 के पीटरलू नरसंहार में हुई।

उसी दौर में, एक स्वाधीन मजदूर आंदोलन खड़ा हो रहा था, जिसकी अपनी सहकारी समितियां थीं, मैत्री संगठन थे, अखबार तथा दूकानें थीं और हड़ताली यूनियनें भी थीं। यह आंदोलन पहले की उग्र सुधारवादी परंपरा से हट कर था, क्योंकि इसके पास अपना सर्वहारा नेतृत्व था, आर्थिक मांगों की एक स्वतंत्र सूची थी और अधिक दीर्घकालिक संगठन था।

तमाम मजदूरों को एक आम ट्रेड यूनियन से जोड़ने तथा एक आम हड़ताल के लिए एक जुटता बनाने के पहले प्रयासों ने 1820 तथा 1830 के दशकों में गति पकड़ी। 1834 में ग्रैंड नेशनल कनफेडरेशन ऑव ट्रेड यूनियन्स (जी एन सी टी यू) का गठन किया गया, इसका उद्देश्य दस घंटे के कार्य दिवस जैसी कार्य स्थितियों तथा बेहतर वेतन की मांग करने हेतु एक व्यापक मजदूर आंदोलन को ठोस आकार देना था। इसके कुछ सदस्य तो ओवनशाही स्वर्ण युग की अपेक्षा भी करने लगे, जिसमें मजदूर स्वयं अपनी सहकारी समितियों के अधीन उद्योग चला कर अपनी मेहनत के पूरे फल का आनंद उठाएंगे। ओवन के अपने विचार भी समय बीतने पर बदल गए। 1829 में उसके नई दुनिया से वापस आने के बाद, उसे ब्रिटेन में उभरते ट्रेड यूनियन आंदोलन का एक प्रमुख प्रवक्ता स्वीकार कर लिया गया। किंतु, जल्दी ही उसके तथा नई पीढ़ी के नेताओं के बीच मतभेद उठ खड़े हुए। आगे हम इसी पर चर्चा करेंगे।

उसी दौरान, राज्य का तंत्र भी हरकत में आ गया और तमाम यूनियनों के विरूद्ध व्यापक गिरफ्तारियों के आदेश दे दिए गए। उदाहरण के लिए, डॉरसेटशायर में फ्रैंडली सोसायटी ऑव ऐग्रीकल्चरल वर्कर्स को भंग कर दिया गया और इसके छ: आयोजकों को मात्र 'गोपनीय शपथ लेने' के आधार पर सात साल की काला पानी की सजा दे दी गई। ये लोग टॉलपडल शहीदों के रूप में मशहूर हो गए और लंबे समय तक चले मजदूर आंदोलन के बाद ही 1839 में उनकी वापसी हुई।

इस बीच आर्थिक मंदी का दौर आ चुका था जिसके परिणामस्वरूप मजदूरों के वेतन में और भी कटौती कर दी गई और व्यापक बेरोजगारी फैल गई। उस समय मालिकों अथवा राज्य की ओर से सामाजिक सुरक्षा का कोई प्रावधान तो था नहीं, इसलिए पूरे ब्रिटेन में मजदूरों पर इस स्थिति का अत्यंत बुरा प्रभाव पड़ा। यहां तक कि शासक वर्ग भी अब यह स्वीकार करने को विवश हो गए थे कि औद्योगिक ब्रिटेन 'दो राष्ट्रों' की तरह दिखने लगा था, जो दो अलग अलग संसारों में रहने वाले अमीर तथा गरीब के बीच विभाजित था, जिनके बीच कोई भी संवाद, सहानुभूति अथवा समानता नहीं थी।

इधर शासक वर्ग तो इस प्रकार तीस के अशांत दशक में 'इंग्लैंड की दशा' के सवाल पर बहस कर रहा था, उधर कुछ मजदूर नेता आत्म सहायता तथा सहकारी समितियों पर ओवन के जोर पर सवाल उठाने और उसके स्थान पर मजदूरों के लिए राजनीतिक अधिकारों की मांग करने लग गए थे। 1836 में, सार्वजनिक मताधिकार की मांग करने के लिए लवेट जैसे व्यक्तियों ने लंदन वर्किंग मेन्स एसोसिएशन की स्थापना की। विलियम मौरिस तथा स्मिथ ओ'ब्रायन जैसे उग्र सुधारवादियों ने भी एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए मजदूरों में एक नई जागृति का आह्वान किया जिसमें वे 'समाज के सबसे निचले स्तर पर न हो कर सबसे ऊपर रहेंगे, या यह ऐसा समाज होगा जिसमें न कोई सबसे ऊपर होगा, न कोई सबसे नीचे।'

2.10 चार्टिस्ट आंदोलन

ब्रिटेन के मजदूरों ने 1830 तथा 1840 के दशकों में राजनीतिक सत्ता पर बढ़ते ध्यान का जो प्रदर्शन किया, उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणाम चार्टिस्ट (चार्टरवादी) आंदोलन के रूप में सामने आया। इस आंदोलन का नाम उस छ: सूत्रीय 'चार्टर' (घोषणा पत्र/ अधिकार पत्र) के नाम पर पड़ा जिसे संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। इसमें सार्वजनिक मताधिकार, गुप्त मतदान, वार्षिक संसद, समान चुनाव क्षेत्रों, हाऊस ऑफ कॉमन्स के सदस्यों के लिए संपति की योग्यता को समाप्त करने तथा उन्हें नियमित वेतन देने की मांगें थीं। 1839 में, पहला चार्टिस्ट अधिवेशन लंदन में हुआ, किंतु इसकी याचिका हेतु दस लाख हस्ताक्षर एकत्र होने के बावजूद संसद ने इसे सिरे से रद्द कर दिया।

इस प्रकार की दो टूक पराजय ने याचिका के तरीके में अनेक चार्टरवादियों की आस्था को हिला कर रख दिया और फर्गस ओ'कोनर तथा ओ'ब्रायन जैसे कुछ चार्टरवादियों ने तो यह इच्छा रखी कि आंदोलन को देहातों तक फैलाया जाए या एक आम हड़ताल की घोषणा की जाए और आवश्यक हो तो बल प्रयोग भी किया जाए। नवम्बर 1839 में, हजारों वेल्श कोयला खनकों ने न्यूपोर्ट की ओर सशस्त्र कूच किया। किंतु, इन क्रांतिकारी विकल्पों पर एकजुटता नहीं बन पाई और हालांकि 1842 में एक और चार्टरवादी याचिका संसद में प्रस्तुत की गई, फिर भी चालीस के दशक के मध्य में होने वाली आर्थिक बहाली ने अधिकांश मजदूरों का ध्यान एक बार फिर उग्र सुधारवादी राजनीति की ओर से हटा कर ट्रेड यूनियनों की गतिविधियों के माध्यम से वेतन में सुधारों की ओर कर दिया।

चार्टरवाद की लौ एक बार फिर 1848 में अंतिम बार झिलमिलाई। यह वर्ष पूरे यूरोप में क्रांतियों का वर्ष था। संसद में साठ लाख हस्ताक्षरों की एक विशाल याचिका प्रस्तुत करने के लिए पाँच लाख चार्टरवादियों का एक विराट प्रदर्शन लंदन के मध्य में स्थित केनिंगटन कॉमन्स में आयोजित किया गया। किंतु लचर आयोजन तथा असमय की बारिश ने इस संकट को टालने की दिशा में सरकार का साथ दिया और अंत में चार्टरवादियों की मांगों को रद्द कर दिया गया। उसके बाद की अवधि में बनने वाली आर्थिक संपन्नता की स्थिति ने एक बार फिर ब्रिटिश मजदूरों के ध्यान को राजनीतिक मांगों से हटा कर आर्थिक आत्म सहायता की ओर लगा दिया, जिसका एक महत्वपूर्ण प्रतीक 1844 में स्थापित होने वाला राचडेल स्टोर था। 'इंटरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसिएशन' का नेतृत्व लंदन में [illegible] के कार्ल मार्क्स के प्रयासों के प्रति उदासीन प्रतिक्रिया इसका एक और प्रतीक था।

जनता का छ: सूत्रीय चार्टर

1) एक वोट उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए जो इक्कीस वर्ष का हो चुका है, मानसिक रूप से स्वस्थ है, और जिस पर किसी अपराध के लिए सजा नहीं चल रही है।
2) मतपत्र - मताधिकार के प्रयोग में मतदाता को संरक्षण देने के लिए।
3) संपत्ति की योग्यता की अनावश्यकता — सांसदों के लिए, जिससे कि चुनाव क्षेत्र अपनी पसंद के व्यक्ति को चुनकर भेज सकें, चाहे वह अमीर हो या गरीब।
4) सदस्यों को भुगतान, जिससे यदि कोई ईमानदार व्यापारी, कामकाजी पुरुष, या अन्य कोई व्यक्ति देश के हित में कार्य करने हेतु अपना काम धंधा छोड़ कर आए तो वह अपने चुनाव क्षेत्र की सेवा कर सके।
5) समान चुनाव क्षेत्र, जिससे बड़े चुनाव क्षेत्रों के मतदाताओं को छोटे चुनाव क्षेत्रों के आगे बेबस होने देने के बजाए समान संख्या के मतदाताओं को समान अनुपात में प्रतिनिधित्व मिल सके।
6) वार्षिक संसद, जिससे घूस तथा धौंस पट्टी पर सर्वाधिक प्रभावी रोक लग सके, क्योंकि किसी चुनाव क्षेत्र को सात साल में एक बार तो (मतपत्र से भी) खरीदा जा सकता है, किंतु (सार्वजनिक मताधिकार व्यवस्था में) किसी भी चुनाव क्षेत्र को किसी भी धनराशि से प्रत्येक आने वाले बारह महीनों के लिए नहीं खरीदा जा सकता; और इसलिए भी क्योंकि जब प्रत्येक सदस्य को केवल एक साल के लिए ही चुना जाएगा तो वह अब की तरह अपने चुनाव क्षेत्र के लोगों की उपेक्षा अथवा उनके साथ विश्वासघात नहीं कर पाएगा।

वस्तुत: मार्क्स तथा उनके साथी फ्रेडरिक एंगल्स ने 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' का प्रकाशन 1848 में लंदन में हुए इंटरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसिएशन (आई डब्ल्यु एम ए) के पहले अधिवेशन में किया था। इसने समाजवादी चिंतन को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया और दुनिया भर के मजदूरों का आह्वान किया कि वे एक नए समतावादी समाज के लिए संघर्ष हेतु एकजुट हों, जिसकी सीमाएं शोषक पूंजीवादी व्यवस्था के पार जाएंगी। इस घोषणापत्र में निजी संपत्ति की समाप्ति पर आधारित एक वर्गमुक्त समाज की कल्पना को भी रखा गया।

आगे आपको उन ऐतिहासिक संघर्षों की और अधिक जानकारी दी जाएगी जिन्हें इस क्रांतिकारी घोषणापत्र ने दुनिया के अनेक देशों के मजदूरों के बीच प्रेरित किया। किंतु ब्रिटेन के संदर्भ में यह बात याद रखने योग्य है कि यहां क्रांतिकारी नहीं अपितु उदारवादी राजनीति ही मजदूरों की चिंता का प्रधान विषय बना रहा। इस शताब्दी के प्रारंभ में संसदीय राजनीति के लिए प्रतिबद्ध लेबर पार्टी के विकास ने इस प्रवृति को और भी सुनिश्चित कर दिया।

जिस एक प्रमुख कारक ने 'प्रथम औद्योगिक राष्ट्र' के मजदूर वर्ग को इस प्रकार की राजनीति की ओर अग्रसर किया, वह था वहां 'श्रमिक कुलीनतंत्र' का उदय। ये वे लोग थे जिनके बढ़ती औद्योगिक अर्थव्यवस्था में विशिष्ट कौशलों ने ब्रिटेन के विशाल साम्राज्य के बढ़ते लाभों के साथ मिलकर उन्हें एक आरामदेह जीवनशैली को बनाए रखने में समर्थ बनाया। इसके परिणामस्वरूप, 'श्रमिक कुलीनतंत्र' ने अपनी आस्था का स्रोत इस विचार को बनाया कि वे पूंजीवादी व्यवस्था के अंदर ही 'सुधार' के लिए काम करेंगे, इसे उलटने का प्रयास नहीं करेंगे। इन लोगों ने भी उसी आधार पर मताधिकार की आकांक्षा की जिस आधार पर मध्यम वर्गों ने की थी अर्थात उसकी स्थिति संविधान की रक्षा करने में अपनी उचित भूमिका निभाने वाले एक 'सम्माननीय' वर्ग की हो। यही नहीं, विक्टोरिया युग के इन कुशल मजदूरों ने आत्म सहायता पर जोर दिया और अपनी स्थिति सुधारने के लिए अपनी स्वयं की मित्र संस्थाएं तथा सहकारी समितियों तथा 'न्यू यूनियन्स' का भी विकास किया और क्रांति के मार्ग को शपथपूर्वक त्याग दिया।

इस प्रकार की प्रवृत्ति का परिणाम 1865 में 'रिफॉर्म लीग' के गठन के रूप में सामने आया। इस लीग का गठन श्रमिक कुलीनतंत्र ने मध्यम वर्गीय नेताओं के साथ मिल कर और अधिक संसदीय सुधारों की मांग उठाने के लिए किया। इसके प्रयासों का फल दो साल बाद सामने आया जब शहरी मजदूरों को अंतत: उनके वोट का अधिकार मिल गया। किंतु यह बात याद रखने योग्य है कि यह अधिकार देने वाला 1867 का सधार अधिनियम

किसी उग्र सुधारवादी जनांदोलन की नहीं, अपितु दलगत राजनीति की उपज थी। इस दलगत राजनीति में अनुदारवादियों (कंजर्वेटिवज) ने डिजरायली के नेतृत्व में वोट जुटाने के मामले में ग्लैडस्टोनशाही उदारवादियों को मात दे दी थी। इस प्रकार की राजनीति वास्तव में उभरते हुई आम पूंजीवादी व्यवस्था का मुख्य आधार बन रही थी।

दूसरे सुधार अधिनियम के पारित होने के बाद के दस बारह वर्षों में, शहरी मजदूर वर्ग इस प्रकार उदारवादी राज्यतंत्र के अंदर समायोजित कर लिया गया। इस प्रक्रिया में कुछ अधिनियमों का पारित होना महत्वपूर्ण रहा। जैसे, ट्रेड यूनियन बनाने का अधिकार देने वाला अधिनियम (1871), हड़ताल करने का अधिकार देने वाला अधिनियम (1876), और शैक्षिक तथा स्वास्थ्य संबंधी सुधार लागू करने वाले अधिनियम (क्रमशः 1870 तथा 1875)। किंतु इनमें से कोई भी उपाय अर्थव्यवस्था में बढ़ती असमानता को कम नहीं कर पाया, क्योंकि निजी या विरासत में मिली संपति पर भी कभी कोई सवाल नहीं उठाया गया। यहां तक कि लोकतंत्र तथा कल्याण भी ब्रिटेन के निम्न वर्ग के लोगों के लिए अभी तक कल्पना की ही बातें थीं और वर्तमान शताब्दी में ताजा आंदोलनों के बाद ही मजदूरों तथा नारी जाति की इन बुनियादी आकांक्षाओं को वास्तव में पूरा करने का काम उदारवादी राज्यतंत्र कर पाया है।

विकास की ये सब बातें अभी भविष्य के गर्भ में ही थीं, किंतु उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक ब्रिटेन में चार्टरवादी आंदोलन द्वारा उठाए गए वर्ग संबंधी सवाल को अत्यधिक शांतिपूर्वक ढंग से हल करके एक निर्णायक सीमा को पार कर लिया गया था। इस प्रकार के टकरावों के समाधान के लिए केंद्रीय तंत्र के रूप में संसदीय तथा चुनावी राजनीति को स्वीकार किया जाना इस समझौते को आकार देने की दिशा में महत्वपूर्ण था।

प्रथम औद्योगिक राष्ट्र में इस प्रकार के राजनीतिक समाधान की ओर ले जाने वाले प्रमुख कारक थे : मजदूरों के सापेक्ष इसके उच्च वर्गों द्वारा प्रदर्शित एकता, फैलते हुए ब्रिटिशसाम्राज्य के आर्थिक लाभ, उन्नीसवीं शताब्दी के ब्रिटेन में क्रांतिकारी राजनीति का अपेक्षाकृत कमजोर होना तथा देश में कल्याणकारी विधान का तदनांतर विकास।

किंतु, ब्रिटेन के संविधान में मताधिकार के विस्तार के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्थागत बदलाव भी करने पड़े जिससे कि इस संक्रमण को स्थायी आधार दिया जा सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति किन तरीकों से की गई तथा इस प्रक्रिया में ब्रिटिश राज्य ने अंततः क्या स्वरूप धारण किया, इस पर हम आगे विचार करेंगे।

बोध प्रश्न 4

1) मजदूर वर्ग की प्रमुख शिकायतें क्या थीं? 10 वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) चार्टरवादी (चार्टिस्ट) आंदोलन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

2.11 सारांश

ब्रिटेन के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में 1750 के दशक में जमींदार कुलीनतंत्र का वर्चस्व था और अर्थव्यवस्था का आधार कृषि थी। लोगों के जीवन में सरकार की कोई सक्रिय भूमिका नहीं थी। किंतु 1760 के दशक तक स्थिति यह हो गई कि ब्रिटेन ऐसा पहला राष्ट्र बन गया जिसने अपने राज्यतंत्र, समाज तथा अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए, और इस प्रकार औद्योगीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत की। इस इकाई में हमने यह विचार किया कि ब्रिटेन में किस प्रकार नए रंग की राजनीतिक विचारधाराओं का विकास हुआ और किस प्रकार ब्रिटेन एक उदारवादी तथा लोकतांत्रिक बदलाव के माध्यम से आधुनिक बना। हमने यह भी समझने का प्रयास किया कि किस प्रकार ब्रिटेन के उभरते मध्यम वर्ग तथा शासक कुलीन वर्ग ने सुधारों के माध्यम से मजदूर आंदोलनों को संसदीय राजनीति के व्यापक ढांचे के अंदर ही दबाने में सफलता प्राप्त की।

2.12 शब्दावली

औद्योगिक पूंजीवाद : यह पूंजीवाद का वह चरण है जिसकी विशेषता थी नई संपदा का बनना, बड़े उद्योगों का एक नया वर्ग, अधिक मशीनीकरण, नए बाजारों की तलाश।

अल्पतंत्र : ऐसा शासन तंत्र जिसमें मुठ्ठी भर लोगों के पास सारी सत्ता होती है।

सर्वहारा विद्रोह : उन मजदूरों का विद्रोह जो दिहाड़ी के लिए काम करके अपनी रोजी रोटी कमाते हैं।

सार्वजनिक मताधिकार : बिना किसी पूर्व योग्यता के, सभी व्यस्कों को वोट देने का अधिकार।

कालक्रमानुसार तालिका

घरेलू राजनीति

1760	जॉर्ज तृतीय का सत्ता में आना।
1763	नॉर्थ ब्रिटेन विवाद (विल्क्स कांड)
1768	मिडिलसेक्स चुनाव (विल्क्स कांड)
1769	सोसायटी फॉर दि डिफेंस ऑफ दि बिल ऑफ राइट्स
1770-82	लॉर्ड नॉर्थ की सरकार
1780	डनिंग का प्रस्ताव; संविधानगत सूचना संगठन; गॉर्डन के दंगे।
1783	फॉक्स नॉर्थ गठबंधन
1785	संसदीय सुधार विधेयक लाया गया
1788	रीजेंसी संकट
1791	दासता विधेयक की समाप्ति
1794	बंदी प्रत्यक्षीकरण का निलंबन
1795	राजद्रोही सभा अधिनियम
1790 का दशक	रॉबर्ट ओवन का सहकारिता आंदोलन; पहली यूनियनें
1797	नकद भुगतान निलंबित
1798	आयरिश विद्रोह; आयकर लागू
1799	गठबंधन विरोधी कानून
1801	ब्रिटिश तथा आयरिश संसदों का सम्मिलन; कैथोलिक राहत पराजित

1802	एप्रेंटिस नैतिकता अधिनियम
1806	पिट की मृत्यु
1806-12	'समस्त प्रतिभाओं' की सरकार
1807	दासता प्रथा का निषेध
1809	परसवेल प्रधान मंत्री; मेजर कार्टराइट द्वारा हैम्डेन क्लबों का गठन
1811	लडाइट विद्रोह
1812-27	लिवरपूल प्रधान मंत्री
1815	अन्न व्यापार कानून प्रस्तुत
1816	ब्लैंकटियर्स का मार्च
1819	पीटरलू का नरसंहार
1820	जॉर्ज तृतीय की मृत्यु; जॉर्ज चतुर्थ ने गद्दी संभाली; कैटो स्ट्रीट षड़यंत्र
1823	पील द्वारा दंड संहिता का सुधार प्रारंभ; हसकिसन द्वारा व्यापार परिषद् में सुधार प्रारंभ।
1824	गठबंधन विरोधी अधिनियम रद्द
1827	हसकिसन का खिसकता आधार; वेलिंगटन प्रधानमंत्री
1828	कारपोरेशन एवं टेस्ट अधिनियम समाप्त
1829	महानगर पुलिस बल गठित; कैथोलिक मुक्ति अधिनियम
1830	जॉर्ज चतुर्थ की मृत्यु; विलियम चतुर्थ ने गद्दी संभाली; कृषि क्षेत्र में अशांति; ग्रे ने विग सरकार बनाई।
1831	सुधार विधेयक के लिए संघर्ष
1832	पहला सुधार अधिनियम पारित
1833	फैक्ट्री अधिनियम; पूरे ब्रिटिश साम्राज्य में गुलामी की समाप्ति; शिक्षा अनुदान प्रस्तुत
1834	दरिद्र कानून संशोधन अधिनियम; टॉलपडल शहीद; मेलबोर्न प्रधानमंत्री; टेमवर्थ घोषणापत्र।
1835	नगर निगम अधिनियम· आयरिश दशमांश (Tithe) अधिनियम
1836	जन्म, विवाह तथा मृत्यु का पंजीकरण
1837	विलियम चतुर्थ की मृत्यु; विक्टोरिया ने गद्दी संभाली
1839	पहली चार्टरवादी याचिका; बेडचेम्बर संकट; अन्न व्यापार कानून विरोधी लीग गठित।
1840	पेनी पोस्ट का प्रारंभ
1841-46	पील की दूसरी सरकार
1842	दूसरी चार्टरवादी याचिका; पील ने सीमा शुल्क में और कमी की; आयकर फिर; खदान अधिनियम।
1844	बैंक चार्टर अधिनियम; कंपनी अधिनियम; फैक्ट्री अधिनियम
1845	मेनूट ग्रांट; आयरिश अकाल
1846	पील द्वारा अन्न व्यापार कानूनों में संशोधन; रसल प्रधानमंत्री
1847	फील्डेन का फैक्ट्री अधिनियम
1848	तीसरी चार्टरवादी याचिका; आयरलैंड में विद्रोह; चैडविक के अधीन केंद्रीय स्वास्थ्य परिषद्
1849	नेवीगेशन अधिनियम समाप्त
1850	पील की मृत्यु

1851	महान प्रदर्शनी
1852	डर्बी डिजरायली सरकार
1853	पामरस्टन की पहली सरकार
1860	राजकोष में ग्लैडस्टोन की मुक्त व्यापार नीति
1866	तीसरी डर्बी डिजरायली सरकार
1867	दूसरा सुधार अधिनियम पारित

2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में, ब्रिटेन में राजनीतिक बदलाव बिना किसी हिंसा के संपन्न हो गया। शासक वंश पर संसदीय नियंत्रण बना। पढ़िए भाग 2.2।
2) देखिए भाग 2.3
3) देखिए भाग 2.3
4) ब्रिटेन के कानून निर्माता और प्रवर्तक समाज के उच्च स्तरों के लोग थे। सरकार भी इस वर्ग के प्रति पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण रखती थी। देखिए भाग 2.4।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 2.5
2) देखिए भाग 2.7
3) देखिए भाग 2.7

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 2.8
2) देखिए उपभाग 2.8.4

बोध प्रश्न 4

1) सीमित मताधिकार, संसद में मजदूरों का प्रतिनिधित्व न होना, कम वेतन, बेरोजगारी आदि। पढ़िए भाग 2.9।
2) देखिए भाग 2.10।

इकाई 3 अमरीकी क्रांति

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

अमरीकी क्रांति ने अमरीकी उपनिवेशों को ब्रिटिश साम्राज्य के कब्जे से मुक्त कराया। उसका अमरीका के भावी विकास में न केवल आर्थिक अपितु सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि से भी अत्यधिक महत्व रहा। इस इकाई **को** पढ़ने के बाद आप :

- क्रांतिपूर्व के अमरीकी समाज को समझ पाएंगे;
- अमरीकी क्रांति की जमीन तैयार करने वाली परिस्थितियों की व्याख्या कर पाएंगे;
- अमरीकी संविधान में किन बातों पर मुख्य रूप से जोर रहा, इसका विश्लेषण कर पाएंगे; और
- अमरीका में दासता की संस्था तथा लोकतांत्रिक राजनीति के विकास के बारे में जान पाएंगे।

3.1 प्रस्तावना

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दौर में होने वाली अमरीकी क्रांति को एक ऐसा स्वतंत्रता संग्राम माना गया है जिसमें 1789 की फ्रांसीसी क्रांति जैसी महान क्रांतियों के सामाजिक उग्र सुधारवाद वाले तत्व का अभाव था। फिर भी, राजतंत्र को नष्ट करके तथा एक गणतंत्र का निर्माण करके अमरीकियों ने न केवल अपनी सरकार को अपितु अपने समाज को भी बदल डाला। अमरीकी क्रांति ने अमरीकी समाज को एक लोकतांत्रिक तथा पूंजीवादी समाज का रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, वैसे तो अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दौर से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक की अवधि में 'लोकतांत्रिक क्रांतियां' पश्चिमी यूरोप में सामाजिक बदलाव ला रही थीं, फिर भी यूरोप की तुलना में अमरीका की क्रांति ने अमरीकी राजनीति तथा समाज को लोकतांत्रिक रूप देने में अपेक्षाकृत अधिक ठोस रूप में मदद की। आगे हम आपको क्रांति पूर्व अमरीका की विशेषताओं के बारे में जानकारी देंगे और यह भी बताएंगे कि क्रांति कैसे हुई। हमने नए संविधान के निर्माण तथा अमरीकी लोकतंत्र के केंद्रीय तत्व के रूप में दासता की संस्था की भी व्याख्या की है। अंत में, आपको जन राजनीति तथा जैक्सनी लोकतंत्र की जानकारी दी जाएगी।

NOVA SCOTIA
BAY OF FUNDAY
QUEBEC
MONTREAL
LAKE SUPERIOR
OTTAWA
LAKE ONTARIO
LAKE HURON
LAKE MICHIGAN
HURON
LAKE ERIE
BOSTON
MASSA CHUSETTS
NEWYORK
ATLANTIC
NEW YORK
PANNSYLVANIA
PENNA
PHILADELPHIA
BALTIMORE
VIRGINIA
RICHMOND
JAMESTOWN
SHAWNEE
MIAMI
OCEAN
BLUE RIDGE MOUNTAIN
NORTH CAROLINA
WILMINGTON
SOUTH CAROLINA
CHARLESTON
BRITISH SETTLEMENT IN NORTH AMERICA
SAVANNAH
GEORGIA
WEST FLORIDA
LOUSIANA
St. AUGUSTINE
ALABAMA
APALACHEE
EAST FLORIDA
NEW ORLEANS
GULF OF MAXICO

3.2 एक नया समाज होने की विशिष्टता

यूरोप में सोलहवीं शताब्दी के दौरान सामंतवाद के पतन के यूरोपीय समाज के आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में दूरगामी परिणाम हुए। इस दौर के पुनर्जागरण एवं सुधारवादी आंदोलनों ने व्यक्तिगत स्वाधीनता की भावना का विकास करने में अपना अंशदान किया तथा लोगों को और साहसिक बना दिया। इस दौर के राजनीतिक तथा आर्थिक घटनाक्रमों ने भी यूरोप के लोगों को नए देशों को खोजने तथा जीतने के लिए प्रेरित किया। संयुक्त राज्य अमरीका के पूर्वी समुद्रतट पर बसी अमरीकी बस्तियां नई दुनिया का भी हिस्सा थीं और पश्चिमी दुनिया का भी। नई दुनिया का हिस्सा होने के नाते इन अमरीकी उपनिवेशों में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति बन गई क्योंकि उपनिवेशक उत्तरी अमरीकी महाद्वीप में बहुतायत से पड़ी जमीन पर हर ओर अपने पाँव पसारने की स्थिति में थे। अमरीका की आबादी 1750 और 1770 के बीच दस लाख से बढ़ कर बीस लाख और 1790 तक चालीस लाख हों गई। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, स्कॉटलैंड तथा आयरलैंड से आकर बसने वाले लोगों ने भी इन उपनिवेशों की आबादी में जबरदस्त वृद्धि की। जनसंख्या में हुई वृद्धि और पश्चिम की ओर हो रहे विस्तार ने मिल कर अमरीकी 'सीमांत' का तथा इस सीमांत में बस गए लोगों की लोकतांत्रिक भावना का निर्माण किया। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान यह सीमांत लगातार पश्चिम की ओर बढ़ता रहा और इस प्रकार एक ऐसे समाज का निर्माण हुआ जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौर की अपेक्षा कहीं अधिक लोकतांत्रिक तथा अमरीकी था, जैसी कि इतिहासकार टर्नर ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में टिप्पणी की।

1740 के दशक में शुरू हुई एक आर्थिक क्रांति ने अमरीकी आयात-निर्यातों में जबरदस्त विस्तार की स्थिति ला दी। ब्रिटेन से होने वाले आयातों का मूल्य 1747 में जो दस लाख पौंड से भी कम था, वह 1772 में बढ़ कर 45 लाख पौंड के आसपास पहुंच गया। मुख्य रूप से आंतरिक व्यापार में होने वाले विस्तार तथा कागजी मुद्रा के इस्तेमाल के कारण चलने वाली आर्थिक बदलाव की प्रक्रिया ने 'मंझले स्तर' के लोगों को इस योग्य बना दिया कि वे पुराने समय से चले आ रहे संरक्षक आश्रित वाले संबंध को तोड़ सकें। महा जाग्रति (ग्रेट अवेकानिंग) के नाम से मशहूर धार्मिक पुनर्जागरण ने भी पुराने समय से चले आ रहे भद्रजनों तथा स्थापित एंग्लिकन पुरोहित वर्ग के दबदबे को कमजोर किया।

अमरीका में अठारहवीं शताब्दी के मध्य में गणतंत्रवादी (रिपब्लिकन) विचारों के विकास को एक ऐसी मजबूत लोकतांत्रिक परंपरा की विद्यमानता के साथ जोड़ कर देखा गया है जिसका आधार अमरीकी समाज़ के भीतर अटूट वर्ग सीमाओं तथा सामंतवाद की अनुपस्थिति रही। अठारहवीं शताब्दी के अमरीका में कुलीनतंत्रीय परिवार तथा महाजन वर्ग तो अवश्य थे, किंतु वरजीनिया तथा न्यू हैम्पशायर को छोड़ उनमें से कोई भी राज्य की राजनीति में प्रभुत्व नहीं रखता था। औपनिवेशिक अमरीका में समाज के उच्च वर्गों के पास ब्रिटेन की तुलना में कहीं कम आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति थी। दूसरी ओर, अधिसंख्य अमरीकी किसानों के पास उनकी अपनी भूमि थी, जबकि इसके विपरीत ब्रिटेन में सीमांत काश्तकारों तथा भूमिहीन खेतिहरों की संख्या ही अधिक थी। अमरीका में दो तिहाई गोरी औपनिवेशिक आबादी के पास अपनी जमीन थी, जबकि ब्रिटेन में केवल बीस प्रतिशत लोगों के पास ही भूमि थी। कुलीनतंत्र की अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति, भूमिघर किसानों की एक बड़ी संख्या का होना, बड़ी संख्या में स्वदेशियों की अनुपस्थिति तथा पश्चिम की ओर पलायन करके भूमि हथियाने की संभावना ने अठारहवीं शताब्दी के अमरीका की राजनीति को एक मजबूत गणतांत्रिक रंग दिया।

हालांकि अमरीकी समाज अन्य पश्चिमी समाजों की तुलना में अधिक समतावादी था, फिर भी वहां कुलीनतंत्र भी था, सम्राटों की परंपरा भी थी और अभिजात्य तथा आम जन के बीच पितृसत्तात्मक निर्भरता पर आधारित संबंध भी थे। अमरीकी लोग अनेक प्रकार की वैधानिक निर्भरता अथवा पराधीनता के प्रति भी जागरूक थे। विशेषज्ञों के अनुसार एक समय ऐसा भी था जब कम से कम पचास प्रतिशत औपनिवेशिक समाज वैधानिक रूप से पराधीन था। उन पांच लाख अफ्रो अमरीकी लोगों के अलावा, जो पुश्तैनी गुलाम थे, ऐसे हजारों गोरे अप्रावासी भी थे जो अनुबंधबद्ध नौकरों अथवा प्रशिक्षुओं के रूप में आए। इन्हें कई वर्ष अथवा कहीं कहीं तो कई दशक के लिखित अनुबंध पर यहां लाया गया। ऐसा अनुमान है कि उपनिवेशों में आने वाले तमाम आप्रवासियों में से आधे से लेकर दो तिहाई तक ऐसे अनुबंधबद्ध नौकर थे जो सात से लेकर चौदह वर्ष की अवधि तथा अपने मालिकों के प्रति लिखित रूप से अनुबंधित थे। अमरीका में मजदूरी की बहुत मांग थी, और क्योंकि अनुबंध पर नौकरों को बाहर से लाना महंगा पड़ता था इसलिए उनके कहीं आने जाने पर पाबंदी थी और उन पर नियंत्रण रखा जाता था कि वे कहीं भाग न जाएं। उपनिवेशों के बंधुआ मजदूर अपनी हैसियत के हिसाब से अंगरेजी नौकरों की अपेक्षा अमरीका के काले गुलामों के अधिक निकट थे, क्योंकि अंगरेजी नौकरों को तो काफी आजादी मिली हुई थी और उनका अनुबंध भी मात्र एक वर्ष का होता था। अनुबंधबद्ध नौकरों के इस्तेमाल ने अमरीकी

उपनिवेशकों को न केवल वैधानिक अधीनता से बनने वाली कठिनाइयों के प्रति अपितु शायद स्वाधीनता के महत्व के प्रति भी जागरूक बना दिया।

अठारहवीं शताब्दी के ज्ञानोदय (इनलाइटनमेंट) आंदोलन से उपजे विचारों ने पारंपरिक विश्वासों तथा सामाजिक संबंधों की अनेक प्रकार से जड़ें खोदी। ज्ञानोदय आंदोलन के विचारों को अपना कर अभिजात्य शासक वर्ग तथा सत्ताधारी लोगों ने शासक, न्यायकर्ता, मालिक तथा पिता के रूप में अपने ही अधिकारों को समाप्त कर लिया। पितृसत्ता के विरूद्ध एक क्रांति का जन्म गणतंत्रवादी विचारों के विकास के साथ साथ हुआ। अठारहवीं शताब्दी में व्यवसायीकरण के साथ ही स्थिति यह हो गई कि जो अनुबंध पहले के समय में पति तथा पत्नियों अथवा मालिक तथा प्रशिक्षुओं के बीच पितृसत्तात्मक संबंधों पर आधारित होते थे, उनका स्थान अब ऐसे अनुबंधों ने ले लिया जो सामाजिक संबंधों नहीं अपितु विशिष्ट लेन देन के प्रतीक दो समान पक्षों के बीच लाभदायक सौदेबाजी हो गई। मालिक मातहत के बीच सभी संबंधों को जब इस अनुबंध की दृष्टि से देखा जाने लगा तो सम्राट तथा उपनिवेशों के बीच संबंधों को देखने का अमरीकी नजरिया भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सका। सच तो यह है कि शाही संबंध का बखान करने के लिए पिता-संतान के जिस रूप का इस्तेमाल किया गया, उसका प्रभाव अमरीकी क्रांति से पूर्व टोरी तथा विग दोनों के लेखन पर पड़ा। आधुनिक वैधानिक अनुबंधन की भाषा का व्यापक इस्तेमाल होने लगा तो अमरीकी उपनिवेशकों के लिए मातृ देश तथा ब्रिटिश सम्राट के पितृसत्तात्मक अधिकार से नाता तोड़ना और भी आसान हो गया।

इसका ठीक ठाक कारण यह था कि अमरीकी उपनिवेशों के निवासियों को जिस स्तर की समानता तथा संपन्नता मिली हुई थी वह पश्चिमी देशों के लिए उस समय इतनी असाधारण बात थी कि अमरीकी लोग अपने अधिकारों तथा विशेषाधिकारों की रक्षा करने को अत्यधिक चिंतित थे। परिणामस्वरूप, अमरीकियों ने उनकी स्वतंत्रता तथा संपन्नता के प्रति खतरे को और भी बढ़ा चढ़ा कर रखा। इसके अतिरिक्त, व्यवसायीकरण, पितृसत्तात्मक संबंधों के पतन तथा लोक राजनीति के इस युग में आर्थिक तथा सामाजिक बदलावों ने लोगों की चिंताओं को और बढ़ा दिया। अभिजात्य वर्ग के कुछ लोगों ने जो तेजी से प्रगति की, ब्रिटिश शाही नीति में बदलाव के कारण उनकी वही प्रगति उनकी संपन्नता में गिरावट के प्रति चिंता का कारण बन गई। 1757-1763 के सात वर्षीय युद्ध के बाद ब्रिटिश नीति के कठोर होने के परिणामस्वरूप 1765 का स्टाम्प अधिनियम लागू किया गया, जिससे अमरीकियों की संपन्नता तथा स्वतंत्रता के प्रति खतरे के बारे में चिंता की स्थिति बनी। जैक ग्रीन के अनुसार, अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक जो औपनिवेशिक असेम्बलियां काफी मुखर होने लगी थीं, अब उन्होंने ऐसी संस्थाओं का रूप ले लिया था जिनके साथ खड़े होना शाही सत्ता तथा नीति के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए जरूरी हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य की हठधर्मिता के प्रति बढ़ते जनता के विरोध में, तानाशाही तथा भ्रष्टाचार के विरूद्ध चलने वाले संघर्ष ने बड़ी तेजी के साथ स्वाधीनता संग्राम का रूप ले लिया।

बोध प्रश्न 1

1) आपके विचार में कौन सी बात अमरीकी समाज को दूसरों से अलग करती है? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) अमरीका में लोकतांत्रिक भावना के विकास के क्या कारण थे? पांच वाक्यों में लिखिए।

....

....

....

....

....

3.3 क्रांति की ओर

ब्रिटिश सरकार का यह मानना था कि उपनिवेशों को अपने मातृ देशों के हितों को साधना चाहिए। ब्रिटेन ने औपनिवेशिक अमरीका में व्यापारिक नीतियों को अपनाया, जिन्हें मुख्य रूप से एक अनुकूल व्यापार संतुलन के रूप में ब्रिटिश आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बनाया गया था। 1651, 1660 तथा 1663 के विभिन्न जहाजरानी (नेविगेशन) अधिनियमों के माध्यम से यह सुनिश्चित कर लिया गया था कि व्यापार के लिए केवल ब्रिटेन या उसके उपनिवेशों के ही जहाजों का इस्तेमाल होगा, कि अधिकांश यूरोपीय माल को अमरीकी उपनिवेशों में प्रवेश करने से पहले ब्रिटेन से होकर गुजरना होगा और यह भी कि परिगणित (इन्यूमरेटिड) सामान के रूप में घोषित तंबाकू तथा चावल जैसे कुछ सामानों को केवल ब्रिटेन में ही जहाज में लादा जा सकेगा कि ब्रिटेन की आर्थिक आत्म निर्भरता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कुछ परिगणित सामानों के उत्पादन के लिए मुक्त हस्त से अनुदान दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त, अनेक अधिनियम लागू करके उपनिवेशों पर यह पाबंदी लगा दी गई कि वे निर्मित सामान का निर्यात नहीं कर पाएंगे। इसका प्रभाव 1699 में ऊन तथा ऊनी वस्त्रों पर, 1732 में हैट उद्योग पर और 1750 में लौह उत्पादों पर पडा।

ब्रिटेन की व्यापारिक नीतियां शोषणकारी थीं, किंतु समूचे बोझ को यदि प्रति व्यक्ति के हिसाब से देखा जाए तो यह इतना महत्वपूर्ण नहीं था। परिगणित सामानों के लिए विश्व बाजार में जो कीमतें निर्धारित थीं, उपनिवेशकों को ब्रिटेन उनसे कम ही देता था। ऐसा विशेषकर तंबाकू के मामले में था जिसे ब्रिटेन वापस यूरोप को निर्यात कर देता था। ब्रिटेन के रास्ते यूरोप से होने वाले आयात से आयतित सामानों की कीमत बढ़ जाती थी अथवा उपनिवेशकों को ब्रिटेन से अपेक्षाकृत महंगे उत्पाद खरीदने पड़ते थे। किंतु, अमरीकी निर्माण पर लगे प्रतिबंधों का कोई गंभीर हानिकारक परिणाम नहीं हुआ क्योंकि अमरीका अठारहवीं शताब्दी के दौरान कृषि प्रधान देश था।

सात वर्षीय युद्ध के बाद ब्रिटेन ने अमरीका की प्रतिरक्षा के बोझ को उपनिवेशकों के ऊपर डालने की कोशिश की क्योंकि ब्रिटेन में करों का बोझ बहुत अधिक माना जाता था। 1764 का चीनी अधिनियम तथा 1765 का स्टाम्प अधिनियम सम्राट जॉर्ज तृतीय के समर्थन में ब्रिटिश प्रधान मंत्री ग्रेनविल के प्रारंभिक उपाय थे। इनका उद्देश्य अपनिवेशों की प्रतिरक्षा के लिए संसाधन जुटाना था। हालांकि चीनी अधिनियम में 1733 के शीरा अधिनियम में प्रस्तावित शुल्कों (ड्यूटी) को आधा कर दिया गया था, फिर भी ब्रिटिश सरकार ने कानून को वास्तव में लागू करने के अपने संकल्प का संकेत दिया। स्टाम्प अधिनियम तो ठेकों, वसीयतों, अखबारों पर टैक्स था, वहीं 1767 के टाउनजेंड अधिनियमों ने कागज, कांच, सीसा और चाय पर शुल्क लगाानें का काम किया। इन अधिनियमों के लागू होने के बाद अमरीका में व्यापक स्तर पर ब्रिटिश सामानों का बहिष्कार हुआ, जिसके चलते 1766 में स्टाम्प अधिनियम को पूरी तौर पर तथा 1770 में टाउनजेंड अधिनियमों को आंशिक रूप में वापस ले लिया गया। इस व्यापक विरोध के कारण ब्रिटिश सरकार को अपने कदम वापस खींचने पड़े, किंतु 1773 का चाय अधिनियम ला कर उसने उपनिवेशों पर कर लगाने के अपने अधिकार के दावे को पेश करने की इच्छा भी व्यक्त की। ब्रिटेन के लगाए इन नए करों के बोझ ने ही उपनिवेशकों को विद्रोह के लिए नहीं उकसाया, किंतु विद्रोह का कारण यह भी रहा कि ये कर आर्थिक कठिनाइयों तथा मंदी के दौर में लगाए गए।

उपनिवेशकों ने ब्रिटेन को अनेक उत्पादन कर तथा शुल्क भी दिए और जहाजरानी अधिनियमों के चलते उन्हें लगभग दो प्रतिशत आय भी गंवानी पड़ी। यदि इन सब को जोड़ कर उन्हें 'कर' का नाम दे दिया जाए तो अमरीकी उपनिवेशकों का दिया हुआ प्रति व्यक्ति कर ब्रिटिश के दिए कर का लगभग एक तिहाई बनता था। और अधिक ब्रिटिश करों के भय तथा 1763 के पूर्व की व्यापारिक व्यवस्था के कुछ उपायों के प्रशासनिक स्तर पर लागू किए जाने के कारण ही उपनिवेशकों में प्रतिरोध की भावना भड़की। जिन पर बोझ आनुपातिक रूप में अधिक था, वहां प्रतिरोध विशेषकर हुआ।

3.3.1 आर्थिक समस्याएं : मंदी

अमरीकी क्रांति के आर्थिक कारण केवल व्यापारिकता के बोझ को लेकर नहीं, किंतु औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था

के उतार चढ़ावों से जुड़ा भाग्य लक्ष्मी की अनिश्चितताओं से भी संबंधित हैं। ब्रिटिश व्यापारियों ने 1745 से 1760 तक जो अमरीकी उपनिवेशों को ऋण का विस्तार किया उसके बाद 1760 के दशक में व्यापार के क्षेत्र में शक्ति परीक्षण हुआ। 1760 के बाद ब्रिटिश अर्थव्यवस्था ने धीमे विकास के दौर में प्रवेश किया और ऋण का प्रवाह पहले की अपेक्षा अंश मांत्र रह गया। इससे 1760 के दशक की मंदी की स्थिति और भी खराब हो गई और 1769 तथा 1771 के बीच वसूली भी शांत हो गई।

एम एगनल के अनुसार, "किंतु, सभी उपनिवेशों में, मंदी ने, विशेषकर दशक के उत्तरार्ध में और भी खराब होने की स्थिति में, विस्तारवादियों के सामने एक चुनौती रखी जो लगभग उतनी ही गंभीर थी जितनी ब्रिटिश उपायों के कारण खड़ी हुई चुनौती।" विस्तारवादी तो धनी व्यक्तियों का एक गुट था जिनका विश्वास "नई दुनिया की शक्ति तथा उसके भरपूर भविष्य" में था और जो दमनकारी ब्रिटिश प्रस्तावों के विरोध में थे। इन उच्च वर्गीय राष्ट्रभक्तों के विरोध में गैर विस्तारवादी खड़े थे। ये गैर विस्तारवादी भी धनी लोग थे, किंतु वे ब्रिटेन के बिना अमरीका के भविष्य के प्रति कम आश्वस्त थे, हालांकि वे उपनिवेशों के प्रति ब्रिटेन की अपेक्षाकृत नरम नीतियों के पक्ष में थे। एगनल का तर्क है कि हालांकि संपन्न विस्तारवादी अमरीका में एक "शक्तिशाली साम्राज्य" की रचना करने को उत्सुक थे, फिर भी यदि ब्रिटेन ने कुछ अधिक समझौतावादी रूख अपनाया होता तो वे सम्राट के विरूद्ध बगावत का झंडा नहीं उठाते।

एगनल 1760 के दशक के अंतिम वर्षों के जनता के विरोधों तथा लामबंदियों और 1770 के दशक के प्रारंभिक वर्षों अर्थात 1773 में चाय अधिनियम के विरूद्ध होने वाले आंदोलन से पहले के "शांत वर्षों" — के बीच एक अंतराल देखता है। विस्तारवादियों को "1760 के दशक में निम्न वर्ग की ज्यादतियों ने ठंडा" कर दिया था (और 1771 तथा 1773 के बीच ब्रिटेन के नरम पड़ने की आशाओं ने भी। 1773 में चाय अधिनियम के विरोधों के पहले "उच्च तथा निम्न वर्ग का गठबंधन सच में कहीं भी सुदृढ़ नहीं हुआ, और न ही राष्ट्रभक्ति की भावना फिर से उभरी।" 1774-1776 की अवधि के दौरान ही विस्तारवादियों को गैर विस्तारवादियों के प्रतिरोध पर काबू पाने में सफलता मिल पाई। गैर विस्तारवादी तो न्यूयॉर्क तथा पेनसलवेनिया के मध्यवर्ती उपनिवेशों में सर्वाधिक मजबूत थे। वरजीनया में निम्न वर्ग की कोई गंभीर चुनौती न होने के कारण गैर विस्तारवादी अधिक सहिष्णु थे और इसीलिए द्विपक्षीय सहयोग संभव हो गया। जनता के लामबंद होने का स्तर विशेषकर देहाती क्षेत्रों में पहले की किसी भी अवधि की तुलना में ऊंचा ही रहा। मैसाचूसिट्स, पेनसलवेन्या तथा वरजीनया के छोटे किसानों ने जहां राष्ट्रभक्तों का समर्थन किया, वहीं न्यूयार्क तथा दक्षिणी कैरलाइना के किसान राजभक्त हो गए। कुल मिला कर शहरों के निम्न वर्गों ने ब्रिटेन के विरूद्ध अमरीकी क्रांति का समर्थन किया।

3.3.2 विचारधारा तथा वर्ग

जोजेफ अर्न्स्ट ने अमरीकी क्रांति की आर्थिक तथा वैचारिक व्याख्याओं को जोड़ने का प्रयास किया है। उसने 1762 तथा 1772 के बीच चले एक क्रांतिकारी आंदोलन और 1772 तथा 1776 के बीच चलाने वाले एक स्वाधीनता आंदोलन में भेद किया है। 1762 के बाद के दशक के दौर के ऋण संबंधी तथा व्यापारिक संकटों के चलते जो मजबूत आंदोलन हुए उन्होंने न केवल ब्रिटेन को अपनी राजस्व नीति बदलने को बाध्य किया, अपितु उसे आर्थिक सुधारों, "शाही परंपरा व्यवस्था के भीतर" उपनिवेशों की स्थिति तथा "और अधिक आर्थिक प्रभुसत्ता की जरूरत" पर बहस के लिए भी तैयार होना पड़ा। 1762-1772 के दशक के अनुभव ने उपनिवेशों के अभिजात्य वर्ग को ब्रिटिश व्यापारिक व्यवस्था पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित किया, किंतु 1772 के संकट ने "सुधार की संभावना के इस भ्रम" को भी नष्ट कर दिया और "यह स्पष्ट हो गया कि असली समस्या स्वयं साम्राज्य ही था।" 1772 के बाद के स्वाधीनता आंदोलन ने न केवल नए मुद्दों को उठाया, अपितु 1774 के बाद इसने संघर्ष में किसानों को भी अच्छी संख्या में शामिल कर लिया। औपनिवेशिक आयातों के माध्यम से कारीगरों के उत्पादन पर लगाए जाने वाले प्रतिबंधों, कागजी मुद्रा पर लगे प्रतिबंधों के कारण धन की आपूर्ति पर लगी रोक तथा सम्राट और संसद की ओर से अमरीकी स्वायत्तता पर होने वाले प्रहार ने अमरीकी उपनिवेशों के अभिजात्य वर्ग की विचारधारा तथा दृष्टिकोण को ही बदल दिया।

अनुपभोग (नॉन कंसम्शन) तथा आयात न करना (नॉन इम्पोर्टेशन) आंदोलन में सक्रिय रहने वाले शहरी निम्न वर्गों अर्थात कारीगरों, मिस्त्रियों तथा दिहाड़ी मजदूरों में एक प्रकार की वर्ग चेतना आ गई। हालांकि

अमरीकी अभिजात्य वर्ग को मिस्तरियों तथा कारीगरों तथा मजदूर वर्गों द्वारा हो रहे लोकतंत्रीकरण के पक्ष में जाते दबाव पसंद नहीं थे, फिर भी "उन्हें वर्गहित की विचारधारा का भय नहीं था... अभिजात्य वर्ग को भय था तो एक संपत्तिविहीन आम जनता का।" गरीबों, भूखों तथा बेरोजगारों के विरोधों को स्थिरता के लिए खतरा माना गया जबकि कारीगरों तथा किसानों के साथ गठबंधन औचित्यपूर्ण थे। 1772 में अर्थव्यवस्था के ध्वस्त होने के बाद ही शाही व्यवस्था के भीतर व्यावहारिक सुधार के लिए होने वाला आंदोलन अमरीकी स्वाधीनता के लिए एक क्रांतिकारी मांग में बदल गया।

सर्वाधिक क्रांतिकारी उपनिवेश पेनसलवेनिया में कारीगरों को 1760 के दशक के दौरान लामबंद किया गया था और 1772 में उस्ताद दस्तकारों ने अपना स्वयं का संगठन, सदस्य तथा नीतियां बना लीं। किंतु, उससे भी अधिक क्रांतिकारी रहा गरीब कारीगरों, कमेरों, प्रशिक्षुओं तथा मजदूरों को एक नागरिक सेना (मिलिशा) के रूप में लामबंद करना। इस नागरिक सेना में अधिकत्तर गरीब कारीगर तथा मजदूर थे। एरिक फोनर के अनुसार, फिलाडेलफिया के निम्न वर्गों के अनेक लोगों के लिए यह "भीड़ से संगठित राजनीति की ओर संक्रमण की दिशा में पहला कदम" था। अंग्रेजी गृह युद्ध की न्यू मॉडल आर्मी की तरह नागरिक सेना "राजनीतिक लोकतंत्र की एक पाठशाला" थी। नागरिक सेना के सामान्य सैनिकों ने 1775-1776 के दौरान अपने समस्त अधिकारियों को चुनने का अधिकार मांगा और कभी कभी तो यहां तक सुझाव दिया कि सभी अधिकारियों को एक वार्षिक मतदान से चुना जाए। उन्होंने मांग रखी कि प्रत्येक सहचारी सदस्य (असोशिएटर) को वोट करने का अधिकार हो चाहे उसकी संपत्ति संबंधी योग्यता जो भी हो तथा नागरिक सेना में सेवा करने को सबके लिए अनिवार्य कर दिया जाए तथा जो लोग सहचारी न बनें उन पर मोटा जुर्माना किया जाए और इस जुर्माने की राशि का उपयोग सहचारी सदस्यों के परिवारों के भरण पोषण के लिए किया जाए। फिलाडेलफिया की नागरिक सेना का उभरना निम्न वर्ग के समुदायों के राजनीतिकरण का प्रतीक था और गवर्नर मौरिस ने न्यूयॉर्क की एक जन सभा के बारे में कहा था वह फिलाडेलफिया पर भी लागू होता है कि : "भीड़ ने सोचना तथा तर्क करना शुरू कर दिया।"

फिलाडेलफिया के निम्न वर्गों की क्रांतिकारिता का कुछ श्रेय महा जाग्रति के पुनर्जागरणवाद को दिया जा सकता है जिसने स्कॉच आयरिश प्रेस्बेटेरियनों (पादरी संघ शासित गिरजों के सदस्यों) को प्रभावित किया। इन प्रेस्बेटेरियनों में से अधिकांश कारीगर, मजदूर अथवा नौकर थे। इवेंजेलिकल तथा तर्कवादी गणतंत्रवादी दोनों के ही फिलाडेलफिया के कारीगर समुदाय से मजबूत रिश्ते थे, और दोनों ही स्वर्ण युग की भाषा बोलते थे और अमरीकी समाज के आंतरिक रूपांतरण की बात करते थे।

पंद्रह हजार की आबादी वाला कस्बा बॉस्टन 1760 के दशक में क्रांतिकारी गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण केंद्र था, हालांकि 1768 के बाद से वहां 2000 ब्रिटिश सैनिकों की मौजूदगी ने शायद निम्न वर्ग की भागीदारी और भीड़ के क्रियाकलापों को सीमित कर दिया था। 1763-68 के दौरान स्टाम्प अधिनियम के विरूद्ध होने वाले संघर्ष के दौर में अभिजात्य वर्ग के नेताओं के शुरू किए गए आंदोलन के परिणामस्वरूप स्थानीय सामाजिक तथा आर्थिक शिकायतों को लेकर अनायास दंगे हो गए। अगस्त 1765 में "अल्पविकसित वर्ग भावना" की अभिव्यक्ति धनी अधिकारियों के विरूद्ध कार्रवाई के रूप में हुई और इसके "उच्च वर्गों पर एक अधिक सामान्यीकृत हमले का रूप ले लेने का खतरा बन गया।" प्रभुत्वशाली अभिजात्य वर्ग को यह भय हो गया कि निम्न वर्ग की यह कार्रवाई कहीं "लूट का युद्ध" अथवा "आम समानीकरण का युद्ध" का रूप न ले लें, और इसलिए उन्होंने अपनी सत्ता को फिर से थोपने के लिए सशस्त्र गश्त तथा गिरफ्तारियों का सहारा ले लिया। टाउनजेंड शुल्कों का विरोध करने वाले सौदागर वैसे तो संभावित रूप में खतरनाक निम्न वर्ग के सहयोगियों से निपटने को अनिच्छुक थे, फिर भी अनायातन (आयात न करना) आंदोलन को सक्रिय करने के लिए उन्होंने भीड़ का समर्थन लिया। 1768 में कुछ सौदागर अपने सामान को कस्टम अधिकारियों से छुड़ाने के लिए सामाजिक अशांति तथा दंगों का खतरा मोल लेने को तैयार थे। शाही नीतियों का सीधा प्रभाव जब बॉस्टन के निम्न वर्गों पर पड़ने लगा तो उन्होंने अपनी ही पहल पर तेजी से कार्रवाई की। लेकिन ये लोग नगर परिषद् के अधिक औपचारिक माहौल में अपनी पांच शिकायतों को प्रभावी ढंग से नहीं रख पाए। निम्न वर्ग के नागरिकों की अनेक शिकायतें थीं — बेरोजगारी, सिपाहियों के छुट्टी के घंटों में उनकी मजदूरों के साथ प्रतिस्पर्धा, सिपाहियों के साथ हंगामा आदि। नाविकों, गोदी कर्मचारियों तथा मिस्तरियों और सिपाहियों के बीच टकराव के परिणामस्वरूप मार्च 1770 में बॉस्टन का नरसंहार हुआ। विग नेताओं ने जल्दी ही भीड़ पर फिर से काबू कर लिया; इसके लिए उन्होंने

जो कदम उठाएं उनमें एक था जहाज बनाने की अनुमति देना जिससे सैकड़ों मिस्तरियों की बेरोजगारी दूर हो गई। जब तक चाय अधिनियम के विरूद्ध आंदोलन शुरू हुआ, नवम्बर 1772 में गठित 'बॉस्टन कमेटी ऑव कॉरिस्पांडेंस' ने समूचे प्रांत में अपने संपर्क बना लिए थे और बॉस्टन के आम जन ने व्यापक तौर पर विग नेताओं के पक्ष में जाने वाले ब्रिटिश विरोधी ढांचे के अंदर रहते हुए काम किया। 1773 आते आते बॉस्टन के अभिजात्य वर्ग ने ब्रिटिश विनियमों के निम्न वर्ग पर पड़ने वाले स्थानीय प्रभावों को शाही समस्याओं के बारे में संवैधानिक सिद्धांतों के साथ जोड़ने में सफलता प्राप्त कर ली थी और अगस्त 1765 में जो वर्ग चेतना उभरी थी उसे उचित ढंग से मुखरित होने से रोक दिया था।

क्रांतिकारी युद्ध का परिणाम यह हुआ कि साधारण लोगों पर भारी मांग उठी और जनता में असंतोष पैदा हुआ। क्रांति ने और भी क्रांतिकारी विचारों को प्रेरित किया तथा क्रांतिकारी अभिजात्य वर्ग को इस बात के लिए बाध्य किया कि वे जनता के प्रति और भी समायोजनकारी तथा समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाएं।

3.3.3 क्रांति तथा इसके परिणाम

अमरीकी क्रांति आंशिक रूप में सम्राट की ओर से संरक्षकत्व तथा पदों में होने वाली चालबाजी के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया थी। जस्टिस ऑव द पीस, नागरिक सेना के अधिकारी, जज, शेरिफ जैसे स्थानीय अधिकारियों की नियुक्ति वरजीनया के अतिरिक्त अन्य सभी शाही उपनिवेशों में सम्राट की कृपा पर निर्भर करती थी। वहीं ब्रिटेन में इन्हीं पदों पर नियुक्ति के मामले में इतना शाही हस्तक्षेप नहीं था। इस स्थानीय स्तर पर शाही संरक्षकत्व से शत्रुता का मतलब होता था शाही व्यवस्था से शत्रुता। 1776 के राज्य के नए क्रांतिकारी संविधानों मे नियुक्ति का अधिकार उन अनेक बुराइयों में शामिल था जिन्हें रोकने तथा समाप्त करने की चेष्टा अमरीकियों ने की। अठारहवीं शताब्दी के राजसी तथा पारंपरिक विश्व दृष्टिकोण में शासकों का सामाजिक तथा नैतिक दोनों दृष्टियों से सम्मानजनक होना जरूरी था। गॉर्डन वुड के अनुसार "अमरीकी क्रांति आंशिक रूप में इन परस्पर भिन्न विवेचनाओं के ऊपर लड़ी गई कि अमरीका में उपयुक्त सामाजिक नेता कौन थे जिन्हें स्वाभाविक रूप में सार्वजनिक सत्ता के पदों पर आसीन किया जाना चाहिए।" अठारहवीं शताब्दी में उपनिवेशों की राजनीति बुनियादी तौर पर राज्य पर अधिकार जमाने के लिए प्रमुख घरानों के बीच होने वाली लड़ाई थी। दासता पर कानूनी नियंत्रणों की अपेक्षा, भद्रजन की शक्ति पर आधारित राजनीति के व्यक्तिगत ढांचे ने ही जन साधारण को राजनीति में भागीदारी से रोका। अठारहवीं शताब्दी के पितृसत्तावादी तथा आमने सामने के संबंधों में पारंपरिक अधिकारों तथा नैतिक अर्थव्यवस्था में आस्था पर आधारित बार बार होने वाले दंगों तथा हुल्लड़बाजी को स्थानीय समुदाय ने और कहीं कहीं तो भद्रजनों ने भी स्वीकार कर लिया था। ब्रिटिश दमन के विरूद्ध अमरीकी प्रतिरोध के दौर में जनता की भागीदारी ने काफी बड़ा रूप ले लिया; इस भागीदारी को प्रारंभ में भद्रजनों तथा सौदागरों की ओर से उकसाया तथा प्रोत्साहित किया गया था। 1776-1783 के अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम तथा प्रतिरोध के दौर में, अठारहवीं शताब्दी के अंत के प्राचीन शासन के चिर परिचित प्रभाव तथा संरक्षकत्व तंत्र का सफाया कर दिया गया। अमरीकी क्रांति ने कुलीन तंत्र के विशेषाधिकारों, शाही समाज तथा गुलामी समेत वस्तुत: हर प्रकार की पराधीनता पर हमले का प्रतिनिधित्व किया। किंतु, अंतिम विश्लेषण में अमरीकी क्रांति की मुख्य उपलब्धियां थीं राजनीति में आम जनता की भागीदारी का विकास और आर्थिक विकास तथा राजनीतिक समानता के आदर्शों पर आधारित मुक्त बाजार का उदय।

अमरीकी क्रांति ने शाही समाज तथा कुलीन तंत्र के विशेषाधिकारों को करारा झटका दिया। अमरीका के स्वाधीनता संग्राम के दौरान ब्रिटेन का समर्थन करने वाले राजभक्त कुल पांच लाख लोग थे, अर्थात गोरे अमरीकियों का 20 प्रतिशत। लगभग 80,000 राजभक्त क्रांति के दौरान अमरीका छोड़ कर चले गए और उनके जाने से सत्ता का पुराना औपनिवेशिक पुश्तैनी ढांचा कमजोर पड़ गया। पुराने औपनिवेशिक समाज के कुछ प्रमुख सदस्यों के चले जाने से वास्तव में उनके लिए जगह बन गई जिन्हें जेफरसन ने "गुण तथा प्रतिभा का कुलीन तंत्र" कहा था। क्रांति के बाद सभी रियासतों ने ज्येष्ठाधिकार तथा अनिवार्य उत्तराधिकार के कानूनों को समाप्त कर दिया, जिनके चलते बड़ी जागीरों तथा घरानों को संरक्षण मिल रहा था, हालांकि ये प्रथाएं समय के साथ लुप्त हो रही थी। संपत्ति के उत्तराधिकार तथा अधिग्रहण के मामलों में विधवाओं तथा पुत्रियों के समान अधिकार को मान्यता दी गई। क्रांति के बाद पत्नियों पर पुरूषों का पितृसत्तात्मक नियंत्रण कम हो गया, पत्नियों को यह अधिकार मिल गया कि वे अपने पतियों की अनुपस्थिति में व्यापार कर सकती हैं, अनुबंध कर सकती

हैं तथा अपनी अलग संपत्ति रख सकती हैं। दक्षिणी कैरलाइना को छोड़ अन्य सभी राज्यों ने तलाक के उदार कानून लागू किए। विधवाओं को जागीरों पर एक तिहाई का अधिकार मिल गया, जबकि पहले यह प्रथा थी कि वे बस जीवन भर उसका उपयोग कर सकती हैं। अमरीकी क्रांति ने न केवल काश्तकारी के सामंती स्वरूपों को समाप्त किया, अपितु परिवार के प्रति अपेक्षाकृत अधिक प्रबुद्ध दृष्टिकोण का समर्थन किया।

बोध प्रश्न 2

1) अमरीकी क्रांति में योगदान करने वाले महत्वपूर्ण कारकों का विश्लेषण कीजिए। 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) अमरीकी क्रांति के परिमाणस्वरूप जो बदलाव आए उनमें से कुछ महत्वपूर्ण बदलावों की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

3.4 संविधान का निर्माण

अमरीकी स्वाधीनता संग्राम ने सभी तेरह अमरीकी उपनिवेशों को एक करने में मदद की, किंतु ये उपनिवेश अपने विशिष्ट आर्थिक हितों तथा राजनीतिक स्वाधीनता को छोड़ने के इच्छुक नहीं थे। 1781-1787 के 'परिसंघ के नियमों' के तहत, केंद्र सरकार बेहद कमजोर थी, अधिकांश सत्ता राज्यों के पास थी जिन्होने अपनी संप्रभुता को बनाए रखा था और कांग्रेस के पास व्यापार को नियंत्रित करने अथवा कर लगाने का अधिकार नहीं था। परिसंघ के दौर की कुछ कमजोरियों को तो उन लोगों ने बढ़ा चढ़ा कर पेश किया जो एक मजबूत सरकार तथा एक राष्ट्रीय संविधान के हिमायती थे, किंतु इन नियमों के तहत केंद्र सरकार की वित्तीय स्थिति अत्यंत कमजोर थी। कोई एक राज्य अकेला ही परिसंघ के नियमों को बदलने के किसी भी प्रयास को वीटो कर सकता था।

हालांकि फिलाडेलफिया अधिवेशन में प्रस्तुत 1787 के संविधान को स्वतंत्र तथा दास राज्यों, बड़े तथा छोटे राज्यों और संघवाद समर्थकों तथा संघवाद विरोधियों के बीच अनेक समझौतों के रूप में देखा गया है, फिर भी एक स्तर पर यह एक मजबूत राष्ट्रीय सरकार के लिए विजय का प्रतीक था। संघवाद विरोधियों का रूख एक राष्ट्रीय सरकार के विचार के प्रति स्पष्ट न होने के कारण जीत संघवाद समर्थकों की हुई।

संघवाद विरोधियों को भय था कि मैडिसन जैसे संघवाद समर्थक ऐसा संविधान प्रस्तुत करेंगे जो "मध्यम वर्ग" की कीमत पर कुलीन तंत्र को मजबूत करेगा। इसमें राष्ट्रपति को बहुत अधिक अधिकार दे दिए गए थे जिससे एक निरंकुश सरकार के बनने की आशंका रही। हालांकि कुछ संघवाद विरोधी कांग्रेस को कुछ विशिष्ट कर लगाने का अधिकार देने को तैयार थे, फिर भी वे संघीय आंतरिक अथवा प्रत्यक्ष करों के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि इनकी वसूली व्यक्तियों को प्रभावित करती तथा इसके परिणामस्वरूप राज्यों के साथ प्रतिस्पर्धा की स्थिति बनती। संघीय सरकार की जरूरतों को पूरा करने के लिए आयात शुल्कों से होने वाली आय पर्याप्त होती, क्योंकि संघीय ऋण को प्रत्येक राज्य अलग अलग दे सकता था। संघवाद विरोधियों ने प्रत्यक्ष कर लगाने की प्रक्रिया पर आंशिक नियंत्रण बनाए रखने की कोशिश की और यह आशा बांधी कि जनता "पैसे और तलवार के संयोग से सुरक्षित" रहेगी। सशस्त्र बलों का सेनापति होने के नाते राष्ट्रपति तथा कांग्रेस एक निकाय के रूप में शांति काल में भी

सेना बनाने के अधिकार की मदद से अनुचित कर वसूल कर सकते थे और इस सेना का रख रखाव उन दमनकारी टैक्सों से किया जा सकता था। संघवाद विरोधियों को यह भी भय था कि "आम कल्याण" तथा "आवश्यक एवं उपयुक्त" की बात करने वाली संविधान की अपरिभाषित धाराएं सत्ता के केंद्रीकरण को जन्म देंगी जिसका आधार मैडिसन द्वारा प्रतिपादित अंतर्निहित अधिकारों का सिद्धांत होगा। जब राज्यों ने संविधान में संशोधन करना शुरू किया तो उस दौर में यह स्पष्ट हुआ कि दस में से कम से कम नौ संघवाद विरोधी एक 'अधिकार विधेयक' के पक्ष में थे। विवेक अथवा धर्म की स्वतंत्रता, जूरी के सामने मुकदमें का अधिकार तथा समाचार माध्यम की स्वतंत्रता ऐसे तीन अधिकार थे जिनकी मांग बार बार उठाई गई। हालांकि फिलाडेलफिया अधिवेशन ने दुनिया के सर्वप्रथम विस्तृत तथा लिखित लोकतांत्रिक संविधान को प्रस्तुत किया, फिर भी 1791 में अधिकार विधेयक बनने की स्थिति संविधान के संशोधन की प्रक्रिया के दौरान उठने वाली बहस तथा असहमतियों के परिणामस्वरूप ही आ पाई। ये अमरीकी संविधान में होने वाले पहले दस संशोधन थे। इन अधिकारों में से केवल एक अधिकार राज्यों के अधिकारों से संबंधित था, बाकी सब व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं से संबंधित थे।

चार्ल्स बियर्ड ने अमरीकी संविधान की एक आर्थिक विवेचना प्रस्तुत की, जिसके अनुसार सौदागर, महाजन, सिक्योरिटी होल्डर्स, वित्तदाता तथा निर्माता इसलिए संविधान के समर्थक थे क्योंकि उन्हें इससे फायदा होने की उम्मीद थी। उनके विरोधी भूसंपत्ति के स्वामी, विशेषकर वे कर्जदार तथा छोटे किसान थे जिन्हें यह भय था कि एक मजबूत राष्ट्रीय सरकार कर लगाएगी और अमरीकी सरकार की ऋण संबंधी साख को बढ़ाने के लिए उसी के अनुसार नीतियां अपनाएगी जिससे सस्ती मुद्रा के समर्थक तथा कर्जदार आहत होंगे।

अमरीकी संविधान तो अधिकारों के अलगाव के सिद्धांत पर आधारित था, जिससे सरकार का कोई एक अंग : कार्यपालिका, विधायिका अथवा न्यायपालिका, हावी न हो जाए। इस संविधान में सीनेट में प्रत्येक राज्य को समान प्रतिनिधित्व के संघीय सिद्धांत को एक राष्ट्रीय सरकार तथा लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित प्रतिनिधि सभा के सिद्धांत से मिला कर भी रखा गया था। सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की विवेचना का अधिकार दिया गया। अठारहवीं शताब्दी में संविधान ने एक मजबूत राष्ट्रीय सरकार के लिए आधार बना दिया, जो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में तेजी से आधुनिक बनते एक समाज की समस्याओं से निपटने में समर्थ साबित हुआ। इधर अमरीका एक ऐसे बाजारोन्मुख समाज के रूप में विकसित हो रहा था जहां एक औद्योगिक सभ्यता उभर रही थी, तो उधर संघवाद समर्थकों का राष्ट्रवादी रूझान तथा मूल्य नए युग की आवश्यकताओं के लिए अधिक उपयुक्त दिखाई दे रहे थे। मैडिसन जैसे संघवाद समर्थकों ने जिस संविधान को रचने में मदद दी थी, वह 1790 के दशक में ऐलिग्जेंडर हैमिल्टन के राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम का आधार था। हैमिल्टन "एक साझा निर्देशक शक्ति" की जरूरत में पक्का विश्वास करता था और जेफरसन के इस गणतंत्रवादी विचार से सहमत नहीं था कि अल्पतम प्रशासन ही श्रेष्ठतम प्रशासन था। 1790 में वित्त मंत्री रहते हुए उसने एक महान वित्तीय सैनिक राज्य बनाने की कोशिश की किंतु वाणिज्यिक पूंजीवाद की उठती लहरें ही अंत में विजयी रहीं : विखंडित प्रबुद्ध नेताओं की संघवाद समर्थक स्थिति को बनाए रखना इन दोनों कारणों से कठिन साबित हुआ कि (i) अधिकांश संघवाद समर्थकों के लिए इस आदर्श पर खरा उतरना कठिन साबित हुआ और (ii) उन्नीसवीं शताबदी के प्रारंभिक वर्षों तक आते आते अमरीका में एक जीवंत बाजारोन्मुख वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था का विकास हो गया। सच पूछें तो अमरीका में कुलीनतंत्र पर हमला एक आदर्श के रूप में इतना सफल था कि निठल्लापन शर्म की बात हो गई और मेहनत सम्मान का विषय हो गया।

अमरीका में 1820 के दशक में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व उभरे उनमें से एक था पैसा बनाने तथा आत्म हित के विचार के प्रति उत्साहपूर्ण समर्थन। ये विचार अमरीकी आस्थाओं के साथ स्वतंत्रता के आदर्शों तथा सुख की खोज में जुड़े थे। अनेक अमरीकियों के लिए तो पैसा बनाने की योग्यता ही मनुष्यों का आकलन करने का एक मात्र उपयुक्त लोकतांत्रिक तरीका था, उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि अथवा शिक्षा नहीं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही एक 'स्वनिर्मित पुरूष' के रूप में बेंजामिन फ्रेंकलिन की छवि को प्रचार मिला, जब उसकी आत्मकथा के कई संस्करण छपे। जैसा कि 1830 के दशक तक टॉकवील ने निष्कर्ष दिया, निजी स्वार्थ ही अशांत तथा विविध अमरीकी लोगों को एकजुट किए हुए था, "वह निजी स्वार्थ जो प्रत्येक क्षण में उभरता है, यही नहीं, वह स्वार्थ जो खुल कर सामने आता है तथा अपने आपको एक सामाजिक सिद्धांत के रूप में घोषित भी करता हैं।" अमरीका में निजी स्वार्थ, पैसा बनाने तथा सुख के पीछे भागने की प्रवृति का परिणाम 1770 के दशक की अमरीकी क्रांति के काल की अपेक्षा 1820 तथा 1830 के दशकों में धन के मामले में और भी अधिक असमानता

के रूप में सामने आया। किंतु अधिकांश अमरीकी यही महसूस करते थे कि वे उस समय की तुलना में अब अधिक समान तथा लोकतांत्रिक हो गए थे। 1776 में ऐडम स्मिथ ने "विवेक को लाने के लिए मानवीय स्वार्थ को छोड़ने तथा विवेक के माध्यम से मनुष्यों के बीच आर्थिक संबंधों में संपन्नता लाने की वकालत की।" हालांकि बेलिन् ने यह टिप्पणी अमरीकी क्रांति पर प्रभाव डालने के लिए वेल्थ ऑव नेशन्स के विचारों पर की थी, यह बात उन्नीसवीं शताब्दी के पहले पच्चीस वर्षों में उभरने वाले अमरीका पर और भी जोरदार ढंग से लागू होती है।

अमरीकी संविधान निश्चित रूप से 'परिसंघ के नियमों' का परिष्कृत रूप था, किंतु सच में राष्ट्रवादियों की वरजीनिया योजना लोकतंत्र की बहुतायत से उठने वाली समस्याओं का एक कुलीनतंत्रीय समाधान था जिसने जॉर्ज वाशिंगटन तथा जेम्स मैडिसन जैसे व्यक्तियों को भी चौंका दिया।

अमरीका का संविधान वास्तव में एक राष्ट्रीय तथा एक संघीय सरकार के बीच "मध्य भूमि" का प्रतीक था। जेम्स मैडिसन "एक गणतंत्र के उपयोगी क्षेत्र" की तलाश कर रहा था, जो निरंकुश बहुसंख्यकों के अत्याचार तथा स्थानिकता की ज्यादतियों को और उदासीन शासकों के हाथों में सत्ता के संकेंद्रण को भी रोक सके।

बोध प्रश्न 3

1) अमरीकी संविधान की कुछ प्रमुख विशेषताएं बताइए। 60 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) अमरीकी संविधान के सवाल पर संघवाद समर्थकों तथा संघवाद विरोधियों के बीच क्या मतभेद थे? 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3.5 दासता पर आधारित लोकतंत्र

अमरीकी लोकतंत्र के टिप्पणीकारों ने इसे हमेशा विरोधाभासपूर्ण अथवा लज्जाजनक माना है कि 1776 में स्वाधीनता का घोषणापत्र लिखने वाला तथा अमरीका में गणतंत्रवाद का एक महान समर्थक टॉमस जेफरसन स्वयं गुलाम पाले हुए था। जेफरसन के रहन सहन के ढंग को बनाए रखने के लिए कोई पचास गुलामों को बेचना पड़ा था और उसके मरने के बाद उसके कर्जों को चुकाने के लिए कुछ और गुलामों को बेचा गया, जब जाकर उसकी अंतिम वसीयत के अनुसार उसके सौ से भी अधिक गुलामों में से केवल 10 प्रतिशत के आसपास को आजादी मिल पाई। 1787 के अमरीकी संविधान में भी गुलामी को मान्यता मिली और सच में तो इसका आधार दक्षिण के गुलाम पालक राज्यों तथा उत्तर के स्वतंत्र राज्यों के बीच होने वाला एक समझौता ही था।

अमरीका में दासता को एक "अनूठी संस्था" कहा जाने लगा, इसने इस बारे में कुछ विवाद भी खड़े किए कि अमरीका में इसके भौगोलिक प्रसार को रोकने के उचित तरीके क्या हो सकते हैं, और इसके परिणामस्वरूप 1808 में अफ्रीकी दास व्यापार पर कानूनी प्रतिबंध लगा दिया गया, किंतु गुलामों का इस्तेमाल नई दुनिया में व्यापक स्तर पर प्रचलित था। दासता की संस्था गुलामों की जिंदगी पर समाज के नियंत्रण के आर्थिक शोषण पर आधारित थी। बीसवीं शताब्दी के पैमाने से दासता के पक्ष में तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता, किंतु हाल के

इतिहासकारों ने दासता की व्यवस्था को समझने की कोशिश केवल इसकी निंदा करने के उद्देश्य से नहीं की है। हालांकि दासता की प्रथा शोषणकारी थी, फिर भी गुलामों के मालिकों को यह ध्यान रखना पड़ता था कि उन्हें पौष्टिक आहार तथा दवाइयां मिलती रहें, ताकि उनकी काम करने की क्षमता तो सुनिश्चित रहे।

दासता का मुद्दा 1787 के संविधान को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक था। अमरीकी गणतंत्र के संस्थापक ज्ञानोदय के लोकतांत्रिक विचारों तथा आर्थिक एवं वर्गीय हितों से प्रभावित थे। दासता के मुद्दे पर उत्तर के स्वतंत्र राज्य दक्षिण के गुलाम राज्यों से अलग हो गए, क्योंकि दक्षिण के राज्य दासता के जारी रहने की स्थिति में सधने वाले अपने आर्थिक हितों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। यह तर्क बार बार दिया गया है कि अमरीकी उपनिवेशों में आर्थिक तथा राजनीतिक विभाजनों पर आधारित राष्ट्रीय अथवा केंद्र सरकार के प्रति जो गहरा अविश्वास था, वह परिसंघ के नियमों (1781-1787) की कमजोरी के स्पष्ट हो जाने के बाद भी पक्की एकता की राह में रोड़ा था। यदि 1787 के संविधान में दासता को मान्यता नहीं दी जाती तो यह खतरा था कि गुलाम रखने वाले राज्य संघ में शामिल होने से इंकार कर सकते थे अथवा गुलाम राज्यों के दक्षिण में पड़ने वाले स्पेन शासित क्षेत्रों के प्रभाव में आ सकते थे। दासता को कानूनी तथा संवैधानिक मान्यता देना अमरीकी संघ की रचना तथा संरक्षण के लिए एक आवश्यक शर्त माना गया। जॉन रटलिज तथा दक्षिण के अन्य प्रतिनिधि उस प्रावधान के विरूद्ध वोट करने को सहमत हो गए जिसके अनुसार व्यापार से संबंधित कानून बनाने के लिए राष्ट्रीय विधायिका का दो तिहाई बहुमत जरूरी था। ऐसा इसलिए किया गया ताकि गुलामों के आयात पर रोक लगाने की व्यवस्था को और आगे बढ़ाने के पक्ष में रॉबर्ट शर्मन तथा न्यू इंगलैंड के अन्य प्रतिनिधियों का समर्थन लिया जा सके।

हालांकि अमरीका के संस्थापक कोई दकियानूस गुलाम मालिक नहीं थे, फिर भी दासता को समाप्त करने की समस्या से निपटने की उनमें इच्छा नहीं थी। अमरीकी लोग संपत्ति की पवित्रता को अत्याधिक महत्व देते थे और क्योंकि गुलाम भी एक प्रकार की संपत्ति थे तो इसलिए मालिकों को उचित मुआवजा दिए बिना गुलामों को मुक्ति देना संभव नहीं था। गुलामों की आजादी की किसी भी योजना का यह एक अवरोध था। दासता को प्रतिबंधित करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपाय वह प्रावधान था जिसके अनुसार कांग्रेस को गुलामों को आयात पर पाबंदी लगाने की अनुमति संविधान लागू होने के बीस वर्ष बाद मिली। अमरीका के गुलामों के आयात पर पाबंदी लगाने के बाद क्यूबा तथा ब्राजील के लोगों ने मिल कर पंद्रह लाख से भी अधिक अफ्रीकियों को अपने चीनी तथा चाय बागानों के लिए आयात किया।

उत्तर पश्चिम अध्यादेश (1787) ने मध्य पश्चिमी क्षेत्र में दासता पर प्रतिबंध लगा दिया। 1784 में इससे भी अधिक क्रांतिकारी अध्यादेश पारित हुआ था जिसके अनुसार यह प्रस्तावित हुआ कि गुलामी को 1800 के बाद सभी नए अमरीका शासित क्षेत्रों में फैलने की छूट नहीं दी जाएगी। उत्तरी तथा दक्षिणी राज्य तो कांटिनेंटल कांग्रेस से स्वीकृति लेने में असमर्थ रहे थे। इलिनॉय, इंडियाना, ओहायो, मिशिगन तथा विस्कांसन के भावी राज्यों में दासता पर प्रतिबंध लगाने वाले अध्यादेश (1787) को गुलाम दक्षिणी राज्यों ने इसलिए स्वीकार कर लिया था ताकि उत्तरी राज्यों के गुलाम मालिकों की उत्पादित तंबाकू तथा नील जैसी प्रमुख वस्तुओं के उत्पादन में प्रतिस्पर्धा को कम किया जा सके।

इस प्रकार गणतांत्रिक भावनाओं तथा 1787 तथा 1807 में गुलामी की प्रथा को फैलने से रोकने संबंधी विधान ने गुलाम दक्षिणी राज्यों को कमजोर करने तथा अमरीकी क्रांति के बाद गुलामी को धुर दक्षिण में एक पीढ़ी में बांध देने में मदद की। अगर फूट का खतरा टाला जा सके तो नरमपंथी सुधारवादी वहां दासता को समाप्त करने को तैयार थे जहां आर्थिक दायित्व कम था और जहां अश्वेतों की आबादी अनुपात में कम होने के कारण वहां गुलामी को समाप्त करना अपेक्षाकृत आसान था।

हालांकि दासता को संविधान में मान्यता मिली थी, फिर भी इस शब्द का प्रयोग इस प्रथा को समाप्त करने वाले तेरहवें संशोधन में मात्र एक बार हुआ। स्वयं संविधान में गुलामों का उल्लेख केवल "अन्य व्यक्तियों" अथवा "सेवा या मजदूरी में नियुक्त व्यक्ति" के रूप में किया गया है। संविधान में ऐसे पांच प्रावधान थे जिनमें दासता को स्पष्ट रूप में मान्यता दी गई थी। पारंपरिक इतिहासकारों के विचार के विपरीत अधिवेशन के दौरान 3/5 की धारा कराधान तथा प्रतिनिधित्व पर समझौते की प्रतीक नहीं थी। वास्तव में तो इसकी शुरुआत उन

के बीच समझौते के रूप में हुई जो प्रतिनिधित्व के उद्देश्य से गुलामों को पूरा-पूरा गिनना चाहते थे और दूसरे वे जो गुलामों की गिनती करने के बिल्कुल खिलाफ थे।

उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों के बीच जिस समझौते के फलस्वरूप अमरीकी संघ तथा 1787 के संविधान का निर्माण हुआ उसमें प्रत्येक गुलाम को प्रतिनिधित्व तथा कराधान दोनों उद्देश्यों से एक व्यक्ति का 3/5 होना था। 1790 में इस 3/5 की धारा के आधार पर दक्षिणी राज्यों ने प्रतिनिधि सभा तथा निर्वाचन मंडल में 47% स्थानों पर नियंत्रण कर लिया, हालांकि वे राष्ट्र की श्वेत आबादी का लगभग 40% थे। 14 अतिरिक्त निर्वाचकों की मदद से टॉमस जेफरसन 73-65 के अनुपात से जॉन ऐडम्स को हरा कर अमरीका के राष्ट्रपति बन गए। अगर 3/ 5 जैसी कोई धारा नहीं होती तो संघवाद समर्थक ऐडम्स ने 63-61 के अत्यंत कम अंतर से 1800 का चुनाव जीत लिया होता। जेफरसन का युग 3/5 की इस अलोकतांत्रिक धारा के बिना संभव नहीं होता।

जब अठारहवीं शताब्दी के कुलीनतंत्रीय गणतंत्रवाद की जगह उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जैक्सन युग के अपेक्षाकृत अधिक समतावादी गणतंत्रवाद ने ले ली तो गुलाम मालिकों का पक्ष लेने वाली इस धारा पर उत्तरी राज्यों के राजनीतिज्ञों तथा जनमत ने अपनी अप्रसन्नता जता दी। इसके अतिरिक्त उन्नीसवीं शताब्दी में सार्वजनिक भूमि की बिक्री तथा विदेश व्यापार पर सीमा शुल्क के माध्यम से कांग्रेस क्योंकि संसाधन जुटाने में समर्थ रही, इसलिए गुलामों को और अधिक प्रतिनिधित्व के लिए और अधिक प्रत्यक्ष कर देने की जरूरत नहीं रह गई।

दासता की उपस्थिति को केवल अमरीकी समाज के माथे पर कलंक ही नहीं माना गया है, अपितु अमरीका में पूंजीवादी विकास की राह का रोड़ा भी समझा गया है। चार्ल्स बियर्ड जैसे अनेक अमरीकी इतिहासकारों तथा बैरिंगटन मूर जैसे समाजविज्ञानियों ने 1861-65 के अमरीकी गृह युद्ध को एक पूंजीवादी आंदोलन माना है जिसने अमरीका के आर्थिक विकास को गति दी। दासता की समस्या को सुलझाने में अमरीकी क्रांति की असमर्थता पर अंत में कृषि प्रधान दक्षिण के गुलाम राज्यों पर उद्योग प्रधान स्वतंत्र उत्तरी राज्यों की जीत के सहारे काबू पाया गया। बागानों में गुलामी का अंत करके तथा गुलामों को मुक्ति दे कर स्वतंत्र उत्तरी राज्यों ने अठारहवीं शताब्दी के अंत की अमरीकी क्रांति के अधूरे काम को पूरा किया। यूजीन जेनोवीज का तर्क था कि दासता ने दक्षिणी राज्यों के आर्थिक विकास को मंद कर दिया क्योंकि गुलामों की कमाई ने स्थानीय बाजार के आकार को दक्षिण राज्यों के औद्योगिक उत्पादनों के लिए सीमित कर दिया। दासता तो शायद अमरीकी व्यक्तिवाद तथा समतावाद के आदर्शों के साथ असंगत रही होगी, किंतु दासता गृह युद्ध के ठीक पहले पतनशील संस्था नहीं थी और गुलाम रखने वाले व्यक्तियों के लिए घाटे का सौदा भी नहीं थी। दासता के अर्थशास्त्र का एक पुराना दृष्टिकोण यह था कि यह अधिकाधिक घाटे का सौदा बनती जा रही थी और गृह युद्ध के बिना भी इसका पतन हो गया होता। दासता के विषय में यह भी विचार था कि इसके परिणामस्वरूप दक्षिण में कृषि उत्पादों पर आवश्यकता से अधिक निर्भरता बनी जिसके कारण यह उत्तरी सौदागरों तथा पूंजीपतियों पर अधिकाधिक आर्थिक निर्भरता की स्थिति में आ गया।

3.6 जन राजनीति तथा जैक्सनी लोकतंत्र का विकास

गणतंत्रवादी विचारधारा का प्रमुख प्रवक्ता जेफरसन एक ऐसे प्रकार के कृषि प्रधान लोकतंत्र में विश्वास करता था जिसमें छोटे छोटे जमींदार किसान लोकतांत्रिक समाज की रीढ़ की हड्डी बनें। इस बात पर बल दिया गया कि छोटी छोटी राजनीतिक इकाईयां हों, जनता तथा उसके प्रतिनिधियों के बीच निकट का संपर्क हो तथा व्यक्तियों के पास एक सार्थक लोकतंत्र को जीवित रखने के स्वतंत्र साधन हों। व्यापार तथा वाणिज्य के बारे में जेफरसन की राय कोई बहुत अच्छी नहीं थी और वह वित्त दाताओं तथा बैंकरों से भी एक प्रकार का बैरभाव रखता था जिनका घातक प्रभाव अथवा धन शक्ति लोकतंत्र के लिए खतरा था। हालांकि जेफरसन का प्रेस की स्वतंत्रता तथा नागरिक स्वतंत्रता तथा अमरीकी संविधान में पक्का विश्वास था, फिर भी उसने अपने आदर्शों के अनुरूप हमेशा व्यवहार नहीं किया। हालांकि उसने 1798 के विदेशी एवं राजद्रोह अधिनियमों के माध्यम से प्रेस तथा नागरिक स्वतंत्रता पर हमला बोलने के लिए ऐडम्स प्रशासन का विरोध किया था, फिर भी 1807-1809 के घाटबंदी (इम्बार्गो) के वर्षों के दौरान राष्ट्रपति के रूप में उसने नागरिक स्वतंत्रता तथा प्रेस

की स्वतंत्रता दोनों का ही सक्रियता से दमन किया। 1798 में भी जब जेफरसन ने अन्यायपूर्ण कानूनों के खिलाफ वरजीनया तथा केंटकी प्रस्तावों को प्रस्तुत किया था तो भी उसने यह कदम इसलिए उठाया था क्योंकि इनसे राज्य के कानूनों का उल्लंघन होता था। वैसे, जेफरसन धर्म संस्था (चर्च) तथा राज्य को अलग अलग रखने की हमेशा हिमायत करता रहा। अमरीकी अर्थव्यवस्था में होने वाले बदलावों ने जेफरसन को व्यापार तथा वाणिज्य, विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने को बाध्य कर दिया और उसके राष्ट्रपति रहने के दौरान रिपब्लिकन पार्टी की वाणिज्यिक शाखा भी बन गई। हालांकि समस्त बाहरी व्यापार पर प्रतिबंध इसलिए लगाया गया ताकि टकराव को टाला जा सके। यह शांतिपूर्ण दमन की नीति थी फिर भी अमरीका में इसके परिणाम खराब रहे और जेफरसन को अपनी प्रतिबंधों की नीति को लागू करने के लिए नागरिक स्वतंत्रताओं को छोड़ना पड़ा। जेफरसन के लोकतंत्र के सिद्धांत और व्यवहार के बीच जो अंतर रहा, वह केवल इसलिए नहीं बना था कि स्वयं जेफरसन में स्थिरता तथा दृढ़ता की कमी थी अथवा एक विपक्ष के नेता तथा एक राष्ट्रपति के राजनीतिक दबावों में अंतर होता है, अपितु इसलिए भी बना था कि अमरीका की अर्थव्यवस्था तथा समाज में बदलाव आ रहे थे।

परिवहन, औद्योगीकरण के क्षेत्र में होने वाले विकास, पश्चिम की ओर होने वाले विस्तार तथा एकाधिकार के विशेषाधिकारों और भ्रष्टाचार के प्रति बढ़ रहे बैरभाव के कारण ऐनड्रू जैक्सन गणतंत्रवाद को लोकतंत्र का रूप देने में समर्थ रहा। केंद्र सरकार की तुलना में राज्य के अधिकारों पर गणतंत्रवादियों के जोर देने का स्थान एक मजबूत राष्ट्रीय सरकार के अंदर ही बहुमत के शासन के सिद्धांत पर जोर देने की आवश्यकता ने ले लिया। जैक्सन इस बात को समझ गया था कि अमरीका के मतदाता सरकार के संचालन में और अधिक हस्तक्षेप चाहते थे। "जनता के नायक के रूप में अपनी भूमिका पर जोर देने" के बल पर जैक्सन कांग्रेस की तुलना में राष्ट्रपति की स्थिति मजबूत करने में समर्थ हो गया। इस स्थिति ने राष्ट्र के संस्थापकों की समान किंतु पृथक नीति को नष्ट कर दिया। इसके लिए सरकार की विधायी शाखा की कीमत पर कार्यपालिका को मजबूत किया गया। वित्त मंत्री डूएन को हटाने से राष्ट्रपति का यह अधिकार पक्का हो गया कि वह कांग्रेस को सूचना किए बिना ही सभी मंत्रियों को हटा या नियुक्त कर सकता है। 1825 के "अपहृत चुनाव" में जॉन ऐडम्स तथा हेंसी क्ले के बीच जो "भ्रष्ट सौदेबाजी" हुई उसके फलस्वरूप जॉन ऐडम्स को राष्ट्रपति पद मिल गया और आम भ्रष्टाचार के इस युग में यह भ्रष्टाचार का चरम था। उसके बाद जैक्सन हमेशा यह कहता रहा कि "बहुमत शासन करने के लिए होता है।" यह तर्क का विषय रहा है कि जनता का "स्थायी गुणगान" जैक्सनी लोकतंत्र का बुनियादी तत्व था। इस गुणगान का जनता आनंद उठाती तथा इसे स्वीकार करती थी। विशिष्ट उपायों की संवैधानिकता के मुद्दे का निर्णय जनता को मतपेटी के माध्यम से करना था। जहां तक जैक्सन का संबंध था, जनता के लोग किसान, मिस्तरी तथा मजदूर थे, व्यापारी तथा पूंजीपति नहीं, छोटे व्यापारी भी नहीं।

जैक्सन अमरीकी सरकार को लोकतांत्रिक बनाने का समर्थक था। नियुक्त पदों को हर चार साल बाद बदला जाना चाहिए और निर्वाचित पदों को सीधे जनता को भरना चाहिए। जैक्सन निर्वाचन मंडल को राष्ट्रपति के चुनाव में समाप्त करना चाहता था, अपनी शासनावधि को चार से छः वर्ष की एक अवधि तक सीमित करना चाहता था, जिससे वह भ्रष्ट करने वाले प्रभावों से बच जाए। सीनेटरों, संघीय जजों तथा अनुमानतः सर्वोच्च न्यायालय के जजों का चुनाव भी उचित रीति से होना चाहिए जिससे कि पद धारण करने के लोकतांत्रिक सिद्धांतों को कायम रखा जा सके। इन उन्नत राजनीतिक विचारों के बावजूद जैक्सन के सुधार उसकी अपनी ही सरकार में भ्रष्टाचार को रोक नहीं पाए। जैक्सन के अनुयायी दासता के समर्थक नहीं थे, हालांकि वे उन्मूलनवादियों से घृणा करते थे, क्योंकि वे उन्मूलनवादियों, शून्यकों (नलीफायर्स) तथा विग के सदस्यों को षड़यंत्रकारी और बहुमत के शासन तथा लोकतंत्र के विरोधी मानते थे। विग के सदस्य तो जैक्सन को अमरीका में दंगों तथा शहरी हिंसा के लिए दोषी ठहराते थे और जैक्सन के अनुयायी इसे इस बात का प्रमाण मानते थे कि विपक्ष के लोग हिंसा भडका कर कुलीनतंत्रीय शासन को बहाल करना चाहते थे।

जैक्सन ने जनरल तथा राष्ट्रपति दोनों ही हैसियतों से पश्चिम की ओर विस्तार के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की पुरजोर कोशिश की और अमरीकी इंडियनों को और भी पश्चिम की ओर निर्ममता से निष्कासित करके उसने इस लक्ष्य को प्राप्त कर ही लिया। जैक्सन के राष्ट्रपति काल के आठ वर्षों में 45,690 से भी अधिक इंडियनों को मिसीसिपी नदी के पार पुनर्वासित किया गया।

जैक्सन एकाधिकार तथा विशेषाधिकार से अत्यंत घृणा करता था, किंतु बैंकरों के लिए उसके मन में कुछ अधिक ही घृणा थी जो अपने निजी लाभ के लिए सार्वजनिक संस्थाओं में हेराफेरी करते थे। इसलिए उसने अपना निशाना सेंकड बैंक ऑफ दि यूनाइटेड स्टेट्स को बनाया जो एक "राक्षसी" संस्था बन गई थी। 1832 में जब विधिवत बैंक युद्ध शुरू हुआ तो वेबस्टर और क्ले ने जैक्सन के फिर से चुने जाने के खिलाफ अभियान छेड़ा। जैक्सन ने न केवल 1832 को चुनाव जीता, अपितु उसने बैंक ऑफ दि यूनाइटेड स्टेट्स को फिर से अनुबंधित करने वाले विधेयक को भी वीटो कर दिया और उसे असंवैधानिक घोषित कर दिया। धातु मुद्रा समर्थक लोकतंत्रवादी यह मानते थे कि छोटे व्यापारी, किसान तथा मजदूरों को मुद्रा के सटोरियों तथा हेरा फेरी करने वालों के हाथों छला नहीं जाना चाहिए। जैक्सन ने बैंक ऑव दि यूनाइटेड स्टेट्स से संघीय कोष निकाल लिया और उस के बाद इस पैसे को 'घरेलू बैंक' (pet banks) कहलाने वाले चुने हुए राजकीय अनुबंधित बैंकों में जमा करा दिया। बिडल का वित्तीय आतंक फैलाने का प्रयास विफल हो गया और 1834 आते आते जैक्सन अपनी जीत हासिल कर चुका था। वैसे, संघीय पैसे को घरेलू बैंकों में जमा करने से सट्टा बाजार में उछाल आया। संघीय सरकार के पास उपलब्ध अतिरिक्त धन के कारण भी मुद्रास्फीति तथा सट्टेबाजी को बढ़ावा मिला, चाहे इस धन को आंतरिक आर्थिक विकास में सहायता पहुंचाने के लिए राज्यों को दिया गया हो अथवा राजकीय घरेलू अनुबंधित बैंकों में जमा कराया गया हो जहां इस पैसे ने इन बैंकों के आरक्षित भंडार को ही बढ़ाया। धातु मुद्रा नीतियां हावी रहीं; इनमें विशेष था 1836 का धातु मुद्रा (सिक्का) आदेश जिसके अनुसार सार्वजनिक भूमि का भुगतान सिक्कों में करना अनिवार्य था। 1839 के बैंकिंग आतंक के बाद आर्थिक मंदी का दौर आया। 1840 में अंततः सरकार ने संघीय पैसे को अमरीकी सरकार के उपकोषागारों में बंद करके रखने का विकल्प चुना। इस योजना ने बैंक को राज्य से अलग कर दिया, किंतु इसने बैंकों के आरक्षित कोष को भी सीमित कर दिया और अमरीका में आर्थिक वसूली की प्रक्रिया को भी धीमा कर दिया।

जैक्सन के अनुसार 1837 में जो बैंकिंग आतंक या भगदड़ की स्थिति बनी उसका कारण अमरीका में उभर आए लखपतियों के एक नए वर्ग का लालच था। वह विशेषकर इन अफवाहों से परेशान था कि अंग्रेजी बैंकर "ब्रिटेन तथा अमरीका दोनों की ही वित्तीय स्थितियों पर नियंत्रण करने के षड़यंत्र" में जल्दी ही बिडल के साथ जा मिलेंगे। इस षड़यंत्र के विरूद्ध अपने उत्तराधिकारी वान बुरेन को आगाह करते हुए जैक्सन ने कहा था, "इंगलैंड तथा अमरीका दोनों जगहों पर मुद्रा का प्रबंध अपने नियंत्रण में लेने का बिडल और बैरिंग का प्रयास प्रत्येक सच्चे गणतंत्रवादी के लिए बेहद आतंकित करने वाला है।" उसने इस आतंक की तुलना "हैजा" से की जो उन लोगों को नष्ट कर देगा जो दुराचारी थे और इससे अमरीका में "सदाचार" की बहाली में मदद मिलेगी। सरकार के घातक कागजी मुद्रा प्रणाली को समाप्त करते ही अर्थव्यवस्था ठीक हो जाएगी और "संख्या के लोकतंत्र का चंद लोगों के कुलीनतंत्र से फिर कभी कोई टकराव नहीं होगा।" जैक्सन के समाधानों में कुछ कुछ अनाड़ीपन था, किंतु बैंकरों तथा उनकी धन शक्ति के प्रति "मजदूर जनता" के बैरभाव ने जैक्सनी राजनीति को वस्तुतः आगामी लोकतांत्रिक राजनीति का एक महत्वपूर्ण तत्व प्रदान किया।

जैक्सन एक ऐसा राष्ट्रपति था जो एक "सकटापन्न गणतांत्रिक परंपरा" का संरक्षक बन कर उभरा। जैक्सन न अमरीका को लोकतंत्र की राह पर अग्रसर नहीं किया। मर्विन मेयर्स के अनुसार, "राजनीतिक लोकतंत्र जैक्सनी पार्टी की उपलब्धि कम और माध्यम अधिक था।" 1820 के दशक के अंतिम वर्षों में जब जैक्सनी आंदोलन खड़ा हुआ, उस समय तक आते आते हैमिल्टन अथवा जॉन ऐडम्स का संघवादी अनुदारवाद "एकदम मुर्दा" हो चुका था। हालांकि जैक्सनी प्रवक्ता "नैतिकता के व्यापक भंडार" से तत्व ग्रहण करते थे, किंतु राक्षसी बैंक के विरूद्ध युद्ध में ही डेमोक्रैटिक पार्टी ने "अपना चरित्र बनाया, अथवा पाया।" जैक्सन की प्रभुत्वशाली उपस्थिति के बिना बैंक के मसले ने 'प्राचीन गणतंत्र' के मूल्यों को बचा कर रखने हेतु एक बड़े संघर्ष का रूप नहीं लिया होता। जैक्सन के अनुयायियों की दृष्टि में बैंक तथा उसके प्रभाव ने धार्मिक वर्ग के भ्रष्टाचार तथा कुलीनतंत्र के विशेषाधिकार और कर्ज तथा कर तथा आर्थिक अस्थिरता की आविक स्थिति को बढ़ावा दिया था। केवल चार व्यावसायिक वर्ग — बागानकर्मी तथा किसान, मिस्तरी तथा मजदूर . "असली जनता" थे जो "देश की अस्थियां और स्नायु" थे। जिन लोगों की गतिविधियां प्रमुख रूप से पदोन्नति संबंधी, वित्तीय अथवा वाणिज्यिक थी उन्हें असली जनता की परिभाषा से अलग रखा गया। यह विभाजन आर्थिक न होकर व्यावसायिक वर्गों के बीच नैतिक अंतर पर आधारित था। यह ईमानदारी से मजदूरी तथा सामान के उत्पादन में लगे व्यक्तियों और उन व्यक्तियों के बीच का अंतर था जो पैसों की हेरा फेरी में लग कर सट्टे के एकाधिकार या विशेषाधिकार के माध्यम से पैसा बनाने की चेष्टा कर रहे थे। बैंक के साथ युद्ध में जूझ कर ही जैक्सनी लोकतंत्र ने अपना विशिष्ट चरित्र तथा आकर्षण अर्जित किया।

मेयर्स की राय में जैक्सनी लोकतंत्र का प्रयास था कि बैंक पार्टी ने जो भ्रष्ट बैंकिंग तथा कागजी मुद्रा प्रणाली बनाई थी उसे ध्वस्त कर दिया जाए। धातु मुद्रा को वापस लाकर जैक्सन के अनुयायी उस प्राचीन गणतांत्रिक व्यवस्था को वापस लाने की कोशिश कर रहे थे जिसका आधार था संविधान की कठोर संरचना, आर्थिक मुद्दों का राजनीतिक सत्ता से अलगाव तथा अपने नागरिकों के समान अधिकारों का समर्थन करने वाली सरकार। जैक्सन का प्रयास बैंक को उखाड़ फेंकने का था उसका उद्देश्य एक विशाल तथा हस्तक्षेप करने वाली सरकार बनाने से बचने के लिए बैंक की शक्ति को किसी केंद्रीय एजेंसी को हस्तांतरित करना नहीं था।

हालांकि जैक्सन के अनुयायियों को बैंक के एकाधिकार को समाप्त करने में सफलता मिल गई थी और उन्होंने 1838 के अत्यंत महत्वपूर्ण बैंकिंग कानून तथा निर्माण में सामान्य निगमन की छूट देने वाले कानूनों के सहारे राज्य तथा निगम को अलग करने का प्रयास किया था, फिर भी प्राचीन गणतंत्रवादी मूल्यों पर लौटने में उन्हें कठिनाई हुई। पूर्व गणतंत्रवादी कुलीनतंत्र तथा उत्तर गणतंत्रवादी सटोरिया पूंजीवाद के विरूद्ध जैक्सन की लड़ाई का उद्देश्य गणतंत्रवादी परंपरा को मजबूत करना था। जैसी कि टॉकवील ने जैक्सनवादी अमरीकियों के बारे में टिप्पणी की है : "वे बदलाव तो पसंद करते हैं, किंतु वे क्रांतियों से डरते हैं।" उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर में जैक्सन और जेफरसन के विचारों को एकाधिकारों, बैंक तथा स्वर्ण मानक (गोल्ड स्टैंडर्ड) के आलोचकों ने फिर से सक्रिय किया और गणतंत्रवाद तथा लोकतंत्र की महान परंपरा की ओर लौटने का आह्वान किया।

बोध प्रश्न 4

1) दासता को अमरीकी संविधान में मान्यता क्यों मिली? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) जैक्सन ने बैंक के मुद्दे को हल करने की किस प्रकार कोशिश की ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3.7 सारांश

क्रांति पूर्व के अमरीका में एक मजबूत लोकतांत्रिक परंपरा का विकास हुआ, जिसका आधार सामंतवाद का न होना था। पश्चिम की ओर पलायन करके भूमि प्राप्त करने की संभावना तथा अमरीकी समाज में कुलीनतंत्र की अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति ने अमरीका में लोकतांत्रिक राजनीति के उभरने पर जोरदार प्रभाव छोड़ा। उदारवादी अधिकारों के प्रति अमरीकियों की चिंता ने ब्रिटिश शाही हठधर्मिता के खिलाफ उन्हें मुखर कर दिया। अमरीकी क्रांति ने न केवल शाही तंत्र को चुनौती दी, अपितु राजतंत्रीय समाज तथा कुलीनतंत्रीय विशेषाधिकार पर भी जोरदार प्रहार किया। क्रांति के बाद एक संविधान का निर्माण हुआ, जिसका लक्ष्य स्वतंत्रता, लोकतंत्र तथा अमरीकी उपनिवेश को संरक्षण देना था। दासता की संस्था तथा अमरीकी गुटीय संघर्ष और लोकतंत्र के साथ उसके संबंध को भी समझाया गया है। अंत में हमने जैकसनी लोक तंत्र की विशेषताओं की तथा इस तथ्य की चर्चा की है कि जैक्सनी संघर्ष ने किस प्रकार अमरीका में गणतंत्रवादी परंपरा को मजबूत करने का इरादा बनाया।

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) सामंतवाद का न होना, किसी अनम्य वर्ग सीमा का न होना, उच्च वर्ग में जाने की संभावना, आदि। देखिए भाग 3.2।
2) अमरीकी समाज में समृद्धि, विशाल भूमियों की उपलब्धता, अमरीकी समाज में समानता का होना आदि।

बोध प्रश्न 2

1) ब्रिटिश सरकार की अपनाई व्यापारिक नीति, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के कारण आर्थिक कठिनाई की स्थिति आदि। देखिए भाग 3.3।
2) देखिए उप-भाग 3.3.3।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 3.4।
2) देखिए भाग 3.5।

बोध प्रश्न 4

1) दासों को संपत्ति समझा जाता था, अमरीकियों का एक बड़ा वर्ग एकता के लिए दासता की प्रथा का जारी रहना आवश्यक मानता था आदि।
2) देखिए भाग 3.6।

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

ई.जे. हॉब्सबॉम : **दि एज ऑव रिवोल्यूशन,** *1789-1848*

जॉन कैनन (संपा.) : **दि ऑक्सफर्ड कम्पेनियन टु ब्रिटिश हिस्ट्री**

मेयर एगनल : **ए माइटी इम्पायर, दि ओरिजिन्स ऑव दि अमेरिकन रिवोल्यूशन**

रिचर्ड बीमन : स्टीफन बोटीन एवं एडवर्ड सी. कार्टर *द्वितीय (संपा.)* : **बियांड कन्फेडरेशन, ओरिजिन्स ऑफ दि कांस्टीट्यूशन एंड अमेरिकन नेशनल आइडेंटिटी।**

इकाई 4 जनता की क्रांतिकारी कार्रवाई

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम फ्रांसीसी क्रांति के उद्भव और क्रांति काल की महत्वपूर्ण विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह समझ पाएंगे कि :

- किस प्रकार आर्थिक संकट ने क्रांति की स्थितियां बनाई,
- वे कौन से मुद्दे थे जिन पर शहरी तथा ग्रामीण शक्तियों को लामबंद किया गया,
- एक विचारधारा को प्रस्तुत करने में दार्शनिकों की क्या भूमिका रही,
- जनता की भागीदारी ने किस प्रकार क्रांतिकारी संघर्ष की दिशा बदल दी,
- राष्ट्रीय असेम्बली ने क्या लोकतांत्रिक उपाय लागू किए और उनका नतीजा क्या हुआ,
- पुरानी व्यवस्था ध्वस्त होने के बाद क्रांतिकारी सरकार ने वैधीकरण के सिद्धांतों को कैसे लागू किया, और
- वह किस प्रकार का राजनीतिक संघर्ष था जिसने फ्रांस की राजनीतिक पार्टियों को जन्म दिया।

4.1 प्रस्तावना

फ्रांसीसी क्रांति ने फ्रांस को राजनीतिक संस्कृति का अगुआ बना दिया था। फ्रांस ने न केवल राजनीति तथा लोकतंत्र के ऐसे नए सिद्धांतों को स्थापित किया जो बाद में काफी समय तक यूरोपीय विचार को प्रभावित करते रहे, अपितु उसने क्रांतिकारी कार्रवाई की एक नई शब्दावली भी प्रदान की। स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व के क्रांतिकारी सिद्धांत आज भी पूरे विश्व के लोकतांत्रिक समाजों में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

यह समझने के लिए कि वे कौन सी परिस्थितियां थीं जिनके परिणामस्वरूप फ्रांस में राजतंत्रीय सरकार के साथ–साथ सामंतवादी व्यवस्था भी पूरी तौर पर ध्वस्त हो गई हमें क्रांति का समर्थन

अथवा विरोध करने वाले विविध सामाजिक हित समूहों की पृष्ठभूमि की संक्षिप्त जानकारी लेनी होगी। क्रांति के प्रत्यक्ष कारणों का अध्ययन करने के अतिरिक्त, यह जानना भी आवश्यक है कि निर्णायक क्षणों में आम आदमी के हस्तक्षेप ने किस प्रकार न केवल क्रांति को विफल होने से बचा लिया, अपितु इसकी दिशा को भी प्रभावित किया। थर्ड इस्टेट की लोकतांत्रिक कार्रवाई ने वैधता का नया सिद्धांत स्थापित किया। 1792 में जनता की सीधी कार्रवाई ने क्रांति को एक लोकतांत्रिक गणतंत्र की दिशा में आगे बढ़ाया और क्रांतिकारी विचारधारा तथा राजनीति ने एक अपरिपक्व स्वरूप वाले राजनीतिक दलों के गठन का मार्ग प्रशस्त किया।

4.2 प्राचीन शासन का क्रांतिकारी तख्ता पलट तथा लोकतांत्रिक कार्रवाई

आगे के उप–अनुच्छेदों में आपको उन शक्तियों के विषय में बताया जाएगा जिन्होंने फ्रांस में क्रांतिकारी परिवर्तन की जमीन तैयार की।

4.2.1 आर्थिक संकट और जन असंतोष

अठारहवीं शताब्दी के अधिकांश वर्षों में फ्रांस की अर्थव्यवस्था औसत वृद्धि और संपन्नता वाली रही। किंतु इसके फल सबको समान रूप से नहीं मिले। तेल उद्योग, सूती निर्माताओं, बड़े बंदरगाहों, चीनी मिलों तथा औपनिवेशिक वाणिज्य का तो स्पष्ट विस्तार हुआ। 1771–72 के वर्षों में फसल खराब हो जाने के कारण अनाज तथा रोटी की कीमतों में अनिवार्य वृद्धि हुई, जिसके चलते अनेक स्थानों पर असंतोष की स्थिति पैदा हो गई। प्राचीन शासन व्यवस्था का वास्तविक आर्थिक संकट 1775 से शुरू हुआ। शराब का आवश्यकता से अधिक उत्पादन हो जाने के कारण कीमतें गिरने लगीं और मुनाफा कम हो गया। शराब के धंधे में मंदी का दौर सात–आठ साल तक चला। इसके बाद चारे का भीषण अभाव हो गया ओर उसने कितने ही पशुओं की जानें ले लीं। इस संकट ने फ्रांस की लगभग एक–तिहाई आबादी को प्रभावित किया। 1787 से भयंकर बर्फीले तूफानों, जबरदस्त ठंड और सूखे के बाद अनाज का एक बड़ा संकट शुरू हुआ। अनाज तथा रोटी की कीमतें डेढ़ से दो गुनी तक बढ़ गई। ग्रामीण संकट के दुष्प्रभाव औद्योगिक क्षेत्र पर भी पड़े, जहां बिक्री घटने लगी और इसके कारण उत्पादन में कमी हुई तथा बेरोजगारी की समस्या पैदा हो गई। 1786 की फ्रांसीसी ब्रिटिश संधि ने फ्रांसीसी मजदूरों के सामने संकट खड़ा कर दिया क्योंकि फ्रांस में आने वाले ब्रिटिश उत्पादों पर से आयात शुल्क कम कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के अनेक शहरों, विशेषकर पेरिस, में जनता में असंतोष फैल गया और वहां रोटी को लेकर दंगे हुए। उस दौरान निकले उत्तेजक परचों ने जिन अफवाहों और अटकलों का बाजार गरम किया उससे लोगों के मन भय और क्रोध से भर उठे।

देहाती इलाकों में, राजकीय करों तथा दशमांश के थोपे जाने की किसानों में जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। उनका गुस्सा भी बुर्जुआ एजेंटों के विरूद्ध भड़का जिन्होंने जंगलों में मवेशियों को चराने के समान अधिकारों के खिलाफ नियम बना दिए और साझा जमीनों के सिद्धांत का विरोध किया। इसी को देखते हुए जॅर्ज लफेव्र ने यह निष्कर्ष निकाला कि किसान क्रांति सामंत–विरोधी (नए जमींदारों द्वारा साझा जमीनों को हड़पे जाने के विरुद्ध) थी। इस प्रकार आर्थिक संकट तथा राजनीतिक घटनाओं की छत्रछाया में किसान आंदोलन आगे बढ़ा।

4.2.2 राज्य के वित्तीय ढांचे का टूटना और राजनीतिक संकट

सरकार अपने अनावश्यक खर्चों के जाल से निकल नहीं पाई और कराधान की दोषपूर्ण व्यवस्था ने वित्तीय ढांचे के टूटने की स्थिति ला दी। वित्तीय घाटा 1120 लाख लीव्र हो गया, सरकार की साख खत्म हो गई और फ्रांस राष्ट्रीय दिवालियापन की स्थिति में जा पहुंचा। अमीर तथा पुरोहित वर्ग को मिली वित्तीय छूट के कारण आक्रोश की स्थिति बन गई थी। महावित्त नियंत्रक कालॉन ने कर ढांचे को तर्कसंगत बनाने की कोशिश की। इसके लिए उसने एक नई अनुक्रमिक कर व्यवस्था को रूप दिया जिसमें कुलीनजनों को प्राप्त वित्तीय विशेषाधिकारों की जड़ें खोखली करने का पूरा इंतजाम था; किंतु कालॉन की यह कोशिश सफल नहीं हुई। उसके पास सीमित विकल्प था। वह स्वीकृति के लिए पेरिस की संसद पर निर्भर नहीं कर सकता था, क्योंकि उसे इसके सदस्यों की ओर से प्रचंड

विरोध की अपेक्षा थी। राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा, अर्थात इस्टेट जनरल को बुलाने का मतलब था सरकारी दिवालियापन को स्वीकार करना, और इस स्थिति में तेज कार्रवाई कठिन हो जाती। इसलिए कालॉन ने विशिष्टजन (नोटेबल) सभा को बुलाने की सिफारिश की।

4.2.3 संसद तथा विशिष्ट जनों का विद्रोह

विशिष्ट जन सभा (असेम्बली ऑफ नोटेबल्स) की बैठक पेरिस के निकट अवस्थित शाही महल वेरसाय में 22 फरवरी, 1787 को हुई। सभा के सदस्यों ने कालॉन के वित्तीय प्रस्तावों पर जमकर प्रहार किए और सुधारों को बड़े बेहुदे ढंग से खारिज कर दिया गया। विशिष्ट जन सभा की बैठक को फ्रांसीसी क्रांति की शुरुआत कहा जा सकता है। कुलीन जन भी शाही सरकार की बढ़ती शक्ति से अप्रसन्न थे। विशिष्ट जनों ने यह घोषणा कर दी कि नए कर लगाने के किसी भी प्रस्ताव को मंजूरी देना उनके अधिकार से बाहर की बात थी। एक प्रमुख विशिष्ट जन लाफायेत ने तो यह तर्क दिया कि केवल एक सच्ची राष्ट्रीय असेम्बली ही कर व्यवस्था में किसी प्रबल सुधार को स्वीकृति दे सकती है और ऐसी असेम्बली इस्टेट जनरल ही थी, जिसकी बैठक 1614 के बाद से हुई ही नहीं थी।

कालॉन के उत्तराधिकारी ब्रीएन ने सितम्बर 1787 में सुधारों के एक उदार कार्यक्रम को पेरिस की संसद के माध्यम से लागू करने का प्रयास किया, किंतु उसे सफलता नहीं मिली। सरकार की ओर से वित्तीय आदेशों को पारित करने में हुई देरी के कारण पेरिस की संसद में विरोधी गुटों को अपनी शक्ति को संगठित करने का अवसर मिल गया। स्टाम्प ड्यूटी और भूमि कर के प्रस्तावों को रद्द कर दिया गया। जनता का समर्थन पाने के उद्देश्य से अनेक पर्चे भी बांटे गए, जिनमें यह प्रचारित किया था कि संसद केंद्र सरकार की निरंकुशता से जनाधिकारों की रक्षा कर रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि पेरिस में सरकार के खिलाफ, ब्रितनी में शाही लोक सेवकों (सिविल सर्वेन्ट्स) के खिलाफ और दोफीने में शाही सैनिकों के खिलाफ कुछ दंगे हुए। एक बार फिर महा नियंत्रक बना दिए गए नेकर के पास सुधारों को मंजूरी देने के लिए इस्टेट जेनरल की बैठक बुलाने के अलावा और कोई चारा नहीं रहा।

4.2.4 इस्टेट जेनरल का आहवान और क्रांति की शुरुआत

कुलीन जन और केंद्र की निरंकुशता के बीच चलने वाला टकराव जल्दी ही विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग तथा विशेषाधिकार वंचित वर्ग के बीच टकराव में बदल गया जब सरकार ने इस्टेट जेनरल की बैठक बुलाई। 1788 में, फ्रांसीसी सरकार ने 4.5 अरब लीवर का ऋण लिया, और सम्राट लूई सोलहवें को इस्टेट जेनरल सभा से अतिरिक्त धन लेने को बाध्य होना पड़ा, क्योंकि परम्परा से ही सम्राट के लिए नए कर मंजूर कराने का अधिकार इस्टेट जेनरल के पास ही था। इस्टेट जेनरल में तीन वर्ग थे जो फ्रांसीसी समाज के तीन अंगों का प्रतिनिधित्व करते थे। इन अंगों को इस्टेट कहा जाता था। प्रथम वर्ग में रोमन कैथोलिक पुरोहित आते थे, द्वितीय वर्ग में अमीर लोग आते थे और तृतीय वर्ग (थर्ड इस्टेट) में फ्रांसीसी समाज के वे जनसाधारण आते थे जिन पर समूचे करों का बोझ होता था। किंतु तीसरे वर्ग के अन्तर्गत व्यवसाय, शिक्षा तथा संपदा के मामले में भारी भिन्नताएं थीं। प्रत्येक वर्ग के लिए अलग चुनाव होते थे और मतदाता अपने प्रतिनिधियों के लिए अपनी शिकायतों की सूची तैयार करते थे। इन्हें शिकायतों के रजिस्टर कहा जाता था। अमीर वर्ग के शिकायती रजिस्टरों में जहां सामंती अधिकारों तथा विशेषाधिकारों वाली उनकी पुराने समय से चली आ रही स्वतंत्रता की मान्यता पर जोर दिया जाता था, वहीं मध्य वित्त वर्ग के शिकायती रजिस्टरों को अधिकतर उदारवादी व्यवसायों के लोग लिखते थे जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा एक लिखित संविधान की मांग उठाते थे। वे यह निश्चित करना चाहते थे कि कानून के समक्ष सब बराबर हों तथा सभी वर्गों पर करों का बोझ बराबर डाला जाए।

जनता को एकजुट करने का काम केवल आर्थिक संकट अथवा राजनीतिक मुद्दों ने नहीं किया। मुख्य समस्या तो फ्रांसीसी समाज में बढ़ते अन्तर्विरोध थे। कुछ मुट्ठी भर जनता पर करों तथा वित्त इकट्ठा करने के लिए समूचा बोझ लादा जा रहा था और उन्हें सामाजिक भेदभाव का भी सामना करना पड़ रहा था। किंतु मध्यम अथवा बुर्जुआ वर्ग ने संपदा अथवा सामाजिक हैसियत दोनों ही दृष्टि से अपने आपको लगातार ऊपर उठाया, और इस तरह पुराने समय से चली आ रही व्यवस्था को चुनौती दे डाली। नेतृत्व समाज के इसी वर्ग से निकला और जनसाधारण क्रांतिकारी सुधार की संभावना को देखकर हरकत में आ गए। इन लोगों ने मिल जुल कर तृतीय वर्ग की स्थापना की।

इस्टेट् जेनरल की बैठक 5 मई, 1789 को हुई और सरकार की ओर से कोई दृढ़ नेतृत्व न होने के कारण मामलों ने तुरंत तूल पकड़ ली। सरकार ने तृतीय वर्ग की सीटे दोगुनी कर दी थीं क्योंकि यह वर्ग समाज के सर्वाधिक आबादी वाले तबके का प्रतिनिधित्व करता था। तृतीय वर्ग ने यह सुझाव रखा कि तीनों वर्ग अलग–अलग वोट करने की वजाय एक व्यक्ति एक वोट के आधार पर एक निकाय के रूप में इकट्ठे वोट करें। पुरोहित वर्ग के कुछ सदस्य तो आम जन के साथ किसी समझ पर पहुंचने को तैयार थे, किंतु अमीर वर्ग ने इन विचारों को ही खारिज कर दिया और एक अड़ियल रूख अपना लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि आम जन ने बहिष्कार कर दिया और स्वयं को जनता का असली प्रतिनिधि बताते हुए 17 जून, 1789 को अपने आपको 'राष्ट्रीय असेम्बली' चुन लिया। उन्होंने फ्रांस के लिए एक संविधान तैयार करने और कानून के समक्ष बराबरी की स्थिति बनाने का फैसला किया, इस प्रकार वे एक स्वेच्छाचारी सरकार के स्थान पर जनता की प्रभुसत्ता के प्रबोधन (इनलाइटेनमेंट) आंदोलन के विचारों को ही परिलक्षित कर रहे थे, जिनकी हिमायत ऐबे सेये ने अपने प्रसिद्ध परचे "तृतीय इस्टेट क्या है' ? में की थी। इस समय तक क्रांति का नेतृत्व कोई सुगठित दल या आंदोलन के हाथों में नहीं था, अपितु इसका नेतृत्व एक सुसंबद्ध सामाजिक गुट के अंदर उभरने वाले विचारों में आम सहमति के आधार पर हो रहा था जिसने क्रांतिकारी संघर्ष को प्रभावकारी एकता भी प्रदान की। यह गुट वकीलों, डाक्टरों, लेखकों, नोटरी तथा अधिकारी जैसे पेशेवर लोगों का उदारवादी बुर्जुआ वर्ग था। ये लोग दार्शनिकों तथा अर्थवेत्ताओं के बनाए क्लासिकल उदारवाद तथा प्रबोधन आंदोलन के विचारों से भली प्रकार परिचित थे।

टेनिस कोर्ट शपथ

राष्ट्रीय असेम्बली, यह विचारते हुए कि इसे राज्य का संविधान स्थापित करने, सार्वजनिक व्यवस्था को पुनर्निर्मित करने, तथा राजतंत्र के सच्चे सिद्धांतों को बनाए रखने हेतु बुलाया गया है; कि इसे जिस स्थान में भी स्वयं को स्थापित करने हेतु बाध्य किया जा सकता है, वहां अपने विचार विमर्शों को जारी रखने से इसे कोई भी नहीं रोक सकता; और, अंत में, यह कि जहां कहीं भी इसके सदस्य जमा होते हैं, वहीं राष्ट्रीय असेम्बली का अस्तित्व होगा।

यह आदेश दिया जाता है कि इस सभा के सभी सदस्य तुरंत यह गंभीर शपथ लेंगे कि जब तक राज्य का संविधान स्थापित नहीं हो जाता तथा दृढ़ आधार पर जम नहीं जाता, वे अलग नहीं होंगे और जहां कहीं भी परिस्थितियों की मांग होगी वे पुनः जमा होंगे ....

'ए डाक्यूमेंट्री सर्वे ऑव दि फ्रेंच रिवोल्यूशन', जॉन हॉल स्टूअर्ट संपा (न्यू यार्कः मैकमिलन, 1951), पृ. 88

4.2.5 दार्शनिकों की भूमिका

फ्रांसीसी क्रांति के समय यदि दार्शनिकों के विचारों और उनके नए-नए शब्दों की उपस्थिति नहीं होती तो शायद यह क्रांति एक शासन के स्थान पर दूसरा शासन आने और एक नई व्यवस्था का प्रारंभ होने की घटना मात्र बन कर रह जाती। इतिहासकारों ने फ्रांसीसी क्रांति को गति देने में दार्शनिकों की भूमिका पर बहस की है। 1789 और 1848 के बीच के वर्षों में चिंतन तथा कर्म का एक महत्वपूर्ण सूत्र रूसो के 1762 के 'सामाजिक अनुबंध' (सोशल कांट्रैक्ट) ने दिया, जिसमें उसने लिखा था 'मनुष्य पैदा तो स्वतंत्र होता है किंतु हर कहीं उस पर बंधन होते हैं'। रूसो ने विशेषकर तथा अठारहवीं शताब्दी के प्रबोधन के दर्शन ने यह शिक्षा दी कि मनुष्य जाति की प्रगति तब होगी जब उन रूढ़िवादी व्यवस्थाओं को चुनौती दी जाएगी जो अनेक लोगों की कीमत पर कुछ लोगों को फायदा पहुंचाती है। प्रबोधन धारा के चिंतकों का यह मानना था कि प्रगति का अर्थ व्यक्तिगत आत्म-अभिव्यक्ति का विकास और जन्म, सामंती विशेषाधिकार तथा श्रेणी विनियमों (गिल्ड रेगुलेशंस) पर आधारित प्राधिकार की समाप्ति होता है। दार्शनिकों ने हालांकि क्रांति की वकालत नहीं की, तदापि उन्होंने उभरते बुर्जुआ वर्ग तथा समूचे राष्ट्र के हाथों में क्रांतिकारी संघर्ष में असरदार हथियार का काम करने वाले कुछ ऐसे शब्द थमा दिए जिनमें क्रांति का संकेत निहित था जैसेः सितॉयां (नागरिक), ल्वा (कानून), पैत्रई (गृहभूमि) आदि। रूसो की जनता की 'प्रभुसत्ता' तथा 'आम इच्छा' की अवधारणा ने नेताओं को यह सोचने पर बाध्य कर दिया कि समाज को समग्र रूप में अपने स्वयं के हित तय करने चाहिए। इन विचारों का प्रसार राजनीतिक बहसों, क्लबों, अतिथि गृहों तथा शैक्षिक संस्थाओं के जन आंदोलन के सा संबंध बनाने के माध्यम से हुआ।

शिक्षित अभिजात्य वर्ग तक प्रबोधन के विचारों का फैलना एक महत्वपूर्ण कदम था, किंतु उतनी ही महत्वपूर्ण सैलूनों तथा क्लबों की भूमिका भी थी। सैलून तो धनी शहरी अभिजात्य लोगों की शानदार बैठकें थीं जहां दार्शनिक तथा अतिथि गण एकत्र होते थे और प्रायः नए विचारों को लेकर बौद्धिक चर्चाएं किया करते थे। क्रांति के प्रारंभिक दौर में सैलून और क्लब तो मीराबो, बारनाव, रौबेसप्यार, पेत्यौं, द्यूपार तथा सेयेस जैसे सुधारवाद प्रेमियों के लिए मेल–जोल के केंद्र बन गए।

4.2.6 प्राचीन शासन के क्रांतिकारी तख्ता पलट में जनता की भूमिका

तृतीय इस्टेट को अपनी बैठक के लिए सर्वाधिक सुविधाजनक कक्ष एक इनडोर टेनिस कोर्ट के रूप में मिला, जहां उसके सदस्य 20 जून को एकत्र हुए। तभी से बाजी राजा के हाथ से निकल चली थी। सम्राट ने अपने सर्वाधिक लोकप्रिय मंत्री नेकर को बरखास्त करके अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की और लगभग 20,000 सैनिकों को बुलाकर उन्हें पेरिस-वेरसाय क्षेत्र में मोर्चाबंदी पर लगा दिया। मीराबू के भाषण ने जनता का ध्यान बंटा दिया और वह हिंसा पर उतर आई। इस्टेट् जेनरल के चुनावों ने परचों तथा पोस्टरों के माध्यम से राजनीतिक माहौल को पहले गरमा दिया था। पेरिस के आम जन ने (जिनमें पेरिस के एक दरिद्र मोहल्ले सेंट अंटोनी तथा फाबू के किराएदार, मजदूर, मिस्तरी, दुकानों में काम करने वाले, यहां तक कि छोटे दुकानदार भी शामिल थे) ने इसका जवाब 14 जुलाई 1789 को बैस्टील पर हमला करके दिया। बैस्टील एक प्रमुख कारागार दुर्ग तथा शाही शस्त्रालय था, जो पेरिस के मध्य में अवस्थित था। बैस्टील के पतन को फ्रांसीसी क्रांति की शुरुआत माना जाता है। इसके राजनीतिक परिणाम भी उल्लेखनीय रहे। राष्ट्रीय असेम्बली न केवल बच गई, अपितु उसे सम्राट की भी मान्यता मिल गई। पेरिस में सत्ता निर्वाचक समिति के हाथों में चली गई जिसने एक नगर परिषद (पेरिस कम्यून) का गठन कर दिया। सम्राट को बाध्य होकर लाफायेत को राष्ट्रीय गारद (नेशनल गार्ड) नामक नागरिक सेना का सेनापति नियुक्त करना पड़ा।

ग्रामीण क्षेत्रों में पेरिस की घटनाओं के प्रभाव तथा कठिन आर्थिक स्थितियों ने परेशानियां खड़ी कर दीं। जुलाई 1789 के अंत तथा अगस्त 1789 के प्रारंभ के महा भय (ग्रेट फियर) के नाम से विख्यात ग्रामीण अंचल के विस्तार में फैलने वाली जन आतंक की लहर और प्रांतीय कसबों के आंदोलन ने मिलकर किसान अशांति को एक बड़े विप्लव का रूप दिया। यह अफवाह उड़ी कि अमीर लोग तीसरी इस्टेट को गिरा कर सत्ता हथियाना चाहते हैं और इस षडयंत्र में उन्होंने अनाज के सटोरियों तथा जमाखोरों के साथ हाथ मिला लिया और वे लोगों को भूखा मारने पर उतारू हैं जिससे लोग उनके आगे घुटने टेक दें। इस अफवाह का परिणाम यह हुआ कि लोगों ने स्थानीय सहायक नागरिक सेना अथवा 'किसान गारद' बनाकर अपने आपको हथियारबंद करना शुरू कर दिया। किसान अपने भूपतियों पर हमला करने लगे, अमीरों की हवेलियां जलाने लगे, सामंतों के दस्तावेजों को नष्ट करने लगे और उन्होंने कर तथा दशमांश देने से भी इनकार कर दिया। किसानों को शांत करने और व्यवस्था बहाल करने के उद्देश्य से, राष्ट्रीय असेम्बली ने सामंती शासन तथा सामंती विशेषाधिकारों तथा पुरानी सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था को समाप्त करने की घोषणा कर दी। उसका दूसरा बड़ा काम था 'मनुष्य के अधिकारों की घोषणा' (स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व की घोषणा); और यही घोषणा स्वतंत्रता का घोषणापत्र बन गया। इसने शाही प्रजा को फ्रांस का नागरिक बना दिया और उन्हें कानूनी बराबरी भी दे दी। इस प्रकार राजनीति को आकार देने का काम असेम्बली से बाहर के दबावों ने किया तो उसके भीतर के राजनीतिज्ञों ने भी।

मनुष्य के अधिकारों की घोषणा 27 अगस्त, 1789

1) मनुष्य स्वतंत्र पैदा होते हैं और उनके अधिकार भी समान होते हैं; सामाजिक विभेदों का आधार केवल सामान्य उपयोगिता हो सकती है।

2) प्रत्येक राजनीतिक संगठन का लक्ष्य होता है मनुष्य के नैसर्गिक तथा अहरणीय अधिकारों का संरक्षण; ये अधिकार हैं स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा, तथा अत्याचार का प्रतिरोध

3) समस्त प्रभुसत्ता का स्रोत मूल रूप में राष्ट्र में निहित होता है; कोई भी समूह, कोई भी व्यक्ति ऐसे किसी प्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता जो राष्ट्र प्रदत्त न हो

4) कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है; समस्त नागरिकों का यह अधिकार है कि वे व्यक्तिगत रूप में अथवा अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से इसके निर्माण में योगदान करें; कानून सभी के लिए समान होना चाहिए, चाहे यह रक्षा करे या दंड दे। सभी नागरिक

कानून के समक्ष समान हैं, इसलिए सभी को यह छूट है कि वे अपनी क्षमता के अनुसार कोई भी सार्वजनिक पद, पदवी तथा रोजगार ग्रहण कर सकते हैं, और गुणों तथा प्रतिभा के अतिरिक्त अन्य किसी भी आधार पर उनमें भेद नहीं किया जा सकता।

5) किसी को भी उसके विचारों के कारण चुप नहीं कराया जा सकता; धार्मिक विचारों के कारण भी नहीं, जब तक कि उनकी अभिव्यक्ति से कानून द्वारा सीमित सार्वजनिक व्यवस्था के भंग होने का खतरा न हो।

6) विचारों तथा मतों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति मनुष्य का एक सर्वाधिक मूल्यवान अधिकार है। परिणामस्वरूप, प्रत्येक नागरिक बोलने, लिखने तथा छापने को स्वतंत्र है, किंतु कानून के आधार पर इस प्रकार की स्वतंत्रता के दुरुपयोग का उत्तरदायित्व उसी का होगा ....

'ए डाक्यूमेंट्री सर्वे ऑफ दि फ्रेंच रिवोल्यूशन', जॉन हॉल स्टूअर्ट द्वारा संपा. (न्यू यार्क: मैकमिलन, 1951), पृ. 114

लूई सोलहवां इस पूरे समय में वेरसाय में निष्क्रिय रहा। उसने सामंतवाद की समाप्ति तथा मनुष्य के अधिकारों की घोषणा से संबंधित आदेश को लागू करने से इनकार कर दिया। क्रांति अभी भी सुरक्षित नहीं थी, और उसकी उपलब्धियों के लिए अक्टूबर 1789 में एक बार फिर लड़ाई लड़ी गई। रोटी की भारी किल्लत, लूई के बचाव के लिए फ्लैंडर्ज रेजीमेंट का आगमन और राष्ट्रीय असेम्बली के प्रति लूई की उदासीनता की यह परिणति हुई कि क्रांति में स्त्रियां भी सक्रिय रूप में शामिल हो गईं, और हजारों की संख्या में, वे लोग वेरसाय की ओर चल पड़े। एक प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार "हर दिशा से औरतों की टोलियां झाड़ू, तलवारों, पिस्तौलों और बंदूकों से लैस होकर आईं, और उनके पीछे–पीछे लोगों की भीड़ आई, और लाफायेत के नेतृत्व में 20,000 पेरिस गार्ड भी आए। उन्होंने सम्राट और उसके परिवार को पेरिस में स्थित शाही महल त्वेलरी में शरण लेने को विवश कर दिया। जब सम्राट ने पेरिस में खाद्यान्न की तुरंत आपूर्ति करने और राष्ट्रीय असेम्बली के फैसलों को मान लेने का वायदा कर लिया तो भीड़ खुशियां मनाते हुए उसके आगे–आगे चिल्लाती हुई चली 'बेकर, बेकर की बीबी, और बेकर का लड़का' (जिससे उनका आशय निश्चय ही सम्राट, महारानी और उनके उत्तराधिकारी से था, जिसे फ्रांस में 'दोफैं' कहा जाता था)।

अक्टूबर 1789 से 1795 तक स्त्रियों ने अनेक तरीकों से क्रांति में भागीदारी की। ऑलैंप द गूजे स्त्रियों के राजनीतिक अधिकारों का प्रमुख प्रवक्ता बन गया। उन्होंने पुरुषों के साथ बराबरी की मांग की। उन्होंने रोटी तथा मूल्य नियंत्रण के लिए प्रदर्शन किए और अपनी 'पितृभूमि' की रक्षा में हिस्सा लिया। साबुन की कीमतें बढ़ीं और हजारों औरतों पर इसका असर पड़ा तो स्त्रियों ने साबुन दंगों की अगुआई भी की। मजदूर औरतों का संगठन 'क्रांतिकारी गणतंत्रवादी महिला समाज' क्रांति की शुरुआती दौर में बेहद सक्रिय रहा जब तक कि उसका दमन नहीं कर दिया गया। 'आतंक' के दौर में स्त्रियों ने इस कारण से क्रांति का विरोध किया क्योंकि इससे पारिवारिक जीवन को, धर्म संस्था (चर्च) को और उपभोक्ता सामग्री की आपूर्ति को नुकसान पहुंचता था। लेकिन उस समय के पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों की मांगों को अधिक गंभीरता से नहीं लिया गया।

क्रांति के शुरुआती दौर में, राष्ट्रीय असेम्बली ने राजनीतिक ढांचे को सुधार कर उसे संवैधानिक राजतंत्र का रूप देने के अपने प्रयासों को जारी रखा, किंतु दो घटनाएं ऐसी हुई जिन्होंने 1791 के बाद क्रांति की दिशा ही बदल दी। पहली घटना धर्म से संबंधित थी। धर्म संस्था (चर्च) को एक विशेषाधिकार प्राप्त व्यवस्था तथा सामंतवादी शासन के समर्थक के रूप में देखा जाता था। दशमांश की समाप्ति के बाद चर्च की तमाम सम्पत्ति और जमीन का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और उन्हें बिक्री के लिए खोल दिया गया। 'पुरोहित वर्ग के नागरिक संविधान' (12 जुलाई, 1790) के अनुसार, बिशप तथा पुरोहितों का चुनाव जनता के वोट से होना तय हुआ और पुरोहितों को ऐसे वेतनभोगी सरकारी अधिकारी बना दिया गया जिन्हें संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेना अनिवार्य था। केवल 54 प्रतिशत पल्ली पुरोहितों ने यह शपथ ली जबकि अधिकांश बिशपों ने इसे लेने से इंकार कर दिया। इसका अर्थ हुआ राष्ट्रीय एकता के दौर का अंत। इससे गृह युद्ध की स्थितियां पैदा हो गईं, क्योंकि पादरी विरोधी मुद्दे ने राष्ट्र को नए आधारों पर बांट कर रख दिया। इस मुद्दे ने कट्टर कैथोलिकों, राजतंत्र समर्थकों, प्रवासियों आदि की क्रांति विरोधी शक्तियों को फिर से एकजुट कर दिया। दूसरी घटना थी सम्राट का पलायन करके उन प्रवासियों से हाथ मिलाना जिन्होंने विदेशी ताकतों की मदद से क्रांतिकारियों को हराने की कोशिश की। इस प्रकार राजतंत्र जनता का समर्थन

पूर्ण रूप से खो बैठा। फ्रांस 1792 में एक गणतंत्र घोषित हो गया और लूई सोलहवें पर मुकदमा चला कर जनवरी 1793 में उसे मौत की सजा दे दी गई।
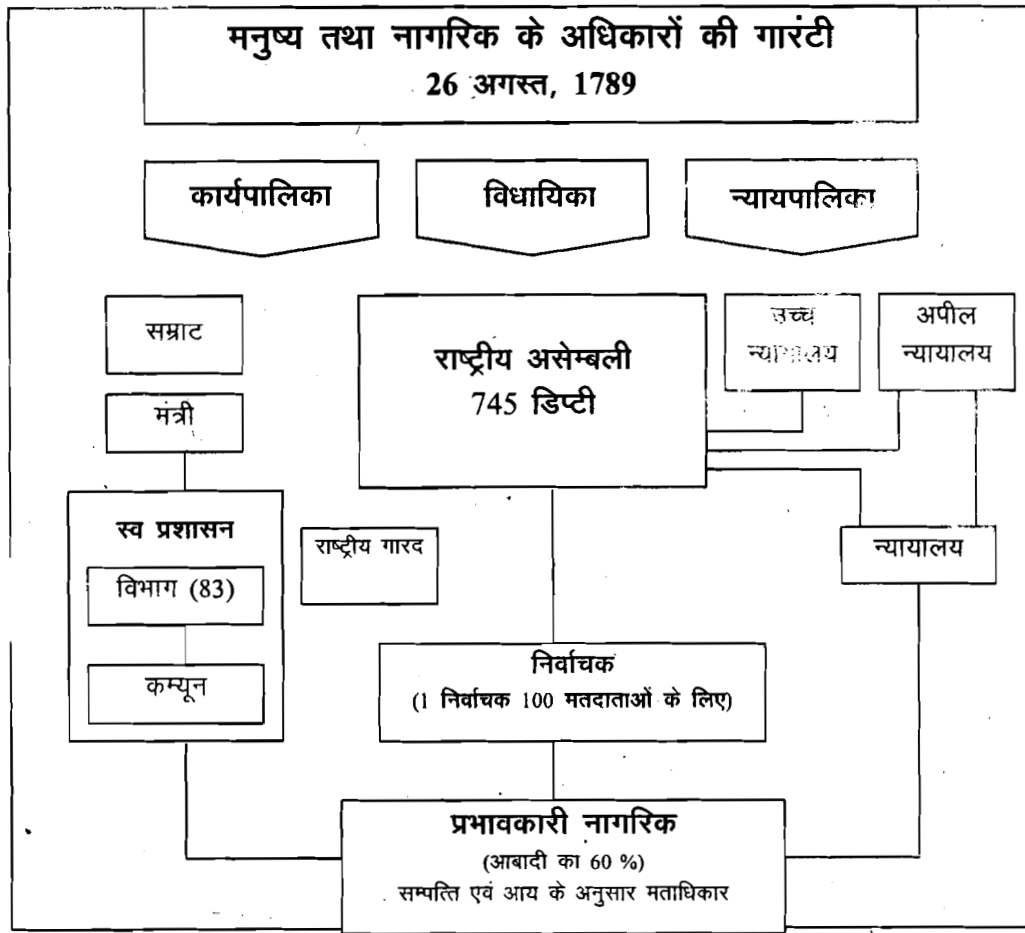
बोध प्रश्न 1

1) किसानों की प्रमुख आर्थिक शिकायतें क्या थीं ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) आर्थिक सुधार के प्रस्ताव क्यों असफल हो गए ? 60 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) फ्रांसीसी समाज के विभिन्न विभाजनों तथा तृतीय इस्टेट की समस्याओं की व्याख्या कीजिए। 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

4) फ्रांसीसी क्रांति में दार्शनिकों की क्या भूमिका रही ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

4.3 वैधीकरण के सिद्धांत

फ्रांसीसी क्रांति पर हाल में जो लिखा गया है उससे यह संकेत मिलता है कि क्रांति की जड़ें उस राजनीतिक संस्कृति में थीं जिसने प्राचीन शासन के अंतिम वर्षों में आकार लिया। निरंकुश शासन तथा प्रबोधन की राजनीति में जो अंतर्विरोध रहे उन्होंने ही इस संकट को जन्म दिया। निरंकुश राजतंत्र को जिस समाज के अंतर्गत काम करना था, इसका राजनीतिक संस्कृति के प्रगतिशील सिद्धांतों के साथ गहरा अंतर्विरोध था। इस नई संस्कृति ने एक क्रांतिकारी संवाद का आधार उपलब्ध किया तथा वैधता का मुद्दा उठाया।

डेनिस रीशे, गेनिफी जैसे अनेक इतिहासकारों ने इस बात का उल्लेख किया है कि तृतीय इस्टेट ने अपने आपको राष्ट्रीय असेम्बली का रूप देने के लिए 17 जून, 1789 को जिस प्रस्ताव को मतों के आधार पर पारित किया, वह सबसे पहला तथा सबसे गहन कार्य था। इसमें क्रांतिकारी सरकार के लिए वैधता के नए सिद्धांत निहित थे। तृतीय इस्टेट की महत्ता पर जोर स्येस ने ही दिया था। स्येस ने दो क्रांतिकारी सिद्धांत रखेः राष्ट्र की एक मात्र तृतीय इस्टेट के साथ पहचान बनाना और यह दावा कि केवल राष्ट्र को ही फ्रांस का संविधान देने का अधिकार था। मई और अगस्त 1789 के बीच समूचा प्राचीन शासन ही ध्वस्त हो गया। फ्रांसीसियों ने अपने राष्ट्रीय अतीत को अस्वीकार कर क्रांति के सिद्धांतों को चुन लिया था। जब राष्ट्रीय असेम्बली ने सामंती विशेषाधिकारों को समाप्त कर फ्रांस के भावी संविधान को तैयार करने का बीड़ा उठाया तो वह संविधान सभा बन गई। 4 तथा 11 अगस्त की राजाज्ञाओं ने तमाम व्यक्तिगत विशेषाधिकारों, दासता तथा दशमांश को समाप्त कर दिया और सभी के लिए मुफ्त तथा समान न्याय और रोजगार की स्वतंत्रता की स्थिति बनाई। इस प्रकार, फ्रांस में एक नया कानूनी समाज स्थापित हो चुका था।

संविधान सभा की दो बहसें वैधता के सिद्धांतों की दृष्टि से निर्णायक रहीं। ये थीं : (क) मनुष्य के अधिकारों की घोषणा, तथा (ख) संप्रभुता का विषय। सामंती शासन को समाप्त करके, संविधान सभा ने फ्रांसीसी जनता को ऐसे व्यक्तियों के रूप में नई परिभाषा दी थी जो स्वतंत्र और समान थे। जो बुनियादी अधिकार तय किए गए, उनमें कुछ थे स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा तथा अत्याचार का प्रतिरोध। संक्षेप में, फ्रांसीसी शासक की प्रजा को राष्ट्र का नागरिक बना दिया गया। मनुष्य के अधिकारों की घोषणा ने समाज की एक क्रांतिकारी अवधारणा सामने रखी, और नए सरकारी अधिकारियों को संगठित किया कि वे क्रांतिकारी सिद्धांतों पर आधारित एक लिखित संविधान के माध्यम से इन अधिकारों की रक्षा करें।

सितम्बर में शुरू होने वाली दूसरी बहस संप्रभुता की प्रकृति तथा आरोपण के सवाल को लेकर थी। 'संप्रभुतासम्पन्न' का मुद्दा असाधारण रूप से कठिन साबित हुआ। वर्गों तथा विशेषाधिकारों पर आधारित समाज के ध्वंस ने प्रतिनिधित्व के एक नए मुद्दे को उठा दिया। नेताओं की समझ में यह आ गया कि राष्ट्र की संप्रभुता को राष्ट्र के सभी नागरिकों द्वारा इसके अधिकारों को प्रत्यक्ष उपयोग के अनुकूल बनाना असंभव था। स्येस ने ही नई संस्थाओं की आवश्यकता और लोकतंत्र के दावों के बीच संप्रभुता के प्रयोग की समस्या का एक तर्कसंगत समाधान प्रस्तुत किया। एकसदनीय असेम्बली ऐसी एकमात्र जगह बन गई जहां जनता की सामान्य इच्छा व्यक्त हो सकती थी। कुछ लेखक यह तर्क देते हैं कि इस प्रकार की परिभाषाओं की परिणति यह हुई कि राजतंत्र के स्थान पर

राष्ट्रीय असेम्बली की एक नई किस्म की निरंकुशता आ गई। आने वाले वर्षों में, लोकतंत्र की जन आधारित तथा संसदीय अवधारणाओं के बीच एक बुनियादी द्वंद्व की स्थिति बन गई, क्योंकि दोनों का ही दावा अभिन्न संप्रभुता का था।

4.3.1 जैकबिन गणतंत्र और आतंक (1792-94)

लूई सोलहवें ने जून में भागने की कोशिश करके एक संविधान सम्मत सम्राट की हैसियत से फ्रांस पर शासन करने की वैधता और अधिकार खो दिए। उग्र सुधारवादियों (क्रांतिकारियों) ने क्रांति की सफलता सुनिश्चित करने के लिए कुलीन जन की प्रतिक्रिया के खतरे को हथियार बनाया। उन्होंने अप्रैल 1792 में आस्ट्रिया पर युद्ध की घोषणा कर दी क्योंकि आस्ट्रीआई सम्राट लीओपोल्ड द्वितीय ने पिलनित्स की घोषणा करके फ्रांसीसी सम्राट के सम्पूर्ण अधिकार को यूरोपीय ताकतों की मदद से जबरन बहाल करने की धमकी प्रस्तुत कर दी थी। उग्र सुधारवादियों (क्रांतिकारियों) ने पेरिस के आम लोगों और कॉर्दल्ये (एक क्रांतिकारी राजनीतिक क्लब) तथा जैकबिन क्लब जैसे अतिवादी राजनीतिक गुटों से समर्थन लिया। उन्होंने सम्राट को गद्दी से उतार दिया और एक नए गणतंत्रवादी संविधान का लिखित प्रारूप तैयार करने के लिए अगस्त सितम्बर 1792 में एक राष्ट्रीय कनवेंशन का गठन किया। इसका चुनाव सार्वभौमिक पुरुष मताधिकार के आधार पर किया गया।

जैकबिन क्लब के सदस्यों और जन आंदोलन (विशेषकर पेरिस कम्यून के 'सांकूलॉत') के बीच जो गठबंधन हुआ उसने 'स्वतंत्रता' के शत्रुओं के विरूद्ध रॉबेसप्यार के नेतृत्व में क्रांतिकारी तानाशाही के लिए एक अनिवार्य बुनियाद तैयार कर दी। पेरिस के लोकप्रिय उग्रवादियों ने 1792 के बाद कुछ सुसंगत विचारों तथा व्यवहारों को एक सही दिशा प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप एक प्रत्यक्ष सरकार तथा जनप्रिय लोकतंत्र की स्थापना हुई। यह संस्था स्येस तथा मारा की सुझाई केंद्रीकृत तानाशाही से भिन्न थी। जनता की संप्रभुता को संपूर्ण मानते हुए, पेरिसवासियों ने स्वायत्ता के सिद्धांतों, कानूनों को स्वीकृत करने तथा निर्वाचित अधिकारों को नियंत्रित करने एवं वापस बुलाने के अधिकार को अपना लिया। इस प्रकार जैकबिन तानाशाही के आधार प्रतिनिधिक लोकतंत्र का स्थान प्रत्यक्ष लोकतंत्र ने ले लिया। चुनाव का स्थान नियुक्ति ने ले लिया। यहां क्रांतिकारी समितियों का उद्विकास महत्वपूर्ण है – सर्वाधिक शक्तिशाली समिति थी जन सुरक्षा समिति। इसको समस्त अधिकार मिले हुए थे और यह स्वयं को 'सामान्य इच्छा' के प्रतिनिधि के रूप में पेश करती थी और यह कनवेंशन की सर्वाधिक शक्तिशाली कार्यकारी समिति बन गई। इसने 'जनरल मैक्सिमम' के कानून को लागू किया। पेरिस के क्रांतिकारी मजदूर वर्ग की मांग पर बने इस कानून में खाद्य तथा पेय से लेकर ईंधन तथा वस्त्र तक की कीमतों पर नियंत्रण लगाया गया। स्वतंत्रता और गणतंत्र के शत्रुओं के प्रति जो युद्धोन्मुख होने की स्थिति बनी उस कारण नेता लोगों ने आतंक के शासनकाल (जनवरी से जुलाई 1794 तक) की स्थापाना की। इस दौर में सम्राट, रानी, उनके गुप्त समर्थक, कट्टर कैथोलिक, अन्य सटोरिए समेत 40,000 से भी अधिक लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। रॉबेसप्यार को अत्याचारी तथा तानाशाह के साथ–साथ लोकतंत्र का संत भी माना जाता है जिसने समाजवाद का रास्ता दिखाया। क्रांतिकारी सरकार का जल्दी ही जनता से सम्पर्क टूट गया और उसका स्वभाव भी तानाशाहीपूर्ण हो गया और रॉबेसप्यार की भी सरकार पर पकड़ ढीली हो गई।

थर्मदॉरी प्रतिक्रिया

राबेसप्यार को मौत के घाट उतारे जाने के बाद के दो दिनों में, लगभग साठ व्यक्तियों वाले समूचे पेरिस कम्यून को क्रांति स्थल से डेढ़ घंटे से भी कम समय में खत्म कर दिया गया और हालांकि मैं मृत्यु दंड स्थल से सौ कदम से भी अधिक दूरी पर खड़ा था, फिर भी मृतकों का खून मेरे पांवों के नीचे बह रहा था। मुझे जिस बात ने चकित किया वह यह थी कि जैसे ही कोई सिर धड़ से अलग होकर गिरता था लोगों के मुंह से 'अ ब ली मैक्सीमम' कानून के बारे में ही आवाज निकलती थी। वास्तव में इस कानून को लागू करने में इतनी अधिक कठोरता बरती गई कि सभी तरह के सामान पर कुछ निश्चित कीमतें निर्धारित कर दी गई और इसके तले आम जनता को अभावों में पिसना पड़ा। और, इसके लिए दोषी ठहराया गया रॉबसेप्यार को। अब जिन लोगों को कष्ट उठाना पड़ रहा था वे सभी अलग–अलग व्यवसाय के थे; और उनमें से अनेक ने तो वास्तव में उस कानून का फायदा उठाया, उसका दुरूपयोग किया था। उन्होंने किसानों को तथा पेरिस के बाजार में सामान देने वाले अन्य व्यापारियों को इस बात के लिए बाध्य किया था कि वे अधिकतम कीमत पर अपना माल बेंचे, और उन लोगों ने उन्हें मनमाने दामों पर खुदरा माल बेचा जो उसे खरीदने की औकात

रखते थे। मैंने रॉबेसप्यार को गुइलोटिन पर जाते हुए नहीं देखा; किंतु मुझे लोगों ने बताया है कि वह उस अवसर पर जिस गाड़ी में वहां से निकला था उसके साथ चलने वाले लोगों ने गाड़ी के अंदर अपने छाते घुसेड़ कर उसके शरीर में घोंपे थे ......अब लोगों के लिए अपने आपको बचाने का यह उपाय बन गया था कि वे यह ऐलान करते थे कि उन्हें रॉबेसप्यार के आतंक के दौर में जेल हुई थी। अब तो जैकबिनों की वेशभूषा मे निकलना भी खतरनाक हो गया था, क्योंकि 'युवा पेरिसवासी' गुट ने कई व्यक्तियों को पेरिस की गलियों में मात्र इसलिए मार डाला था क्योंकि वे लंबे कोट और छोटे बाल धारण किए हुए थे।

'इंगलिश विटनेस ऑफ दि फ्रेंच रिवोल्यूएशन' से जे.ए. टॉमसन द्वारा संपा. (ऑक्सफर्ड· बौसिल ब्लैकवेल, 1938), पृ. 248–49

4.3.2 थर्मोडोरियन गणतंत्र (1795-99)

राबेसप्यार के पतन के बाद तमाम मूलभूत समस्याएं फिर उभर आई और कनवेंशन में अधिकारों की घोषणा, जनता की संप्रभुता तथा प्रतिनधित्व के सिद्धांत पर नए सिरे से बहस शुरू हो गई। नई घोषणा में कानून की सर्वोच्चता को सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में लिया गया, किंतु अत्याचार का प्रतिरोध करने (1789) अथवा विद्रोह (1793) के अधिकार गायब हो गए। समानता के अधिकार के साथ 'कर्तव्य' की घोषणा को रखा गया, जिसका लक्ष्य था अधिकारों की असीमित प्रकृति तथा कानून पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता के बीच तनाव को टालना। संप्रभुता के लोकतांत्रिक विचार के अंदर छिपी अपार शक्ति के पिछले अनुभव ने इस विषय पर फिर से चिंतन करने की स्थिति पैदा कर दी। यहां से संप्रभुता की अवधारणा पर विचार विमर्श की एक लंबी परंपरा की शुरुआत हुई जिसके प्रतिनिधि थे बेंजमन कांस्टैंट, मादाम द स्ताल, रवाये–कॉलार तथा गीजो। स्येस ने एक 'संवैधानिक जूरी' बनाकर संप्रभुता पर नियंत्रण लगाने का संकेत दिया। यह जूरी एक विशेष निकाय होला जिसका काम था प्रशासनिक विनियमों तथा कानूनों की संवैधानिकता पर नियंत्रण करना। फ्रांसीसी इतिहास में विधायिका की शक्ति के ऊपर एक न्यायक्षेत्र की श्रेष्ठता की अवधारणा यहां पहली बार दिखाई दी। नए संविधान में एक द्विसदनीय विधायिका की व्यवस्था की गई जिसमें संपत्ति की उच्च योग्यता के आधार पर सामान्य इच्छा का संकोच के साथ पालन करने का प्रावधान था। पांच निदेशकों वाले एक संचालक मंडल का भी प्रस्ताव रखा गया। इसे कार्यपालिका के रूप में काम करना था। व्यवहार में, संचालक मंडल वाले शासन ने फ्रांस, विशेषकर पेरिस, को राजनीति से मुक्त कर दिया। निम्न बुर्जुआ (मध्यम) वर्ग को कोई भी पद लेने से प्रतिबंधित कर दिया गया, वोटिंग नाम मात्र की रह गई और राजनीति पर धनिकतंत्र तथा पेशेवर प्रशासकों का वर्चस्व हो गया। इस शासन की शक्ति चुनाव के माध्यम से वैधीकरण में नहीं, अपितु पुलिस, सेना तथा नौकरशाही में निहित थी। संचालक मंडल ने विशिष्ट जन के सामाजिक तथा राजनीतिक राज्य की शुरुआत कर दी। विशिष्ट जन का यही वर्ग उन्नीसवीं शताब्दी में हावी रहा।

बोध प्रश्न 2

1) प्राचीन शासन की समाप्ति के बाद वैधीकरण के नए सिद्धांत क्या थे ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) थर्मदॉरी गणतंत्र ने किस प्रकार के अधिकार का प्रयोग किया ? 60 शब्दों मे उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

4.4 दलीय राजनीति के वैचारिक विभाजन तथा विभिन्न पहलू

क्रांति के दौर ने अनेक राजनीतिक समितियों को उभरते देखा, जिन्होंने सत्ता के लिए अपनी–अपनी अंदरूनी लड़ाईयां लड़ीं। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय था कॉर्देल्ये क्लब। इस क्लब का नाम सेन नदी के पास अवस्थित परित्यक्त कॉर्दल्ये मठ के नाम पर पड़ा, जहां इसकी बैठकें होती थीं। इस क्लब का 'सां–कूलॉत' क्रांतिकारियों की गतिविधियों से घनिष्ठ संबंध रहा। ये क्रांतिकारी छोटे–छोटे संपत्ति स्वामी थे जिनमें दस्तकार, दुकानदार और मिस्त्री तथा उग्र विचारों एवं प्रत्यक्ष गणतंत्रवादी लोकतंत्र में आस्था रखने वाले यात्री लोग शामिल थे। यह क्लब पेरिस के आम जन को प्रशिक्षित करके उन्हे एक अत्यधिक प्रभावकारी राजनीतिक शक्ति बनाने में सफल भी रहा। इसी प्रकार जैकबिन क्लब का गठन क्रांति की शुरुआत में ही हो गया था। पहले यह नरमपंथी संगठन रहा और संविधानसम्मत तथा शिक्षित तत्वों को बैठक का स्थान उपलब्ध कराता रहा। किंतु, क्रांति के आगे बढ़ने के साथ यह अधिकाधिक क्रांतिकारी होता गया और इसने पूरे फ्रांस में अपनी शाखाओं का एक मजबूत जाल बनाना शुरु कर दिया। ये क्लब गणतंत्रवाद का एक अड्डा बन गया।

जब नए संविधान के प्रावधानों के अनुसार अक्टूबर 1791 में 745 सदस्यों वाली विधान सभा की बैठक हुई तो सदस्यों में कोई स्पष्ट विभाजन नहीं था, और वे एक से दूसरे गुट में आते जाते रहे। राजनीतिक दलों के गठन की प्रक्रिया धीमी थी और नियंत्रित पार्टी संगठन का तो अस्तित्व ही नहीं था। फिर भी, सभा के अनेक सदस्यों में गणतंत्रवाद के विषय में अतिवादी विचार पनपने लगे। ये वही विचार थे जिन्हें जैकबिन तथा कॉर्दल्ये क्लबों ने फैलाया और पोषित किया था। अधिकांश वाचाल गुट सम्राट को हटाने के पक्ष में थे ओर उन्होंने प्रदर्शन की योजना भी बनाई। जुलाई 1791 में चैम्प डी मार्स में प्रदर्शन आयोजित किया गया और लाफायेत के आदेश पर प्रदर्शनकारियों पर गोलियां बरसाई गई। इन घटनाओं के परिणामस्वरूप विभाजन की स्थिति बन गई, जिसमें लाफायेत तथा राजतंत्र समर्थकों ने जैकबिनों को छोड़ कर फॉयां गुट बना लिया। यह टूटा हुआ गुट नरमपंथी था और संवैधानिक राजतंत्र का पक्षधर था।

4.4.1 संविधानवादी बनाम गणतंत्रवादी

चैम्प डी मार्स मैदान की घटनाओं ने तृतीय इस्टेट के अंदर तेजी से विभाजन किया। सम्राट के साथ समझौता चाहने वालों तथा उसका विरोध करने वालों में एक स्पष्ट विभाजन रेखा खिंच गई। ऐसे बहुत से लोग जो 1789 में राष्ट्रभक्त थे, अब नीचे से बढ़ते दबावों तथा संपत्ति को होने वाले खतरों तथा राजनीतिक नेतृत्व छिन जाने के भय से राजतंत्र तथा फॉयां गुट के समर्थकों की ओर हो गए। बारनाव, द्यूपॉर तथा ईमथ के नेतृत्व में इन नरमपंथियों ने संविधान को राजतंत्र के अधिक अनुकूल बनाने का प्रयास किया। असेम्बली में उनकी संख्या लगभग 260 थी। फॉयां गुट इस बात के लिए तत्पर था कि आम जनता की ओर से मध्यम वर्ग पर कोई खतरा होने से पहले ही क्रांति को समाप्त कर दिया जाए, इसीलिए उन्होंने राजतंत्र और राष्ट्र के सिद्धांतों के बीच मेल–मिलाप कराना चाहा। असेम्बली में संविधान के संशोधन के उनके रूढिवादी अभियान को बहुत कम सफलता मिली।

उनसे संख्या में कम और कहीं अधिक सक्रिय थे जैकबिन क्लब के वामपंथी डिप्टी। उनकी संख्या 140 के आसपास थी। फॉयां गुट की तरह वामपंथी के भी निर्वाचक सभा में अपने समर्थक थे और उनमें दो स्पष्ट राजनीतिक प्रवृत्तियां दिखाई देती थीं।

अतिवादी उग्र क्रांतिकारी भविष्य की रिपब्लिक (गणतंत्रवादी) पार्टी का केंद्रीय अंग बने। ये लोग असेम्बली की अपेक्षा क्लबों में अधिक शक्तिशाली थे। उनके प्रमुख नेता थे मेरलैं द त्यौंबील, शाबो, कूतौं आदि।

वामपंथी डिप्टियों के प्रमुख गुट में ब्रीसो के अनुयायी शामिल थे। विधान सभा में ब्रीसोवादियों के नाम से मशहूर ये लोग राष्ट्रीय कनवेंशन के अधीन जीरोंदियो के रूप में जाने गए – क्योंकि वेरन्यो, ग्रांजनवे, दूको जैसे उनके सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिनिधि जीरोद जिले के थे। जीरोंदी लोग आस्ट्रिया तथा उसके मित्रों के विरूद्ध युद्ध के कट्टर समर्थक थे, जहां से प्रति–क्रांति का खतरा था। उनका

मानना था कि युद्ध से राष्ट्रीय एकता बनेगी। किंतु, लुई सोलहवे और उसके परिवार के पेरिस से भागकर क्रांतिकारियों के साथ मिल जाने से संवैधानिक राजतंत्र का उनका मकसद ही चौपट हो गया। इस घटना के साथ ही फ्रांसीसी राजनीति में फॉयां गुट का आधार खत्म हो गया।

वर्ष 1792 में युद्ध के आगमन ने नरमपंथियों तथा अतिवादियों के बीच की खाई को और चौड़ा कर दिया। इस समय अनाज की कमी, सट्टेबाजी और काला बाजारी तथा प्रति– क्रांतिकारियों के बाहरी खतरों की जो स्थिति बनी उससे लोगों में भय और आतंक गहरा गया। युद्ध ने पेरिस के समाज के निचले तबके को महत्वपूर्ण बना दिया क्योंकि स्वैच्छिक सेनाओं (क्रांतिकारी सेना) का गठन शहरी मजदूर जन में से ही किया गया। इस तरह, युद्ध और आर्थिक कठिनाइयों ने क्रांति का झुकाव वामपंथ की ओर कर दिया। पेरिस में 'सां कूलॉत' ने एकजुट होकर एक शक्तिशाली बल का रूप धारण कर लिया और 10 अगस्त, 1792 को शाही महल त्वेलरी पर आक्रमण कर दिया। इसके फलरूवरूप राजतंत्र का पतन हो गया और फ्रांस एक गणतंत्र बन गया। राष्ट्रीय कनवेंशन की बैठक 20 सितम्बर, 1792 को एक गणतांत्रिक संविधान बनाने के लिए हुई।

4.4.2 जीरोंदी दल के अनुयायियों तथा मानतनयादों के बीच राजनीतिक संघर्ष

राष्ट्रीय कनवेंशन में तीन मुख्य राजनीतिक गुट थे, किंतु यह विभाजन अस्थाई था। बहुमत हालांकि बहुत स्थिर नहीं था, फिर भी यह आम तौर पर अधिसंख्य निर्दलीय डिप्टियों के साथ था। इनकी किसी विशेष कार्यक्रम अथवा गुट के साथ कोई प्रतिबद्धता नहीं थी और इन्हें 'मारे' या पलें कहा जाता था, और वे केंद्रीय दल में थे। जीरोंदियों (पूर्व ब्रीसोवादियों) का नेतृत्व वेरन्यो, ब्रीसो तथा गूआदे के हाथों में था। ये लोग हालांकि बहुमत में नहीं थे, फिर भी प्रायः वे वोटिंग के संतुलन को नियंत्रित करते थे और अधिकांश मंत्री भी उपलब्ध कराते थे। तीसरा महत्वपूर्ण गुट अथवा दल जैकबिन या मानतनायदों (पहाड़ियों) का था। असेम्बली में ऊपर की सीटों पर बैठने के कारण इनका नाम पड़ा था। इनका नेतृत्व रॉबेसप्यार, मारा, और दातौं जैसी अति महत्वपूर्ण हस्तियों के पास था।

जीरोंदियों और मानतनयादों के बीच चले राजनीतिक संघर्ष ने कनवेंशन को छिन्न–भिन्न किर दिया और यह झगड़ा तभी खत्म हुआ जब पेरिस के आम जन के आक्रमण ने जीरोंदियों को निकाल बाहर किया। यह संघर्ष किस प्रकार का था, इस बात को लेकर अलग–अलग मत हैं। क्या इसका आधार व्यक्तिगत प्रतिद्वंद्विता और सत्ता की भूख थी अथवा यह सामाजिक तथा आर्थिक वर्ग संघर्ष का प्रतिबिंब था ? कुछ लेखक जीरोंदी को एक सुगठित दल मानते हैं तो कुछ अन्य जीरोंदी दल के विचार को मानतनयादों के प्रचार का परिणाम समझते हैं। मानतनयादों स्वयं भी सुसंगठित थे और उनके तौर–तरीकों को प्रायः जैकबिन क्लबों में अंतिम रूप दिया जाता था, जिनकी लगाम पूरे तौर पर उन्हीं के हाथों में थी। जीरोंदी को उच्च बुर्जुआ वर्ग का प्रतिनधित्व करने वाले धनिक दल के रूप में देखा जाता है, जबकि मानतनयादों का आधार निम्न मध्यम वर्ग तथा जन साधारण में था। मानतनयादों ने जनता की जरूरतों से जुड़ी नीतियों को अपनाया और जन समर्थन मांगने तथा जनता की मांगों को पूरा करने वाली नीतियों को अपनाने में भी कभी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। विदेशी युद्ध का खराब संचालन, और फ्रांस के अन्दर क्रांतिकारी कागजी मुद्रा 'आसीन्या' का अवमूल्यन जैसी भीषण आर्थिक समस्याएं तथा असमाधेय खाद्य समस्या कुछ ऐसे तत्व थे जो जीरोंदियों की स्थिति को कमजोर कर रहे थे। इसके बजाय उन्होंने प्रति–क्रांति तथा प्रवासियों के विरूद्ध कानूनों पर अपना ध्यान लगाया। जीरोंदियों को निर्णायक झटका पेरिस ने क्रांतिकारी उग्र गुटों (सां कूलॉत) की ओर से लगा। सां–कूलॉत ने कनवेंशन पर हमला कर दिया और 2 जून, 1793 को मानतनयादों को सत्तारूढ़ कर दिया। इस तरह, तख्ता पलटने का काम संख्या में कम मानतनयादों तथा सां–कूलॉत के मिले–जुले बल ने किया।

जैकबिनों ने अक्टूबर 1793 में एक अन्तरिम क्रांतिकारी सरकार बना दी जिसकी परिणति वास्तविक तानाशाही तथा 'आतंक' में हुई। इस सरकार में लोकतांत्रिक तथा अत्याचारी प्रवृत्तियों के जटिल मिश्रण के संकेत थे। 'आतंक' काल की विभिन्न ज्यादतियों के परिणामस्वरूप जैकबिन गणतंत्र के विरूद्ध प्रतिक्रिया हो गई। 27 जुलाई, 1794 को रॉबेसप्यार के नेतृत्व में मानतनयादों का रूढ़िवादियों ने सफाया कर दिया। इन रूढ़िवादियों ने इसके लिए उग्र सुधारवादी क्रांति की ज्यादतियों को ही हथियार बनाया।

वर्ष 1795 से केंद्रीय भूमिका में 'मारे', पूर्ववर्त्ती काल के निर्दलीय अथवा केंद्रीय दल आ गया। इसमें सुधरे जीरोंदी, पछताए मानतनयादों, अति उत्साही गणतंत्रवादी, यहां तक कि समर्पित कैथोलिक भी शामिल थे। इसके सदस्य अधिकतर भूतपूर्व अमीर तथा बुर्जुआ वर्ग के वे लोग थे जिनकी दिलचस्पी

किसी विचारधारा में इतनी नहीं थी जितनी की अपनी जायदाद को बढ़ाने में। 'सां-कूलांत' निहत्थे हो चुके थे और वामपंथी गुटों का ध्वंस हो चुका था। फ्रांसीसी क्रांति का अंतिम प्रमुख प्रकरण था 1796 का बावफ षडयंत्र, जिसके माध्यम से संपत्ति वितरण के क्रांतिकारी वामपंथी विचारों और साम्यवादी (कम्युनिस्ट) आदर्शवाद के एक प्रारंभिक स्वरूप को लागू करने की कोशिश की गई थी। बावफ और उसके सहयोगियों को पकड़ लिया गया और अत्यंत बेरहमी से उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। दलीय आंदोलन 1815 में संविधानसम्म्त राजतंत्र की बहाली तक यथार्थ में निलंबित रहा, और तभी तीन प्रमुख दलों के विभाजन भी फिर उभर का सामने आ गए।

बोध प्रश्न 3

1) गणतंत्रवाद के विचारों को प्रचारित करने में राजनीतिक क्लबों तथा समितियों की क्या भूमिका रही ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) फॉयां पार्टी के मुख्य विचार क्या थे ? 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) जरोंदी दल के अनुयायियों तथा मानतनयादों के बीच प्रतिद्वंद्विता के मुख्य तत्व क्या थे ? 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

4.5 सारांश

इस इकाई में हमने गांवों तथा कसबों के आम लोगों पर आर्थिक संकट के प्रभाव का अध्ययन किया। यह स्पष्ट है कि राज्य की आर्थिक कठिनाइयों ने सामाजिक तथा राजनीतिक संकट को जन्म दिया, जिसकी परिणति फ्रांसीसी क्रांति में हुई। आपने क्रांति की शब्दावली तथा विचारधारा प्रदान करने में दार्शनिकों की भूमिका पर भी ध्यान दिया होगा। हमने यह भी पढ़ा कि कैसे तृतीय इस्टेट सम्राट की प्रजा नहीं अपितु फ्रांस के नागरिकों का प्रतिनधित्व करने वाली राष्ट्रीय असेम्बली बन गई। इससे वैधता के नए सिद्धांत स्थापित हुए जिन्होंने निरंकुशवादी शासन के सामंती ढांचे का स्थान ले लिया। हमने यह भी विश्लेषण किया कि वैधता के सिद्धांत कैसे क्रांति की प्रकृति बदलने के साथ स्वयं भी बदलते रहे। आपने यह भी ध्यान दिया होगा कि क्रांतिकारी राजनीति ने किस प्रकार राजनीतिक दलों तथा राजनीतिक विचारधाराओं को जन्म दिया।

4.6 शब्दावली

प्राचीन शासन : फ्रांस में उस जीवन शैली तथा सरकार के लिए 1790 के दशक में खोजा गया शब्द, जिसे क्रांति ने 1789 में नष्ट कर दिया था।

काये : शिकायतों के रजिस्टर जिन्हें तीनों इस्टेट ने बनाया था।

प्रवासी : वे लोग जो फ्रांस से चले गए थे और विदेशी ताकतों पर इस बात के लिए दबाव डाल रहे थे कि वे क्रांति का दमन करें।

इस्टेट : (तीन) वर्ग जिनमें फ्रांस का समाज बंटा हुआ था – पुरोहित वर्ग, अमीर जन और आम लोग।

गुइलोटिन : फांसी देने के लिए प्रयुक्त एक भारी तिरछा धारदार हथियार, जो बहुत ऊंचाई से अपराधी की गरदन पर गिराया जाता था जिससे उसका सिर धड़ से अलग हो जाता था।

दशमांश . शाब्दिक अर्थ – दसवां हिस्सा। यह एक कर होता था जिसे गेहूं, जौ तथा राई जैसी प्रमुख फसलों पर लगाया जाता। यह कर धर्मसंस्था (चर्च) लेती थी।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 4.2.1
2) सरकारी व्यय में कटौती में विफलता, दोषपूर्ण कर प्रणाली, अमीर जन को वित्तीय छूट, आदि। देखिए उपभाग 4.2.2
3) देखिए उपभाग 4.2.5

बोध प्रश्न 2

1) सामंती विशेषाधिकारों की समाप्ति, समानता तथा न्याय की स्थापना, मनुष्य के अधिकारों की घोषणा, आदि। देखिए भाग 4.3
2) देखिए उपभाग 4.3.2

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 4.4
2) देखिए उपभाग 4.4.1
3) देखिए उपभाग 4.4.2

इकाई 5 आधुनिक फ्रांसीसी राज्य का जन्म

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 निरंकुश राज्य और सामंती ढांचे का उन्मूलन
5.3 फ्रांस का पुनर्निर्माण, प्रशासनिक एवं वैधानिक
5.4 धार्मिक विभाजन एवं धर्म–संधि (Concordat)
5.5 'आतंक' काल तथा नेपोलियन युद्धों के दौरान नागरिकों की लामबंदी
5.6 नई नौकरशाही तथा शैक्षिक संस्थाएं
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने एक राजनीतिक आंदोलन के रूप में फ्रांसीसी क्रांति, जनता की लामबंदी तथा नए राजनीतिक विचारों के आगमन के बारे में पढ़ा। इस इकाई में आप प्रशासनिक ढांचे तथा संस्थाओं के रूपांतरण के बारे में पढ़ेंगे जिन्होंने आधुनिक राष्ट्र राज्य को जन्म दिया। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह समझ पाएंगे कि फ्रांसीसी निरंकुशतावाद तथा उसकी प्रकृति के उदय के लिए कौन से कारक जिम्मेदार थे;
- यह जान पाएंगे कि सामंती ढांचे के उन्मूलन के आधार क्या थे;
- प्रशासनिक तथा वैधानिक बदलाव की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- यह जान पाएंगे कि धर्म, जो सामाजिक तथा राजनीतिक तनाव पैदा कर रहा था, उसका इस्तेमाल राष्ट्रीय निर्माण के लिए किस प्रकार किया गया; और
- उस मजबूत नौकरशाही ढांचे तथा शिक्षा प्रणाली को समझ पाएंगे जिनका निर्माण केंद्रीकृत राज्य के साधनों के रूप में किया गया था।

5.1 प्रस्तावना

सोलहवीं शताब्दी से केंद्रीकरण की प्रक्रिया ने फ्रांस में निरंकुशतावाद को मजबूत कर दिया और अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक आते आते फ्रांसीसी राजतंत्र लूई चौदहवें के अधीन केंद्रीकृत निरंकुशतावाद का प्रतीक बन गया, जिसका आधार सामंती सामाजिक ढांचा था। फ्रांसीसी क्रांति ने सामंती व्यवस्था और उसकी राज्य व्यवस्था को पूर्ण रूप से ध्वस्त कर दिया। राष्ट्रीय असेम्बली तथा बाद में नेपोलियन ने बड़ी मेहनत और सुचारू ढंग से काम करते हुए प्राचीन राज्य को एक आधुनिक राष्ट्र राज्य का रूप दे दिया। संस्थाओं, विधान, प्रशासन, न्याय, नौकरशाही, शिक्षा, वित्त और यहां तक कि धर्म को भी नया रूप देने के प्रयास किए गए। इस नए ढांचे के पास एक जनाधार था और इसीलिए उसका स्थायी प्रभाव न केवल फ्रांस अपितु अन्यत्र देशों पर भी पड़ा।

इकाई 4 में आपने फ्रांसीसी क्रांति की प्रगति तथा क्रांतिकारी राजनीति के जन्म के बारे में पढ़ा। इस इकाई में आप यह देखेंगे कि क्रांतिकारी घटनाओं ने किस प्रकार राज्य मशीनरी तथा प्रशासनिक ढांचे का रूप ही बदल दिया। इस सबके परिणामस्वरूप फ्रांस के आधुनिक राज्य का निर्माण हुआ।

5.2 निरंकुश राज्य और सामंती ढांचे का उन्मूलन

फ्रांसीसी निरंकुशतावाद का प्रारंभ सीधे वहां से माना जा सकता है जहां किसान विद्रोहों के कारण सामंती शासक वर्ग के हितों को खतरा पैदा हो गया था। सम्राट ने इस स्थिति में हस्तक्षेप किया तो केवल किसानों की संपत्ति को जमींदारों के अनुचित शोषण से बचाने या सम्राट के मुकाबले अमीर वर्ग को कमजोर करने के लिए नहीं, किंतु इसलिए भी कि उसकी अपनी शक्ति भी किसानों से कर वसूलने पर निर्भर करती थी। अमीरों के पास इसके सिवाय और कोई चारा नहीं था कि वे अपने हितों की रक्षा करने के लिए निरंकुश राज्य की ओर देखें। सम्राट ने सामंती अमीरों से उनके राजनीतिक अधिकार छीन लिए किंतु उनके पास अनेक विशेषाधिकार रहने दिए। शाही निरंकुशतावाद की अनिवार्य संस्थाओं में थी एक सुविकसित वित्तीय मशीनरी (1610 और 1644 के बीच 'ताय' से होने वाली राज्य की वसूली 170 लाख से 44 लाख लीव्र पर पहुंच गई जबकि कुल कर लगभग छः गुना हो गए); भ्रष्टाचारी पदाधिकारियों का एक विशाल नौकरशाही ढांचा; न्यायपालिका के सदस्य; तथा वेतनभोगी अधीक्षक (असाधारण अधिकार प्राप्त शाही अधिकारी)। आवश्यकता से अधिक विशाल राज्य मशीनरी ने वास्तव में तो नगरपालिकाओं और प्रतिनिधिक संस्थाओं की भूमिका ही व्यर्थ कर दी थी (ब्रितनी, प्रोबेंस, बरगंडी, लांग डोक आदि की प्रांतीय असेम्बलियों में बढ़ते केंद्रीकरण का प्रतिरोध किया गया)। शाही प्राधिकार को दैवीय अधिकार के सिद्धांतों ने जीवित रखा हुआ था जिसके अनुसार प्रतिरोध का अधिकार किसी को भी नहीं था। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान, केंद्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण के दबावों के बीच तनाव बढ़ रहे थे।

आनस्यैं शासन के दौरान निरंकुशतावादी राज्य की स्वायत्तता एक दोहरा चरित्र धारण कर चुकी थी। इसने उत्पादन के संदर्भ में इस हद तक एक वर्ग जैसी भूमिका अपना ली कि किसानों के अतिरिक्त उत्पादन को हड़पने को लेकर सामंती शासक वर्ग के विभिन्न तत्वों के साथ इसकी प्रतिद्वंद्विता हो गई। दूसरे, राज्य को विभिन्न तरीकों से धन जमा करने तथा समाज की उन्नति करने वाले एक साधन के रूप में देखा जाने लगा। जैसा कि फ्रांस्वा फ्रूरे ने कहा है :

> "पदों पर अधिकार करने, अमीर की पदवी देने तथा केंद्रीकृत प्रशासन के माध्यम से, राज्य तो समूचे नागरिक समाज को निगल रहा था; बूर्जुआ राज्य की तमाम दौलत.... अमीर की पदवी देने के बदले में इसके कोष में समेट ली गई थी... सम्राट के सेक्रेटरी के पदों की बिक्री... नई बुलिंदयों पर पहुंच गई..."

राष्ट्रीय असेम्बली ने जो सबसे पहले काम किए उनमें एक काम यह था कि उसने राज्य मशीनरी के साथ साथ कुलीन जन के विशेषाधिकारों तथा सामंतवाद के अवशेष चिन्हों को नष्ट कर दिया जिससे कि फ्रांस के आधुनिक राज्य का निर्माण हो सके। 4 अगस्त, 1789 की रात को असेम्बली ने एक असामान्य सत्र में अमीरों, पुरोहित वर्ग, कस्बों तथा प्रांतों के वित्तीय विशेषाधिकारों और सामंतीय अधिकारों को भी समाप्त कर दिया।

हालांकि राजनीतिक स्वरूप संवैधानिक राजतंत्र (1789-91) से लोकतांत्रिक गणतंत्र (1792-94), थर्मदॉरी शासन (1795-99) तथा नेपोलियन के कांसुली शासन और साम्राज्य (1799-815) में परिवर्तित होते रहे, फिर भी इस काल के ढांचागत सुधार कहीं अधिक बुनियादी तथा टिकाऊ थे। सामंतवादी राजतंत्र और अमीरों के विशेषाधिकार संपन्न पदों की समाप्ति के साथ साथ आनस्यैं शासन के अधिकांश प्रशासनिक विभाग भी अपने अधिकारियों और संस्थाओं समेत गायब हो गए। 1791 तक फ्रांस में प्राचीन शासन में आमूल चूल परिवर्तन हो चुके थे, और यह काम संपन्न बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में जनता के प्रतिनिधियों ने किया। कुछ समय के लिए अधिकारों के वास्तविक विकेंद्रीकरण की स्थिति रही जिसमें मुख्य जोर निर्वाचन के सिद्धांत पर रहा, किंतु जैकबिन गणतंत्र तथा 'आतंक' काल और उसके बाद आने वाले नेपोलियन के कांसुली शासन के काल में भी विकेंद्रीकरण की एक सदा बढ़ने वाली प्रक्रिया देखी गई।

5.3 फ्रांस का पुनर्निर्माण, प्रशासनिक एवं वैधानिक

प्राचीन शासन को उसके तमाम प्रशासनिक ढांचे के साथ ध्वस्त करने के साथ यह आवश्यक हो गया कि प्रशासनिक इकाईयों का एक सिरे से पुनर्गठन किया जाए। 4 अगस्त 1789 को जिन प्रांतीय

तथा नगरीय शासनों का ध्वंस किया गया था, उनके स्थान पर स्थानीय प्रशासन के एक नए तंत्र की तुरंत आवश्यकता थी। जन व्यवस्था पर असर डालने वाले खाद्यान्न वितरण तथा अन्य मामलों के प्रबंध के लिए भी यह वांछनीय था। 1790 में बने नए ढांचे में 83 डिपार्टमेंटों की स्थापना की गई, जिनमें से प्रत्येक का नामकरण इसके क्षेत्र की एक भौगोलिक विशेषता के आधार पर किया गया। जैसे, नॉरमंडी अथवा आलजास जैसे पारंपरिक नामों को सीधे सीधे नकारते हुए सेन ऐंफेरियर, बास पायरेनी और ओ–रैं जैसे नाम रखे गए। इस सबका लक्ष्य न केवल राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना था किंतु पुराने समय से चली आ रही प्रांतीय प्रतिद्वंद्विता को रोकना भी था। प्रत्येक डिपार्टमेंट में कई जिले थे, प्रत्येक जिले में दो या उससे अधिक कैंटन थे और प्रत्येक कैंटन में अनेक कम्यून थे। प्रत्येक स्तर पर नगर अथवा ग्रामीण कौंसिल या कम्यून के मेयर से लेकर कौंसिल तक संचालक मंडल तथा डिपार्टमेंट के प्रॉक्यूरेटर जनरल तक सभी जनता के चुने हुए अधिकारी थे जिन्हें अधीक्षकों जैसे शक्तिशाली शाही अधिकारियों को हटा कर प्रशासन का कार्यभार सौंपा गया था। चुने गए अधिकारी हमेशा अपने पदों के लायक साबित नहीं हो सकते थे। फिर भी, 1790 के प्रशासनिक तंत्र ने वह बुनियादी ढांचा बनाया जिस पर नेपोलियन ने अपने प्रसिद्ध नागरिक प्रशासन को खड़ा किया। हम इकाई 4 में यह पढ़ ही चुके हैं कि कैसे जैकबिन गणतंत्र के अधीन 'जन सुरक्षा समिति' ने केंद्रीकरण की प्रक्रिया अपनाने के प्रयास किए।

नेपोलियन ने शांति व्यवस्था बहाल करने के उद्देश्य से एक मजबूत केंद्रीकृत सरकार के अधीन फ्रांस का नए सिरे से निर्माण किया और इसके लिए उसने स्वदेशी नीति अपनाई। उसने कार्यकारी अधिकार का जो ढांचा तय किया उसमें प्रशासनिक स्तर के उच्च पदों से निचले स्तर के पदों की ओर प्राधिकार वहन करने की व्यवस्था थी, चुनावों के माध्यम से ऊपर की ओर जाने का विधान नहीं था। नीति निर्माण के लिए पांच कार्य अनुभाग थे – युद्ध, जल सेना, आंतरिक मामले, विधान तथा वित्त। मंत्री किसी कैबिनेट (मंत्रिमंडल) के सदस्य नहीं थे, अपितु वे नेपोलियन के प्रत्यक्ष नियंत्रण वाली स्टेट कौंसिल के प्रति व्यक्तिगत रूप में उत्तरदायी थे।

कांसुलेट और साम्राज्य ने मिलकर एक पुलिस राज्य बना दिया, किंतु अपने पूर्ववर्ती राज्यों की तुलना में इसकी कार्यप्रणाली अधिक परिष्कृत थी। 1796 में गठित पुलिस मंत्रालय तो फूशे (1799-1810) के अधीन रहा। इसके अधीन चार क्षेत्रीय पुलिस प्रभाग थे जो गुप्तचर पुलिस, सेंसरशिप, जेल, चौकसी, खाद्यान्न की कीमतों तथा मुद्रा बाजार के लिए जवाबदेह थे, हालांकि प्रीफेक्ट और बड़े नगरों के मेयरों ने 'आंतरिक मामलों का मंत्रालय' के अधीन अलग पुलिस अधिकारों को अपने पास ही रखा।

(संविधान असेम्बली के नाम से भी मशहूर) राष्ट्रीय असेम्बली ने 1790 में जिस "प्रशासन विभाग" का गठन किया था, नेपोलियन के समय में उसमें थोड़ा सा फेर बदल करके आरोंदीसमां तथा कैंटन बना दिए गए। जजों, टैक्स कलक्टरों और यहां तक कि पल्ली पुरोहितों जैसे चुने गए प्रशासकों की जगह भी मेयर, प्रीफेक्ट तथा उप प्रीफेक्ट जैसे नियुक्त अधिकारी तैनात कर दिए गए। केंद्रीकृत प्रशासन की नई प्रणाली ने सरकार को इस योग्य बना दिया कि वह देश की संपदा का सदुपयोग पहले की तुलना में कहीं अधिक प्रभावी ढंग से करने लगी। कर जमा करने की जिम्मेदारी अब केंद्रीय राजकोष के अधीन काम करने वाले वेतनभोगी अधिकारियों की हो गई। कर जमा करने का समूचा काम सुचारू ढंग तथा सक्षमता से होने लगा। जन्म, हैसियत अथवा विशेष अधिकारों के आधार पर अब करों में कोई भी छूट नहीं दी गई। ये बदलाव 1789 में लाए गए थे किंतु यथार्थ में इन्हें नेपोलियन युग में ही लागू किया गया।

नेपोलियन के नेतृत्व में जो कानूनी सुधार किए गए वे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने और कांसुली तथा साम्राज्यिक (इम्पीरियल) शासन स्थापित करने का साधन बन गए। क्रांति के पहले, राजतंत्र ने कानूनी एकता के नाम पर कुछ भी नहीं किया था। फ्रांस में 300 से भी अधिक कानूनी प्रणालियां थीः देश में रोमन कानून अलग चलता था (दक्षिणी फ्रांस में) और पारपरिक कानून अलग (उत्तरी फ्रांस में)। क्रांति के समय में 'कनवेंशन' तो रोमन कानून के अधिनायकवादी तेवर के सख्त खिलाफ थी और पारंपरिक कानून की अधिक उदारवादिता के वह पक्ष में थी।

निर्वाचक असेम्बली ने नागरिक विधान की प्रक्रिया को उस समय शुरू किया जब पैतृक अधिकार, विवाह अनुबंध तथा वसीयत करने की स्वतंत्रता पर गंभीर बहस छिड़ गई। यहां, उत्तराधिकारियों (वारिसों) में उत्तराधिकार की पूर्ण समानता दर्शनीय थी। 1791 के संविधान का उद्देश्य तो नागरिक कानून की एक सामान्य संहिता को स्थापित करना था। विधान सभा ने सितम्बर 1792 में तलाक की संस्था और जन्म, विवाह तथा मृत्यु के धर्मनिरपेक्षीकरण के पक्ष में मतदान किया। लोकसमिति ने भी

अगस्त 1793 में कांबासेरेस की अध्यक्षता में एक वैधानिक संहिता तैयार करने की एक क्रांतिकारी परियोजना का प्रस्ताव रखा।

नेपोलियन की संहिता ने कानून के दोनों स्रोतों के बीच संतुलन बनाया। उसे रोमन कानून में बड़ी खूबी दिखाई दी क्योंकि यह उसके अपने तानाशाही स्वभाव के अनुकूल था। उसकी संहिता में, विशेषकर पारिवारिक मामलों में, रूढ़िवादिता की ओर थोडा झुकाव था। पैतृक अधिकार को बहाल किया गया, तलाक की संस्था को भी बनाए रखा गया किंतु उसके प्रतिबंधों को कठोर कर दिया गया। स्त्रियां इस संहिता की मुख्य शिकार बनीं। पत्नियों को उनके पतियों के अधीन कर दिया गया और प्रशासनिक अथवा न्यायिक प्रक्रियाओं में उनकी कोई भूमिका नहीं रही। कनवेंशन ने लिंग की समानता के जिस सिद्धांत की घोषणा करके उसको लागू नहीं किया था, उसे नेपोलियन की संहिता में नकार दिया गया।

नेपोलियन की संहिता में 1793 के सिद्धांत को तो अस्वीकार कर दिया गया, किंतु क्रांतिकारियों ने 1789 में संपत्ति तथा नागरिकता के जिन नए अधिकारों का सुझाव दिया था उसे पूरा का पूरा अपना लिया गया। सामंतवाद तथा सामंती विशेषाधिकारों को समाप्त करने का समर्थन किया गया। 'नेपोलियन संहिता' में नागरिक संहिता (1804) नागरिक व्यवहारविधि संहिता (1806) तथा दंडसंबंधी व्यवहारविधि संहिता शामिल थी। इस संहिता की संरचना व्यक्तियों के परस्पर संबंधों में व्यवस्था एवं स्थिरता लाने, अदालती कार्यवाही को शीघ्रता से निबटाने, विविध प्रांतीय रीतियों के स्थान पर राष्ट्रीय एकरूपता स्थापित करने, नागरिक समानता, धर्म की स्वतंत्रता और एक शक्तिशाली राष्ट्र राज्य के अस्तित्व के लिए किया गया था। यह संहिता अपने ही समय की उपज थी और जिस महान सामाजिक क्रांति के फलस्वरूप इसका जन्म हुआ था यह उसी का साकार रूप थी। जहां तक इसके असर का संबंध है, इसे क्रांतिकारी ही कहा जाएगा। इसने न केवल फ्रांस में, अपितु बेल्जियम, हॉलैंड, लक्समबर्ग, स्विटजरलैंड आदि अन्य अनेक देशों में भी सामाजिक विकास को गहराई से प्रभावित किया।

एकता के कारण, राष्ट्रीय असेम्बली ने 1791 में एक अन्य महत्वपूर्ण पहल जो की, वह थी भार तथा माप की मेट्रिक प्रणाली - ग्राम, मीटर, लीटर - को लागू करना। इसका समूची दुनिया पर स्थायी प्रभाव पड़ा। इस प्रणाली में आसान दशमलव इकाईयों को लागू करके पहले की अव्यवस्था तथा विभिन्नता की स्थिति में से अत्यधिक जरूरी व्यवस्था और एकरूपता को स्थापित किया गया। किंतु, इसे लागू करने की गति धीमी ही रही। एक नए क्रांतिकारी रिपब्लिकन कलैंडर को लाने की क्रांतिकारी शासन की कोशिशें बुरी तरह से असफल रहीं। लोकतांत्रिक गणतंत्र के जन्म से शुरू होने वाले और नए नाम तथा सप्ताहों, महीनों एवं वर्षों के विभाजनों वाले इस कलैंडर को नेपोलियन ने 1806 में औपचारिक तौर पर त्याग दिया।

5.4 धार्मिक विभाजन एवं धर्म संधि (Concordat)

कैथोलिक चर्च को प्राचीन शासन के एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में देखा जाता था और इसीलिए 'क्रांतिकारी' शासन ने राष्ट्रीय असेम्बली के अधीन 1790 में 'पुरोहित वर्ग का नागरिक संविधान' लागू किया। उसके बाद, कैथोलिक चर्च का पूरी तौर पर राष्ट्रीकरण हो गया और उसकी संपत्ति को जब्त करके बिक्री के लिए खोल दिया गया। इसी वर्ष से, धर्म एक प्रमुख मुद्दा बन गया और उसने फ्रांसीसी जनता को विभाजित कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि प्रति क्रांतिकारी शक्तियां, अर्थात राजतंत्र समर्थक, आप्रवासी और कैथोलिक चर्च के कट्टर समर्थक मिलकर क्रांतिकारियों के विरूद्ध एक हो गए।

राष्ट्रीय कनवेंशन ने ईसाई मत से विमुख करने की एक नीति का पालन किया। सड़कों के नामों से 'संत' शब्द को हटा दिया गया, चर्चों को क्रांतिकारी सेनाओं ने लूटमार कर बंद कर दिया और पुरोहितों को विवाह कर लेने को प्रोत्साहित किया गया। ईसाई मत से विमुखता की इस नीति के कारण क्रांति को जितने दोस्त मिले उससे कहीं अधिक उसके दुश्मन बन गए। इसके परिणामस्वरूप, कैथोलिक धर्म एक बांधने वाली शक्ति के रूप में काम करने के बजाए फूट का स्रोत और आम दुराचरण का कारण बन रहा था। फिर भी, फ्रांस ने 'मनुष्य तथा नागरिक के अधिकारों की घोषणा' के अनुच्छेद X में धर्म की स्वतंत्रता को मान्यता देकर एक धर्मनिरपेक्ष समाज का मार्ग प्रशस्त किया।

ऐसा लगता है कि नेपोलियन कैथोलिक चर्च को सामाजिक नियंत्रण, नैतिकता एवं अनुशासन की भावना भरने और विधानसम्मत सत्ता के प्रति अधीनता का उपदेश देने का एक उपयोगी साधन मानता था। उसने 1801 में पोप के साथ समझौता किया, जिसे 'धर्म संधि' के नाम से जाना जाता है। यह कैथोलिक चर्च के साथ मेल की एक सोची समझी और विलक्षण चेष्टा थी, जिसका उद्देश्य देश को एक सूत्र में बांधना था। इस समझौते में पोप और कैथोलिक चर्च ने फ्रांसीसी गणतंत्र को मान्यता दी और इस प्रकार यूरोपीय सम्राटों के पोप के साथ किसी भी गठजोड़ की संभावना ही समाप्त हो गई। इस समझौते से निर्वासित राजतंत्र समर्थकों के मकसद को भी धक्का लगा। रोमन कैथोलिक धर्म को अधिसंख्य फ्रांसीसी जनता के धर्म के रूप में मान्यता दी गई। उसके बाद प्रोटेस्टैंट तथा यहूदी मतावलंबियों को भी राज्य ने संरक्षण प्रदान किया। 'प्रथम साम्राज्य' की समाप्ति पर अनेक बड़ी कठिनाइयों के बावजूद धर्म संधि उन आधारों में से एक बनी रही जिन पर आधुनिक फ्रांस का निर्माण हुआ।

बोध प्रश्न 1

1) आनस्यैं (प्राचीन) शासन के दौरान निरंकुशतावाद के उभरने के दो कारण बताइए।

....

....

....

....

....

2) क्रांतिकाल के दौरान प्रशासनिक पुनर्गठन के क्या उद्देश्य थे? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) नेपोलियन के कानूनी सुधारों ने एक आधुनिक केंद्रीकृत फ्रांसीसी राज्य की स्थापना में क्या योगदान किया? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

4) फ्रांस में धार्मिक मेल मिलाप की स्थिति बनाने में धर्म संधि की क्या भूमिका रही? 60 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

5.5 'आतंक' काल तथा नेपोलियन युद्धों के दौरान नागरिकों की लामबंदी

अठारहवीं शताब्दी की फ्रांसीसी सेनाएं मुख्य रूप से स्वयं सेवकों की पेशेवर फौजें होती थीं जिन्हें लंबे समय की सेवाओं के लिए भर्ती किया जाता था। इनमें विदेशी भी होते थे। जहा तक फ्रांसीसियों का सवाल है, तो सेना में अधिक संख्या शहरियों की होती थी। शासकों ने नागरिक सेना की एक अनिवार्य व्यवस्था लागू की थी जिसे 1726 में स्थायी कर दिया गया। फ्रांसीसी समाज में विशेषाधिकार समाज के ऊंचे तबके को दिए जाते थे, जबकि लाटरी का बोझ लगभग पूरा का पूरा विशेषाधिकारों से वंचित देहाती लोगों पर पड़ता था। इस का परिणाम यह हुआ कि फ्रांस में लगभग हर कहीं व्यापक रोष तथा प्रतिरोध का माहौल बन गया। किसानों के 'शिकायती रजिस्टर' (1789) में यह एक आम शिकायत थी।

क्रांति के दौरान राष्ट्रीय असेम्बली ने सेना में अनिवार्य भर्ती के विचार को खारिज कर दिया। इस विषय पर चली लंबी बहसों के बाद डिप्टी लोग इस बात पर सहमत हो गए कि फ्रांसीसी नागरिकों पर अनिवार्य सैनिक सेवा के लिए कोई दबाव नहीं डाला जाएगा। किंतु, दो संकट ऐसे बने कि स्वयं सेवकों की एक साल की अनुपूरक सेना के लिए नए सिरे से आहवान किया गया। पहला संकट था 1791 में सम्राट का पलायन जिसने राष्ट्रीय गारद के 'सक्रिय' नागरिकों की शहरी टुकड़ियों अथवा सैनिक पृष्ठभूमि वाले उनके कमसिन साथियों को आकर्षित किया । दूसरा संकट था 1792 में आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा जिसने किसानों और दस्तकारों को आकर्षित किया क्योंकि एक तो इसमें भर्ती के समय दिया जाने वाला लाभांश अधिक था और दूसरे क्रांतिकारी प्रचार ने इसमें राष्ट्रभक्ति का भाव भी जोड़ दिया था। इस प्रकार सैनिक शक्ति का आम विस्तार 1792 की सैन्य भर्तियों के साथ शुरू हुआ।

वर्ष 1793 के प्रारंभिक महीनों में फ्रांस न केवल आंतरिक समस्याओं, राजभक्त समर्थक विद्रोहों तथा प्रति क्रांतिकारी गुटों की ओर से षडयंत्र के खतरों का सामना कर रहा था, अपितु सीमा पार पराजय को भी झेल रहा था। गठबंधन की ताकतें छः बार फ्रांस का अतिक्रमण कर चुकी थीं। गणतंत्रवादी सरकार को युद्ध तथा 'आतंकी' शासन चलाने के लिए 3,00,000 अतिरिक्त सैनिकों की आवश्यकता थी। कनवेंशन को यह लगा कि काफी संख्या में लोग भर्ती के लिए आगे नहीं आएंगे, इसलिए उसने हरेक डिपार्टमेंट का कोटा तय कर दिया। बयासी डिप्टियों को प्रतिनिधि बना कर प्रांतों में भेजा गया और उन्हें दमन के अंधाधुध अधिकार दिए गए जिससे वे 3,00,000 लोगों की भर्ती के फरवरी 1793 के कानून को लागू करवा सकें। इसके परिणामस्वरूप वांदे प्रांत में जबरदस्त विद्रोह हो गया। प्रत्यक्ष रूप में तो इस विद्रोह का कारण फरवरी के अनिवार्य भर्ती कानून का प्रतिरोध ही था किंतु पिछले चार सालों से दूसरे सामाजिक तनाव भी बन रहे थे।

विदेशी संकट से निपटने और क्रांतिकारी गणतंत्र की उसके विदेशी तथा स्थानीय शत्रुओं से रक्षा करने के लिए 'जन सुरक्षा समिति' ने 23 अगस्त, 1793 को यह आदेश कर दिया कि अठारह से पच्चीस वर्ष तक की आयु वाले सभी लोगों को सभी जगह लामबंद किया जाए। इस 'लेवी एन मास' में यह घोषणा कर दी गई कि जब तक फ्रांस के शत्रुओं को गणतंत्र के शासित क्षेत्र से खदेड़ नहीं दिया जाता तब तक सभी फ्रांसवासी स्थायी तौर पर सेना में भर्ती के लिए उपलब्ध रहेंगे। युवकों से कहा गया कि वे लड़ाई के लिए जाएं, विवाहित पुरूषों को हथियार बनाने और रसद तथा गोला बारूद पहुंचाने का काम सौंपा गया, स्त्रियों को तंबू तथा वर्दियां बनाने और अस्पतालों में घायल सैनिकों की तीमारदारी करने की जिम्मेदारी दी गई, जबकि बच्चों से कहा गया कि वे मरहम पट्टी के लिए चिथड़े ढूंढें और बुजुर्गों को आदेश दिया गया कि वे सार्वजनिक स्थलों पर जा कर योद्धाओं का मनोबल बढ़ाएं। सार्वजनिक इमारतों को बैरक बना दिया गया और सार्वजनिक चौराहों को आयुध कार्यशालाओं का रूप दे दिया गया। 'जन सुरक्षा समिति' के जिम्मे यह काम सौंपा गया कि वह एक ऐसे असाधारण कारखाने की स्थापना के लिए सभी संभव प्रयास करे जहां सभी किस्म के हथियार बन सकें और इस उद्देश्य के लिए जितने आवश्यक हों उतने ठिकाने, कारखाने, कार्यशालाएं मिल बनाए। इस प्रकार, एक वर्ष के अंदर क्रांतिकारी सरकार ने साढ़े सात लाख से भी अधिक सैनिकों की फौज खड़ी कर ली थी। यह यूरोप के इतिहास में किसी भी एक अकेले देश में देखी लामबंद की जाने वाली अब तक की सबसे बड़ी सेना थी।

क्रांतिकारी सेना नागरिकों की सेना थी जिसके सैनिक उग्र सुधार के समर्थक क्रांतिकारियों में से थे और वे नागरिक (गैर सैनिक) अधिकारियों तथा सशस्त्र सेनाओं के बीच सूत्र का काम करते थे जिससे कि अनिवार्य सैनिक भर्ती, खाद्यान्न की कीमत तय करना, किसानों से खाद्यान्न खरीदना और देहाती इलाकों में क्रांति को लोकप्रिय बनाना सुनिश्चित हो सकें। इसने क्रांति के शत्रुओं पर प्रतिशोध तथा निगरानी के साधन का काम किया। इस क्रांतिकारी सेना ने स्थानीय जन संगठनों तथा क्रांतिकारी संगठनों के साथ मिलकर राष्ट्रभक्ति की भावनाओं को मजबूत करने, क्रांतिकारी कलैंडर को लोकप्रिय बनाने तथा अशिक्षितों के लिए स्वतंत्रता के विद्यालय स्थापित करने का काम किया। किंतु इसे नियमित सेना अथवा सेना के स्वयं सेवक समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। ये लोग हालांकि युद्ध क्षेत्रों में सैनिक कमांडरों के अधिकार में और जनपदों तथा नगरपालिकाओं के न्यूनतम नियंत्रण में आते थे, फिर भी वे बिल्कुल स्वाधीन थे और उनमें उचित अनुशासन की कमी थी। क्रांति के नाम पर क्रांतिकारी सेना ने अतिवादी रूख अपनाया और गड़बड़ी फैलाई तथा ज्यादतियां कीं। मार्च 1794 तक इन सेनाओं को समाप्त और भंग कर दिया गया।

नागरिकों की सालाना अनिवार्य भर्ती के विचार की शुरुआत 1798 में हुई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि दीर्घकालिक लामबंदी के अभाव में सेना का आकार घट रहा था। फ्रांस अपनी आधिपत्य रेखा पर सुरक्षात्मक स्थिति में आ गया था। नेपोलियन के अनिवार्य भर्ती के आदेशों में शुरू शुरू में तो आग्रह और लचीलेपन का आभास मिला। प्रत्येक कम्यून के मेयर और उसकी नगर परिषद को अनिवार्य भर्ती की सिफारिश करने का काम सौंपा गया। डिपार्टमेंट कोटे को कम्यून के छोटे छोटे कोटे में और आगे विभाजित करके शुरू में लाटरी अथवा स्थानीय लोगों की पसंद के अनुसार अन्य किसी माध्यम से भरा जा सकता था। भर्ती के लचीलेपन का यह विचार अंत में त्याग दिया गया क्योंकि नेपोलियन लगातार विदेशों से युद्ध में व्यस्त रहने लगा। भर्ती के लिए एक तीन सदस्यीय मंडल बनाया गया जिसमें प्रीफेक्ट, डिपार्टमेंट का सैनिक कमांडर और एक भर्ती अधिकारी को रखा गया। लामबंदी कानून को 1804 में लागू किया गया और भर्ती का वास्तविक काम अगले वर्ष शुरू हो गया। अनिवार्य भर्ती नेपोलियन के अधीन दो मोर्चों पर लड़ी जाने वाली जंग हो गई। पैसे वाले तो 1500 फ्रांक का जुर्माना दे कर इस भर्ती से बच सकते थे, जबकि गरीब या आम लोगों को कोई छुटकारा नहीं था। अनिवार्य भर्ती से संबंधित नेपोलियन के शुरुआती कानूनों में तो स्थानापन्नता की छूट थी, किंतु लगातार युद्ध की बाध्यता ने अधिकारियों को लामबंदी के अभियान को निरंतर चलाने को मजबूर कर दिया। क्रांतिकारी और नेपोलियन युग ने भारी प्रचार को जन्म दिया। पुस्तकों, परचों, कार्टूनों, भाषणों, कविताओं तथा गीतों सभी का इस्तेमाल जन साधारण का उत्साह बढ़ाने तथा उनमें राष्ट्रभक्ति की भावना जगाने के लिए किया गया।

इतिहासकारों ने फ्रांस में एक विशाल सेना खड़ी करने की दिशा में जनता की लामबंदी के महत्व पर प्रकाश डाला है और उसे आधुनिक राष्ट्रवाद के उदय की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना है। नेपोलियन और क्रांतिकारी सरकार की नीतियों में युद्ध की एक नई अवधारणा निहित थी। एक ऐसी राजनीति से प्रेणित तथा क्रांतिकारी सेना का गठन किया गया जिसकी सरकार की विचारधारा में आस्था थी। लेवीएन मास (सामूहिक सैन्य भर्ती) ने एक राष्ट्र को विदेशी शासकों के विरूद्ध दल बल समेत खड़ा कर दिया और उसकी प्रजा को स्वतंत्रता के विचारों में शिक्षित कर दिया। सैनिक सेवा तो राष्ट्रभक्ति की अंतिम अभिव्यक्ति हो गई और उसने सामाजिक स्तरीकरण में ऊपर की ओर चढ़ने के लिए एक नई सीढ़ी प्रदान की, जिसके बारे में 'प्राचीन शासन' के काल में सोचा भी नहीं जा सकता था। फ्रांस तो सेना तथा अन्य अधिकारियों को सामान उपलब्ध कराने वाली एक विशाल सैनिक कार्यशाला बन गया । ठेके दिए गए, मजदूरी तय की गई, औद्योगिक नियम लागू किए गए और वैज्ञानिकों का उपयोग करके युद्ध उपकरणों को आधुनिक बनाया गया। सैनिक सामान के उत्पादन में नौ गुना वृद्धि हुई। इस प्रकार क्रांति काल के युद्धों ने आधुनिक विश्व के सामने पूर्ण युद्ध का द्वार खोला और आधुनिक राष्ट्र राज्य के स्तंभों को मजबूत किया।

बोध प्रश्न 2

1) फ्रांस में सशस्त्र बलों की संख्या बढ़ाने के क्या कारण थे? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) 1793 की सामूहिक सैन्य भर्ती (लेवी एन मास) की नीति को लागू करने हेतु क्या कदम उठाए गए? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) नागरिकों की व्यापक लामबंदी ने फ्रांस के आधुनिक राष्ट्र राज्य के निर्माण में किस प्रकार योगदान दिया? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

5.6 नई नौकरशाही तथा शैक्षिक संस्थाएं

प्रशासनिक स्तर पर केंद्रीकरण के लिए एक प्रभावकारी तथा सशक्त नौकरशाही की जरूरत थी। जैसा कि हम पढ़ ही चुके हैं, फ्रांस में केंद्रीकरण की प्रक्रिया सोलहवीं शताब्दी में शुरू हो चुकी थी। किंतु 'प्राचीन शासन' की नौकरशाही मशीनरी का विकास सरकारी नौकरियों के खरीदे–बेचे जाने के माध्यम से हुआ, जिसे पदों को घूस देकर खरीदे जा सकने की स्थिति भी कहा जाता था। यह इसकी मुख्य कमजोरी बनी रही। पुराने ढांचे के ध्वस्त होने पर एक नए ढांचे की जरूरत बनती थी। इस प्रक्रिया की शुरुआत क्रांति काल में हुई और इसे पूर्णता मिली नेपोलियन के शासन में।

क्रांतिकारी शासन ने प्रशासन की नई इकाईयों के रूप में 83 'डिपार्टमेंट' का गठन किया था। 'अधीक्षक', 'बेलिफ' जैसे सशक्त शाही अधिकारियों के स्थान पर स्थानीय राजकीय डिपार्टमेंट, जिलों तथा कम्यूनों की एक नई तीन स्तरीय एकरूप प्रणाली बनाई गई। प्रत्येक स्तर पर, स्थानीय सरकारी अधिकारियों का चयन सक्रिय नागरिक करते थे। जजों, टैक्स कलक्टरों, पल्ली पुरोहितों तथा बिशपों तक का चुनाव मत के आधार पर होता था। व्यावहारिक स्तर पर, स्थानीय परिषदों को अधिक अधिकार प्राप्त थे। इसके परिणामस्वरूप कुछ विकेंद्रीकरण हुआ। आतंक काल (1793-94) में 'मकसद के लिए नियुक्त' अधिकारी पहले के अधीक्षकों की तरह सैनिक टुकड़ियों के काम में तालमेल करने का दायित्व निभाते थे, और जैकबिन समितियों का इस्तेमाल प्रतिरोध को कुचलने में किया जाता था। जन सुरक्षा समिति के माध्यम से केंद्रीकरण की प्रक्रिया ने उनके अधिकारों में और भी बढ़ोतरी कर दी।

नेपोलियन ने फ्रांस के नौकरशाही ढांचे को तर्कसंगत बनाने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर काम किया। इसके लिए उसने एक शक्तिशाली केंद्रीकृत प्रशासनिक मशीनरी तैयार की। उसने 'डिपार्टमेंट' प्रशासन को तो बनाए रखा, किंतु स्थानीय स्तर पर चुनी गई असेम्बलियों को समाप्त करके उनकी जगह वह नए अधिकारियों को ले आया। इन अधिकारियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे प्रीफेक्ट। इन सभी की नियुक्ति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में नेपोलियन ने ही की। ये प्रीफेक्ट बड़ी तड़क भड़क वाली वर्दी पहनते थे और शान से रहते थे; उन्हें बड़ी बड़ी जिम्मेदारियां दी गई थी और अपने अपने डिपार्टमेंट में उन्हें अपार अधिकार मिले हुए थे। फिर भी वे पूरी तौर पर पुलिस एवं आंतरिक मामलों के मंत्री के अधीन थे। प्रीफेक्ट तो पेरिस की सरकार और स्थानीय शासन के बीच संपर्क सूत्र बन गए और एक केंद्रीकृत नौकरशाही के रूप में काम करने लगे। डिपार्टमेंट परिषदों के प्रति उत्तरदायी

होने की बजाय ये प्रीफेक्ट ऊपर से नियंत्रित होते थे। इन्हें अलोकप्रिय नीतियों को लागू करने का काम सौंपा जाता था। जैसे, धर्म संधि के बाद नए संवैधानिक पल्ली पुरोहितों को प्रतिष्ठापित करना, अलोकप्रिय करों का आकलन कर उन्हें लागू करना, स्थानीय स्तर पर अनिवार्य सैनिक भर्ती करना और सेना से सिपाहियों के पलायन को रोकना। उनके अन्य क्रियाकलाप थे मंत्रालयों के लिए आंकड़े एकत्र करना, उप प्रीफेक्ट तथा न्यायाधीशों के कार्यों का निरीक्षण करना, स्थानीय प्रशासनिक कर्मियों का चयन करना, क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने हेतु आवश्यक कदम उठाना, खाद्यान्न की आपूर्ति बनाए रखना और बाजार तथा कीमतों को नियंत्रण में रखना। इन प्रीफेक्ट का चयन योग्यता, प्रतिभा तथा चुनावों के आधार पर होता था, किंतु नेपोलियन का यह दृढ़ विश्वास था कि प्रतिभा का चयन केवल समाज के ऊंचे स्तरों से संभव था, जिनमें सेना भी शामिल थी। नेपोलियन का यह प्रयास रहा कि क्रांतिकारियों, बुर्जुआ लोगों और 'प्राचीन शासन' के उच्च पदाधिकारियों को मिला कर उन्हें साथ साथ काम करने को कहा जाए। इसके परिणामस्वरूप 'विशिष्ट जन' का एक नया वर्ग उभरा जो पूरी उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान फ्रांसीसी प्रशासन पर हावी रहा। इस प्रकार राज्य की नौकरी ने सामाजिक स्तर बढ़ाने के मार्ग प्रशस्त किए। नेपोलियन ने व्यक्तिगत संरक्षण देकर निष्ठावान ओर सक्षम नागरिक सेवक तैयार किए। उन्हें प्रेरित करने के उद्देश्य से उसने 'सम्मान' और 'अलंकरण' को फिर से लागू किया।

नेपोलियन की शिक्षा योजना जो लंबे समय तक चलने वाले नागरिक तथा सैनिक विप्लव की पृष्ठभूमि में बनी। फ्रांस की आम शिक्षा प्रणाली 'प्राचीन शासन' के दौरान बिल्कुल भी संतोषजनक नहीं थी।

पुराने विश्वविद्यालय जब 1790 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में बंद हो गए तो उसके बाद क्रांतिकारियों ने पुरानी शिक्षा व्यवस्था का स्थान लेने के लिए एक नई शिक्षा व्यवस्था तैयार करने के प्रयास किए। पेरिस, स्त्राज़व्वूर और मोंपेल्ये में फिर से खोले गए मेडिकल स्कूल, प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय, केंद्रीय लोक निर्माण विद्यालय जो 1795 में प्रसिद्ध पोलीटेक्निक स्कूल बना, शिक्षकों को प्रशिक्षित करने वाला नॉर्मल स्कूल, और नवगठित राष्ट्रीय कला एवं विज्ञान संस्थान ने पूरी तौर पर विश्ववविद्यालयों अथवा केंद्रीय एवं प्रादेशिक अकादमियों की जगह नहीं ली किंतु उन्होंने विशेषज्ञता के प्रशिक्षण के विकास में निश्चित रूप से योगदान दिया।

डायरेक्टरी (1795-99) के अधीन सरकार अनिवार्यता मुक्त प्राथमिक शिक्षा पर निर्भर करके संतुष्ट थी। स्कूलों का सारा खर्च विद्यार्थियों की फीस से चलता था। उनमें गणतांत्रिक नैतिकता के साथ साथ लिखने, पढ़ने और गणित की प्रेरणाविहीन शिक्षा दी जाती थी। अध्यापकों को बहुत कम वेतन मिलता था। हालांकि पब्लिक माध्यमिक स्कूल बेहतर स्थिति में थे और गणित तथा साहित्यिक एवं ऐतिहासिक विषय पढ़ाते थे, पर वे विद्यार्थियों के चुनाव के बारे में अत्यंत कठोर थे।

नेपोलियन के शासन में शिक्षा तो राष्ट्र निर्माण का एक महत्वपूर्ण साधन बन गई। जहां तक प्राथमिक शिक्षा का संबंध है, शिक्षा के लिए पैसा जुटाने की संयुक्त जिम्मेदारी स्थानीय शासन तथा अभिभावकों की हो गई। गैर सरकारी स्कूल खोलने के नियम आसान कर दिए गए और कैथोलिक शिक्षण संगठनों को प्रोत्साहित किया गया कि वे प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी में भागीदारी करें। किंतु नेपोलियन की व्यवस्था में प्राथमिक शिक्षा अपेक्षाकृत उदासीनता की शिकार रही। वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्कृति को समर्पित 'कनवेंशन' के केंद्रीय विद्यालयों का इस्तेमाल 'काडर' बनाने के लिए किया गया। पोलीटेक्निक स्कूल (1794) के दो वर्ष के पाठ्यक्रम के बाद खाद्यान्नों, सड़कों तथा पुलों की विशेषता देने वाले स्कूलों में जगह मिलती थी। यह राज्य की ओर से मिलने वाले वजीफे की बदौलत ही था कि हथियारबंद फौज में बड़ी संख्या में छात्र किसानों तथा दस्तकारों के परिवारों से थे। नेपोलियन के शासन में स्कूल तो यथार्थ में एक सैनिक स्कूल में तबदील हो गया था जिसमें फीस में भारी बढ़ोतरी की गई थी। इस प्रकार ऊंचे तबकों के छात्र हावी होने लगे। नेपोलियन के समय में, माध्यमिक शिक्षा की प्रभावकारी इकाईयां तो 'लिसे' (माध्यमिक स्कूल) थे। ये कुलीन किस्म के स्कूल होते थे जो विज्ञान तथा कुछ प्राचीन क्लासिक समेत सभी विषयों पर जोर देते थे, किंतु उनका मुख्य उद्देश्य होता था छात्रों में सैनिक गुणों का पोषण करना।

वर्ष 1806 में एक नई योजना के फलस्वरूप पेरिस में एक इम्पीरियल यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई। पारंपरिक विश्वविद्यालय के विपरीत यह एक एकल, अखंड तथा पिरामिड के आकार का प्रशासनिक ढांचा था जिसकी अध्यक्षता सम्राट का प्रतिनिधि 'ग्रैंड मास्टर' करता था। इस ग्रैंड मास्टर के पास पूरे साम्राज्य के सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षण संस्थानों के निरीक्षण का कार्यभार होता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि नेपोलियन शिक्षा को भी एक 'डिपार्टमेंट' मानता था, जिसका प्रशासन तथा केंद्रीकरण एक स्पष्ट आदेश श्रृंखला के अनुसार ऊपर से होना वांछनीय था। वह चाहता था कि उसकी प्रजा सैनिक अनुशासन, लोक प्रशासन तथा सामग्री उत्पादकता के क्षेत्र में उचित रूप में प्रशिक्षित हो। उसने शैक्षिक सुधारों का इस्तेमाल लोगों के मन को नियंत्रित करने के साधन के रूप में किया जिससे उनमें राज्य के प्रति निष्ठा तथा राष्ट्रभक्ति की भावना भरी जा सके। उसने इनका इस्तेमाल गैर सैनिक कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के लिए भी किया। किंतु नेपोलियन की योजनाओं में उसके सामाजिक रूझान तथा स्त्रियों के प्रति उसके तिरस्कार भाव की झलक भी मिलती है। वह स्त्रियों को कर्तव्यपरायण तथा आज्ञाकारी गृहिणियां और मां मानता था जिनकी भूमिका घरेलू मामलों तक ही सीमित रहनी चाहिए। प्राथमिक स्तर की शिक्षा की उपेक्षा के बावजूद, शीर्षस्थ संकायों तथा संस्थाओं समेत फ्रांस की शिक्षा व्यवस्था एक शताबदी तक कायम रही और तब इसका आगे सुधार और विस्तार किया गया।

बोध प्रश्न 3

1) प्रीफेक्ट को नेपोलियन काल की नौकरशाही का आधार क्यों कहा जा सकता है? 100 शब्दों में समझाइए।

....

....

....

....

....

2) क्रांतिकारी सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के क्या प्रयास किए? 100 शब्दों में समझाइए।

....

....

....

....

....

5.7 सारांश

इस इकाई में आपने यह पढ़ा कि क्रांति से पहले फ्रांस में विधायी नियंत्रण न होने के कारण वहां किस प्रकार केंद्रीकृत निरंकुशता की स्थिति बन गई और राष्ट्रीय असेम्बली ने इसे किस प्रकार ध्वस्त किया। एक छोटे से अंतराल के बाद, प्रशासनिक केंद्रीकरण की प्रक्रिया जैकबिन गणतंत्र और नेपोलियन बोनापार्ट के काल में जारी रही। सर्वजनीन कानूनी संहिता, सेना के लिए सिपाहियों के रूप में फ्रांसीसी नागरिकों की सामूहिक भर्ती, रोमन कैथोलिक चर्च के साथ मेल, सीधे केंद्र सरकार के अधीनस्थ एक मजबूत नौकरशाही ढांचा तथा उच्च शिक्षा का अतुलनीय केंद्रीकरण कुछ ऐसे संस्थागत बदलाव थे जिन्हें बाद में भी मिटाया नहीं जा सका। इन बदलावों ने फ्रांस को एक आधुनिक राष्ट्र राज्य बना दिया। इन सुधारों को दुनिया के अनेक देशों ने देखा और बाद में उन्हें अपने यहां अपनाया भी।

5.8 शब्दावली

अर्थक्रेय : घूस देकर खरीदा जा सकने वाला।

संसद : तेरह कानूनी अदालतें जिनके पास न्यायिक अधिकार और शाही आदेशों को लागू करने के अधिकार भी थे।

मकसद के लिए नियुक्त अधिकारी : कनवेंशन के सदस्य जिन्हें पूरे प्रशासनिक अधिकार देकर 1793 में प्रदेशों तथा अधिकारी सेना में भेजा गया।

लेवी एन मास : सामूहिक सैनिक भर्ती।

कांसुली : कांसुलेट का शासन।

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 5.2।
2) प्रशासनिक पुनर्गठन का प्राथमिक उद्देश्य था राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए पारंपरिक ढांचे के स्थान पर एक नए ढांचे को लाना। देखिए भाग 5.3।
3) नागरिक कानून की सामान्य संहिता की स्थापना, दंड संबंधी व्यवहारविधि संहिता, एकरूप अथवा समान कानूनी प्रशासन देना, आदि। देखिए भाग 5.3।
4) देखिए भाग 5.4।

बोध प्रश्न 2

1) आंतरिक समस्याएं, फ्रांस पर गठबंधन ताकतों का आक्रमण आदि। देखिए भाग 5.5।
2) देखिए भाग 5.5।
3) नागरिकों की सेना की लामबंदी से राष्ट्रभक्ति की भावना को मजबूत करने, क्रांतिकारी कलैंडर को लोकप्रिय बनाने, सैनिक उत्पादन बढ़ाने में मदद मिली, इत्यादि। देखिए भाग 5.5।

बोध प्रश्न 3

1) प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में नेपोलियन द्वारा नियुक्त, अपने प्रांतों में अत्यधिक शक्तिशाली, केंद्रीय तथा स्थानीय प्रशासन के बीच संपर्क सूत्र की भूमिका आदि। देखिए भाग 5.6।
2) देखिए भाग 5.6।
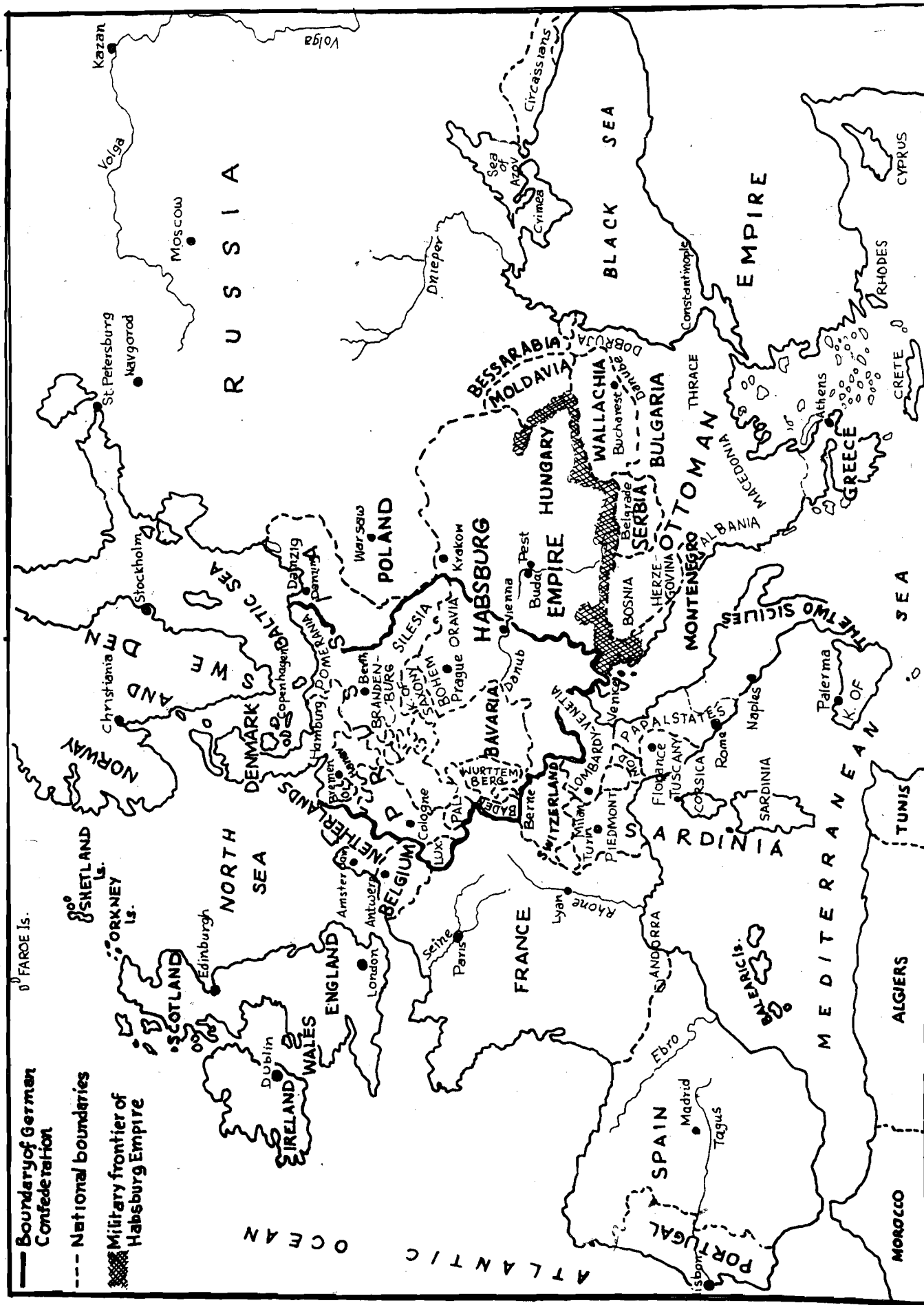
POLITICAL MAP OF EUROPE
(MID 19TH CENTURY)

इकाई 6 यूरोपीय राजनीतिक लामबंदियां

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ पाएंगे कि:

- कांग्रेस प्रणाली के गठन के पीछे क्या तर्क था और उसके बाद क्या हुआ;
- ऐसे कौन से घटनाक्रम थे जिनके परिणामस्वरूप सीक्रेट सोसाइटी आंदोलन और 1820 तथा 1830 के दशक के क्रांतिकारी विद्रोह हुए;
- यूरोप के विभिन्न हिस्सों में राष्ट्रीय आंदोलन कैसे खड़े हुए; और
- वर्ष 1848 की क्रांतिकारी घटनाओं की क्या पृष्ठभूमि थी और उसके क्या परिणाम हुए।

6.1 प्रस्तावना

स्थिरता और शांति के नाम पर यूरोप की महाशक्तियां आस्ट्रिया, रूस, प्रशा और इंगलैंड–नेपोलियन प्रथम के पतन के बाद यूरोप के राजनीतिक नक्शे को फिर से बनाने में जुट गई थीं। इस संदर्भ में गठबंधनों की एक प्रणाली बनी जिसे बाद में 'कॉन्सर्ट ऑफ यूरोप' (यूरोप का राष्ट्रसंघ) का नाम दिया गया। इस राष्ट्रसंघ के माध्यम से महाशक्तियां यूरोप में शांति को बरकरार रखने के लिए एक दूसरे से सलाह करते रहने को सहमत हो गई। यह प्रयास भी किया गया कि यूरोप में राजतंत्र की पुरानी व्यवस्था को वापस लाया जाए। वैसे, 19वीं शताब्दी के यूरोप में राष्ट्रवाद तथा उदारवाद पहले ही प्रभावी शक्तियां के रूप में उभर चुकी थी। इसके परिणामस्वरूप क्रांतिकारी आंदोलन खड़े हो गए। ये आंदोलन राजतंत्र की सत्ता के खिलाफ थे। 1815 और 1848 के बीच यूरोप में ऐसे अनेक क्रांतिकारी आंदोलन हुए। क्रांतिकारी घटनाओं ने प्रमुख संधियों को पलट दिया और रूढ़िवादी एकजुटता भंग हो गई। इस इकाई में पहले आपका परिचय गठबंधनों की प्रणाली और इसके परिणामों से कराया गया है। इसके बाद इसमें सीक्रेट सोसाइटी आंदोलनों और 1820 तथा 1830 के दशकों की क्रांतिकारी घटनाओं की चर्चा की गई है। अंत में हमने राष्ट्रवादी आंदोलनों के उभरने और 1848 की क्रांति का विवेचन किया है।

6.2 कांग्रेस प्रणाली और उसके परिणाम

वर्ष 1815 में वीएना की कांग्रेस में प्राचीन यूरोपीय व्यवस्था के नायकों ने आस्ट्रिया के चांसलर काउंट मेटरनिख से प्रेरित होकर राष्ट्रवादी तथा उदारवादी आंदोलनों के खिलाफ एक स्थाई अवरोध

खड़ा करने की कोशिश की। मेटरनिख प्रणाली के नाम से मशहूर गठबंधनों की इस प्रणाली का उद्‌भव स्रोत जार आलेक्सांदर प्रथम के 'पवित्र गठबंधन' (होली अलायंस) और इसके प्रतिद्वंद्वी ब्रिटिश गठबंधन 'चौगुटा गठबंधन' (क्वाड्रूपल अलायंस) में देखा जा सकता है। गठबंधन की इन दो अलग–अलग प्रणालियों ने 'कांग्रेस प्रणाली के नाम से मशहूर होने वाली व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रणाली के अधीन 1815 के बाद की अवधि में महाशिक्तयों की कई अंतरराष्ट्रीय कांग्रेस हुई जिनका मकसद यूरोपीय मुद्दों और समस्यओं पर निर्णय करना था।

वर्ष 1818 के बाद, जब एक्स ला शापेल की कांग्रेस हो चुकी तो यह प्रवृत्ति अधिकाधिक जोर पकड़ने लगी कि जिस किसी भी देश को उदारवादी आंदोलन का खतरा हो वहां की आंतरिक राजनीति में महाशक्तियां हस्तक्षेप करें। एक्स ला शापेल की कांग्रेस में फ्रांसीसी क्षेत्र को खाली किया गया और फ्रांस को यूरोपीय राष्ट्रसंघ में फिर से शामिल किया गया। जार शासन वाले रूस को ब्रिटिश कूटनीतिक सफलता के इस संकेत ने परेशान कर दिया। एक्स ला शापेल में हस्तक्षेप की नीति एक विवादास्पद मुद्दा बन कर उभरी। इस कांग्रेस में उदारवादी आंदोलन से त्रस्त स्पेन में यूरोप के हस्तक्षेप को अंग्रेजी हस्तक्षेप ने रोक दिया। किंतु 1820 में जब ऐसी ही एक विप्लव नेपल्ज में हुआ तो महाशक्तियों ने मेटरनिख की ओर से आई हस्तक्षेप की मांग को स्वीकार कर लिया। इसी के बाद 1820 की ट्रोपी की कांग्रेस में यूरोपीय हस्तक्षेप के इस सिद्धांत को विधिवत समर्थन मिल गया। 1821 की लाइबाख की कांग्रेस में मेटरनिख को निरंकुशतावादी शासनों को फिर से स्थापित करने हेतु नेपल्ज और पीडमांट में हस्तक्षेप की छूट दे दी गई। मेटरनिख प्रणाली की यह सबसे बड़ी जीत थी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि 'यूरोप का राष्ट्रसंघ' महाशक्तियों का एक ताकतवर गुट था। किंतु प्राचीन व्यवस्था की जीत इतनी वास्तविक नहीं थी जितनी वह दिखाई देती थी। नेपोलियन के बाद की व्यवस्था को आकार देने वालों ने क्रांति पूर्व की यूरोपीय व्यवस्था को बहाल करने की चाहे जितनी भी कोशिश की हो, अंत में जाकर जो व्यवस्था सामने आई वह प्राचीन तथा नवीन व्यवस्थाओं का मिला–जुला रूप ही थी। नेपोलियन के साम्राज्य ने फ्रांस तथा यूरोप में अन्यत्र कहीं जो अत्यंत महत्वपूर्ण संस्थाएं खड़ी की थीं उनमें से कुछ को तो पूरी तौर पर समाप्त भी नहीं किया जा सका। हालांकि जमींदार कुलीन वर्ग और धर्म संस्था (चर्च) पारंपरिक वंशों की बहाली से खुद को सशक्त महसूस कर रहे थे, फिर भी बहाल राजतंत्रों के लिए जनता की भावनाओं की अनदेखी करना अब भी संभव नहीं था। ये वंश किसी न किसी रूप में जनता का राजनीतिक समर्थन बनाने की आवश्यकता के प्रति सचेत हो गए। यह सब इस बात का अनिवार्य परिणाम था कि 1815 के शांति स्थापक अपनी प्रजाओं को उदारवाद, राष्ट्रवाद तथा क्रांतिकारी राजनीतिक विचारधाराओं से प्रदूषित होने से बचाने के लिए, बहाल राजतंत्रों के भीतर, पर्याप्त साधन नहीं ढूंढ सके। जल्दी ही जो उपाय किए गए उनके विरूद्ध बनने वाले दबाव इतने कठोर हो गए कि इन राज्यों तथा दक्षिण–पश्चिमी एवं दक्षिण–पूर्वी यूरोप के अनेक भागों में उदारवादी तथा राष्ट्रीय आंदोलनों के उठ खड़े होने पर ये 'पुनरूद्धार' (बहाली) के बाद कुछ ही वर्षों के भीतर टूट कर बिखरने लगे। इन आंदोलनों के लिए वे विचार अत्यधिक प्रासंगिक बने रहे जो कि फ्रांसीसी क्रांति ने पहले ही प्रस्तुत कर दिए थे। वास्तव में तो 'पुनरूद्धार' को उलटने के लिए 1815 और 1848 के बीच जो क्रांतिकारी उथल–पुथल हुई उसके तीन क्रमिक चरणों के दौरान इन विचारों को फिर से लागू किया गया। इनमें से प्रत्येक चरण में क्रांतिकारी अनुभव में तीन सूत्र निहित रहे जिसका सहारा आंदोलनकारियों ने उस तूफानी दौर में लिया जिसका अंत 1815 के 'पुनरूद्धार' को पलटने में हुआ। ये 'सूत्र' थे जनवादी आवरण में राजतंत्र को स्वीकारने वाला नरमपंथी संविधानवाद, लोकतंत्र के छोर पर खड़ा क्रांतिकारी गणतंत्रवाद, और भविष्य के समाजवादी विचारों की पहले से अपेक्षा करने वाला अपूर्ण समतावाद।

किंतु, 1815 और 1848 के बीच पुनरूद्धारित अथवा बहाल शासनों के प्रति विरोध की प्रकृति में बहुत अहम बदलाव हुआ। 1820 के दशक में जो प्रतिपक्ष कुलीन समर्थक तथा षडयंत्रपूर्ण लगता था और जिसके बारे में ऐसा सोचा जाता था कि व्यापक समाज में उसकी जड़ें ही नहीं हैं, वही 1848 में आकर अनेक राजनीतिक जन आंदोलनों से जुड़ गया। किंतु, इस प्रक्रिया में प्रतिपक्ष खुद भी विभाजित हो गया। उनके भिन्न विचारों की रूपरेखा तो वास्तव में बहुत पहले ही दिखाई देने लगी थी। प्रतिपक्ष के मुख्य तत्व वे उदारवादी थे जो राजतंत्र को तो सह लेते थे किंतु इस बात के लिए उत्सुक थे कि निरंकुशतावाद का सुधार हो जाए और वह एक संवैधानिक राजतंत्र का रूप ले ले। इस प्रकार के उदारवाद का प्रतीक फ्रांस में फ्रांस्वा गीजो था जो लोई फीलिप के ऑर्लियनी राजतंत्र में लगातार बनने वाली सरकारों में किसी न किसी रूप में शामिल रहा। किंतु वहीं वामपंथी उदारवादी भी थे जो केवल अमीरों और चर्च के ही नहीं अपितु राजतंत्र की संस्था के ही खिलाफ थे। जिन अतिशय राजभक्तों की धीरे–धीरे सत्ता में वापसी हो रही थी उनके विरुद्ध प्रतिपक्ष में इस

क्रांतिकारी वामपंथी रूझान ने क्रांति की यादों का सहारा लिया। उनके लिए प्रतिनिधि सरकार ही पर्याप्त नहीं थी; वे चाहते थे कि ऐसी सरकार गणतंत्र से भी नाता जोड़े। बेंजमन कांस्टैंट जैसे व्यक्तियों ने कूलीनतंत्री प्रतिक्रिया के आतंक के बारे में लिखा। उग्र सुधारवादियों (क्रांतिकारियों) के अतिरिक्त फ्रांस में समाजवादियों का एक छोटा सा गुट भी था। सैं–सीमौं ने अपने आस–पास अनुयायियों की अच्छी–खासी भीड़ जमा कर ली थी। ये लोग न केवल पुनरूद्धारित शासनों के आलोचक थे अपितु बुर्जुआ व्यक्तिवाद से भी उन्हें उतनी हीं चिढ़ थी। वे एक ऐसे समतावादी गणतंत्र की स्थापना का स्वप्न देखते थे जहां असमानताओं को दूर करके एक तर्कसंगत समाज का निर्माण किया जा सके। 'पुनरूद्धार' के प्रति यह चिढ़ फ्रांस में तो सबसे अधिक थी ही, यूरोप के अन्य देशों में भी कम नहीं थी, और व्यापार चक्र के दौरान समय–समय पर जो आर्थिक संकट की स्थिति बनी उससे पैदा होने वाले जन असंतोष ने तो इस चिढ़ को और प्रबल कर दिया। हालांकि कुलीनतंत्र समर्थक संविधानवादी तो जन साधारण को लेकर हमेशा संदेह की स्थिति में रहे, फिर भी जन साधारण की और अवहेलना करना संभव नहीं था क्योंकि 'पुनरूद्धार' के विरूद्ध होने वाला संघर्ष गंभीरतापूर्वक शुरु किया गया था।

वर्ष 1815 की घटनाओं के तुरंत बाद जो परिणाम सामने आए उनमें पुनरूद्धार विरोधी राजनीति का मुख्य रंगमंच स्पेन रहा, जहां सेना के अधिकारियों और उदारवादी राजनीतिज्ञों ने मिलकर पुनरूद्धारित निरंकुशतावाद के विरूद्ध एक सशक्त आंदोलन चलाया। उदारवादियों को आशा थी कि वे 1812 में त्याग दिए संविधान को लागू करवा लेंगे, किंतु नए शासन ने ऐसा करने से मना कर दिया। गठबंधन में उनके साथी, उदारवादी रूझान वाले कनिष्ठ सनिक अधिकारियों ने पुनरूद्धारित शासन के विरूद्ध अनेक घोषणाएं कर डालीं। फिर मेसनिक तथा सैनिक लॉज की तर्ज पर सीक्रेट सोसायटी (गुप्त संगठन) बनीं तो इस प्रतिपक्षी राजनीति ने धीरे–धीरे षडयंत्र का रूप धारण कर लिया।

6.3 'गुप्त संगठन' आंदोलन

गुप्त संगठन आंदोलन यूरोप में हुई विशेष घटना थी। हर कहीं, इस प्रकार के गुप्त षडयंत्रकारी संगठन बनने का आंशिक कारण पुनरूद्धार कालीन शासनों का संगठित राजनीति पर प्रतिबंध लगाना था। दीक्षा समारोहों, सोपानबद्ध सदस्यता, गुप्त प्रतीक एवं संकेत वाले ये उग्र सुधारवादी गुप्त संगठन कभी–कभी सीधे मेसनिक लॉजों की उपज होते थे। कभी–कभी तो ये संगठन उन गुप्त दक्षिणपंथी संगठनों की खिलाफत के लिए बनाए जाते थे जिनका उदय एक प्रकार की अति राजभक्ति के सहारे 'पुनरूद्धार' को मजबूत करने के लिए हुआ था।

इन गुप्त संगठनों के विविध आयाम भी थे। बहुधा तो ये गुप्त संगठन यूरोप में सक्रिय एक व्यापक उदारवादी आंदोलन के अपेक्षाकृत अधिक क्रांतिकारी वर्गो का प्रतिनिधित्व करते थे, और उनका मुख्य राजनीतिक उद्देश्य था संवैधानिक सरकार का गठन। यह बात पुर्तगाल के संबंध में सही थी जहां पोंबाल की प्रबुद्ध निरंकुशता पहले ही सुधार कर चुकी थी। पोंबाल सम्राट जॉन का एजेंट था, जो स्थाई रूप से ब्राजील में रहने लगा था। गुप्त संगठन आंदोलन ने 1820 में और भी जोरदार कार्रवाई को प्रेरित किया। उस वर्ष स्पेन के उदाहरण से प्रेरणा लेकर उदारवादियों ने एक सैनिक टुकड़ी से गठजोड़ कर एक उदारवादी संविधान की मांग कर डाली। इससे बाध्य होकर राजवशं को कम से कम कुछ आधे–अधूरे उपाय करने पड़े। फ्रांस में नेपोलियन के प्रति अपनी भावनात्मक निष्ठा बनाए रखने वाले गणतंत्रवादी फ्रांसीसी 'कार्बनारी' के मुख्य तत्व होते थे और बार-बार सत्ता हथियाने की योजना बनाते रहते थे। 1820–21 के आसपास कुछ कनिष्ठ सैनिक अधिकारी भी इस षडयंत्र में शामिल हो गए और उन्होंने एक विद्रोह की योजना बनाई जो सफल नहीं रही। गुप्त संगठनों में महत्वपूर्ण तत्वों के रूप में फ्रांसीसी समाजवादी, विशेषकर सैं-सीमों के अनुयायी शामिल थे।

इटली में नेपोलियन के कब्जे के समय में ही गुप्त राजनीतिक संगठन उभर चुके थे। इनका उदय आंशिक रूप से फ्रांसीसी आक्रमण से निबटने के तरीके के रूप में हुआ था। अन्य आदर्शो के अतिरिक्त, इन गुप्त संगठनों में राष्ट्रवादी लामबंदी के प्रारंभिक रूप की झलक मिलती थी। सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुप्त संगठन इतावली 'कार्बनारी' था (यह 'कार्बनारी' संगठन 1811 के आसपास गठित होने वाला एक इतावली क्रांतिकारी गुट था जिसका उद्देश्य था इटली को एक सूत्र में बांधना और एक गणतंत्र की स्थापना करना।) कार्बनारी की स्थापना सिसिली में हुई थी। म्यूरा के फ्रांसीसी शासन के विरोध में स्थापित इस संगठन का उद्देश्य था समूचे इटली में एक राष्ट्रीय संवैधानिक सरकार के

लिए काम करना। इसके बाद यह आंदोलन नेपल्ज में फैल गया। उत्तरी इटली में आदेलफ्या नाम का एक और गुप्त संगठन था, जिसकी स्थापना 1796 में जैकबिन क्रांतिकारी जाक बाबफ के सहयोगी ब्वॉनारॉत्ती ने की थी। 'पुनरूद्धार' के दौरान इन गुप्त संगठनों की गतिविधियों ने इसलिए जोर पकड़ा क्योंकि सिसिलि में बूरबौं परिवार के शासकों की और पड़ोसी इतावली राज्यों की सरकारों की दमनकारी नीतियां चल रही थीं। राष्ट्रवाद का उदय धीरे–धीरे वैचारिक प्रेरणा के एक अन्य स्रोत के रूप हुआ।

'पुनरूद्धार' के विरोध में होनेवाली लामबंदी के इस शुरुआती दौर में, जैसी कि पुनरूद्धारित शासनों को आशंका थी, कुलीन वर्गीय राजनीति और जन असंतोष का गठजोड़ नहीं हुआ। 1820 में स्पेन तथा पुर्तगाल और दो सिसिली के दोनों क्षेत्रों में होने वाले संवैधानिक आंदोलन, अथवा 1821 के पीडमांट और यूनान के विद्रोह भी सारे के सारे कुलीनतंत्र से जुड़े मामले थे जिन्हें सेना के वर्गों का तो समर्थन निश्चित रूप से प्राप्त था, किंतु साथ ही नरमपंथियों तथा क्रांतिकारियों की अंदरूनी फूट और जनता का समर्थन न होने के कारण ये कमजोर भी पड़ गए। इस तरह की कमजोरियों के कारण ही 'यूरोपीय राष्ट्रसंघ' की ताकतें विद्रोह से प्रभावित देशों पर अपनी इच्छा लादने में अपेक्षाकृत सफल रहीं। आमलोगों की तमाम शिकायतों के बावजूद ये षडयंत्रकारी संगठन क्योंकि अंततः कोई जन आंदोलन खड़ा करने में सफल नहीं हो पाए, इसलिए पुनरूद्धारित शासनों के लिए इस प्रकार की लामबंदियों पर अंकुश लगाना और भी आसान हो गया। 1823 में मैड्रिड विद्रोह की पृष्ठभूमि में जब सेना के उदारवादी अधिकारियों ने सत्ता पर कब्जा करना चाहा तो कांग्रेस प्रणाली का प्रतिनिधित्व करने वाली फ्रांसीसी सेना ने स्पेन में हस्तक्षेप करके फार्डिनैंड को वापस गद्दी पर बैठा दिया। इसी तरह की घटना 1820 के दशक के प्रारंभ में इटली में हुई। कई विद्रोह हुए जिन्हें आस्ट्रीआई सेनाओं ने दबा दिया। महाशक्तियों ने 1814 के समझौते को बनाए रखने का वादा किया था और यह स्वाभाविक ही था कि उन्होंने कुलीन क्रांतिकारियों की इन गतिविधियों का जवाब हस्तक्षेप से दिया, जिसका समर्थन ट्रोपो ओर लाइबाख की कांग्रेस ने किया था। लाइबाख में 1821 में प्रति क्रांतिकारी गठजोड़ ने दो सिसिलियों के राज्यों के रूढ़िवादी शासन को सहारा देने के लिए आस्ट्रीआई हस्तक्षेप का समर्थन किया। एक वर्ष बाद वेरोना में इन शक्तियों ने 1820 में शुरू हुए उदारवादी विद्रोह को दबाने के लिए फ्रांसीसी हस्तक्षेप का समर्थन किया। इतालवी प्रायद्वीप में 1820–21 के दौरान गुप्त संगठनों द्वारा कई विद्रोह संचालित किए गए। स्पेन की तरह ही इन विद्रोहों में भी कुलीन जन का ही हाथ था। कभी–कभी तो ये तत्व सेना के अंदर के होते थे। इनका उद्देश्य होता था कि एक संवैधानिक सरकार को लागू किया जाए। नेपल्ज में उदारवादी विद्रोह की शुरुआत जुलाई 1820 में सैनिक और गैर–सैनिक कार्बनारी इकाईयों ने की। नेपल्ज में विद्रोह होने के एक पखवाड़े बाद पालेर्मो में अपने आप ही विप्लव हो गया। मार्च 1821 में आंस्ट्रीआई सेना ने इन विद्रोहों को आसानी से दबा दिया। 1820 का पीडमांट का विद्रोह इतालवी मुद्दों से प्रेरित था, किंतु नरमपंथियों तथा उग्र सुधारवादियों के बीच एकमत न होने से यह कमजोर पड़ गया था। नरमपंथियों ने तो सम्राट को इस बात के लिए मनाने का प्रयास किया कि वह गद्दी के उत्तराधिकारी कर्लोस आल्बेर्तो के करीबी सैनिक तथा गैर– सैनिक अधिकारियों के समर्थन वाले संविधान को मंजूरी दें। विक्टर इमैनुएल को संविधान की मंजूरी के लिए मना लिया गया, किंतु आस्ट्रीआई सैनिकों की नज़दीकी तथा सम्राट के पूरे अधिकारियों को बहाल करने के लिए आक्रमण के लगातार खतरे के चलते स्थिति बिगड़ गई। मार्च 1821 में, जब नेपल्ज में उदारवादी विद्रोह पिट गया तो पीडमांट की कार्बनारी इकाईयों ने एक कामचलाऊ सरकार बना ली और एक संविधान की घोषणा भी कर दी। इस विद्रोह को भी एक बार फिर बाद में आस्ट्रीआई सैनिकों ने दबा दिया। इस प्रकार के दमन की गहनता अलग–अलग राज्यों में सचमुच अलग–अलग थी, किंतु समूचे इटली में उदारवादी क्रांतिकारियों पर इसका विध्वंसकारी प्रभाव हुआ, जबकि उसी दौरान फ्रांस में अति राजभक्ति उठान पर थी।

व्यापक यूरोपी संदर्भ में, गुप्त संगठनों की गतिविधियां सचमुच नवोदित राष्ट्रवादी राजनीति का एक अंग बन गई, और इनके नतीजे पूरी तौर पर 1830 के दशक में सामने आए। तब तक, राष्ट्रवाद यदि कहीं अत्यंत स्पष्ट रूप से परिभाषित हुआ तो वह सांस्कृतिक स्वायत्तता के बारे में देखे जाने वाले अनेक रूमानी स्वप्नों में था। फ्रांसीसी आक्रमण ने निश्चित रूप में शताब्दी के प्रारंभिक दौर में राष्ट्रवादी भावनाओं को उकसाया। इटली और जर्मनी में बड़ी राजनीतिक इकाईयों का नक्शा बनाने के अर्थ में नोपोलियन काल की संस्थाओं ने भी सकारात्मक प्रभाव डाला। यह एक सुविदित तथ्य है कि नेपोलियन का आक्रमण तो इतालवी 'रीसोर्जीमेंतो' (इटली की मुक्ति तथा एकता के लिए 19वीं शताब्दी में हुआ आंदोलन) अथवा जर्मन बुद्धिजीवियों की 'लोक भावना' की तलाश का संदर्भ रहा

था। फिर भी 1830 के दशक से शुरू होकर बाद तक चलने वाली यूरोप की राजनीतिक उथल–पुथल इस प्रकार की अपरिपक्व भावनाओं को मूर्त रूप देने में सफल रही।

बोध प्रश्न 1

1) पांच वाक्यों में, 'कॉन्सर्ट ऑफ यूरोप' के गठन के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

2) गठबंधन प्रणाली के विफल होने के लिए उत्तरदायी कुछ कारकों के बारे में बताइए। 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) संक्षेप में गुप्त संगठन आंदोलनों का महत्व समझाइए। 10 वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

6.4 उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे तथा चौथे दशक के क्रांतिकारी आंदोलन

उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के मध्य के आसपास रूस में विफल दिसम्बरी विद्रोह द्वारा तथा अपेक्षाकृत सफल यूनानी विद्रोह के साथ क्रांति का बुखार नए सिरे से चढ़ा। रूस में, जारशाही का अंत चाहने वाले उग्र सुधारवादियों और रूस में गणतांत्रिक बदलाव ने स्वयं को गुप्त संगठनों में गठित कर लिया। उत्तर का एक संगठन था जिसका ठिकाना सेंट पीटर्सबर्ग में था और इसका दक्षिणी संगठन उक्राइन के तूलोजिन नगर में अवस्थित था। इनमें सैनिक अधिकारियों का बोलबाला था। ये संगठन मात्र संवैधानिक विचारों से संतुष्ट नहीं थे, अपितु वे तो एक समतावादी तथा गणतांत्रिक बदलाव की आशा लेकर संविधानवाद से भी आगे जाने की आकांक्षा रखते थे। ये दिसम्बरी लोग थे जिन्होंने दिसम्बर 1825 में सैनिक तख्ता पलटने का प्रयास किया था। यह वह समय था जब जार की मृत्यु ने सेंट पीटर्सबर्ग में सैनिकों को विद्रोह के लिए उकसा दिया था। रूसी हथियारबंद फौज ने इस विद्रोह को आसानी से तितर–बितर कर दिया जबकि कुछ दिनों के बाद उक्राइन में हुई इसी तरह की एक और विद्रोहपूर्ण कार्रवाई को इसी प्रकार दबा दिया गया। कर्नल पेस्टल समेत सभी विद्रोही नेताओं को फांसी पर चढ़ा दिया गया और अन्य अनेकों को देश निकाला देकर साइबेरिया भेज दिया गया।

लगभग उसी समय बनने वाले राजतंत्र के गठबंधन से घातक समझौता करने वाला यूनान का विद्रोह अपेक्षाकृत अधिक सफल रहा। प्रारंभ में, विदेशी बंदरगाहों में रहने वाले धनी यूनानियों ने 'हिताइए,

नाम का गुप्त संगठन बना लिया था और यूनानी स्वतंत्रता संग्राम की योजना भी तैयार कर ली थी। मार्च 1821 में, इतालवी राज्य के विद्रोह कर देने के साथ ही, यूनान में भी विद्रोह हो गया। किंतु, विद्रोहियों को डैन्यूब नदी के थाले में गैर–यूनानी निवासियों के विरोध का सामना करना पड़ा। इस आंदोलन को तब मजबूती मिली जब यह मुख्य भूमि में फैला। 1882 के प्रारंभ में, इपीडॉरस की यूनानी असेम्बली ने यूनान की आजादी का ऐलान कर दिया। यूनानी संघर्ष में भयंकर मार–काट का सहारा लिया गया और यह उस समय और भी भीषण हो गया जब तुर्की के सुलतान महमूद ने मिस्त्र के महमद अली से मदद की माग की। महमद अली ने इस मौके का फायदा उठाते हुए यूनान पर आक्रमण कर दिया। प्रारंभ में तो, मेटरनिख ने यूनानियों को बागियों की श्रेणी में रखा और उनके प्रति उदासीनता ही दिखाई। किंतु, बाद में जब इस्तांबुल में यूनानियों का कत्ले आम हुआ तो तुर्की सुल्तान को ईसाईयों के पूजा स्थलों को नष्ट करने के लिए लताड़ दी गई। कुछ समय तक तो, मेटरनिख राजतांत्रिक व्यवस्था पर अधिक जोर देकर यूनानियों के प्रति किसी भी प्रकार का समर्थन जताने से कतराता रहा, किंतु 1826 में स्थिति बदलने लगी। पहले, प्राचीनता की याद जागने वाले 'फिलहलेनिक' (यूनान–बंधु) आंदोलन के शुरू होने से यूरोप में यूनानी मसले के प्रति व्यापक सहानुभूति बन गई। यूरोपीय कुलीन जन अनेक 'यूनान–बंधु' समुदायों से जुड़े थे। इस तरह, तुर्की राजतंत्र ने हिंसक दमन का चक्र चलाया, उससे यूरोपवासियों की भावना को आघात पहुंचा। शायद इसी कारण अप्रैल 1826 में, इंगलैंड और रूस में यूनान को लेकर एक समझौता हो गया, हालांकि बालकंज में दोनों के हित टकरा रहे थे। इस समझौते के तहत, यूनान को तुर्की सम्राज्य के भीतर अच्छी खासी स्वायत्ता दे दी गई। एक लंबे समय से तुर्कों का समर्थन करती आ रही फ्रांसीसी सरकार को भी अपनी नीतियां बदलनी पड़ गई, जिससे कि जुलाई में अंगरेजी-रूसी संधि हुई और इस संधि में इन तीनों ताकतों ने सह वचन दिया कि वे यूनान के साथ मुक्त व्यापार संबंध स्थापित करेंगे और यह वादा भी किया कि जब तक तुर्की द्वारा दमन बंद नहीं होता वे यूनान के पक्ष में सैनिक समर्थन भी करेंगे। तीनों ताकतों ने भूमध्य सागर में अपने बेड़े भेज दिए और इसके बाद इनकी नौसेनाओं ने अक्टूबर 1827 में नावारीनो की खाड़ी में तुर्की–मिस्त्री बेड़े को नष्ट कर दिया। नवारीनो की लड़ाई से भड़ककर सुल्तान ने ईसाई राज्यों के विरूद्ध जिहाद का ऐलान कर दिया। जब बदले की कार्रवाई में रूस ने तुर्की पर जंग का ऐलान कर दिया तो इंगलैंड के कान भी खड़े हो गए, किंतु फ्रांस की मध्यस्थता ने स्थिति को संभाल लिया और उस क्षेत्र में रूसी हस्तक्षेप को स्वीकृति मिल गई। अंत में एक कठिन युद्ध के बाद, रूस को तुर्की पर रणडिर्नें की संधि थोपने में सफलता मिल गई। इस संधि के तहत तुर्की ने सार्बिया, डैन्यूबी राज्यों तथा यूनान की स्वायत्ता को स्वीकार कर लिया। बाद में, 1830 में, लंदन की संधि के तहत यूनान की पूर्ण आजादी को मान्यता मिल गई।

इस सब का परिणाम यह हुआ कि मेटरनिख प्रणाली पूरी तौर पर ध्वस्त हो गई, हालांकि आस्ट्रिया ने जैसे–तैसे इटली और बालकन्ज में अपने प्रभाव क्षेत्र को बनाए रखा। मेटरनिख हालांकि वैधतावाद को जुनून की हद तक मानता था, फिर भी वह तुर्की राजतंत्र के विरूद्ध यूरोपीय गठजोड़ को रोक नहीं पाया। अंत में, क्रांतिकारी विद्रोह की ताजा घटनाएं हुई तो इस प्रणाली को ध्वस्त होने में तनिक भी देर नहीं हुई। एक स्तर पर, फ्रांस तथा यूरोप के अन्य भागों में जो क्रांतिकारी स्थिति थी वह भीषण एवं व्यापक आर्थिक तथा सामाजिक उथल–पुथल के एक सामान्य दौर की देन थी। परिणामस्वरूप, संसदीय प्रतिनिधित्व के विवादास्पद मुद्दे पर विद्रोहियों और राजतंत्र समर्थकों के बीच टकराव होने के कारण राजनीतिक उथल–पुथल का जो दौर चला तो आम जनता भी राजनीतिक कार्रवाई के समर्थन में उठ खड़ी हुई। फ्रांसीसी उदारवादी कुछ समय से यह शिकायत करते आ रहे थे कि राजतंत्र छल–बल से उन्हें उनके निर्वाचन अधिकार से वंचित करना चाहता है और उनका आरोप था कि सरकारी अधिकारी राजभक्तों की जीत पक्की करने के लिए मतदाता सूचियों में हेर–फेर कर रहे थे। इस प्रकार की धोखाधड़ी के खिलाफ विरोध की नीति 1827 में प्रसिद्ध विद्वान फांस्वा गीजो के नेतृत्व में बनी। मतदाताओं को मतदान के नियमों की जानकारी देने के लिए व्यापक अभियान चलाया गया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, पेरिस में एक संचालक समिति का गठन किया गया और पूरे फ्रांस में स्थानीय समितियां गठित की गई। इसी पृष्ठभूमि में नवम्बर 1827 में एक आम चुनाव हुआ जिसमें जितने राजभक्त जीत कर आए उतने उदारवादी भी जीते। मार्तीन्याक की नई सरकार उदारवादियों से मेल–मिलाप की इच्छुक रही, क्योंकि 1829 तक उदारवादी संसद में बहुमत में थे। फिर भी, स्थानीय परिषदों के सुधार के बारे में अलग–अलग विचार होने के कारण सरकार और उदारवादियों में टकराव हो गया। कर व्यवस्था के मुद्दे पर भी दोनों के बीच असहमति उभरी, और ऐसा विशेषकर 1829 की गर्मियों में मार्तीन्याक के उत्तराधिकारी अति राजभक्त प्रधानमंत्री पॉलीन्याक के काल में हुआ। जबकि पॉलीन्याक के चयन की आलोचना हुई तो संसद के अधिवेशन को बुलाने में हुई देरी भी एक विवादास्पद मुद्दा बन गया। मार्च 1830 में

जब विलम्बित सत्र शुरु हुआ तो संसद को जल्दी ही भंग कर दिया गया क्योंकि चैम्बर ऑफ डिप्टीज ने पॉलीन्याक सरकार में अविश्वास का एक अभूतपूर्व प्रस्ताव पेश कर दिया। किंतु जुलाई 1830 में होने वाले चुनावों में उदारवादियों का प्रतिनिधित्व 220 से बढ़ कर 274 हो गया। बदले की कार्रवाई में, जुलाई के अंत में, फ्रांसीसी सरकार ने अध्यादेश पारित करके उदारवादी अखबारों पर प्रतिबंध लगा दिया गया, संसद भंग कर दी और मतदाताओं की संख्या घटाकर एक चौथाई कर दी। फिर नए चुनाव कराए गए जिनमें वोट का अधिकार केवल धनी लोगों को दिया गया।

इस घटना पर खुली प्रतिक्रिया हुई और उसने जल्दी ही 'अवरोधकों' के माध्यम से प्रतिरोध का रूप ले लिया। 1830 में ये अवरोधक विद्रोह का प्रतीक बन गए। यह सब उस आर्थिक संकट के चलते संभव हुआ जिसने पिछले तीन वर्षों में पेरिस की सड़कों को दस्तकारों के विरोध प्रदर्शनों का केंद्र बना दिया था। विरोधों ने जल्दी ही अवरोधकों का रूप ले लिया तो लड़ाई शुरू हो गई और तीन दिनों तक चलती रही। इस लड़ाई में क्रांति को दबाने के लिए तैनात किए गए सिपाही भी विद्रोहियों के साथ हो गए। जुलाई की क्रांति बहुत कम समय तक चलने तथा जल्दी ही निपट जाने वाली घटना थी। पुनरूद्धारित राजशाही अपने आपको उदारवादी सांसदों, पेरिस की आम जनता और क्षुब्ध सिपाहियों के गठजोड़ से बचा नहीं पाई। एक कामचलाऊ सरकार का गठन किया गया और 30 जुलाई को सम्राट के रिश्ते के भाई ऑर्लियन्स के ड्यूक को राज्य की गद्दी संभालने को कहा गया। अगस्त के पहले सप्ताह में, फ्रांसीसी जनता की ओर से एक मुकुट आर्लियन्स के ड्यूक को पेश किया गया। फ्रांस में, 1830 की क्रांति एक संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना के साथ पूर्ण हुई।

फ्रांसीसी मिसाल तो संवैधानिक तथा उदारवादी आकांक्षाएं रखने वाले यूरोपीयों के लिए एक प्रेरणा साबित हुई। फ्रांसीसी उदाहरण से प्रोत्साहित होकर बेल्जियमवासी भी डच लोगों के विरूद्ध खड़े हो गए। पोलैंड वालों ने अपने रूसी आकाओं के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। बेल्जियमवासी तो एक स्वाधीन राष्ट्र राज्य को बनाने में सफल हो गए जबकि पोलैंड का विद्रोह विफल रहा। इटली में कार्बनारी ने देश को एक करने के लिए योजना बनानी शुरू कर दी। जब जुलाई की क्रांति ने फ्रांस में एक संवैधानिक शासन की स्थापना करवा दी तो इटली के लोगों को भी आस्ट्रीया का प्रभुत्व समाप्त करने के लिए फ्रांस की हस्तक्षेप विरोधी नीति में आशा दिखाई दी किंतु उनकी यह आशा मिथ्या साबित हुई। बहरहाल, फरवरी 1831 में मोडेना में एक विद्रोह के बाद पोप की अधीनता वाले राज्यों में संवैधानिक आंदोलन हुए। बॉलॉन्या में मार्च 1831 में एक संविधान की घोषणा की गई। नेपल्ज और पीडमांट में घोर दमन के चलते उथल–पुथल नहीं फैल पाई। आस्ट्रीआई सेना के हस्तक्षेप ने इन योजनाओं पर पानी फेर दिया। लूई फिलीप की फ्रांसीसी सरकार ने इटली में बोनापार्टवाद की वापसी से भयभीत होकर एकदम यह मान लिया कि आस्ट्रीआई हस्तक्षेप आखिरकार एक पारिवारिक मामला था। मार्च में जब आस्ट्रीआई सैनिक इतालवी विद्रोह को कुचलने के लिए आए तो बॉलॉन्या की कामचलाऊ सरकार ने हथियार डाल दिए और हर प्रकार से अंधकारपूर्ण इस परिदृश्य में, फ्रांस के बाहर अगर कहीं कोई ठोस सफलता हासिल की गई तो वह थी स्पेन में। सितम्बर 1832 में, उदारवाद की भावना को स्वीकारते हुए स्पेन में एक उदारवादी सरकार का गठन किया गया और उसके साथ ही स्पेन के निष्कासितों को आम माफी की घोषणा भी की गई। किंतु, 1830 की क्रांति अपने आप में महत्वपूर्ण होते हुए भी अठारह वर्ष बाद होने वाली एक अपेक्षाकृत व्यापक तथा प्रभावशाली क्रांति का पूर्वाभ्यास मात्र था।

6.5 राष्ट्रवादी आंदोलन

उन्नीसवीं शताब्दी के पांचवे दशक में राष्ट्रवाद प्रमुख राजनीतिक विचारधारा के रूप में उभरा। इसके प्रभाव में यूरोपीय उदारवाद ने भी काफी क्रांतिकारी रूप धारण किया। फ्रांस में राष्ट्रवादी भावनाओं ने नेपोलियन के बारे में इस मिथ्या धारणा को जन्म दिया कि बोनापार्ट फ्रांसीसी जनता में एकता बनाने के लिए वापस आएगा। आर्लियन्स राजशाही के समय के फ्रांसीसी प्रतिपक्ष ने भी व्यापक मताधिकार सुधारों की मांग उठाई जिससे की आम फ्रांसीसी को भी नागरिकता दी जा सके। 1848 की क्रांति की पूर्व बेला में मताधिकार के विस्तार की इस मांग के समर्थन में दावतों का आयोजन किया गया। 1848 में फ्रांसीसी क्रांतिकारी आलेक्सांद्र लेदू–रोलां ने एक कदम आगे जाकर सार्वभौमिक पुरुष–मताधिकार (यूनिवर्सल मैनुहड सफ्रेज) की हिमायत कर दी और इससे यह संकेत मिला कि राजनीतिक बहस में एक केंद्रीय मुद्दे के रूप में संवैधानिक सुधार धीरे–धीरे अब लोकतांत्रीकरण के प्रति एक गंभीर संवेदनशीलता को स्थान दे रहा था। मध्य एवं पूर्वी यूरोप में होने वाली राष्ट्रवादी लामबंदी भी इसी उभरती हुई लोकतांत्रिक विचारधारा से बच नहीं सकी जिसकी

अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार की क्रांतिकारी राजनीति में हुई। अगर हम पूर्व और दक्षिण में इटली और जर्मनी की ओर चलें तो समान नियति की भावना मिलेगी जो राष्ट्रवादी आंदोलन के लिए उपयुक्त थी। राजनीतिक राजभक्तों को अब भी, विशेषकर देहातों में, वंशवाद, क्षेत्रवाद और दोष स्वीकार पद्धति (कन्फेशनलिज्म) के बल पर मोड़ना संभव था; फिर भी, राष्ट्र एक सशक्त प्रतिस्पर्धी के रूप में उभरा। चिंतकों ने राजनीतिक विभाजन की विद्यमान स्थिति में एक अखंड राष्ट्र राज्य के उभार को देखना शुरू कर दिया। अनेक जर्मनवासियों को इस तथ्य पर खेद होने लगा कि उनके देश इतने छोटी–छोटी इकाईयों में बंटे हुए थे। मध्य एवं पूर्वी यूरोप के अन्य देशों की तरह यहां भी इस प्रकार की भावनाएं उदारवादी राजनीति को आकार देने लगीं। उदारवादी हर जगह नरमपंथी और उग्रपंथी वर्गों में बंटे हुए थे। जर्मनी में नरमपंथी उदारवादी तो एकीकरण के लिए होने वाले आंदोलन में जर्मन राजकुमारों के नेतृत्व को लेकर आशावान थे, जिसका दारोमदार काफी कुछ प्रशा की पहल पर था। प्रशा ने 1834 में प्रकट तौर पर जर्मनी के भीतर आर्थिक एवं वाणिज्यिक अवरोध तोड़ने के लिए जिस 'जोलवरन' की स्थापना की थी, उससे उदारवादी तत्व एकीकरण की प्रशा केंद्रित योजना के औचित्य के बारे में आश्वस्त हो गए थे। वैसे प्रशा के राजतंत्र की इस प्रकार की किसी भी योजना में तब तक कोई रूचि नहीं थी जब तक कि प्रशा के वंशधरों के हित इसके अनुकूल नहीं बैठते। किंतु उनके कुछ मित्रों ने आस्ट्रिया के लिए भी ऐसी ही अपेक्षाएं बांध रखी थीं। अब क्योंकि आस्ट्रीया की पहली चिंता यह थी कि वह एक बहुराष्ट्रीय समाज को बनाए रखे, इसलिए इस रणनीति के कोई परिणाम देने की संभावना नहीं थी।

इतालवी उदारवादियों के पास ऐसा कोई राज्य नहीं था जिस पर वे अपनी आशाएं केंद्रित कर सकें, सिवाय पीडमांट की राजशाही के जिनकी आस्ट्रिया के हैप्सवर्ग वंश के साथ पुराने समय से पारिवारिक शत्रुता चली आ रही थी। किंतु यथार्थ में प्रशा की तुलना में पीडमांट एक छोटा और अपेक्षाकृत शक्तिहीन राज्य था। इसका परिणाम यह रहा कि कुछ इतालवी बुद्धिजीवियों ने पोप के नेतृत्व में एक इतालवी संघ का प्रस्ताव तक रख दिया। किंतु पोप ने लगातार उनकी इस कोशिश में सहयोग करने से मना करके उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया।

किंतु, जर्मनी और इटली के उग्र सुधारवादियों का इस विषय में अलग ही विचार था कि राष्ट्रीय एकता कैसे कायम की जाए। वे राजशाही सरकारों को एकीकरण की राजनीति का रोड़ा मानते थे; उनके विचार में इन सरकारों को उखाड़ना ही एकीकृत राष्ट्र–राज्य की पूर्वशर्त थी। इटली में उग्रपंथी राष्ट्रवाद का महानतम प्रवर्तक गुसप्पे मैज़ीनी (1805-1872) हुआ। गुसप्पे ने पहले 1827 में कार्बनारी की एक शाखा में भाग लिया था, किंतु उनमें उद्देश्य की स्पष्टता न पाकर उसका जल्द ही उनसे मोहभंग हो गया। उसका मानना था कि आस्ट्रीया के प्रभुत्व से इटली की मुक्ति पूरी तौर पर कुलीन जनों के विशेषाधिकार और पुरोहित वर्ग के अधिकारों को समाप्त होने पर ही निर्भर थी। इसी उद्देश्य को सामने रखकर उसने 1832 में 'युवा इटली' की स्थापना की और एकजुट इतालवी राज्य के लिए गणतांत्रिक किस्म की सरकार का स्वप्न देखा। 1834 में सेवॉय में एक सशस्त्र विद्रोह के विफल हो जाने के बाद मैज़ीनी निर्वासित होकर लंदन चला गया। किंतु, इटली में राजनीतिक कलह 1830 के दशक के अंतिम वर्षों और 1840 के दशक में बार–बार उभरता रहा, हालांकि आम जनता की सक्रिय भागीदारी न होने के कारण आंदोलन का अब भी संकीर्ण आधार था। 1848 की घटनाओं ने इस स्थिति को बदल दिया और मध्य एवं दक्षिणी यूरोप के अन्य भागों में भी राष्ट्रवादी लहर के लिए नई संभावनाएं खोल दीं।

यही वह काल था जब यूरोप के पूर्वी छोरों पर स्थित आस्ट्रीआई साम्राज्य की छोट–छोटी राष्ट्रीयताओं ने अपनी ऐतिहासिक एवं लोक परंपराओं को पुनर्जीवित कर राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान को जोरदार ढंग से सामने रखना शुरू कर दिया था। इनमें से अधिकांश स्लावी राष्ट्रीयताएं थीं जैसे – चेक, स्लोवाक, क्रोएट, स्लाव, उक्राइन तथा रूमान्या। इन क्षेत्रों के साहित्यिक संगठन हालांकि एक छोटे से बुद्धिजीवी कुलीन वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे, फिर भी उन्होंने राष्ट्रवादी भावनाओं को फैलाना शुरू कर दिया। अक्सर ये भावनाएं अधिसंख्य किसानों में परंपरावाद के अवरोध से टकराती थीं। इस मामले में पोलैंड और हंगरी के लोग कुछ अधिक भाग्यशाली थे। वहां प्रांतीय 'डाइट' जैसी संस्थाओं ने राष्ट्रवादी लामबंदी के लिए केंद्रीय संस्थाओं का काम किया। पोलैंड और हंगरी में एक राष्ट्र–राज्य की लालसा के साथ–साथ लोकतांत्रीकरण, सामंतवाद का उन्मूलन, और सीमांत क्षेत्रों तथा स्थानीय सरकारों पर केंद्रीय नियंत्रण लगाने के व्यापक कार्यक्रम भी चलाए गए। किंतु दोनों ही मामलों में इस आंदोलन को किसानों की उदासीनता और साम्राज्य के हंगरी वाले हिस्से में रहने वाली उन छोटी राष्ट्रीयताओं की ओर से रूकावट का सामना करना पड़ा जिन्हें मैगयार जाति की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रभुता की बात पसंद नहीं थी।

बोध प्रश्न 2

1) यूनानी विद्रोह पर टिप्पणी लिखिए। उत्तर 10 वाक्यों में दीजिए।

....

....

....

....

....

2) फ्रांस की जुलाई क्रांति के विषय मे पांच वाक्यों में लिखिए।

....

....

....

....

....

3) इटली और जर्मनी में राष्ट्रवादी आंदोलनों के उदय की संक्षेप में व्याख्या कीजिए। 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

6.6 वर्ष 1848 की क्रांतिकारी घटनाएं

वर्ष 1848 में यूरोप ने 'जनता के युग' में सतर्कतापूर्वक प्रवेश किया! राजनीतिक लामबंदियों की प्रकृति चाहे जो भी रही हो, ये लामबंदियां जनता के बीच समर्थन प्राप्त करने लगीं। ऐसा उन गुप्त संगठनों की राजनीति की कमियों को मिटाने के प्रयास में हुआ जिन्होंने शताब्दी के प्रारंभ में राजनीतिक उथल–पुथल के विभिन्न दौरों में अपना दबदबा बनाए रखा था। आर्थिक तंगी ने लामबंदी की इस प्रक्रिया में निश्चित रूप से योगदान दिया। आमतौर पर, यूरोप के अधिकांश भागों में 1830 के दशक से गरीबी बढ़ गई। आंशिक रूप में यह एक कृषि प्रधान निर्वाह अर्थव्यवस्था से औद्योगिक पूंजीवाद वाली अर्थव्यवस्था की ओर संक्रमण की गंभीर समस्या का अनिवार्य परिणाम था। अक्सर ही किसान लोग बाजारोन्मुख कृषि को विनाशकारी मानते थे और जब–तब बिचौलिये व्यापारियों के दमनकारी व्यवहार की शिकायत करते थे। शहरी दस्तकार कारखानों के सस्ते माल से होड़ न कर पाने के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले कारखानों को अपने अस्तित्व के लिए खतरा मानने लगे थे। दो क्रांतियों के बीच बुनकरी, निर्माण तथा छपाई के धंधों में लगे दस्तकारों और कारीगरों ने रूक–रूक कर होने वाली हड़तालों और प्रदर्शनों में हिस्सा लिया और बाद में 1848 में शहरी इलाकों में होने वाले क्रांतिकारी विप्लवों में निर्णायक भूमिका अदा की।

स्थानीय सामाजिक संघर्ष की पृष्ठभूमि में, 1845 और 1847 के बीच के वर्ष विशेष रूप से कठिन थे, और इसका कारण था खराब फसल तथा आर्थिक मंदी। 1845 में आलू की फसल चौपट हो जाने के कारण खाद्यान्न की भारी कमी हो गई, और उसके बाद 1846 में अत्यधिक गर्मी पड़ने के कारण अनाज़ की फसल भी खराब हो गई। इस स्थिति के कारण खद्यान्नों की जो कीमतें चढ़ीं थी उसके कारण कई जगहों पर खाद्य दंगे हो गए। इस संकट को आर्थिक मंदी ने और भी गंभीर कर दिया और शहरों में बेरोजगारी फैल गई।

यथार्थ में, आर्थिक संकट के कारण जब लोगों के रहन–सहन का स्तर गिरा तो वे क्षुब्ध हो गए और इससे राजनीतिक संकट और बढ़ा। फिर भी, क्रांतिकारी राजनीति का अत्यंत महत्वपूर्ण एक तत्व था यूरोपवासियों की बेहतर राजनीतिक चेतना; क्योंकि पहले की अपेक्षा मध्य उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपवासियों को और अच्छी शिक्षा प्राप्त थी। कुछ लोगों ने तो वास्तव में शताब्दी के मध्य के आसपास 'एक शैक्षिक तेजी' के बारे में लिखा भी; और अनेक समकालीन तो शिक्षा के बढ़ते स्तर और एक विद्रोह तेवर के बीच संबंध देखने से नहीं चूके। इतालवी शिक्षाविद गुस्प्पे मैज़ीनी ने शैक्षिक सुधारों पर अपने एक परचे में तो एक ऐसी प्रणाली की मांग कर दी जो "जनता के आंदोलन" को रोक सके, शिक्षितों की संख्या को सीमित रखे, उन्हें नेक और शांत बनाए, उन्हें अनुपयोगी और हानिकारक बनने से रोके।" देहाती इलाकों में सार्वजनिक शिक्षा के प्रस्तावित विस्तार के बारे में एक आस्ट्रिआई कुलीन जन का जवाब था: "क्या हम देहातों में स्कूल खोलेंगे, जिससे कि किसान हमारे खिलाफ सरकारी अधिकारियों से शिकायत कर सकें ?"

यदि हम यूरोप के क्रांतिकारी अनुभव की विविधताओं पर विचार करें तो हमें लगेगा कि 1848 की क्रांति एक बहु–आयामी घटना थी। 1848 के यूरोप के विद्रोहों की शुरुआत स्विटजरलैंड के गृह युद्ध से हुई जिसमें क्रांतिकारी रूझान वाले प्रोटेस्टैंट कैंटन रूढ़िवादी कैथोलिक कैंटन से भिड़े। दोनों का यह टकराव 1847 में अपने चरम पर पहुंच गया, और उसके साथ ही राजनीतिक टकरावों की उस श्रृंखला की शुरुआत हुई जिसे इतिहासकार आमतौर पर '1848 की क्रांति' शीर्षक के अन्तर्गत रखते हैं। इस लड़ाई में अंततः जीत क्रांतिकारी रूझान वाले प्रोटेस्टैंट कैंटनों की हुई, क्योंकि रूढ़िवादी कैथोलिक कैंटनों को बचाने की मेटरनिख की कोशिश सफल नहीं हो पाई। स्विटजरलैंड की घटनाओं से यह बात स्पष्ट हो गई कि स्थापित व्यवस्था के रक्षकों में क्रांति की लहर को रोकने की सामर्थ्य नहीं थी।

क्रांतिकारी घटनाओं की शुरुआत जनवरी 1848 में सिसिली में हुई, जहां षडयंत्रकारियों के एक गुट ने पालेमॉ की प्रांतीय राजधानी में विद्रोह की योजना बनाई। 1848 की स्थितियों में इस विद्रोह का प्रभाव और भी विस्फोटक हुआ और यह दक्षिण में इटली की मुख्यभूमि तक फैल गया। दो सिसिलियों के राज्य की राजधानी नेपल्ज में लड़ाई सड़कों पर पहुंच आई, उसके बाद ही सम्राट ने एक उदारवादी संविधान लागू करके क्रांति के आगे समर्पण किया। फरवरी 1848 में पीडमांट और टसकनी में भी घटनाओं ने यही रूप लिया। बाद में मार्च में मेटरनिख के पतन की खबर से भड़क कर उत्तरी इटली ने आस्ट्रीआई प्रभुत्व को उतार फेंकने की कोशिश की।

विद्रोहों की श्रृंखला में अगला निर्णायक दौर पेरिस में आया जहां 1847 में शुरू हुए दावत अभियान का स्थान सड़क छाप प्रदर्शनों ने ले लिया। अवरोधक बनाए गए, और विद्रोहों को कुचलने के लिए तैनात किए गए सिपाही खुद विद्रोहियों में जा मिले। इस स्थिति के चलते सम्राट लूई फीलीप को अपनी गद्दी छोड़–छाड़ कर देश से भाग जाने को बाध्य होना पड़ा। 24 फरवरी 1848 को क्रांतिकारी जन समुदाय की ऐसी मांगों के जवाब में गणतंत्र की घोषणा कर दी गई। मार्च में यह संक्रमण दक्षिणी एवं पश्चिमी जर्मनी में फैल गया। उसी महीने में म्यूनिख में भी विद्रोह हुआ और उसके बाद ऐसी ही घटनाएं वीएना, क्रेको, मीलान और बर्लिन में भी हुई, जिनमें अवरोधकों के दोनों ओर विद्रोहियों और हथियारबंद सिपाहियों के बीच वही जाना–पहचाना टकराव हुआ।

इसी स्थिति में राजनीतिक बदलाव हुए। प्रशा और बावेरिया के राजतंत्रों ने अपने रूढ़िवादी मंत्रियों को बरखास्त करके उनकी जगह उदारवादियों को नियुक्त कर दिया। प्राचीन व्यवस्था का महान प्रतीक मेटरनिख तो निर्वासित होकर लंदन चला गया। सम्राट फर्डिनैंड ने हिचकिचाहट के साथ वीएना में उदारवादी मंत्रियों की नियुक्ति कर दी। वेनिस और मीलान की कामचलाऊ सरकारों ने आस्ट्रिआई राज से अपनी आजादी की घोषणा कर दी और कहा कि वे एक संयुक्त इतालवी राज्य का हिस्सा बनना चाहते हैं। हंगरी की राजधानी में नई सरकार ने साम्राज्य के भीतर ही अपनी स्वायत्ता का दावा किया।

जर्मनी में स्थिति इटली से भिन्न रही, जहां पीडमांट के शासक ने आस्ट्रीआई कब्जे के ध्वस्त होने का लाभ उठाते हुए एकीकरण के लिए युद्ध शुरू कर दिया था। उत्तरी इटली में एकीकरण के लिए होने वाला आंदोलन शांतिपूर्ण और संसदीय ढंग से चलता रहा। जर्मनी के विभिन्न राज्यों के संसदीय डिप्टियों का एक दल उदारपंथी एवं उग्रपंथी प्रतिपक्ष के प्रतिनिधियों की हैसियत से फ्रैंकफर्ट ऑन मेन में मार्च 1848 में जमा हुआ। इन लोगों ने एक संवैधानिक राष्ट्रीय सभा के लिए चुनावों की अपील की। इस संविधान सभा को एक संयुक्त जर्मन राष्ट्रीय राज्य के लिए एक संविधान तैयार करना था। इसे जर्मन राज्य के नवगठित शासनों की भी सहानुभूति मिलने की संभावना थी। इस तरह बाद में मई चुनाव हुए और फैंकफर्ट राष्ट्रीय संसद ने विचार–विमर्श शुरू कर दिया। वैसे,

उन्हें चेक राष्ट्रवादियों का विरोध झेलना पड़ा, क्योंकि चेक राष्ट्रवादियों को भय था कि जर्मनी कहीं मध्य यूरोप पर आधिपत्य न कर ले। सुदूर पूर्व में हंगरी की डाइट ने भी कोरूट के नेतृत्व में महत्वपूर्ण सुधार किए। उसने नागरिक स्वतंत्रता को लागू किया, और कैथोलिक पुरोहितों के लगाए अवैध करों और दासता को समाप्त कर दिया। इसके बाद एक उदार मताधिकार के आधार पर चुनाव कराने का निर्णय किया गया। हालांकि इनमें जायदाद की योग्यता को बनाए रखा गया, फिर भी अमीर वर्ग को मिले विशिष्ट विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया। इसके परिणमास्वरूप, एक स्वायत्तशासी हंगरी राष्ट्रीय सरकार का गठन हुआ। यह सरकार साम्राज्य के ढांचे के भीतर ही बनी और उसने वीएना स्थित केंद्रीय शाही नौकरतंत्र के नियंत्रण से मुक्ति का दावा कर दिया तथा हंगरी की विधायिका के प्रति जवाबदेही की प्रतिज्ञा ली।

6.7 क्रांतिकारी आंदोलनों के परिणाम

यूरोप भर में क्रांतिकारी हर्षोन्भाद की स्थिति, और संसदीय सरकार के गठन की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास के बावजूद क्रांति अंत में "राजगद्दी के चरणों पर आकर थम गई"। यूरोप के अधिकांश भागों में स्थिति यह रही कि शाही सरकार जस की तस बनी रही और उनके प्रशासनिक ढांचे में भी कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। एक फ्रांस को छोड़कर जहां गणतंत्रीकरण की प्रक्रिया ने कुछ सफलता प्राप्त की, और हर जगह प्राचीन शासन के महत्वपूर्ण राजकीय कर्ता–धर्ता वहीं के वहीं बने रहे। जब अधिकारियों ने सम्राट के मंत्रियों की संसद के प्रति जवाबदेही के सिद्धांत को मान लिया, तब भी शासकों की प्रवृत्ति अपने निजी कर्मचारियों में सत्ता के समानांतर स्रोत बनाने की रही। नागरिकों की सेना गठित करने का क्रांतिकारी सपना तो सपना ही रहा। मताधिकार संबंधी सुधार 1848 की क्रांति की निश्चय ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, किंतु उसका लाभ भी राजनीतिक समानता के पक्षधरों की अपेक्षा यूरोपीय समाज के रूढ़िवादी राजनीतिक गुटों को ही अधिक हुआ। जिस देहाती जनता को वोट देने का नया–नया अधिकार मिला था उन्हें चुनावों का कोई अनुभव तो था नहीं, इसलिए वे जमींदारों के प्रति अपनी पुरानी निष्ठा से ही बंधे रहे। यह सच है कि चुनावों ने राजनीतिक भागीदारी के और भी अधिक अवसर दिए; उन्होंने यूरोपीय समाज के लोकतांत्रीकरण की आकांक्षाओं में अधिक योगदान नहीं दिया। फ्रांस में, संविधान सभा के चुनाव अत्यंत व्यापक मताधिकार के आधार पर हुए किंतु लोकतंत्र की इस परीक्षण प्रक्रिया का परिणाम तो लोकतंत्र के समर्थकों और इसके लाभान्वितों के बीच एक विचित्र प्रकार की विसंगति के रूप में सामने आया। फ्रांस सहित यूरोप में हर कहीं रूढ़िवादी विचारों वाले अनेक प्रत्याशी इसलिए चुनाव जीत गए क्योंकि उन्हें देहाती चुनाव क्षेत्रों में किसानों का समर्थन प्राप्त था। अधिक से अधिक व्यापक मताधिकार की हमेशा ही मांग करने वाले लोकतंत्र समर्थक उग्रपंथियों को उसी मताधिकार के चलते भारी पराजय का सामना करना पड़ा जिसकी उन्होंने वकालत की थी।

मध्य 1848 से उदारवादियों के किंचित कमजोर पड़ जाने के साथ ही क्रांति की जड़ें कमजोर होने लगीं। 1848 का उत्तरार्ध पदीय व्यवस्था की वापसी का काल रहा। एक के बाद एक हुए कई नाटकीय टकरावों में क्रांतिकारी शक्तियां पराजित हो गई। उदारवादी आंदोलन के भीतर जो नरमपंथी गुट थे उन्होंने रूढ़िवादियों, राजतंत्र समर्थकों के साथ समझौते का तरीका निकाल लिया और उनके साथ मिलकर 1848 में क्रांतिकारी विद्रोह के दूसरे दौर को दबाने में निर्णायक भूमिका निभाई। यह चक्र रोके नहीं रूक सका। उदाहरण के लिए, नेपल्ज में जब क्रांतिकारियों ने विदेशी नीति पर संसद के और अधिक नियंत्रण की मांग इसलिए उठाई कि उत्तरी इटली में आस्ट्रीआइयों के खिलाफ नेपल्ज की सेनाओं को तैनात किया जा सके तो सम्राट फर्डिनैंड ने बदले की कार्रवाई में दमन चक्र चलाने का निर्णय किया। उसके बाद सड़कों पर जो लड़ाई हुई तो नेपल्ज के अनियमित राजभक्त मजदूरों 'लादजारॉनी' ने अपने शासकों का समर्थन किया। जून के महीने में पेरिस में दक्षिणपंथ की ओर झुकाव स्पष्ट दिखाई दिया। इससे पहले अप्रैल में कुछ क्रांतिकारियों ने जाने माने समाजवादी लूई ब्लां की सामाजिक कार्यशालाओं की स्थापना की। इन कार्यशालाओं के रखरखाव में कामचलाऊ सरकार को जो अतिरिक्त खर्च वहन करना पड़ा उसके कारण हुए वित्तीय संकट की वजह से फ्रांस के कुछ देहाती क्षेत्रों में करों को लेकर दंगे भड़क उठे, और गणतंत्रवादी वामपंथ के विरूद्ध रूढ़िवादियों के प्रचार में यह एक प्रमुख मुद्दा बन गया। मई के अंत तक, कामचलाऊ सरकार ने इन कार्यशालाओं को बंद करने का निर्णय कर डाला। यह जून के प्रारंभ में अधिकाधिक आक्रामक प्रतिपक्ष के ध्यान का केंद्र बन गया, जब गणतंत्र को अपने समर्थकों के ही विद्रोह का सामना करना पड़ा। कामचलाऊ सरकार ने भीषण दमन किया। तोपखाने के इस्तेमाल समेत जो

दमनकारी कदम उठाए गए वे स्पष्ट रूप मे निम्न वर्गों के विरूद्ध थे और उन्हें पेरिस के समाज के धनिक वर्गो का समर्थन प्राप्त था। इसी से कार्ल मार्क्स को फ्रांस में वर्ग संघर्ष के बारे में एक निश्चित दृष्टिकोण बनाने का अवसर मिला। जून के दिनों की पेरिस की घटनाएं निश्चित रूप मे फ्रांस में वामपंथियों की हार की सूचक थी।

अगस्त 1848 तक हाप्सबर्ग साम्राज्य अपनी कुछ महीने पहले की असहाय स्थिति से उबरने लगा। उत्तरी इटली का अधिकांश भाग जीत लिया गया। सम्राट और उसका दरबार एक बार फिर वीएना में बैठे एक संविधान सभा के साथ भविष्य के बारे में विचार–विमर्श कर रहे थे। केवल हंगरी ही अड़ा रहा। आस्ट्रिआई राजतंत्र की स्थिति में आया यह बदलाव पेरिस के जून के दिनों से कम महत्वपूर्ण नहीं था। राजतंत्र की सत्ता को वापस लाने की प्रक्रिया में साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में क्रांति का विधिवत दमन किया गया। बोहिमिया प्रांत में जर्मन और चेक राष्ट्रवादियों के बीच बैर के कारण प्राग की सैनिक टुकड़ी के सेनापति प्रिंस ऐल्फ्रेड विंडिशग्रेत्स को मार्शल लॉ लागू करने और प्राग राष्ट्रीय समिति को भंग करने का आदेश देने का मौका मिल गया। दक्षिणी यूरोप में, जनरल रायेत्सकी की सेनाओं को उत्तरी इटली में मिली विजय साम्राज्य के बने रहने के लिए उत्तरदायी सर्वाधिक निर्णायक सैनिक विजय थी। पीडमांट के राजतंत्र ने जिस प्रकार आस्ट्रीआई सेनाओं को घेरने में हिचकिचाहट दिखाई, उससे अंत में इतालवियो को पराजय का मुंह देखना पड़ा। जुलाई 1848 में कूसतॉदजा की निर्णायक लड़ाई में, पीडमांट की सेना बुरी तरह से रौंद दी गई, और उत्तरी इटली में जिन गणतंत्रवादी शासनों की स्थापना की गई थी उसके आत्म समर्पण की राह को रोड़ा हट गया। अगस्त के प्रारंभ में मीलान का पतन हो गया। पीडमांट और आस्ट्रीया के बीच एक संधि हुई और उसके अनुसार उस क्षेत्र के ऊपर आस्ट्रीया का कब्जा बना रहा। 1849 में, पोप की अधीनता वाले राज्यों में एक क्रांतिकारी विद्रोह के बाद भी ऐसी ही घटनाएं हुई जब क्रांतिकारियों के एक गुट ने रोमन गणतंत्र की घोषणा कर दी। ये क्रांतिकारी राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक जन आंदोलन के लिए नई रणनीति बना रहे थे। लोकतंत्र समर्थकों ने पीडमांट के राजतंत्र पर इस बात के लिए दबाव बनाया कि वह आस्ट्रीया के साथ नए सिरे से युद्ध करे। जून 1849 में, आस्ट्रीया और पीडमांट की सेना के बीच हुए युद्ध का अंत नोवारो की लड़ाई में पीडमांट की करारी हार के साथ हुआ। पीडमांट के राजा कार्लोस आल्बेतॉ ने विक्टर इमैनुएल के पक्ष में अपनी गद्दी छोड़ दी। विक्टर ने प्रकट तौर पर अपने शासित क्षेत्रों में लोकतांत्रिक आंदोलनों को दबाने की हामी भर ली थी। पोप ने इससे पहले रोम से भाग कर सिसिली में शरण ले ली थी, और उसे फ्रांसीसी राष्ट्रपति लूई नेपोलियन बोनापार्ट की सेना के संरक्षण में वापस उसके पद पर बैठाया गया।

इटली में मिली सफलता ने आस्ट्रिआइयों को अपनी इच्छा हंगरी की राष्ट्रीय असेम्बली पर थोपने को प्रोत्साहित किया, जबकि असेम्बली पहले ही क्रोएट जैसी छोटी राष्ट्रीयताओं के इरीडेंटिज्म से बहुत त्रस्त हो चुकी थी। इसी संदर्भ में वीएना ने अपना कब्जा वापस लेने की योजना बनाई। बुडापेस्ट में हंगरी की सरकार को आदेश मिला कि वह एक स्वाधीन हंगरी सेना की अपनी योजनाओं को छोड़ दे। आस्ट्रीआई अधिकारियों ने भी परोक्ष रूप से क्रोएट काउंट येलाचिच को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया की वह हंगरी की सरकार के विरूद्ध सैनिक कार्रवाई करे। येलाचिच की सेनाओं ने क्रोएशिया और हंगरी की सीमा को पार किया तो हंगरी की सरकार को तीन मोर्चो पर युद्ध का सामना करना पड़ा। मैगयार संविधानवादी अब भी आस्ट्रीआई साम्राज्य के साथ जुड़ने की आशा बाधे हुए थे, और आस्ट्रीयाई चालों ने अब उनकी साख गिरा कर रख दी। बुडापेस्ट के क्रांतिकारियों ने इस स्थिति का जवाब देने की मांग की और लॉयोश कोशूट के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय रक्षा समिति की नियुक्ति कर दी। कोशुट तो हाप्सबर्ग के निरंकुश राज्य के प्रति हंगरी के प्रतिरोध का पुराना नेता था। इस मामले में हंगरी की सरकार से कोई मशवरा नही किया गया। कुछ दिनों बाद, वीएना के अधिकरियों ने हंगरी की सरकार और संसद को भंग कर दिया, जिससे संविधानवादी मंत्रिमंडल को त्याग पत्र देना पड़ा और राष्ट्रीय रक्षा समिति के साथ टकराव की स्थिति बन गई। सैनिक संघर्ष के शुरुआती दौर में हंगरी सफल रहा; किंतु अंत में, रूस के सहयोग से हंगरी के राष्ट्रवादी प्रतिरोध को दबा दिया गया।

जर्मनी में, राष्ट्रीय एकीकरण के उदारवादी कार्यक्रम को पहले ही धक्का लग चुका था। अगस्त में विद्रोही वीएना की जीत, और प्रशा में नवम्बर के संकट के चलते जर्मन राष्ट्रीय सरकार की योजना ध्वस्त हो गई। प्रशा के निरंकुश राज्य के बारे में अत्यंत सहनशीलता का परिचय देने वाली फ्रैंकफर्ट राष्ट्रीय असेम्बली अब महत्वपूर्ण नहीं रह गई क्योंकि प्रशा के सम्राट ने इसका नेतृत्व करने से मना कर दिया और असेम्बली में प्रशा समर्थक संविधानवादी राजतंत्र समर्थकों के पास आस्ट्रीया के बिना एक जर्मन राष्ट्रीय राज्य बनाने का कोई साधन नहीं रह गया। इस बीच प्रशा की संविधान सभा प्रशा के सम्राट के लिए खतरा बन चुकी थी। गणतंत्रवादी तो अल्पमत में थे, किंतु संविधानवादी राजतंत्र

समर्थक एक जबरदस्त ताकत के रूप में विद्यमान थे। प्रशा के राजतंत्र के लिए यह अहम बात थी कि वह इस प्रतिपक्ष से निर्णायक तौर पर निपटे और सम्राट ने नवम्बर 1848 में ठीक यही किया। उसने इसके लिए अति राजतंत्र समर्थक प्रधानमंत्री काउंट ब्राडनबर्ग के दमनकारी कदमों को माध्यम बनाया। ब्राडनबर्ग ने एकतरफा तौर पर एक संविधान की घोषणा कर दी, जबकि संविधान सभा की बहस चलती ही रही। इस प्रकार, प्रशा के रूढ़िवादियों ने अपने पारंपरिक विचारों का 1848 की बदली हुई राजनीतिक स्थितियों के अनुरूप ढाल लिया। बहरहाल, राजतंत्र समर्थकों ने प्रशा में एक नया संविधान स्थापित करके अंततः क्रांतिकारियों पर विजय प्राप्त कर ली। किंतु, दक्षिणी–पश्चिमी जर्मनी में संविधानवादी शासन अस्तित्व में बने रहे, और 1871 में एकीकरण होने से पहले के दशकों में उदारवादी राष्ट्रवादियों को प्रेरणा देते रहे।

वर्ष 1848-49 की यूरोप की क्रांतिकारी घटनाओं की कहानी में, क्रांतिकारी सेनाओं की अंतिम हार फ्रांस में हुई। दिसम्बर 1848 में, लूई नेपोलियन बोनापार्ट को फ्रांस का राष्ट्रपति चुन लिया गया। उसे संविधान सभा द्वारा राष्ट्रपति के पद के लिए रखे गए अतिशय कार्यकारी अधिकार मिले। बोनापार्ट की सफलता के पीछे किसानों का बेसमझी भरा समर्थन और राजतंत्र सर्मथकों का प्रत्याशित आत्म संतोष रूपी एक बड़ा कारण रहा। उस समय तक तो फ्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग क्रांति की उथल–पुथल से तंग आ चुका था, जल्दी ही वह भी लूई नेपोलियन के तानाशाही दिखावों से तालमेल बैठा कर चलने लगा। 1849 के मध्य में, उग्रपंथ के अंतिम सूत्रों के दमन के साथ ही क्रांति के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लग गया। यह केवल फ्रांस ही नहीं, अपितु यूरोप में और जगहों पर भी हुआ। दिसम्बर 1851 को नेपोलियन के तख्ता पलटने के बाद जिस जनमत ने उसके आजीवन राष्ट्रपति होने पर मुहर लगा दी, वह पराजय की कहानी का उपयुक्त अंत था।

बोध प्रश्न 3

1) वर्ष 1848 की क्रांति के पीछे के आर्थिक संकट को पांच वाक्यों में समझाइए।

....

....

....

....

....

2) वर्ष 1848 की क्रांति का हाप्सबर्ग साम्राज्य पर क्या असर पड़ा ? 50 शब्दों में बताइए।

....

....

....

....

....

....

3) क्या 1848 की क्रांति फ्रांस में सफल रही ? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

6.8 सारांश

इस इकाई में आपने महाशक्तियों द्वारा कांग्रेस प्रणाली को विकसित करने के बारे में पढ़ा। उनका जोर प्राचीन व्यवस्था की बहाली पर था। किंतु, यह उनका दुर्भाग्य रहा कि उदारवाद और राष्ट्रवाद के विचार लोगों को पहले ही प्रभावित कर चुके थे। गुप्त संगठन आंदोलनों और यूरोप के विभिन्न भागों में क्रांतिकारी विद्रोहों में प्राचीन व्यवस्था क पुनर्स्थापन के प्रति आम रूझान की अभिव्यक्ति हुई। 1815 में शासन–क्षेत्रों को लेकर समझौते हुए। 1848 की यूरोप की क्रांतिकारी घटनाओं ने संसदीय सरकार पर ध्यान तो केंद्रित किया किंतु वे राजतंत्रीय सरकार के चरित्र को अधिक बदल नहीं सकी। यहां तक कि फ्रांस में भी क्रांतिकारी शक्तियां लूई नेपोलियन की तानाशाही को उभरने से रोक नहीं पाई।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) शक्ति–संतुलन बनए रखने के लिए, शांति के लिए, राजतंत्रीय शासन की बहाली के लिए, आदि। देखिए भाग 6.2
2) महाशक्तियों के बीच हितों की टकराहट, उदारवाद एवं राष्ट्रवाद का प्रभाव, संवैधानिक राजतंत्र की बढ़ती मांग, आदि । देखिए भाग 6.2
3) देखिए भाग 6.3

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 6.4
2) देखिए भाग 6.4
3) देखिए भाग 6.5

बोध प्रश्न 3

1) बढ़ती गरीबी, बिचौलियों द्वारा अत्याचार, कारखानों के सस्ते उत्पादनों से होड़ के कारण कारीगरों व दस्तकारों में क्षोभ, आदि। देखिए भाग 6.6
2) देखिए भाग 6.7
3) देखिए भाग 6.7

इकाई 7 नई राजनीतिक व्यवस्थाएं

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था में उन्नीसवीं शताब्दी में होने वाले बदलाव;
- नेपोलियन के नेतृत्व में लोकलुभाऊ अधिनायकवाद की स्थापना ; और
- संसदीय प्रणाली में हेरा–फेरी करके रुढ़िवादी शासन की स्थापना करने का बिस्मार्क का तरीका।

7.1 प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों की अपेक्षा उत्तरार्द्ध में, यूरोप की राजनीतिक व्यवस्थाओं में कहीं अधिक विविधता देखने में आई। शताब्दी के प्रारंभ में यूरोप के अधिकांश भागों में ऐसे शासकों का राज्य था जो उनमें से कुछ राज्यों में संवैधानिक सरकार के प्रति रूझान होने के बावजूद निरंकुश शासन का दावा करते थे। इसका एकमात्र अपवाद ब्रिटेन था, जो एक संवैधानिक राजतंत्र होने के साथ–साथ धीरे–धीरे लोकतंत्र को अपनाता जा रहा था। शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, संवैधानिक सरकार एक संभावित लोकतांत्रिक शासन के अर्थ में अथवा कम से कम एक जनमत आधारित अधिनायकतंत्र के अर्थ में सर्वप्रधान हो गई। व्यापक तौर पर यह परिणाम था उन रियायतों का जो यूरोपीय शासकों को उदारवाद की भावना को देनी पड़ीं थी। शताब्दी के मध्य में जनता की राजनीति के उदय होने से इस भावना को मजबूती मिली थी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य के आसपास राजतंत्र के निरंकुशतावाद को मिल रही उदारवादियों की चुनौती फलीभूत हुई और ऐसा लगातार असफलताओं के बाद, विशेषकर मेटरनिख प्रणाली व्यवस्था के तहत अर्थात 'पुनरूद्धार काल' में हुआ। 1848 की क्रांति के बाद की स्थितियों में, यूरोपीय शासक जनता की राजनीति की अपवित्रताओं के हाथों अपनी राजनीतिज्ञता के पवित्र अधिकार क्षेत्र के अतिक्रमण को और अनदेखा नहीं कर सके। राजनीति अब राजा, उसके दरबारियों और प्रभावशाली प्रजा का विशेष अधीकृत क्षेत्र नहीं रह गया; यह तो उन आम स्त्री–पुरुषों के जीवन चक्र का एक अंग हो गया, जिनके विभिन्न प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक संघर्षों में भागीदारी के अनुभवों ने क्रांति में योगदान दिया।

इस इकाई में राजतंत्री सरकार से लोकतंत्र की प्रक्रिया तक राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले बदलावों की व्याख्या की गई है। इस इकाई में आपको मध्य उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान राजनीतिक बदलावों की दिशा के बारे में भी जानकारी दी गई है। इसमें यह भी बताया गया है कि अधिनायकवादी शासन ने किस प्रकार जनता के समर्थन से अपने शासन को वैध बनाया।

7.2 प्राधिकार का लोकतांत्रिक वैधीकरण

शताब्दी के मध्य में होने वाली क्रांतिकारी उथल–पुथल ने लोकतात्रीकरण को उदारवादी एजेंडा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दा बना दिया। यह निरंकुशतावाद के विरूद्ध उपस्थित चुनौती का एक अंग, और उदारवादी आंदोलन का एक सक्रिय तत्व बन गया। और, यह सब उस स्थिति के बावजूद हुआ कि उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ प्रमुख उदारवादी इस संभावना को लेकर आपत्ति की स्थिति में थे कि अधिसंख्य 'अप्रबुद्ध' लोग राजनीति पर हावी हो जाएंगे। 'अज्ञानी जन साधारण' के शासन को लेकर उनके मनों में लगातार भय बना हुआ था। सच तो यह है कि यूरोपीय उदारवाद को आमतौर पर लोकतंत्र के बारे में जितना एकमत मान लिया गया है उतना वह था नहीं। इसकी अपनी अलग क्षेत्रीय विशेषताएं भी थीं। कुछ जगहों पर तो शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक उदारवाद ने लोकतांत्रिक विचारधाराओं को जन्म दे दिया था; अन्य जगहों पर यह संवैधानिक सरकार की मांग करने वाला आदोलन ही था।

यूरोपीय उदारवाद के ऐसे विविध क्षेत्रीय आयाम कुछ हद तक उदारवाद और राष्ट्रवादी राजतंत्रों के बीच एक समायोजन का परिणाम थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में जो शासनों की विविधता देखने में आई वह जन आंदोलनों और लोकतांत्रीकरण से निपटने में यूरोपीय शासकों को मिली सफलता से जुड़ी थी। इसमें एक छोर पर था ब्रिटेन जहां उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान एक संवैधानिक राजतंत्र के ढांचे के अंदर लोकतांत्रीकरण की प्रक्रिया में अच्छी खासी प्रगति हुई। दूसरे छोर पर था रूस का एकतंत्रीय शासन (ऑटोक्रेसी), जो यहां–वहां कुछेक रियायतों के बावजूद 1905 तक अपने फौलादी ढांचे को बनाए रखने में कामयाब रहा। फिर 1905 की क्रांतिकारी घटनाओं ने इसकी बुनियाद को कमजोर कर दिया।

फिर भी, फ्रांस अथवा जर्मनी की अपेक्षा रूस का उदारवादी आंदोलन कहीं अधिक कमजोर था। किंतु फ्रांस अथवा जर्मनी में भी उदारवादी आंदोलन असफलताओं से अछूता नहीं रहा। निरंकुश शासन के विरूद्ध होने वाले संघर्ष को उतार–चढ़ाव देखने पड़े। हालांकि 1789 की क्रांति ने फ्रांस में एक गणतांत्रिक शासन की स्थापना कर दी थी और उसकी वैधता का स्रोत एक लोकतांत्रिक विचारधारा बन गई थी, फिर भी जल्दी ही बोनापार्टवाद के आवरण में निरंकुशता के दिखावों के साथ एक किस्म के राजत्व ने इस विचारधारा का स्थान ले लिया। यही कहानी शताब्दी के मध्य में दोहराई गई जब 1848 के बाद के गणतांत्रिक शासन को लूई नेपोलियन के अधीन बोनापार्टवाद के फिर से उभरने ने धूमिल कर दिया। बोनापार्टवाद तो जनप्रिय लोकतंत्र और राजतंत्रीय निरंकुशतावाद के बीचोबीच की विचारधारा थी। लूई नेपोलियन काल के फ्रांस जैसी स्थितियों में निरंकुशतावाद को जनता के चुनावी समर्थन ने मजबूत किया, और इससे एक विशुद्ध तानाशाही शासन को अतिरिक्त वैधता मिल गई। इस प्रकार के शासन के प्रतीक लूई नेपोलियन के साम्राज्य को तो अंततः 1871 के जर्मन एकीकरण युद्ध की सैनिक विफलताओं ने नष्ट कर दिया, और उधर इस युद्ध के बाद की स्थितियों में कुछ–कुछ इसी प्रकार के शासन की स्थापना लूई नेपोलियन के विरोधी बिस्मार्क ने नव गठित जर्मन राष्ट्र–राज्य में कर दी। बिस्मार्क ने प्रशा के निरंकुशतावाद की बुनियादी विशेषताओं को राष्ट्रीय संसद के गठन के लिए सर्वाधिक मताधिकार जैसे नए विचारों के साथ मिला कर पेश किया। यह मिला जुला ढांचा प्रथम विश्व युद्ध की सैनिक विफलताओं तक और उसके परिणामस्वरूप जर्मनी में 1918 में होने वाली गणतांत्रिक क्रांति तक जैसे–तैसे बना रहा। 1871 के बाद नवगठित जर्मन साम्राज्य में राजतंत्रीय व्यवस्था के लिए जनता का समर्थन जुटाने की खातिर लोकतांत्रिक संस्थाओं तथा सिद्धांतों को अपनी आवश्यकतानुसार ढालने में बिस्मार्क ने असाधारण चतुरता दिखाई। बिस्मार्कवाद के नाम से प्रसिद्ध यह राजनीतिक रणनीति एक प्रकार से बोनापार्टवाद का ही जर्मन संस्करण था, जो पूरे शाही युग में जर्मन शासक वर्गो का मुख्य सिद्धांत रहा।

जर्मनी के शासकों ने इस बात के लगातार प्रयास किए कि "राष्ट्रभक्त जर्मन जनता" को राजतंत्र का समर्थक बनाया जाए। जर्मनी के शासक वर्गो की ओर से इस किस्म की अवसरवादी लामबंदी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व बना वह अतिवादी किस्म का उग्र राष्ट्रवाद जो अधिकांशतः एक नस्लवादी विचारधारा से निकला था। राजतंत्र के लिए जनता का समर्थन जुटाने की प्रक्रिया में, जर्मनी के शासकों ने जनप्रिय रूढ़िवाद की ताकतों का प्रयोग किया और उन्होंने यहूदी विरोध तथा उद्धत राष्ट्रवाद से पोषित फासीवादी प्रवृत्तियों पर रोक लगा दी।

ऐसा प्रतीत होता है कि लोकतांत्रीकरण के विविध और जटिल परिणाम रहे। इसमें राज्य के साधारण नागरिकों के लिए राजनीतिक अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं के आधार को व्यापक करने की सामर्थ्य थी; यह एकतंत्रीय शासकों के हाथों में आकर हथियार भी बन सकता था। यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में

इस पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। इस प्रकार के अंतर निश्चय ही सामाजिक बदलाव और आधुनिकीकरण से जुड़े थे। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन और जर्मनी में इस प्रकार के अंतर का आधार जर्मनी में विलंबित औद्योगीकरण और उसके परिणमास्वरुप बुर्जुआ वर्ग के विकास में होने वाली कमी को बताया गया है। इसी के कारण, राजनीतिक हैसियत में सामंती ताकतों के साथ समानता का दावा करने वाले उग्र बुर्जुआ वर्ग की अनुपस्थिति में प्राचीन व्यवस्था के संरक्षण को समर्पित औद्योगिक क्रांति के पूर्व की सामंती ताकतों का बने रहना संभव हुआ। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में भी औद्योगीकरण तथा सार्वभौमिक पुरुष मताधिकार के कारण होने वाली मतदाताओं की व्यापक लामबंदी के प्रभाव में जब जर्मन साम्राज्य के भौतिक तथा राजनीतिक जगत में तेजी से बदलाव आ रहा था, तब भी औद्योगिक क्रांति से पूर्व का जमींदार कुलीन वर्ग अपने सामाजिक तथा राजनीतिक दबदबे को बनाए रखने में कामयाब रहा और इसके लिए इस वर्ग ने चुनावी प्रक्रिया में सफलतापूर्वक अवसरवादी फेर–बदल किया। सामाजिक स्तर पर इस रणनीति को सफल बनाने की चेष्टा दो बातों पर निर्भर थी। एक, किसानों के साथ उनके प्राचीन काल से चले आ रहे संबंधों को समय–समय पर पुनः स्थापित करना। और दो, अपना स्तर उठाने को प्रवृत्त मध्यम वर्गो को अभिजात्य वर्ग के भीतर प्रभावी ढंग से समाहित कर लेना। इस प्रकार की रणनीतियां ही कथित बिस्मार्कवाद का केंद्रीय तत्व थीं और रूसी साम्राज्य में अगर अपेक्षाकृत कमजोरी रही तो उसका कारण इस प्रभावी नीति का रूस में न होना ही था। हालांकि रूसी बुर्जुआ वर्ग की कुल खामियां ही रूसी उदारवाद की कमजोरी का कारण रहीं, और शायद इसी कारण रूसी शाही राज्य ने मध्यम वर्ग को एकजुट करने में कोई जल्दबाजी नहीं दिखाई, फिर भी बिस्मार्कवाद का रूसी संस्करण एकतंत्रीय शासन की ताकत को मजबूत ही करता। निश्चय ही (पी. ए. स्तालिपिन जैसे) कुछ रूसी अधिकारियों ने इस विचार को परख कर देखा, किंतु ये छुटपुट प्रयास ही थे जिनका कोई ठोस नतीजा नहीं निकला।

इन विभिन्नताओं को तय करने में विभिन्न प्रकार की राजनीतिक विरासतें उतनी ही महत्वपूर्ण रहीं जितने कि व्यापक सामाजिक घटनाक्रम। प्रथम आधुनिक लोकतांत्रिक देश ब्रिटेन ने "लंबी उन्नीसवीं शताब्दी" की शुरुआत एक अस्पष्ट लोकतांत्रिक विरासत से की, जो सत्रहवीं शताब्दी की अंग्रेजी क्रांति से चली आ रही थी। इंग्लैंड के गृह युद्ध के दौरान शाही निरंकुशतावाद का नाश हो गया और ढेर सारे अधिकार भी हाउस ऑफ कॉमन्स को हस्तांतरित कर दिए गए। हालांकि मताधिकार तो पूरी अठारहवीं शताब्दी में संपत्ति आदि की योग्यता शर्तों के कारण सीमित रहा, फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान मताधिकार का दायरा धीरे–धीरे बढ़ा दिया गया। इस सब की शुरुआत 1820 के दशक से संसदीय सुधार के आंदोलन के साथ हुई। सुधार के पक्ष में मध्यम वर्ग के अनेक तबकों में एक नया संकल्प बना, और इस आंदोलन के प्रति मजदूर वर्ग के समर्थन ने इसे और भी मजबूती प्रदान की। जमीनी स्तर पर आधार इतना मजबूत था कि ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था के लोगों में सुधार का प्रतिरोध कमजोर पड़ने लगा। अब ऐसा प्रतीत होने लगा कि ब्रिटेन का शासक वर्ग सामाजिक आंदोलन को कमजोर करने की कोशिश कर रहा था। 1830 में सत्ता के आने के बाद, अर्ल ग्रे के मंत्रिमंडल ने सुधार के जो प्रस्ताव रखे उनमें से गुप्त मतदान और कम काल के लिए निर्वाचित संसदीय संस्था की उग्र सुधारवादियों की मांगों की अवहेलना कर दी गई, किंतु मताधिकार का दायरा काफी बढ़ा दिया गया। फिर भी ब्रिटेन के शासक वर्ग के मन में जो अनिश्चितताएं थीं उन्हें आसानी से दूर नहीं किया जा सका। देहाती चुनाव क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले सांसदों की ओर से विशेष रूप में कुछ प्रतिरोध हुआ, और संसदीय सुधार विधेयक का पहला संस्करण पारित नहीं हो पाया। इस पृष्ठभूमि में, आगे आने वाले 1831 के चुनाव भी सुधार के बारे में एक वास्तविक जनमत बनकर रह गए। इन चुनावों में हाउस ऑफ कॉमन्स में सुधार के समर्थक ही जीत कर आए, और इसी क्षण हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने सुधार विधेयक के संशोधित रूप को रद्द कर दिया। इसे लेकर जनता में विरोध की लहर बन गई, दंगे–प्रदर्शन हुए, और नीति निर्धारकों को यह विश्वास हो गया कि प्रतिक्रियावादी नीति में खतरा ही था। महान उपयोगितावादी बुद्धिजीवी जेरमी बेंथम के बाद उनमें से अनेक ने इस तथ्य को समझा कि फ्रांस में आधी शताब्दी पहले जिस किस्म की क्रांति ने सिर उठाया था उसे टालने के लिए सुधार आवश्यक था। इसका नतीजा यह हुआ कि 1832 की गर्मियों में ब्रिटेन में चुनाव प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया गया, छोटे संपत्तिधारकों को मताधिकार दिया गया, और इस प्रक्रिया में कोई विद्रोह भी नहीं हुई। अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो से ही चुनावी भ्रष्टाचार का जो मुद्दा चला आ रहा था, और संरक्षण का भ्रष्ट तरीके से इस्तेमाल करके शाही दरबार द्वारा की जाने वाली चुनावी हेरा–फेरी को लेकर जो जबरदस्त विरोध उठा था, उसे तो इतनी आसानी से खत्म नहीं किया जा सका। बाद में जब उग्रपंथियों की गुप्त मतदान की मांग को मान कर उसे लागू कर दिया गया, तभी जाकर यह मुद्दा सुलझा।

इन बदलावों के बावजूद, संसद में भद्रजन और अभिजात्य वर्ग का प्रतिनिधित्व बढ़ नहीं पाया तो उसका कारण यह रहा कि कम से कम 1870 के दशक तक तो सरकार के भीतर विभिन्न शक्ति केंद्रों पर अभिजात्य वर्ग का कड़ा नियंत्रण रहा। देहातों का प्रतिनिधित्व बढ़ जाने से भद्र वर्ग की स्थिति मजबूत हो गई। तीन सौ पौंड कीमत की भू–संपत्ति को योग्यता–शर्त के रूप में लागू रख कर शहरी मतदाताओं की एक बड़ी संख्या को मतदान में भागीदारी से वंचित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त, शहरों का राजनीतिक जीवन अभी भी सुसंगठित नहीं था और स्थानीय व्यापारी भी अक्सर ही संसदीय राजनीति की अपेक्षा नगरपालिकाओं के चुनावों में कहीं अधिक रुचि लेते थे। सुधार के इस आधे–अधूरे काम में सबसे अधिक घाटे में रहे मजदूर वर्ग। सुधार का कदम उन्हीं के दबाव के कारण संभव हुआ था, किंतु उन्हीं के अधिकारों को मान्यता नहीं मिल पाई।

सुधार पर बहस एक बार फिर 1860 में हुई, जब 'रिफॉर्म लीग' जैसे उग्रपंथी मध्यमवर्गीय संगठनों ने मताधिकार के दायरे को और भी बढ़ाने का सुझाव रखा। इन संगठनों को मजदूर वर्ग का समर्थन प्राप्त था। सुधार के लिए मजदूर वर्ग का दबाब और भी तेज हो गया। उदारवादियों और अभिजात्य वर्ग के सदस्यों की ओर से निचले तबकों के लोगों के आतंक के बारे में व्यक्त की गई चिंताओं के बारे में चली लंबी बहस के बाद, 1876 के सुधार अधिनियम में मताधिकार का विस्तार कर दिया गया। इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि लोकतंत्र की दिशा में एक सार्थक कदम उठा लिया गया था। 1876 में जिन लोगों को वोट का अधिकार दिया गया उनकी संख्या बहुत बड़ी थी। मतदाताओं की संख्या तीन वर्षों के भीतर लगभग दो गुनी हो गई, और स्थानीय पार्टी कार्यकर्ताओं की बदलौत यह संख्या लगातार बढ़ती रही। यहां एक उदाहरण पर्याप्त रहेगा। बर्मिंघम में मतदाताओं की संख्या 1866 में 15,000 थी जो बढ़कर 1868 में 43,000 और 1877 तक 62,000 हो गई। 1868 में जिस काम की शुरुआत हुई थी, उसे बाद के एक विधान से पूर्ण कर दिया गया। और, इस प्रकार उदारवादी लोकतंत्र जैसी प्रणाली की स्थापना हो गई।

लगभग इसी समय फ्रांस ने भी नेपोलियन तृतीय के दूसरे साम्राज्य के ध्वस्त होने के बाद लोकतंत्र की दिशा में अपनी अंतिम छलांग लगाई थी। नेपोलियन तृतीय के दूसरे साम्राज्य की स्थापना दूसरे गणतंत्र को भंग करके 1852 में की गई थी। उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस के लोकतांत्रीकरण का दौर प्रगति और पराजयों का दौर रहा। इससे पहले 1840 के दशक में जग इंग्लैंड में एक लोकतांत्रिक राज्यतंत्र की ओर रूपांतरण की धीमी किंतु अजेय प्रक्रिया चली तो फ्रांस की राजनीति में और भी अधिक उथल–पुथल थी। ऑर्लियन परिवार के राजतंत्र को जनता का थोड़ा बहुत औचित्यपूर्ण समर्थन प्राप्त था, उसे बाद में 1848 में गद्दी से हटा दिया गया। इस क्रांति के फलस्वरूप 'दूसरे गणतंत्र' की स्थापना हुई, किंतु उसमें शुरू से ही अंदरूनी झगड़े छाए रहे।

इसका नतीजा यह रहा कि दिसम्बर 1848 में नेपोलियन बोनापार्ट का भतीजा गणतंत्र का राष्ट्रपति बना। अभिजात्य वर्ग और राजतंत्र समर्थकों की लगातार अस्वीकृति के बावजूद, बोनापार्टवादी दावेदार को किसी प्रभावकारी संगठनात्मक तंत्र की अनुपस्थिति में भी अच्छा खासा जन समर्थन मिलता रहा। राजतंत्र समर्थकों के बीच लूई नेपोलियन के विरोधियों में राष्ट्रपति पद के दावेदार को लेकर कोई आम सहमति न बन पाने के कारण अंततः उसके लिए रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार कावेन्याक को हराना आसान हो गया। जब विभिन्न राजनीतिक दल एक दूसरे के साथ कांटे की लड़ाई में व्यस्त थे ऐसे में बोनापार्ट ने स्वयं को ऐसे नेता के रूप में पेश किया जो मौजूदा दलीय झगड़ों से ऊपर था। बोनापार्ट वंश से जुड़ी पारंपरिक साख भी उसके लिए अपार शक्ति का स्रोत रही; किसानों के मामले में यह बात विशेष रूप से सही थी। यह देहात का वोट ही था जो लूई नेपोलियन के जनाधार के लिए इस चुनाव के दौरान और उसके बाद भी मूल आधार सिद्ध हुआ। मुख्य रूप से देहाती समर्थन के बल पर ही नेपोलियन तृतीय फ्रांस में अपनी जनमत आधारित तानाशाही को स्थापित करने में कामयाब रहा; जन मत आधारित राजनीति ने उसे जनता के बीच आवश्यक वैधता प्रदान की।

बोध प्रश्न 1

1) किन तत्वों ने ब्रिटेन को सबसे पहला आधुनिक लोकतंत्र बनाया ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) यूरोप में लोकतांत्रीकरण के लिए विभिन्न प्रतिक्रियाओं हेतु कौन से कारक उत्तरदायी थे ? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

7.3 बोनापार्टवाद

लूई नेपोलियन के बोनापार्टवादी शासन के अपने आकलन को लेकर इतिहासकारों में आमतौर पर मतभेद पाया जाता है। 1930 के दशक के दौरान जब फासीवाद का आतंक था, तब उसे फासीवाद का प्रवर्तक माना जाता था। बाद में इतिहासकारों की रूचि फांसीसी औद्योगीकरण के प्रति इस शासन के योगदान में, विशेषकर एक आधुनिक परिवहन व्यवस्था बनाने में हो गई। इस बारे में आम सहमति है कि तीव्र आर्थिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण फ्रांस के बुर्जुआ वर्ग के हित में एक अत्यंत लाभकरी घटना थी, भले ही उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को तानाशाही शासन ने चूर कर दिया हो। नेपोलियन तृतीय को जो खासी व्यक्तिगत सत्ता मिली वह निश्चित रूप से बुर्जुआ वर्ग के साथ समझौते की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी; किंतु एक बुनियादी स्तर पर यह उन लगातार प्रयासों का परिणाम था जो उसने सीधे–सीधे जनता को प्रभावित करके अपनी सत्ता को मजबूती देने के लिए किए थे। जनमत जैसे चुनावी तरीके उसकी राजनीतिक चालबाजी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व रहा। एक अवसर पर उसने अपने लक्ष्यों को स्पष्ट करने के लिए 'जनता के हितों को पूरा करने' और 'उच्च वर्गों की राजभक्ति' प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया जिससे कि फांसीसी क्रांति द्वारा पैदा किए गए दलीय मतभेदों को दूर किया जा सके। वह फांसीसी क्रांति को राजनीतिक अस्थिरता के लिए जिम्मेदार मानता था। उसने स्वयं को ऐसे समय में राष्ट्रीय एकता का अवतार माना जब राष्ट्र को दलीय मतभेदों ने छिन्न–भिन्न कर रखा था।

इस संदर्भ में, 'दूसरे साम्राज्य' की स्थापना के लिए उत्तरदायी स्थितियों और एक शताब्दी बाद फासीवादी शासनों के उदय से ठीक पहले की स्थितियों में अत्यधिक समानताएं थीं। फासीवादी शासनों के समान ही, 'दूसरे साम्राज्य' को भी सामान्य राजनीतिक संकट और अस्थिरता के व्यापक भय के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। जनता के समर्थन से एक अधिनायकवादी शासन की स्थापना के माध्यम से स्थिरता प्राप्त करने के इसके लक्ष्य के समानांतर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में यूरोप में होने वाली घटनाएं भी मिलती हैं। सम्राट के प्राधिकार को लोकतांत्रिक मताधिकार ने वैध ठहराया। इसमें संदेह नहीं है कि नेपोलियन तृतीय सार्वजनिक व्यवस्था की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध था; फिर भी उसके शासन में जनता की संप्रभुता के प्रति एक प्रतिबद्धता स्पष्ट दिखाई पड़ती थी जिसने उसके शासन को विशिष्टता प्रदान की। समय–समय पर होने वाले जनमत का उद्देश्य सम्राट की नीतियों के प्रति जनता का समर्थन हासिल करना था, और साथ ही सम्राट तथा जनता के बीच संबंध को भी सुदृढ़ करना था। इस रणनीति को सामान्यतया बोनापार्टवाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है, और इसी के बल पर नेपोलियन तृतीय को प्रातिनिधिक असेम्बलियों के अधिकारों को विधिवत कम करने में सफलता मिली। उसने बड़ी चतुराई से काम लेते हुए जनता की संप्रभुता के प्रति आग्रह को मजबूत अधिनायकवादी केंद्रीकृत सरकार के साथ जोड़ दिया।

लूई नेपोलियन के इरादे दिसम्बर 1848 के राष्ट्रपति पद के चुनावों के समय से ही स्पष्ट थे। राजतंत्र समर्थक और गणतंत्रवादी, दोनों ही किस्म के राजनीतिक कुलीनों के बीच भीषण गुटीय संघर्ष की पृष्ठभूमि में, लूई नेपोलियन ने मानो 1790 के दशक के बोनापार्टवादी शासन को ही फिर से प्रस्तुत करने हेतु अपने आपको एक ऐसे नेता के रूप में पेश किया जो मौजूदा दलीय टकरावों से ऊपर था। अपने चुने जाने के बाद उसने राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था को फिर से स्थापि

करने की आवश्यकता पर बल दिया। एक स्तर पर तो एक बार फिर कैथोलिक चर्च की सामाजिक सत्ता को मजबूत करने के प्रयास किए गए; एक और स्तर पर वामपंथी आंदोलनकारियों के विरूद्ध दमनकारी कदम उठाए गए। इसके बाद जो नए चुनावी कानून बने उनके तहत कोई एक तिहाई मतदाताओं को अयोग्य घोषित कर दिया गया। इनमें से अधिकांश कदम उस अगुआई का परिणाम थे जो फ्रांसीसी संसद के राजतंत्र समर्थक बहुमत ने की थी ताकि आने वाले चुनावों में उनकी जीत पक्की हो जाए। किंतु वे उग्रपंथियों के प्रतिपक्ष को खत्म नहीं कर पाए। इसके विपरीत, दमन की कार्रवाई ने भूमिगत उग्रपंथियों की एक जमात पैदा कर दी और इस बात को लेकर, फ्रांसीसी अधिकारियों की चिंता चरम पर पहुंच गई कि अब क्रांति के माध्यम से सत्ता हथियाने की गुप्त साजिशें होंगी।

उग्र सुधारवादी क्रांतिकारियों की चुनावी जीत के भय के इसी व्यापक संदर्भ में जमींदार वर्ग ने राष्ट्रपति से यह अपेक्षा रखी कि वह व्यवस्था तथा स्थिरता का एक स्थाई ढांचा बनाएं। किंतु संविधान में राष्ट्रपति के दोबारा चुने जाने का प्रावधान नहीं होने के कारण लूई नेपोलियन को मौजूदा स्थितियों ने प्रोत्साहित किया कि वह दिसम्बर 1851 में सत्ता हड़पने का प्रयास करें। रूढ़िवादी तो राष्ट्रपति द्वारा सत्ता हथियाने के समर्थन में थे, इसलिए इस शासन का चरित्र गणतंत्र विरोधी हो गया, हालांकि राजतंत्र समर्थकों में भी नए शासन को लेकर थोड़ी बहुत नाराजगी थी। थोड़े समय के लिए हुए कुछ प्रदर्शनों को छोड़कर, इसका अधिक प्रतिरोध नहीं हुआ, वामपंथियों की ओर से विद्रोह की जो यत्र–तत्र घटनाएं हुईं उनसे गणतंत्रवादी नेताओं के व्यापक दमन और गिरफ्तारियों को उचित ठहराने का ही मौका मिला। समाचार पत्रों पर कड़े प्रतिबंध लगा दिए गए। और अंततः 20 दिसम्बर, 1851 को राष्ट्रपति के प्राधिकार को बढ़ाने के विषय पर एक जनमत कराया गया। इस जनमत में भी ऐसे दमनपूर्ण उपाय किए गए जिनसे बहुमत विद्यमान राष्ट्रपति के ही पक्ष में हो सके। यह तरीका नए शासन का स्थाई हथकंडा बन गया; और जब कभी किसी महत्वपूर्ण राजनीतिक निर्णय के बारे में शासन को अपने समर्थन के लिए जनता की लामबंदी आवश्यक दिखी, यही हथकंडा हर बार अपनाया गया।

एक साल बाद 'दूसरा साम्राज्य' स्थापित हुआ तो फिर अर्थव्यवस्था में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव और सरकारी तंत्र में परिवर्तन भी हुए। इसके पीछे तात्कालिक उद्देश्य था एक ऐसी मजबूत और स्थिर सरकार बनाना जो आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में समर्थ हो, जबकि गणतंत्र की विरासत अर्थात जन समर्थित संप्रभुता को समय–समय पर होने वाले जनमत के माध्यम से बने रहना था। एक नामांकित सीनेट का गठन हुआ जिसमें प्रभावशाली वर्गों से आजीवन सीनेटरों को नियुक्त किया गया। इसके साथ ही संसदीय संस्थाओं का पुनर्गठन हुआ। इसके अतिरिक्त पुरुष मताधिकार से चुने गए 260 सदस्यों की एक विधायिका भी थी। इसके पास विधान तथा कराधान के प्रस्तावों पर विचार विमर्श करने का कोई अधिकार नहीं था। यह अधिकार सम्राट के पास ही रहा। 'दूसरे सम्राज्य' के दौरान निश्चय ही रहन–सहन के स्तर और आर्थिक आधुनिकीकरण के क्षेत्र में काफी सुधार हुआ। अगर ये उपलब्धियां संयोगवश थीं तब भी इन्होंने शासन के प्रति निष्ठा बढ़ाने में मदद की।

अधिनायकवादी साम्राज्य की राजनीतिक व्यवस्था ऐक केंद्रीकृत सोपानबद्ध प्रशासन पर केंद्रित थी, और यह व्यवस्था देखने भर को अखंड थी। अधिकारियों पर लगातार स्वार्थ समूहों का दबाव रहता था। जनमत और चुनावों के दौरान होने वाली आम हेरा–फेरी के अतिरिक्त, इसकी एक और विशेषता थी 'सरकारी उम्मीदवारी' की तथाकथित प्रणाली। इस प्रणाली के तहत सरकार आम तौर पर कुछ उम्मीदवारों के पक्ष में अपने समर्थन की घोषणा करती थी और अन्य उम्मीदवारों के प्रति अपना विरोध घोषित करती थी, जिससे कि ऐसे प्रतिनिधियों का चुनाव सुनिश्चित हो जाए जो अधिक भरोसेमंद हों और जिन्हें पक्ष में झुकाया जा सके। किंतु 1860 से स्थितियां उदारवादी साम्राज्य की दिशा में बदलने लगीं। हालांकि जन सभाओं और समाचार पत्रों पर लगे प्रतिबंधों को दशक के अंत में ही हटाया गया, फिर भी नवम्बर 1860 में सरकार ने विधायिका को स्वतंत्र विचार–विमर्श का अधिकार दे दिया। बजट पर संसद को अधिक नियंत्रण दिया गया। संसद के प्रभाव के इस तरह के विस्तार के अलावा, समाचार पत्रों तथा जनसभाओं के प्रति भी शासन अधिक सहिष्णु हो गया। हो सकता है कि इस प्रकार के उदारीकरण ने शासन की स्थिरता में सम्राज्य के विश्वास को ही परिलक्षित किया हो, फिर भी उदारवादी प्रतिपक्ष के बने रहने और 1860 के दशक में इसके बढ़ते प्रभाव ने निश्चय ही उदारीकरण की प्रक्रिया में योगदान किया। मई 1863 के चुनाव परिणाम इस बात का स्पष्ट संकेत थे कि उदारवादी प्रतिपक्ष की उभरने की शक्ति ने सरकार के चुनावी प्रबंधन को इस हद तक बेअसर कर दिया था कि तथाकथित सरकारी उम्मीदवारों को भी प्रशासन का समर्थन अपने लिए नुकसान पहुंचाने वाला लगा। 1869 के चुनावों से यह बात साफ हो गई कि साम्राज्य देहातों में तो अपना समर्थन बनाए रखने में कामयाब रहा था, किंतु शहरों में इसका नियंत्रण

लगातार घट रहा था। इस स्थिति में उसके लिए विधायिका में एक स्पष्ट बहुमत पाना अब और संभव नहीं था। चुनाव के कुछ समय बाद ही जिम्मेदार सरकार की मांग उठ गई। अब से संसद के साथ कार्यकारी संबंध पर जोर दिया जाने लगा। इस उद्देश्य को सामने रख कर सरकारी उम्मीदवार वाली व्यवस्था को छोड़ दिया गया। इन सभी कदमों को मई 1870 में जनमत में समर्थन मिल गया। इसे शासन की प्रचंड जीत माना गया और नेपोलियन वंश को नया 'वेपटिस्म' मिला।

इस स्थिति में, उसी वर्ष (1870 में प्रशा और फ्रांस के बीच) सदां की लड़ाई में हुई सैनिक हार के तुरंत बाद नेपोलियन तृतीय के 'लोकतांत्रिक ज़ारवाद' का ध्वस्त हो जाना इतिहासकारों के लिए उलझन का विषय बना रहा है। फिर भी यह इस किस्म के जनआधारित अधिनायकवाद की बुनियादी विकृति का संकेत देता है। इस प्रकार के शासनों की वैधता अधिकतर विदेश नीति की लगातार सफलता पर निर्भर करती है। यही कारण है कि उदारीकरण के बावजूद 'दूसरे साम्राज्य' बच नहीं सके, जब सैनिक पराजय और राष्ट्रीय अपयश के बोध ने इसकी वैधता को नष्ट कर दिया।

अन्य बोनापार्टवादी शासनों की तरह, 'दूसरे साम्राज्य' में भी दमन को जन समर्थन की लामबंदी के साथ अच्छी तरह से मिला दिया गया था। बोनापार्टवादी राज्य में जो जनमत का तत्व था उसने इसे बीसवीं शताब्दी की फासीवादी तानाशाहियों से अलग चरित्र दिया था, हालांकि दोनों ही व्यवस्थाओं में यह उद्देश्य निहित था कि एक प्रतिनिधिक राजतंत्र की सीमाओं से आगे निकला जाए, जिसमें वर्ग और तबकों की शत्रुताएं और प्रतिस्पर्धाएं प्रकट रूप में राज्य के लिए कमजोरियों के स्रोत थे। 'दूसरे साम्राज्य' की प्रकृति को लेकर होने वाली बहस इस मार्क्सवादी सिद्धांत से प्रेरित है कि कुछ स्थितियों में राज्य सीधे–सीधे प्रभुत्वशाली वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं करता था, जो कि मार्क्स की 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' में निहित सोच के विपरीत था। फिर भी यह बात उनके हित में थी कि राज्य का दमनकारी तंत्र सक्रिय रहे। लूई नेपोलियन के सत्ता हथियाने से मार्क्स के लिए समस्याएं खड़ी हो गईं। क्योंकि इसका अर्थ था कि प्रभुत्वशाली वर्ग के घटक विभिन्न बुर्जुआ तबकों ने बोनापार्टी तानाशाही के पक्ष में सत्ता का त्याग कर दिया था। इस ढंग से राज्य ने शायद कुछ हद तक स्वायत्ता प्राप्त कर ली थी, भले ही स्थिरता और व्यवस्था को सुनिश्चित करके इसने शासक वर्गों के हितों की रक्षा की थी। इन वर्गों का सामाजिक स्वार्थ संपत्ति की निश्चित सुरक्षा में था तथा इस अधिनायकवादी राज्य ने इस मुद्दे पर कभी समझौता नहीं किया। इस समस्या का समाधान इस तर्क में था कि जिस अभिजात्य वर्ग का हिस्सा सामाजिक तथा राजनीतिक सत्ता में था उन्होंने राजनीतिक संकट के क्षणों में अधिनायकवादी राज्य को एक अपरिहार्य आकस्मिकता के रूप में स्वीकार किया था।

बोध प्रश्न 2

1) नेपोलियन तृतीय के उदय की व्याख्या आप किस प्रकार करेंगे ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) 'दूसरे साम्राज्य' की विफलता के क्या कारण थे ? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

7.4 बिस्मार्कवाद

कुछ स्थितियों में (जैसे उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी में) सत्ता के अधिनायकवादी स्वरूप को जो स्वीकृति मिली वह उससे कहीं अधिक स्वाभाविक थी जितना कि असामान्य स्थितियों में इस प्रकार के शासनों को आकस्मिकता के मामले के रूप में देखा जाता है। 'दूसरे फ्रांसीसी साम्राज्य' के विरूद्ध प्रशा की जीत के फलस्वरूप 1871 में अपने गठन के बाद जर्मन साम्राज्य का जो अनुभव रहा वह यह बताता है कि जन समर्थन की वैधता प्राप्त एक अधिनायकवादी सरकार को किस प्रकार देश में राजनीतिक स्थिरता प्राप्त करने के लिए साम्राज्यिक विस्तार का सहारा लेना पड़ा था। जहां तक जर्मनी का सवाल है, इस समस्या का मूल कारण 1860 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में मिलता है। यह उससे भी एक दशक पहले की बात है जब साम्राज्य के छद्म वेश में जर्मन राष्ट्र राज्य की स्थापना मध्य यूरोप में एक प्रभुत्ववादी विदेश नीति और प्रशा के सैनिकवाद के सफल पालन के माध्यम से हुआ था।

जिस व्यक्ति ने इस नीति के बुनियादी ढांचे की सफल रूपरेखा प्रस्तुत की, उसका नाम था ऑटो वॉन बिस्मार्क। वह 1863 में प्रशा का मंत्री--राष्ट्रपति बना और बाद में 1871 में एकीकृत जर्मन राज्य के अस्तित्व में आने के बाद शाही चांसलर के पद पर भी रहा। सच तो यह है कि 1863 में बिस्मार्क को पूर्वी प्रशा में उसकी रियासत से बुलाया गया था। उसे संकट में पड़े प्रशा के राजतंत्र ने इसलिए बुलाया था कि वह सैनिक विस्तार के अत्यंत विवादास्पद मुद्दे को लेकर प्रशा की संसद में बहुमत प्राप्त उदारवादियों और सरकार के बीच मतभेद के कारण खड़े हुए राजनीतिक तथा संवैधानिक संकट का समाधान करे। जहां उदारवादी सेना के प्रबंध के तरीके पर संसद का नियंत्रण चाहते थे, वहीं वॉन रून के अधीन युद्ध मंत्रालय की चेष्टा थी कि सरकार के अधिकारों में संसद के 'अवैध' हस्तक्षेप के खिलाफ अवरोध पैदा किए जाएं। यह टकराव सबसे पहले 1860 में हुआ जब सैनिक विस्तार की युद्ध मंत्रालय की योजनाओं के लिए वित्तीय मंजूरी हेतु एक नया कानून संसद के समक्ष लाया गया। बहुमत वाले उदारवादियों ने इसे समाज के और अधिक सैन्यीकरण की दिशा में एक कदम के रूप में देखा। उन्हें भय था कि नागरिकों की सेना की कीमत पर नियमित सेना का विस्तार प्रशा के निरंकुश शासन के हाथों में दमन का हथियार बन जाएगा। इस संदर्भ में जब प्रशा की सरकार समर्थकों के चुनाव को पक्का नहीं कर पाई तो प्रशा के सम्राट काइजर ने एक क्षण के लिए तो अपने बेटे को गद्दी सौंपने का विचार कर लिया था। उसका यह बेटा उदार प्रवृत्ति का और संवैधानिक राजतंत्र के नेता के रूप में उपयुक्त था। एक संवैधानिक राजतंत्र और जनमत पर आधारित एक निरंकुश शासन के बीच चुनाव करना था। राजतंत्र के मुख्य समर्थक अर्थात रूढ़िवादी जमींदारों ने अंततः इस निरंकुश शासन का ही चुनाव किया, और इस संदर्भ में बिस्मार्क को जर्मन राष्ट्र के अद्भुत नेता के रूप में सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया। प्रशा का प्रधानमंत्री बनने के बाद उसने ऐसी परिस्थितियों में शासन किया जहां बजट को संसद की स्वीकृति नहीं थी, प्रतिपक्ष की आवाज कमजोर कर दी गई और राजतंत्र को विद्यमान संकट से उबारने के लिए उस पर तानाशाही शासन थोप दिया गया। क्षतिपूर्ति तो विदेश नीति की सफलता के रूप में सामने आई, जिसने जर्मनी के एकीकरण का रास्ता साफ कर दिया। (1866 में प्रशा और आस्ट्रिया के बीच हुए) सदोवा के युद्ध में प्रशा की जीत ने जिस हद तक बिस्मार्क के नेतृत्व में राष्ट्रीयकरण के उदारवादियों के स्वपन को साकार किया, प्रशा के उदारवादी तो बिस्मार्क के 1860 के दशक के प्रारंभ के बजट रहित शासन को भी मंजूरी देने को तैयार हो गए। और, इस संदर्भ में उन्होंने इस महान नेता की ज्यादतियों को भी माफ कर दिया, क्योंकि उसे अब उदारवादियों के बीच एक श्वेत क्रांतिकारी के रूप में देखा जाने लगा था।

बिस्मार्क और उसके उदारवादी आलोचकों के बीच अंततः जो समझौता हुआ उससे जर्मन साम्राज्य का चरित्र तय हुआ। 1871 के संविधान ने एक राष्ट्रीय संसद का गठन किया जिसका चुनाव सार्वभौमिक पुरुष मताधिकार के आधार पर होना था, किंतु लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गई इस संसद को सरकार पर किसी भी प्रकार के नियंत्रण से वंचित रखा गया। हालांकि राष्ट्रीय संसद की सहमति अत्यधिक निर्णायक विधान के लिए आवश्यक थी, फिर भी वह विधान बना नहीं सकती थी, और सम्राट के मंत्री भी इसके प्रति जवाबदेह नहीं थे। सरकारी व्यवस्था बुनियादी तौर पर प्रशा की व्यवस्था का ही विस्तार था जिसमें सैनिक कुलीनतंत्र के विशेषाधिकारों तथा अधिकार को जनता के हस्तक्षेप से सुरक्षित रखा गया था। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति से पूर्व के जमींदार अभिजात्य वर्ग की सत्ता को एक ऐसे युग में बना कर रखा जा सका जब उनके राजनीतिक प्रभुत्व के सामाजिक आधार को औद्योगीकरण ने और उसके परिणामस्वरूप उनकी सत्ता के संभावित खतरे के रूप में

उभरने वाले बुर्जुआ और मध्यम वर्ग ने नष्ट किया। सैनिक कुलीनों का अस्तित्व बचाए रखने की रणनीति 1866 के बिस्मार्क के फर्मूला पर आधारित थी, इसलिए इसमें मध्यम वर्गीय समाज के ऊंचे तबकों के साथ सामंजस्य की बात निहित थी। यह तबका संवैधानिक सरकार के विषय में नरमपंथी विचार रखता था और राजतंत्र तथा प्रमुख सत्ता केंद्र के रूप में सैनिक कुलीनतंत्र के अस्तित्व के प्रति अधिक सहिष्णु था। औद्योगिक क्रांति के पूर्व के जमींदार कुलीनतंत्र के पास नागरिक तथा सैनिक नौकरशाही में होनेवाली नियुक्तियों का नियंत्रण बना रहा और उसने सत्ता को बनाए रखने के लिए एक रणनीति का सहारा लिया गया। इस रणनीति के तहत रूढ़िवादी जमींदारों को देहाती इलाकों की लोकप्रिय राजनीतिक हस्तियां बना दिया गया। उनसे यह भी अपेक्षा रखी गई कि वे किसानों के आर्थिक संघर्ष में उनका नेतृत्व करके खेतिहर वर्गों के ठोस राजनीतिक गुट बनाएंगे। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि शहरी उदारवादियों के चुनावी प्रभुत्व को तोड़कर रूढ़िवादी व्यवस्था के लिए एक अपने हित में मोड़ी जा सकने वाली संसद का गठन किया जाए। बिस्मार्क ने 1870 के दशक के मध्य से इस प्रकार की राजनीतिक चालों को सक्रियता से संरक्षण दिया, जिसके चलते 1878 और उसके बाद के चुनावों में राष्ट्रीय संसद में उदारवादियों का प्रभुत्व समाप्त हो गया, क्योंकि खेतिहर गुटों से अपनी ताकत हासिल करके रूढ़िवादी पार्टी नया दमखम लेकर उभरी।

चुनावी चालों के बल पर रूढ़िवादी शासन के लिए संसद का समर्थन जुटाने की बिस्मार्क की इस रणनीति की सफलता अंततः 'विदेशी मामलों की भाप शक्ति पर आंतरिक रणनीति को चलाने' के उसके कौशल पर निर्भर थी। यह भविष्यवाणी भी जल्द ही सच सिद्ध हो गई कि वह 'एक निर्भीक विदेश नीति के बल पर घरेलू मुश्किलों पर काबू' कर लेगा। जैसे कि 1860 के दशक के संवैधानिक संकट को एक सफल विदेश नीति की मदद से हल कर लिया गया था, साम्राज्यिक विस्तार की नीति बिस्मार्क की कार्य सूची में लगभग तभी से जगह पाने लगी थी जब वह उदारवादी प्रतिपक्ष के खिलाफ एक औद्योगिक–खेतिहर गठजोड़ बनाने में व्यस्त था। निश्चय ही, साम्राज्यवाद के पीछे जो मंशा छिपी थी उसके लिए जर्मन उद्योग से जुड़े विभिन्न स्वार्थ समूह ही जिम्मेदार थे। किंतु वे एक ही तत्व का प्रतिनधित्व करते थे। हांस ऊलरिख वेहलर अथवा वॉल्कर बेरखान जैसे जर्मन इतिहासकारों के मत में एक सफल विस्तारवादी कार्यक्रम के सहारे राजनीतिक सत्ता के ढांचे और यथास्थिति को वैधता प्रदान करने की उतनी ही महत्वपूर्ण इच्छा भी विद्यमान थी। इस रणनीति का कम से कम नतीजा यह था कि उदारवादी प्रतिपक्ष ने बुनियादी राजनीतिक सुधार के लिए जो आंदोलन खड़े किए थे उनसे तथा समाजवादी मजदूरों के उस आंदोलन की ओर से ध्यान हट गया जो 1880 के दशक से गंभीर खतरा बनता जा रहा था। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह एक प्रतिरक्षात्मक रणनीति थी जिसका उद्देश्य सत्ता के पारंपरिक ढांचे की उन खतरों से रक्षा करनी थी जो मध्यम वर्गों और मजदूरों ने खड़े किए थे। राष्ट्रीय प्रतिष्ठा एक ऐसा मुद्दा था जिससे आलोचकों को समर्थकों में बदला जा सकता था। यह रणनीति 1890 में बिस्मार्क के शासन का अंत हो जाने के बाद भी बदली नहीं गई। काइजर विलियम द्वितीय की 'वेल्ट पॉलिटिक' भी विस्तारवाद के उसी हथियार की अगली कड़ी थी जिसका उद्देश्य जर्मनी के सैनिक कुलीनतंत्र के राजनीतिक प्रभुत्व को स्थिरता तथा वैधता प्रदान करना था।

इस रणनीति का अपरिहार्य परिणाम तो नस्ल के आधार पर अति राष्ट्रवादी किस्म की जनता की लामबंदी के रूप में सामने आया। यह एक प्रकार से बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों की फासीवादी लामबंदी की बुनियादी विशेषताओं की प्रवर्तक थी। अदभुत नेता का जो तत्व बोनापार्टवाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी, वह बाद में फासीवादी लामबंदी का भी मार्गदर्शन करता रहा। नात्सी जर्मनी में फ्यूयर (हिटलर) की संकल्पना में नेता के प्रति सम्पूर्ण आज्ञाकारिता और समर्पण का भाव निहित था। इसके अतिरिक्त नात्सी आंदोलन की अधिकांश नस्लवादी विचारधाराओं का स्रोत वे नस्लवादी सिद्धांत थे जिनका इस्तेमाल जर्मनी के शासक वर्ग इससे पहले (उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर में) अतिशय राष्ट्रवादी भावनाओं को बढ़ावा देने के लिए कर चुके थे। इस नस्लवादी तथा अति राष्ट्रवादी मानसिकता के केंद्र में वह 'सामजिक डार्विनवाद' था जिसने मानव के दायरे में प्राकृतिक चुनाव के जैविक सिद्धांतों और 'ताकतवर/योग्यता की जीत' की उतनी ही अस्थिर धारणा को लागू कर दिया था। इस पूरे तर्क का निहितार्थ यह था कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच विश्व में प्रभुत्व बनाने की प्रतिस्पर्द्धा स्थानिक होती है जिसमें केवल योग्य या ताकतवर की ही जीत होगी। यह सिद्धांत जरमन राज्य की साम्राज्यिक महत्वाकांक्षाओं के बिलकुल अनुकूल था। इससे भी महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि इन विचारों को नेवी लीग, कलोनियल लीग और पैन जर्मन लीग जैसे संगठनों ने नीचे जनता के स्तर तक पहुंचाने का काम किया। नेवी लीग ने तो प्रभुत्वशाली औपनिवेशिक ताकतों की बराबरी करके एक बड़े औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना के लिए एक सुदृढ़ नौसेना बनाने का आग्रह किया, और पैन जर्मन लीग ने यूरोप, विशेषकर 'निकृष्ट स्लेवोनी जनता' की आबादी वाले

महाद्वीप के पूर्वी छोरों के जर्मनीकरण की धारणा को लोकप्रिय बनाने का काम किया। इन लोगों को सभ्य बनाने के काम को ट्यूटोनिक (ऐंग्लो–सैक्सन, डच, जर्मन तथा स्कैंडिनेवियाई) नस्ल का महान मकसद माना गया। परचे लिखने वालों ने मांग की कि जर्मन लोग इस नेक मकसद की सेवा में आत्म त्याग का परिचय दें।

नस्ल तथा जातियता के छद्म वैज्ञानिक सिद्धांतों ने निकृष्ट लोगों की पतितावस्था और कमजोर मानसिकता के विरूद्ध ट्येटोनिक नस्ल की चारित्रिक मजबूती को सामने रखा। निकृष्ट लोगों में यहूदी भी थे जिनकी व्यापारिक जगत में श्रेष्ठतम स्थिति ने जर्मन दस्तकारों और छोटे व्यापारियों को उनका शत्रु बना दिया और यह स्वाभाविक ही था कि ये ही जर्मन तबके सेमीटिक–विरोध के सबसे प्रबल समर्थक थे। 1890 के दशक से सेमीटिक विरोध की जो विचारधारा पैन जर्मन लीग की गतिविधियां मजबूत करती आ रही थीं वह नात्सी जर्मनी के समय में अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई। उन्नीसवीं शताब्दी के बोनापार्टवाद की विशेषताओं से निश्चित रूप से सज्जित इस नात्सीवाद के उदय को इतिहासकारों ने जर्मन राज्यतंत्र में विद्यमान कुछ लोकतंत्र विरोधी ढांचों से जोड़कर देखा है। इस तर्क में सचमुच एक सार्थकता है कि बिस्मार्क के राज्य अर्थात जर्मन राज्य और 'तृतीय रीच' में निरंतरता के महत्वपूर्ण तत्व विद्यमान हैं। फिर भी नात्सियों ने जो आत्याचार किए वे इतने कठोर थे कि उन्होंने बिस्मार्क के राज्य के निरंकुशतावाद को आगे बीसवीं शताब्दी में होने वाली घटनाओं से बिलकुल अलग विशिष्टता प्रदान कर दी।

बोध प्रश्न 3

1) बिस्मार्क ने उदारवादी आलोचकों को कैसे नियंत्रित किया ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

2) जर्मन शासकों ने विस्तारवाद की नीति को क्यों अपनाया ? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

7.5 सारांश

इस इकाई में आपको यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था में आए बदलावों की जानकारी दी गई। क्रांतिकारी आंदोलन और उदारवाद तथा राष्ट्रवाद के बढ़ते प्रभाव ने यूरोपीय सरकारों के लोकतांत्रीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अलग–अलग देशों में लोकतंत्रीकरण की प्रकृति अलग–अलग रही। संसदीय किस्म की सरकार वाला ब्रिटेन एक प्रकार के नमूने का प्रतिनिधि था, तो उधर फ्रांस और जर्मनी में जन समर्थन से वैधता प्राप्त तानाशाही स्थापित हुई।

7.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अंगरेजी क्रांति, शाही निरंकुशतावाद का उन्मूलन, मताधिकार का विस्तार, औद्योगिक क्रांति, सुधार आंदोलन, आदि। देखिए भाग 7.2

2) विभिन्न राजनीतिक शासन, सामाजिक बदलाव और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में अंतर, आदि। देखिए भाग 7.2

बोध प्रश्न 2

1) राजनीतिक संकट, गुटीय राजनीति, अस्थिरता का सामान्य भय, स्थिरता के प्रतीक के रूप में नेपोलियन का उदय, आदि। देखिए भाग 7.3
2) केंद्रीकृत सोपानबद्ध प्रशासन, जवाबदेह सरकार की मांग, आदि। देखिए भाग 7.3

बोध प्रश्न 3

1) बिस्मार्क राष्ट्रीय एकीकरण का प्रतीक था, विदेश नीति में उसकी सफलता, बिस्मार्क की राजनीतिक युक्तियां, आदि। देखिए भाग 7.4
2) राजनीतिक सुधार की मांगों को टालना, जनता में राष्ट्रवादी भावनाओं को भड़काना, आदि। देखिए भाग 7.4

इस खंड हेतु कुछ उपयोगी पुस्तकें

ई.जे. हॉब्सबॉम,: *दि एज ऑफ रिवोल्यूशन, 1789-1848*

जॉर्ज रूड,: *रिवोल्यूशनरी यूरोप*

विलियम डॉयल,: *दि ऑक्सफर्ड हिस्ट्री ऑफ दि फ्रेंच रिवोल्यूशन*

डी. टॉमसन, : *यूरोप सिंस नेपोलियन*

घटनाओं का कालक्रमिक विवरण

- 5 मई, 1789, वेरसाय में इस्टेट जनरल का समाहृवान।
- 17 जून, 1789, टेनिस कोर्ट शपथ और राष्ट्रीय असेम्बली की स्थापना।
- 14 जुलाई, 1789, बैस्टील दुर्ग पर चढ़ाई को अराजकतावाद का प्रतीक माना गया।
- 5 अगस्त, 1789, सामंती व्यवस्था की समाप्ति।
- 26 अगस्त, 1789, मनुष्य के अधिकारों की घोषणा।
- 3 सितम्बर, 1791 नए संविधान की घोषणा।
- सितम्बर 1792, फ्रांस एक गणतंत्र घोषित किया गया।
- 1793-94, आतंक का राज्य।
- जुलाई 1794, रोबेसप्यार का पतन
- 1795-99, 'डायरेक्टरी' का शासन (थर्मडारी गणतंत्र)।
- 1799-1815, नेपोलियन बोनापार्ट का फ्रांस पर शासन
- 1814-1818] वीएना की कांग्रेस, कांग्रेस में भाग लेने वाले प्रतिनिधि थे आष्ट्रिया का मेटरनिख, ब्रिटेन का कासलरे, रूस का जार आलेक्सांदर, प्रशा का वॉन हम्बोल्ट, फ्रांस का तालेरां।
- 1815, विदेशी मामलों में एकजुटता का पालन करने के लिए रूस, आस्ट्रिया और प्रशा में 'पवित्र गठबंधन'।
- 1818, एक्स लॉ शापेल की कांग्रेस।
- 1820, ट्रोपो की कांग्रेस
- 1821, लाइबाख की कांग्रेस
- 1824-1830, फ्रांस में चार्ल्स दसवें का राज्य।
- 1830, फ्रांस में जुलाई क्रांति, चार्ल्स दसवें का पलायन और आर्लियंस परिवार के लूई फीलीप की ताजपोशी।
- 1815-48 , यूरोप में मेटरनिख युग के नाम से विख्यात, मेटरनिख 1809 में आस्ट्रिया का चासंलर बना।
- 1848, फ्रांस में फरवरी क्रांति, फ्रांस के दूसरे गणतंत्र की घोषणा।
- 1852, नेपोलियन तृतीय द्वारा दूसरे फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना।
- 1854-56, क्रीमिया का युद्ध।

इकाई 8 औद्योगिक पूंजीवाद

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप:

- औद्योगिक क्रांति की आधारभूत अवधारणाओं को समझ सकेंगे,
- जान सकेंगे कि औद्योगिक पूंजीवाद की प्रकृति के बारे में विभिन्न लेखक क्या कहते हैं, और
- को इन लेखकों की आलोचना और मूल्यांकन के माध्यम से औद्योगिक पूंजीवाद की प्रकृति के स्पष्टीकरण में मदद मिलेगी।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई में औद्योगिक पूंजीवाद की प्रकृति के संबंध में विभिन्न विचारों का अध्ययन किया गया है। औद्योगिक पूंजीवाद के उदय से पूर्व पूंजीवादी चरण में मौजूद उत्पादन प्रक्रिया की प्रकृति काफी हद तक बदल गई। इस परिवर्तन से समाज और अर्थव्यवस्था के कई पक्ष कई प्रकार से प्रभावित हुए। परिणामस्वरूप अनेक लेखकों ने अपने आलेखों में या तो इस परिवर्तन का एक पक्ष सामने रखा या कभी-कभी इसे गलत रूप में पेश किया। अभी भी हम इस परिघटना को समझने का प्रयास कर रहे हैं।

8.2 औद्योगिक क्रांति और औद्योगिक पूंजीवाद

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में यूरोप में आधुनिक राजनीति के कई पक्ष आर्थिक जीवन के रूपांतरण से जुड़े हैं। औद्योगिक पूंजीवाद का विकास इस युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इसका सीधा संबंध यूरोप में हुई औद्योगिक क्रांति से था।

औद्योगिक क्रांति की अवधारणा का तात्पर्य मूलतः खास प्रौद्योगिकी और आर्थिक परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में आनेवाले बदलाव से है। इसकी मुख्य विशेषता इस प्रकार है : i) उत्पादन में जल, वाष्प (और बाद में विद्युत) शक्ति का भारी मात्रा में प्रयोग, ii) कारखानों में उत्पादन का संकेंद्रण और मशीनीकरण, iii) 'घरेलू' और 'विदेशी' बाजारों की प्रकृति और दोहन में महत्वपूर्ण परिवर्तन, iv) जीवनयापन के लिए कृषि पर निर्भरता

की लगभग समाप्ति। यह औद्योगिक क्रांति का पहला चरण था जिसमें आर्थिक और सामाजिक जीवन में औद्योगिक पूंजीवाद का वर्चस्व था।

औद्योगिक पूंजीवाद में, उत्पादन के उद्योगों में पूंजी निवेशित की जाती है, श्रम की अपेक्षा निवेश का महत्व ज्यादा होता है और निवेश के बदले में मुनाफे के रूप में ज्यादा से ज्यादा धन कमाने का प्रयत्न किया जाता है। यह व्यापारिक पूंजीवाद या वित्तीय पूंजीवाद से अलग था क्योंकि उनका बल मुख्य रूप से क्रमशः वाणिज्यिक और वित्तीय लेन देन तक सीमित था; परंतु यह पूंजीवाद की उस प्रक्रिया और आर्थिक गतिविधियों से जुड़ा हुआ था जिसमें आर्थिक गतिविधि मुनाफे का पर्याय बन गई थी। इसमें बड़ी मात्रा में भाड़े के मजदूरों को रखा जाने लगा था। यूरोप में औद्योगिक पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव निम्नलिखित विकासों से जुड़े हुए थे :

i) अठारहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इंगलैंड में हुई औद्योगिक क्रांति। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :
- जनसंख्या में तीव्र वृद्धि
- कृषि क्रांति, जिसका सीधा संबंध जनसंख्या वृद्धि और खेती में नई प्रौद्योगिकी और मशीनों के इस्तेमाल से था।
- कपड़ा, लोहा, और इस्पात उद्योगों में उत्पादन के लिए नई प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल
- कुटीर उद्योगों का धीरे-धीरे खात्मा और कारखानों में उत्पादन पर बल जहां इस पर कड़ी नजर रखी जा सकती थी।

ii) इंगलैंड से 'सीख लेकर' उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान फ्रांस और जर्मनी में उपर्युक्त वर्णित तरीके से ही इन दोनों देशों में औद्योगिक परिवर्तन हुए। इन दोनों ही देशों में मध्य उन्नीसवीं शताब्दी में रेलवे का निर्माण औद्योगिक पूंजी के विकास में निर्णायक सिद्ध हुआ था।

iii) उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्थापित औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा रूस और हंगरी जैसे देशों में पूंजी निवेश के कारण औद्योगिक पूंजी का विकास

iv) उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में इन सभी देशों के लिए उपनिवेशों और अल्प विकसित क्षेत्रों का बाजारों के रूप में बढ़ता महत्व।

8.3 औद्योगिक पूंजीवाद के महत्वपूर्ण पक्ष

समकालीन और बाद के टीकाकारों के अनुसार औद्योगिक पूंजीवाद और क्रांति के परिणामस्वरूप एक ऐसा माहौल निर्मित हुआ जिसमें उद्योग को सुसंगत बनाया गया। यहां सुसंगति का मतलब उत्पादन पर पूरी तरह से नियंत्रण स्थापित करना था। पहले यह ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं था। इसके पहले भाड़े के मजदूर रखने की प्रथा नहीं थी और मजदूर एक जगह इकट्ठा होकर काम नहीं करते थे। इसलिए उस समय पूंजीपतियों के लिए कहीं एक स्थान पर अपने प्रभाव का इस्तेमाल करने का अवसर नहीं था।

इस प्रकार के परिवर्तन से उत्पादन लागत में कमी आई और जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता गया उत्पादन की प्रत्येक इकाई का खर्च कम होता गया। अब प्राकृतिक शक्तियों (जलवायु, आदि) पर निर्भरता कम हुई और पूरी उत्पाद् प्रक्रिया के बाजार से जुड़ जाने के कारण लोगों पर सूखे या महामारी का प्रभाव कम हो गया। मांग और उत्पाद् में हुए परिवर्तन के कारण पारिस्थितिकी संतुलन में भी मुख्य परिवर्तन हुए। संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस में बड़े पैमाने पर जंगलों की कटाई की गई और जानवरों को मारा गया। आर्थिक गतिविधि व्यापारिक उतार-चढ़ाव से जुड़ गई जिसकी प्रकृति निवेश और उपभोग के अनुसार बदलती रहती थी। औद्योगिक पूंजीवाद की विशेषताओं के साथ-साथ आधुनिकता का भी आगमन हुआ जो परम्परागत जीवन और आर्थिक जीवन से बिलकुल अलग था।

8.4 औद्योगिक पूंजीवाद के अध्ययन संबंधी दृष्टिकोण

इन परिवर्तनों को लेखकों ने किस प्रकार समझा और आत्मसात किया ? आइए इसे समझने का प्रयास करें।

8.4.1 राजनैतिक अर्थव्यवस्था के आरंभिक लेखक

औद्योगिक क्रांति होने के साथ साथ पूंजीवाद की प्रक्रिया भी आरंभ हुई और इस ओर कई आर्थिक टीकाकार आकृष्ट हुए जो पहले की आर्थिक व्यवस्था के विरोधी थे जिसमें समृद्धि बढ़ाने के लिए राज्य के हस्तक्षेप की बात की जाती थी। वाणिज्यवादियों की आलोचना इसलिए की जाती थी क्योंकि वे समृद्धि के लिए विदेश व्यापार के नियमों में परिवर्तन करने के लिए राज्य के हस्तक्षेप की वकालत करते थे। फिजियोक्रेट्स की आलोचना इसलिए की गई क्योंकि उनका मुख्य सरोकार भूमि की उत्पादकता के विकास से था। एडम स्मिथ (1723-1719), डेविड रिकार्डो (1772-1823) और थॉमस राबर्ट माल्थस ने अर्थशास्त्र या राजनैतिक अर्थव्यवस्था पर लिखते हुए पूंजीवाद के लिए निर्णायक विविध ताकतों जैसे जनसंख्या, उद्यम, मांग, किराया, मुनाफा, राजनीति आदि का समुचित समन्वय पेश किया। इनमें से एडम स्मिथ ने अपने **इन्क्वायरी इनटू द नेचर एंड कॉजेज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशन्स** में वाणिज्यवाद और फिजियोक्रेसी की आलोचना की और वैल्यू इन यूज (उपयोग के मूल्य) और वैल्यू इन एक्सचेंज (विनिमय के मूल्य) पर आम विचार विमर्श करते हुए बेसिस ऑफ वैल्यू इन लेबर (श्रम में मूल्य का आधार) का विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने मानवीय कार्यकलापों में सरकार की सीमित भूमिका का समर्थन किया और कहा कि इसका हस्तक्षेप 'आमतौर पर नुकसानदेह' होता था। अपने समय के मुक्त व्यापार के समर्थक कई उदारवादियों के साथ उन्होंने भी **लैसेज फेयर** के सिद्धांत का समर्थन किया। स्मिथ ने यह स्वीकार किया कि जब व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए काम करता है तो सामाजिक असमानता पैदा होती है। परंतु उन्हें इस बात का विश्वास था कि इससे समग्र रूप में भौतिक समृद्धि बढ़ेगी और लोगों के बीच 'स्वस्थ्य' प्रतियोगिता के साथ-साथ 'सौहार्द' भी कायम रहेगा और लोगों के सामाजिक रिश्ते मजबूत होंगे।

स्मिथ के मुकाबले औद्योगिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संबंध में रिकार्डो और माल्थस ज्यादा निराशावादी थे। रिकार्डो का कहना था कि उसे फ्रांसीसी चिन्तक गेरशेनकोन द्वारा प्रतिपादित 'कानून' में आस्था थी कि किसी देश में अति उत्पादन का संकट और पूंजी का आधिक्य असंभव था परंतु वे इस बात के प्रति भी समान रूप से आश्वस्त था कि किराए में तीव्रता से वृद्धि होने से उत्पादन बढ़ेगा और जनसंख्या में वृद्धि होगी जिससे आर्थिक संकट का आधार तैयार हो सकता है। दूसरी ओर माल्थस के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि का सीधा असर विकास की गति पर पड़ेगा और अन्ततः यह समृद्धि पर रोक लगा देगी। इस प्रकार के विचारों के कारण जेरेमी बैंथेम के 'उपयोगितावादी' दृष्टिकोणों को बल मिला कि समृद्धि के लिए सरकार की कुछ न कुछ भूमिका अवश्य होनी चाहिए। 'अधिक लोगों की ज्यादा खुशी' के लिए यह जरूरी था क्योंकि यह कई बार कुछ लोगों के लोभ के कारण खतरे में पड़ सकता था।

स्मिथ की इस अवधारणा को, कि आय की असमानता के बावजूद समाज में समृद्धि रहेगी और विभिन्न वर्गों के बीच सौहार्द कायम रहेगा , समाजवादी लेखकों ने चुनौती दी जो अर्थव्यवस्था के इस विश्लेषण से सहमत नहीं थे और उनका नजरिया बिलकुल दूसरा था। सिसमंड डे सिसमंडी (1773-1842) के अनुसार पूंजीवादी विकास में उत्पादन तो तेजी से बढ़ता है किंतु इसमें असमानताएं भी बढ़ती हैं जिन्हें राज्य के हस्तक्षेप के बिना दूर नहीं किया जा सकता था। प्रोधोन (1809-1868) का मानना था कि असमानता से जुड़े अन्याय को आपसी समझौते से दूर किया जा सकता है या राज्य के प्रतिनिधि के रूप में स्वयं सेवी संगठन नियंत्रण स्थापित कर सकते हैं। कार्ल मार्क्स (1818-1883) ने कहा कि यह असमानता तब तक जारी रहेगी जब तक पूंजीवाद अन्ततः समाप्त नहीं हो जाएगा।

8.5 औद्योगिक पूंजीवाद के इतिहास पर कुछ विचार-I

इस प्रकार के लेखकों द्वारा (इन विचारों के संबंध में नव क्लासिकल विकास और जे. एम. कीन्स के कार्यों सहित) संघटकों या कारकों के संदर्भ में विकास की प्रकृति और विकास की समग्र पद्धति की समस्याओं पर अधिक विचार किया गया। इस प्रकार के लेखकों ने औद्योगिक पूंजीवाद से जुड़ी शब्दावलियों का तो निर्माण किया परंतु इसमें

आंकड़ा इकट्ठा करने के लिए विभिन्न देशों के ऐतिहासिक अनुभव का विवरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं किया गया जिसका उपयोग यह जांचने के लिए किया जा सकता था कि सिद्धांत कितना व्यावहारिक था। बाद के आर्थिक इतिहासकार भी औद्योगीकरण के अतीत का विश्लेषण करने में लगे रहे और इसी के आधार पर पूरे विश्व के विकास के लिए कुछ प्रारूप प्रस्तुत किया। यूरोपीय इतिहास के संदर्भ में डब्ल्यू डब्ल्यू रोस्टो और एलेक्जेंडर ग्रेशेनकोन सबसे प्रमुख इतिहासकार थे।

8.5.1 रोस्टो

डब्ल्यू डब्ल्यू रोस्टो ने **स्टेंजेज ऑफ इकोनोमिक ग्रोथ** में कहा कि विकास पांच चरणों में हुआ है :

- परम्परागत समाज, जहां उद्योग और कृषि दोनों क्षेत्रों में आविष्कार होता है, परंतु "प्रति व्यक्ति प्राप्त उत्पादन के स्तर" की एक सीमा होती है।
- 'संक्रमणकालीन समाज,' 'ऐसा समय जब समाज के विकास का माहौल तैयार हो रहा होता है' 'जहां संक्रमण परिस्थितियों का परिणाम हो सकता है,' 'जहां कृषि और उद्योग में आधुनिक विज्ञान का नए उत्पादन कार्यों में उपयोग शुरू होता है,' जहां विश्व बाजारों का एक खास ढंग से विकास होता है और अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिता का सामना करना होता है; अथवा आमतौर पर जहां 'घुसपैठ' होती है जिससे एक झटका लगता है जो आधुनिकता की ओर ले जाता है।
- प्रगति का यह चरण उस अंतराल का प्रतिनिधित्व करता है जब पुरानी बाधाओं और संरचनाओं पर अंतिम रूप से विजय प्राप्त कर ली जाती है। इस समय आधुनिक गतिविधियों को विस्तार मिलता है और समाज पर इसका प्रभाव बढ़ता जाता है और जहां विकास एक आम स्थिति हो जाती है। यहां सकल घरेलू उत्पाद् औसतन लगभग 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक अवश्य बढ़ जाती है और इस समय अनिवार्य रूप से उद्योगों में बड़े पैमाने पर पुनर्निवेश और खेती में बड़े पैमाने पर बदलाव आता है। ब्रिटेन में 1783 के 20 वर्षों बाद यह स्थिति आई ; फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका में 1860 के पहले के दशकों में ; जर्मनी में 1850-1875 में, रूस और कनाडा में 1914 से पच्चीस वर्ष पूर्व यह स्थिति देखी जा सकती है।
- जब अर्थव्यवस्था अन्तरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का एक हिस्सा बन जाती है अर्थात जब अर्थव्यवस्था परिपक्व हो जाती है तब स्थापित और प्रमुख क्षेत्रों का महत्व कम होता है और निवेश तब सकल घरेलू उत्पाद् के 10-20 प्रतिशत के बीच होता है।
- सार्वजनिक उपभोग में बढोत्तरी, जहां अधिकाश संसाधनों को समाज कल्याण पर लगाया जाता है जहां अर्थव्यवस्था का बल प्रमुख क्षेत्रों से हटकर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं पर हो जाता है।

8.5.2 गेरशेनकोन

दूसरी ओर एलेक्जेंडर गेरशेनकोन ने **बैकवर्डनेस इन हिस्टौरिकल प्रसपेक्टिव** में विचार विमर्श करते हुए लिखा है कि 'पूर्व शर्त' या 'टेक ऑफ' जैसी कोई स्थिति नहीं होती है क्योंकि औद्योगीकरण में इनकी कोई स्पष्ट मौजूदगी नहीं होती। उनका मानना है कि औद्योगीकरण एक रास्ता दिखाता है परंतु उस रास्ते पर चलने के तरीके में काफी अन्तर हो सकता है। वे इस बात का भी विरोध करते हैं कि " औद्योगिक रूप से अधिक विकसित देश कम विकसित देश के लिए भविष्य की एक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं" ; इसकी बजाय उनका मानना है कि "एक पिछडा हुआ देश अपने पिछड़ेपन के बीच से ही बचाव का रास्ता निकालता है जो विकसित देश के रास्ते से बिल्कुल भिन्न होता है।"

एलेक्जेंडर गेरशेनकोन ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं :

- एक पिछड़े हुए देश की औद्योगिक प्रक्रिया विकसित देशों से भिन्न होती है ; औद्योगिक विकास और खासकर संगठन और उत्पादन की प्रकृति में यह अन्तर देखा जा सकता है।
- ये परिस्थितियां "संस्थागत उपकरणों" के अनुप्रयोग के परिणाम होते हैं जो औद्योगिक राष्ट्रों में देखने को नहीं मिलता है।
- औद्योगीकरण का बौद्धिक परिवेश बिलकुल अलग होता है
- 'राष्ट्र विशेष की प्राकृतिक औद्योगिक क्षमता और पिछड़ेपन का स्तर अलग-अलग होता है और इनका प्रभाव भी अलग-अलग होता है।"

गेरशेनक्रोन का मानना है कि नए बैंकिंग नेटवर्क और राज्य का हस्तक्षेप 'संस्थागत उपकरण' है जो यूरोप के 'पिछड़े' राज्यों में औद्योगीकरण के लिए निर्णायक है। इसलिए नेपोलियन III के शासन काल के दौरान फ्रांस में औद्योगिक बैंकिंग के नए रूप का विकास हुआ जिसने स्थापित धन की दिशा बदल दी और बैंकिंग का एक प्रारूप स्थापित किया जिसका बाद में पूरे यूरोपीय महाद्वीप में तेजी से विकास हुआ। जर्मनी में इस प्रारूप ने नई दिशाएं ग्रहण कीं। दूसरी ओर रूस में, असक्षम होने के बावजूद राज्य ने सेना के हितों को पूरा करने के लिए औद्योगीकरण का रास्ता अख्तियार किया।

बोध प्रश्न 1

1) 'औद्योगिक पूंजीवाद' से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

....

....

....

2) फिजियोक्रेट्स और वाणिज्यवादियों की आलोचना एडम स्मिथ किस आधार पर करते हैं ?

....

....

....

....

....

....

3) गेरशेनक्रोन क्यों कहते हैं कि औद्योगीकरण के लिए कोई खास 'टेक ऑफ' चरण नहीं होता ?

....

....

....

....

....

....

8.6 औद्योगिक पूंजीवाद के इतिहास पर कुछ विचार-II

रोस्टो और गेरशेनक्रोन के दृष्टिकोण ने आलोचनाओं को प्रेरित किया। अर्थशास्त्रियों के विपरीत उन्होंने औद्योगिक पूंजीवाद के विकास को समझने के लिए एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष प्रदान किया है। हालांकि इस दृष्टिकोण के प्रमुख तत्वों और काल निर्धारण को आसानी से न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। उदाहरण के लिए रोस्टो ने प्रगति के आरंभ की जो पूर्व शर्तें बताई थीं उनमें से अधिकांश प्रगति के आरंभ की ही विशेषताएं हैं। अतः यह प्रश्न सामने आता है कि इन दोनों चरणों में क्या अन्तर है ? मार्केविसकी ने फ्रांसीसी अर्थव्यस्था को सामने रखते हुए बताया है कि रोस्टो द्वारा निर्धारित मापदंड के अनुसार वहां प्रगति के आरंभ का कोई निश्चित काल नहीं दिखाई पड़ता जबकि 19वीं शताब्दी के अंत तक इस अर्थव्यवस्था को गैर औद्योगिक अर्थव्यवस्था नहीं माना जा सकता था। रोस्टो के समान गेरशेनक्रोन के दृष्टिकोण की इतनी आलोचना नहीं हुई क्योंकि उन्होंने कुछ संभाव्य पद्धतियों तक ही अपने को सीमित रखा। हालांकि उनकी यह विनम्रता उनकी कमजोरी और सीमा को स्पष्टता से उजागर करती है क्योंकि इससे यह नहीं पता चलता है कि जिन पद्धतियों

की वे बात करते हैं उनका आगे क्या सामान्य या व्यापक अनुमान होगा। वे खुद आस्ट्रो-हैंगेरियन साम्राज्य स्पेन, इटली, या रोमानिया में इन पद्धतियों की पुनरावृत्ति नहीं देखते हैं; हां कहीं-कहीं समानता के कुछ बिंदु दीख जाते हैं।

एक ग़ौरतलब बात यह है कि औद्योगिक पूंजीवाद का अध्ययन इसके स्पष्ट रूप से आगमन के पूर्व ही शुरू हो चुका था और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व वाणिज्यिक पूंजीवाद की बात होने लगी थी जिसने 'औद्योगिक क्रांति' के काल में विकास से लोगों का ध्यान हटा दिया था। इस प्रकार के सरोकारों को मुख्य रूप से फर्नैन्ड ब्रौडेल द्वारा **कैपिटलिज्म ऐंड मैटेरियल लाइफ** में किए गए विचार-विमर्श और **प्रोटो-इन्डस्ट्रियलाइजेशन** में लिखे लेख से लोकप्रियता मिली जो पीटर क्रिएडेट, हैन्स मेडिक और जुरगेन शमबॉम की पुस्तक **इंडस्ट्रीयलाइजेशन बिफोर इंडस्ट्रीयलाइजेशन** (प्रथम संस्करण 1977) में प्रकाशित हुआ था। इमैनुअल वाल्लरस्टेन ने 'वर्ल्ड सिस्टम' और द कैपिटलिस्ट वर्ल्ड इकोनोमी की अपनी चर्चा में भी इस पर प्रकाश डाला है। ब्रौडेल और वाल्लरस्टिन दोनों ही आंरभिक आधुनिक यूरोप में रुचियों के परिष्कार की बात करते हैं और बताते हैं कि नई मांग के अनुसार नए उत्पाद सामने आए ; ये मांगे ऐसी थीं जिन्हें उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन कर यूरोपीय बाजार को विश्व के अन्य बाजारों से जोड़कर ही पूरा किया जा सकता था। पन्द्रहवीं शताब्दी से और स्पष्ट तौर पर सोलहवीं शताब्दी के मध्य से से ही यूरोप में पूंजीवाद का धीरे-धीरे विकास होने लगा था (वाल्टरस्टिम के अनुसार)। औद्योगीकरण के प्रारंभिक रूप (प्रोटो-इन्डस्ट्रीयलाइजेशन) का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों ने अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के औद्योगिक पूंजीवाद के रूप में आई नई विशेषताओं को रेखांकित किया परंतु उनका विशेष बल इस 'व्यवस्था' की प्रकृति अर्थात व्यवस्था में आए बदलाव पर था। 'प्रारंभिक औद्योगीकरण' के इस चरण का संबंध कुटीर या घरेलू उद्योग के साथ जोड़ा गया जिस पर जर्मनी में राजनैतिक अर्थव्यवस्था की ऐतिहासिक विचारधारा (हिस्टौरिकल स्कूल ऑफ पोलिटिकल इकोनोमी) के विद्वानों ने विस्तार से चर्चा की थी (ए. शैफेल और डब्ल्यू रोशर)। वारनर सोमबार्ट ने बाद में उभरने वाले पूंजीवाद के लिए महत्व स्थापित करते हुए बताया कि "घरेलू उद्योग का इतिहास पूंजी का इतिहास है। घरेलू उद्योग के वेश में पूंजी धीरे-धीरे विकास करता रहा है और अपने आप एक आर्थिक क्षेत्र विकसित किया।" फ्रैंकलिन एफ. मेन्डेल्स और चार्ल्स और रिचार्ड टिलि ने आरंभिक औद्योगीकरण पर विचार विमर्श किया और बताया कि "इसका विकास ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के साथ जुड़ा हुआ है जिसमें अधिकांश जनसंख्या क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, और अन्तरराष्ट्रीय बाजारों के लिए बड़े पैमाने पर "हो रहे उत्पादों पर पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से आश्रित होती थी।"

इस प्रकार के विवेचनों से औद्योगिक पूंजीवाद के आरंभ पर हो रहे विचार विमर्श से ध्यान हटा और पूंजीवाद के सतत विकास संबंधी ढांचे पर ज्यादा बल दिया जाने लगा। इस प्रकार रोस्टो और गेरशेनक्रोन की पूर्व शर्तों की मान्यता काफी हद तक कम हो गई।

8.7 औद्योगिक पूंजीवाद के इतिहास पर कुछ विचार-III

अभी हाल में पूंजीवाद के उन पक्षों का विवेचन किया गया जो निस्संदेह औद्योगिक पूंजीवाद के इस चरण और बाद में वित्तीय पूंजीवाद के लिए काफी महत्वपूर्ण था। यहां मुख्य बिंदु पूंजीवाद का सामाजिक और सांस्कृतिक परिणाम हैं; परंतु इन लेखकों ने सामाजिक इतिहासकारों से बिलकुल अलग ढंग से विचार किया जिन्होंने औद्योगीकरण के कामगार वर्ग की कठिनाइयों पर दुख प्रकट किया। इस संदर्भ में डेरेक सेयर के कार्य का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। इससे औद्योगिक पूंजीवाद के संबंध में हाल के टीकाकारों के सरोकारों को समझने में मदद मिलेगी। सेयर ने पूंजीवाद पर कार्ल मार्क्स के आर्थिक विश्लेषणों और मैक्स वेबर के सामाजिक विश्लेषण के वृहद परिणामों पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। सेयर के लेखों से पता चलता है कि औद्योगिक पूंजीवाद और आमतौर पर पूंजीवाद (ब्रॉडेल जिस तरीके से इसका विश्लेषण करता है) से 'आधुनिकता' और 'आधुनिकता' की पूर्व शर्तों का जन्म हुआ; और उन्होंने उस 'आधुनिकता' की प्रकृति के बारे में भी लिखा है। निस्संदेह इसका परिणाम औद्योगिक पूंजीवाद के रूप में सामने आया जिसे आर्थिक संक्रमणों और इसके सीमित परिणामों से शुद्ध रूप में जोड़कर नहीं देखा जा सकता। दीर्घ अवधि में भी ऐसा संभव नहीं है। यह व्यापक विकासों का ही एक अंग हैं।

शेयर बताते हैं कि मार्क्स पूंजीवाद को विशेष तौर पर आर्थिक विशेषताओं से नहीं जोड़ते हैं। इसके बजाय मार्क्स का सोचना है कि यह एक विकास का चरण है जो एक ऐसी स्थिति पर विजय प्राप्त करता है जहां 'व्यक्ति महान दिख सकता है' लेकिन 'व्यक्ति या समाज किसी का भी मुक्त और पूर्ण विकास संभव नहीं है'। मजदूरी के महत्व पर बल देते हुए और आम 'उपभोक्ताकरण को पूंजीवाद की निर्णायक विशेषता मानते हुए मार्क्स के अनुसार इस प्रकार के पूंजीवाद की सबसे खासियत यह होती है कि यह समाज के लगभग सभी तबकों को प्रभावित करता है। एक बार प्रक्रिया आरंभ होने के साथ ही यह भौतिक उत्पादन प्रक्रियाओं और सामाजिक संबंधों (जिस पर वह आधारित होता है) को पूर्ण रूप से बदल देता है। पहले चरण में निर्माण क्षेत्र में परिवर्तन हुआ (मध्य सोलहवीं. अठारहवीं शताब्दी के अंतिम तिहाई तक) जहां 'पूंजी ने उत्पादन के सामाजिक संबंधों को बदल दिया परंतु इससे उत्पादन प्रक्रिया के भौतिक स्वरूपों में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं किया गया' ; शिल्पियों को एक छत के नीचे बिठा दिया गया ताकि श्रम अनुशासित ढंग से हो सके। उत्पादन में सहकारिता भाव शामिल था, इस अर्थ मे कि कार्यशाला और समाज में विस्तारित श्रम विभाजन दिखाई पड़ता था ; और यह प्रतियोगितापूर्ण था। इस चरण में इस प्रकार की प्रक्रियाएं 'कमोबेश आकस्मिक थीं' परंतु आधुनिक उद्योग के अगले चरण में ये प्रक्रियाएं 'नियम' बन गईं और रूपांतरण इस तरह हुआ कि श्रम पूंजी का दास बन गया। इस रूपांतरण में व्यक्तिगत महत्व और नागरिकता का भ्रम-जाल महत्वपूर्ण निर्णायक साबित हुआ। 'चीज' (या वस्तुएं) सभी संबंधों के लिए निर्णायक सिद्ध होने लगीं ; सभी चीजों का 'उपयोग मूल्य' उसके 'विनिमय मूल्य' से आंका जाने लगा। सेयर मार्क्स के उस विचार की ओर इशारा करते हैं जहां आर्थिक रूपांतरण सीमित रूप में होता दिखाई देता है : "...............विनिमय मूल्य में व्यक्तियों का सामाजिक रवैया वस्तुओं के सामाजिक रवैये में रूपांतरित हो गया; व्यक्तिगत सामर्थ्य को वस्तुओं के सामर्थ्य की तराजू पर तौला जाने लगा। विनिमय के साधनों की सामाजिक शक्ति जितनी कम होती है वह श्रम के तत्काल उत्पाद् की प्रकृति और अपने से उतनी ही गहराई और करीब से जुड़ा होता है। 'जहां सामूहिक शक्ति मजबूत होती है वहां लोग एक दूसरे से जुड़े होते हैं, पारिवारिक और पैतृक संबंध बरकरार रहता है, सामुदायिक परम्परा कायम रहती है, सामंतवाद और श्रेणी व्यवस्था कायम रहती है।'

शेयर बताते हैं कि इन विचारों से बहुत दूर तक सहमत होने के बावजूद मैक्स वेबर, माइकल फॉकॉल्ट या नोबर्ट एलियस जैसे बाद के लेखक इन वृहद सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूपांतरण के कारकों के संबंध में अपना अलग मत रखते हैं। इसे 'आधुनिकता' या 'पूंजीवाद' कहने से कोई फर्क नहीं पड़ता है यदि मार्क्स के लिए यह जटिल आर्थिक प्रक्रिया का उत्पाद् है तो वेबर के लिए यह सांस्कृतिक प्रक्रिया का परिणाम है जो आर्थिक परिणामों को अलग नहीं हटाती बल्कि उसे आधारभूत मानती है। यह सांस्कृतिक प्रक्रिया आकलन के अतिरिक्त मोह से ग्रसित है जिसे कारण के रूप में परिभाषित किया गया है। इसी प्रकार माइकल फॉकॉल्ट के अनुसार यह समाज के तर्कमूलक प्रतिमान परिवर्तन का परिणाम है जो पूंजीवाद और आधुनिकता के लिए जरूरी था। इसी प्रकार नोबर्ट एलियस के अनुसार यह समाज में व्यक्तियों का व्यक्तिगत अनुशासन है। सेयर का मानना है कि जैसे-जैसे इतिहासकारों ने औद्योगिक पूंजीवाद के बारे में लिखना शुरू किया वैसे-वैसे इन दृष्टियों में भी परिवर्तन आया।

बोध प्रश्न 2

1) प्रोटो इन्डस्ट्रियलाइजेशन (आरंभिक औद्योगीकरण) से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

....

....

2) क्या औद्योगिक पूंजीवाद को मात्र आर्थिक संक्रमण से जोड़ा जा सकता है ?

....

....

....

....

....

8.8 सारांश

इस इकाई में आपने देखा कि :

- औद्योगिक पूंजीवाद एक सामाजिक रूपांतरण है जिसमें उत्पादन के क्रम में मजदूरों को पूंजी का दास बना दिया गया। इस स्थिति में सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं का सारा माहौल रूपांतरित हो गया,
- समय-समय पर विभिन्न लेखकों ने औद्योगिक पूंजीवाद को समझने के कौन-कौन से प्रयास किए,
- इन लेखकों के मूल्यांकन की आलोचना इस आधार पर की गई कि औद्योगिक पूंजीवाद में मूल्य किस प्रकार सृजित किया जाता है और इस प्रकार की संरचना किस प्रकार संकट से गुजरती है।

8.9 शब्दावली

इकोनोमी ऑफ स्केल : निर्माण की ऐसी प्रणाली जहां वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उपयोग होता है। यह हस्तशिल्प या कुटीर उद्योग से बिलकुल अलग होता है जहां वस्तुओं का उत्पादन सीमित होता है, क्योंकि वहां बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए प्रौद्योगिकी का अभाव होता है।

लैसेज फेयर : राष्ट्रों के बीच व्यापार की व्यवस्था जहां निर्यात और आयात पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं होता।

फिजियोकेट्स : जे क्वेसने के नेतृत्व में राजनैतिक अर्थव्यवस्था पर लिखने वाले लेखक जिनका मानना था कि किसी राष्ट्र की समृद्धि भूमि की उत्पादकता पर निर्भर करती थी इन लेखकों का मानना था कि कृषि द्वारा पूंजी और श्रम के संचालन से आर्थिक विकास संभव हो सकता है। चूंकी कृषि के समान औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधि प्रकृति के उपहार नहीं थे इसलिए इनका स्थान गौण था और इन पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता था क्योंकि यह समृद्धि कृषि से प्राप्त की गई थी। इस प्रकार फिजियोक्रेट्स के विचारकों और लेसेजफेयर के विचारकों के बीच एक समान कड़ी मौजूद थी।

स्वयंसेवी संगठन : ऐसे समूह जो अपनी मर्जी से इसके सदस्य बनते हैं न कि किसी समुदाय धर्म आदि के सदस्य होने के नाते।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 8.2। इसे पढ़कर आप इसमें इस विचार को आगे बढ़ा सकते हैं कि औद्योगिक पूंजीवाद किस प्रकार एक सामाजिक रूपांतरण है जिसमें निर्माण की प्रकिया केंद्र में है।
2) देखिए उपभाग 8.4.1। इसमें आप बताइए कि किस प्रकार स्मिथ ने श्रम में मूल्य की पहचान की।
3) देखिए उपभाग 8.4.2 । इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आप गेराशेनकोन के उस विचार को विस्तार दीजिए जिसके अनुसार औद्योगीकरण का कोई एक समान और सीधा रास्ता नहीं है।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 8.6। औद्योगीकरण का चरण कुटीर या घरेलू उद्योग से जुडा हुआ है।
2) देखिए भाग 8.7। मार्क्स, सोमबार्ट, और वेबर के विचार उपयोगी हैं ।

इकाई 9 इंगलैंड में औद्योगिक पूंजीवाद

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- समझ सकेंगे कि किस प्रकार कुछ इतिहासकारों ने अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में इंगलैंड में हुई औद्योगिक क्रांति के लिए महत्वपूर्ण युग की अवधारणा को नए पहलू से देखा है,
- यह समझ सकेंगे कि इन इतिहासकारों ने फिर भी यह माना कि इंगलैंड में औद्योगिक पूंजी में हुई वृद्धि के लिए अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी निर्णायक साबित हुई ,
- सत्रहवीं और आरंभिक अठारहवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति से पहले हुई कृषि क्रांति के महत्व को समझ सकेंगे,
- 18वीं और आरंभिक 19वीं शताब्दी में औद्योगिक पूंजी के विकास को आगे बढ़ाने में पूंजी की आपूर्ति, उत्पादन के विभिन्न तरीकों, अभिनव परिवर्तन, व्यापार और बाजार के आपसी सम्पर्कों की भूमिका समझ सकेंगे, और
- यह जान सकेंगे कि किस प्रकार 1840 के बाद जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे नए औद्योगिक देशों के उदय से औद्योगीकरण की प्रकृति बिलकुल बदल गई।

9.1 प्रस्तावना

औद्योगिक पूंजीवाद के इतिहास में इंगलैंड का स्थान स्वर्णाक्षरों में अंकित है। यह पहला 'औद्योगीकृत राष्ट्र' था, और जैसा कि ऊपर बताया गया है बाद में औद्योगीकृत होने वाले देशों ने इंगलैंड से बहुत कुछ सीखा और उनका अनुगमन भी किया। औद्योगिक पूंजीवाद की शुरुआत करने में इंगलैंड का महत्वपूर्ण स्थान है इसलिए इस इकाई में इंगलैंड में होने वाले औद्योगीकरण के आरंभ पर विशेष बल दिया गया है। यह दो भागों में विभाजित है : (I) औद्योगिक क्रांति (लगभग 1740-1840) (2) उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य और उत्तरार्द्ध में औद्योगिक पूंजीवाद की मजबूती और संकट

9.2 अठारहवीं और आरंभिक उन्नीसवीं शताब्दियों की औद्योगिक क्रांति का महत्व

इंगलैंड में औद्योगिक पूंजीवाद के आर्थिक इतिहास पर विचार विमर्श करते समय अठारहवीं और आरंभिक उन्नीसवीं शताब्दियों में हुई औद्योगिक क्रांति हमेशा केंद्र में रहती है। निस्संदेह जैसा कि इतिहासकारों और अर्थशास्त्रियों ने बताया है कि यूरोप के किसी भी देश की अपेक्षा इस समय इंगलैंड के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन में औद्योगिक पूंजी एक महत्वपूर्ण कारक बन गया था जिसके परिणामस्वरूप 'क्रांतिकारी' परिवर्तन हुए और 'औद्योगिक क्रांति' हुई। अन्य यूरोपीय देशों द्वारा अपनाए गए मार्गों पर 'प्रथम औद्योगीकरणकर्ता' का प्रभाव स्पष्ट था।

पॉल मैन्टौक्स (1928), जी.अनविन (1927), डब्ल्यू एश्ले (1914), जॉन क्लैपहेम (1926-38) और अन्य आरंभिक शोधकर्ताओं के पथ का अनुगमन करते हुए हाल के कई प्रभावी 'संशोधनवादी' विद्वानों ने इसकी नई व्याख्या करने की कोशिश की। उन्होंने मैन्टौक्स के इस विचार का समर्थन किया कि 'इस विकास की तीव्रता के बावजूद औद्योगिक क्रांति दूरस्थ कारणों की उपज थी।' महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने हीटन (1932) के तर्क का भी समर्थन किया जिसने इस संदर्भ में 'क्रांति' शब्द की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया :"150 वर्षों तक चलने वाली क्रांति और कम से कम अगले 150 वर्षों तक चलने वाली इस गतिविधि को अलग नाम देना उचित होगा।'' उन्होंने जोर देकर कहा कि 'क्रांति' के समय इंगलैंड में औद्योगिक पूंजी का प्रभाव कुछ उद्योगों और कुछ क्षेत्रों तक सीमित था। उन्होंने कहा कि इंगलैंड में औद्योगिक पूंजी की बढ़ती महत्ता को 'क्रांति' (यहां तक कि औद्योगिक क्रांति) की संज्ञा नहीं दी जा सकती। कुछ अन्य विद्वानों ने भी इसी तरह सोचते हुए कहा कि यूरोप में कुछ ऐसे 'परिक्षेत्र' (एन्कलेव) थे जहां इंगलैंड के समान ही औद्योगिक पूंजी का महत्व बढ़ रहा था। उपर्युक्त वर्णित विचारों के साथ-साथ फर्नांड ब्रॉडेल का भी विचार सामने आया जिनके अनुसार यूरोपीय पूंजीवाद एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम था जिसे आसानी से किसी खास समय या देश से नहीं बांधा जा सकता। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि इमैन्युएल वालरस्टीन ने भी पूंजीवाद और 'विश्व व्यवस्था' के संबंधों की बात की थी। उन्होंने कहा था कि इस कड़ी के केंद्र में यूरोप था जिसका विकास पन्द्रहवीं शताब्दियों से हो रहा था।

इन सारे कारकों को सामने रखने से यह बात सामने आती है कि इंगलैंड में खास अवधि में औद्योगिक पूंजी संबंधी गतिविधियों के महत्व को जरूरत से ज्यादा महत्व देना गलत है या यूरोप में औद्योगिक पूंजीवाद के विकास में इसके महत्व को बढ़ा चढ़ा कर नहीं देखना चाहिए। इंगलैंड और यूरोप में औद्योगिक पूंजीवाद के स्थापित इतिहास में यह संशोधन उपयोगी लगता है। परंतु हाल में हुई बहस में ब्रिटिश इतिहासकार मैक्सिन बर्ग और पैट हडसन ने इस विचार की भी उचित ढंग से 'पुनर्स्थापना' की कि अठारहवीं और आरंभिक उन्नीसवीं शताब्दी में इंगलैड में औद्योगिक पूंजी देश की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। उन्होंने इस धारणा की भी 'पुनर्स्थापना' की कि इंगलैंड में अठारहवीं श्ताब्दी के दौरान हुई आर्थिक गतिविधियां 'क्रांतिकारी' थीं और इसे 'औद्योगिक क्रांति' कहना उचित है।

इस 'पुनर्स्थापना' से यूरोप में औद्योगिक पूंजीवाद के विभिन्न पक्ष प्रभावित नहीं हुए जिस पर 'संशोधनवादी' इतिहासकारों ने बहस करना उचित नहीं समझा। इन अवधारणाओं में यह पक्ष शामिल था कि यूरोप के किसी

भी देश की अपेक्षा इंगलैंड में अठारहवीं और आरंभिक उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान औद्योगिक पूंजी तीव्रता से बढ़ी। वे इस बात से भी सहमत थे कि इंगलिश उत्पादक जिस समय यह परिवर्तन कर रहे थे उनके सामने कोई 'प्रारूप' (या मॉडल) नहीं था। वे अपनी असफलताओं और आस पास के लोगों की असफलताओं से सीखते हुए आगे बढ़े। इन अवधारणाओं के साथ-साथ यह विचार अपने स्थान पर कायम रहा कि इंगलैंड में हुई 'औद्योगिक क्रांति' का समय यूरोप में औद्योगिक पूंजीवाद के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ब्रिटिश इतिहासकारों ने इस 'पुनर्स्थापना' के द्वारा इंगलैंड में हुई औद्योगिक क्रांति पर विशेष बल दिया और यूरोप में हुए विकास के लिए उसे अति महत्वपूर्ण बताया।

9.3 औद्योगिक पूंजीवाद के उदय की पृष्ठभूमि

इंगलैंड में औद्योगिक पूंजीवाद के विकास और 'औद्योगिक क्रांति' के पीछे अनेक कारक काम कर रहे थे उनमें 'कृषि क्रांति' का विशेष महत्व था। यह कृषि क्रांति सत्रहवीं और आरंभिक अठारहवीं शताब्दियों के दौरान कृषि में हुए वाणिज्यिकरण का परिणाम था। इस समय इंगलैंड की कृषि व्यवस्था में खेती कमोबेश बाजारोन्मुख हो गई थी। मिट्टी, जलवायु, स्थल और उत्पाद् के अनुसार इसे विशेषीकृत किया गया था। पशुधन और पशुधन-उत्पादों के मूल्यों में विशेषज्ञता नहीं थी। अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग तरीके से फसल उगाई जाती थी। परंतु समग्र रूप से इन खेतों में अनाज और चारा उगाया जाता था। जानवर पालने और अनाज उगाने में लोगों की रुचि थी। ईस्ट ऐंग्लिया, एसेक्स, केंट, डोरसेट, मिडलैंड और मोनमोथ के कुछ हिस्सों, हेरफोर्ड और पेम्ब्रोकशायर में ज्यादातर गेहूं का उत्पादन होता था। कैम्ब्रिजशायर, हर्टफोर्ड शायर, बर्कशायर, विल्टशायर और योर्कशायर के हिस्सों में जौ की विशेष तौर पर खेती की जाती थी। नॉर्थमबरलैंड, डरहम, लैंकशायर, शेशायर, डरबीशायर, नोटिंगमशायर और लिंकोलशायर में जई (oats) की खेती विशेष रूप से की जाती थी। हालांकि इस प्रकार के विभाजन का मुख्य कारण भोजन की प्रवृत्ति थी परंतु इसके साथ साथ अन्य कारणों से भी इन इलाकों में अलग अलग फसल उगाई जाती थी, मसलन मीडलैंड की चिकनी मिट्टी गेहूं के उत्पादन के लिए उपयुक्त थी। बाजार के लिए अतिरिक्त उत्पादन होता था; विभिन्न क्षेत्रों के बीच विनिमय होता था और लंदन जैसे औद्योगिक और वाणिज्यिक केंद्रों में अनाज बेचा जाता था।

9.3.1 वाणिज्यिक उत्पादन की प्रकृति

वाणिज्यिक उत्पादन मुख्य रूप से बड़े और छोटे भूमिपतियों के बड़े काश्तकारों के खेतों पर किया जाता था। इन सम्पत्तियों (हॉवर्ड, टॉलबोट्स और अन्य कम महत्वपूर्ण स्कवायर्स) का सरोकार इनकी भूमि की उत्पादकता से नहीं बल्कि इनसे प्राप्त होने वाले लगान से था। परंतु ऊंची लगान प्राप्त करने के लिए कुछ सुधार किए जाते थे। ये कई प्रकार के काश्तकारों के साथ काम करते थे जिनमें कुछ को आजीवन काश्तकारियां दे दी जाती थीं और कुछ खिदमती काश्तकार (कॉटर्स) थे जिन्हें मर्जी के अनुसार हटाया भी जा सकता था। कई पूर्ण स्वामी या उन्मुक्त स्वामी (फ्री होल्डर्स) भी थे जो एक खास लगान देकर मालिक की मांगों से मुक्त हो जाते थे और कुछ पट्टेदार (कॉपी होल्डर्स) भी थे (जिनके अधिकार उन्हें प्राप्त पट्टे पर आधारित था) जो अपनी जोत के अलावा इन सम्पदाओं की अतिरिक्त भूमि से भी लगान वसूल करते थे। देश की आधी से भी अधिक जमीन हेम्पशायर से लेकर यौर्कशायर तक फैली हुई थी जहां खेत तीन हिस्सों में विभाजित थे। खेती खुले मैदान में होती थी और इसमें तीन खेत में से एक खेत को परती छोड़ दिया जाता था। अलग अलग मौसमों में अ ग अलग अनाज बोया जाता था परंतु यह बोआई दो ही खेतों में होती थी। तीसरा खेत उर्वरता और ऊर्जा अर्जित करने के लिए छोड़ दिया जाता था। चरागाह पर सबका अधिकार था। इस व्यवस्था का लाभ यह था कि इसमें एक कृषि चक्र अपनाया जाता था और इसमें स्थल की कोई समस्या नहीं होती थी। यह निस्संदेह एक लचीली व्यवस्था थी जहां अलग अलग फसलें बारी बारी से उगाई जा सकती थीं परंतु खेत छोटे होने के कारण जल-निकासी जैसे मामलों पर लोग व्यक्तिगत रूप से काम नहीं कर पाते थे।

इन परिस्थितियों में जहां पूंजी कृषि के साथ बंधी हुई थी और खेती से अच्छा खासा मुनाफा हो रहा था, लोगों को खेती से सीधा भी मुनाफा हो रहा था और लोग लगान भी कमा रहे थे, देश में औद्योगिक पूंजीवाद के उदय के लिए कृषि से उद्योग की ओर पूंजी का हस्तांतरण प्रमुख जरूरत थी। इसके साथ-साथ औद्योगिक पूंजी के विकास के लिए कृषि उत्पादकता में वृद्धि जरूरी थी ताकि अस्थाई और स्थाई औद्योगिक मजदूरों के लिए पर्याप्त भोजन

जुटाया जा सके। खेती के पुनर्संगठन से भी आरंभ में उपज में वृद्धि हुई परंतु अठारहवीं शताब्दी के अंत में खेती में प्रयुक्त औद्योगिक प्रौद्योगिकी के कारण सुधार आया। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में कृषि से उद्योग की ओर पूंजी का स्थानांतरण धीरे-धीरे हुआ। उत्तर और मिडलैंड के बड़े सम्पदा स्वामियों ने खनन में निवेश करना शुरू किया। शहरी मिल्कियत किराए पर उठाई जाने लगी। उत्पादन की प्रौद्योगिकी में होने वाले बदलाव और इन परिवर्तनों को बड़े पैमाने पर लागू किए जाने के कारण इस प्रकार के परिवर्तन हुए।

सत्रहवीं शताब्दी के अंत से ही उत्पादकता की वृद्धि के लिए नए प्रौद्योगिकी सुधार किए जाने लगे। बदल -बदल कर फसलें बड़ा चुकन्दर, चुकन्दर, वनमेथी, सेनफायन पौधा उगाई जाने लगीं थीं जिनमें मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने का गुण था। अब मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए उसे खाली छोड़ने की जरूरत नहीं थी। चिकनी मिट्टी (चूना और मिट्टी के मिश्रण से बनाई गई मिट्टी) को बालूई मिट्टी में खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता था और इस समय तक आते आते इसका कई इलाकों में उपयोग किया जाने लगा। चारा और अनाज के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ लगातार खेती होने वाली भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिए विस्काउंट, टाउनशेंड, थॉमस कुक (अर्ल ऑफ लेसेस्टर) और लॉर्ड लॉविल ने विशेष प्रयत्न किया था। उन्होंने अपनी सम्पदाओं (वोबर्न पेटवर्थ और वेन्टवर्थ) में इसका प्रयोग किया था और उनकी इन उपलब्धियों का अनुगमन मीडलैंड के स्वामियों (जैसे रॉबर्ट बेक्वेल) ने किया जिन्होंनें भेड़ और अन्य पशुओं की नस्ल तैयार की थी। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक ये प्रौद्योगिकियां काश्तकारों के बीच लोकप्रिय हो गईं जिनका झुकाव व्यापार की ओर था और जो अपनी उपज बढ़ाना चाहते थे। संसद के अधिनियमों द्वारा छोटी जोतों को एक साथ मिलाकर घेरेबंदी कर दी गई। काश्तकार की हैसियत में परिवर्तन आने के कारण भी बदलाव आया। ऊंची लगान प्राप्त करने के उद्देश्य से मालिकों ने आजीवन काश्तकारी देने की प्रथा समाप्त कर दी और बीच-बीच में लगान बढ़ाते रहे। इस प्रकार जिन्होंने जमीन ली उनका झुकाव बाजार की ओर बढ़ा। उन्होंने पूर्ण स्वामित्व और पट्टेदारी भी हासिल की और इस प्रकार कम अवधि की काश्तकारी के लिए अधिक जमीन उपलब्ध कराई। आरंभ में शनैः-शनैः बड़ी भू सम्पदाओं, जिसपर सार्वजनिक या खुले तौर पर खेती की जाती थी, की घेराबंदी (एन्क्लोजर) की गई और काश्तकारों के साथ यह समझौता उस समय किया गया जब फसल कम हुई और आनाज के दाम ऊंचे उठे। उत्पादकता में वृद्धि और विकास तथा औद्योगीकरण स्तर को बनाए रखने के लिए खेतों के छोटे-छोटे टुकड़ों और सार्वजनिक खेतों को एक साथ मिला दिया गया। ग्रामीण जनसंख्या को अधिक से अधिक औद्योगिक श्रमिक के रूप में उपलब्ध कराने के लिए भी ऐसा किया गया। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में जनसंख्या वृद्धि बड़े पैमाने पर उत्पादन और शहरों के बढ़ते आकार से यह स्थापित हो गया कि वाणिज्यिक खेती द्वारा ही अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। इसी समय खाद्यान्न पदार्थों के मूल्य बढ़े और 1759 के आस-पास संसद के अधिनियम के द्वारा खेतों के बड़े पैमाने पर घेराबंदी की गई। इसके बाद 1781 तक घेराबंदी के अधिनियमों की संख्या यदाकदा 30 के नीचे रही और जिस समय खाद्यान्न के दाम बढ़े (1764-65, 1770-74, 1777 आदि) उन वर्षों में सबसे ज्यादा सक्रियता रही। इस प्रकार के अधिनियमों के लिए सार्वजनिक सभा बुलाई जाती थी। एक निजी विधेयक का प्रारूप तैयार किया जाता था। इसे संसदीय समिति को भेजा जाता था जो अधिनियम पारित करती थी और आयुक्तों की नियुक्ति करती थी जो घेराबंदी के पहले और बाद भूमि के मूल्य का मूल्यांकन करते थे। इसके अलावा उन गरीबों की भलाई और सहायता के लिए जो इस पुनर्वितरण से प्रभावित होते थे, एक राशि भी तय की जाती थी।

इन परिस्थितियों में हालांकि विश्वस्त आंकड़े प्राप्त करना मुश्किल है परंतु निस्संदेह शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय उत्पादन तेजी से बढ़ा (टीएसएशटन) उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशकों में यह प्रवृत्ति जारी रही और 1830 के दशक में खेती में और भी वैज्ञानिक प्रयोग किए गए। इसके लिए 1838 में स्थापित रॉयल एग्रीकल्चरल सोसाइटी भी काफी हद तक जिम्मेदार थी। परंतु इसके अलावा खेती में सुधार के लिए और भी काम किए गए। मसलन पानी का निकास जो चिकनी मिट्टी के लिए बहुत जरूरी होता है। यह कार्य 1820 के दशक में तेजी से हुआ। 1840 के दशक में उर्वरकों का भारी प्रयोग हुआ।

इन परिस्थितियों में इंगलैंड और वेल्स में मक्के का उत्पादन 1800 तक आते-आते 14.8 मिलियन क्वाटर (1 क्वाटर=28 पौंड) से बढ़कर 21.1 मिलियन क्वाटर हो गया। अधिक भूमि पर खेती किए जाने और गहनता से खेती किए जाने के कारण उत्पादकता में वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गेहूं के प्रति एकड़ उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। पशुपालन के मामले में यह कहना थोड़ा मुश्किल है कि भेड़ और पशुधन के आकार और संख्या में कितनी वृद्धि हुई ; कितने पशु पाले और बेचे गए। यह भी बताना कठिन है कि मांस की उत्पादकता कितनी बढ़ी क्योंकि 1745 में महामारी फैली थी और 1750 में अकाल आया था। 1830-40 के दशकों में 'उच्च खेती' (हाई फार्मिंग) के कारण खेती के साथ-साथ पशुपालन की प्रवृत्ति भी बढ़ी। कृषि उत्पादन में आने वाले परिवर्तनों से कई उद्योग सीधे प्रभावित हुए। स्वाभाविक रूप से अनाज कूटने

(मिलिंग) और पकाने वाले (बेकिंग) उद्योग ने बढ़त ले ली। परंतु गेहूं और जौ की फसल ज्यादातर बीयर और व्हिस्की और स्टार्च बनाने वाले उद्योगों को दे दी जाती थी। स्पष्टतया पशु उत्पाद की आपूर्ति में वृद्धि होने से ऊन और चर्बी के उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई।

9.3.2 जनसंख्या वृद्धि

अठारहवीं शताब्दी के दौरान कृषि की उत्पादकता में वृद्धि होने से औद्योगिक पूंजीवाद का विकास तो हुआ ही साथ ही साथ जनसंख्या भी तेजी से बढ़ी। उस समय स्थिर जनसंख्या में उत्पादकता बढ़ाने की विधियां तुलनात्मक रूप से सीमित थीं और प्रौद्योगिक विकास उस हद तक नहीं हुआ था कि श्रमिक और आम जनता आत्म निर्भर होकर विकास कर सकें। जनसंख्या के बढ़ने से श्रमिकों की उपलब्धता भी बढ़ी और श्रमिकों की उपलब्धता और चीजों की मांग में वृद्धि हुई ; ये दोनों ही तत्व औद्योगिक पूंजीवाद के विकास के लिए जरूरी थे। इस शताब्दी में निस्संदेह जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई। 1701 में इंगलैंड और वेल्स में यह जनसंख्या 5.83 मिलियन थी जो 1801 में 9.16 मिलियन हो गई।

आगे हम इस बात पर विचार करने जा रहे हैं कि यह वृद्धि कैसे हुई और इसका प्रभाव क्या पड़ा। स्रोत के रूप में गिरजाघरों के रजिस्टरों में इस अवधि में दफन किए लोगों की सूचियां हैं। परंतु इन रजिस्टरों को जन्म और मृत्यु के लिए बहुत विश्वस्त स्रोत नहीं माना जा सकता क्योंकि समय-समय पर इनकी विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता रहा है। इन स्रोतों के संदेह के घेरे में आ जाने से कुछ अनुमानों पर प्रश्न चिह्न लग जाता है :

i) वृद्धि का वास्तविक क्रम, जो आमतौर पर 1751 तक धीरे-धीरे बढ़ा (उस समय जनसंख्या 6.14 मिलियन थी) और उसके बाद तेजी से विकास हुआ।
ii) सवाल यह है कि जनसंख्या में हुई वृद्धि जन्मदर में वृद्धि के कारण हुई या मृत्यु दर में गिरावट के कारण। आमतौर पर यह बताया जाता है कि चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि होने, महामारियों की प्रवृत्ति में बदलाव आने, पूरे देश में पौष्टिक आलू की उपलब्धता और उपभोग में वृद्धि होने के कारण मृत्युदर में कमी आई।

परंतु कई अनुसंधानों से यह बात सामने आई है कि जनसंख्या में हुई वृद्धि का कारण जन्मदर में हुई वृद्धि ही थी। कुछ अध्ययन यह दिखाते हैं कि समृद्धि से बड़े परिवार की प्रवृत्ति पनपती है। कुछ अन्य अनुसंधानों में यह दिखाया गया है अठारहवीं शताब्दी में चिकित्सा सुविधाओं की उपलब्धता और समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभाव को बढ़ा चढ़ा कर बताया गया है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि जन्मदर में वृद्धि को स्थापित करने के लिए कोई ठोस आधार मौजूद नहीं है क्योंकि उन पुराने रजिस्टरों के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

9.3.3 पूंजी की आपूर्ति

धन और कोष की नियमित और पर्याप्त उपलब्धता के बाद ही औद्योगिक पूंजीवाद ऊपर बताए गए परिवर्तन का सफलतापूर्वक इस्तेमाल कर सकता था। ऐसे देश में जहां सिक्के का उत्पादन अनियमित था और जहां सोने, चांदी और तांबे के सिक्कों की हमेशा कमी रहती थी वहां पर्याप्त ऋण व्यवस्था की आवश्यकता थी। जमीन के आधार पर तो निवेश और ऋण मिल जाते थे परंतु उद्योग को ऋण मिलना मुश्किल था। होर्स, काउट्स, चिल्ड्स और ड्रमंड्स जैसे प्रमुख बैंक कुलीनतंत्र को ऋण देते थे जो अपनी सम्पदा गिरवी रख सकते थे। इसके अलावा ये बैंक सरकारी गारंटी पर भी ऋण देते थे परंतु औद्योगिक व्यापार के लिए ऋण देने के प्रति अधिक उत्सुक नहीं होते थे।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक उद्यमी अपने कमाए हुए धन से ही काम करते थे या व्यापारियों द्वारा उन्हें धन की प्राप्ति होती थी। इसके अलावा वे स्वर्णकारों और बहुमूल्य धातुओं का काम करने वाले लोगों से कर्ज लेते थे। टर्न पाइक ट्रस्ट और कनाल कम्पनी के अधिकारी तथा कर प्राप्तकर्ता भी उन्हें मुद्रा उपलब्ध कराते थे। यह बड़े ही आश्चर्य की बात लगती है परंतु वास्तव में भूमि कर और रसीदी टिकट शुल्क के स्थानीय संग्रहकर्ताओं (कलक्टर्स) जैसे कुछ अधिकारियों को जनता से उगाहे गए शुल्क को एक साल तक अपने पास रखने का अधिकार था; उत्पाद शुल्क पर यह लागू नहीं था। वे स्थानीय कृषकों, उत्पादकों और व्यापारियों को क़र्ज़ दिया करते थे।

कृषि और उद्योग में वाणिज्यिक गतिविधियों में तीव्रता आने पर गांव के बैंकों ने भी इन बैंकरों का अनुगमन किया। इन देशी बैंकों की स्थापना शताब्दी के मध्य में बढ़ते व्यापार की अवधि में हुई (उदाहरणार्थ 1750-3,

1762, 1765-6, 1770-3 और 1789-92)। ये संगठन छोटे थे और कुछ स्थानीय उद्योगों पर आधारित थे। इनका अपना अलग कार्यालय होता था। मुश्किल आने पर लंदन के बैंक भी उनकी मदद करते थे। 18वीं शताब्दी के मध्य और उत्तरार्द्ध में जब उत्पादन उद्योगों को इनकी आवश्यकता हुई उस समय तक संसाधनों के पुनर्वितरण के लिए एक पूरी व्यवस्था कायम हो चुकी थी।

बोध प्रश्न 1

1) 'संशोधनवादी' इतिहासकारों का मुख्य मत क्या था ?

....

....

....

....

....

....

2) औद्योगिक पूंजीवाद के विकास में कृषि क्रांति ने किस प्रकार मदद पहुंचाई ?

....

....

....

....

....

....

3) क्या इतिहासकार स्पष्ट रूप से यह दिखा सके हैं कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण 'जन्म-दर' में बढ़ोत्तरी थी।

....

....

....

....

....

....

4) आरंभिक उद्यमियों के लिए पूंजी के स्रोत क्या थे ?

....

....

....

....

....

....

9.4 उत्पादन उद्योग

इंगलैंड के कई क्षेत्रों में उत्पादन इकाइयों की स्थापना हुई। इन इकाइयों ने उपर्युक्त वर्णित कई परिवर्तनों को आत्मसात किया। जहां-जहां संसाधन उपलब्ध थे वहां-वहां ये निर्माण इकाइयां स्थापित की गईं। इन इकाइयों के निर्माण में स्थल विशेष का भी ध्यान रखा गया। खनन के मामले में यह अपरिहार्य था। उदाहरण के लिए टिन का खनन कर्निवाल में, सीसा कम्बरलैंड, वेस्ट डरहम और डरबीशायर में पाया जाता है जबकि मिट्टी

के बर्तन बनाने के लिए उपयुक्त मिट्टी स्टैफोर्डशायर में और कोयला श्रॉपशायर, बरसेस्टरशायर, स्टैफोर्डशायर, योर्कशायर और साउथवेल्स के खानों में पाया जाता था। अब्राहम डरबी ने 1709 के बाद पक्के कोयले के साथ लोहे का खनन और इसे बनाने का काम भी शुरू किया। इसके अलावा व्यापार केंद्रों में भी उद्योग स्थापित हुए। लंदन सबसे बड़ा व्यापारिक केंद्र था जहां न केवल कार्न मिल, शराब का कारखाना, चर्मशोधनशाला थे बल्कि वहां फैशन के समान भी बनाए जाते थे। इसके अलावा यहां कोच, फर्नीचर, नारी-शिरोवस्त्र, चांदी के बर्तन और गहने भी बनाए जाते थे। इसके अलावा ब्रिस्टल में पानी के जहाज बनाए जाते थे और यहां वेस्टइंडीज के कृषि उत्पादों (चीनी, तंबाकू) को परिष्कृत किया जाता था और यहां शीशा, बर्तन और पीतल की भी उत्पादन इकाइयां थीं। लीवर पूल में शिपयार्ड थे (जहां और भी कई चीजें बनाई जाती थीं)। न्यू कैसल में इस्पात की भट्टियों के अलावा लाहे के लंगर, जंजीरें, गैंती, बेलचा और कटलरी (छुरी, चम्मच, कांटे आदि) बनाए जाते थे।

इन उद्यमों की संरचना अलग अलग थी। इस प्रकार की व्यवस्था में कुशल कारीगर घर में काम कर सकता था या औजार लेकर नजदीक की दुकान में काम कर सकता था और अपना माल इकट्ठा करके उसे बाजार में बेच सकता था। अक्सर वह अपने साथ काम करने वाले एक दो सहायक और बाजार जानेवाला कर्मचारी रखता था और कभी-कभी इसी उद्योग में लगे लोगों को काम भी दे देता था।

दूसरे प्रकार की संरचना एक बड़ा उद्यम हो सकती थी, जैसे कपड़ा उद्योग। इसमें कताई, बुनाई, रंगाई, भंडारण और अन्तत: मालिक और उसके परिवार के रहने के लिए अलग-अलग इमारतें होती थीं। एक दूसरी व्यवस्था को 'पुटिंग आउट' के नाम से जाना जाता था। ऊन उद्योग में यह व्यवस्था ज्यादा प्रचलित थी। इस व्यवस्था में बुनकर और जुलाहों को धागा दे दिया जाता था जो अपने घर पर काम करते थे और माल तैयार करके मालिक को दे दिया करते थे। पुटिंग आउट की यह व्यवस्था 150 मील के वृत तक फैली होती थी उदाहरण के लिए लंदन से उत्तर की ओर वेस्टमोरलैंड तक।
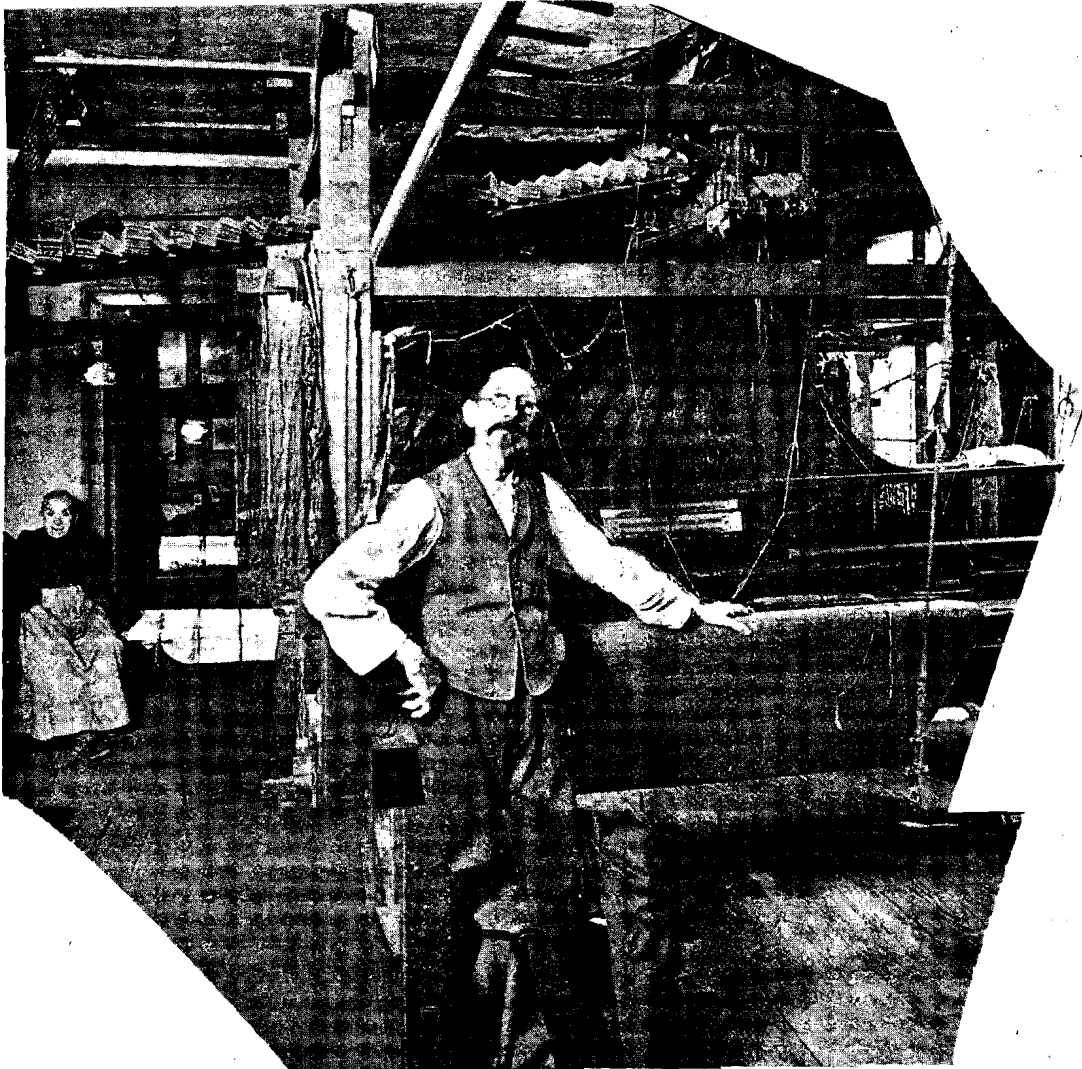
चित्र 1 : घरेलू कारीगर : इंगलैंड में घर में काम करता एक बुनकर

9.4.1 नए परिवर्तन और इसके प्रभाव

अठारहवीं शताब्दी में इन निर्माण उद्यो...ी इकाइयों में उपर्युक्त वर्णित कारकों (कृषि उत्पादों और श्रम आदि की बढ़ती उपलब्धता) के कारण बदलाव आया और कई नई प्रौद्योगिकी परिवर्तन भी हुए। सर्वाधिक महत्वपूर्ण आविष्कार सर्वविदित हैं :

- कपड़ा उद्योग में के (Key) द्वारा निर्मित फ्लाइंग शटल (1733) सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिससे सूत कातने की गति में काफी तीव्रता आई। आर्कराइट की स्पीनिंग जेनी (1769) और बाद के नूतन आविष्कारों से कताई में काफी तेजी आ गई। मसलन 1779 में कॉम्पटन ने म्यूल का आविष्कार किया। आर्कराइट ने 1785 में कताई के लिए पानी से चलने वाला फ्रेम बनाया, 1785 में कार्टराइट ने यांत्रिक शक्ति से चलने वाला करघा पावरलूम तैयार किया।
- कोयला और लोहा उद्योग में, अब्राहम डरबी (1709) द्वारा कोक कोयले से परिष्कृत विकास और कोर्ट द्वारा पलटनी, हथौड़ा के उपयोग से लोहा गलाने के लिए देश में उपलब्ध कोयले के विशाल भंडार का उपयोग करना संभव हो सका। परंतु अभी भी भुरभुरा लोहा ही बन पाता था जो अपरिष्कृत था और आसानी से टूट जाता था। लोहा तैयार करने के लिए चारकोल की जरूरत थी जिसकी काफी कमी थी। जहां तक कोक के इस्तेमाल की बात है नए प्रयोगों से कोयले की गुणवत्ता में बदलाव आया जबकि अन्य आविष्कारों से लोहे से अशुद्धियों को निकालने की नई तकनीक विकसित की गई।
- न्यूकॉमेन ईंजन (1705-06) से उत्पादन में वाष्प शक्ति का उपयोग किया जा सका। इसके अलावा जेम्स वॉट के द्वारा बनाए गए ईंजनों से लकड़ी और धातु की बनी बड़ी मशीने चलाना संभव हुआ था जिससे अब उद्यमी संसाधनों का उपयोग ज्यादा किफायत के साथ कर सकते थे।

चित्र 2 : आरंभिक ब्रिटिश औद्योगिक कांति का एक दृश्य : लोहे की भट्टी पर काम करता एक परिवार

इसके अलावा समय समय पर छोटे मोटे सुधार होते रहे। इससे मशीने बेहतर होती गईं और व्यापार की गति में तेजी आई।

इन खोजों से अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रक्रिया का आयाम विकसित हुआ और उद्योग की अन्य शाखाओं में निवेश

में वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए जब उत्पादन के लिए जल शक्ति का उपयोग किया जाता था तो उस समय घोड़ों, उनके रखरखाव, तालाब, बांध, पन-चक्की आदि में काफी निवेश करना पड़ता था। जलवायु शक्ति या वाष्प शक्ति के आविष्कार के बाद इनमें से कई निवेश कम हो सके। जेम्स वॉट की घूमने वाली ईंजन के आने के बाद मशीन चलाने में पन-चक्की का इस्तेमाल बंद हो गया। इस आविष्कार से उद्यमियों को काफी राहत मिली। अब उसे अपनी मशीनों को चलाने के लिए पानी की आवश्यकता नहीं थी। इसके साथ ही साथ लोहे की कीमतों में भारी गिरावट आने से मशीन बनाने में मंहगें तांबे या पीतल की जगह सस्ते लोहे का इस्तेमाल किया जा सकता था। अब इमारतों के निर्माण में लकड़ी के स्थान पर टिकाऊ लोहे का इस्तेमाल किया जाने लगा।

समय का सदुपयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। जैसा कि सर जॉन बर्नार्ड नामक एक व्यापारी ने सुझाव दिया : "सभी चीजों से बढ़कर है समय का मूल्य पहचानना और हर क्षण का उपयोग इस प्रकार करना मानो आपको आगे मौका मिलने वाला नहीं। समय के सही उपयोग से हम सारी खुशियां पा सकते हैं और समय गंवाया तो सबकुछ खो सकते हैं।" (**ए प्रेजेन्ट फॉर ऐन एप्रेन्टिस** (1741)) "पुटिंग आउट" को समाप्त कर यही किया गया ; अब कारखाने उत्पादन के केंद्र बन गए और उत्पादन की प्रक्रिया पर उद्यमी की पूरी पकड़ हो गई। इसके अलावा इस समय हुई खोजों से "मापक अर्थव्यवस्था". (एकोनोमिज ऑफ स्केल) कायम हुई अर्थात उत्पादन ज्यादा होने लगा और प्रति इकाई उत्पादन की लागत में कमी आई।

9.4.2 उद्यमशीलता की सामाजिक प्रेरणा

यह बात बार-बार दुहराई जा चुकी है कि ब्रिटिश समाज की प्रकृति ने उद्यमशीलता के उदय और उत्थान को बढ़ावा दिया। व्यापार, उत्पादन या अन्य किसी पेशे में धन कमाने की इच्छा के कारण लोगों के पास धन इकट्ठे हुए जिससे लोगों के व्यक्तिगत हैसियत और स्तर तय होते थे। यूरोपीय समाज में यह प्रवृत्ति नहीं पाई जाती थी। कुलीनवर्ग स्वयं इन गतिविधियों में निवेश करते थे और उत्पादन में शरीक होते थे। कोयला भूमि के मालिकों पर यह बात पूरी तरह लागू होती थी।

ब्रिटेन में प्रोटेस्टेंट 'डिसेंटर्स' (अलग मत रखने वाले) के समूह थे (जैसे क्वेकर) जो आपस में काफी अच्छी तरह जुड़े हुए थे। ये एक दूसरे पर काफी भरोसा करते थे और आपस में मदद भी करते थे। भूमिपतियों से ये दूरी बनाकर रखते थे। इस समूह ने बचत को बढ़ावा दिया और व्यापार की ओर प्रवृत्त हुए। बर्कले परिवार इस प्रकार का अच्छा उदाहरण है और बैंकिंग में उसका योगदान सर्वविदित है।

9.4.3 परिणाम

इस परिवेश का निर्माण उद्योग के उत्पादन पर काफी प्रभाव पड़ा। कोयला उद्योग में, जो उत्तरी क्षेत्र में स्थित था, 1701-10 और 1791-1800 के बीच निर्यात चार गुना बढ़ा। कॉर्नवाल में 1731-40 के बीच तांबे का उत्पादन औसतन 7,500 टन था परंतु 1794-1800 की अवधि में यह 48,000 टन हो गया। लौह उद्योग में 1720 में लौह पिंड का उत्पादन लगभग 25,000 टन था ; 1788 में 61 हजार, 1796 में 109,000 और 1806 में 227,000 टन उत्पादन का अनुमान लगाया गया। कपड़ा उद्योग में योर्कशायर में 1731-40 में 34,400 थान कपड़े बनाए गए जबकि 1791-1800 में यह उत्पादन बढ़कर 229,400 थान तक पहुंच गया। 1700 और 1790 के बीच छींट के कपड़े का उत्पादन 2.4 मिलियन गज से बढ़कर 25.9 मिलियन गज हो गया और कपड़ा उद्योग के निर्यात का मूल्य जो 1701 में 24,000 पाउंड था वह 1800 में बढ़कर 5,851,000 पाउंड हो गया।

9.5 बाजार और मांग

विदेशी और घरेलू बाजार में अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण के कारण अंग्रेजी वस्तुओं के उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। एम.डब्ल्यू लिप ने इसका उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में किया :

i) उत्तरी इंगलैंड और स्कॉटलैंड में 1740 के पहले लोगों की आय में वृद्धि होने के कारण उत्पादन को बढ़ावा मिला परंतु इस कारक पर जरूरत से ज्यादा बल देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस क्षेत्र में एक तिहाई लोग ही रहते थे। आय में वृद्धि होने से अनाजों की खरीददारी बढ़ी। विदेशों में भी थोड़ी बहुत मांग बढ़ी। इस अवधि में उत्तर की गरीब जनता पर खासा प्रभाव पड़ा। "उनकी आय तो बढ़ी परंतु उनके खर्चे भी बढ़े और बाजार में उत्पादित होने वाली वस्तुओं के वे ग्राहक बन गए।" जहां तक विदेशी व्यापार का

सवाल है देश के निर्यात में ऊन का स्थान नए उत्पाद् (कपड़ा, धातु से बने समान और अन्य तैयार वस्तुए) लेने लगे।

ii) 1740 के बाद वास्तविक आय की वृद्धि में कमी आई परंतु विदेशी बाजार में अपेक्षाकृत ज्यादा वृद्धि हुई, "जबकि सात वर्षीय युद्ध के बाद विदेशी मांग में आई कमी को संतुलित करने के लिए वास्तविक मजदूरी बढ़ाई गई। उतार-चढ़ाव की यह स्थिति 1780 के दशक में भी देखने को मिली, जब अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के बाद विदेशी बाजार सुधरा और बढ़ती हुई कीमतों का असर वास्तविक मजदूरी पर भी पड़ा। 1780-90 के दशक में गरीबों की वास्तविक मजदूरी तो घटी परंतु मध्य और उच्च वर्ग की क्रय शक्ति और विदेशी मांग में तेजी से वृद्धि हुई। फ्रांसीसी क्रांति युद्धों के बाद यह स्थिति पैदा हुई जब इंगलैंड ने फ्रांसीसी उत्पादों पर आश्रित बाजारों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। 1805-14 के नेपोलियन के युद्धों के दौरान इंगलैंड की स्थिति और भी मजबूत हो गयी। ब्रिटिश सरकार ने महाद्वीप के अन्य बन्दरगाहों का रास्ता रोक दिया। इससे ब्रिटेन को अमेरिका के बाजार पर नियंत्रण करने में और मदद मिली।

इसके साथ-साथ ब्रिटेन में गरीब तबकों की मांगों में वृद्धि होने से कृषि उत्पादों और परिवहन उद्योगों में वृद्धि हुई जिससे ये जुड़े हुए थे परंतु मध्य वर्ग की मांग का असर व्यापक पड़ा। यूरोपीय महाद्वीप के अन्य देशों के मुकाबले इंगलैंड में मध्य वर्ग की संख्या बढ़ी थी। इस विकास का एक लम्बा इतिहास है। परंतु इसने एक ऐसा बाजार निर्मित किया जहां केवल उत्तम वस्तुओं की नहीं बल्कि व्यापक पैमाने पर वस्तुओं की जरूरत पड़ी विशेषकर जो मशीनों के उत्पादन के अनुकूल थे।

हालांकि अठारहवीं शताब्दी के दौरान मुक्त व्यापार और लैसेज फेयर का उदय हुआ परंतु इस समय उत्पादकों द्वारा एक साथ मिलकर मूल्य और उत्पादन तय करने की प्रवृत्ति का भी विकास हुआ था। अतएव इस परिघटना से इस समय के औद्योगिक विकास को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। 1707 में हड्र्सफील्ड के नजदीक पुलिंग मिल इस बात का प्रमाण है कि वहां एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित कर काम करने का नियत समय और उत्पादों का न्यूनतम मूल्य तय किया जाता था। भट्ठी के लोहे के मालिक यह तय करते थे कि कोयले के लिए वे अधिकतम कितना भुगतान कर सकते थे। 1760 के दशक में ऐटमौसफेरिक ईंजन की मांग बढ़ने पर अब्राहम डर्बी और जॉन विल्किन्सन ने एक आम बिक्री नीति बनाई थी। लोहा मोड़नेवालों, चांदी की प्लेट बनाने वाले उत्पादकों, सान चढ़ानेवालों और औजार बनानेवालों के बीच भी तालमेल स्थापित था।

यह सही है कि इनमें से कुछ तालमेल तो अधिनियम द्वारा स्थापित किया गया था परंतु इससे यह तो स्पष्ट था ही कि विकास की परिस्थितियों को नियंत्रित करने में ब्रिटिश सरकार रुचि ले रही थी। इन निकायों को अपने सदस्यों और उनकी गतिविधियों को नियंत्रित करने का कानूनी अधिकार प्राप्त था। हैलमशायर की कर्लरस कम्पनी और फ्रेमवर्क निटर्स कम्पनी में ऐसा ही परिवेश कार्नवाल था और डर्बीशायर के खनन उद्योगों और डीन के वन में स्थापित पुराने संगठनों को भी इसी प्रकार के अधिकार मिले हुए थे। परंतु उन्नसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय स्तर पर स्वयं उत्पादकों ने अपने प्रयास से यह तालमेल स्थापित किया। टी.एस.एशटन के अनुसार: "1785 में कॉर्निश मेटल कम्पनी और ऐंगलेसे कम्पनी ने मिलजुलकर तांबे के बाजार को आपस में बांट लिया। इसी समय कराधान के खतरे और विदेश से आने वाली प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने के लिए लोहे के मालिकों, बर्तन बनाने वालों, बर्मिंघम के उत्पादक और यहां तक कि निजी तौर पर सूत बनाने वाले जेनरल चैम्बर ऑफ मैनुफक्चरर्स के तहत इकट्ठे हुए। इनके बीच कुछ छिपा समझौता और आपसी समझ भी हो सकता है परंतु इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं मिला है। अभी तक उद्योगपति और जनता अर्थशास्त्रियों की इस शिक्षा को आत्मसात नहीं कर पाए थे कि उत्पादकों के बीच प्रतिस्पर्द्धा होने से लाभ होता है बल्कि अभी तक यही धारणा कायम थी कि प्रतियोगिता बढ़ने से गुणवत्ता में कमी आती है। अभी भी इस समय के प्रभावशाली लोग उत्पादन वृद्धि और न्यूनतम कीमत की अपेक्षा व्यवस्थित व्यापार को ज्यादा उपयोगी मानते थे।''

9.5.1 राज्य की भूमिका

हालांकि तालमेल स्थापित करने में सरकार की भूमिका बहुत ज्यादा नहीं थी परंतु इस समय की अर्थव्यवस्था के विकास में इसका योगदान महत्वपूर्ण था। चैथम स्थित शाही शस्त्रागार और ग्रीनविच स्थित अन्य इकाइयों जैसे बड़े उत्पादन केंद्रों पर सरकार का नियंत्रण था। उन्होंने जटिल औद्योगिक संगठन का नमूना पेश किया और कई लोगों को रोजगार प्रदान किया जबकि अभावग्रस्तता को रोकने के लिए स्थानीय प्राधिकारों ने छोटी इकाइयां अपने नियंत्रण में ले ली और देख रेख के लिए इसे ठेकेदारों के जिम्मे सौंप दिया। लौह उद्योग (विल्किन्सन, वोर्कर्स और कैरोन पार्टनर्स जैसे फर्म) को युद्ध सामग्री के लिए सरकार से भारी मात्रा में प्राप्त

आदेशमांग का विशेष महत्व था ; ऊन और कपड़ा उद्योगों पर भी यह बात लागू होती थी जो वर्दी, कम्बल आदि से संबंधित सरकारी आदेशों की पूर्ति करते थे। अन्यत्र उत्पाद् शुल्क (उत्पाद् के लिए लाइसेंस) की मात्रा से भी विभिन्न क्षेत्रों की गतिविधियां निर्धारित होती थीं।

जहाजरानी उद्योग के लिए नेविगेशन ऐक्ट (1660 में पारित) और इससे जुड़े विधान महत्वपूर्ण थे क्योंकि इसके अनुसार उपनिवेशों से व्यापार करते समय और एशिया, अफ्रिका और अमेरिका से सामान ढोने के लिए केवल इंगलिश जहाजों का ही इस्तेमाल किया जा सकता था। इससे लकड़ी, नौसेना और शराब (वाइन) के व्यापार को भी फायदा था। विदेशी जहाजों पर सामान भेजने पर "विदेशी शुल्क" (एलियन ड्यूटी) लगता था और सरकार संरक्षणवादी नीति अपनाती थी (1698 में आयात शुल्क 10% था जो 1698 में बढ़कर 15%, 1704 में 20%, 1747 में 25%, 1759 में 30% और 1782 में 35% हो गया)। कई वस्तुओं पर विशेष शुल्क लगाए गए। जहां तक कृषि उत्पादों का सवाल है उसमें मक्के के आयात पर लगाया गया शुल्क सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। इस आयात शुल्क के लिए कार्न लॉ (मक्का कानून; 1670 में पारित) बनाया गया। यह घरेलू मूल्य से 25% ज्यादा होता था। जब कीमत अधिक होती थी तो यह अन्तर कम हो जाता था।

कैनिंग और वेलिंगटन के नेतृत्व में टोरी शासन के दौरान 1820 के दशक में इंगलैंड के संरक्षणवादी शासन में थोड़ा ढीलापन आया जब बोर्ड ऑफ ट्रेड में हसकिसन ने कई शुल्क या तो कम कर दिए या समाप्त कर दिए। हालांकि इस ढीलेपन के कारण कई प्रमुख सामाजिक, राजनैतिक और मौद्रिक समस्याएं पैदा हुई जिसका प्रतिफलन कॉर्न लॉ के उन्मूलन के लिए हुए संघर्ष में प्रतिबिंबित हुआ (जो 1846 में जाकर समाप्त हुआ)। 1830 के दशक के दूसरी विग सरकार के कल्याणकारी विधान (खासकर 1834 के पूअर लॉ अर्थात गरीबों कि लिए कानून) से यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है कि यहां तक कि उदारवादियों और ओवेन शैडविक जैसे उपयोगितावादियों से युक्त दल भी लैसेज फेयर पर बात करने के लिए तैयार थे और सरकार के द्वारा ऐसे निर्णय लिए जाने से सहमत थे जो "अधिक लोगों की ज्यादा खुशी" को थोड़े उद्यमियों के लोभ से बचा सकें। यह ठीक है कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में मुक्त व्यापार के परिवेश में इंगलैंड का औद्योगीकरण हुआ परंतु यह भी उतना ही सही है कि औद्योगिक कांति के समय इसके अस्तित्व ने इसका महत्व बढ़ा दिया।

9.6 औद्योगिक कांति की पुनर्स्थापना

ब्रिटेन में औद्योगिक पूंजीवाद के उदय और विकास से संबंधित जिन प्रश्नों पर अभी हमने विचार किया है उसे मैक्सिन बर्ग और पैट हडसन ने बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। औद्योगिक कांति को 'पुनर्स्थापित' करने के प्रयत्न में उन्होंने इन सवालों पर विचार किया है।

9.6.1 ग्रेजुअलिस्ट आरग्यूमेंट और इसके आलोचक

i) 'ग्रेजुअलिस्ट'' विचारकों ने एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। इनके अनुसार "नए आंकड़ों के सहारे यह दिखाया गया कि औद्योगिक उत्पादन और सकल घरेलू उत्पाद में धीरे-धीरे वृद्धि हुई।" तर्क प्रस्तुत किया गया कि "उत्पादकता धीरे-धीरे बढ़ी ; स्थिर पूंजी अनुपात, बचत और निवेश धीरे-धीरे ही परिवर्तित हुए ; 1830 के पहले मजदूरों का जीवन स्तर और उनका व्यक्तिगत उपभोग कमोबेश अछूता रहा और इसमें कमी तो नहीं ही आई।" इन तथ्यों से यह पता चलता है कि "औद्योगिक और सामाजिक बदलाव के व्यापक आर्थिक पैमाने मौजूद नहीं थे"; इस प्रकार, "औद्योगिक कांति की अवधारणा को लगभग खारिज कर दिया गया और यह स्थापित किया गया कि यह कृषि से गैर कृषि की ओर जाने के कारण रोजगार में ढांचागत परिवर्तन हुआ था और यह परिवर्तन तुरंत नहीं बल्कि धीरे-धीरे हुआ।"

ii) "अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक विरोध और परिवर्तनवाद (रैडिकलिज्म) की निरंतरता पर बल दिया गया"। "अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जनसंख्या में हुई बढ़ोत्तरी में भी इसी निरंतरता पर बल दिया गया और यह कहा गया कि यह प्रवृत्ति 1840 के दशक तक कायम रही"; "सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास लेखन में कहा गया कि इंगलिश औद्योगिक बुर्जुआ राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व पाने में असफल रहे....."

एन.एफ.आर. काट्स के लेखन और कैम्ब्रिज स्कूल के जनसंख्या संबंधी अध्ययन (ई.ए.रिंगले और आर. एस.शेफिल्ड के लेखन, खासकर **द पोपुलेशन हिस्ट्री ऑफ इंगलैंड**, 1541-1871) 'ग्रेजुअलिस्ट' विचारधारा का समर्थन करने वाले प्रमुख साहित्य है।

बर्ग और हडसन ने ग्रेजुअलिस्ट विचारकों के तर्क और आंकड़ों की कड़ी आलोचना करते हुए लिखा है कि:

क) काट्स ने जिन आंकड़ों का हवाला दिया है उसमें औद्योगिक मजदूर के रूप में बच्चों और महिलाओं की भूमिका को नकार दिया गया है। उनकी मजदूरी पुरूषों की मजदूरी से कम थी और उपकरण भी इस तरह तैयार किए गए थे कि पुरुष इस पर आसानी से काम कर सकें : "औद्योगिक क्रांति में बाल मजदूरी के योगदान और महत्व को उजागर किया गया। कपड़ा उद्योग में बाल श्रमिकों से काम करवाया जाता था और मशीन भी उनके अनुरूप ही बनाए जाते थे। स्पीनिंग जेनी इसका ज्वलंत उदाहरण है। आरंभ में जो देशी जेनी बनाई गई थी जिसमें चक्के क्षैतिज रूप में लगे हुए थे जिससे 9 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक के बच्चे को काम करने में सुविधा होती थी। ऊन, रेशम और सूती उद्योग के मशीनीकरण और कारखाना संगठन के आरंभिक चरण में मशीन की डिजाइन बनाते समय बाल श्रमिकों का ही ध्यान रखा जाता था, यह मान लिया गया था कि बाल श्रमिकों को ध्यान में रखकर ही कपड़ा उद्योग में काम में लाई जानेवाली मशीन बनाई जानी चाहिए।"

ख) काट्स ने अपने आंकड़ों के लिए जिन उद्योगों का नमूने के तौर पर हवाला दिया उसमें भोजन तैयार करने, धातु के समान, शराब के कारखाने, शीशा, फर्नीचर, कोच निर्माण, रसायन और इंजिनीयरिंग में होने वाले परिवर्तन को कम करके आंका। इस प्रकार किसी खास क्षेत्र में परिवर्तन के प्रभाव को कम करके आंकने की कोशिश की गई। जरूरत पूरे परिवेश और माहौल को समग्रता से देखने की है क्योंकि इसी से परिवर्तन का 'क्रांतिकारी' परिदृश्य स्पष्टता से उभर कर सामने आ सकेगा।

अतएव बर्ग और हडसन का यह मानना है कि यदि महिलाओं और बाल श्रमिकों के आंकड़ों को समुचित रूप से शामिल कर लिया जाए तो धीमी उत्पादकता गति संबंधी 'ग्रेजुअलिस्ट' अवधारणा धाराशाई हो जाएगी। हालांकि इसे औद्योगीकरण की एक खास विशेषता बताई गई थी और यह भी बताया गया था कि तीव्र और 'क्रांतिकारी' उन्नति के लिए यह जरूरी था।

9.7 1840 के बाद औद्योगिक पूंजीवाद में आई मजबूती

उपर्युक्त वर्णित अवधि में हुई वृद्धि के बाद उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ब्रिटेन में औद्योगिक पूंजीवाद मजबूत हुआ। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर रेलवे के निर्माण में हिस्सा लेकर भी अंशत: यही कार्य किया गया। परंतु 1870 के दशक के बाद यूरोप और संयुक्त राज्यों में कपड़ा उद्योग और इस्पात उत्पादन के बढ़ते महत्व के कारण ब्रिटिश उत्पादकों को कठिन प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ा। यहीं से 'ग्रेट डिप्रेसन (भयानक मंदी) के दौर की शुरुआत मानी जाती है। इस मंदी से कृषि और उद्योग दोनों प्रभावित हुए। 1870 के दशक से इंगलैंड के बाजारों में उत्तर अमेरिका से सस्ता अनाज आने से और नए औद्योगिकृत देशों से आने वाली प्रतिस्पर्द्धा के कारण ऐसा हुआ। चारों ओर नई-नई खोजें हो रहीं थीं और ब्रिटेन अपनी मौजूदा अधिसंरचना को तदनुरूप बदलने में दिक्कत महसूस कर रहा था और कई मामलों में तो ये खोजें उनके प्रतिस्पर्द्धियों के लिए ज्यादा अनुकूल साबित हो गईं (जैसे इस्पात बनाने की थॉमस गिलक्राइस्ट प्रक्रिया)। हालांकि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्पादन स्तर ऊंचा था परंतु शताब्दी के आरंभ की स्थिति अब नहीं रह गई थी और उसका औद्योगीकरण पर एकाधिकार नहीं रह गया था। विद्युत और रसायनिक उत्पादों में जर्मनी और संयुक्त राज्य उसके मुकाबले तेजी से आगे बढ़ गए थे।

9.7.1 रेलवे का महत्व

1825 में इंगलैंड में पहला डार्लिंगटन-स्टॉकटन रेल की स्थापना की गई और उसके बाद वाष्प चलित ईंजन में लगातार विकास होता रहा। इससे ब्रिटेन का लोहा और कोयला उद्योग काफी प्रभावित हुआ जहां से कच्चा माल, लोहे की पटरी आदि की आपूर्ति होती थी। रेलवे ने 'एकौनोमिज ऑफ स्केल' में भी योगदान दिया क्योंकि इससे कई उद्योगों के परिवहन समय में कमी आई और सामान ले जाने के खर्चे में भी काफी फर्क पड़ा (इसके पहले सड़क, नहर, और जल मार्गों से यातायात होता था)। इंगलैंड में ही नहीं बल्कि अमेरिका, भारत, यूरोप में भी रेलवे लाइन बनाई गई और इससे ब्रिटेन के उद्योग को काफी समर्थन मिला और उनके निर्यात में तीव्र वृद्धि आई। उदाहरण के लिए 1830-50 के दौरान डॉलेस आयरन कम्पनी ने 12 ब्रिटिश कम्पनियों और 1 विदेशी कम्पनियों के साथ व्यापार किया। मांग का तुलनात्मक पैमाना नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :

प्रतिदशक विश्व में लगने वाली लाइनें (मील में)

वर्ष	ब्रिटेन (यूके)	यूरोप, यू.के सहित	अमेरिका	विश्व के अन्य भाग
1840-50	6000	13000	7000	-
1850-60	4000	17000	24000	1000
1860-70	5000	31000	24000	7000
1870-80	2000	39000	51000	12000

(स्रोत: ई.जे हॉब्सबॉम, **इंडस्ट्री एंड एम्पायर** पृष्ठ 115)

हॉब्सबॉम ने बताया कि जिस समय निर्माण कार्य पूरी तेजी पर था (1846-8) उस समय ब्रिटिश रेलवे उद्योग में लगभग 200 मीलियन पाउंड निवेशित था और इसमें लगभग 200,000 लोग प्रत्यक्षत: कार्यरत थे। इसके कारण 1835-1845 के बीच देश के लोहा उत्पादन में लगभग 100% की वृद्धि हुई। 1840 के दशक में यदि औद्योगिक पूंजीवाद की अर्थव्यवस्था के लिए कपड़ा उद्योग निर्णायक साबित हुआ तो उसके बाद कोयला ओर लोहे की बारी आई। नीचे उद्योगों में हुई उत्पादन वृद्धि के आंकड़े दिए गए हैं और जैसा कि हॉब्सबॉम ने बताया है केवल कोयला क्षेत्र में रोजगार करने वालों की संख्या 1850 में 200,000 थी जो 1880 में बढ़कर 500,000 हो गई।

लौह-पिंड इस्पात और कोयला का उत्पादन ('000 टन)

वर्ष	लौह-पिंड	इस्पात	कोयला
1850	2250	49	49,000
1880	7750	1440	1,47,000

9.7.2 अभिनव परिवर्तन

लौह उद्योग के लिए लोहे से इस्पात बनाने की प्रक्रिया में हुए विकास का विशेष महत्व है क्योंकि लोहे की अपेक्षा इस्पात ज्यादा परिष्कृत और मजबूत होता है। सबसे पहले 1856 में हेनरी बेसेमर ने लोहे को इस्पात में ढालने की विधि निकाली जिसमें लोहे में कार्बन तत्व कम करके स्टील बनाया जाता था। इस प्रक्रिया को सर विलियम सीमेन्स और पियरे मार्टिन (1866) ने और भी सुधारा जिसे ओपेन हर्थ प्रोसेस के नाम से जाना जाता है। 1878 में सिडनी थॉमस और पी.सी. गिलक्राइस्ट ने कच्चे लोहे में फॉस्फोरस मिलाकर इस्पात बनाने की प्रवि विकसित की। इस प्रक्रिया का उपयोग इंगलैंड से ज्यादा यूरोपीय उद्योगों के लिए किया जाता था।
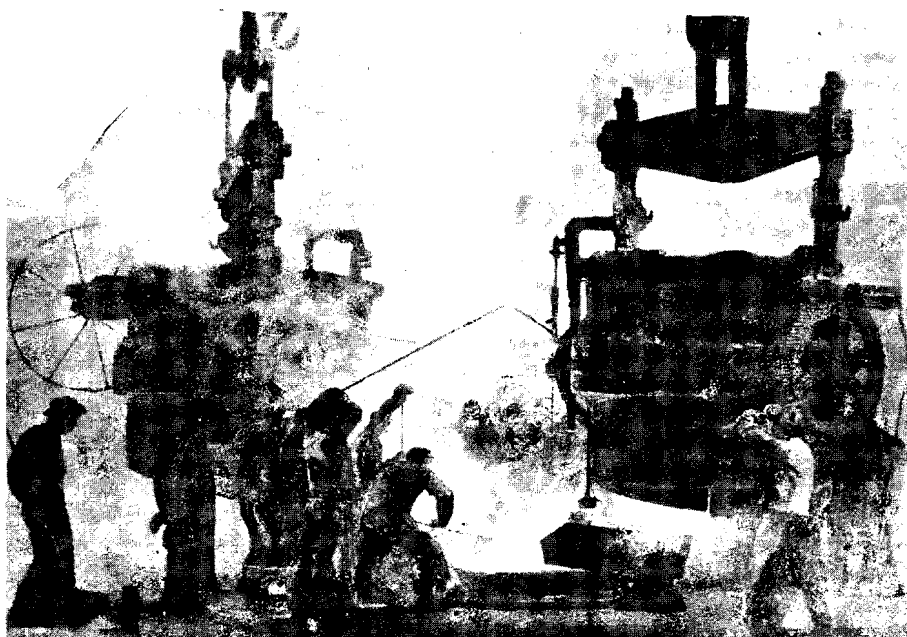
चित्र 3 : इस्पात बनाने का एक बेसेमर संयंत्र, 1900

9.7.3 पूंजी

औद्योगिक क्रांति के आरंभिक चरण के दौरान इकट्ठी की गई विशाल पूंजी के परिणामस्वरूप इस अवधि के अधिकांश उद्योगों का विस्तार हुआ। हॉब्सबॉम का मानना है कि 1840 के दशक तक ब्रिटिश उद्योग में निवेश करने के लिए लगभग 60 मिलियन पौंड पूंजी उपलब्ध थी (संभवतः पुनर्निवेश की संभावनाओं पर विचार करने के बाद)। यह पूंजी सरकारी क्षेत्रों में ही निवेशित की जा सकती थी जिसका उत्पादन में हिस्सा लगभग 3.4% था। यह पूंजी रेलवे में लगाई गई (स्टॉकटॉन डार्लिंगटन ने 1839-41 में निवेश का लाभांश 15% कमाया और लिवरपूल-मैचैस्टर ने 1830 में 10% लाभ पाया)। एक बार इस प्रक्रिया के शुरू होते ही निवेशित की जाने वाली पूंजी का आकार बढ़ने लगा और 1870 तक आते-आते विदेशों में लगभग 700 मीलियन पाउंड निवेशित किया जा चुका था (इसमें से लगभग 25% संयुक्त राज्यों में निवेशित किया गया था)। इस निवेश के कारण एक ऐसी पूंजीगत गतिविधि शुरू हुई जो केवल उद्योग तक ही सीमित नहीं थी। 1840 के दशक में रेलवे निवेश के दौर में मैनचेस्टर, लिवरपुल और ग्लास्गो में प्रभुत्व स्टॉक एक्सचेंज उभर कर सामने आए।

9.7.4 प्रतियोगिता और औपनिवेशिक बाजार

1860 के दशक से यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं और संयुक्त राज्यों की अर्थव्यवस्था की ओर से प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटिश औद्योगिक पूंजीवाद में गिरावट आई। इसके परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते-होते अल्पविकसित और औपनिवेशिक बाजारों का महत्व बढ़ गया।

इस संदर्भ में एरिक हॉब्सबॉम बिलकुल सही फर्माते हैं कि समय के साथ-साथ ब्रिटिश अर्थव्यवस्था (और अन्य यूरोपीय व्यवस्थाओं) के लिए औपनिवेशिक बाजार और अल्प विकसित क्षेत्रों के बाजारों का महत्व बढ़ गया क्योंकि यहां आसानी से और कम से कम प्रतियोगिता का सामना कर सामान बेचा जा सकता था। यूरोप में ब्रिटिश प्रौद्योगिकी को तेजी से अपना लिया गया और इसकी वजह से ब्रिटिश उत्पादकों को प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा। औपनिवेशिक और अल्प विकसित देशों में ऐसा करना बहुत आसान नहीं था।

संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय बाजारों में प्रतियोगिता का सामना करने के कारण ब्रिटिश व्यापार अन्य बाजारों की ओर मुड़ा। जो नीचे दिए गए आंकड़े से स्पष्ट है :

तैयार कपड़ा का निर्यात (मिलियन गज) (कुल का%)

वर्ष	यूरोप/संयुक्त राज्य अमेरिका	अल्प विकसित देश	अन्य
1820	60.4	31.8	7.8
1840	29.5	66.7	3.8
1860	19.0	73.3	7.7
1880	9.8	82.0	8.2
1990	7.1	86.3	6.6

(**स्रोत** : ई.जे हॉब्सबॉम, **इंडस्ट्री एंड एम्पायर**, पृष्ठ 146)

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन में बाजार के रूप में अर्जेंटिना, ब्राजील, भारत और सुदूर पूर्व के देशों का महत्व बढ़ गया। भारत में औपनिवेशिक नियंत्रण बढ़ाने के लिए सरकार ने ब्रिटिश उत्पादकों को उनकी शर्तों के अनुरूप भारत में रेलवे निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया।

बोध प्रश्न 2

1) इंगलैंड में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान किस प्रकार के उत्पादन उद्यम मौजूद थे ?

....

....

....

....

....

....

....

....

2) इंगलैंड में औद्योगिक वस्तुओं के बाजार में वृद्धि होने का एकमात्र कारक क्या आय में हुई वृद्धि थी ?

....

....

....

....

....

....

3) बर्ग और हडसन ने 'ग्रेजुएलिस्ट' मत की क्या आलोचना की है ?

....

....

....

....

....

....

....

....

4) 1840 के बाद इंगलैंड में औद्यौगिक पूंजीवाद में क्या प्रमुख परिवर्तन हुए ? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

9.8 सारांश

इस इकाई में आपने निम्नलिखित पक्षों का अध्ययन किया :

- आपने इस पक्ष की जानकारी प्राप्त की कि अठारहवीं और आरंभिक उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान इंगलैंड में औद्योगिक पूंजीवाद ने क्या निर्णायक कदम उठाए।
- औद्योगिक पूंजी के विकास में कृषि क्रांति बहुत महत्वपूर्ण थी। इसने खाद्यान्नों की आपूर्ति बढ़ाई, कृषि से प्राप्त पूंजी उद्योगों के लिए उपलब्ध कराई तथा घेरेबंदी की व्यवस्था के फलस्वरूप उद्योगों के लिए ज्यादा श्रमिक उपलब्ध कराए।
- इस युग में कृषि उत्पाद् में वृद्धि होने से जनसंख्या में भी वृद्धि हुई और इस जनसंख्या ने इस युग की श्रम की मांग पूरी की।
- बदलते सामाजिक और आर्थिक परिवेश के कारण उद्यमियों को पूंजी इकट्ठी करने में मदद मिली। अठारहवीं और आरंभिक उन्नीसवीं शताब्दी में हुई नई खोजों के कारण उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई।

- 1740 के पहले आय में हुई वृद्धि और मध्य वर्ग के उदय तथा 1740 के बाद विदेशी बाजार के विस्तार से औद्योगिक पूंजीवाद के लिए बाजार का क्षेत्र व्यापक हुआ।
- 'ग्रेजुअलिस्ट' विचारकों का मानना था कि जनसंख्या का विकास धीरे-धीरे हुआ और औद्योगिक उत्पादकता भी धीमी गति से आगे बढ़ी। इस सिद्धांत की आलोचना इस आधार पर की गई क्योंकि इसमें महिलाओं और बाल श्रमिकों पर विचार नहीं किया गया था और उभरते हुए औद्योगीकरण पर विचार करते समय सभी क्षेत्रों पर ध्यान नहीं दिया गया था।
- 1870 के दशक के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी जैसे नए औद्योगिक राष्ट्रों के उदय के बाद ब्रिटिश पूंजीवाद को, क) अधिक प्रतिस्पर्द्धापूर्ण अन्तरराष्ट्रीय परिवेश का सामना करना पड़ा, खद्ध अधिक उत्पादान की अर्थव्यवस्था ('इकोनोमिज ऑफ स्केल') की शुरुआत हुई और, गद्ध विदेशों में पूंजी का निर्यात किया गया।

9.9 शब्दावली

जनसांख्यिकी : वह विज्ञान जिसमें जनसंख्या की विविध प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है। इसमें जन्मदर, मृत्युदर और जनसंख्या में होने वाले उतार चढ़ाव को शामिल किया जाता है।

एनक्लेव : इसका उपयोग यहा अर्थव्यवस्था के ऐसे क्षेत्रों के लिए किया गया है जहां औद्योगिक विकास होता है या नहीं होता है

लेसेजफेयर : प्रतिबंध मुक्त व्यापार

पुटिंग आउट : इस व्यवस्था के अन्तर्गत उद्यमी कारीगरों और शिल्पियों को अग्रिम तौर पर पूंजी और कच्चा माल दे दिया करते थे । शिल्पी अपने घर में काम करते थे और उद्यमियों को माल तैयार कर उपलब्ध कराते थे।

विश्व व्यवस्था : कुछ विद्वानों के अनुसार इस शब्दावली के द्वारा यह बताया गया है कि किस प्रकार विश्व व्यवस्था कायम करने के लिए औद्योगिक उत्पादन, विपणन और उपभोग को विश्व व्यापार के साथ जोड़ दिया जाता है।

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 9.2 इस प्रश्न का उत्तर देते समय बल इस बात पर होना चाहिए कि किसी खास युग को जरूरत से ज्यादा महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।
2) देखिए भाग 9.3 और उपभाग 9.3.1 आप इसमें वाणिज्यिकरण की भूमिका पर विचार कर सकते हैं।
3) देखिए उपभाग 9.3.2 आप इसमें यह बता सकते हैं कि स्त्रोतों की कमी के कारण इतिहासकारों के हाथ किस प्रकार बंधे हुए हैं।
4) देखिए उपभाग 9.3.3 आप इसमें यह बता सकते हैं कि किस प्रकार उद्यमियों ने आपस में मिलकर अथवा न्यासों या अन्य व्यापारियों, आदि से ऋण उगाही की।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 9.4 आप इस प्रश्न का उत्तर देते समय बताइए कि पुटिंग आउट सिस्टम में कारीगर अपने घर पर अपने ही औजारों से काम करता था और उद्यमी उसे पूंजी उपलब्ध कराते थे, आदि।
2) देखिए भाग 9.5 आप इसमें विदेशों में उपलब्ध मांग जैसे कारकों की भी चर्चा कर सकते हैं।
3) देखिए उपभाग 9.6.1 इसमें आप बताइए कि किस प्रकार 'ग्रेजुअलिस्ट' विचारकों ने महिलाओं और बाल श्रमिकों की भूमिका को नजरअंदाज किया।
4) देखिए भाग 9.7 इंगलैंड का अब औद्योगीकरण पर एकाधिकार नहीं रह गया था। इस संदर्भ में ब्रिटिश औद्योगीकरण में आने वाले बदलावों का परीक्षण आप कर सकते हैं।

इकाई 10 फ्रांस और जर्मनी में औद्योगिक पूंजीवाद

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद :

- इंगलैंड की तुलना में जर्मनी और फ्रांस में एक अलग प्रकार के औद्योगीकरण का विकास निरूपित कर सकेंगे।
- जान सकेंगे कि, फ्रांस और जर्मनी में कृषि का वाणिज्यिकरण होने के बावजूद किसान जमीन से ही बंधे रहे जिसके कारण उद्योग के लिए पर्याप्त श्रमिक उपलब्ध नहीं हो सके, और
- यह बता सकेंगे, कि फ्रांस और जर्मनी का उदीयमान औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग राज्य पर जबरदस्त रूप से निर्भर था।

10.1 प्रस्तावना

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस और जर्मनी में औद्योगिक पूंजीवाद का विकास प्रत्यक्षतः इंगलैंड के औद्योगिक पूंजीवाद की प्रकृति से प्रभावित था। परंतु अपनी गहनता और अन्य कारकों के कारण यहां विकास दूसरे ढंग से हुआ। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ के इंगलैंड की ही तरह अठारहवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांसीसी सम्राट के राज्य-क्षेत्रों और जर्मन राज्यों में वाणिज्यिक गतिविधि के प्रमुख क्षेत्र स्थापित हो चुके थे। स्पेन, इटली,

नीदरलैंड में भी यही स्थिति थी। पिछली तीन शताब्दियों में विश्व स्तर पर शुरू हुई वाणिज्यिक गतिविधियों को इन वाणिज्यिक क्षेत्रों से जोड़कर देखना होगा। इसके अलावा भौतिक जीवन की जटिलताओं को भी ध्यान में रखना होगा जिसके कारण मांग बढ़ी और उनकी पूर्ति पूंजीवादी ढर्रे से की गई। हालांकि कई कारणों से 1740-1840 में इन वाणिज्यिक क्षेत्रों में लंदन, लीवरपूल, ब्रिस्टल और मैनचेस्टर जैसा औद्योगिक पूंजीवाद विकसित नहीं हो सका। हालांकि, फ्रांस नीदरलैंड, राइनलैंड, जर्मनी आदि में उसी प्रकार की कृषि विकसित थी जैसी इंगलैंड में।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। कई दशक पहले एलेक्जेंडर गेरशेनक्रोन ने वह पद्धति विकसित करने की कोशिश की जिसके द्वारा 'पिछड़ेपन' को दूर किया जा सकता था। उनके अनुसार यूरोप के 'पिछड़ेपन' का मुख्य कारण यह था कि राज्य का दखल और कुछ विशेष प्रकार के एजेंटों—पहले राज्य और फिर बाद में प्रमुख बैंक — का हस्तक्षेप पूंजीवाद के विकास में बाधा उत्पन्न कर रहा था। काल्पनिक होने के साथ-साथ गेरशेनक्रोन पद्धति में महाद्वीपीय औद्योगीकरण के सभी पक्षों पर गौर नहीं किया गया और न ही उनके महत्व को सही ढंग से आंका गया। निश्चित रूप से यूरोपीय औद्योगीकरण के लिए एक खास मॉडल के रूप में इसका महत्व है और यहीं से महाद्वीप में औद्योगिक पूंजीवाद के विकास संबंधी विचार-विमर्श का सिरा पकड़ा जा सकता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में औद्योगिक पूंजीवाद पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था परंतु इसके लिए उसे लंबी प्रक्रिया से गुजरना पड़ा। इसलिए केवल इसी बात पर विचार नहीं करना चाहिए कि यूरोपीय राज्यों ने 'पिछड़ेपन' या अक्षमता के प्रति क्या रवैया अपनाया बल्कि औद्योगिक पूंजीवाद के विकास को एक वृहद परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

10.2 फ्रांस

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान फ्रांस की स्थिति इंगलैंड से भिन्न थी इसलिए फ्रांस में औद्योगिक पूंजीवाद का विकास भी अलग ढंग से हुआ। 18वीं शताब्दी के दौरान जब फ्रांस औद्योगिक पूंजीवाद की ओर बढ़ने के लिए तैयार हो रहा था उस समय वहां 'पुरातन-काल' (एनसिएन रेजिम) का माहौल था अर्थात परम्परागत मान्यताओं और रीति रिवाज का बोलबाला था जो निश्चित रूप से उत्पादकता और वाणिज्य व्यापार के अनुकूल नहीं था। इसके अलावा फ्रांस में अभी भी 'कृषक' कृषि का प्रचलन था जो क्रांति और नेपोलियन (1789-1815) के बावजूद कायम था। इसमें व्यापार और वाणिज्य को नहीं बल्कि परम्परा और जीवन जीने की इच्छा को महत्व दिया जाता था। इसके अलावा यहां कोयला और लोहा जैसे संसाधन भी नहीं थे जिसके कारण इंगलैंड में औद्योगिक पूंजीवाद का प्रभाव तेजी से फैला था।

आर्थिक इतिहासकार टॉम केम्प के अनुसार इन परिस्थितियों में औद्योगिक पूंजीवाद के धीमे विकास को फ्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग की प्रकृति से जोड़ कर देखा जाना चाहिए। यह बुर्जुआ वर्ग खुद काम न करके अपने खेतों को किराए पर दे देता था और उनका पेशेवर और नौकरशाही रवैया बिलकुल खास तरह का था। केम्प का मानना है कि क्रांतिकारी और उत्तर क्रांतिकारी युग में इस वर्ग का प्रभाव बढ़ने से फ्रांस में औद्योगिक पूंजीवाद का विकास भी धीमी गति से हुआ। क्रांतिकारी भूमि बंदोबस्ती होने से जमीन समृद्ध लोगों के पास संकेंद्रित नहीं हुई और खेतों के छोटे-छोटे मालिक बरकरार रहे। इससे उद्योगों के लिए मजदूर उपलब्ध नहीं हो सके और छोटे-छोटे शहरों में पिछड़ी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करते हुए छोटे-छोटे कार्य केंद्र (कारखाने) काम करते रहे।

10.3 अठारहवीं शताब्दी की पृष्ठभूमि

इंगलैंड की तरह फ्रांसीसी सम्राट के राज्य-क्षेत्रों में जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई (1700-1770) के बीच देश में जनसंख्या 20 मीलियन से बढ़कर 25 मीलियन हो गई)। इस दौरान वाणिज्यिक खेती में लोगों की रुचि बढ़ी और औद्योगिक उत्पादन के कई प्रमुख केंद्र बने। परंतु यहां विकास धीमी गति से हुआ। नई खोजें कम सामने आईं और उनका प्रयोग भी ज्यादा नहीं हुआ। इन सब पर हम आगे विस्तृत विचार करने जा रहे हैं।

10.3.1 कृषि

इस उपभाग में हम कृषि विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की चर्चा करने जा रहे हैं। इस समय अधिकांश भूमि भूमिपतियों के हाथ में थी जो शक्तिशाली कुलीनवर्ग के सदस्य भी होते थे और कभी छोटे जंमीदार भी हो सकते थे। उनकी भू सम्पदा दो हिस्सों में विभक्त थी। एक पर कुलीनवर्ग भाड़े के मजदूरों से सीधे खेती करवाते थे और दूसरा हिस्सा उनके 'किसानों' के हाथ में था। वे खेतों के मालिक नहीं थे परंतु शताब्दियों से इस भू सम्पदा के साथ जुड़े हुए थे। कइयों को काश्तकारी अधिकार मिला हुआ था जिसके कारण वे व्यावहारिक तौर पर अपने खेत के मालिक ही थे (खासतौर पर अल्पाइन और पाइरेनिस क्षेत्रों में)। दूसरे मामलों में किसान भूमिपतियों को निर्धारित किराया नगद देता था। मेनमॉर्टेबल्स के नाम से जाने जानेवाले किसान अपनी भूमि केवल अपने वंशजों को दे सकते थे, इन्हें काश्तकारी अधिकार प्राप्त था और ये बड़े ताकतवर किसान थे। देश के अधिकांश उत्तरी हिस्सो (कौन्टेटिन उपमहाद्वीप के दक्षिण से मेन, टोरेन, ओरलिएनाइस, निवेरनाइस, बेरी होते हुए दक्षिण बरगंडी तक) में खुली खेती होती थी, हालांकि फसल लगाने की प्रक्रिया अलग-अलग थी। इन क्षेत्रों के दक्षिण में अधिकांश खेतों में बाड़े लगे हुए थे (किसानों और भूमिपतियों दोनों के खेतों में), कुछ ग्रामीण इलाके दूरस्थ स्थित थे परंतु जीवन-यापन के लिए वहां पर्याप्त उपज हो जाती थी। गैसकोनी और गिने जैसे तटीय इलाकों तथा सेंट्रल मेसिफ में जर्मीन अनुपजाऊ थी। दूसरी ओर गारोने घाटी की जमीन काफी उपजाऊ थी और उसका वाणिज्यिक उपयोग हो रहा था।

कई क्षेत्रों में और खासकर उत्तर पूर्व अर्थात फ्रेंच लैंडर्स में खेती की दिशा में कई विकास हुए (जहां हौलेंड, बेल्जियम और इंगलैंड में हुए कृषि संबंधी सुधारों का तेजी से प्रसार हुआ)। इंगलैंड में मौजूद "विकसित प्रविधियों" की जानकारी उन्हें डुहामेल डू मौन्सेयू के छः खडों में (1751-60 में प्रकाशित) कृषि सुधार संबंधी लेख जैसे प्रकाशनों, सस्ते साहित्यों और एक दूसरे से सुनकर प्राप्त हुई। प्रांतीय फ्रांस के शिक्षित समाजों (शिक्षाविदों) के बीच यह सूचना एक विचार-विमर्श का विषय थी; और लियोसीन के अधीक्षक, टरबोट जैसे प्रमुख शाही अधिकारियों तथा अन्य फिजियोक्रेट्स, जो कृषि के विकास में रुचि रखते थे, ने इन सूचनाओं का खूब प्रचार-प्रसार किया।

इन 'विकसित' प्रौद्योगिकियों के प्रयोग से 1725-1789 के बीच उत्पादन में काफी बढ़ोत्तरी हुई (लगभग 40%)। ले रॉय लेडूरी का मानना था कि कृषि में हुई इस वृद्धि का प्रमुख कारण अनजुती जमीनों पर अनाज उपजाना था, वे जमीन का एक टुकड़ा भी अनजुता नहीं छोड़ना चाहते थे। नई तकनीकों के आगमन से उनकी लोकप्रियता और भी बढ़ी। इस प्रकार की खेती से अच्छी जमीनों पर खाद्यान्न उपजाने का दबाव कम हुआ और अब वहां इन जमीनों पर उच्च कोटि के अनाज और अंगूर उपजाया जा सकता था जिसकी फ्रांस में परम्परागत तरीके से खेती की जाती थी। इस कार्य से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वाणिज्यिकरण बढ़ा जहां विशेषज्ञता पहले से मौजूद थी और विभिन्न क्षेत्रों के बीच सामानों का नियमित आदान-प्रदान होता था। इसी समय परिवहन में कई प्रकार से सुधार हुए (लैंग्यूडॉक, बरगंडी, प्रुवेन्स ब्रिटेनी, ऑवर्गने में) जिससे व्यापार की लागत कम हुई और वाणिज्यिकरण तेज हुआ। ये सारे सुधार दक्षिण के नहर मार्गों (केनाल डु मिडी) जैसे प्रमुख कार्यों के आस-पास स्थित थे।

अठारहवीं शताब्दी में हुए इन परिवर्तनों के कारण से फ्रांसीसी सम्राट के राज्य-क्षेत्रों में 1730/39-1780/89 के बीच अधिकांश कृषि वस्तुओं की कीमत 60 से 80 % गिरी और किसी-किसी वस्तु की कीमत तो 100 % तक गिर गई। इस विकास से नए-नए प्रयोग करने वाले भूमिपतियों को फायदा हुआ। कीमत और लागत गिरने से विभिन्न उद्यमी किसान खेतिहरों को भी फायदा हुआ जिन्हें भूमिपतियों की जमीन पर काश्तकारी का अधिकार प्राप्त था। इससे कई मेनमॉटेबल्स भी लाभान्वित हो सकते थे। जहां इनके पास अपेक्षाकृत सुरक्षित काश्तकारी थी यदि वे वहां जमकर खेती करते और जरूरत पड़ने पर कृषि मजदूर का काम भी करते तो ये कम सुविधा प्राप्त खेतिहर भी कम कीमतों और लागतों से लाभान्वित हो सकते थे (जहां इस अवधि में मजदूरी 25 से 30 % बढ़ गई थी)।

ले रॉय लैडूरे एक प्रमुख समस्या की ओर इशारा करते हैं और तथ्यों तथा आंकड़ों के सहारे यह बताते हैं कि जनसंख्या वृद्धि के समय काश्तकारी की स्थिरता ही फ्रांसीसी किसानों को थोड़ी बहुत सुरक्षा दे सकती थी। यह सही है कि भूमिपतियों के सीधे नियंत्रण वाले खेतों से ही किसानों को बेदखल किया जा सकता था और अधिकांश

खेतों पर भूमिपतियों का अप्रत्यक्ष नियंत्रण था इसलिए अधिकांश किसानों को बेदखली का खतरा नहीं था। परंतु अभी भी खुले खेतों में खेती होती थी और एक साल में तीन फसल लगाई जाती थी; इसलिए छोटे आकार के खेतों पर कोई भी सुधार अजमाना मुश्किल था। पश्चिम के इलाके में खुले खेत तो नहीं थे परंतु वहां भी इतनी कृषि भूमि नहीं थी जो बढ़ते हुए परिवारों का भरण-पोषण कर सके। किसान बंटाई (मेतेज) लेने लगे और भूमिपतियों के प्रत्यक्ष नियंत्रण वाले खेतों को किराए पर लेकर जोतने लगे। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ खेतों का किराया उपर्युक्त वर्णित अवधि में 142 % बढ़ गया। भूमिकर और धर्मशुल्क बढ़ने से (क्रमश: 60% और 25-30 %) किसानों पर और भी बोझ बढ़ गया।

परिणामस्वरूप कृषि का वाणिज्यिकरण तो पर्याप्त मात्रा में हुआ और अनाज का उत्पादन इतना होने लगा कि इससे बढ़ती हुई शहरी जनसंख्या का भरण पोषण हो सके परंतु फ्रांस के देहाती इलाकों में आर्थिक स्तरों में काफी उतार-चढ़ाव और असमानता थी और कुछ इलाकों में गरीबी का आतंक छाया हुआ था। इसी कारण एक ओर समकालीन अंग्रेज यात्री आर्थर यंग और इतिहासकार और दार्शनिक एलेसीज डे टौक्यूविले ने 1850 के दशक में अपनी पुस्तक में दो ऐसी विशेषताएं बताई हैं (जो परस्पर विरोधी हैं)। डे टौक्यूविले का कहना है कि फ्रांसीसी क्रांति (1789) के पहले फ्रांसीसी किसानों की स्थिति में सुधार हो रहा था जबकि इसी अवधि के बारे में लिखते हुए यंग ने बताया है कि फ्रांस में कृषि काफी पिछड़ी हुई थी और वहां काफी गरीबी थी।

चित्र 1 : भोजन के लिए लगी लम्बी पंक्ति : प्रारंभिक 19वीं शताब्दी के फ्रांस में शहर के गरीब लोग

10.3.2 व्यापार, उद्योग और निर्माण

कृषि उत्पादों के विपणन और उनके परिशोधन के कारण खेती के अलावा भी रोजगार के अन्य अवसर पैदा हुए। बड़े पैमाने पर अनाजों की कुटाई, वाइन का उत्पादन और इन उत्पादों का परिवहन, भंडारण और विपणन जैसे क्षेत्रों में काम करने के अवसर उपलब्ध हुए। हालांकि फ्रांस में बाजार की सक्रियता सब जगह एक समान नहीं थी। उत्तर और पूर्व (नोर्ड और फ्रांशे काम्टे के क्षेत्रों) में यह ज्यादा सक्रिय था और ब्रिटेनी तथा अन्दरूनी गैसकोनी में जो गैरोने घाटी से काफी दूर थे, में यह सक्रियता काफी कम थी। कृषि उत्पादों के व्यापार के कारण ही कई समुदायों और शहरों का उदय हुआ।

इस व्यापार में और भी कई आयाम जुड़े: इटली, जर्मनी, स्पेन या भूमध्य सागर पार मार्सिल्स से लेकर इंगलिश चैनल के तटीय क्षेत्रों पर इन उत्पादों के व्यापार होने से अतिरिक्त मुनाफा होने लगा। इस विनिमय से फ्रांसीसी बन्दरगाह सक्रिय हो उठे और इस व्यापार को और भी आगे बढ़ाने के लिए जहाजरानी उद्योगों का विकास हुआ। बॉर्डेक्स (कनाडा और फ्रेंच वेस्ट इंडीज से व्यापार करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण) और मार्सिल्स (विशेष तौर पर लेवेन्ट और सामान्यत: भूमध्य सागर के व्यापार के लिए प्रसिद्ध) दो प्रमुख शहर महत्वपूर्ण हो उठे। इसके अलावा फ्रांसीसी सम्राट व्यापारवादी नीतियों के कारण केवल फ्रांस के जहाजों पर ही समान ढोने की अनुमति देता था जिससे इस उद्योग को और भी बढ़ावा मिला।

फ्रांसीसी क्रांति तक तथा उसके बाद वाणिज्य और उद्योग के अनेक केंद्र ले क्र्यूसॉट में फले फूले (1782 में शाही संरक्षण में स्थापित हुए थे) जहां लोहे का उत्पादन होता था। इसी प्रकार बेल्जियम सीमा पर स्थित एंजिन की कोयले की खदानें भी प्रमुख औद्योगिक केंद्र थे। इसके अलावा ऊपरी लोएर के निकट ऊपर ल्वायन में भी कोयले की काफी खुदाई की जाती थी। यहां उस समय की कोयले की सबसे बड़ा खादान स्थित थी। अठारहवीं शताब्दी में उत्तर और उत्तर पश्चिम में स्थित लिले, अमीन्स और सेंट डेनिस, ल्वायन (मध्य पश्चिमी फ्रांस में रोन/सावने में स्थित) और मल हाउस (अलसास में) में अक्सर इंगलिश मशीनों की सहायता से कपड़ों का उत्पादन होने लगा। राइम क्षेत्र के आस-पास स्थानीय स्तर पर मेरीनों भेड़ पालने से उत्कृष्ट ऊन का उत्पादन होने लगा। कपड़े के उत्पादन में 'पुटिंग आउट' पद्धति अपनाई जाने लगी जिसकी शुरुआत इंगलैंड में इस शताब्दी के आरम्भ में हो चुकी थी।

परंतु इस विकास के साथ-साथ इन उत्पादित वस्तुओं के लिए आंतरिक बाजार का तेजी से विकास नहीं हुआ। इससे देश के अन्दर व्यापार में कई तरह की समस्याएं सामने आई: औद्योगिक संगठन की समस्याएं सामने आई और औद्योगिक पूंजी की उपलब्धता में कमी आई (किसानों की कम आय तो एक समस्या थी ही)। इस परिस्थिति में अठारहवीं शताब्दी के दौरान फ्रांस में औद्योगिक पूंजीवाद के रूप में छोटे स्तर के उत्पादकों और औद्योगिक उत्पादकों के लिए क्षेत्रीय बाजारों का ही वर्चस्व रहा।

इन समस्याओं का कारण सुस्पष्ट है। देश में एक प्रकार का प्रशासन नहीं था और यहां व्यापारियों और उत्पादकों के लिए एक सुगठित बाजार भी उपलब्ध नहीं था। अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग ढंग से कर लगाए जाते थे (उदाहरण के लिए नमक कर की अदायगी के लिए क्षेत्रों को ग्रैन्डे (grande) और पेटिट गैबले (petite gabelle) में विभाजित किया गया था) और कर अदायगी की पद्धतियां भी अलग-अलग थीं। क्षेत्रीय अधिकार 'इस्टेट' के पास थे जबकि कुछ लोगों के पास पार्लेमेंट थे और यहां तक कि कानूनी व्यवस्था भी अलग-अलग थी (देश के दक्षिण में रोमन कानून चलता था जबकि उत्तर और मध्य में यह लागू नहीं होता था)। इसके अलावा श्रेणियों के प्रतिबंधों के कारण उद्योग के विस्तार में बाधा पहुंची। श्रेणियां उत्पादन के लिए नई खोजों और उपकरणों का इस्तेमाल नहीं करना चाहती थीं। शहरों के अधिकांश केंद्रीय इलाकों पर श्रेणियों का अधिकार था और बाजारों में उनकी सीधी पहुंच थी जबकि गैर-श्रेणि सदस्यों के उद्यम भी पिछड़े इलाकों में स्थित थे और उन्हें शाही प्रशासन का समर्थन भी प्राप्त नहीं था। इसके अलावा इंगलैंड की तरह गांवों में देशी बैंक भी उपलब्ध नहीं थे और औद्योगिक विकास के लिए प्रतिष्ठित व्यापारियों और उद्यमियों से भी पूंजी लेनी पड़ती थी जिससे उद्यम के विस्तार का क्षेत्र काफी सीमित हो जाता था।

एक प्रमुख समस्या यह भी थी कि व्यापार और उत्पादन में लगे लोगों को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। इंगलैंड के बिलकुल विपरीत फ्रांसीसी कुलीनवर्ग में व्यापार और उत्पादन को नीची निगाहों से देखा जाता था। यहां खरीद कर प्राप्त किए गए विशेषाधिकार को (सरकारी पद खरीदे जा सकते थे) या कुलीनवर्ग की उपाधि प्राप्त करने को विशेष महत्व दिया जाता था।

क्वेकर जैसे समुदाय, जो काफी संगठित थे और पूंजीवादियों में जिनका महत्वपूर्ण स्थान था, को फ्रांसीसी क्षेत्रों में कोई महत्वपूर्ण पद या अधिकार प्राप्त नहीं था।

उद्यमशीलता के सांस्कृतिक पक्ष के महत्व को जरूरत से ज्यादा महत्व नहीं दिया जा सकता। बॉडेक्स, मार्सिल्स और पेरिस जैसे धनी केंद्र इस बात के प्रमाण हैं कि इस समय व्यापार और उत्पादन का विकास हुआ था।

10.4 क्रांतिकारी और नेपोलियन युग

1789-1815 के दौरान फ्रांस में हुई राजनैतिक और सामाजिक पुनर्रचना का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा और इससे देश के भीतर औद्योगिक पूंजीवाद की स्थिति भी प्रभावित हुई। फ्रांसीसी क्रांति पर आधारित भाग में प्रभुत्व परिवर्तनों की चर्चा की जा चुकी है। अतः यहां इसके कुछ प्रमुख प्रभावों और परिणामों की चर्चा की जाएगी। हालांकि यह परिवर्तन राष्ट्रीय बाजार के निर्माण में निर्णायक साबित हुआ। परंतु इस भाग में हम फ्रांसीसी क्रांतिकारी विधानों और नेपोलियन द्वारा किए गए उपायों से संबंधित प्रशासनिक पुनर्गठन के परिणामों की चर्चा करने नहीं जा रहे हैं (मसलन, कई प्रकार के कानूनी तथा अन्य भेदभावों का उन्मूलन) इस भाग में उस नेपोलियन कोड (कानूनी व्यवस्था) की भी चर्चा नहीं की जा रही है जिसने पूरे देश में एक समान वैधानिक व्यवस्था कायम की। इन सभी मुद्दों को इस युग के दो प्रमुख विषयों में विभाजित कर दिया गया है जिस पर बात करना जरूरी है। ये दोनों ही विषय औद्योगिक पूंजीवाद को मजबूती प्रदान करने और उनके प्रसार के लिए अत्यंत निर्णायक साबित हुए। इनमें पहला विषय जिसपर हम चर्चा करने जा रहे हैं वह है विशेषाधिकारों पर आक्रमण और कृषि भूमि के स्वामित्व अधिकारों में परिवर्तन तथा श्रेणि ढांचों का उन्मूलन। दूसरे विषय के अन्तर्गत युद्ध के परिणाम और राज्य विस्तार प्रसार का व्यापार और उत्पादन पर प्रभाव की चर्चा की जा रही है।

10.4.1 विशेषाधिकारों पर आक्रमण

क्रांति के दौरान विशेषाधिकारों पर सुनियोजित ढंग से कानूनी और सामाजिक आक्रमण किया गया जिसमें कुलीनवर्ग के विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया (4 अगस्त 1792)। 1792 के दौरान ग्रामीण इलाकों में हिंसा की वारदातें हुईं। 10 अगस्त 1792 को यह निर्णय लिया गया कि सभी प्रकार के जमींदारी अधिकारों से लेकर नकद बकायों (राजस्व व कर) तक को चार्टर (लिखित प्रमाण पत्रों) द्वारा प्रमाणित करना होगा, इससे आक्रमण और भी तीव्र हुए। 1792-94 के दौरान देश में हुए आंतरिक टकराव से यह आक्रमण और तेज हुआ। इन गतिविधियों से अमीर किसानों की समृद्धि बढ़ी और इससे ग्रामीण इलाकों में सम्पत्ति का जबरदस्त पुनर्वितरण हुआ।

कुलीनवर्ग की समाप्ति और उनकी जमीनों को जब्त कर बेच देने से सम्पत्ति के पुनर्वितरण को नया आयाम मिला; हालांकि यह वितरण किसी भी मामले में समानता के सिद्धांत पर आधारित नहीं था। इस बिक्री से प्रमुखतः धनी किसानों और बुर्जुआ वर्ग के लोगों को फायदा हुआ जो जमीन में अपना पैसा लगाना चाहते थे। पुरातन व्यवस्था के परम्परागत करों, (जैसे टेले, कैपिटेशन और विन्जटिमे) जिसकी अदायगी प्रमुख रूप से किसानों और बुर्जुआ वर्ग के लोगों को करनी पड़ती थी, को समाप्त किए जाने से किसानों की आय में तात्कालिक वृद्धि हुई। औद्योगिक उद्यम के क्षेत्र में पुराने ढर्रे की श्रेणियों पर प्रतिबंध लगाने से अभिनव प्रयोग और खोज का रास्ता प्रशस्त हुआ।

10.4.2 युद्ध का प्रभाव और क्षेत्रीय विस्तार

कराधान के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप राजस्व में कमी आई और पुरातन व्यवस्था के दिवालिएपन के कारण राज्य की वित्तीय व्यवस्था चरमरा गई। परिणामस्वरूप 1789-97 के बीच मुद्रा स्फीति तेजी से बढ़ी जिसके कारण औद्योगिक पूंजी के अधिकांश लाभ समाप्त हो गए। क्रांतिकारी युद्धों में काफी लोगों की जानें गईं; श्रमिक आधारित अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की उपलब्धता निर्णायक होती है। उत्पादकों ने इंगलैंड से मशीन का आयात कर अपनी इस समस्या का सामाधान करना चाहा परंतु फ्रांस और ब्रिटेन के बीच पनपी दुश्मनी के कारण यह मामला भी खटाई में पड़ गया। 1797 के बाद नेपोलियन के नेतृत्व में फ्रांस के राज्य विस्तार से इस स्थिति पर काफी कुछ काबू पाया गया। साम्राज्य विस्तार से न केवल देश की आय बढ़ी और इसकी मुद्रा विजित देशों में भी चलने लगी बल्कि साइसेलपाइन रिपब्लिक, हेलवैशियन रिपब्लिक, बाटावियन रिपब्लिक और इतालवी राज्य, हॉलैंड राज्य और जर्मनी स्थित नेपोलियन के राज्यों में फ्रांसीसी माल बेचा जाने लगा। 1806 के बाद यूरोप पर महाद्वीपीय प्रणाली (इंगलैंड के माल को फ्रांसीसी प्रभुत्व के क्षेत्रों में आने से रोकना) आरोपित किए जाने से फ्रांसीसी उत्पादकों को और भी मदद मिली। नेपोलियन ने येन केन प्रकारण इंगलैंड से मशीनें प्राप्त करने का प्रयास किया। जिस समय नेपोलियन प्रशासन अपने उत्कर्ष पर था उस समय ब्रिटेन में बने मालों

को महाद्वीप (यूरोप) के बाजारों में आने नहीं दिया गया जिससे फ्रांसीसी उत्पादकों की चांदी हो गई। परंतु इसका नुकसान यह हुआ कि ब्रिटेन द्वारा यूरोपीय बंदरगाहों को घेर लेने और बॉडेक्स जैसे एटलांटिक प्रमुख केंद्रों के ढहने से अमेरीकी बाजार हाथ से छूट गया। इसके अलावा इंगलैंड में हुए विभिन्न प्रयोगों और खोजों का लाभ फ्रांसीसी उद्योग को नहीं मिल सका जो अन्यथा उसको मिल सकता था। इसलिए 1814 के बाद फ्रांस पिछड़ गया और यूरोप में एक बार फिर से ब्रिटिश मालों का धड़ल्ले से उपयोग होने लगा।

10.4.3 पुनर्स्थापित (बोर्बन) और औरलिएन राजतंत्रों (1815-48) द्वारा संरक्षणवाद और इसके परिणाम

नेपोलियन युद्धों की समाप्ति के बाद यूरोपीय बाजारों में इंगलैंड में बनी सस्ती वस्तुओं की भरमार लग गई जिससे फ्रांस में बनी वस्तुओं की मांग तेजी से घटी और यहां के उत्पादक दिवालिएपन की कगार पर पहुंच गए। तब देश की सरकार ने (लुई XVIII और चार्ल्स X के अधीन) राष्ट्रीय उद्योगों को 'संरक्षण' देने के लिए नेपोलियनयुगीन और क्रांति से पूर्व की नीतियों को जारी रखा। दिसम्बर 1814 के कर नियमों के द्वारा विदेशी वस्तुओं पर ऊंचे शुल्क लगाए गए। मलमल, सन और लोहे पर काफी शुल्क बढ़ा दिया गया (पहले के मुकाबले इसमें 10 % से लेकर 50 % तक की वृद्धि की गई)। सूत से बने सामानों के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया गया और आनाज के आयात पर विशेष कर लगाया गया। फ्रांस के उपनिवेशों में विदेशियों के साथ सभी प्रकार के व्यापारों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। वस्तुओं के परिवहन और यातायात के लिए केवल फ्रांसीसी जहाजरानी के उपयोग का निर्देश जारी कर दिया गया और फ्रांसीसी उद्योग को एकाधिकार देने के लिए कच्चे माल (जैसे चाशनी) के परिशोधन पर प्रतिबंध लगा दिया गया। फ्रांसीसी व्यापारिक जहाजों को कई प्रकार के लाभ प्रदान किए गए। पुनर्स्थापित बोर्बोन राजतंत्र के प्रथम वित्त मंत्री बैरोन लूई ने इस नीति की शुरुआत की और इसे चार्ल्स गैनिल्ह, एफ.एल.ए.फेरियर और लूई से, जैसे महत्वपूर्ण सिद्धांतकारों का समर्थन प्राप्त हुआ।

इन उपायों के परिणामस्वरूप स्पष्ट रूप से फ्रांसीसी उत्पादकों के लिए राष्ट्रीय बाजार को 'संरक्षण' प्रदान किया गया। परंतु विदेशी व्यापार करने वाले व्यापारियों को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा क्योंकि ब्रिटेन में बने सस्ते माल का वे मुकाबला नहीं कर पाते थे। इन परिस्थितियों में ब्रिटेन से मशीनों का आयात अनिवार्य हो गया। इन मशीनों का आयात काफी महंगा पड़ रहा था जिसके कारण इस मसले पर 1828 तक आते-आते कई हलकों से संरक्षणवादी शुल्क की आलोचना होने लगी। हालांकि ब्रिटिश प्रतियोगिता के भय से मुक्त व्यापार की दिशा में कोई बड़ा कदम उठाने का प्रयास नहीं किया गया।

ओरलिएन राजतंत्र के दौरान उद्योग के विकास के कारण संरक्षण में छूट देने की मांग जोर पकड़ने लगी। देश के संरक्षित बाजार के भीतर इस विकास के लिए प्रौद्योगिकी सुधार और मुनाफा बढ़ाने के लिए सस्ते आयात का उपाय ढूंढा जाने लगा। संरक्षण में छूट देने के प्रमुख प्रवक्ता फ्रेडरिक बैस्टियात (1801-1850) थे जिन्होंने एसोसिएशन पोर ला लिबरेते डेस एशेन्जसे (1845) (मुक्त व्यापार संगठन), की स्थापना की जिसकी शाखाएं बोर्डेक्स, पेरिस, मार्सिल्स, ले हार्वे और रीम्स में भी खोली गईं। उनके विचार जरनल डेस एकनौमिस्टेस्ट (1841 में स्थापित) में प्रकाशित हुए। मुक्त व्यापार की मांग के साथ-साथ कॉम्टे, प्रूधों और लूई ब्लां के विचार सामने आए कि बाजार की शक्तियों पर राज्य का नियंत्रण होना चाहिए। परंतु इससे कोई विरोध की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई। इस अवधि में मुक्त व्यापार की ओर लोगों का झुकाव अधिक बढ़ा।

1830 और 40 के दशक में होने वाली औद्योगिक उन्नति ने इस प्रवृत्ति को और आगे बढ़ाया। नौरमेंडी और अल्सास में कपड़ा उद्योग के बढ़ते मशीनीकरण के कारण भी यह उन्नति हुई। अल्सास में यह विकास तेजी से हुआ। एक अनुमान के अनुसार 1828 में नए कताई उद्योग में 5,00,000 तकलियों पर सूत का उत्पादन था जो 1874 में बढ़कर लगभग 1,150,000 हो गया। इस अवधि में ऊर्जा से चलने वाले करघे का व्यापक रूप में इस्तेमाल होने लगा। बेल्जियम सीमाप्रांत और ऊपरी ल्वार प्रांत के परम्परागत केंद्रों में कोयला केंद्रों का तेजी से प्रसार हुआ। लोहा उद्योग में 1826 और 36 के बीच मैनबाई, विलसन एंड कम्पनी जैसी इंगलिश कम्पनियों द्वारा बनाए गए इंगलिश मशीनों से में ले क्रुशोट में सुधार हुआ और अन्ततः शेन्डर्स ने इसमें काफी हद तक सुधार किया। फार शम्बोल में एम. डुफाद, जिसे इंगलैंड की प्रविधि का काफी ज्ञान था, के अनुभवों को अपनाया गया। 1822 के बाद साझेदारी में इसका काफी प्रयोग किया गया और डिकेजेविले (सुदूर दक्षिण) में भी उत्पादन में काफी वृद्धि हुई।

1837 में सोसाइटिज एन कमांडिटीज नामक समितियों की स्थापना हुई जो सीमित जिम्मेदारी के सिद्धांत पर आधारित थी। इसकी स्थापना बैंकर लेफिटे ने कैसिए जेनेरल डु कॉमर्स एट डे लॉ इन्डस्ट्री के माध्यम से की थी। इसके बाद से उद्योग में पूंजी का आगमन तेजी से बढ़ा। 1842 के बाद रेलवे में निवेश तेजी से बढ़ा और इसमें काफी मात्रा में पूंजी निवेशित की गई। सरकार ने निजी रेलवे निर्माताओं को जमीन दी। इसके लिए डुफाउरे कानून के अन्तर्गत कम्पनियों को निर्माण सामग्री जुटाने की गारंटी देनी होती थी। इस काम में इन समितियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और रेलवे कम्पनियों में पूंजी निवेश को आकर्षित किया और इसके लिए पूंजी जुटाई। पूंजी के परम्परागत स्रोतों ने भी इस पथ का अनुसरण किया और औद्योगिक विकास में सहयोग दिया। इसके अलावा 1848 तक आते-आते पेरिस के, रोथ्सचाइल्ड्स जैसे 'कंजरवेटिव' बैंकरों ने भी उद्योग में पूंजी निवेशित की।

अभी भी अधिकांश उत्पादन छोटी इकाइयों में ही हो रहा था और 1848 तक संरक्षण लोकप्रिय बना रहा। इस समय तक उत्पादन जल शक्ति पर आधारित था जिसकी उत्पादन क्षमता अपेक्षाकृत कम थी। 1815-1848 की अवधि में चारकोल अग्नि भट्ठियों की संख्या बढ़ी और उनकी संख्या 1839 तक बढ़ती रही क्योंकि यहां इंधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था जबकि इंगलैंड में ऐसी स्थिति नहीं थी। इंगलिश शैली के उत्पादकों का उत्पादन तेजी से बढ़ा। इनके यहां रोजगार भी बढ़ा और यहीं सबसे ज्यादा पूंजी निवेशित की गई। परंतु यह कहा जाता है कि प्रथम रेलवे लाइन फ्रांसीसी गृह उत्पादन के बल पर नहीं बिछाई जा सकती थी और लोहे के उत्पादन के साथ-साथ काफी मात्रा में पटरियों का आयात इंगलैंड से करना पड़ा। 1848 तक देश की अधिकांश औद्योगिक इकाइयां जल शक्ति से चलती थीं हालांकि खासकर कोयला उद्योग में वाष्प शक्ति के उपयोग में काफी वृद्धि हुई थी। जॉन क्लैपहेम के अनुसार 1839 में इंगलिश वस्त्र उद्योग 1641 वाष्प इंजन और 674 जल इकाइयों का उपयोग कर रहा था, जबकि कुछ समय बाद फ्रांस में 243 वाष्प और 462 जल संयत्र काम कर रहे थे। 1839 में इंगलैंड के कपड़ा मिलों में वाष्प चलित मशीनों की संख्या 1848 में फ्रांस के सभी उद्योगों में प्रयुक्त वाष्प मशीनों से अधिक थी।

10.5 औद्योगिक पूंजीवाद 1848-70

1848 में हुई क्रांतियों के बाद के काल में पूरे यूरोप में सोने की उपलब्धता, और लगभग 1860 तक रेलवे में हुए तीव्र विकास के कारण कपड़ा, कोयला और रेलवे जैसे प्रमुख विकास के क्षेत्रों में फ्रांस में भारी पूंजी का निवेश संभव हुआ। इसके परिणामस्वरूप जल शक्ति के स्थान पर वाष्प शक्ति का इस्तेमाल किया जाने लगा और लौह उत्पादन के लिए चारकोल के स्थान पर कोयले का उत्पादन होने लगा। इस अवधि में नॉर्ड और पास डे कैलेस के कोयला खदानों से खूब कोयला निकाला गया जो इस समय इंधन का प्रमुख स्रोत हो गया था, हालांकि यह प्रगलन (लोहे को गलाने) के लिए बहुत उपयोगी नहीं था क्योंकि इससे कोक नहीं निकलता था। 1852 में कोयले का कुल राष्ट्रीय उत्पाद् 5,000,000 मेट्रिक टन था जिसमें 1,000,000 मेट्रिक टन का उत्पादन नार्थ बेसिन से, अपर लॉयर से 1,640,000 मेट्रिक टन, ले क्रेसाट और ब्लेन्जी से 400,000 मेट्रिक टन तथा शेष अन्य छोटे खदानों से निकाला जाता था। 1869 में राष्ट्रीय उत्पादन 13,000,000 मेट्रिक टन था जिसमें उत्तरी हिस्से में 4,300,000 और अपर लॉयर में 3,100,000 कोयले का उत्पादन होता था। अन्य स्थानों में लौह पिंड का उत्पादन तेजी से बढ़ा (1853 में 600,000 टन से बढ़कर 1869 में 1,400,000 टन हो गया); बेसेमर प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करते हुए 1869 में इस्पात उत्पादन 1,000,000 टन हो गया और अन्तरराष्ट्रीय उत्पादन में ब्रिटेन के बाद इसका दूसरा स्थान हो गया। उत्पादन के मुख्य केंद्र सेंटएटिने (टेरे न्वायर कम्पनी और पेटेन गाउडेट का उद्यम), ले क्रेसॉट (श्नेडर उद्यम), लॉरिन में (डि वेन्डलस के विभिन्न उद्यमों में) और, अल्सास में निदरब्रौन में (डिटरिच उद्यम में) स्थित था। कमेंट्री और फोरशेम्बॅल्ट (बेल्जियन सीमा पर) और उत्तर में ऐंजिन और डेनेन स्थित कम्पनियों में लोहे का उत्पादन होता था।

सूती उद्योग में, नॉरमेंडी और लिले जिले में (जहां 1860 के दशक तक तथा उसके बाद भी कताई होती थी) उत्पादन यथावत रहा परतु 1870 तक आते-आते अल्सास में सूती उद्योग का मशीनीकरण और परिष्करण लैंकशायर के स्तर तक पहुंच गया। अल्सास में ऊर्जा से चलने वाली मशीनों का विकास किया गया जो इंगलैंड की मशीनों का मुकाबला कर सकती थी; जो बात सूती कपड़ा उद्योग पर लागू होती थी वही ऊनी कपड़ों पर भी लागू होती थी क्योंकि उस समय इस उद्योग का विस्तार आस्ट्रेलियाई कच्चे ऊन के आयात पर निर्भर करता था।

इस अवधि में उत्पादन में हुई वृद्धि पर अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों का तो प्रभाव पड़ा ही परंतु इस अवधि में द्वितीय साम्राज्य के तहत बोनापार्टिस्ट राज्य के हस्तक्षेप से इस दिशा में तीव्र प्रगति हुई। नेपोलियन III के सेंट साइमोनियन सिद्धांतों से उत्पादन वृद्धि को प्रोत्साहन मिला। इसी दौरान क्रेडिट फोन्सियर (एक राष्ट्रीय बंधक बैंक) और क्रडिट मोबिलियर (पेरियर बंधुओं के ज्वाइंट स्टॉक बैंक) की स्थापना सरकार द्वारा की गई। दोनों बैंकों की स्थापना नेपोलियन के राष्ट्राध्यक्ष (प्रेसिडेंट) बनने के तुरंत बाद हुई और इन दोनों बैंकों ने अपने मुनाफे को बड़ी ही कुशलता से उद्योगों में निवेशित किया। इन दो बैंकों की सफलता के कारण 1850-57 के बीच कई बैंक खुले जिनमें क्रेडिट ल्वायनिस सर्वाधिक प्रसिद्ध था। गेरशेनक्रोन ने बताया है कि इन राज्य-प्रायोजित या राज्य-प्रोत्साहित बैंकों के कार्यकलापों ने रोथ्सशिल्ड्स जैसे कई 'कंजरवेटिव' बैंकिंग घरानों को भी औद्योगिक बैंकिंग क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए आकर्षित किया जो अभी तक सरकारी बैंकों और भूमि बंधकों तक ही सीमित है। अत: इस युग में राज्य के सक्रिय सहयोग के कारण ही आर्थिक विकास हुआ। इस युग में मुक्त व्यापार की दिशा में कॉबडेंट ट्रीटी जैसे छिटपुट कार्य भी हुए जिसमें कुछ लोगों को प्रसन्न करने के लिए (जिनका उल्लेख पिछले भाग में किया जा चुका है) इंगलैंड से सामान के निर्यात के लिए कई आयात शुल्कों में रियायात दी गई। सरकार के इस सक्रिय सहयोग की तुलना अठारहवीं शताब्दी के अंत में ब्रिटिश सरकार की सक्रियता से नहीं की जा सकती क्योंकि वे अधिक प्रभावकारी थे और इनकी दिशा भी बेहतर ढंग से नियोजित की गई थी। हालांकि इन प्रयासों में प्रबंधकीय कमी थी परंतु यह महत्वपूर्ण था और इसका प्रभाव अभूतपूर्व था।

10.6 औद्योगिक पूंजीवाद का विकास 1871-1914

फ्रांस-प्रशा युद्ध (1870-1871) में फ्रांस की हार के बाद कई दशकों तक आमतौर पर यही समझा जाता रहा कि यह देश अवनति के गर्त में चला गया है। हालांकि जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका (जहां उत्पादकता में तीव्र गति से वृद्धि हुई थी और जहां जनसंख्या में तेजी से विकास हुआ था) से इसकी तुलना करने के कारण यह धारणा बनी थी। परवर्ती काल से तुलना करने पर पता लगता है कि 1870-1914 के मुकाबले 1815-1870 में उद्योग और कृषि की वृद्धि दर ज्यादा थी।

इस समय और इसके बाद फ्रांसीसी अर्थव्यवस्था में हुए परिवर्तनों और औद्योगिक और वित्तीय पूंजीवाद के मजबूत होने के महत्व को टीकाकारों ने कम करके आंका। कृषि और वानिकी में लगे श्रम बल का प्रतिशत 1870 में 53 % था जो 1913 में घटकर 37.4 % हो गया। श्रम की उत्पादकता बढ़ती रही और राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि हुई (1895 तक यह धीरे-धीरे बढ़ी: 1896-1913 में यह वृद्धि प्रतिवर्ष 1.8 % थी)। प्रतिव्यक्ति निर्यात और आयात मूल्य में दोगुना वृद्धि हुई । देश की बचत बढ़ी और देश के बाहर उद्यमों में पूंजी निवेश में भारी मात्रा में वृद्धि हुई। इस आर्थिक विकास में पश्चिम अफ्रिका और हिन्द चीन (दक्षिण पूर्व एशिया) में स्थापित फ्रांसीसी उपनिवेशों का योगदान भी शामिल था।

निम्नलिखित आंकड़ों से औद्योगिक वृद्धि के आम संकेतों का उल्लेख किया जा रहा है :

फ्रांस में विशिष्ट उद्योगों की उत्पादन वृद्धि की औसत वार्षिक दर

अवधि	लोहा और इस्पात	कोयला	कपड़ा
1860-92	2.58	3.24	1.52
1892-1913	4.01	2.04	1.92

(स्रोत : एस.बी. सॉल और ए. मिलवार्ड, **द डेवेलप्मेंट ऑफ द इकोनोमिज़ ऑफ कान्टिनेंटल यूरोप 1977**)

इसके अलावा यहां यह भी उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस समय फ्रांस में रसायनों के उत्पादन और बिजली उद्योगों के क्षेत्र में पर्याप्त शोध और विकास हुए। इस समय जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका में भी इस क्षेत्र में तेजी से विकास हो रहा था। सोडा और सल्फ्यूरिक एसिड के उत्पादन के लिए नई खोज की गई (सोडा बनाने की सॉल्वे पद्धति) और सेंटडेरिस कम्पनी ने रंग-सामग्री अनुसंधान और उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की। बिजली के क्षेत्र में थॉमस-हटसन और सिमेंस जैसी अमेरिकन और

जर्मन कम्पनियों ने फ्रांस में उत्पादन शुरू किया जबकि फ्रांसीसी कम्पनी ब्रेगट ने टेलीग्राफ और टेलीफोन उपकरणों के निर्माण में बढ़त हासिल की। इसी समय अल्यूमिनियम के उत्पादन के लिए हेरॉल्ट ने एलोक्ट्रोलाइसिस पद्धति की खोज की जो उस समय की महत्वपूर्ण खोज थी। मोटर कार उत्पादन के लिए बिजली के उत्पादों का उपयोग किया जाने लगा। फ्रांस की पेनहर्ड और पीजॉट, कम्पनियां जर्मनी की ओट और बेंज कम्पनियों से मुकाबला करने लगी और 1900 तक आते-आते ये कम्पनियां फोर्ड से भी प्रतिस्पर्द्धा करने लगीं।

1871 में अल्सास और लॉरेन पर जर्मनी का कब्जा हो गया और यह फ्रांस के हाथ से निकल गया। आरंभ में ऐसा लगा कि फ्रांसीसी औद्योगिक पूंजीवाद के लिए यह बहुत नुकसानदेह साबित होगा परंतु बाद में ऐसा नहीं हुआ। निश्चित रूप से अल्सास में कपड़े के क्षेत्र में हुए अभिनव प्रयोग का लाभ जर्मनी को मिल रहा था। इसका फायदा मुख्य रूप से जर्मनी को ही मिल रहा था परंतु लॉरेन में फ्रांसीसी निर्माणकर्ताओं और अन्य फ्रांसीसी कम्पनियों के बीच सम्पर्क बना रहा। लौरेन के बड़े इस्पात और लौह उत्पादकों डे वेन्डेल्स, और श्नेडर की ले केसट कम्पनी के बीच सहयोग बने रहने के कारण सीमा के दोनों ओर इस्पात बनाने के लिए थॉमस गिलक्राइस्ट पद्धति का इस्तेमाल किया जाने लगा जबकि 1878 से लेकर 1895 तक इस पद्धति पर डे वेन्डलस के अधिकार सुरक्षित थे।

बोध प्रश्न 1

1) इतिहासकार टॉम केम्प ने फ्रांस में मंद औद्योगिक विकास का प्रमुख कारक क्या बताया है ?

....
....
....
....
....
....

2) फ्रांस में व्यापार और निर्माण को आरंभ में किन प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा ?

....
....
....
....
....
....

3) 'विशेषाधिकारों पर आक्रमण' का क्या प्रभाव पड़ा ?

....
....
....
....
....
....

4) औरलिएन राजतंत्र के दौरान 'संरक्षणवाद' में ढील दिए जाने की मांग क्यों उठाई गई ?

....
....
....
....
....

....

....

5) नेपोलियन III ने उद्योग के विकास को किस प्रकार प्रोत्साहित किया ?

....

....

....

....

....

....

6) 1871 में जर्मनी के हाथों अल्सास और लॉरेन के हार जाने का फ्रांस पर क्या प्रभाव पड़ा ?

....

....

....

....

....

....

....

10.7 जर्मनी

1871 तक जर्मन राज्य और उसके बाद जर्मन साम्राज्य अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिक पूंजी के विकास का अन्य प्रमुख केंद्र था। अठारहवीं शताब्दी के दौरान जर्मन क्षेत्रों में औद्योगिक कार्यकलाप मुख्य रूप से कारीगर अथवा शिल्पी, श्रेणि और पुटिंग आउट व्यवस्था पर आधारित था। कृषि क्षेत्रों में भी नए प्रयोग किए गए (खासकर राइन घाटी में), हालांकि कई कारणों से आर्थिक विकास अपेक्षित गति से नहीं हो सका। अठारहवीं शताब्दी के दौरान कुछ क्षेत्र में श्रम की उपलब्धता बहुत कम थी क्योंकि उस समय युद्ध में काफी लोगों की मौत हो रही थी (आस्ट्रिआई उत्तराधिकार युद्ध और सप्तवर्षीय युद्ध)। इसके अलावा जर्मन राज्यों में उत्पादकों को सुगठित बाजार भी प्राप्त नहीं था क्योंकि हर राज्य अपने कर और शुल्क लगाता था और एक राज्य से दूसरे राज्य में माल ले जाने के लिए शुल्क की अदायगी करनी पड़ती थी। अठारहवीं शताब्दी में होली रोमन साम्राज्य भी इस दिशा में बहुत सुधार न कर सका और न ही 1815 के बाद 'जर्मनवाद' इस दिशा में कोई खास प्रगति कर सका। जर्मनी में विभिन्न प्रकार के 300 राज्य थे। इनमें राज्यों के आकारों में विभिन्नता थी। इसके अलावा कोयले और लोहे की गुणवत्ता भी एक प्रमुख समस्या थी (ब्रिटेन से यहां स्थिति बिलकुल अलग थी, और यहां कोयला बनाने की पद्धति के विकास ओर पलटनी प्रक्रिया के विकास से अपेक्षित लाभ नहीं उठाया जा सकता था)। इस क्षेत्र के पूर्वी हिस्से में सर्फ प्रथा (कृषि दास प्रथा) के कारण मजदूरों की आवाजाही काफी प्रतिबंधित थी। ब्रिटेन से भिन्न यहां भी फ्रांस की ही तरह पूंजी की आपूर्ति केवल शक्तिशाली व्यापारियों और उत्पादकों के धनों तक सीमित थी और पूंजी की उपलब्धता के लिए कोई व्यापक व्यवस्था मौजूद नहीं थी। एक और समस्या यह थी कि जर्मन राज्यों में पितृसत्तात्मकवाद ने अभावग्रस्तता को रोकने के लिए बाहर से आने वाले लोगों को रिहायशी अधिकार देने पर प्रतिबंध लगा रखा था और वे श्रेणि व्यवस्था का समर्थन करते थे। इस कारण श्रमिकों के आवागमन में बाधा पहुंची। अन्तर-क्षेत्रीय उद्यम का विकास नहीं हो सका।

1800 के दशक में सर्फों (कृषि दासों) की मुक्ति, 1830 के दशक में जॉलवेरिन (प्रशा स्थित सीमा शुल्क संघ), 1848-49 में पितृसत्तावाद नियमों की समाप्ति और 1850 के दशक में फ्रांसीसी तरीके के संयुक्त स्टॉक बैंकों के निर्माण के बाद उपर्युक्त वर्णित समस्याएं अपने आप कम हो गईं। इन विकासमूलक गतिविधियों के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के बीच के दशकों में औद्योगिक उछाल की आधारभूमि निर्मित हुई और जर्मन साम्राज्य के गठन के बाद इसी आधारभूमि पर औद्योगिक पूंजी का विधिवत विकास हुआ।

10.7.1 अठारहवीं शताब्दी में कृषि

आस्ट्रिआई उत्तराधिकार के युद्ध और सप्तवर्षीय युद्ध के कारण मध्य और पूर्व के अधिकांश जर्मन राज्यों में कृषि का उत्पादन और उत्पादकता बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई। फसल नष्ट हो गई, पशुधन नष्ट हुआ और मानव शक्ति का ह्रास हुआ। आस्ट्रिआई युद्ध के पहले और युद्ध अन्तराल के बीच में कृषि में जो कुछ भी विकास हुआ था वह युद्ध के दौरान काल का ग्रास बन गया। 1756 के बाद ही कृषि उत्पादन में बिना किसी बाधा के उन्नति हो सकी। इस समय के आंकड़ों को देखने से साफ पता चलता है कि इस समय अतिरिक्त भूमि कृषि के अधीन आई और युद्ध की विभीषिका से नष्ट क्षेत्रों में प्रवासियों की बस्तियां बसाई गई। प्रशा के फ्रेडरिक II ने शाही जमीनों पर उन्हें बसाया और खेती करने के व्यापक अधिकार प्रदान किए। इसी समय बाल्टिक तट की दलदल भूमि पर मुक्त किसानों की बस्तियां बसी हुई थीं। इसके साथ-साथ उत्तरी जर्मनी के मैदानी इलाकों में भी वन उपनिवेश बसाए जाने थे।
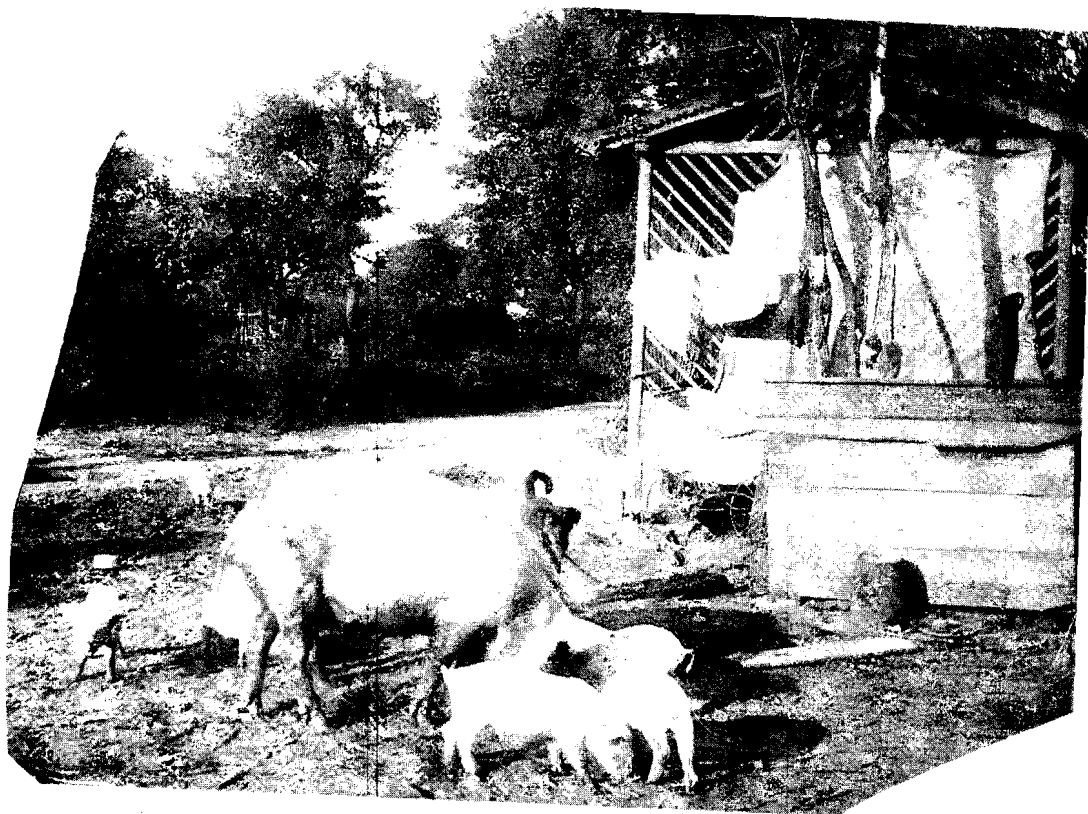
चित्र 2 : जर्मनी का एक छोटा खेत 1897

जर्मन राज्यों के उत्तरी क्षेत्रों में जिसका अधिकांश हिस्सा प्रशा के अधीन था, की कृषि व्यवस्था पर सर्फडम (कृषि दास प्रथा) की संस्था का नियंत्रण था। सप्तवर्षीय युद्ध के बाद इस संस्था ने यह कोशिश की कि खेती लगातार होती रहे और इसमें बाधा न हो। इस संस्था ने मैनोर के प्रमुख भूमिपतियों (जंकर, या रिटेर्सगट्सबेजिटज़र) के हाथों में भूमि का स्वामित्व सौंप दिया और ऐसी व्यवस्था की कि उस भूमि पर बसे हुए किसान अपने जंकर की अनुमति लिए बिना इलाका नहीं छोड़े। इन नियमों को न मानने वाले भगोड़ों से बड़ी ही कुशलता से निपटा जाता था और उनकी जमीन जब्त कर ली जाती थी। परंतु जमीन छोड़कर भागने की घटना बहुत कम ही होती थी क्योंकि जंकर कुशल और कर्मठ किसानों को उदारतापूर्वक खेती करने का अधिकार दिया करते थे। जंकरों ने किसानों को तीन कोटियों में विभाजित कर रखा था .. i) जो खेत जोतने के लिए पशु रखते थे (स्पैन्नफाहिग) ii) जो व्यवस्थित रूप से खेती किया करते थे (कोसूथ) और iii) जो कई प्रकार के कार्य करते थे (जैसे कॉटर या हॉसलर)

हालांकि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्पादन वृद्धि का कारण मात्र नई भूमि पर कृषि नहीं था नदी घाटियों की बस्तियों (मौसेल, मेन, नेकर और राई) तथा पश्चिम और दक्षिण पश्चिम के प्रमुख इलाकों में यह उन्नति

हुई। यहां के स्वामित्व की तुलना फ्रांस से की जा सकती है। मसलन इस पर कुलीनवर्ग का अधिकार था परंतु किसानों को एक निश्चित समय के लिए काश्तकारी दी जाती थी और कई क्षेत्रों में अधिकार उत्तराधिकार में भी मिल जाते थे। दक्षिण पश्चिम के किसानों की तुलना फ्रांस के सेंसियर्स से की जा सकती है।

10.7.2 अठारहवीं शताब्दी में उद्योग और व्यापार

जर्मन राज्यों के कई क्षेत्रों में अठारहवीं शताब्दी के दौरान पुटिंग आउट और श्रेणि संगठन के आधार पर लघु उद्योगों का विकास हुआ। ये विकास मुख्य रूप से बर्निल, राइनलैंड और सिलेसिया (प्रशा राज्य क्षेत्र में) और सैक्सोनी जैसे प्रमुख औद्योगिक केंद्रों में हुए। प्रशा में औद्योगिक विकास में राज्य ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और लगभग 1720 से लेकर 1790 तक सरकार ने उद्योगों के प्रबंधक के रूप में कुशल व्यापारियों की नियुक्ति की। राजा ने कटलरी (छुरी, चम्मच कांटे आदि), चीनी परिशोधन, धातु और युद्ध सामग्री जैसे उद्योगों की ओर विशेष ध्यान दिया। बर्लिन के डॉम और स्पिलटगरबर युद्ध सामग्री बनाने के प्रमुख उद्योग थे और इस प्रकार के अन्य संगठनों की भांति ये भी राज्य संरक्षण और मांग पर पूर्णतः आश्रित थे।

सिलेसिया में कम्पनियों के निदेशक मंडल की नियुक्ति राज्य करता था और इस पर उसका पूरा नियंत्रण होता था (खासकर खनन क्षेत्र में)। इन कम्पनियों पर वोन हेनिज (प्रशा औद्योगिक और खनन अभिकरण का अध्यक्ष) और ग्राफ वोन रेडेन (सिलेसिया में उद्योग का प्रभारी) का नियंत्रण था रेडेन ने पूरे ब्रिटेन की यात्रा की और इसके कुछ समय बाद सिलेसिया में पलटनी भट्टी की प्रक्रिया की शुरुआत की। इसके साथ-साथ अन्य उत्पादन इकाइयों में कोक भट्टियों का इस्तेमाल शुरु किया और फ्रेडरिशग्रब (एक सीसा संयत्र) में वाष्प चालित इंजन का इस्तेमाल किया। सिलेसिया में स्थित लोहे के कारखाने मालपाने हट (1753 में स्थापित) की देख रेख के लिए रेडेन ने प्रमुख ब्रिटिश लौह उत्पादक जॉन विलकिंसन के भाई को प्रशा बुलाया।

10.8 परिवर्तन के स्रोत

1789-1815 के बीच उठाए गए सरकारी कदमों से भी इस क्षेत्र में पूंजीवाद की प्रकृति पर निर्णायक प्रभाव पड़ा। फ्रांस के क्रांतिकारियों के प्रत्यक्ष प्रशासन वाली सरकारों या उसके आस-पास की सरकारों जैसे राइनलैंड और बाद में वेस्टफेलिया साम्राज्य में फ्रांसीसी विधान का अनुगमन किया गया। क्रांतिकारी और नेपोलियन आक्रमण का सामना करने के उद्देश्य से सामाजिक संबधों की प्रकृति में किए जाने वाले बदलावों के परिणामस्वरूप परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हुई। महाद्वीपीय व्यवस्था और ब्रिटेन द्वारा महाद्वीप के बन्दरगाहों को अवरुद्ध किए जाने से (1806-1813) इस महाद्वीप से ब्रिटिश माल का निष्कासन हुआ और इससे लगभग सभी क्षेत्रों को फायदा हुआ।

10.8.1 क्रांतिकारी और नेपोलियन युग के विधान

सबसे पहले राइनलैंड की औद्योगिक बस्तियों में श्रेणियों को तोड़ा गया और उनके विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया जिससे कई उद्योगों में प्रतिस्पर्द्धाओं के स्तर में सुधार हुआ और नए प्रयोगों के लिए माहौल बना। महाद्वीपीय व्यवस्था से इस क्षेत्र के उत्पादों की मांग बढ़ी और फ्रांसीसी वसूलियों के बावजूद 1800 के दशक में ज्यूलिख, क्रेफेल्ड, आशेन, वूपर घाटी और डची ऑफ बर्ग में तीव्र औद्योगिक उछाल आया। इस संदर्भ में ट्रेकबिलकॉक का कहना है कि 1800-1807 के बीच आशेन के कई ऊन के कारखानों में 5 गुना उत्पादन बढ़ा और रूस और स्पेन को बड़ी मात्रा में ऊन निर्यात किया गया।

प्रशा में पुरानी शासन पद्धति (Ancient Regime) को बचाने के लिए क्रांतिकारी व्यवस्थाओं को अपनाया गया, कृषि दासों को मुक्त किया गया और मालिक और किसान के बीच तथा किसान तथा राज्य के बीच नया संबंध विकसित हुआ। इनके तात्कालिक प्रभाव के बावजूद 1815 में साम्राज्य की पुनर्स्थापना के बाद प्रशा में अन्य स्थानों पर राइनलैंड की संस्थागत पद्धति के साथ-साथ श्रेणियां भी जीवित रहीं। प्रशा में कृषि दास की मुक्ति का प्रभाव सीमित होने के बावजूद निर्णायक और सर्वव्यापी था।

1807-8 मुक्ति फरमान (Emancipation Edicts, वोन स्टीन नाम के मंत्री के प्रयत्न से) के द्वारा कृषि दासों को मुक्त तो कर दिया गया परंतु जमीन पर उन्हें कोई अधिकार नहीं दिया गया। हार्डिन बर्ग नाम के एक

मंत्री की देखरेख में 1811 में और भी कई उपाय किए गए जिनके अनुसार जिन कृषि दासों को जंकर सम्पत्ति पर उत्तराधिकार का अधिकार था उन्हें अपने खेतों का एक तिहाई हिस्सा ही छोड़ना होगा, जिनके पास इस तरह के अधिकार नहीं थे उन्हें अपनी आधी जमीन छोड़नी होगी, जिनके पास बहुत थोड़ी जमीन होगी उन्हें केवल लगान देना होगा। नई व्यवस्था होने तक कृषि दासों के सम्पत्तिगत अधिकारों को निर्धारित करने के लिए पुरानी पद्धति को ही आधार बनाया गया। अन्ततः 1816 में ऐसे किसानों की सम्पत्ति के लिए कानून बनाने का निर्णय किया गया जो पशु भी पालते थे और 1850 तक सम्पत्ति संबंधी व्यवस्थाओं को नियमित करने के लिए बहुत जोर नहीं दिया गया।

जर्मनी में छोटी जोतों (Rentenbanken) के बनाने के साथ-साथ कुछ वैधानिक उपाय भी किए गए। इससे भूमिपतियों को कर भुगतान की अदायगी में रियायत दी गई और उन्हें लंबे समय में इसे अदा करने की छूट दी गई। 1816 के बाद और उसके आस-पास खेती में मंदी आने के कारण मांग में गिरावट आई और इस प्रकार कुछ भूमियों का हस्तांतरण एक हाथ से दूसरे हाथ में हुआ। मुक्ति आदेश से अब ज्यादा से ज्यादा लोग जमीन खरीद बेच सकते थे क्योंकि इसमें बड़े काश्तकार और दूसरे लोगों (जो अभी तक कृषि दास थे और अभी तक जमीन नहीं खरीद सकते थे) को जमीन खरीदने का अधिकार मिला। इसके अलावा कृषि का वाणिज्यिकरण हुआ जो पहले संभव नहीं था। मंदी समाप्त हो जाने के बाद कृषि के वाणिज्यिकरण से पूर्वी प्रदेशों में कृषि क्षेत्र में उन्नति हुई।

10.8.2 जोल्वेरिन

1815 के बाद 1820 के दशक के आर्थिक विकास में बड़े क्षेत्रीय बाजारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1834 में प्रशा में जोल्वेरिन (सीमा शुल्क संघ) की स्थापना के पहले इस बदलाव से जर्मन राज्यों में उत्पादित वस्तुओं के वितरण की कई समस्याओं और बाधाओं का समाधान हो सका। अभी तक इन्हीं बाधाओं के कारण इन क्षेत्रों में औद्योगिक पूंजीवाद का उदय नहीं हो सका था क्योंकि यहां के उत्पादक अपने माल या तो संरक्षित फ्रांसीसी बाजार में बेच सकते थे या उन्हें बाजार में अंग्रेजी माल की प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता था। इन परिस्थितियों में निम्नलिखित क्षेत्रीय इकाइयां निर्मित की गईं।

क) प्रशा के बाजार में 1818 के सीमा-शुल्क के तहत कच्चे मालों पर कम शुल्क लगाया गया। चाय और कॉफी जैसे 'औपनिवेशिक मालों' पर ज्यादा शुल्क लगाया गया (20 %), उत्पादित वस्तुओं पर कम शुल्क लगाया गया (10 %) और वस्तुओं के आने जाने पर ज्यादा शुल्क लगाया गया।

ख) बवेरिया और वर्टेमबर्ग में साउथ जर्मन लीग की स्थापना की गई (1928)

ग) सेंट्रल लीग बनाया गया (सेक्सोनी, हैनोवर, थरिंजियन स्टेट, कोबर्ग और हेंसे)

घ) प्रशा की भौगोलिक स्थिति काफी लाभप्रद थी (पोलैंड और रूस जाने वाले राज्य मार्ग इसके क्षेत्र से गुजरते थे और फ्रैंकफर्ट तथा लिपजिग जैसे महत्वपूर्ण शहर इस मार्ग पर स्थित थे। निचले राइन के दोनों किनारे भी इसके नियंत्रण में थे)। अपनी इस भौगोलिक स्थिति का फायदा उठाकर प्रशा ने1834 के बाद से दूसरे राज्यों से सीमा शुल्क समझौता करने का आग्रह किया ताकि एक बड़ा बाजार बनाया जा सके। हेन्से टाउन्स, हैनोवर, होल्सटीन, मैकलेनबर्ग और ओल्डेनबर्ग को छोड़कर सभी राज्य 'जोल्वेरिन' में शामिल हुए। सभी सदस्य राज्यों में प्रशा के 1818 के सीमा-शुल्क (कुछ छोटे मोटे संशोधनों के साथ) को लागू किया गया।

10.8.3 रेलवे

व्यापार समझौतों की इस व्यवस्था के अंतर्गत जर्मन राज्यों में रेलवे के विकास के कारण सिलेसिया और राइनलैंड में लोहा और कोयला उत्पादन में नए प्रयोग किए गए जिससे उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई। रेलवे लाइनों के निर्माण के कारण घरेलू बाजार का विस्तार हुआ जो अभी तक राइन, एलबे और ऑडर नदियों और उनसे जुड़ी नहरों तक सीमित था।

1830 के दशक में रेलवे निर्माण शुरू हुआ। इस संदर्भ में प्रशा और सेक्सोनी में व्यापक विचार विमर्श हुआ। फ्रेडरिक लिस्ट और फ्रेडरिक हारकोर्ट ऑफ वेटर अपने समर्थकों के साथ रेलवे निर्माण का समर्थन कर रहे थे और प्रशा के राजा के सलाहकार क्रिश्चन वोन रोथर और उनके साथी इसका विरोध कर रहे थे। प्रशा

में निजी क्षेत्र ने रेलवे लाइन बिछाने में मुख्य भूमिका निभाई। ये लाइनें 1838, 1840, 1841, 1843, 1848 में बिछाई गईं। जबकि बावेरिया और बैडेन में राज्य ने रेलवे का निर्माण किया। 1850 तक 3660 मील लंबी लाइन बिछ चुकी थी और इसके बाद भी यह कार्य तेजी से आगे बढ़ रहा था।

इन परिस्थितियों में लोहा और कोयला उद्योगों में विदेशी सहायता से विकास हो रहा था। ऊपरी सिलेसिया में कोयले के उत्पादन में सबसे ज्यादा वृद्धि हुई जबकि राज्य के नियंत्रण वाले रूर और सार के कोयला खदान भी महत्वपूर्ण थे। 1838-50 के बीच कच्चे लोहे का उत्पादन 266,000 टन से बढ़कर 545,000 टन तक हो गया।

10.8.4 ज्वायंट स्टॉक बैंकों का विकास

पेरिस के क्रेडिट मोबाइलियर और बेल्जियम के सोसाइटे जेनरेल की तर्ज पर जर्मन राज्यों में ज्वायंट स्टॉक बैंकों के विकास से यह विस्तार संभव हो सका। अभी भी उद्योग को कृषि व्यापारिक पूंजी या उस क्षेत्र के 'कंजरवेटिव' बैंकिंग घरानों पर निर्भर करना पड़ रहा था जो सरकार या भूमिपतियों को ऋण देना ज्यादा पसंद करते थे (शैफेनहाउसेन या रोथ्सचिल्ड जैसे घराने), हालांकि बैंक ऑफ कॉमर्स ऐंड इंडस्ट्री की स्थापना के बाद पूंजी निवेश का एक नया प्रारूप स्थापित हुआ। कोलोन के बैंकर्स, ओपेनहिम, मेविसेन और डेशमेन के समर्थन से कार्लश्रुहे के एक बैंकर मोर्टिज वोन हेवेन ने इस बैंकिंग घराने की स्थापना की। रोथ्सचिल्ड ने फैंकफर्ट सिनेट में इसका जमकर प्रतिरोध किया। प्रशा के नागरिक सेवा अधिकारियों ने इसे हतोत्साहित किया जो कोलोन में शैफेनहाउसेन बैंकवेरिन का वर्चस्व देखना चाहते थे। हालांकि मूल पूंजी पेरियेर्स से प्राप्त हुई जिनके साथ एक समझौते द्वारा सिंडिकेट का निर्माण किया गया और इसके बाद नॉर्थ जर्मन लायड शिपिंग कम्पनी, आसट्रिआई रेलवे और राज्य ऋणों में व्यापक रूप से निवेश किया।

इसके बाद निम्नलिखित उद्यमों की स्थापना हुई :

क) डेविड हाउसमैन के नेतृत्व में डिस्कोन्टो-जेसलेसशैट ;और बाद में बिस्मार्क के बैंकर ब्लेशोडर जिसने 'प्रशियन कांसोर्टियम के जरिए प्रशा सरकार के लिए राज्य ऋण उगाहने में निर्णायक भूमिका अदा कीद्ध।

ख) बर्लिन्स हैंडेल्स जेसेलशैट, जिसने ब्लेशोडर और मेन्डेलशोन (बर्लिन) तथा मेविसेन और ओपेनहिम (कोलोन) के नेतृत्व में राइनलैंड और बर्लिन के बैंकों को एकजुट किया।

ग) ड्रेसनर बैंक, ड्यूश बैंक और डर्मस्टेडटर बैंक

घ) मैगडेबर्ग, हैंडल्स जेसेलशैट, जिसने स्थानीय बाजारों पर ध्यान केंद्रित किया।

ड) एफ. डब्ल्यू रैसिन रूरल कोओपरेटिव बैंक (इनकी शुरुआत 1862 में हुई) और शुलजे, डेलिटीसे कोओपरेटिव बैंक (इसमें शिल्पी और दुकानदार शामिल थे) की अलग तरीके से स्थापना हुई जो खासतौर से वर्टेमबर्ग और दक्षिण जर्मनी में केंद्रित थे।

बोध प्रश्न 2

1) औद्योगिक पूंजीवाद के विकास के आरंभ में जर्मनी की क्या सीमाएं थीं ?

....

....

....

....

....

2) 1789-1815 के बीच जर्मन राज्य ने पूंजीवाद के विकास के लिए क्या कदम उठाए?

....

....

....

....

....

10.9 1871 के बाद विकास

1871 में जर्मन साम्राज्य की स्थापना के बाद औद्योगिक उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई जिसने 1852 के उछाल को जारी रखा। जौलवेरिन ने बाजार को एक सूत्र में पिरोया और 1870 के बाद फ्रांस द्वारा प्राप्त भुगतान से सार्वजनिक व्यय का स्तर ऊंचा रहा। इन दोनों कारकों के कारण उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई।1870-74 की अवधि, जो साम्राज्य के स्थापना वर्ष (ग्रुन्डेरजारे) माने जाते हैं, में कुल घरेलू उत्पाद में तीव्र दर से वृद्धि हुई। 1873 के वित्तीय संकट के साथ मंदी आई जो 1889 तक जारी रही। इस मंदी से पूरा यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका प्रभावित हुआ परंतु इस स्थापना के संकट (ग्रुंडरक्रिसे) से अन्तत: आर्थिक प्रसार बाधित नहीं हुआ। थॉमस-गिलकाइस्ट इस्पात निर्माण प्रक्रिया के पेटेन्ट किए जाने से जर्मनी को अपने फॉस्फोरिक कच्चे लोहे के संसाधनों के व्यापक उपयोग का मौका मिला, जिसके कारण संयुक्त राज्य अमेरिका में रेलवे उपकरणों की मांग बढ़ी और परिणामस्वरूप इस अवधि में तेजी से विकास हुआ जिसके आंकड़े नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

जर्मन उद्योग (1870-1913) में प्रतिवर्ष उत्पादन की औसत वृद्धि दर

औद्योगिक क्षेत्र	उत्पादन वृद्धि का %
धातु उत्पादन	5.7
लौह उत्पादन	5.9
इस्पात उत्पादन	6.3
धातुकर्म	5.3
रसायन	6.2
कपड़ा	2.7
वस्त्र और चर्मकर्म	2.5
गैस, पानी और बिजली	9.7

स्रोत : एस.बी.सॉल और ए मिलवार्ड, द डेवेलप्मेंट ऑफ द इकोनोमीज ऑफ कॉन्टीनेंटल यूरोप (1977 पृ026)

यह देखा गया कि इस समय स्टॉक बैंकिंग ने औद्योगिक प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और उत्पादकों को प्रतिस्पर्द्धा से बचाया तथा उत्पादक-संघ और परिषद स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। कहने का तात्पर्य यह कि इन संगठनों की स्थापना किसी क्षेत्र में उत्पादन के मूल्य निर्धारण और उत्पादन नीति के संबंध में एक राय बनाने के लिए की गई। इन दबावों और परिस्थितियों के फलस्वरूप चार प्रमुख इस्पात कम्पनियों के मूल्यों और उत्पादों को नियमित करने के लिए 1904 में जर्मन स्टीलबर्ग एसोसिएशन की स्थापना की गई। इसी प्रकार के अन्य उत्पादक-संघ भी इस समय मौजूद थे। इस अवधि में प्रमुख कम्पनियों के निदेशक मंडल में बैंकों के प्रतिनिधि शामिल होते थे और उनके माध्यम से बैंक नीति निर्माण में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करता था। इस व्यवस्था से निस्संदेह प्रतिस्पर्द्धा को सकारात्मक रूप से कम किया जा सकता था और उत्पादन को सुनियोजित किया जा सकता था। इसके फलस्वरूप जर्मन उद्योग अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा के लिए खड़ा होने लगा। इस व्यवस्था में एक खराबी थी जिसे बहुत शिद्दत से महसूस किया गया : समझौतों के दौरान मजदूरों का ख्याल नहीं रखा जाता था जिससे मजदूरों में निराशा की भावना पैदा हो रही थी। विद्वानों का मानना है कि इन औद्योगिक टकरावों से हिंसा बढ़ी और शताब्दी का अंत होते-होते देश में वर्ग संघर्ष काफी तेज हो गया। विलियम II के शासन काल में शाही सरकार ने आर्थिक कार्यकलाप और प्रबंधन में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप कर वित्तीय पूंजी और औद्योगिक पूंजी की शक्तियों को दबाने की कोशिश की। 1914 के पहले उन्हें किसी प्रकार की सफलता नहीं मिली। सरकार ने हिबेर्निया उद्यम को खरीदने की असफल कोशिश की जिसे इस उद्योग ने सफलतापूर्वक परास्त कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रथम विश्वयुद्ध की शुरुआत के समय भी वर्ग संघर्ष के समाधान के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे।

10.10 सारांश

इस इकाई में हमने निम्नलिखित पक्षों पर विचार किया :

- फ्रांस और जर्मन औद्योगिक पूंजीवाद एक तरफ किसानों के भूमि से बंधे होने (फ्रांस में परम्परागत अधिकारों के तहत छोटे-छोटे खेतों पर अधिकार और जर्मनी में कृषि दास प्रथा) और दूसरी तरफ बड़े भूमिपतियों के संस्थागत वर्चस्व के कारण बाधित हुआ।
- उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण राज्य ने, क) एकरूप कानून बनाने, ख) उद्योग को वित्त प्रदान करने ग) और एकरूप बाजार उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।
- हालांकि फ्रांस में फ्रांसीसी क्रांति ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की क्योंकि इस समय विशेषाधिकारों पर आक्रमण किया गया जिससे कुलीनवर्ग और श्रेणियों की पकड़ कमजोर हुई।

10.11 शब्दावली

पिछड़ापन : ऐसा समाज और अर्थव्यवस्था जो आधुनिक न बन सका हो।

फिजियोक्रेट्स : फ्रांस के लेखक और चिंतक जो किसी अर्थव्यवस्था के लिए भूमि को प्रमुख स्रोत मानते थे। उनका यह भी मानना था कि भूमि की उत्पादकता को भूमिपति ही बेहतर बना सकता था। किसी अर्थव्यवस्था को धन प्रदान करने में उद्योग और व्यापार का स्थान कृषि के बाद आता है।

मौद्रिक भुगतान : मुद्रा में किया गया भुगतान।

काश्त : खास अवधि के लिए किसानों को दिया जानेवाला खेत (जो उसका अपना न हो) जिसपर उसे तय अवधि तक खेती करने का अधिकार होता है।

किरायाभोगी प्रथा : निवेश से प्राप्त आय और किसी धंधे में न लगे होने के बावजूद निरंतर आय प्राप्त करना।

पितृसत्तावाद : परम्परागत रूप से समाज के श्रेष्ठजनों द्वारा किया जाने वाला कल्याणकारी कार्य; यह कार्य दान दक्षिणा या आधुनिक उद्योगों या आधुनिक राज्य द्वारा आयोजित सामाजिक कल्याण से अलग था।

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 10.2। आप पूंजीवाद के धीमे विकास को फ्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग चरित्र के साथ जोड़कर देख सकते हैं।
2) देखिए उपभाग 10.3.2। आप फ्रांस में एकरूप शासन के अभाव, अलग-अलग कानूनी व्यवस्थाओं, व्यापार और उद्योग की निश्चित हैसियत न होने का उल्लेख कर सकते हैं।
3) देखिए उपभाग 10.4.1.। आप बता सकते हैं कि इसमें सम्पत्ति का पुनर्वितरण कैसे हुआ।
4) देखिए उपभाग 10.4.3.। आप उभरते हुए फ्रांसीसी उद्योगों की जरूरतों पर प्रकाश डाल सकते हैं।
5) देखिए भाग 10.5। आप बैंकिंग और ऋण सुविधाओं की स्थापना पर विचार कर सकते हैं।
6) देखिए भाग 10.6। इसमें आप बता सकते हैं कि अल्सास और लॉरेन के जर्मनी के हाथों में चले जाने के बावजूद किस प्रकार यहां के उद्योग सीमा के दोनों ओर कार्यरत रहे।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 10.7। आप समन्वित बाजार के अभाव, कोयला और लोहे की गुणवत्ता, कृषि दास व्यवस्था के कारण मजदूरों के आवागमन में आनेवाली बाधाओं, सीमित पूंजी आपूर्ति आदि की चर्चा कर सकते हैं।
2) देखिए भाग 10.7

इकाई 11 रूस में औद्योगिक पूंजीवाद

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह देख सकेंगे कि किन कारकों के कारण रूस में औद्योगिक पूंजीवाद का विकास देर से हुआ और पर्यावरणात्मक और संस्थागत पिछड़ेपन की इसमें क्या भूमिका रही।
- आप जान पाएंगे कि इन कमियों को दूर करने का जिम्मा किस प्रकार महत्वाकांक्षी राज्य और अत्यधिक बोझ से दबे किसानों के कंधे पर आ गया।
- आप बता सकेंगे कि इन कमियों के बावजूद रूस में सभी उद्योग किस प्रकार उच्च वृद्धि दर को संभव बना सके, और
- आप जान सकेंगे कि किस प्रकार उपभोक्ता वस्तुओं के लिए सीमित बाजार होने के कारण औद्योगिक उन्नति का रुझान मुख्य रूप से भारी उद्योग की ओर ही रहा।

11.1 प्रस्तावना

रूस में औद्योगिक पूंजीवाद की प्रगति 1890 के दशक में हुई। रूस इस मामले में अपने मुख्य आर्थिक और राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों इंगलैंड, फ्रांस और जर्मनी से पिछड़ गया। इन देशों में औद्योगीकरण शुरू होने के कई दशकों बाद रूस में औद्योगिक पूंजीवाद का उदय हुआ। रूस में देर से औद्योगीकरण होने के कई कारण हैं जिसमें वहां की पर्यावरणात्मक विशेषताएं और संस्थागत पिछड़ेपन भी जिम्मेदार हैं। परिणामस्वरूप रूस में राज्य ने स्वयं औद्योगिक पूंजीपति की भूमिका निभाई जो पश्चिमी अर्थव्यवस्था में नहीं था।

रूसी औद्योगीकरण देर से शुरू हुआ। इसका उन्हें लाभ मिला और उन्होंने नई औद्योगिक रणनीतियां शुरू नहीं कीं बल्कि प्रचलित रणनीतियां अपनाईं। उद्यमशीलता के लिए राज्य और विदेशी निवेशकों, पूंजी और बाजारों पर आश्रित रहने का रूसी पूंजीपतियों को नुकसान उठाना भी पड़ा। इस प्रकार औद्योगीकरण देर से होने के कारण आश्रितता इसकी नियति बन गई।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक रूसी राज्य के सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि वह अपने अपर्याप्त संसाधनों के बावजूद यूरोप की एक बड़ी शक्ति बनने की महत्वकांक्षा रखता था। अपने पूरे इतिहास में और सोवियत युग में भी रूसी औद्योगीकरण राजनैतिक उद्देश्यों से प्रेरित रहा। उन्नीसवीं शताब्दी में रूस की अपेक्षा यूरोपीय अर्थव्यस्था की वृद्धि दर हमेशा ऊंची रही क्योंकि वहां औद्योगीकरण काफी पहले हो चुका था और आर्थिक विकास ज्यादा संतुलित था। इसके अलावा वहां कृषि व्यवस्थाओं और औद्योगिक क्षेत्रों के भीतर और उनके बीच भी बेहतर संतुलन था। औद्योगीकरण में बिलंब होने और अनुकूल माहौल न होने के कारण रूस अपेक्षित गति से आगे नहीं बढ़ सका। राष्ट्र राज्यों की राजनैतिक ताकत उनकी आर्थिक समृद्धि से मापी जाती थी। औद्योगिक क्षेत्र में रूस न चाह कर भी पश्चिमी यूरोप पर निर्भर रहा और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान यूरोप में उसकी राजनैतिक आवाज बुलंद न हो सकी।

पश्चिमी यूरोप में जहां औद्योगीकरण का उत्तरदायित्व औद्योगिक क्षेत्र ने संभाला वहीं रूस में इसका अधिकांश बोझ किसानों के कंधों पर पड़ा। इसके लिए उन्हें भारी करों का भुगतान करना पड़ा और इन करों के भुगतान के लिए अनाज का निर्यात करना पड़ा तथा अपनी उपभोक्ता संबंधी जरूरतों को स्थगित करना पड़ा। अन्तिम कारक का संबंध मुख्य रूप से रूसी औद्योगिक पूंजीवाद की अपनी विशिष्टता से है क्योंकि यहां हल्के उद्योगों की अपेक्षा भारी उद्योगों पर ही जोर दिया गया था।

11.2 रूस के पिछड़ेपन के पर्यावरण संबंधी कारक

रूस का भौगोलिक क्षेत्र काफी बड़ा था और यहां रहने वाले लोगों का संकेंद्रण और संख्या बहुत कम थी। रूस के पिछड़ेपन का मुख्य कारण यही माना जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी तक जनसंख्या इतनी कम थी और इससे होने वाली उत्पादकता भी इतनी नागण्य थी कि राज्य का उस पर कर लगाने का कोई मतलब नहीं था। इसके अलावा रूस का कच्चा माल दक्षिण और पूर्व के हिस्सों में पाया जाता था जबकि प्रशासकीय इलाके और जनसंख्या बहुल क्षेत्र मध्य और उत्तरी रूस में केंद्रित थे। गर्मी के दिनों में नदियों और जाड़े के दिनों में सड़क से धीमा यातायात हो सकता था। इससे संसाधनों के परिवहन की लागत काफी हो जाती थी और हर मौसम में परिवहन संभव भी नहीं था। रेलवे के आगमन के बाद ही इस स्थिति में सुधार हो सका।

उत्तर की ओर ऊपरी हिस्से में बसे होने के कारण रूस की जलवायु काफी कठिन और पीड़ादायक थी। विश्व के अन्य देशों के मुकाबले पूरे वर्ष में कम समय के लिए खेती की जा सकती थी। यूरोप की अपेक्षा यहां अनाज का उत्पादन कम होता था और चरागाह भी कम समय के लिए उपलब्ध होता था जिससे अनाज और पशुधन उत्पाद् का अधिशेष स्तर कम होता था। किसानों की आय और औद्योगिक वस्तुओं को खरीदने की शक्ति कम रही और साम्राज्य में व्यापार काफी सीमित रहा क्योंकि अधिकांश उत्पादों का विनिमय की अपेक्षा उपभोग ज्यादा होता था। किसानों के पास पूंजी न होने के कारण वे बेहतर उर्वरक, बीज और मशीन नहीं खरीद पाते थे।

उत्तरी यूरोप की भूमि अनुपजाऊ थी और यहां की मिट्टी अनुर्वरक थी। चारों ओर घने जंगल, दलदल और कई नहर थे जिसके कारण यहां उन्नत कृषि संभव नहीं थी। इसे देखते हुए रूसी शासकों ने उपजाऊ भूमी की ओर अपना रुख किया और आक्रमण कर वहां अपना उपनिवेश स्थापित किया। वे पूरब की ओर उराल और साइबेरिया तक, दक्षिण की ओर काला सागर के तटवर्ती इलाकों तक और दक्षिण पूर्व में कॉमौस और कैसपियन तक के इलाकों को उन्होंने अपने कब्जे में कर लिया। वस्तुत: औपनिवेशिकरण रूसी इतिहास का एक हिस्सा बन गया। इसी से रूसी इतिहासकार वी. ओ. क्लूसेवेस्की का मानना था कि "रूस एक ऐसा देश है जो खुद को उपनिवेशिकृत करता है"।

चूंकि कच्चा लोहा और इंधन, कोयले जैसे उद्योग के लिए जरूरी ऊर्जा स्रोत रूसी साम्राज्य के बिलकुल अंतिम सीमांत पर स्थित थे इसलिए औद्योगीकरण को रेलवे का इन्तजार करना पड़ा। इसके पहले यूरोप की अपेक्षा परिवहन की दर अधिक होने के कारण रूस में अधिकांश उत्पादित वस्तुओं की प्रति इकाई उत्पादन लागत अधिक होती थी। कोक की मदद से कच्चे लोहे को पिघलाने की पद्धति का इस्तेमाल करने के कारण इंगलैंड और अन्य यूरोपीय देशों में औद्योगिक विकास तेजी से हुआ। क्रिबोई रोग के लोहे के क्षेत्र और डोनेट्स के कोयला खदान उन क्षेत्रों में पड़ते थे जिन्हें 1730 के दशक में तुर्कों से छीना गया था। परंतु इन इंधनों का उपयोग करने वाले कारखाने मास्को के समीप केंद्रीय औद्योगिक क्षेत्र और आगे उत्तर की ओर सेंट पीटर्सबर्ग में स्थित थे। 1860 के दशक के बाद क्रिबोई रोग और डोनेट्स को रेलवे लाइन से जोड़ा गया और उसके बाद उन्हें रेलवे लाइन के जरिए पूरे देश से जोड़ा गया। अभी तक रूसी अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से अनाज, इमारती लकड़ी और वन उत्पादों पर आधारित थी। यही उनका प्रमुख प्राकृतिक संसाधन था जिसका वे निर्यात भी करते थे।

11.3 कृषि परम्परा

1913 में रूस की 85% जनता गांवों में निवास करती थी जबकि रूस की राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा केवल आधा ही था। शहरों में प्रतिव्यक्ति आय कम थी परंतु फिर भी गांवों की तुलना में दोगुनी थी। देश का आर्थिक विकास मुख्य रूप से कृषि की उन्नति पर निर्भर था। हालांकि रूस में देर से औद्योगिक विकास का मुख्य कारण अधिकांशत: कृषि क्षेत्र की प्रमुखता को ही माना जाता है।

1860 से लेकर 1913 तक कृषि उत्पादन में 2% की वृद्धि हुई जबकि जनसंख्या में प्रतिवर्ष 1.5% की दर से वृद्धि हुई। यह वृद्धि कृषि क्षेत्र के विस्तार और अधिक उपज देने वाले फसलों के उपयोग के कारण हुआ। परंतु कृषीय उत्पादकता या कृषि में संलग्न प्रति व्यक्ति आय में बहुत थोड़ी सी वृद्धि हुई और 1913 तक अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इनका स्तर काफी नीचे रहा।

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान मुख्य रूप से अनाज का उत्पादन होता रहा। 1913 तक 90% भूमि पर अनाजों की खेती की जाती थी परंतु कुल कृषि उत्पाद में अनाज का हिस्सा केवल आधा ही था। इसके अलावा कृषीय क्षेत्र में पशुधन उत्पाद और दुग्ध उत्पादन से भी थोड़ी बहुत आय होती थी और थोड़े बहुत इलाकों में चारा उत्पादन होता था और थोड़ी बहुत जमीन चरागाह के लिए छोड़ी गई थी।

11.3.1 संस्थागत कारक : कृषि दास व्यवस्था

पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते आते पश्चिमी यूरोप में कृषि दास व्यवस्था लगभग समाप्त हो गई थी। परंतु इसके विपरीत रूस में लगभग 1550-1650 के बीच स्वतंत्र ग्रामीण जनता को कृषि दास बनाया गया। वे या तो मजदूरी (बर्शिना) करते थे या नगद या वस्तु (ओब्रोक) के रूप में दास की भूमिका की अदायगी करते थे। 1550 के दशक में अस्त्राखान और कजान के खानेतों पर रूसी आधिपत्य के बाद खेती करने के लिए उपजाऊ दक्षिणी काली जमीन के क्षेत्र रूसी उपनिवेशीकरण के लिए उपलब्ध हो गए। इस उपजाऊ भूमि पर बड़ी संख्या में किसानों के बसने और भूमिपतियों से आजाद होने के कारण रूस का मध्यवर्ती और उत्तर पश्चिम क्षेत्र के बड़े हिस्से वीरान हो गए। इससे राजस्व उगाही में कठिनाई होने लगी और भूमिपतियों को मजदूर नहीं मिलने लगे। किसानों को कृषि दास बनाकर और उन्हें भूमि से और किसी खास भूमिपति (पोमेशिक) से बांधकर इन दोनों समस्याओं का समाधान कर दिया गया।

कृषि दास व्यवस्था से किसानों की आवाजाही पर प्रतिबंध लग गया और भी इसी प्रकार के कानून बनाकर शहर में रहने वाले लोगों और पुजारियों को अपने कार्यों और व्यवसायों से जोड़ दिया गया।

11.3.2 संस्थागत कारक : कम्यून

गांवों में कर अदायगी और सेना में भर्ती की सामूहिक जिम्मेदारी खेती-सामुदायिक-समूह (ऑबशिना) और इसके राजनैतिक समकक्ष मीर की थी। प्रत्येक परिवार के लोग एक इकाई के रूप में मिलकर खेती करते थे परंतु इस पर कम्यून का सामूहिक अधिकार होता था। मीर साम्राज्य की सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई थी। अपने सदस्यों की जमीनों पर संयुक्त रूप से अधिकार रखने के साथ-साथ कम्यून कृषि उत्पादन से जुड़े विभिन्न प्रकार की स्थानीय सेवाओं, शिक्षा, स्वास्थ्य और संचार के लिए भी उत्तरदायी था। कम्यून के अन्तर्गत खेती योग्य जमीन को कई भागों में विभाजित किया जाता था जिसका आधार खेत की उर्वरता और गांव से इसकी दूरी होती थी। प्रत्येक परिवार को अच्छे और खराब सभी प्रकार के खेत दिए जाते थे, परिवार में वयस्क सदस्यों की संख्या के आधार पर खेतों का अवंटन किया जाता था और इन खेतों का समय-समय पर पुनर्वितरण किया जाता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सभी परिवारों को अच्छे और बुरे खेत दिए जाते थे ताकि वे अपना जीवन-यापन कर सकें और कर की अदायगी भी कर सकें।

निजी मिल्कियत की अनुपस्थिति और समय-समय पर किए जाने वाले पुनर्वितरण के आधार पर किसान अपने खेतों में दीर्घावधि सुधार नहीं करते थे और अपने खेतों में सामर्थ्य रहने पर भी ज्यादा निवेश नहीं करते थे। उर्वरता प्राप्त करने के लिए एक तिहाई खेत को हमेशा खाली छोड़ दिया जाता था परंतु खेतों के बार-बार पुनर्वितरण से यह प्रथा भी हतोत्साहित हुई। उनके खेतों के आकार बहुत छोटे थे और खेतों में आने और जाने में भी काफी समय लगता था। इन सब कारणों से खेतों में उपज बहुत ज्यादा नहीं हो पाती थी। इसके कारण नए स्थापित क्षेत्रों में उपज कम होती थी और जनसंख्या बहुल पुरानी बस्तियों में श्रम उत्पादकता बहुत ही कम थी।

11.4 औद्योगीकरण पर मुक्ति का प्रभाव

औद्योगीकृत अर्थव्यवस्था के लिए कृषि दास व्यवस्था स्पष्ट रूप से एक बड़ी बाधा थी। इसमें घरेलू बाजार का फैलाव नहीं हो पाता था। कृषि में उच्च स्तरीय प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल नहीं हो पाता था और प्रति व्यक्ति आय भी बहुत कम होती थी। इसकी सामाजिक संरचना में शीर्ष पर कुछ थोड़े से कुलीन वर्ग के लोग रहते थे और शेष किसानों की एक बड़ी फौज होती थी। इस व्यवस्था में मध्य वर्ग की संख्या काफी कम थी और गत्यात्मकता, साक्षरता और आय भी कम थी जो एक औद्योगिक समाज के उदय के लिए अपरिहार्य होती थी। कृषि दास व्यवस्था के मूल्य और दृष्टिकोण औद्योगीकरण के प्रतिकूल होते हैं क्योंकि यहां औद्योगिक उत्पादन में निवेश करने की अपेक्षा भूमि व्यापार और कृषि दासों में निवेश को प्राथमिकता दी जाती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक पूरे रूसी समाज में यह महसूस किया जाने लगा कि आधुनिक आर्थिक विकास के लिए कृषि दास व्यवस्था एक बड़ी बाधा थी। इसके विरोधियों ने यह कहना शुरू किया कि इस व्यवस्था के रहते कृषि का वाणिज्यिकरण नहीं हो सकता , इसमें आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता और इसके रहते उद्योग को मुक्त श्रमिक नहीं मिल सकते। 1861 में कृषि दास व्यवस्था के उन्मूलन (जिसे मुक्ति कहा गया) के पहले कारखानों में काम करने वाले मजदूरों में कृषि दासों से आए मजदूरों की संख्या मात्र 13% थी। धातुकर्म जैसे उद्योगों में जबरन लगाए मजदूरों की अपेक्षा कपड़ा उद्योगों में लगे मुक्त श्रमिकों की उत्पादकता बेहतर थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ज्यादा से ज्यादा कृषि दास शारीरिक श्रम (बार्शिना) के बदले नगद या वस्तु के रूप में अदायगी (ओब्रोक) को प्राथमिकता देने लगे। इससे **गैर कृषि रोजगारों में वृद्धि** हुई जिससे कठोर सामंती सामाजिक व्यवस्था में गत्यात्मकता आई।

1840 और 1850 के दशक में रूस के गांवों में किसानों ने कृषि दास व्यवस्था के **खिलाफ जमकर विद्रोह किया। 1856 में कीमिया युद्ध में रूस की हार** के बाद कृषि दास व्यवस्था का उन्मूलन **अनिवार्य हो गया। पूरे रूस में कृषकों के असंतोष और विद्रोह के कारण आंतरिक सुरक्षा की समस्या पैदा हो गई थी और विदेशों के आकमण**

की संभावना बनी हुई थी। 19 फरवरी 1861 की राजाज्ञा के द्वारा समाज के अन्य सदस्यों की भांति कृषि दासों को भी समान नागरिक अधिकार दिए गए, अब उन्हें शादी करने की स्वतंत्रता थी, वे कानून का सहारा ले सकते थे और स्वतंत्र रूप से औद्योगिक और वाणिज्यिक उद्योग स्थापित कर सकते थे और उसे चला सकते थे। जो खेत वे जोतते थे उसपर उनका अधिकार स्थापित होना था परंतु इसके लिए उनको भुगतान करना था। इन भुगतानों के लिए कम्यून को संयुक्त रूप से जिम्मेदारी दी गई। इसे छुटकारा देय के रूप में जाना गया। भद्रजनों को कृषि दास छिन जाने के बदले किसानों की कुछ भूमि दी गई।
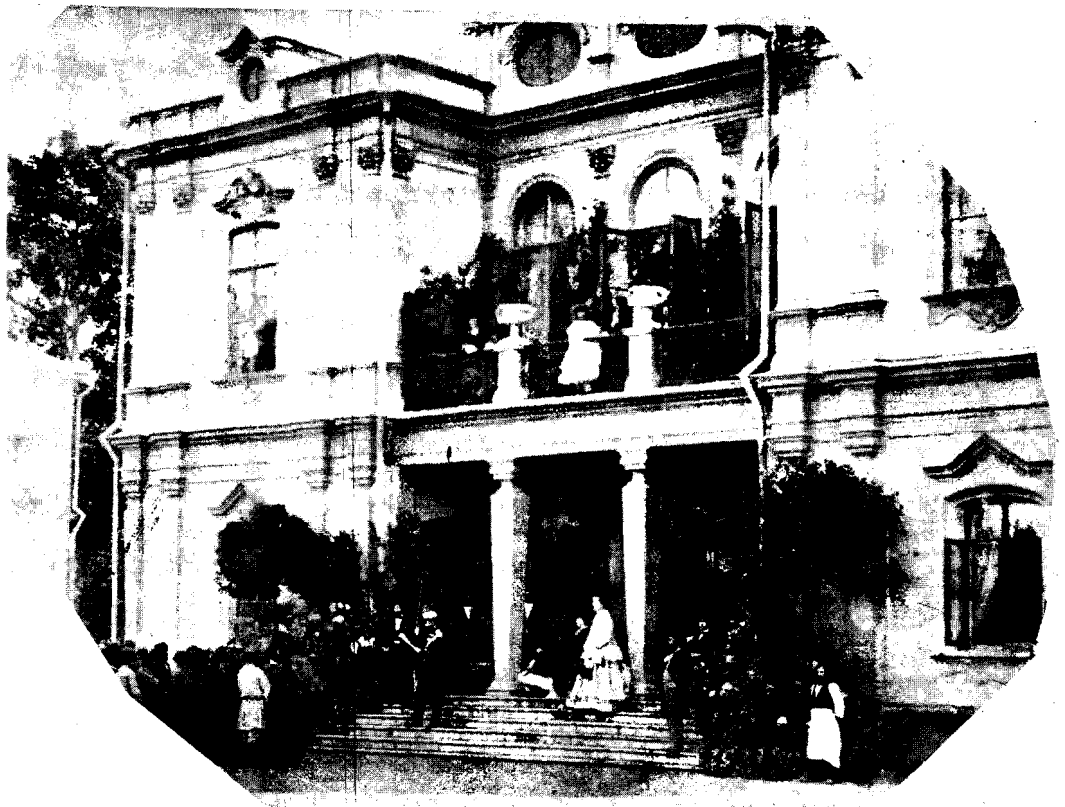
चित्र 1 : 1861 में कृषि दासों की मुक्ति की घोषणा का दृश्य

इस कदम के सकारात्मक पहलू इस प्रकार हैं : अब किसान उद्योग और व्यापार में हिस्सा लेने लगे और मुनाफा कमाने के लिए आजाद थे; अब मुद्रा अर्थव्यवस्था की संभावना भी बढ़ी क्योंकि कृषक अब अपना छुटकारा देय नगद में भुगतान करने लगे। परंतु कई इतिहासकारों का मानना है कि 1861 में कृषि दास व्यवस्था का उन्मूलन छल मात्र था क्योंकि नए मुक्त कृषि दास पर लंबे समय तक के लिए कर्ज लाद दिया गया था और उन्हें भूमि का आवंटन अपर्याप्त और असंतुलित हुआ था। इसके अलावा देय के भुगतानों का संयुक्त उत्तरदायित्व कम्यून को सौंपा गया था जो किसानों द्वारा देय का भुगतान किए बिना उन्हें बाहर नहीं जाने देती थी। इसलिए किसानों की आवाजाही की समस्या अभी भी बनी रही।

छुटकारा अदायगी किसानों पर कर का एक भारी बोझ था। वस्तुत: यह कृषि से प्राप्त होने वाला एक नजराना था। 1861 के बाद इस आय में से बहुत कम ही कृषि में पुनर्निवेशित किया गया क्योंकि अधिकांश भूमिपति खेत की पैदावार और उत्पादन बढ़ाने के बदले खेत की खरीद बिक्री करने में ज्यादा रुचि रखते थे।

किसानों को इन भुगतानों के अलावा अल्कोहल, चीनी, माचिस, तम्बाकु और किरासन (मिट्टी तेल) जैसी अनिवार्य वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर भी देना पड़ता था। इससे किसानों पर करों का बोझ लगातार बढ़ता चला गया। परंतु इन अप्रत्यक्ष करों का उपयोग 1880 के दशक से रेलवे और अन्य उद्योगों को वित्त प्रदान करने के लिए किया गया। हालांकि पूरे देश में औसतन किसानों के हाथ से 4% भूमि ही निकली परंतु 16 ब्लैक-अर्थ

और स्टेपे प्रांतों में एक चौथाई जमीन उनके हाथ से निकल गई और यूक्रेन में 31% जमीन उनकी नहीं रही जो सर्वाधिक मूल्यवान और उपजाऊ थी। रूसी अर्थशास्त्री यानसोन ने आकलन करके बताया था कि किसानों को अपना जीवन यापन करने के लिए काली मिट्टी के 13.5 एकड़ और गैर-काली मिट्टी के 20 एकड़ खेतों की जरूरत थी जबकि 75% आजाद हुए कृषि दासों के पास औसतन मात्र 10 एकड़ या उससे कम भूमि थी।

हालांकि पश्चिमी या मध्य यूरोपीय मानदंडों के आधार पर खेत के यह आकार कम नहीं थे परंतु दो कारकों के कारण कृषि के विकास में दिक्कते आईं। पहला यह कि 1862-1914 के बीच ग्रामीण जनसंख्या में 50% की वृद्धि हुई जबकि किसानों के खेतों में मात्र 23% की वृद्धि हुई। इस प्रकार 1881 में उपलब्ध खेतों में 25% की कमी आई जो 1905 तक घट कर 50% हो गई।

भूमि की बढ़ती हुई कीमतों और किरायों तथा अनाज के गिरते मूल्यों के संदर्भ में बढ़ी हुई खरीद और किरायों के बावजूद भूमि के मूल्य में कमी आई। गांवों में जमीन के औसत मूल्य प्रति देसियातीना (2.7 एकड़) की कीमत 1854 और 1905 के बीच 615% बढ़ी अर्थात इनमें प्रतिवर्ष 12-13% की वृद्धि हुई। भूमि की कीमतों में हुई इस अचानक वृद्धि के साथ कृषीय उत्पादकता में वृद्धि नहीं हुई। रूस में ग्रामीण जनसंख्या जरूरत से ज्यादा थी। रूस के गांवों में 33% से 40% लोग रहते थे। वहां के गांवों में खेती के लिए पिछड़ी तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता था। इन सब कारणों से उत्पादकता की गति धीमी रही। 1876 से 1896 तक विश्व बाजारों में अनाज के दामों में 'लंबी मंदी' के कारण रूस में भी अनाजों के दाम धीरे-धीरे गिर कर आधे हो गए। इससे अनाज निर्यात से होने वाली राज्य की आमदनी में कमी आई तथा मजदूरों और किसानों दोनों की आय कम हुई। कम्यून के पास उपलब्ध खेतों की तुलना में यहां रहने वाली जनसंख्या तेजी से बढ़ी।

इक्के दुक्के व्यक्तिगत प्रयासों को छोड़कर कृषि में सुधार का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। गांव आबादी के बोझ से दबते चले गए। श्रमिक हाथ पर हाथ पर धरे बैठे रहते थे और खेत छोटे होते जा रहे थे।

कर अदायगी की सामूहिक जिम्मेदारी के कारण कम्यून किसानों के शहर या उद्योग में स्थानांतरण को नियंत्रित करते थे। यदि कोई किसान जाना चाहता था तो उसे 'पासपोर्ट' नामक आदेश पत्र खरीदना होता था , सभी पुराने कर चुकाने होते थे, साथ ही साथ भविष्य में सामुदायिक कर भी देना होता था। हालांकि किसानों को कम्यून द्वारा थोड़े समय के लिए बाहर जाकर काम करने के लिए जारी किए गए पासपोर्टों की संख्या का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि बेहतर गैर कृषीय अवसर उपलब्ध होने पर यह किसानों की गत्यात्मकता को प्रतिबंधित नहीं करती थी। कुछ इतिहासकारों का यह मानना है कि प्रति व्यक्ति व्यक्तिगत शुल्क की समाप्ति (1882-1885) और 1905 में छुटकारा अदायगी की समाप्ति के बाद किसान सही तौर पर आजाद हुए।

किसानों की मुक्ति से घरेलू बाजार का विस्तार हुआ या नहीं इस पर विद्वान एकमत नही हैं। यह तो आप जानते हैं कि औद्योगिक पूंजीवाद के लिए घरेलू बाजार का निर्माण यदि पर्याप्त नहीं तो अनिवार्य शर्त तो है ही। छुटकारा अदायगी के नगद भुगतान के कारण ग्रामीण बाजारों के निष्क्रिय स्वरूप में बदलाव आया। रेलवे, स्थानीय बाजार और शहरी जरूरतों ने किसानों को अनाज बाजार में बेचने की सुविधा उपलब्ध कराई और कभी-कभी उन्हें इसके लिए मजबूर भी किया।

बीसवीं शताब्दी में धीरे-धीरे किसानों की गरीबी थोड़ी कम हुई वे औद्योगिक वस्तुओं के छोटे परंतु अनियमित खरीददार बन गए; अनियमित खरीददार इसलिए कि हर तीसरे चौथे वर्ष फसल खराब हो जाने या अकाल पड़ जाने के कारण उनकी कय शक्ति बाधित हो जाती थी।

11.5 रूसी औद्योगीकरण में राज्य की भूमिका

रूस के आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन के कारण राज्य के हस्तक्षेप को उचित ठहराया गया। जार पीटर द ग्रेट (1689-1725) ने प्रथम रूसी औद्योगीकरण की शुरुआत करने की कोशिश की परंतु वे बहुत कामयाब नहीं हुए। थल सेना और नौ सेना के लिए अस्त्र और जरूरी वस्तुएं बनाने वाले कारखानों में कृषिदासों को

मजदूर रखा गया और यूरोप से प्राप्त की गई या चुराई गई बेहतरीन प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल तीव्रता से किया गया। यह काम अक्सर पीटर द ग्रेट स्वयं किया करते थे। 1890 के दशक तक भूमिधर अभिजात वर्ग औद्योगीकरण के बिलकुल खिलाफ थे। राज्य ने निवेश, उपभोग और उत्पादन का जिम्मा उठाया जो काम पश्चिम में पूंजीपति कर रहे थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से औद्योगिक पूंजीवाद को बढ़ावा देने के लिए राज्य ने चार मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया; ये थे : बजट (राजस्व और खर्च के बीच संतुलन); मुद्रा (विदेशों में इसके मूल्य में स्थिरता); व्यापार संतुलन (आयात बनाम निर्यात मूल्य) और भुगतान संतुलन (ऋण अदायगी)।

औद्योगीकरण के लिए आवश्यक अधिसंरचनात्मक सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए बजट संबंधी स्थायित्व जरूरी था। विदेशी पूंजी के आगमन के लिए एक ठोस मुद्रा व्यवस्था की आवश्यकता थी। आयातित प्रौद्योगिकी का भुगतान अनाज के निर्यात से करने के लिए व्यापार संतुलन अपने पक्ष में होना चाहिए था। अन्तिम बात यह कि रूस की अन्तरराष्ट्रीय साख ऋण के ब्याज की समय से अदायगी से जुड़ी हुई थी क्योंकि राज्य ने अधिकांश ऋण बाहर से ही लिया था।

रूस के पास एक तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या और समृद्ध प्राकृतिक संसाधन थे परंतु यहां के किसानों के गरीब होने के कारण आंतरिक मांग बहुत सीमित थी। व्यक्तिगत मांग के कमजोर होने के कारण राज्य को ही प्रमुख खरीददार की भूमिका निभानी पड़ती थी। राज्य ने इसके लिए कई कदम उठाए,मसलन, भारी उद्योगों से राज्य ने एकमुश्त खरीददारी की, उन्हें मुनाफा और ऋण की गारंटी दी।

रूस में उद्योग की शुरुआत देर से हुई इसलिए यह पश्चिमी उद्योग से प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकती थी। अत: राज्य ने आयात और निर्यात पर कर लगाकर उन्हें संरक्षण देने का कार्य किया। परंतु इसके लिए उन्हें एक ओर कृषि और उद्योग में और उनके बीच आपसी संतुलन बनाए रखना पड़ा और दूसरी ओर अपनी राजस्व जरूरतों पर भी नजर रखनी पड़ी।

1850 और 1870 के बीच रूस में कर दर अपेक्षाकृत कम थी। कम कर की इस अवधि में आयात तेजी से बढ़ा। कृषि निर्यात में तेजी होने पर भी 1860-1870 के दशक में रूसी व्यापार घाटे का सामना कर रहा था क्योंकि आयातित वस्तुओं का मूल्य निर्यातित वस्तुओं से कम था। कर की दर कम रखकर रूसी राज्यों ने भारी उद्योग की अपेक्षा कपड़ा उद्योग जैसे हल्के उद्योगों को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जिसकी मांग मुख्यत: उद्योग क्षेत्र से ही आती थी। 1877 से और 1881, 1884, 1885, 1887 में उभरते धातु निर्माण उद्योग और खनन उद्योगों को संरक्षण देने के लिए आयात शुल्क बढ़ाया गया।

11.6 गेरशेनकोन प्रारूप

रूसी औद्योगीकरण के बारे में एलेक्जेंडर गेरशेनकोन के विचार काफी प्रभावी रहे हैं जिन्होंने खासतौर पर रूसी औद्योगीकरण की प्रक्रिया और आमतौर पर 'आर्थिक पिछड़ेपन' की परिस्थिति में औद्योगीकरण के लिए एक प्रारूप प्रस्तुत किया था। इस प्रारूप में इस धारणा को अस्वीकार कर दिया था कि प्रथम या 'अग्रणी' औद्योगिक देश के अनुरूप ही विकास की प्रक्रिया चलती है और अनुगमन करने वाले राष्ट्र या बाद में औद्योगीकृत होने वाले राष्ट्रों में औद्योगीकरण की प्रक्रिया अनिवार्यत: समान होती है। उन्होंने औद्योगिक क्रांति की पूर्व शर्तों की अवधारणा का भी खंडन किया। इसकी बजाए उन्होंने पिछड़ेपन के स्तर के अनुरूप विभिन्न राष्ट्रों में इन प्रक्रियाओं के बीच सैद्धांतिक और संस्थागत अन्तर पर बल दिया। उनके विचार से इसी अन्तर से उत्पादन में उछाल, औद्योगिक वृद्धि की गति और परिणामस्वरूप औद्योगिक संरचनाएं निर्धारित होती हैं।

औद्योगीकरण के शुरुआती दौर में किसी देश विशेष के आपेक्षिक पिछड़ेपन के अनुसार औद्योगीकरण की प्रकृति और प्रगति का स्वरूप इस प्रारूप के अनुसार निम्नलिखित तरीके से बदल जाता है :

क) औद्योगीकरण की शुरुआत में जितनी तेजी से उछाल आएगा उसमें उतनी ही मजबूती आएगी और उत्पादन

की दर अपेक्षाकृत ऊंची रहेगी। रूस में 1890 के दशक में निम्न आधार से औद्योगीकरण की शुरुआत हुई थी और उस दशक में पूरे विश्व में यहां की औद्योगिक वृद्धि दर सबसे ज्यादा रही थी।

ख) बड़े संयंत्रों और उद्यमों पर जितना ज्यादा जोर होगा औद्योगिक प्रगति उतनी ही ज्यादा होगी। वस्तुतः 1900 तक आते-आते रूस विश्व की एक सर्वाधिक 'संकेंद्रित' अर्थव्यवस्था हो गई थी क्योंकि अन्य देशों की अपेक्षा यहां उत्पादन में बड़े उद्यमों का अंशदान ज्यादा था।

ग) जहां उपभोक्ता वस्तुओं के बदले उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन पर बल देने से भी औद्योगीकरण पर फर्क पड़ता है। हालांकि रूस में औद्योगीकरण होने से पहले कपड़ा उद्योग; प्रमुख उपभोक्ता उद्योगद्ध सबसे बड़ा उद्योग था परंतु राज्य ने 1880 के दशक से लेकर 1913 तक प्रमुख रूप से खनन और धातु निर्माण उद्योगों में पूंजी निवेशित की।

घ) जनसंख्या के उपभोग स्तर पर दबाव ज्यादा होने का भी असर होता है। 1890 के दशक से राज्य निर्देशित औद्योगीकरण उच्च अप्रत्यक्ष करों, अनाज के निर्यात और स्वास्थ्य, आवास और विद्यालयों जैसे 'सामाजिक' निवेश की अपेक्षाकृत अवहेलना के साथ आगे बढ़ा। करों और सामाजिक सुविधाओं के अभाव ने सबसे ज्यादा मजदूरों और किसानों को प्रभावित किया और लगभग 1900 के बाद ही औद्योगिक वस्तुओं के उपभोग की उनकी क्षमता बढ़ सकी।

ङ.) नए उद्योगों को पूंजी उपलब्ध कराने के लिए विशेष संस्थाओं के निर्माण की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है और इसके अतिरिक्त अपेक्षाकृत कम संकेंद्रित, बेहतर सूचनायुक्त निर्देशन से भी फर्क पड़ता है। ग्रेरशेनकोन का मानना था कि देश जितना पिछड़ा होगा वहां उन कारकों का नियंत्रण और व्यापकता उतनी ही ज्यादा होगी।

रूसी औद्योगीकरण को एक विकसित राज्य का साथ मिला जिसमें एक शक्तिशाली वित्त मंत्रालय था जिसने उस समय किसी भी औद्योगिक देश की अपेक्षा यहां की अर्थव्यवस्था को अपने नियंत्रण में लिया। यह नियंत्रण इतना मजबूत था कि लोगों के काम करने की पद्धति और जीवन शैली पर भी इसका प्रभाव पड़ा और किसानों तथा मजदूरों की मांग भी इससे प्रभावित हुई।

च) कृषि औद्योगीकरण में सक्रिय भूमिका निभाने में कम सक्षम थी क्योंकि यह नए उद्योगों को श्रम की बढ़ती उत्पादकता पर आधारित विकासशील घरेलू बाजार प्रदान नहीं कर पा रही थी।

इस संदर्भ में हाल में जो अनुसंधान हुए हैं उससे इस प्रारूप पर पुनर्विचार करने की जरूरत महसूस की जाने लगी है। पूर्व अवधारणा की अपेक्षा प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन में वृद्धि अधिक बेहतर थी। इसके अलावा 1880 और 1890 के दशकों में कृषि श्रम की उत्पादकता भी औद्योगिक दर से लगभग 75% बढ़ी। 1905 के बाद स्टॉलपिन सुधारों (जिसने निजी खेती को प्रोत्साहित किया) और लोगों के साइबेरिया जाकर बसने से लोगों की आय भी बढ़ी और बाजार भी विकसित हुआ, खेती उपभोग भी बढ़ा और उत्पादन पद्धतियों में भी विविधता आई। अतः 1900 के बाद उद्योग के साथ-साथ कृषि का भी बेहतर ढंग से विकास हुआ।

विभिन्न देशों और युगों में औद्योगीकरण के आधारभूत तत्वों के अभाव का 'विकल्प' प्रस्तुत करना गेरशेनकोन प्रारूप की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। रूस में औद्योगीकरण के क्षेत्र में राज्य ने हस्तक्षेप किया और अभावों की पूर्ति का प्रयास किया। इंगलैंड की औद्योगिक क्रांति में निजी उद्यमियों और जर्मनी में निवेश बैंकों ने जो भूमिका अदा की वही भूमिका रूस में राज्य ने निभाई। गेरशेनकोन का मानना था कि रूस और यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों के बीच बढ़ते तनाव के कारण राज्य का हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया था।

रूस में राज्य ने इसे विभिन्न तरीकों से सम्पन्न किया। व्यक्तिगत उद्यमियों के छोटे आदेशों की क्षतिपूर्ति के लिए राज्य सरकार लोहा और इस्पात जैसी औद्योगिक वस्तुओं का सबसे बड़ा खरीददार बन गया। 1913 में भी राज्य के बैंकों की संख्या और संसाधन निजी बैंकों की अपेक्षा मजबूत थे। बैंक ऋण की कमी के कारण राज्य चुने हुए उद्यमियों को ऋण उपलब्ध कराता था। इसके अलावा विदेशी पूंजी और कौशल का आयात करके राज्य ने कमजोर और पिछड़े हुए उद्यमी वर्ग को सहायता प्रदान की।

पहले यह माना जाता था कि इतने बड़े और विशाल कार्य का भार निजी उद्यम नहीं संभाल सकता है और राज्य को निजी पूंजीपतियों के समर्थन में आगे आना ही पड़ता है। बाद के खोजों से यह पता चलता है कि सरकार राज्य नियंत्रण के बाहर बढ़ते निजी व्यापार को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी।

गेरशेनकोन प्रारूप के अनुसार जब औद्योगिक उछाल अपने पूरे उत्कर्ष पर होता है तो राज्य की सक्रिय भूमिका समाप्त हो जाती है और गैर-राज्य उद्यमों और पूंजी का प्रसार होता है। जैसा कि भाग 11.8 में बताया जाएगा 1900 के बाद हुई औद्योगिक वृद्धि पहले की अपेक्षा राज्य की मांगों और रेलवे के विस्तार पर कम आश्रित थी। निवेश में बैंकों का अंशदान और भूमिका बढ़ी, कुल तैयार माल के उत्पादन में हल्के उद्योगों का अंशदान बढ़ा, कई आधारभूत वस्तुओं की प्रति व्यक्ति उपभोग की दर बढ़ी और 1900 तथा 1910 के बीच रूसी उद्योग और बैंकिंग में विदेशी पूंजी के आगमन की दर धीमी हुई।

11.7 कृषि दासों की मुक्ति के पहले औद्योगीकरण

1861 से पहले रूस में आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल केवल सूत कातने, आसवन, मुद्रण और चीनी परिशोधन में ही हो रहा था। यहां तक कि 1860 तक सूती कपड़ा उद्योग मुख्य रूप से गांवों में ही केंद्रित था हालांकि इसका आकार बहुत बड़ा था। उस समय रूस में सूत कातने की तकलियों की संख्या 20 लाख थी। इससे ज्यादा तकलियां केवल ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया, संयुक्त राज्य अमेरिका में ही थीं। हालांकि निर्मित वस्तुओं की गुणवत्ता निम्नस्तरीय थी और इसकी बिक्री पूरी तरह संरक्षित घरेलू बाजार में ही होती थी। कपड़ा उद्योग के अन्तर्गत ऊन, कताई, मलमल और रेशम उद्योग मुख्यत: कारीगर आधारित उद्योग ही थे। 1861 में धातु निर्माण क्षेत्र में वाष्प इंजन और टरबाइन कुल ऊर्जा के 12% की ही आपूर्ति करते थे जबकि बाकी ऊर्जा जल संसाधनों से प्राप्त होती थी।

1890 के दशक के बाद रूसी उद्योग में अभूतपूर्व विकास हुआ। भाग 11.1 और 11.2 में यह बताया जा चुका है कि कृषिदासों की उन्मुक्तता का उद्देश्य कृषीय अधिशेष उत्पादनों और कृषि मजदूरों पर राज्य का ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण स्थापित करना था न कि औद्योगिक पूंजीवाद का विकास करना। यदि औद्योगिक वृद्धि के लिए ही दासों को स्वतंत्र किया गया होता तो भी देश के निम्न आर्थिक स्तर और पिछड़ेपन के कारण औद्योगिक विकास के लिए आरंभिक युग की आवश्यकता पड़ती। 1860 और 1870 के दशक के बीच न्यायपालिका, स्थानीय सरकार, विद्यालयों और सेना में सुधार कर औद्योगिक पूंजीवाद की नींव रखी गई।

कृषि दासों की मुक्ति के बाद कुछ समय के लिए संकट की स्थिति बनी रही। उसके बाद भी औद्योगिक विकास सामान्य रहा। 1861 में हालांकि केवल 13% ही औद्योगिक मजदूर कृषिदास थे परंतु कृषिदास व्यवस्था के उन्मूलन से सभी औद्योगिक शाखाएं खासतौर पर सूती कपड़ा उद्योग बुरी तरह प्रभावित हुआ। सूती कपड़ा उद्योग को कच्चा माल संयुक्त राज्य अमेरिका से प्राप्त होता था। अमेरिकी गृह युद्ध होने से सूती उद्योग की गति धीमी हुई और इस मंदी ने पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। धातु निर्माण उद्योग पहले मुख्य रूप से कृषिदासों पर ही निर्भर था ; 1880 के दशक तक इसका विकास बहुत धीमा रहा। 1861 से लेकर 1887 तक कोयले का उत्पादन भी धीरे-धीरे ही बढ़ा।

11.8 रेलवे

यह माना जाता है कि उन्नीसवीं शताब्दी में कृषिदास प्रथा के उन्मूलन की अपेक्षा रेलवे का निर्माण एक अधिक क्रांतिकारी घटना थी। 1860 के दशक में रेलवे के कारण अनाज के घरेलू और विदेशी बाजार को प्रोत्साहन मिला। इसके अलावा अधिकांश लोग यह भी स्वीकार करते हैं कि पूर्व क्रांति युग में रूसी अर्थव्यवस्था में रेलवे निर्माण के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन हुए। 1860 में रूस में 1 हजार मील लंबी रेलवे लाइन थी जो 1916 में 40 हजार मील हो गई जिसके कारण भारी उद्योगों के विकास और कृषि के वाणिज्यिकरण में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

रूस में पहली रेल लाइन सुधार-पूर्व युग में बिछाई गई थी। पहली लाइन 1838 में जार्को में स्थापित की गई थी जिसके बाद वारसा-वियेना लाइन (1851), सेंट पीटर्सबर्ग-मास्को लाइन (निकोलेवसकया लाइन, 1851) और सेंट पीटर्सबर्ग-वरसा लाइन 1859 में बिछाई गई। कृषिदास प्रथा के उन्मूलन में कृषीय विपणन का बढ़ता महत्व एक महत्वपूर्ण कारक था, तदनुसार सेंट्रल ब्लैक अर्थ जोन के अनाज उत्पादन करने वाले इलाकों में स्थित दो राजधानियों को जोड़ने के लिए 1860 के दशक में रेलवे नीति बनाई गई। यह काम 1868 तक पूरा कर लिया

गया। 1870 के दशक के मध्य तक अनाज के निर्यात को बढ़ाने के लिए काले सागर के बन्दरगाहों तक लाइन बिछाई गई। 1868 और 1878 के बीच रेल लाइन में 329 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई।

1861 और 1880 के बीच 80% से भी अधिक रूसी रेलवे का निर्माण और संचालन निजी कम्पनियां करती थीं जिन्हें रियायत और मुनाफे की गारंटी दी जाती थी जिससे वे हमेशा लाभ की स्थिति में रहते थे। हालांकि 1880 के बाद सरकार ने सक्रियता से इस क्षेत्र में कदम रखा और अधिकांश नई रेल लाइनों का निर्माण और संचालन किया। निजी कम्पनियों को खरीद लिया और शेष पर कड़ा प्रतिबंध रखा। 1914 तक आते-आते 70% रेलवे पर राज्य का अधिकार हो गया और वह उसका संचालन करने लगी।

11.9 औद्योगिक प्रवृत्तियां : 1860 से 1880 तक

1860 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1870 के पूर्वार्द्ध में औद्योगिक उत्पादन और बाजार में तेजी से वृद्धि हुई, ज्वाइंट स्टॉक कम्पनियां स्थापित की गईं और रेलवे का जाल बिछाया गया। 1873 से पूरे यूरोप के संकट से रूस भी प्रभावित हुआ और रूसी अर्थव्यवस्था में माल का उत्पादन खपत से ज्यादा होने लगा, चीजों की कीमतें गिर गईं, कई उद्योग और बैंक बन्द हो गए। हालांकि मुख्य रूप से इस संकट ने लोहा, इस्पात और ईंधन को प्रभावित किया परंतु इसके कारण रेलवे निर्माण में भी कमी आई और उपभोक्ता उद्योगों को भी इसने जल्द ही प्रभावित किया। 1870 के दशक के पूर्वार्द्ध में खराब फसल होने और अकाल पड़ने के कारण किसानों की क्रय शक्ति कमजोर हुई और इसके कारण बाजार संकुचित हुआ। 1877 में रूसी-तुर्की युद्ध के कारण सेना की मांग बढ़ी और इससे उद्योग को बल मिला। इसके साथ-साथ 1878 और 1879 में अच्छी फसल होने से अनाज का रिकॉर्ड निर्यात हुआ।

परंतु यह स्थिति बहुत दिनों तक कायम नहीं रही। 1882 से लेकर 1885 तक औद्योगिक विकास में गिरावट आई। 1890 में भी अधिकांश क्षेत्रों में मंदी आई और 1891 में फसल नष्ट होने और परिणामस्वरूप अकाल पड़ने के कारण इसका प्रभाव तीखा हो गया। फसल न होने के साथ-साथ नए रेलवे में निवेश में कमी आई। इस संकट के दौरान 1860 के बाद पश्चिमी यूरोप, जो स्वयं संकटग्रस्त था, से ऋण मिलना भी कम हो गया। इससे संकट की विकट स्थिति उत्पन्न हो गई, इस दौरान नई पूंजी और रेलवे लाइनों का निर्माण धीमी गति से हुआ, कारखाने बंद हुए और बड़े पैमाने पर बेरोजगारी फैली।

1862 और 1882 के बीच औद्योगिक उत्पादन दोगुना हो गया। इस दौरान 3.5% की औसत दर से प्रतिवर्ष वृद्धि हुई। 1860 और 1890 के बीच कोल का उत्पादन 2005% उछल गया, लोहा, इस्पात और पेट्रोलियम का उत्पादन चारगुना हो गया तथा रेलवे में 2000% की वृद्धि हुई। 1860 और 1890 के बीच श्रम बल दोगुना हो गया।

11.10 1890 के दशक के औद्योगिक उछाल की पृष्ठभूमि

1880 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1890 के दशक के पूर्वार्द्ध में रूस की आर्थिक व्यवस्था प्रगति के लिए तैयार थी। धातु निर्माण, कोयला खनन और तेल उत्पादन में हुए विकास, कपास उत्पादन का मशीनीकरण और रेलवे निर्माण का पुन: आरंभ एक तरह से 1890 के दशक में होने वाले औद्योगिक विकास की एक पूर्व पीठिका ही थी।

यह उछाल मुख्य रूप से दो बातों पर आधारित था: औद्योगीकरण के प्रति सरकारी नीति और यूरोप में शांति। 1860 के दशक में रूसी सरकार सर्वहारा वर्ग जैसे नए सामाजिक वर्गों के उदय से औद्योगिक विकास के संबंध में सशंकित हो गई और उसे उस बात की आशंका हो गई कि मजदूरों में असंतोष फैलने से कृषीय समाज के ताने-बाने में खतरनाक तनाव आ जाएगा जिससे कुलीनवर्ग के हितों की रक्षा नहीं हो पाएगी।

1861 में कुलीनवर्ग से कृषिदास छीनने के एवज में जो भुगतान करना पड़ा था उसका आर्थिक प्रभाव 1860 के पूरे दशक में बना रहा। 1850 के दशक से लेकर 1870 के दशक तक क्रिमिया युद्ध और रूसी-तुर्की युद्ध के कारण राज्य सरकार का अधिकांश धन उत्पादन में निवेश के बजाए सेना की ओर चला गया जिससे विदेशों में रूसी रूबल की कीमत कम हुई और रूस में मुद्रा स्फिति आ गई।

1890 के दशक में जो औद्योगिक उछाल आया उसके लिए अन्तरराष्ट्रीय शांति जरूरी थी ताकि पूंजीगत वस्तुओं और तकनीकी विशेषज्ञताओं का आदान-प्रदाम हो सके। 1878 के बाद यूरोप में आई शांति का निकोलाई क्रिसटियानोविच बंज (1881-1887) और इवाम अल्केसीविच विशेनग्रेडस्की (1887-1892) जैसे रूस के वित्त मंत्रियों ने सफलतापूर्वक उपयोग किया और रूस में बजट विस्तार, मौद्रिक स्थिरता और विदेशी निवेश की नींव रखी।

1890 के दशक से औद्योगीकरण रूसी राज्य का मुख्य उद्ददेश्य हो गया। 1893 के बाद वित्त मंत्री बने सरगे इलुविच विट ने इस महत्वाकांक्षा को अंजाम दिया। विट के उद्देश्य काफी हद तक राजनैतिक थे। चूंकि 1890 के दशक में दुनिया की बड़ी शक्तियों की तुलना में रूस पिछड़ा हुआ देश था इसलिए विट को प्रतिकूल परिस्थितियों में औद्योगीकरण के लिए सन्नद्ध होना था, तेजी से आर्थिक ताकत प्राप्त करनी थी क्योंकि औद्योगिक उत्पादकता के आधार पर ही राजनैतिक शक्ति तय होती थी।

बोध प्रश्न 1

1) रूस के पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी पर्यावरणीय कारकों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) रूसी औद्योगीकरण पर 'मुक्ति' का क्या प्रभाव पड़ा ?

....

....

....

....

....

....

3) गेरशेनक्रोन प्रारूप में 'विकल्प' से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

....

....

....

4) 1890 के दशक में औद्योगिक उछाल की पृष्ठभूमि क्या थी ?

....

....

....

....

....

....

11.11 विट व्यवस्था

विट के अनुसार औद्योगिक मजबूती की जड़ें रेलवे और भारी उद्योगों में निहित थी। विट व्यवस्था में शुल्क संरक्षण, मौद्रिक स्थिरता, वित्तीय सुधार, भारी कराधान और विदेशी निवेश के प्रोत्साहन पर बल दिया गया। उनका उद्देश्य निजी उद्यमों को प्रोत्साहित करना और राज्य पूंजीवाद के व्यापक कार्यक्रम के जरिए रूस के समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करना था। धातु निर्माण और इंधन उद्योगों के विकास से हल्के उद्योगों को बल मिलेगा। बढ़ती शहरी और औद्योगिक मांगों के कारण तीव्र गति से विकास करना होगा, इंगलैंड के बजाए जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका से सर्वाधिक उन्नत प्रौद्योगिकी का आयात करना होगा और विशाल कारखानों की स्थापना करनी होगी जिसमें ढेर सारे मजदूर एक साथ काम कर सकें। घरेलू पूंजी उद्यमशीलता और कुशल श्रमिकों की कमी के साथ-साथ रूस और उसके राजनैतिक प्रतिद्वंद्वियों के बीच बढ़ती खाई के कारण इस प्रकार की नीति सामने आई।

यहां यह बात समझ लेनी चाहिए कि हालांकि राज्य के व्यापक हस्तक्षेप संबंधी विट व्यवस्था एक निर्भीक और समयानुकूल प्रयास था परंतु यह पूर्णत: नवीन विचार नहीं था। 1860 से ही पूर्व वित्त मंत्रियों, जैसे मिखाइल क्रिसटियानोविच, रेटर्न (1862-78), एन.के बंज और आई.ए.विशेनग्रेडस्की ने इस प्रकार की बातें सामने रखी थीं। उन्होंने बजट संतुलन ठीक करने, रूबल को स्थायित्व प्रदान करने और विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के कार्य पहले भी किए थे।

11.11.1 तीव्र वृद्धि

1890 के दशक में हुए औद्योगिक विकास में रेलवे निर्माण सर्वप्रमुख रहा। इस दौरान रेलवे लाइनों की लंबाई लगभग दोगुनी हो गई और इस प्रकार 37 : रेलवे लाइन बिछीं या पिछले पचास सालों में जितनी लाइनें बनी थीं उनके 50 प्रतिशत के बराबर लाइनों का निर्माण 1890 के दशक में हुआ। 1890 और 1900 के बीच रेलवे के इंजन, सवारी और माल के डब्बों की संख्या भी दोगुनी हो गई। 1890-1905 के बीच रेलवे की पूंजी में लगातार वृद्धि होने से औद्योगिक पूंजी में भी वृद्धि हुई और रेल तथा रेल के इंजन, डिब्बों आदि में निवेश करने से यूक्रेन स्थित नए लोहा इस्पात उद्योग तथ सेंट पीटर्सबर्ग में स्थापित इंजीनियरिंग उद्योग को विशेष रूप से समर्थन मिला। 1890 के दशक में रूस में लोहे के उत्पादन का एक तिहाई हिस्सा रेलवे में खप जाता था और इससे कोयले को भी बड़ा बाजार मिला। 1890 में रेलवे नेटवर्क की लंबाई की दृष्टि से रूस विश्व का पांचवा देश था और 1900 में केवल संयुक्त राज्य अमेरिका उससे आगे रह गया। यह सही है कि रूस के भौगोलिक विस्तार को देखते हुए यह विस्तार बहुत कम और अपर्याप्त था जिसे प्रथम विश्व युद्ध के दौरान महसूस किया गया। इसके बावजूद निस्संदेह रूप से रेलवे एक प्रमुख उद्योग था।

लगभग 1895 से रेलवे में निजी और राज्य पूंजी का निवेश लगभग बराबर था परंतु सरकार की वित्तीय हिस्सेदारी काफी अधिक थी क्योंकि राज्य द्वारा रेलवे निर्माण के लिए ऋण दिए जाने के अलावा सरकार सभी ऋणों पर मुनाफे की गारंटी देती थी और निजी कम्पनियों से महत्वपूर्ण या ऋण के बोझ से दबे रेलवे को खरीदने के लिए हमेशा तैयार रहती थी। 1900 तक रूसी रेलवे की कुल पूंजी 4.7 बिलियन रूबल हो गई। इसमें लगभग 3.6 बिलियन सरकारी पूंजी थी जो कुल सरकारी ऋण के आधे के बराबर थी। 1890 के दशक में रूसी रेलवे में विदेशी निवेश 341 मीलियन रूबल था जो अन्य उद्योगों या बैंकों की तुलना में काफी कम था। 1890 के दशक तक कपड़ा उद्योग सभी उद्योगों से काफी आगे रहा और उन्नीसवीं शताब्दी में यही स्थिति बनी रही। हालांकि विट ने खासतौर पर सूती वस्त्र उद्योग को समर्थन नहीं दिया था परंतु 1890 के दशक में इसमें प्रतिवर्ष 8% की दर से तीव्र वृद्धि हुई । 1899 तक यह उद्योग सबसे बड़ा नियोक्ता था और 7 औद्योगिक मजदूरों में से 1 मजदूर कपड़ा उद्योग में काम करता था। 1890 के दशक में सूती वस्त्र उद्योग का मशीनीकरण कर दिया गया।

इस उच्च स्तरीय प्रभावशाली विकास (यह विकास उस समय पूरे विश्व में तीव्रतम था) का आधार भारी उद्योग था। रूसी राज्य भी भारी उद्योग का ही विकास करना चाहता था। विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिवर्ष वृद्धि दर का प्रतिशत इस प्रकार था :

खनन, 11.2 रसायन, 10.7 इमारती लकड़ी, 9.3 धातु निर्माण, 8.4 चीनीमिट्‌टी (सेरामिक्स) 8.0 कपड़ा उद्योग, 7.8 और खाद्य परिशोधन 1.7। इस समय उत्पादकता में भी तीव्र वृद्धि हुई। एक ओर वस्त्र उद्योग में जहां उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ मजदूरों की संख्या में भी वृद्धि हुई वहीं खनन और धातु उत्पादन में 1887-97 के बीच उत्पादन 152% बढ़ा जबकि श्रम-बल में 39% की वृद्धि हुई। 1890 के दशक में हुए औद्योगिक उछाल का एक प्रमाण यह है कि 1900 में मौजूद सभी औद्योगिक उद्यमों में से 40% उद्यमों की स्थापना 1891 के बाद ही हुई।

1890 के दशक के औद्योगिक उछाल के कारण बड़े कारखानों का उदय हुआ जिसमें बड़ी तादाद में मजदूर काम करते थे और जिसमें ज्यादा उत्पादन होता था। इस दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जर्मनी की अपेक्षा 1900 तक रूसी उद्योग सर्वाधिक 'संकेंद्रित' हो चुका था। 1890 में बड़े उद्यमों में (जहां 1000 से ज्यादा मजदूर काम करते हों) 40% रूसी औद्योगिक मजदूर काम करते थे जो 1902 में बढ़कर 50% हो गया। 1911 में बड़ी कम्पनियों (जिनकी पूंजी 50 लाख रूबल से अधिक थी) में से केवल 7.5% कम्पनियों ने औद्योगिक और वाणिज्यिक कम्पनियों में 38% से भी ज्यादा पूंजी निवेशित की थी। इसी प्रकार के 'संकेंद्रण' की प्रक्रिया के कारण 1900 के बाद उद्योगों को वित्त प्रदान करने का काम राज्य के स्थान पर बैंक करने लगा। 1900 में केवल 43 बैंक थे (जबकि 1873 में 73थे); इनमें से छ: ने 47% कर्ज दिया था जो 1914 में बढ़कर 55% हो गया।

11.11.2 राजस्व और कराधान

विट ने अपनी औद्योगिक नीतियों को बल प्रदान करने के लिए अधिक राजस्व जुटाने और रूबल के अन्तरराष्ट्रीय मूल्य को स्थायित्व प्रदान करने के प्रयत्न किए। 1890 का दशक विदेशों से ऋण लेने के लिए सर्वथा उपयुक्त था क्योंकि ब्याज की दर कम थी; महंगे घरेलू ऋणों के स्थान पर सस्ते विदेशी ऋण लेकर उसने एक बिलियन रूबल की बचत की। विट 1880 के दशक में हासिल किए गए व्यापार संतुलन को बरकरार रखने में कामयाब रहा। इसके लिए उसने संरक्षणवादी कर नीति अपनाई और आयात विकल्प को बढ़ावा दिया। इसके लिए रूसी उद्योग को राज्य ने करों में छूट और मुनाफे की गारंटी के रूप में प्रत्यक्ष समर्थन दिया। 1891 के सीमा-शुल्क, जो उस समय विश्व की तुलना में रूस में सबसे भारी कर था, से केवल चौदह उत्पादों को ही मुक्त रखा गया; यह भी वह उत्पाद थे जिनकी रूस में काफी कम मांग थी। कच्चे माल और उत्पादित वस्तुओं पर ऊंचा आयात शुल्क लगाया गया। इन उच्च शुल्कों के कारण धातु निर्माण उद्योग की उत्पादकता और उत्पादन में वृद्धि हुई और इस प्रकार रूस में मशीन निर्माण उद्योग के उदय को प्रोत्साहन मिला।

परंतु विट के सामने अभी भी दो समस्याएं थीं। रेलवे में राज्य का निवेश काफी हो जाने के कारण उसे अपने बजट को संतुलित करने के लिए आमदनी की भी जरूरत थी। दूसरी ओर रूस की प्रमुख निर्यात-वस्तु अनाज का मूल्य काफी गिर गया जिससे भुगतान संतुलन की स्थिति खराब होने लगी। रूस के घरेलू बजट को संतुलित करने और निर्यात को बढ़ावा देने के लिए विट ने कर की दर ऊंची कर दी। उसने अप्रत्यक्ष कराधान का सहारा लिया; 1890 के दशक में कुल राजस्व का लगभग आधा अप्रत्यक्ष कर से प्राप्त होता था। इस ऊंचे कराधान का बोझ सबसे ज्यादा गरीब किसानों को उठाना पड़ा; इसीलिए यह कहा भी जाता है कि रूसी औद्योगीकरण की कीमत किसानों को चुकानी पड़ी।

राज्य समर्थित वृद्धि के लिए धन जुटाने हेतु करों और ऋणों की नीति अपनाई जानी थी और दूसरी ओर मुद्रा में स्थायित्व लाने और सोना को मानक के रूप में अपनाए जाने की विधि अपनाई जानी थी। विट रूस में विदेशी पूंजी के आगमन को तेज करना चाहता था। मुद्रा स्फिति से प्रभावित देश को विदेश से ऋण मिलने में कठिनाई होती थी। इसके लिए राज्य द्वारा विदेशी ऋणदाताओं को उनकी पूंजी पर मुनाफे और ऋण पर ब्याज देने की गारंटी देने की जरूरत थी। इसके लिए रूबल को स्वर्ण भंडार का समर्थन भी चाहिए था; इसलिए स्वर्णमानक को अपनाना रूस के लिए अनिवार्य हो गया।

यह 1877 के बाद संभव हुआ जब आयात शुल्क की वसूली कागज के रूबल में न करके सोने के रूप में की जाने लगी। दूसरे, विनिमय नियंत्रण और राज्य के बैंक द्वारा नोट जारी करने से ज्यादा स्वर्ण भंडार रखने की नीति से रूबल खुद स्थिर हो गया। इसके अलावा, भारी कराधान की नीतियों के फलस्वरूप पर्याप्त स्वर्ण भंडार जमा हो गया और अन्तत: 1896 में फसल अच्छी हो जाने से जनवरी 1897 में रूबल स्वर्ण मानक के बराबर हो गया।

इससे कई लाभ हुए। रूबल की विनिमय दर में स्थिरता आई, विदेशों से ऋण लेना आसान हो गया और 1897 और 1913 के बीच हुए विदेशी निवेश का स्तर 1881 और 1897 के बीच हुए निवेश से दोगुना था। परंतु इसके लिए जनता पर करों का अतिरिक्त बोझ लादना पड़ा, जरूरत से ज्यादा अनाज का निर्यात करना पड़ा और रूस के स्वर्ण भण्डार को अचल बना दिया गया।

11.11.3 विदेशी पूंजी की भूमिका

घरेलू स्रोतों की अपर्याप्तता के कारण विदेशी पूंजी की जरूरत शिद्दत से महसूस की गई। रूस में विदेशी पूंजी का तेजी से प्रवेश हुआ और 1914 तक रूस यूरोप का सबसे बड़ा कर्जदार देश बन गया। रूस के राष्ट्रीय ऋण में 1895 में विदेशियों का हिस्सा 30% था जो 1914 में बढ़कर 48% हो गया। राज्य ने संभवत: आधे से ज्यादा विदेशी निवेश का उपयोग रेलवे के विकास के लिए किया। बाकी निवेश उद्योगों, खासकर दक्षिणी खनन और धातु कर्म उद्योगों और काकेशस के तेल उद्योग के साथ-साथ बैंक और व्यापार क्षेत्र में हुआ। 1890 के बाद में फ्रांस और बेलजियम ने रूस में सबसे ज्यादा निवेश किया। रूसी औद्योगीकरण में विदेशी उद्यमशीलता का अध्ययन करने वाले लेखक जे.पी. मैकेके के आकलन के अनुसार 1890 में रूस में विदेशी पूंजी 215 मीलियन रूबल थी जो 1900 में 911, 1910 में 1,358 और 1915 में बढ़कर 2,206 हो गई। नए औद्योगिक निवेशों में इसका योगदान 1890-92 में 33% था जो 1900-02 में बढ़कर 47% और 1909-13 में 50% हो गया। रूस में इस अवधि में इतनी भारी मात्रा में विदेशी पूंजी का प्रवेश क्यों हुआ ? 1850 के बाद यूरोप के बुर्जुआ वर्ग के पास विदेशों में ऋण देने के लिए काफी मात्रा में अधिशेष राशि थी। अन्य देशों की अपेक्षा रूस इस पूंजी को अपनी ओर खींचने में क्यों सफल रहा?

पश्चिमी यूरोप की तुलना में रूस में मुनाफे की दर अधिक थी। सरकार ने कर संरक्षण प्रदान किया था, ऋण और मुनाफे पर गारंटी दी थी तथा मजदूरों द्वारा औद्योगिक कार्यवाई के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करने का वादा किया था। स्वर्ण मानक अपनाने से रूस की साख बढ़ गई थी। इसके अलावा 1890 के दशक में विश्व के अन्य देशों में ब्याज की दर कम होने के कारण रूस में निवेश करना आकर्षक सिद्ध हुआ।

इसमें राजनैतिक कारकों का भी योगदान रहा। उदाहरण के लिए रूस से मित्रता करने के लिए जर्मन और फ्रांसीसी सरकारों ने रूस में निवेश को प्रोत्साहित किया। 1879 जर्मनी के साथ संधि के फलस्वरूप, जिसे ड्रेकेसरबंद के नाम से जाना जाता है,1870 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1880 के पूर्वार्द्ध में रूस में जर्मन पूंजी का आगमन तेजी से हुआ। 1894 में फ्रांस के साथ संधि हुई। इसी प्रकार 1907 में ग्रेट ब्रिटेन के साथ समझौता हुआ जिसके कारण रूस में ब्रिटिश पूंजी का तेजी से आगमन हुआ।

चित्र 2 : स्टोलिपियन सुधार : कारखानों में काम मांगते रूसी किसान, 1910

11.11.4 1890 के दशक में औद्योगिक विकास का मूल्यांकन

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में रूस निस्संदेह रूप से एक बड़ी ताकत बन गया था। रूस में कुल विश्व उत्पादन का 6% लोहा और इस्पात का उत्पादन होने लगा जिससे औद्योगिक शक्तियों में इसका स्थान चौथा हो गया; पहले, दूसरे और तीसरे स्थान पर क्रमश: संयुक्त राज्य अमेरिका (42%), जर्मनी (18%) और ग्रेट ब्रिटेन (14%) थे। इसके अनुसार रूस में आधुनिक इंजीनियरिंग उद्योग का निर्माण हो रहा था। इसके साथ-साथ आधारभूत रसायनों जैसे उद्योग भी उभर रहे थे। शहरी जनसंख्या बढ़ने से उपभोक्ता वस्तु उद्योग की भी उन्नति हुई। बड़े पैमाने पर रेलवे के निर्माण के कारण आर्थिक प्रगति हुई, परिवहन की लागत घटी, अन्तरक्षेत्रीय व्यापार बढ़ा और साइबेरिया तथा मध्य एशिया जैसे आर्थिक अवसरों वाले क्षेत्रों में जनता का आवागमन बढ़ा।

परंतु ये सारी उपलब्धियां उद्योग में राज्य के निवेश, किसानों पर करारोपण और पश्चिमी यूरोप से लगातार आनेवाले ऋणों और पूंजी निवेशों की नाजुक नींव पर आधारित था। विट व्यवस्था में, राज्य नीतियों ने कृषि पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया और अपना पूरा निवेश उद्योग पर केंद्रित किया। विट का यह मानना था कि उद्योग की उन्नति होने से इसका कुछ भाग अपने आप 'रिसकर' कृषि तक पहुंच जाएगा और कृषि की उत्पादकता और उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी होगी। इसलिए कृषि क्षेत्र के लिए अलग से नीति बनाने की जरूरत महसूस नहीं की गई। औद्योगिक क्षेत्र में भी उपभोक्ता उद्योगों की अपेक्षा भारी उद्योगों में अधिक निवेश किया गया और ज्यादा संरक्षण दिया गया। ये सब विट व्यवस्था की गंभीर खामियां थीं। कृषि के हितों की रक्षा करने के पक्षधर अधिकारियों और कुलीनवर्गों का विरोध बढ़ता गया। एक स्वायत्त रूसी पूंजीवादी समर्थन के अभाव में यह नीति बहुत दिनों तक नहीं चल सकी।

11.12 1901 से 1914 तक औद्योगिक पूंजीवाद

1890 के दशक का यह उछाल 1901 की मंदी के बाद समाप्त हो गया। सबसे आधारभूत कारण यह था कि 1890 के दशक में किसानों का जीवन स्तर गिर गया था और उनकी कर अदा करने की शक्ति क्षीण हो गई थी। 1897 और 1901 बीच लगातार अनाज का उत्पादन कम हुआ जिससे अनाज उत्पादक इलाके प्रभावित हुए। इससे छुटकारा शुल्क और दूसरे प्रकार का बकाया बढ़ता गया और निर्यात से होने वाली आय में कमी आई। इसका मतलब यह हुआ कि सरकार अब 1890 की दशक की तरह उद्योग में पूंजी निवेश नहीं कर सकती थी जबकि व्यापार और भुगतान संतुलन बुरी तरह प्रभावित हुए थे।

11.12.1 संकट

1899 के मध्य से मुद्रा बाजार की स्थिति विकट हो गई; यही औद्योगिक संकट का तात्कालिक कारण बना। पूरे विश्व में ब्याज की दर ऊपर उठने और अन्तरराष्ट्रीय निवेश का प्रवाह धीमा होने का प्रभाव केवल रूस पर ही नहीं बल्कि पश्चिमी यूरोप पर भी पड़ा। इस औद्योगिक संकट के कारण कई उद्योग दिवालिए हो गए, औद्योगिक मूल्यों में तेजी से कमी आई, खासकर बड़े उद्योगों में उत्पादन अवरुद्ध हुआ और लौह पिंड, लोहा और कच्चे तेल का उत्पादन जरूरत से ज्यादा हो गया। 1902 का वर्ष सबसे खस्ता हाल वर्ष था। इस दौरान लगभग 2400 औद्योगिक इकाइयां बन्द हो गईं जिनमें से एक तिहाई इकाइयां क्रिवोई रोग के खनन क्षेत्र में थीं और बड़े धातु उत्पादक उद्योगों का एक चौथाई हिस्सा बंद हो गया। औद्योगिक बेरोजगारी अब 90,000 तक पहुंच गई। ब्याज दर बढ़ गई और शेयरों के मूल्यों में गिरावट आई। अपने पूंजी भंडार को बचाए रखने के लिए बैंकों ने ऋण पर प्रतिबंध लगा दिया और कार्य पूंजी प्राप्त करना भी कठिन हो गया। 1890 के दशक में भारी उद्योग की जिन शाखाओं में तेजी से विकास हुआ था वही इस मंदी से सबसे ज्यादा प्रभावित हुई।

इस संकट के कारण 1903 में वित्त मंत्री एस.ईयू. विट को मंत्रालय से निकाल दिया गया। सरकार की औद्योगिक नीतियों के विरोधियों ने इस औद्योगिक संकट को प्रमाण के रूप में पेश करते हुए कहा कि किसान की उपभोक्ता वस्तुओं पर भारी कर लगाने का विचार गलत था और रूसी औद्योगीकरण कृत्रिम था क्योंकि यह मुख्य रूप से सरकारी आदेशों और मांगों पर आधारित था।

11.12.2 एकाधिकार स्थापित करने के तरीके

रूसी उद्योग में संकट आने से उत्पादन और विक्रय को नियंत्रित करने के लिए कई एकाधिकार मूलक उपाय किए गए। प्रत्येक क्षेत्र में इस उद्देश्य के लिए बड़ी कम्पनियों के 'सिंडिकेट' बनाए गए। जिन उद्योगों में विदेशी पूंजी निवेशित थी उनमें यह प्रवृत्ति 1902 के बाद तेजी से विकसित हुई। धातु निर्माण उद्योग में प्रोडामेट (1902); रेलवे वाहनों के लिए प्रोडवैगन (1906), डोनेट कोयले के लिए प्रोडुगोल (1906) इस प्रकार के संगठनों के कुछ उदाहरण हैं। 1914 तक इस प्रकार के 150 से भी ज्यादा संगठन स्थापित हो गए थे और वे न केवल खनन और धातु निर्माण क्षेत्रों को नियंत्रित करते थे बल्कि वस्त्र और चीनी जैसे हल्के उद्योगों को भी नियंत्रित करते थे।

जर्मनी में भी इसी प्रकार के संगठन स्थापित थे जिन्हें 'कार्टेल' के नाम से जाना जाता था। परंतु रूस के इन संगठनों और जर्मनी के इस कार्टेल में कई तरह की असमानताएं थीं। रूस के ये संगठन एक ढीले ढाले संगठन थे जिनका मूल उद्देश्य मूल्यों पर नियंत्रण स्थापित करना और उद्योग विशेष में प्रतियोगिता पर काबू रखना था। उनकी विधियां अलग-अलग थीं। कुछ ने परिवहन और विक्रय लागत बचाने के लिए आदेश आवंटन को अपने हाथ में ले लिया था और कुछ ने ऋण की शर्तों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया था। ये सिंडिकेट आमतौर पर बिक्री एजेंसियां होती थीं जो उत्पादन को नियमित करने के लिए न के बराबर हस्तक्षेप करती थीं।

1901 से लेकर 1914 तक औद्योगीकरण की प्रतिवर्ष वृद्धि दर 6% रही। 1901-1903 के संकट ने राज्य के आदेशों और रेलवे निर्माण पर आधारित औद्योगिक नीतियों की कमजोरियों का पर्दाफाश कर दिया क्योंकि इससे उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योग कम प्रभावित हुए। इसी प्रकार युद्ध पूर्व अन्तिम वर्षों से लेकर 1914 तक औद्योगिक पूंजीवाद धीमी गति से और सचेत होकर अलग ढंग से आगे बढ़ा। 1904-1905 में जापान के साथ युद्ध और 1905-1907 की प्रथम रूसी क्रांति के साथ-साथ छुटकारा भुगतानों के उन्मूलन और करों के भुगतान की संयुक्त जिम्मेदारी के सिद्धांत के कारण बजट पर दबाव और भी बढ़ा। रेलवे निर्माण कम हुआ और इसकी गतिविधि धीमी रही।

गेरशेनक्रोन के प्रारूप में राज्य के स्थान पर बैंक उद्योग को वित्त प्रदान करने की प्रमुख भूमिका निभा रहा था और इसके लिए विदेशी निवेश भी जुटा रहा था परंतु इसे प्रमुखतः रूसी कम्पनियों के जरिए निवेशित किया जा रहा था।

1907-8 में मंदी का नया दौर आया जिसने कई औद्योगिक क्षेत्रों को प्रभावित किया। कोयला, लोहा और इस्पात, सूती वस्तुओं और परिशोधित तेल के उत्पादन में कमी आने के साथ-साथ मूल्य में कमी आई और बेरोजगारी में वृद्धि हुई।

11.12.3 1908-13 में हुआ विकास

सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि 1908-13 के दौरान युद्ध होने के पहले के पांच वर्षों में उद्योग और कृषि के क्षेत्रों में नियमित और प्रभावी वृद्धि हुई। 1908 के बाद रूसी उद्योगों में पुनः तीव्र गति से प्रसार हुआ और 1900 के पहले के मुकाबले कारखानों की उत्पादन क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। 1908 और 1913 के बीच लौह पिंड का उत्पादन 61%, कोयला का 73% और लोहे और इस्पात का उत्पादन 60% बढ़ गया। इसके चलते 1908-13 के बीच बड़े उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि हुई; जो मौजूदा दर पर प्रतिवर्ष औसतन 9% और 1993 के मूल्यों पर 7% थी। यह वृद्धि दर काफी अच्छी थी जो 1890 के दशक में हुई तीव्र वृद्धि के लगभग थी और 1900 और 1907 के बीच अर्जित सामान्य दर (वार्षिक दर मुश्किल से 1.5% पर हो पाई थी) से काफी ज्यादा थी।

1895 और 1905 के बीच की तुलना में 1905 और 1913 के बीच कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। उपज में यह वृद्धि कृषि क्षेत्र के विस्तार और अधिक उपज देने वाले अनाजों के कारण हुआ, हालांकि अभी भी रूस में उपज कम ही थी। घरेलू और विश्व बाजारों में अनाज और अन्य कृषि उत्पादों का मूल्य औद्योगिक वस्तुओं के मुकाबले ही बढ़ा। अनाज के निर्यात में वृद्धि होने से भी किसान घरेलू उद्योग के लिए बड़ा बाजार प्रस्तुत कर सके।

प्रथम विश्वयुद्ध के पहले उत्पादन, निवेश, मूल्य और मुनाफे में चारो ओर तीव्र गति से वृद्धि हुई। भारी उद्योगों

के उत्पादन में वृद्धि होने से भी सभी क्षेत्र प्रभावित हुए परंतु उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन भी समान गति से हुआ। रबर, जूता-चप्पल, ऊनी वस्त्रों, चर्बी और कुछ खास वस्तुओं में विशेष वृद्धि हुई। वस्तुत: 1913 तक खनन और धातु निर्माण जैसे आधारभूत उद्योगों का नहीं बल्कि उपभोक्ता वस्तुओं का औद्योगिक विकास में वर्चस्व रहा। यहां तक कि औद्योगीकरण के तीन दशकों बाद 1913 तक कुल औद्योगिक उत्पादन में लगभग आधा हिस्सा वस्त्र उद्योग और खाद्य वस्तुओं का था। खनन, धातु निर्माण और इंजीनियरिंग को मिलाकर होने वाले उत्पादन से यह दोगुना था। स्टॉलपिन सुधारों (1905-11) के बाद कम्यून की समाप्ति और संयुक्त भूमि स्वामित्वों और कर अदायगी की संयुक्त जिम्मेदारी के उन्मूलन से श्रम बल में तेजी से वृद्धि हुई और किसानों की वास्तविक आय में बढ़ोत्तरी हुई। उनके द्वारा औद्योगिक वस्तुओं की खरीददारी करने से भारी उद्योगों की अपेक्षा हल्के उद्योगों में मुनाफे की औसत दर ज्यादा नहीं थी।

11.12.4 1914 में रूस

रूस के युद्ध में शामिल होने से इसका आर्थिक विकास बाधित हुआ; इस घटना के एक साल पहले तक रूस मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान देश था। लगभग 85% लोग गांवों में रहते थे और कृषि पर आश्रित थे। कृषि में लगभग 67% लोग रोजगार करते थे और इससे 70% से भी ज्यादा राष्ट्रीय आय होती थी और रूस के पिछड़ेपन, निर्धनता और अज्ञानता का भार भी अनिवार्यत: रूस के किसानों को ही झेलना पड़ता था।

गोल्ड स्मिथ का अनुमान है कि 1860 से 1913 के बीच कुल औद्योगिक उत्पादन प्रतिवर्ष 5% की दर से बढ़ा (कारखाने और शिल्प उद्योग को शामिल करके) और प्रतिव्यक्ति उत्पादन में लगभग 3.5% की वृद्धि हुई। उस समय लगभग 50 वर्षों तक वृद्धि की इस ऊंची दर को बनाए रखना कठिन कार्य था। हालांकि रूस की आर्थिक मजबूती का आधार कृषीय मजबूती ही रही। कृषि वह आर्थिक क्षेत्र था जहां न तो पर्याप्त राज्य और देशी पूंजी लगाई गई और न ही प्रमुख प्रौद्योगिकियों और अन्य विधियों का इस्तेमाल हुआ।

1914 तक रूस में औद्योगिक क्षेत्र बड़े रूप में मौजूद था। यह औपनिवेशिक या समकालीन अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के समान केवल एक 'एनक्लेव' नहीं थे। ये बाजार और देश की अर्थव्यवस्था से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। वस्तुत: रूस में 'दुहरा' औद्योगिक क्षेत्र था जिसमें बड़े कारखाने और उत्पादन के छोटे किसान तथा शिल्पी संगठन भी शामिल थे। रूसी अर्थशास्त्री एस. जी. स्टरमिलिन के अनुसार यहां तक कि 1890 के दशक तक भी छोटे औद्योगिक उत्पादन का मूल्य दोगुना हो गया जबकि बड़े पैमाने के उत्पादन में तीन गुनी वृद्धि हुई। इस दुहरे औद्योगिक क्षेत्र में ग्रामीण आधारित उत्पादन का अनुपात ज्यादा रहना अर्थिक पिछड़ेपन को ही दर्शाता है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर तुलना करने से पता लगता है कि रूस अभी भी एक अल्प विकसित देश था जो आर्थिक पिछड़ेपन का एक और संकेतक था। आर्थिक विकास की दर मापने का सबसे सरल आधार प्रति व्यक्ति आय थी। 1913 में यूनाइटेड स्टेट्स और ग्रेट ब्रिटेन सबसे विकसित औद्योगिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएं थीं। उस समय रूस की प्रतिव्यक्ति आय इन देशों की तुलना में एक तिहाई थी। जर्मनी रूस का आर्थिक आदर्श, उदाहरण और प्रतिद्वंद्वी था। इसकी तुलना में रूस की प्रतिव्यक्ति आय आधी थी।

बोध प्रश्न 2

1) देर से औद्योगीकरण की शुरुआत की भरपाई के लिए विट ने क्या रणनीति अपनाई ?

....

....

....

....

....

....

2) 1890 के दशक के औद्योगिक उछाल की क्या सीमाएं थीं ?

....

....

....

....

....

....

3) बीसवीं शताब्दी के आरंभ में औद्योगिक संकट का सामना करने के लिए 'सिंडीकेटों' ने क्या कदम उठाए?

....

....

....

....

....

....

4) 1914 तक रूसी औद्योगिक अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं क्या थीं ?

....

....

....

....

11.13 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि रूस का औद्योगिक पूंजीवाद किस प्रकार लगातार देश के आर्थिक पिछड़ेपन से जूझता रहा। इस प्रक्रिया में राज्य ने विशेष भूमिका अदा की जिसने 'कृषिदासों की मुक्ति' के द्वारा श्रम बल जुटाने का प्रयास किया। निवेश के लिए विदेशी पूंजी लाने के लिए नीतियां बनाई और औद्योगिक केंद्रों की स्थापना की दिशा में प्रयास किए। हालांकि, जैसा कि हमने देखा, इस औद्योगीकरण का बोझ किसानों पर पड़ रहा था और कृषि क्षेत्र में अपर्याप्त वृद्धि से पिछड़ापन बना रहा।

11.14 शब्दावली

अनिवार्य श्रम नजराना : रूस में कृषिदास किसी भूमिपति के खेतों या व्यक्तियों से बंधे होते थे और नजराने के रूप में उन्हें अनिवार्य श्रम करना होता था।

विकल्प का सिद्धांत : गेरशेनक्रोन के अनुसार औद्योगीकरण के लिए जरूरी मुक्त श्रमिक और पूंजी उपलब्धता जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति कई 'विकल्पों' से हो सकती है। जैसे रूस में राज्य ने 'विकल्प' की प्रमुख भूमिका निभाई और श्रम तथा पूंजी उपलब्ध कराई।

एकाधिकार : एक औद्योगिक अर्थव्यवस्था की ऐसी स्थिति जहां एक फर्म या कई फर्म मिलकर उत्पादन के स्रोतों के साथ-साथ बाजार पर भी नियंत्रण रखते हों।

सिंडिकेट : रूस में कम्पनियों के समूह जो उद्योगों पर आर्थिक संकट का सामना करने और एकाधिकार स्थापित करने लिए बनाए गए थे।

11.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 11.2 देखें। इसमें आप जलवायु संबंधी उन परिस्थितियों का उल्लेख कर सकते हैं जिनके कारण

साल में ज्यादा समय तक खेती नहीं की जा सकती और इन दिनों चारागाह भी उपलब्ध नहीं होते थे। इसके कारण आनाज का उत्पादन कम होता था और पशुधन का भी अधिशेष उत्पादन नहीं होता था। आप यह भी लिख सकते हैं कि रूस के महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत, जैसे कच्चा लोहा और कोयला, रूसी साम्राज्य के सीमांत प्रदेशों में स्थित थे जहां जाने के लिए परिवहन के उपयुक्त साधन उपलब्ध नहीं थे। रेलवे के आगमन के बाद ही इन क्षेत्रों में आसानी और तीव्रता से आवागमन संभव हुआ और इन संसाधनों का भरपूर उपयोग हो सका।

2) देखिए भाग 11.4 किसान अब उद्योगों और व्यापार में अधिक मुक्त रूप से काम कर सकते थे और मुनाफा कमा सकते थे। दूसरे, मुद्रा अर्थव्यवस्था का क्षेत्र विस्तृत हुआ क्योंकि छुटकारा शुल्क का भुगतान नगदी हो सकता था। इसका एक निषेधात्मक पक्ष यह था कि इससे किसानों पर भारी छुटकारा शुल्क का कर बोझ बढ़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि कृषि क्षेत्र से एकतरफा वसूली होती रही जिसमें से बहुत कम हिस्सा वापस कृषि क्षेत्र में लगाया गया और अधिकांश धन भूमिपतियों की थैली भरता रहा। राज्य ने अप्रत्यक्ष कर बढ़ाया जिससे किसानों पर तो बोझ पड़ा पर प्रधान उद्योगों को वित्तीय पूंजी अवश्य प्राप्त हुई, परंतु दूसरी ओर ऋण और कर के बोझ के कारण श्रम गत्यात्मकता बाधित हुई।

3) देखिए भाग 11.6 शब्दावली भी देखिए।

4) देखिए भाग 11.10 यूरोप में शांति और औद्योगीकरण के संबंध में सरकारी नीति की दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 11.11 इसमें आप विट द्वारा भारी उद्योग वृद्धि की तीव्र गति, सीमा-शुल्क संरक्षण, आदि पर बल दिए जाने का उल्लेख कर सकते हैं।

2) देखिए उपभाग 11.11.1 मुद्रा बाजार में आए संकट की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा आप कर सकते हैं।

3) देखिए उपभाग 11.12.2 आप ऋण के नियंत्रण, परिवहन के एकाधिकार आदि जैसे उपायों का उल्लेख कर सकते हैं।

4) देखिए उपभाग 11.12.4

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

इ. जे. हाब्सबॉम: **इन्डस्ट्री एंड एम्पायर**, पेंग्विन
जे.आई.टी बरी: **फ्रांस 1814–1890** (लंदन 1969)
डब्ल्यू कार: **हिस्ट्री ऑफ जर्मनी 1815–1945** (लंदन, 1979)
जी. स्टीफेनसन: **ए हिस्ट्री ऑफ रशिया 1812–1945** (लंदन, 1969)

इकाई 12 जनसांख्यिकी

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- यूरोप में 1750-1850 के बीच जनसांख्यिकी में परिवर्तनों को समझने के लिए उपलब्ध विभिन्न दृष्टिकोणों से परिचित हो सकेंगे,
- इस जनसांख्यिकी के इतिहास के अध्ययन के लिए उपयोगी स्रोतों को पहचान सकेंगे,
- यह समझ सकेंगे कि जनन क्षमता, वैवाहिक प्रथा या मृत्यु दर जैसे परिवर्तनीय कारक किस प्रकार अलग-अलग समयों में अलग-अलग महत्व प्राप्त कर लेते हैं, और
- बता सकेंगे कि विभिन्न लेखकों ने किस प्रकार जनसंख्या और आर्थिक उन्नति के बीच अलग-अलग ढंग से संबंध स्थापित किया है।

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में 1750 के आरंभ से दो शताब्दियों तक यूरोप की जनसांख्यिकी पर विचार किया जा रहा है। इस युग में यूरोप में जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई। इस इकाई में जनसंख्या वृद्धि की परिवर्तनीय दरों, इसके निर्धारक तत्वों और सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से इसके संबंध पर विचार कर सकेंगे, मूलत: जन्म, मृत्यु और देशांतरण के कारण एक समयावधि में जनसंख्या में परिवर्तन होता है। जनन क्षमता और मृत्यु दर में परिवर्तन स्वयं परस्पर संबद्ध जनसांख्यिकी और गैर-जनसांख्यिकी परिघटना के परिणाम होते हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यूरोप के अलग-अलग क्षेत्रों में और अलग-अलग समय में जनसंख्या परिवर्तन के निर्धारक तत्व और तरीके बदलते रहते हैं।

12.2 विभिन्न दृष्टिकोण

1970 के मध्य तक जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत पर आधारित दृष्टिकोण जनसांख्यिकी के क्षेत्र में प्रमुख दृष्टिकोण था। इसमें थोड़े विवरण और थोड़े सिद्धांत से युक्त त्रिपक्षीय संक्रमण की बात की गयी है। उच्च जनन क्षमता और उच्च मृत्यु दर के परिणामस्वरूप संक्रमण से पहले के चरण में जनसंख्या वृद्धि की दर कम रही; संक्रमणकाल के दौरान मृत्यु दर में कमी आने और जनन दर स्थिर रहने से या उसमें गिरावट न आने से जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई; और तीसरे चरण में या तो वृद्धि नहीं हुई या कम हुई। यह क्लासिकल संक्रमण सिद्धांत आधुनिकीकरण सिद्धांत का ही एक रूप है। इसमें बताया गया है कि औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण आदिम समाज से विकसित समाजों की ओर एक रेखीय विकास नहीं होता है।

पहले पच्चीस वर्षों में ऐतिहासिक जनसांख्यिकी की शोध विधियों में काफी विकास हुआ है। शक्तिशाली कम्प्यूटरों की बढ़ती उपलब्धता के कारण बड़े और जटिल आंकड़ों का आकलन भी आसान हो गया और इसकी सहायता से समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना संभव हो सका। इसके अलावा माल्थस के 'सकारात्मक नियंत्रण' के सिद्धांतों और जलवायु तथा बीमारी जैसे बाहरी कारणों पर बल दिए जाने के बजाए ऐतिहासिक जनसांख्यिकी में 'निरोधक नियंत्रण' पर बल दिया गया जिसके तहत सामाजिक, सांस्कृतिक और संस्थागत कारकों पर विचार किया गया। रिंगले और शोफिल्ड की पुस्तक 'पोपुलेशन हिस्ट्री ऑफ इंग्लैंड' से 16वीं और 19वीं शताब्दी के बीच नई दिशा और परिवर्तन का संकेत मिलता है।

14वीं शताब्दी के मध्य के बाद काली मौत के युग के पश्चात यह बहस शुरू हो गई कि जनसंख्या वृद्धि में कमी के लिए विवाह में कमी उत्तरदायी है या उच्च मृत्यु दर। 1500 और 1900 के बीच लगभग सभी लोगों का यही मानना था कि वैवाहिक व्यवस्था में बदलाव आने से इंग्लैंड में दीर्घावधि में जनसंख्या की वृद्धि पर प्रभाव पड़ा और यहां यूरोप से अलग जनसांख्यिकी प्रवृत्ति देखने को मिलती है। एन्सले कोल ने प्रिंसटन विश्वविद्यालय में यूरोपीय जनन क्षमता पर दो दशकों तक काम किया और संक्रमण सिद्धांत की तुलना ऐतिहासिक सिद्धांत के साथ करने के लिए 700 प्रांत-स्तरीय इकाइयों से आंकड़ा इकट्ठा किया। इस सर्वेक्षण के परिणाम से क्लासिकल संक्रमण नमूने की कमियां सामने आई: जनन क्षमता में आई गिरावट और सामाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए किए गए उपायों में कोई सुसंगत संबंध नहीं दिखाई पड़ा। इन परिणामों से यह बात सामने आई कि जनन क्षमता का सीधा संबंध 'संस्कृति' से होता है जो भाषा, जातीयता या भौगोलिक क्षेत्र के रूप में व्यावहारिक रूप से परिभाषित की जाती है। विवाह की उम्र में अंतर और अविवाहित रहने की प्रथा से जनसंख्या की 'प्राकृतिक जनन क्षमता' में अंतर आता है। इस शोध के सभी परिणाम हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचाते हैं कि पूरे यूरोप के लिए एकमात्र जनसांख्यिकी व्यवस्था की परिकल्पना मुश्किल है। इसके अलावा प्रत्येक देश और क्षेत्र की जनसंख्या का इतिहास वहां की विशिष्ट आर्थिक, संस्थागत और सांस्कृतिक इतिहासों से गहराई से जुड़ा होता है।

12.3 प्रमुख स्रोत

नौर्डिक (स्कैन्डिनेविया) देशों को छोड़कर 19वीं शताब्दी के आरंभ में यूरोप में नियमित, भरोसेमंद और केंद्रीकृत रूप में व्यवस्थित जनगणना की शुरुआत हुई। इंग्लैंड, स्कॉटलैंड और वेल्स में 1807 में, आयरलैंड में 1821 में नियमित जनगणना और 1816 में फ्रांस में पंचवर्षीय गणना शुरू हुई। इसके पहले फ्रांस में 1690 के दशक में सरकारी स्तर पर जनगणना की गई थी और 1801 ओर 1806 में अनुमानित संग्रह किया गया। नेपोलियन के आक्रमणों के फलस्वरूप बेल्जियम, निदरलैंड और हेल्वेटिक गणतंत्र तथा कुछ जर्मन राज्यों में राष्ट्रीय जनगणना का आयोजन किया गया। इसके बाद बेल्जियम में 1829 से, निदरलैंड में 1839 से, स्वीटजरलैंड में 1850 से नियमित जनगणना शुरू हुई और 1852 में पूरी जर्मनी में जनगणना की गई। ये आरंभिक जनगणनाएं अधूरी थीं और इनमें एक समान गणना नहीं की गई।

इनमें सबसे पहले प्रमुख घटनाओं को दर्ज किया गया। चर्च ने उत्तर मध्य काल में प्रत्येक बपतिस्मा को दर्ज करना शुरू कर दिया और इसके बाद विवाहों और मृतकों का भी आंकड़ा रखा जाने लगा। 1750 तक पश्चिमी यूरोप के अधिकांश देशों में चर्च द्वारा जन्म और मृत्यु का रजिस्टर रखा जाने लगा। फ्रांस में 1579

से लगातार जन्म मृत्यु रजिस्टर पाया जाता है और नैर्डिक देशों में 1730 के दशक से इस प्रथा की शुरुआत पाई जाती है। फ्रांस में पहली बार 1792 में चर्च से अलग जन्म मृत्यु पंजीकरण की प्रथा की शुरुआत हुई। इस प्रकार की सूचना प्राप्त करने के तरीके अलग-अलग थे और उनका विवरण भी अलग-अलग ढंग से लिया जाता था। उदाहरण के लिए 19वीं शताब्दी के आरंभ में असादृश्य, विलंबित बपतिस्मा और पंजीकरण न कराने से ऐंग्लिकन रजिस्टर में कुल जन्म और मृत्यु के 75 प्रतिशत से कम का ही अभिलेखन हो पाता था। इन कमियों के बावजूद इस सूचना से पारिवारिक पुनर्गठन के जरिए जनसांख्यिकी इतिहास का पुनर्निर्माण किया जा सका। फ्रांस और स्कैन्डिवियन देशों की अपेक्षा इंग्लैंड, वेल्स और नीदरलैंड में अभिलेखन की सम्बद्धता से ज्यादा समस्याएं सामने आईं। परिवार पुनर्गठन से नवजात शिशु और बच्चों की मृत्यु दर के संबंध में तो पर्याप्त सूचना मिली परंतु वयस्क मृत्यु दर का आकलन करने और जनसंख्या आकार का निर्धारण करने में इसका कम उपयोग हो सका। परिवार पुनर्गठन से प्राप्त जनसांख्यिकी आकलन में केवल परिवार में 'टिकने वालों' की ही गणना की जाती थी और ये अपेक्षाकृत थोड़े 'पूर्ण परिवार' पर ही आधारित था। इस प्रकार के आधे अधूरे और अपर्याप्त प्रमाणों के आधारों पर सामान्यीकरण करने से गलत निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं; रिंगले के कोलिटोन के परिवार पुनर्गठन में परिवार सीमा का उल्लेख किया गया था परंतु जब पहले रजिस्टर में दर्ज पहले 13 और बाद में 26 चर्चों के रजिस्टरों पर विचार किया गया और आंकड़ा आधार विस्तृत किया गया तो परिवार सीमा का कोई प्रमाण नहीं पाया गया। पुनर्गठन अभ्यासों के गुणन से जनसंख्या आकार के आकलन में मदद नहीं मिलती है। इससे जन्म, मृत्यु और प्रजनन दरों का कुल योग प्राप्त करने में मदद मिलती है। इस समस्या के समाधान के लिए कैम्ब्रिज ग्रुप ने जनगणना काल को पूर्व-सांख्यिकी काल से जोड़ने के लिए 'पिछले आंकड़े' को आधार बनाया। इस तकनीक के आधार पर 1451 से 1751 तक इंग्लैंड की जनसंख्या का पंचवर्षीय आकलन किया जा सका।

बीसवीं शताब्दी की जनसांख्यिकी में विश्वसनीयता और स्रोत सामग्री के आकार में तेजी से सुधार हुआ। सांख्यिकी आंकड़े के अलावा हमें राज्य नीतियों और जनसंख्या संबंधी बहसों के बारे में भी काफी सूचना मिलती है।

इस इकाई में यूरोप के जनसांख्यिकी इतिहास को हमने दो कालों में विभाजित किया है -- पहले काल में 1750 से लेकर 19वीं शताब्दी के अंत तक की चर्चा की गई है। दूसरे काल में शताब्दी की शुरुआत से लेकर 1870 दशक तक का जिक्र किया गया है। यह माना जाता है कि 1870 के दशक के आस पास यूरोप के अधिकांश देशों में जनन क्षमता में लगातार कमी आई। इसीलिए इसे विभाजन का आधार बनाया गया है।

12.4 1750 से 1850 तक जनसंख्या प्रवृत्ति

पश्चिमी यूरोप के जनसांख्यिकी इतिहास में सोलहवीं शताब्दी से जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई। 12वीं, 13वीं और 15वीं शताब्दियों में जनसंख्या वृद्धि की दर समान रही परंतु 1750 से लेकर 1850 तक कोई उल्लेखनीय और दूरगामी जनसांख्यिकी संकट पैदा नहीं हुआ। 1750 में जनसंख्या 600 से 640 लाख थी जो 1850 में बढ़कर 1160 लाख हो गई। परंतु यह वृद्धि पूरे महाद्वीप में एक समान नहीं थी।

1750 **(लगभग)** 1850 **(लगभग) में आकलित जनसंख्या (लाखों में)**

देश	लगभग 1750	लगभग 1800	लगभग 1850
नौर्वे	[7]	9	1.4
स्वीडेन	18	23	35
फिनलैंड	5	10	16
डेनमार्क	[7]	9	14
आइसलैंड	0	0	1
जर्मनी	[184]	(245)	(350)
निदरलैंड	[19]	(21)	31
बेल्जियम	[22]	[28]	(44)

स्वीटजरलैंड	14	17	24
फ्रांस	245	290	359
स्कॉटलैंड	13	16	29
वेल्स	[3]	06	12
इंग्लैंड	58	87	167
आयरलैंड	24	[52]	67
कुल	619	813	1163

[ ] :दीर्घावधि अज्ञात स्रोतों पर आधारित, 'लगभग'

( ): दो संतुलित आंकड़ों के बीच के ज्ञात स्रोतों पर आधारित 'लगभग' आकलन

जर्मनी का आंकड़ा 1914 की सीमा पर आधारित है जिसमें अलसास और लौरेन शामिल नहीं था। 1750 और 1850 के बीच यूरोप में जनसंख्या वृद्धि 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की धीमी गति से हुई। नेपोलियन युद्ध के वर्षों में यूरोप की जनसंख्या वृद्धि को प्रमुख रूप से धक्का लगा । रूस के साथ हुए युद्धों के परिणामस्वरूप स्वीडेन, फिनलैंड और नौर्वे में महामारी और भूखमरी से 1860 से 1810 के बीच जनसंख्या में तेजी से गिरावट आई और लगभग एक दशक तक कोई वृद्धि नहीं हुई। केवल ब्रिटेन इससे अछूता रहा और यहां एक प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से मध्यम विकास होता रहा। युद्ध का अंत होते ही जनसंख्या वृद्धि में तेजी आई। 1820 तक यह वृद्धि एक प्रतिशत तक पहुंच गई या इसे पार कर गई। इसके बाद वृद्धि में फिर कमी आई। 1830 के दशक में केवल जर्मनी, इंग्लैंड, नौर्वे, और स्कॉटलैंड ही एक प्रतिशत वृद्धि दर को छू सके। आयरलैंड, फिनलैंड और फ्रांस में 0.5 प्रतिशत से भी कम वृद्धि दर दर्ज की गई। 1840 के दशक में छोटे देशों में थोड़ी सी तेजी आई। इंग्लैंड और जर्मनी में वृद्धि दर में कमी आई। फ्रांस में वृद्धि दर कम यानी 0.5 प्रतिशत रही। आयरलैंड में जनसंख्या में कमी आई। आलू अकाल के कारण बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हुई और लोग घर-बार छोड़कर भाग गए।

देशों के भीतर भी जनसंख्या परिवर्तन के स्वरूप में अंतर था। इंग्लैंड में दक्षिण-पूर्व और उत्तर के औद्योगिक क्षेत्रों में देश के बाकी क्षेत्रों की अपेक्षा तीव्र विकास हुआ था। स्वीटजरलैंड के अल्पाइन क्षेत्रों में वृद्धि काफी धीमी थी। जर्मनी में जनसंख्या वृद्धि दर पूर्व के खेतिहर इलाके में ज्यादा, पश्चिम के औद्योगिक क्षेत्र में मध्यम और दक्षिण क्षेत्र में सबसे कम थी।

12.4.1 देशांतरण

शहरी जनसंख्या की तीव्र वृद्धि में आन्तरिक देशांतरण की प्रमुख भूमिका थी जहां मृत्यु दर जन्म दर से ज्यादा थी। 1750–1850 अवधि में बाह्य देशांतरण जनसांख्यिकी की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण नहीं था। यूरोप में प्रथम विश्व युद्ध होने के पूर्व के पचास वर्षों में यूरोप से लगभग 200 लाख लोग दुनिया के दूसरे क्षेत्रों में चले गए। 1816-17 और 1847 के आलू खेती की असफलता के कारण जर्मनी और स्वीटजरलैंड में देशांतरण हुआ। 1840 के दशक में जर्मनी की कुल जनसंख्या 300 लाख थी जिसमें से 300,000 जर्मन देश से बाहर चले गए। आयरलैंड से इस अवधि में सर्वाधिक लोग देशांतरित हो गए। 1845-48 के अकाल के बाद कुल जनसंख्या (1841 में) का 1/8वां भाग देश छोड़कर बाहर चला गया। अधिकांश अन्य क्षेत्रों में यह प्राकृतिक वृद्धि या कमी की दर थी अर्थात जन्म और मृत्यु के बीच के अंतर से ही जनसंख्या में मुख्य रूप से परिवर्तन होता रहा था।

12.5 जनन क्षमता और विवाह प्रथा

यूरोप में जनसांख्यिकी परिवर्तन के लिए जन्म दर में आए परिवर्तन को मुख्य रूप से जिम्मेदार माना गया। जारजता, जनन शक्ति और वैवाहिक पद्धति में आए संयोजनात्मक परिवर्तन से जन्म दर को समझने में मदद मिली। जन्म दर में संयोजनात्मक प्रभावों का असर तब होता है जब जनन क्षमता की आयु वाले महिला

समूहों में तेजी से परिवर्तन आता है। नौर्वे के चक्रीय परिवर्तनों में जन्म दर में संयोजनात्मक प्रभावों का योगदान महत्वपूर्ण था।

1750 और 1790 के बीच लगभग सभी जगह जारज और अवैध सन्तानों के अनुपात में वृ्ि हुई। हालांकि विवाहपूर्व और विवाहेतर गर्भावस्था की दरों में होने वाले परिवर्तन से उस काल में जनसंख्या वृद्धि में होने आले परिवर्तन का कोई खास पता नहीं चलता है। इंग्लैंड में 1750, 1800 और 1850 में क्रमश: 3, 5 और 6.5 प्रतिशत सन्तानें अवैध थीं। जन्म दर में केवल 10% वृद्धि के लिए अवैध संतानोत्पत्ति को उत्तरदायी माना जा सकता है। 1750 और 1820 के दशक के बीच फ्रांस में अवैध बच्चों की संख्या चौगुनी बढ़ी फिर भी कुल वैध जन्में बच्चों में से 1/8 हिस्सा ही था।

अधिकांश क्षेत्रों में कुल वैवाहिक जनन क्षमता अनुपात 8 और 9.5 के बीच था परंतु इंग्लैंड और स्वीडेन में यह कम था। वैवाहिक जनन क्षमता से इंग्लैंड में कम आंतरिक परिवर्तन की सूचना मिलती है जबकि फ्रांस में यह काफी विषम रहा। 1600 और 1800 के बीच इंग्लैंड की वैवाहिक जनन क्षमता स्थिर रही। हालांकि फ्रांस में आरंभ में इसमें गिरावट आई परंतु 1820 के बाद पूरे देश में सभी जगह छोटे परिवार ही थे।

जनन क्षमता के स्तर का निर्धारण जनन शक्ति और उसके उपयोग पर निर्भर करता है। इस अवधि में महिलाओं की जनन शक्ति में कोई खास उतार चढ़ाव नहीं आया। स्वास्थ्य और पोषण में सुधार होने से जनन शक्ति में वृद्धि हुई। स्कैन्डिनेविया के कुछ हिस्सों में गुप्त रोग, मलेरिया और चेचक होने से जनन शक्ति में कमी आई। इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं है कि इन वर्षों में जनता के पोषणात्मक स्तर में वृद्धि हुई थी। हालांकि खाद्यान्न आपूर्ति में उतार-चढ़ाव कम हुआ था।

ऐसा लगता है कि स्तन पान से भी जनन क्षमता पर प्रभाव पड़ा। जर्मनी के गांव पर किए गए शोध में देखा गया है कि जहां स्तन पान कम देर के लिए कराया जाता है वहां जन्म दर ज्यादा है। फ्रांस के शहरी क्षेत्रों में जहां स्तन पान कम अवधि के लिए कराया जाता था वहां वैवाहिक जनन क्षमता की दर ऊंची थी। फ्रांस के शहरी क्षेत्रों में जहां बच्चों को पालने के लिए धायों का उपयोग किया जाता था और मां अपने बच्चे को दूध कम समय के लिए पिलाती थी वहां जनन क्षमता ज्यादा थी। नवजात शिशु की मृत्यु दर से भी जनन क्षमता पर प्रभाव पड़ता था। फ्रांस में उच्च जनन क्षमता और निम्न जनन क्षमता क्षेत्रों के शिशु मृत्यु दर में 50 प्रतिशत का अंतर था।

1700 के बाद जेनेवा के बुर्जुआ वर्ग, फ्रांसीसी संभ्रांत वर्ग और फ्रांस के कुछ ग्रामीण इलाकों में जनन क्षमता को कम करने के सायास प्रयत्न किए गए। 1789 के बाद इस प्रकार के नियंत्रण में वृद्धि हुई। इंग्लैंड में रिंगले द्वारा कॉलिटेन के अध्ययन से यह बात सामने आई कि जनन क्षमता का स्तर कम होने का कारण ये नियंत्रण नहीं थे। हालांकि स्वीडेन, जर्मनी आदि में नियंत्रण के प्रारंभिक प्रमाण मिलते हैं लेकिन इसके सतत प्रयास के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं। अठारहवीं शताब्दी के अंत में जहां फ्रांस में वैवाहिक जनन क्षमता में कमी आई थी वहीं यूरोप के अन्य देशों में जनसंख्या की वृद्धि 'प्राकृतिक जनन' क्षमता के अनुसार हो रही थी। यहां यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि आरंभिक धारणा यूरोपीय जनन क्षमता परियोजना पर आधारित थी जिसमें सायास जनन क्षमता नियंत्रण की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर आधुनिक या पूर्व आधुनिक जनसांख्यिकी प्रणाली व्यवस्थाओं के बीच अन्तर स्पष्ट किया जाता था। बाद में इसे संशोधित किया गया। यूरोपीय जनन क्षमता परियोजना ने सायास जनन क्षमता नियंत्रण की तुलना समतुल्य विशिष्ट नियंत्रण से की थी। अब यह स्पष्ट है कि बच्चे पैदा करने पर तो रोक नहीं लगी परंतु बच्चों के पैदा होने के बीच के अंतर से यूरोपीय वैवाहिक जनन क्षमता पर प्रभाव पड़ा।

12.6 विवाह व्यवस्था में परिवर्तन

हाल ही में किए गए अनुसंधानों से यह पता चलता है कि जब गर्भ निरोधक उपायों का उपयोग नहीं किया जाता था तब विवाहितों की संख्या और विवाहितों की उम्र का निर्धारण करके जनन क्षमता में कमी लाई जाती थी। सबसे पहले हैजनेल ने इस बात पर गौर किया था कि यूरोपीय विवाह पद्धति की विशिष्टता के कारण जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण स्थापित रहता है। उसने यह बताया कि ट्रिस्टे से लेकर लेनिनग्राद तक पश्चिम क्षेत्र में विवाहित महिलाओं का अनुपात (15 से 50 वर्ष की उम्र में 45 से 50 प्रतिशत महिलाएं) पूर्वी प्रदेश

(60 से 70 प्रतिशत) से काफी कम था। उसके अनुसार यूरोप में 19वीं शताब्दी के अंत में विलम्ब से शादी होने लगी और अपेक्षाकृत अधिक महिलाएं अविवाहित रहने लगीं (यह गौर करने की बात है कि 10 से 20 प्रतिशत महिलाएं अपने जनन क्षमता उम्र में शादी नहीं करती थीं)। हालांकि हरेक सामाजिक समूह में इस दृष्टि से विभिन्नता पाई जाती थी। नौर्डिक देशों में निम्न वर्ग के पुरुष वृद्ध महिलाओं से शादी करते थे। इस प्रथा का चलन परिवार के आकार को नियंत्रित करने और छोटा करने की दृष्टि से किया जाता था। रिंगले और शोफिल्ड ने इंग्लैंड में रहने वाले लोगों की जनन क्षमता में होने वाले परिवर्तन के लिए प्रथम विवाह की उम्र और विवाह करने वालों के अनुपात की भूमिका महत्वपूर्ण मानी है। 80 प्रतिशत जनसंख्या वृद्धि के लिए यही दो कारक विशेष रूप से जिम्मेदार थे। आयरलैंड में कम उम्र में शादी कर देने से जनन क्षमता दर काफी ऊंची थी। फ्रांस में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विवाह की उम्र बढ़ी और 19वीं शताब्दी के आरंभ में विवाह की उम्र घटी। विवाह की उम्र में कमी आने से जनन क्षमता में वृद्धि हुई। परंतु विवाह के बाद परिवार नियंत्रण के प्रथा के कारण संतुलन बना रहा।

12.7 मृत्यु दर

यूरोपीय ऐतिहासिक जनसांख्यिकी पर हाल में हुए अनुसंधान ने यूरोप में जनसंख्या परिवर्तन के लिए मृत्यु दर को प्रमुख कारक नहीं माना है। फ्लिन जैसे आरंभिक लेखकों ने मृत्यु दर का उल्लेख संकट के रूप में किया है। इस संकट की विकटता और बारंबारता में आई कमी को मृत्यु दर में आई कमी का कारण भी बताया गया है। 1700 से पहले महामारी से काफी मौतें हुआ करती थीं। 1720 में प्लेग उन्मूलन के बावजूद चेचक, पेचिश, टाइफस (एक प्रकार का बुखार), खसरा और इनफ्लूएंजा जैसी स्थानीय महामारियों का प्रकोप बना रहा। परंतु आधुनिक युग के आरंभ में इन बीमारियों का उतना प्रकोप नहीं था जितना युद्ध और आकाल से भारी तबाही मचती थी। दोनों के दामन में महामारी छिपी होती थी। 1700-21 के उत्तरी युद्ध के साथ जो बीमारी और अव्यवस्था फैली उससे स्वीडेन की 20 प्रतिशत जनसंख्या मौत के मुंह में चली गई। फ्रांस में 1693-94 के संकट के दौरान बीस लाख लोगों की और 1709-10 के दौरान दस लाख लोगों की मौत हुई।

19वीं शताब्दी के आरंभ में मृत्यु दर पर इस प्रकार के संकटों का प्रभाव पड़ना कम हो गया। अब यह पृष्ठभूमि में चला गया और इस कारण मृत्यु दर में कमी आई। इस काल में नवजात शिशु और बच्चों की मृत्यु दर में कमी आने से प्रमुखत: मृत्यु दर कम हुई। 1760-69 और 1820-39 के बीच दस वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु दर में कमी आने से फ्रांस में लोगों की आयु बढ़ने की दर में लगभग 80 % की वृद्धि देखने को मिलती है। यूरोप के अभिजात वर्ग की मृत्यु दर में तेजी से सुधार हुआ। चेचक से होने वाली मौतों में तेजी से कमी आई परंतु यह स्पष्ट नहीं है कि यह इस बीमारी के कमी से हुआ या इस बीमारी से अब कम लोग मरने लगे। हालांकि चारों ओर मृत्यु दर में कमी आ रही थी परंतु नवजात शिशुओं की मृत्यु दर में भारी कमी आई। वयस्कों की मृत्यु दर में कमी बाद में आई। बच्चों की ज्यादातर मौत चेचक से होती थी जिसमें कमी आई। परंतु फेफड़े में होने वाली टी.बी में बढ़ोत्तरी हुई। इंग्लैंड और फ्रांस में मृत्यु दर संकट में कमी आई परंतु अपेक्षाकृत कम और स्थानीय संकट बना रहा।

यूरोप की जनसांख्यिकी में होने वाले परिवर्तन पर विचार करने वाले अधिकांश लेखकों ने चिकित्सा, शिक्षा, अस्पताल, चिकित्सा सुविधाओं में हुए सुधार, चिकित्सकों की संख्या में वृद्धि, निरोधक दवाओं (जैसे चेचक का टीका), शहरों के सुधार और व्यक्तिगत सफाई को मृत्यु दर में आई कमी का कारण बताया है। 1950 और 60 के दशक में थॉमस, मैकोन ने इन चिकित्सा संबंधी व्याख्याओं को नकार दिया। उनके अनुसार 1850 तक मृत्यु दर घटाने में चिकित्सक बहुत कम सफल हो सके थे और 19वीं शताब्दी में अस्पताल संक्रमण से भरे हुए थे। मृत्यु दर में आई कमी का सबसे बड़ा कारण हवा के जरिए होने वाले संक्रमणों से होने वाली मौतों में आई कमी थी। इसी प्रकार बहुत कम लोगों को चेचक का टीका दिया जाता था। उसने बताया कि आधुनिक आर्थिक वृद्धि के परिणामस्वरूप लोगों के जीवन स्तर में हुए सुधार ने मृत्यु दर में कमी लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मैकोन के इस सिद्धांत की काफी आलोचना हुई। सबसे पहले उनकी इस धारणा को नकारा गया कि मृत्यु दर में आए सुधारों के कारण यूरोप की जनसंख्या में वृद्धि हुई थी। दूसरे जीवन स्तर में सुधार और मृत्यु दर के बीच के संबंध को भी नकारा गया। रिंगले और शोफिल्ड ने इंग्लैंड पर किए

अपने काम से इसे गलत सिद्ध किया। मजदूरी में हुए परिवर्तन और मृत्यु दर में हुए परिवर्तन के बीच उन्होंने कोई संबंध नहीं पाया।

बोध प्रश्न 1

1) 'जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत' से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

....

....

2) यूरोप में जनसांख्यिकी के इतिहासकारों ने जनसांख्यिकी इतिहास लिखने के लिए किन स्रोतों का इस्तेमाल किया ?

....

....

....

....

....

3) 19वीं शताब्दी के आरंभ में इंग्लैंड में आए जनन क्षमता परिवर्तनों का उल्लेख करते हुए रिंगले और शोफिल्ड ने किन दो परिवर्तनशील कारकों पर बल दिया था?

....

....

....

....

....

4) क्या थॉमस मैकोन यूरोप में मृत्यु दर की कमी के लिए चिकित्सकों और अस्पताल को जिम्मेदार मानते हैं अगर नहीं तो क्यों ?

....

....

....

....

....

12.8 जनसंख्या और संसाधन I

हम यह जान चुके हैं कि जनन क्षमता में बढ़ोत्तरी में प्रथम विवाह की उम्र और विवाहित जनसंख्या प्रमुख निर्धारक तत्व होते हैं। आइए, अब यह देखने की कोशिश करें कि आरंभिक आधुनिक यूरोप की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था से इनका क्या संबंध था।

सबसे पहले माल्थस ने विस्तार से जनसंख्या और संसाधनों के संबंध पर अपनी राय रखी। माल्थस के सिद्धांत के अनुसार जनसंख्या आर्थिक संसाधनों की अपेक्षा तेजी से बढ़ती है परंतु भूमि की वहन क्षमता जनसंख्या वृद्धि पर लगातार नियंत्रण लगाती रहती है। यह नियंत्रण 'निरोधक' और 'सकारात्मक' नियंत्रणों के रूप में काम करते हैं। इंग्लैंड के मामले में रिंगले और शोफिल्ड ने तर्क दिया कि माल्थस का सकारात्मक नियंत्रण 1700 के बाद बहुत महत्पूर्ण नहीं रह गया। अधिक महत्वपूर्ण मुद्दा शादियों की संख्या और पहली शादी की उम्र जैसे निरोधात्मक नियंत्रण स्थापित करना था। स्वीडेन में हुए हाल के अनुसंधान से यह पता चला है कि 1800 के बाद की अवधि में भी स्थानीय स्तर पर मजदूरी में होने वाले उतार-चढ़ाव का मृत्यु दर से संबंध था। इसमें बताया गया है कि इसमें मौसम की बड़ी निर्णयक भूमिका होती थी क्योंकि इससे अनाज भी कम पैदा होता था और बीमारियों के जरिए मृत्यु दर भी बढ़ जाती थी। परंतु इस समय स्वीडेन की जनसंख्या बढ़ रही थी और वृद्धि की यह प्रवृत्ति घट रही थी। अत: यहां जनसंख्या नियंत्रण का माल्थस सिद्धांत पूर्णतया लागू नहीं होता था। आयरिश मामले से भी माल्थस के जनसंख्या और अर्थव्यवस्था के संबंधों की व्याख्या की कमजोरी का पता चलता है। आयरलैंड में पड़े आकाल के बाद हालांकि जनसंख्या में तेजी से गिरावट आई परंतु इससे लोगों के जीवन स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ।

रिंगले और शोफिल्ड ने माल्थस के सिद्धांत का बिलकुल उल्टा पक्ष सामने रखा। उनके अनुसार जनसंख्या की वृद्धि से कष्ट में वृद्धि हो सकती है परंतु बाह्य जीवन स्तर में वृद्धि होने से जीवन का स्तर ऊपर उठ सकता है। इसके परिणामस्वरूप लोग जल्दी शादी करेंगे जिससे जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होगी। पूरे यूरोप में आलू के व्यापक प्रभाव से इन घटनाओं की शुरुआत हुई। इससे खेतों के न्यूनतम आकार को छोटा करने में मदद मिली।

पूर्व-औद्योगीकरण के प्रस्तावकों ने आरंभिक आधुनिक यूरोप में बदलते उत्पादन परिवेश में जनन क्षमता वृद्धि को देखने की कोशिश की। इस विचार के अुनसार घरेलू उत्पादन प्रवृत्ति के कारण एक परिवार श्रम की एक इकाई बन गया। किसानी और शिल्पी अर्थव्यवस्था में शादी करने से पहले कुशलता और पूंजी इकट्ठी करनी होती थी परंतु औद्योगिक युग के आरंभ में अपेक्षाकृत अकुशल कार्यों में लगे परिवारों पर विवाह के लिए इस प्रकार की बंदिशें कम थीं। विवाह करने से उन्हें फायदा ही होता था। परिवार में कमाने वालों की संख्या बढ़ जाती थी। इस परिघटना की झलक उस समय के प्रचलित मुहावरों में मिलती है; जैसे 'भिखमंगों की शादी' और 'सोने को बिस्तर नहीं पर घर में हैं दो-दो चर्खे'। हालांकि इस दृष्टिकोण ने बढ़ती जनसंख्या को उत्पादन प्रक्रिया से जोड़ा परंतु लेसेस्टरशायर में फ्लैन्डर्स और शेशेड को छोड़कर इसे प्राप्त होने वाला परिमाणात्मक समर्थन बहुत कम था।

12.9 जनसंख्या और संसाधन II

पुराने जमाने में यह कहा जाता था कि जनसंख्या बढ़ने से आर्थिक बदलाव आता है। हिक्स के अनुसार 'पिछले दौ सौ वर्षों की औद्योगिक क्रांति से जनसंख्या की तीव्र वृद्धि हुई।' इसी प्रकार नौरमैण्डी पर लिखी अपनी पुस्तक में पियरे शाउनू ने लिखा है कि जनसंख्या के दबाव के अभाव में आर्थिक विकास में प्रगति नहीं आ सकी। पंरतु धीमी गति से जनसंख्या बढ़ने के बावजूद फ्रांसीसी अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास हुआ। इससे स्पष्ट है कि जनसंख्या परिवर्तन और आर्थिक परिवर्तन का संबंध इतना सरल नहीं है। ये व्याख्याएं इस तर्क पर आधारित थीं कि जनसंख्या बढ़ने से मांग बढ़ती है। हालांकि प्रति व्यक्ति आर्थिक विकास की अतिरिक्त मांग की पूर्ति के लिए श्रम की न्यूनतम उत्पादकता की प्रवृत्ति को गिरने से बचाने का प्रयास करना होगा; अन्यथा अतिरिक्त श्रम से औसत उत्पादकता तथा औसत मजदूरी में कमी आ जाएगी। अत: जनसंख्या वृद्धि की अपेक्षा निवेश का तेजी से बढ़ना आवश्यक है। ब्रिटेन में हुए अनुसंधान से यह पता चलता है कि इस युग की तकनीकी, वित्तीय और संगठनात्मक बाधाएं इतने छोटे स्तर पर सिमटी हुई थी कि देश की जनसंख्या में हुए परिवर्तन का काम के साथ कोई सीधा संबंध नहीं था।

बड़े पैमाने पर यूरोपीय जनन क्षमता परियोजना के परिणाम का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं जिसमें आर्थिक विकास और विवाह की उम्र के बीच कोई सीधा संबंध स्थापित नहीं किया जा सका। इसलिए जनन क्षमता की प्रवृत्ति के लिए 'सांस्कृतिक' कारकों की पड़ताल की गई। प्रिंसटन परियोजना की एक सीमा यह थी कि इसमें कुल योग के आधार पर अध्ययन किया गया था। उत्तरी इटली और सिसली में सूक्ष्म स्तरीय

अध्ययन किया गया जिसमें नृजातीय और ऐतिहासिक सूचनाओं को एक साथ रखा गया जिससे मालूम हुआ कि सामाजिक-आर्थिक अंतर का जनन क्षमता में आई गिरावट के समय से निकट का संबंध था। हाल ही में .जनसंख्याविदों ने जनसांख्यिकी में 'सांस्कृतिक' महत्व को स्वीकार किया था और उनका मानना था कि इसे गौण खाते में नहीं डाला जाना चाहिए। सांस्कृतिक रीति रिवाजों को अब राजनैतिक, आर्थिक और जनसंख्या परिवर्तन का उत्पाद माना जाता है। एक बार स्वरूप ग्रहण कर लेने के बाद ये अपेक्षाकृत स्वतंत्र हो जाते हैं और आर्थिक परिवर्तन होने पर इनमें काफी लचीलापन आ जाता है।

ऊपर दी गई व्याख्याओं को देखने से यह स्पष्ट है कि इसमें लगातार परिवर्तन आते रहे हैं। सबसे पहले माल्थस ने प्राकृतिक नियम पर आधारित सिद्धांत बनाया; फिर आर्थिक परिवर्तनों को नकारा गया और अब राजनैतिक तथा राजनैतिक-आर्थिक प्रक्रियाओं को जनसंख्या संबंधी परिवर्तन के लिए आवश्यक समझा जा रहा है।

12.10 19वीं शताब्दी का अंत और उसके बाद

अब हम यूरोप के जनसांख्यिकी इतिहास के दूसरे युग पर विचार करने जा रहे हैं। 19वीं शताब्दी के अंत में इस युग की शुरुआत हुई। इस दौरान राष्ट्रीय जनन क्षमता स्तर ह्रासोन्मुख हुई। 1870 में जन्म दर की अनुमानित वार्षिक औसत 35 की थी जो 1930 में घटकर 20 हो गई। पश्चिमी यूरोप में सर्वत्र यह परिवर्तन देखने को मिलता है। केवल फ्रांस इसका अपवाद था। शेष पश्चिम यूरोप के सन्दर्भ में कम से कम एक शताब्दी पहले से इसकी राष्ट्रीय जनन क्षमता में गिरावट आ रही थी। फ्रांस के किसान पूरी उन्नीसवीं शताब्दी में जमीन से चिपके रहे और सर्वहाराकरण की दर अपेक्षाकृत धीमी रही। परिणामस्वरूप प्राचीन युग की भूमि आधारित व्यवस्था के कारण ांव में रहने वाले लोगों की जनन क्षमता नियंत्रित रही; केवल इंग्लैंड इसका अपवाद था। इसके अलावा फ्रांस के किसानों ने अन्य देशों के किसानों और सर्वहाराओं से काफी पहले वैवाहिक जीवन में जन्म नियंत्रण विधियों का उपयोग करना शुरू कर दिया था। 1870 से लेकर 1900 तक फ्रांस की जनन क्षमता में 22 प्रतिशत की बड़ी कमी आई जबकि अन्य देशों में यह गिरावट धीरे-धीरे हुई। प्रिंसटन ग्रूप ने पश्चिमी यूरोप में जनन क्षमता में गिरावट का समय इस प्रकार तय किया है:

फ्रांस	1800
बेल्जियम	1882
स्वीटजरलैंड	1885
जर्मनी	1890
इंग्लैंड और वेल्स	1892
स्वीडेन	1892
स्कॉटलैंड	1894
आयरलैंड	1929
नीदरलैंड	1897
डेनमार्क	1900
नौर्वे	1904
ऑस्ट्रिया	1908
फिनलैंड	1910
इटली	1911
स्पेन	1918

इस शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में पूर्वी यूरोप में जनन क्षमता अपेक्षाकृत ज्यादा थी। पंरतु कोले, के अनुसार बुल्गारिया, रोमानिया, पोलैंड और रूस में प्रथम विश्व युद्ध के पहले ही वैवाहिक जनन क्षमता में कमी आने लगी थी। 1930 से सोवियत संघ, पोलैंड और रोमानिया में जनन क्षमता में गिरावट आई। सोवियत संघ

और रोमानिया में जनन क्षमता दर सबसे तेज थी। 1960 के दशक के अंत में अल्बानिया और आयरलैंड के अतिरिक्त यूरोप के सभी देशों के जन्म दर में कमी आई। इस दौरान सकल प्रजनन दर और कुल प्रजनन दर में भी कमी आई। 1920 के दशक में सभी देशों में कुल प्रजनन दर एक से अधिक थी। मंदी के दौरान लगभग पांच देशों ने कुल प्रजनन दर एक बताई थी ओर लगभग 12 देशों ने अपना सकल प्रजनन दर एक से ज्यादा बताया था। 1937 में संभवत: प्रतिकूल राजनैतिक परिस्थिति के कारण आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया में भी प्रजनन दर में कमी आई। द्वितीय विश्व युद्धरत देशों के प्रजनन दर में भी कमी आई होगी पर आंकड़े के अभाव के कारण ठीक ठीक इसका आकलन करना मुश्किल है। युद्ध के बाद जनन दर में 1950 के दशक के आरंभ तक तेजी आई और उसके बाद फिर गिरावट का दौर शुरू हुआ। 1960 के दशक में पूर्वी यूरोप में प्रजनन दर में कमी आई और पश्चिमी देशों जैसे यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस, नौर्वे और आयरलैंड में वृद्धि दर्ज की गई। 1960 के दशक के अन्त तक यूरोप के लगभग सभी देशों में जनन क्षमता में कमी आई।

12.10.1 मृत्यु दर

शताब्दी के आरंभ में दक्षिणी और पूर्वी यूरोप में मृत्यु दर काफी ऊंची थी (20 से अधिक) और उत्तरी पश्चिम में कम थी (13 से कम)। यूरोप के अन्य क्षेत्रों में मृत्यु की दर इन दोनों के बीच थी। 20वीं शताब्दी के दौरान मृत्यु दर में गिरावट आती गई। जैसा कि पहले हुआ था शिशु मृत्यु दर में कमी आने से आम मृत्यु दर में कमी आई। जिन देशों में मृत्यु दर में गिरावट देर से आई वहां इसमें ज्यादा तीव्रता थी। 1960 के दशक के अंत तक दक्षिण पूर्व और सोवियत संघ में मृत्यु दर सबसे कम थी। 1960 तक सोवियत संघ चिकित्सक के अनुपात में सबसे कम जनसंख्या और अस्पताल में प्रति बिस्तर तथा जनसंख्या के अनुपात की दृष्टि से यह यूरोप के प्रथम देश के रूप में उभरा। जनसंख्या की परिवर्तित आयु संरचना द्वारा भी मृत्यु दर में परिवर्तन आया। शिशु मृत्यु दर में कमी आने से लोगों की आयु बढ़ी, स्त्री पुरुष की आयु में फर्क रहा। महिलाओं की उम्र ज्यादा होती थी। 1960 के दशक के अन्त तक यूरोप के देशों में लोगों की औसत आयु में बहुत फर्क नहीं रह गया था।

12.10.2 आयु संरचना

युद्ध में लोगों के मारे जाने और जन्म दर में कमी आने से दीर्घवधि में यूरोपीय जनसंख्या की आयु संरचना में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। इन दो कारकों के फलस्वरूप बच्चों का अनुपात कम हुआ और जनसंख्या में वयस्कों का अनुपात बढ़ा। जनन क्षमता में कमी आने और आयु सीमा में बढ़ोत्तरी होने या मृत्यु दर में कमी आने से वयस्क लोगों की संख्या ज्यादा हो गई। इन सब समानताओं के बावजूद यूरोपीय जनसंख्या में उम्र और स्त्री पुरुष संख्या की विभिन्नता मौजूद थी। 1950 के दशक में फ्रांस में 65 वर्ष से अधिक आयु के लोगों का प्रतिशत 11.8 था जबकि यह यूगोस्लाविया में 6 था। फ्रांस , इंग्लैंड, वेल्स, आस्ट्रिया, डेनमार्क और स्वीडेन में बुजुर्ग लोगों का अनुपात ज्यादा था जबकि सोवियत रूस, पोलैंड, हंगरी, नीदरलैंड, इटली और स्पेन में इनका अनुपात कम था।

12.10.3 युद्ध और देशांतरण

20वीं शताब्दी में यूरोप में युद्ध और देशांतरण से जनसंख्या में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। हालांकि दो विश्वयुद्धों के दौरान यूरोप प्राकृतिक आपदाओं से मुक्त रहा। परंतु जनसंख्या पर इसका बुरा असर पड़ा। प्रथम विश्व युद्ध में लोगों की मृत्यु के बाद चारों ओर इनफ्लूएंजा महामारी के रूप में फैल गई। युद्ध के कारण युद्धरत देशों में उम्र – यौन अनुपात में असंतुलन आ गया। देर से विवाह होने लगे और बच्चे भी कम पैदा हुए। फ्रांस, बेल्जियम, रूस, सर्बिया, जर्मनी, बुलगारिया और आस्ट्रिया पर प्रथम विश्व युद्ध का सबसे बुरा प्रभाव पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण जनसंख्या का नुकसान इस प्रकार हुआ :

फ्रांस, नीदरलैंड, बेल्जियम और आस्ट्रिया: 1940 की जनसंख्या का 1.5 प्रतिशत

जर्मनी: 6.5 प्रतिशत से 7 प्रतिशत

दक्षिणी यूरोप: 3.1 से 3.4 प्रतिशत

उत्तरी यूरोप : .8 प्रतिशत

पूर्वी यूरोप : 8.9 प्रतिशत

सोवियत संघ 8.7 से 12.8 प्रतिशत

युद्ध में हुए नुकसान के कारण पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ में इन वर्षों में निषेधात्मक वृद्धि हुई।

इन वर्षों में देशांतरण होने के कारण भी यूरोप की जनसंख्या में वृद्धि न हो सकी।

परम्परागत रूप से यूरोप से लोग बाहर जाते रहे हैं। यह सिलसिला 1901 से 1915 तक चलता रहा। इस दौरान यूरोप से काफी लोग बाहर गए। 1901-5, 1906-10, 1911-15 में प्रतिवर्ष औसत देशांतरण क्रमश: 10 लाख, 14 लाख और 13 लाख था।

देशांतरण के कारण एक दशक में हुआ प्रतिशत परिवर्तन

	1920-30	1930-39	1950-60	1960-66
पश्चिम यूरोप	- 1.7	+0.2	+3.0	+3.0
दक्षिणी यूरोप	- 1.0	-0.7	-3.1	-1.5
पूर्वी यूरोप	-1.8	-0.1	-2.8	-0.9
उत्तरी यूरोप	-1.9	+0.4	-0.6	+0.3

(*स्रोत: कार्लो एम. सिपोला, **द फौनटाना इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ यूरोप,** वौल्यूम 5 (1), पृष्ठ 13)

इस अवधि में दक्षिण और पूर्वी यूरोप से लोग बाहर गए और उत्तरी यूरोप में लोग बाहर भी गए और वहां बाहर से लोग आए भी जबकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिमी यूरोप से लोगों का बाहर निकलना कम हुआ और वहां बाहर से आने वालों की संख्या बढ़ गई।

हालांकि देश छोड़कर बाहर जाने का मुख्य कारण आर्थिक होता था परंतु राजनैतिक परिवर्तनों के कारण भी लोग एक जगह से जाकर दूसरी जगह बस जाते हैं। रूस और जापान में हुए गृह युद्धों और जर्मनी में नाजियों के सत्ता में आने के कारण बड़े पैमाने पर देशांतरण हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के पहले एक देश से दूसरे देश मजदूरों का आना जाना लगा रहता था और इसमें कोई रुकावट नहीं थी। हालांकि युद्ध के बाद यूरोप में दबाव कारक में कोई बहुत अंतर नहीं आया परंतु अमेरिका के नियंत्रण कानून के कारण देशांतरण में कमी आई। 1921 के कोटा कानून और 1924 के आप्रवास नियंत्रण अधिनियम के कारण देशांतरित लोगों की संख्या में तेजी से कमी आई। यूरोप और अमेरिका में आई मंदी और बेरोजगारी की समस्या के कारण भी मजदूरों की मांग में भारी कमी आई। मंदी के बाद भी स्थिति बहुत नहीं सुधरी और इससे देशांतरण को प्रोत्साहन नहीं मिला। 1930 के दशक में अमेरिका में श्रम की मांग और यूरोप से उनकी आपूर्ति का संतुलन टूट गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मन राजनीति के कारण जर्मनी से यहूदियों, जर्मन अल्पसंख्यकों और राजनैतिक कैदियों को जबरन और मजबूरन देश छोड़ना पड़ा। युद्ध के बाद पुनर्निर्माण के दौर में और 1950 के दशक के अंत और 60 के दशक के आरंभ में हुई तीव्र आर्थिक वृद्धि के कारण इस मांग की आपूर्ति पहले पूर्वी यूरोप और फिर भूमध्यसागरीय देशों से हुई। तुर्की से काफी मजदूर जर्मनी गए।

12.10.4 शहरीकरण

इस शताब्दी के आरंभ में यूरोप में लगभग 70 प्रतिशत लोग गांवों में रहते थे। यूनाइटेड किंगडम का सबसे ज्यादा शहरीकरण हुआ था जहां 77 प्रतिशत लोग शहरों में रहते थे। जर्मनी में 56 प्रतिशत लोग शहरों में रहते थे। अन्य सभी देशों में आधे से कम ही लोग शहरों में रहते थे। फ्रांस में 41 प्रतिशत, डेनमार्क में 38. 2 प्रतिशत, स्वीडेन में 22 प्रतिशत, बुल्गारिया में 19.8 प्रतिशत, रूस में 15 प्रतिशत और फिनलैंड में 10. 9 प्रतिशत लोग शहरों में रहते थे। बीसवीं शताब्दी में शहरीकरण की लहर उत्तर-पश्चिम से दक्षिण और पूर्व की ओर चली। लोगों के बाहर से आकर बसने से शहरों का विकास हुआ। गांव से शहरों की ओर प्रयाण का कारण कृषि की निम्न उत्पादकता नहीं थी बल्कि अर्थव्यवस्था में आए फैलाव और विविधता के कारण ऐसा हुआ। कारखानों, उद्योग धंधों, व्यापार, बैंक और लोक प्रशासन के कारण आधुनिक शहरों का विकास हुआ।

शहरी और ग्रामीण जनसंख्या वितरण की प्रवृत्ति

	यूरोप				सोवियत संघ			
	1920	1940	1960	1970	1920	1940	1960	1970
शहरी	150	200	245	292	22	63	104	136
ग्रामीण	175	178	178	170	114	131	109	106
शहरी प्रतिशत	46	53	58	63	16	33	49	56

(*स्रोत: कार्लो एम. सिपोला, **द फौनटाना इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ यूरोप**, वौल्यूम 5 (1), पृष्ठ 74)

बोध प्रश्न 2

1) मात्थस के 'निरोधक' नियंत्रण से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

....

....

2) आरंभिक औद्योगीकरण के प्रतिपादकों के अनुसार 'भिखारी की शादी' का क्या मतलब है ?

....

....

....

....

....

3) जनसांख्यिकी परिवर्तन और आर्थिक विकास का संबंध स्थापित करने वाले अध्ययनों (जैसे हिक्स) की सीमाएं क्या है ?

....

....

....

....

....

4) यूरोप में 20वीं शताब्दी में जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों में युद्धों और देशांतरण की क्या भूमिका थी ?

....

....

....

....

....

12.11 सारांश

इस इकाई को पढ़कर आपने निम्नलिखित जानकारियां प्राप्त की:

- यूरोप में हुए जनसांख्यिकी बदलावों को इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखा है।
- जनसांख्यिकी इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए गिरजाघर के रजिस्टरों और विभिन्न प्रकार की जनसंख्या गणनाओं जैसे स्रोतों का उपयोग किया गया।
- ऐतिहासिक जनसांख्यिकीवेत्ताओं ने यूरोपीय समाजों में अगल-अलग समयों में जनसंख्या परिवर्तन के लिए जनन क्षमता, विवाह या मृत्यु दर जैसे कारकों पर विचार किया।
- जनसंख्या और आर्थिक वृद्धि के बीच संबंध स्थापित करने में बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है।

12.12 शब्दावली

जनन क्षमता : जनसंख्या की प्रजनन क्षमता से संबंधित

मृत्यु दर : जनसंख्या अध्ययनों में किसी जनसंख्या की मृत्यु दर

पैरिश रजिस्टर : चर्च के रजिस्टर जिसमें जन्म और मृत्यु दर्ज की जाती थी

12.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 12.2। आप इसमें बता सकते हैं कि इस सिद्धांत के अनुसार आदिम से विकसित समाजों की ओर सीधा और सरल विकास हुआ है।
2) देखिए भाग 12.3
3) देखिए भाग 12.6 आप दो कारकों की चर्चा कर सकते हैं (i) प्रथम विवाह के समय उम्र और (ii) विवाहितों का अनुपात
4) देखिए भाग 12.7

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 12.8 माल्थस जनसंख्या का संबंध भूमि की वहन क्षमता से जोड़ते हैं।
2) देखिए भाग 12.8 इसका संबंध परिवार का श्रम की इकाई बनने की संभावना से है।
3) देखिए भाग 12.9
4) देखिए उपभाग 12.10.3

इकाई 13 परिवार

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- समझा सकेंगे कि यूरोपीय परिवार को अच्छी तरह समझने के लिए सदस्यता की तुलना में पारिवारिक ढांचे का विश्लेषण करना क्यों ज्यादा जरूरी है,
- इतिहासकारों की इस बहस से परिचित हो सकेंगे कि औद्योगिक पूर्व और औद्योगिक परिवार के बीच कोई नैरंतर्य था या नहीं, और
- बदलते सामाजिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में परिवार में हुए परिवर्तनों के परीक्षण के लिए उपयोग में लाए गए विभिन्न मानदंडों को समझ सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

इतिहासकारों ने समाज को सहारा देनेवाले संस्थागत ढांचों के अध्ययन पर जोर दिया है क्योंकि इससे सामाजिक संरचनाओं में आने वाले परिवर्तन के वर्णन और व्याख्या में मदद मिलती है। इसी संदर्भ में जमींदारी, श्रेणि व्यवस्था, विधायिका, व्यापारिक प्रतिष्ठान और सेना पर इतिहासकारों ने विचार किया है। एक संस्था के रूप में परिवार का गंभीर अध्ययन इतिहासकारों ने अपेक्षाकृत देर से किया। परिवारों का ऐतिहासिक महत्व समझने में हुए इस बिलम्ब को देखकर आश्चर्य होता है क्योंकि समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र में काफी पहले से ही परिवार के अध्ययन पर बल दिया जा रहा था और आदिम शिकारी और संग्रहकर्ता समाजों से लेकर आधुनिक समाजों के अध्ययन तक में परिवारों को महत्व दिया जाता था।

1960 के दशक से ही परिवार के इतिहास पर विचार किया जाने लगा था और ऐतिहासिक जनसांख्यिकी, अवैधता, अनाथपन, बचपन, किशोरों और बुजुर्गों की समस्याओं जैसे विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हुईं। एक सामाजिक संस्था के रूप में परिवार का लम्बा इतिहास है। परिवार की गतिविधियों, कार्यों, और संघटन की परिवर्तनशीलता के कारण इसका अध्ययन रोचक होने के साथ-साथ मुश्किल भी रहा है। परिवार में इतनी ज्यादा परिवर्तनशीलता और विभिन्नताएं हैं कि हर समय और भौगोलिक स्थान के लिए विश्लेषण के किसी एक ही ढांचे से काम नहीं हो सकता है। परिवार में होने वाले परिवर्तन और नैरंतर्य को समझने के लिए पारिवारिक संरचना और उसके कार्यों में होने वाले परिवर्तन का दीर्घावधि विश्लेषण करना होता है।

13.2 यूरोपीय परिवार को समझना

पूर्व-औद्योगिक परिवार जनन, उत्पादन, उपभोग, समाजीकरण, शिक्षा और कुछ मामलों में राजनैतिक कार्यवाई की एक महत्वपूर्ण इकाई था। बड़े-बूढ़ों, कमजोर, और बीमार लोगों के लिए यह सुरक्षा का साधन भी था। परिवार का काम इतना लम्बा चौड़ा है कि इसे किसी स्पष्ट, साफ और आम परिभाषा में बांधना मुश्किल है। यदि परिवार को एक परिभाषा में बांधा गया तो यह सरलीकरण तो होगा ही, यह एक कृत्रिम और संकीर्ण दृष्टिकोण भी होगा।

13.2.1 सदस्यता

पश्चिम यूरोप के परिवार के इतिहास में परिवार की सदस्यता के विषय में हमेशा से अस्पष्टता और विवाद बना रहा है। उदाहरण के लिए क्या एक परिवार का सदस्य दूसरे परिवार का सदस्य नहीं हो सकता था? विवाह के बाद एक नई पारिवारिक इकाई की शुरुआत होतीं थी पर हमेशा पति-पत्नी का अपने मूल परिवारों से संबंध समाप्त नहीं हो जाता था। यहां तक कि एकल परिवार में पति अपने माता-पिता के परिवार से गहरा संबंध रखता था। पश्चिम यूरोप में कुछ युवा अपने परिवार के अतिरिक्त दूसरे परिवार में काम करते हुए जीवन यापन करते थे। कई लोग एक से ज्यादा परिवारों के सदस्य होते थे। इसलिए परिवार की अवधारणा में एक परिवार से अधिक परिवारों का सदस्य होना शामिल था।

इसलिए सभी सदस्यों की एक परिवार के सदस्यता के मानदंड के आधार पर ही एक परिवार की इकाई का निर्धारण नहीं किया जा सकता बल्कि इसमें दाम्पत्य और प्रजनन आधारित अनेक इकाइयां एक साथ जुड़ी होती थीं। पश्चिमी यूरोप में परिवार कई प्रकार के संबंधों से जुड़ा होता था और उसके अलग-अलग प्रकार के काम निर्धारित होते थे। प्रजनन के लिए पारिवारिक इकाई का अर्थ उत्पादन के लिए पारिवारिक इकाई के अर्थ से बिल्कुल भिन्न होता था। इसलिए परिवार को किसी एक परिभाषा या सामान्य आधार पर परिभाषित करना सही नहीं होगा। पश्चिमी यूरोप में जन्म देने वाले परिवार से अलग दूसरे परिवार में कुछ दिनों के लिए रहना और काम करना अर्थात उस परिवार की अस्थाई सदस्यता प्राप्त करना आम बात थी। अतएव इस प्रकार एक व्यक्ति एक परिवार का नहीं बल्कि अनेक परिवार का सदस्य हो सकता था जिसका संबंध विवाह, वंश या पारिवारिक विस्तार से होता था।

एक व्यक्ति के जीवन में परिवार की सदस्यता बदलती रहती थी। इसलिए बदलती पारिवारिक सदस्यता के अध्ययन के स्रोतों की प्रकृति का विशेष महत्व है। हमारे पास दो प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं। एक खास समय में परिवार के सदस्यों का विवरण अर्थात खास समय में परिवार के लोगों की संख्या और उनकी सूची। हालांकि इससे यह नहीं पता चलता कि जिन वयस्क सदस्यों की सूची दी गई वे इसके पहले किसी दूसरे परिवार के सदस्य थे या नहीं। परिवार के इस पक्ष पर विचार करने के लिए हमें समग्र आधारित अध्ययन करना होगा। यहां व्यक्तियों का अध्ययन उनके पूरे जीवन के दौरान किया जाता था न कि किसी खास समय पर। जनसांख्यिकी में समकालिक और समग्र दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। यदि सामूहिक आधारित खोज के बाद ताजा सूचियों का अध्ययन किया जाता तो इससे वंश विस्तार का पता चलता। इससे यह पता लगाया जा सकता था कि शादी के बाद भी परिवार के छोटे बेटों ने अपनी गृहस्थी जमाने के बाद भी वंश परिवार की सदस्यता कायम रखी थी या नहीं और बड़े भाई की मृत्यु के बाद वह पुन: अपने मूल वंश के परिवार में वापस आ सकता है।

13.2.2 पारिवारिक ढांचा

पारिवारिक सदस्यता की जटिलता के मुकाबले में घरेलू संरचना को व्याख्यायित करना ज्यादा आसान था क्योंकि राज्य और चर्च ने सूचनाएं प्राप्त करने के लिए घर को ही आधारभूत इकाई के रूप में उपयोग किया था। सामाजिक इतिहासकारों और सांख्यिकीवेत्ताओं ने इस पर काफी बहस की है कि घर सामाजिक संगठन की एक स्वतंत्र इकाई है या मात्र परिवार का विस्तार है।

इतिहासकार कहते हैं कि हमारा अध्ययन हमें प्राप्त स्रोतों तक ही सीमित है। पारिवारिक जीवन के कुछ पक्षों का अध्ययन आसानी से और सटीक रूप में किया जा सकता है जबकि कुछ बातों का अनुमान ही किया जा सकता है। चर्चों में दर्ज किए गए जन्म, विवाह और दफ़न के आंकड़ों से परिवार की संरचना की विधि का पता चलता है और एक प्रजनन इकाई के रूप में परिवार की स्पष्ट स्थिति की भी इससे जानकारी होती है।

परिवार की पुनर्संरचना जानने के लिए कई तथ्यों का सूक्ष्म अध्ययन करना होता है। उदाहरणस्वरूप पति-पत्नी के बीच उम्र का कितना अंतर है, बच्चों के जन्म के बीच कितना अंतर है। परिवार कितना बड़ा या छोटा है, क्या परिवार में किसी प्रकार के अवैध संबंध हैं, माता-पिता की मृत्यु और बच्चों के विवाह में क्या संबंध है, विभिन्न वर्गों या रोजगार समूहों के जनसांख्यिकी व्यवहार में क्या कोई अंतर है, परिवार के आकार में अन्तर कैसा है, परिवार में बच्चों के जीवित रहने की क्या दर है आदि।

एक परिवार के विवरण में आमतौर पर परिवार के सदस्यों का नाम, इसके मुखिया और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ उसके संबंध के उल्लेख के साथ-साथ स्त्री पुरुष, विवाहितों, अविवाहितों और जन्म स्थान का भी उल्लेख होता है। जहां सामुदायिक रजिस्टर और विवरण पुस्तिका होती है वहां ये पूरक और अनुपूरक के रूप में काम करते हैं।

सामान्य स्रोतों का इस्तेमाल कर परिवार के कई अन्य पक्षों का अध्ययन करना मुश्किल है। सामाजिक फैलाव और व्यावहारिक प्रवृत्तियां इनमें प्रमुख हैं। जमींदारों की अदालत और बाद में निचली अदालतों की कार्यवाइयों के बारे में ऐसे अप्रत्यक्ष प्रमाण हैं जिनसे यह पता चलता है कि विभिन्न कुल समूहों के सदस्यों के बीच किस प्रकार का और कैसा संबंध था। किसी खास व्यक्ति की रुचि का अध्ययन करने से उस व्यक्ति का उसके परिवार और संबंधियों के बीच के संबंध का पता चलता है। उदाहरणस्वरूप यदि कोई व्यक्ति कोई अनुष्ठान करता है जैसे वह कुल देवता का चुनाव करता है तो इसमें उसके पूरे व्यवहार का और अपने पूरे परिवार के साथ संबंध का पता चलता है।

परिवार और सामाजिक जीवन की आचार संहिता के आत्मसातीकरण से उत्पन्न मनोवैज्ञानिक संरचना पारिवारिक इतिहास के अध्ययन का एक प्रमुख क्षेत्र है। परिवार की संरचना के परिणामात्मक पक्ष और परिवर्तन की खोज के समान ही मानसिकता का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है।

13.3 ऐतिहासिक परिवर्तन

पहले आमतौर पर यह माना जाता था कि पूर्व-औद्योगिक समाज से औद्योगिक समाज की ओर बढ़ने के क्रम में परिवार का पुराना रूप नष्ट हो गया जिसमें कम उम्र में शादी कर दी जाती थी, एक साथ बड़ी संख्या में लोग रहते थे और परिवार के सदस्य अपने घर और परिवार के साथ गहरे रूप में जुड़े होते थे। ऐसा माना जाता था कि इनके स्थान पर दाम्पत्य जीवन पर आधारित छोटे परिवार की शुरुआत हुई, शादी की उम्र बढ़ी और अन्य कुल जनों के साथ संबंध कम होता चला गया। 1960 के दशक में पीटर लैसेलेट और जॉन हैजनल जैसे विद्वानों ने इस दिशा में शोध कर इस मान्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाया और उन्होंने कहा कि यह मान्यता सही नहीं हैं।

13.3.1 नैरंतर्य

कैम्ब्रिज ग्रुप फॉर द हिस्ट्री ऑफ पोपुलेशन ऐंड सोशल स्ट्रक्चर के तत्वावधान में सितम्बर 1969 मे कैम्ब्रिज, इंग्लैंड में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसमें पीटर लैसेलेट ने पुराने जमाने के परिवारों के आकार और संरचना का विवरण और विश्लेषण प्रस्तुत किया था। लैसेलेट की आधारभूत मान्यता थी कि आधुनिक छोटे परिवार का जन्म औद्योगीकरण के कारण नहीं हुआ था। उनका यह मानना था कि इंग्लैंड और अन्य देशों में औद्योगीकरण के काफी पहले से कई शताब्दियों से छोटे परिवार मौजूद थे। यहां एक बात कही जाती है कि लैसेलेट को इंग्लैंड में तीन पीढ़ियों से ज्यादा बड़े परिवार का पता नहीं चल सका क्योंकि कैम्ब्रिज ग्रुप ने अधिकांश स्थानों पर पूरे पारिवारिक जीवन चक्र पर आधारित आंकड़ों का उपयोग नहीं किया। 19वीं शताब्दी के इंग्लैंड और अमेरिका के शहरों पर हुए अनुसंधान से यह पता चलता है कि छात्रावासों या अलग कमरा लेकर रहने वाले लोगों का भी अपने परिवार से गहरा संबंध था। इसके बावजूद लैसेलेट का आधारभूत तर्क अपने स्थान पर मौजूद है और उसे कोई चुनौती नहीं दे सका। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि औद्योगिक पूर्व और औद्योगिक परिवारों की संरचना में अलगाव की अपेक्षा निरंतरता ज्यादा थी।

द वर्ल्ड वी हैव लौस्ट नामक अपने सर्वेक्षण में लैसेलेट ने यह बताया है कि इंग्लैंड में छोटा परिवार हमेशा से मौजूद रहा है और अतीत में बड़े परिवारों का इतना कम प्रमाण मिलता है कि इस सिद्धांत में विश्वास करना कठिन होता है कि आधुनिक समाज में ही छोटे परिवार की शुरुआत हुई है। अधिकांश लोगों का बचपन इसी प्रकार के परिवार में गुजरा है और इसी प्रकार के परिवार में वे बड़े हुए हैं। लैसेलेट के अनुसार यह छोटा परिवार निरंतर जारी रहा है और इसके सदस्यों ने भी इसकी देखा देखी छोटे परिवार का निर्माण किया था।

लॉरेन्स स्टोन ने ऐतिहासिक परिवार के अनेक प्रकार बताए हैं जैसे 'खुला वंशावली परिवार', 'प्रतिबंधित पितृसत्तात्मक छोटा परिवार' और आधुनिक युग का 'बंद घरेलू छोटा परिवार'। इसके विपरीत कैम्ब्रिज ग्रुप ने आरंभिक आधुनिक युग में घरों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया था: साधारण (छोटा या दाम्पत्य आधारित), विस्तारित (दामपत्य इकाई के साथ में विधवा मां या विधुर पिता या अन्य संबंधी) और बहु विस्तारित (दो या तीन दम्पतियों की पारिवारिक इकाई)।

13.3.2 विभिन्न समय और स्थान के परिवारों की तुलना

1970 के दशक के आरंभ में लैसेलेट के कैम्ब्रिज ग्रुप ने ***हाउस होल्ड ऐंड फेमिली इन पास्ट टाइम*** नामक एक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में 16वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान तक के परिवारों और घरों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया था और उससे निष्कर्ष निकाले गए थे। लैसेलेट ने *'फैमिली लाइफ ऐंड इलिसिट लव इन अर्लियर जेनरेशन' तथा 'बास्टर्डी ऐंड इट्स कंपैरिटिव हिस्ट्री'* नामक दो महत्वपूर्ण लेख लिखे थे जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, स्वीडेन, उत्तरी अमेरिका, जमाइका, और जापान में विभिन्न संस्कृतियों में अवैधता के इतिहास और गैर परम्परागत वैवाहिक स्थितियों का अध्ययन किया था।

उत्तर पश्चिम यूरोप के परिवारिक ढांचों की चार विशेषताएं थीं : छोटा परिवार, देर से बच्चा पैदा करना, एक ही उम्र के पति-पत्नी और घरों में पर्याप्त संख्या में गैर संबंधियों की उपस्थिति। पश्चिमी यूरोप के पूर्व औद्योगिक घर परिवारों में छोटे परिवार का वर्चस्व था और शादी के पहले लोगों को परिवार के बंधन में रहना पड़ता था। लैसलेट ने बताया है कि परिवार कई पीढ़ियों से जुड़े होते थे। पोलैंड और हंगरी में भी छोटे परिवार पाए जाते थे। इससे यह पता चलता है कि परिवार का यह रूप केवल पश्चिमी यूरोप तक सीमित नहीं था; हां, उत्तरी पश्चिम यूरोप में छोटे परिवार की बहुलता थी। हालांकि पश्चिमी यूरोप के पूर्व औद्योगिक समाज में छोटे परिवार की बहुलता थी परंतु उत्तर पश्चिमी और यूरोप के अन्य देशों में परिवार के आकर में भी ज्यादा विभिन्नता नहीं थी। इसका कारण यह था कि मालिकों के साथ काफी संख्या में नौकर भी घरों में रहा करते थे और उन्हें भी घर के सदस्यों में गिना जाता था। हालांकि पूरे यूरोप में घर-परिवार के आकार लगभग समान थे परंतु यह समानता ऊपरी थी और घरेलू संरचना में अंतर था। हैजनल के अनुसार पूर्व औद्योगिक काल में यूरोप के इस क्षेत्र में 6 से 10 प्रतिशत लोग नौकर के रूप में काम करते थे। इसका कारण यह था कि पशुपालन रोजगार का एक प्रमुख साधन था। कृषीय व्यवस्था के विकास होने से विवाह कर अलग घर बसाने की इच्छा की शुरुआत हुई। नौकरों के बीच विवाह का स्वागत नहीं किया जाता था क्योंकि इससे काम में बाधा पड़ती थी और इसके कारण अकेले तथा बिना बच्चे के युवा व्यक्तियों का अनुपात बढ़ा और इस कारण विवाह करने की उम्र बढ़ी और इससे बचत भी हुई। सार्वजनिक सहायता और अनुबंध अवकाश प्राप्ति की उपलब्धता के कारण भी लोग देर से विवाह करने लगे। पूरे उत्तर पश्चिम यूरोप में गरीबों के लिए संस्थागत सहायता की प्रथा चल पड़ी। इसके कारण बुढ़ापे में गरीबी की हालत में बच्चों पर निर्भरता में कमी आई।

अतीत में पश्चिम यूरोपीय परिवार के संबंध में इस नए विचार से कई प्रश्न उभर कर सामने आते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है औद्योगिक क्रांति से आधुनिक छोटे परिवार का जन्म नहीं हुआ। तब सवाल यह उठता है कि क्या छोटे परिवारों ने क्रांतिकारी आर्थिक परिवर्तन को जन्म दिया जो औद्योगिक क्रांति के साथ आए।

हालांकि यदि यह मान भी लिया जाए तो औद्योगिक क्रांति से परिवार या घरेलू व्यवस्था से कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं आया तब भी यह नहीं कहा जा सकता है कि पूरे ऐतिहासिक काल में इन संस्थाओं में कोई परिवर्तन आया ही नहीं। उदाहरण के लिए इंग्लैंड में एलिजाबेथ काल के 'पूअर लॉ' (निर्धन कानून) को ही लिया जा सकता

है जिसने वह जिम्मेदारी अब चर्च पर डाल दी जो पहले दाम्पत्य परिवार और वंश पर थी। इससे दाम्पत्य परिवार के बाहर व्यक्तिगत और पारिवारिक संबंध कमजोर पड़ने लगे।

आइए, अब हम इंग्लैंड और यूरोपीय महाद्वीप में परिवार के इतिहास पर किए गए नए शोधों पर विचार करें। एलिजाबेथ कालीन इंग्लैंड में समृद्ध परिवारों में वैवाहिक दम्पत्ति के अलावा सेवक और कभी-कभी दादा/दादी, नाना/नानी भी परिवार में साथ रहा करते थे। आधारभूत जनन समुदाय का पार्श्व और ऊर्ध्व विस्तार नहीं होता था। पुरुषों और महिलाओं दोनों की शादी देर से होना प्रचलित था और औसतन पहली शादी 25 से 30 वर्ष के बीच होती थी। 1377 और 1381 के गृह करों पर आधारित अनुसंधान यह बताते हैं कि 14वीं शताब्दी के अंत में देर से विवाह करने और छोटे तथा अलग पारिवारिक जीवन की प्रथा चल पड़ी थी। हालांकि ट्यूडर (1485-1603) और विक्टोरियन (1837-1901) कालों में घरेलू आकारों में बहुत परिवर्तन नहीं हुआ परंतु इनके बीच के वर्षों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। घर के नौकरों का साथ रहना कम हुआ, पहले विवाह की उम्र विशेषकर महिलाओं में बढ़ी और यह 17वीं शताब्दी के अंत और 18वीं शताब्दी के आरंभ में अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई। एक परिवार का औसत आकार छोटा हुआ और नवजात शिशु और बच्चों के मृत्यु दर बढ़ी। हालांकि 18वीं शताब्दी में वैवाहिक और जनन क्षमता पद्धति एक बार फिर से एलिजाबेथ युग के करीब आ गई।

महाद्विपीय यूरोप में इंग्लैंड की अपेक्षा ज्यादा विभिन्नता थी। हालांकि हालैंड जैसे छोटे से देश में भी विभिन्नताएं थीं परंतु यूरोपीय महाद्वीप को दो प्रमुख क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है। पश्चिमी यूरोप में छोटा परिवार था जबकि आस्ट्रिया, फ्रांस और जर्मनी में एक परिवार में कई पीढ़ी के लोग परिवार में रहते थे। पूर्वी यूरोप में बड़े और जटिल परिवार मौजूद थे जिसमें पुरानी पीढ़ी के लोग भी रहते थे और मौजूदा पीढ़ी के भी ज्यादा लोग रहते थे। यह पूर्वी पद्धति रूस में अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई जहां कृषि दासों के बड़े परिवार थे। वैवाहिक पद्धति की दृष्टि से पूर्वी और पश्चिम यूरोप में विभिन्नता थी। विवाह की उम्र भी कम थी और विवाह न करने वालों की संख्या भी अपेक्षाकृत कम थी। हैजनल ने लेनिन ग्राद से ट्रेस्टी तक एक काल्पनिक रेखा खींचकर पश्चिमी और पूर्वी वैवाहिक पद्धति में अन्तर स्पष्ट किया है। पश्चिमी और पूर्वी पारिवारिक और वैवाहिक रूपों में अन्तर काफी था इसलिए औद्योगिक समाज में रूपांतरण के समय पूर्वी प्रदेश में बहुत ज्यादा परिवर्तन आया। मध्य यूरोप के देशों में पश्चिमी और पूर्वी यूरोप का मिश्रण था और यहां के परिवार दोनों प्रकार के परिवारों के मिले जुले रूप थे।

बोध प्रश्न 1

1) परिवार को समझने के लिए पारिवारिक ढाँचे का विश्लेषण बेहतर प्रविधि क्यों है ?

....

....

....

....

....

2) लैसेलेट के यूरोपीय परिवार के अध्ययन की सीमाएं क्या है ?

....

....

....

....

....

3) पश्चिम यूरोप में औद्योगिकरण से पूर्व के पारिवारिक ढांचे की महत्वपूर्ण विशेषताएं क्या हैं ?

....

....

....

....

....

13.4 आर्थिक बदलाव और परिवार

सामाजिक और आर्थिक जीवन के क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तनों का परिवार से गहरा रिश्ता था। अन्य सामाजिक संस्थाओं के समान परिवार के बारे में भी यह कहना बड़ा कठिन है कि आर्थिक परिवर्तन और परिवार में हो रहे परिवर्तनों के बीच कोई सीधा संबंध था। यह भी कहना खतरे से खाली नहीं है कि आस पास घट रही घटनाओं का परिवार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इमैनुअल ले रॉय लेडुरी जैसे कुछ लेखकों ने अतीत के सामाजिक जीवन की पुनर्रचना करते हुए यह दिखाने की कोशिश की है कि शताब्दियों तक परिवार के रूप में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ। आर ब्राउन और अन्य कई लेखकों ने यह दिखाया है कि मध्य और उत्तर पश्चिम यूरोप में तीव्र गति से आर्थिक परिवर्तन वाले कालों में जनसांख्यिकी और पारिवारिक संस्थाओं मे परिवर्तन आया था।

13.4.1 वैवाहिक व्यवस्थाओं को समझने के तरीके

रिंगले और स्कॉफिल्ड द्वारा इंग्लैंड के संदर्भ में किए गए अनुसंधान ने यह बात स्पष्ट होकर दिखाई कि प्रथम विवाह की उम्र और विवाह की दर से जनन क्षमता स्तर का निर्धारण होता था मृत्यु दर का नहीं। अन्य अनुसंधानकर्ताओं ने भी उत्तर पश्चिम यूरोप में भी मृत्यु दर और जनन क्षमता के बीच कोई सीधा संबंध नहीं दिखाया। यदि औद्योगिक पूर्व जनसंख्या विवाह के बारे में निर्णय लेते समय आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखतीं तो आर्थिक उपार्जन और विवाह करने के बीच सीधा संबंध होता और वास्तविक आय बढ़ने के साथ विवाह दर भी बढ़ती। इंग्लैंड के संदर्भ में हुए अध्ययन में प्रथम विवाह और विवाह की दर के संदर्भ में यह परस्पर संबंध देखने को मिलता है। बाद के अध्ययनों में इस धारणा को कुछ हद तक सुधारा गया। 1750 के पहले अविवाहित रहने का आर्थिक उपार्जन का विवाह से निकट का संबध था जबकि 1750 के बाद प्रथम विवाह ही प्रमुख भूमिका निभाता था। रिंगले और शोफिल्ड ने आर्थिक उपार्जन और विवाह के बीच 40 वर्षों का अन्तराल रखा था जबकि अन्य विद्वानों ने मजदूरी में वृद्धि और विवाह दर में परिवर्तन के लिए एक अलग आधार का उपयोग करते हुए 15 से 20 वर्ष का अन्तराल सुझाया है। इस प्रकार के संबंध नीदरलैंड में भी पाए गए हैं। उत्तर पश्चिमी यूरोप के पारिवारिक ढांचे की व्यवस्था को देखते हुए जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं, मजदूरी और देर से विवाह करने तथा अविवाहित रहने के बीच सीधा संबंध दिखाई पड़ता है। 1750 के बाद इंग्लैंड में प्रथम विवाह की उम्र कम हुई तथा विवाह की दर स्थिर रही। कुछ लेखकों ने इस परिघटना की व्याख्या करने के लिए रोजगार संरचना, नियोक्ता और नौकरी पेशा लोगों के बीच के संबंधों, उद्योगों तथा कृषि में अवसर संबंधी संरचनाओं में आए परिवर्तन पर बल दिया है। कृषि और घरेलू काम-काज में लगी विवाहित महिलाओं पर काफी प्रतिबंध लगे हुए थे जिसके कारण वैवाहिक स्थिरता कम थी। कोयला खनन जैसी ऊंची मजदूरी वाले उद्योगों में पुरुषों के लिए महिलाओं से वित्तीय सहायता लिए बिना विवाह करना संभव था। कपड़ा उद्योग में भी मजदूरों के विवाह सामान्य संख्या में होते थे। यहां विवाहित महिलाओं को नौकरी करने से रोका नहीं जाता था परंतु अविवाहित महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती थी। यहां मजदूरी कम थी और (परिवार में) महिलाओं से भी कुछ योगदान की आशा की जाती थी। ऐसी परिस्थिति में परम्परागत क्षेत्र में कुछ हद तक विवाह को टाला जाता था। इस प्रकार विवाह का संबंध मजदूरी के स्तर और महिलाओं के रोजगार की संरचनात्मक सीमाओं से था।

13.4.2 परिवार और औद्योगिक क्रांति

कई विद्वानों ने यह मान लिया कि औद्योगिक क्रांति के दौरान होने वाले परिवर्तनों का सीधा प्रभाव परिवार

पर पड़ा और इसमें नाटकीय परिवर्तन आया होगा। बाद के अनुसंधानों में इस विचार को नकार दिया गया। औद्योगीकरण के दौरान सर्वाधिक महत्वपूर्ण जनसांख्यिकी परिवर्तन हुआ और इस दौरान जानबूझकर परिवार के आकार पर नियंत्रण लगाया गया तथा बच्चे कम पैदा किए गए। हालांकि यह काफी बाद में हुआ और वास्तव में आर्थिक वृद्धि तेज होने के बाद ही ऐसा किया गया और भी परिवर्तन आए जैसे घर और काम करने का स्थान अलग-अलग हो गया परंतु इस प्रकार का परिवर्तन पहले भी हुआ था; उदाहरण के लिए उस समय जब पशुपालन से जुड़े सेवक वेतन भोगी मजदूर बन गए थे। औद्योगीकरण के दौरान हुए ये परिवर्तन पारिवारिक जीवन के आकार और स्वरूप में हुए परिवर्तन में प्रतिबिंबित नहीं हुए इसका एक कारण यह था कि ये परिवर्तन बिलकुल सरल और सीधे नहीं थे। इसका अधिक खुलासा यह है कि अपने हितों को बढ़ावा देना, बौद्धिकता विशिष्ट काम करने की विशेषज्ञता और रीति रिवाजों के स्थान पर उपलब्धियों को महत्व दिया जाना जैसी अवधारणाओं का विकास आधुनिकता से जुड़ा है जो औद्योगीकरण के साथ आई। इस संदर्भ में यह मान लिया गया कि जैसे-जैसे आधुनिकीकरण के कदम बढ़ते गए इसका प्रभाव परिवार पर पड़ा और यह अधिक 'आधुनिक' हो गया। हालांकि गौर से देखने पर यह बात मालूम होती है कि आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के बीच का संबंध आवश्यक नहीं मात्र एक संयोग था। औद्योगीकरण के आरंभिक दौर के सामाजिक परिवेश के अनुभवों पर आधारित साक्ष्यों के परीक्षण से यह बात सामने आती है कि इस दौरान गांवों से काफी संख्या में लोग भीड़ भाड़ भरे शहरों में आए; राज्य कल्याणकारी संस्थाओं का अभाव था; वंशीय संबंधों पर निर्भरता बनी हुई थी, एक ही घर में काफी ज्यादा लोग रहते थे आदि। ये परिस्थितियां पहले के परिवार और घरेलू संरचना के निकट थी और एकाएक 'आधुनिक' छोटे परिवार के अचानक पनपने की उम्मीद नहीं की जा सकती थी। औद्योगीकरण के विकसित होने और औद्योगिक पूंजीवाद के कारण आर्थिक उत्पादकता में वृद्धि होने और इसका लाभ समाज के निचले हिस्सों तक पहुंचने के बाद पारिवारिक जीवन और घरेलू संरचना में धीरे-धीरे परिवर्तन होना आरंभ हुआ।

ऊपर हुए विचार-विमर्श से यह बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई कि औद्योगीकरण के पूर्व पूरे यूरोप में जनसांख्यिकी प्रवृत्ति एक जैसी थी और यूरोपीय परिवार और घरेलू संरचना की विशेषताएं और उनमें आए परिवर्तन लगभग एक जैसे थे। आधुनिक और पूर्व आधुनिक जनसांख्यिकी में जनन क्षमता पर नियंत्रण लगने की इच्छा की दृष्टि से कोई अंतर नहीं था; हां नियंत्रण लगाने के साधन में अंतर अवश्य आया। औद्योगिक उत्पादकता में हुए परिवर्तनों, आविष्कारों, रोजगार में आए बदलावों और मजदूरी स्तर के कारण परम्परागत वैवाहिक स्थितियों और पारिवारिक स्वरूप में अंतर आया।

बोध प्रश्न 2

1) क्या यूरोप में वास्तविक मजदूरी (आय) की दर और विवाह करने के बीच कोई निकट का संबंध था ?

....

....

....

....

....

2) क्या यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक क्रांति का प्रभाव परिवार पर अपने आप पड़ गया ?

....

....

....

....

....

13.5 सारांश

इस इकाई में हमने यह जाना कि,

- किस प्रकार पारिवारिक ढांचे के विश्लेषण से परिवार और उससे जुड़े पक्षों की प्रवृत्ति का पता चलता है
- किस प्रकार इतिहासकारों ने पूर्व औद्योगिक और औद्योगिक पारिवारिक संरचना के बीच निरंतरता और अलगाव को स्पष्ट किया
- किस प्रकार विवाह पद्धति और मजदूरी जैसे परिवर्तनीय कारकों के बीच के संबंध के कारण आर्थिक परिवर्तन और परिवार की प्रकृति के बीच के संबंध का सिद्धांत सामने आया।

13.6 शब्दावली

पोल कर : यूरोप में प्रत्येक व्यक्ति पर लगने वाला कर

वास्तविक/मजदूरी : क्रय शक्ति सूचकांक पर आधारित मजदूरी

13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर-

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 13.2.2। इसमें राज्य और चर्च के कार्यालयों के स्रोतों का उल्लेख कर सकते हैं।
2) देखिए उपभाग 13.3.1। इसमें आप यह बता सकते हैं कि उसने किस प्रकार पारिवारिक जीवन चक्र पर विचार नहीं किया।
3) देखिए उपभाग 13.3.2

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 13.4.1
2) देखिए उपभाग 13.4.2

इकाई 14 यूरोप में सामाजिक वर्ग

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उन प्रक्रियाओं में अन्तर बता सकेंगे जिनके कारण यूरोप के विभिन्न वर्ग उभरती पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में एकीकृत हुए,
- यह बता सकेंगे कि अलग-अलग देशों में इन प्रक्रियाओं ने अलग रूप धारण किया, और
- यह भी बता सकेंगे कि यूरोप में नए वर्गों के उदय के साथ विभिन्न वर्गों के बीच एक नई राजनैतिक चेतना का जन्म हुआ।

14.1 प्रस्तावना

इकाई 15 में आप आधुनिक वर्ग समाज की ओर संक्रमण के बारे में अध्ययन करेंगे और यह जानेंगे कि किस प्रकार नए प्रकार के उत्पादन के लिए नए प्रकार के कार्य की भी जरूरत होती है। जिस वर्ग समाज की बात हम कर रहे हैं उसका संबंध अनिवार्यत: औद्योगिक समाज से है जिसमें जीवन पद्धति और नैतिक मूल्य पूंजीवादी सरोकारों से परिचालित होते हैं। इस इकाई में हम वर्ग और वर्ग संबंधों के रूपांतरण पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करेंगे। हम रोजमर्रा के जीवन के बदलते ढर्रे पर भी बातचीत करेंगे।

यूरोप के औद्योगिक और गैर-औद्योगिक क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन में काफी अन्तर था और सामान्यत: पहले जितना समझा जा रहा था उससे परिवर्तन की रफ्तार कम थी। 1750 ओर 1850 के बीच का समय इस गति और परिवर्तन की दिशा को निर्धारित करने की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण था।

विभिन्न देशों में सामाजिक बदलाव की पद्धति पर भी काफी बहस हुई। इन बहसों का एक पक्ष यह भी था कि क्या यूरोप के विभिन्न देशों में नई वर्ग संरचनाओं के इस उदय का सामान्यीकरण किया जा सकता है। आगे अध्ययन के दौरान हम यह देखेंगे कि सामाजिक वर्गों की प्रकृति के संदर्भ में कुछ हद तक सामान्यीकरण किया जा सकता है। यहां तक कि अलग-अलग औद्योगिक और राजनैतिक संदर्भों में भी सामान्य सूत्र खोजे जा सकते हैं परंतु इसमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि इन समाजों पर जो अनुसंधान किया गया है और पहले जो व्याख्याएं की जा चुकी हैं उनसे भी तुलना करके इसे देखा जाना चाहिए।

14.2 भूमिपतियों और किसानों का पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में विलयन

19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यूरोप में भू सम्पदा ही धन का सबसे प्रमुख रूप था और भूमिपतियों के पास राजनैतिक ताकत थी। बाद में वे कृषि और उद्योग में उभरते पूंजीवाद में समाहित हो गए तथा उनके वर्चस्व का सामाजिक और आर्थिक आधार बदल गया। वर्ग समाज की ओर संक्रमण नामक इकाई में हम इस पर पहले ही विचार करेंगे। यहां हम जानने का प्रयास करेंगे कि कैसे इस वर्चस्व का उपयोग किया जाता था और पूंजीवादी समाज में नए वर्गों ने अंततः किस प्रकार से चुनौती दी।

14.2.1 इंग्लैंड में भूमिपति वर्ग

इंग्लैंड के भूमिपति वर्गों ने सबसे पहले अपनी अर्थव्यवस्था के आधार को परिवर्तित किया। 17वीं और 18वीं शताब्दी के दौरान बढ़ते विदेश व्यापार, लाभदायक कृषि कार्य (भेड़ पालना), खनन , कपड़ा और जहाज निर्माण उद्योगों से होने वाले मुनाफों के कारण अर्थव्यवस्था समृद्ध हुई और विशेषाधिकार वर्गों के धन में वृद्धि हुई। इस व्यवस्था से सर्वाधिक फायदा इंगलिश भूमिपतियों को हुआ इसलिए कृषीय परिवर्तन की प्रकृति और सामान्य तौर पर आर्थिक नीति के निर्धारण में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही और यूरोप के अन्य देशों के मुकाबले आरंभिक पूंजी निवेश में भी इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। औद्योगीकरण से संबंधित इकाइयों में आप इन तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

बदलाव की यह पूरी प्रकिया इस प्रकार चली और चलाई गई कि भूमिपति वर्ग का पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में सहज और लाभदायक प्रवेश हो जाए। इंग्लिश गृह युद्ध के बाद 'ग्लोरियस रिवोल्यूशन' हुआ जिसमें भूमिपति वर्गों को राजनैतिक विजय प्राप्त हुई और इससे बुर्जुआ समाज को मदद मिली। इसके बाद 18वीं शताब्दी में भूमि की घेराबंदी की गई। ब्रिटिश कुलीनवर्ग के पास बड़ी-बड़ी भूसम्पदाएं थी जिनसे उन्हें किराया मिलता था। इंग्लैंड की लगभग एक चौथाई जमीन इन कुलीन वर्गों के पास थी। धीर-धीरे वे वाणिज्य, नहरों, शहरी भू सम्पदाओं, खननों और कभी-कभी उद्योग में भी पैसा लगाने लगे। इन सब प्रयासों से इंग्लिश कुलीन वर्ग न केवल आसानी से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में ढल गया बल्कि यह कुलीन वर्ग आधुनिक पूंजीपति वर्ग बन गया। भूमिपति कुलीन वर्ग के आधुनिक पूंजीपति के रूप में हुए परिवर्तन के साथ-साथ उच्च वर्ग के सामाजिक गठन में भी परिवर्तन आया जिसमें वे व्यापारिक वर्ग और बुर्जुआ वर्ग भी शामिल हो गए, जिन्होंने भूमि में पूंजी निवेश किया था। इंग्लैंड में उत्तराधिकार और ज्येष्ठाधिकार के कानून ने भूमिपति वर्ग को एक खुला रूप दिया।

इस परिवर्तन और रूपांतरण के कारण राजनैतिक संस्थाएं, पुराने सामाजिक कायदे कानून और मूल्य धीरे-धीरे समाप्त होने लगे। चुनाव व्यवस्था में भ्रष्टाचार के द्वारा (इसकी चर्चा हम पिछले की इकाइयों में कर चुके हैं) मात्र 400 परिवारों ने हाउस ऑफ कॉमन्स के अधिकांश स्थानों पर कब्जा जमा लिया। इसके अलावा हाउस ऑफ लार्ड्स की राजनीति पर भी उन्हीं का नियंत्रण और कब्जा था। 1671 और 1831 के बीच जानवरों का शिकार करने का वैध अधिकार केवल इंग्लिश भूमिपतियों को ही था। किराए पर जमीन लेनेवालों, धनी व्यापारियों जिनके पास जमीन नहीं थी और गरीब निर्धनों को यह विशेषाधिकार नहीं प्राप्त था। अनाज कानून को समाप्त किए जाने के लिए हुए आंदोलन, चार्टिस्ट आंदोलन तथा 1832, 1866 और 1882 के सुधार अधिनियमों के फलस्वरूप भूमिपतियों का प्रभाव कम होने लगा। वास्तव में केवल 1880 के दशक के बाद ही भूमिपतियों के धन और राजनैतिक प्रभाव में कमी को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

14.2.2 फ्रांस में भूमिपति वर्ग

महाद्वीपीय यूरोप में कुलीन वर्गों की स्थिति इस प्रकार की नहीं थी। हालांकि उन्होंने भी 20वीं शताब्दी तक अपना आधिपत्य कायम रखा। फ्रांस में कुलीन वर्ग *नोबेल्स ऑफ सोर्ड (sword)* और *नोबेल्स ऑफ रोब (robe)* में विभाजित थे। पहले प्रकार के परिवारों को यह सम्मान उनकी सैनिक सेवाओं के लिए प्राप्त हुआ था जबकि दूसरे प्रकार के कुलीन वर्ग को प्रशासन में काम करने से पदवी प्राप्त हुई थी इनमें कुछ वे भी थे जिन्होंने यह पदवी खरीदी थी। कुछ कुलीनों को *कोर्ट नोबेलिटी* के नाम से भी जाना जाता था। क्रांति होने तक प्रशासन, चर्च और सेना के सभी बड़े पदों पर इनका एकाधिकार था। इनके और प्रांतों में रहने वाले कुलीनों के बीच काफी अन्तर था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये सभी कुलीन चाहे उनकी जो भी हैसियत रही हो कृषि के वाणिज्यिकरण, अन्तरराष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य के विकास और सुव्यवस्थित बुर्जुआ वर्ग के उदय के बावजूद

काफी समय तक सामंती विशेषाधिकारों का उपभोग करते रहे। फ्रांस में कुलीन वर्ग ने भूमि पर नियंत्रण स्थापित कर अपना वर्चस्व स्थापित नहीं किया और न ही आधुनिक तरीके से कृषि का पुनर्गठन कर ऐसा किया। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि अपने पुराने सामंती अधिकारों को फिर से स्थापित कर ही इस बदल रही दुनिया में अधिक राजस्व प्राप्त किया जा सकता है। अत: जिस समय क्रांति हुई उनके वर्चस्व का आधार नहीं बदला था। यह इंग्लिश या पूर्वी जर्मनी के भूमिपतियों की तुलना में आर्थिक दृष्टि से कमजोर भी था। अत: कम से कम कुछ समय के लिए इसका पहले वाला महत्व समाप्त हो गया; जो पुनर्स्थापना के बाद इसे पुन: हासिल हो गया था। इसके वर्चस्व का आधार और रूप पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में पूरी तरह ढल न सका। इसी कारण यहां वर्चस्व के अनेक रूप मौजूद थे जो राज दरबार और राज्य की सेवा से जुड़े थे। यह खासतौर पर उस समय हुआ जब राजतंत्र को संविधानवाद के साथ मिला दिया गया था।

14.2.3 पूर्वी यूरोप में भूमिपति वर्ग

पूर्वी यूरोप के भूमिपतियों की प्रकृति और भी जटिल थी। प्रशा में, कृषि के पूंजीवादी रूपातंरण के साथ, जुंकर की स्थिति अधिक मजबूत हो गई; क्योंकि जर्मनी के एकीकरण के बाद वे अधिक निरंकुश राजनैतिक ढांचे से जुड़ गए। पूर्वी जर्मनी की अपेक्षा पश्चिमी क्षेत्रों में भूमिपति वर्ग अधिक लचीला और खुला था और पूंजी अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना में इसके विलयन का रूप भी अलग था; परंतु इधर हाल में हुए अनुसंधानों से यह बात स्पष्ट हो गई है कि इस मुद्दे पर जरूरत से ज्यादा बल नहीं दिया जाना चाहिए। पूर्वी क्षेत्र में भूमिपति बड़े पैमाने पर मजदूर रखते थे और उन्हें मजदूरी दिया करते थे जबकि पश्चिमी क्षेत्र में भूमि से प्राप्त राजस्व या किराया ही उनकी आय का प्रमुख स्रोत था। बीसवीं शताब्दी में भी सम्पूर्ण जर्मनी में सेना, नौकरशाही और राजनैतिक संस्थाओं में भूमिपति वर्ग का वर्चस्व कायम था; जबकि इस समय तक इंग्लिश और फ्रांसीसी भूमिपति वर्ग बुर्जुआ वर्ग के सामने घुटने टेक चुके थे। विश्व बाजार से अच्छी तरह जुड़कर जुंकरों ने पूंजीवादी विश्व अर्थव्यवस्था में अपनी पकड़ मजबूत की और राज्य नीतियों को प्रभावित कर अपने पक्ष में रख सके; संरक्षणात्मक कर नीतियों ने इसमें उनकी मदद की। मताधिकार के स्वरूप ने भी राष्ट्र और उनके अपने क्षेत्रों में उनके प्रभुत्व को संरक्षित किया।

14.2.4 मध्य यूरोप में भूमिपति वर्ग

मध्य यूरोप के अन्य देशों में भूमिपति सामंती व्यवस्था से जुड़े रहे क्योंकि यहां अभी भी कृषि ही अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार थी। पोलिश और जर्मन भूमिपति अपनी राष्ट्रीय सीमा से बाहर भी स्थित थे। इन क्षेत्रों में वे यथास्थिति बनाए रखने और राष्ट्रवादी आकांक्षाओं के खिलाफ होनेवाली सामाजिक प्रतिक्रिया के प्रमुख रक्षक बन गए। अठारहवीं शताब्दी में रूस में नए कुलीन वर्ग का जन्म हुआ। पीटर द ग्रेट ने कुलीन वर्ग के भीतर राज्य सेवा को सामाजिक प्रतिष्ठा से जोड़ने के साथ-साथ कृषिदास प्रथा की संस्था को मजबूत किया। इससे सामंती व्यवस्था के वर्चस्व को स्थायित्व प्रदान करना उनके जीवन मरण का प्रश्न बन गया और इसी कारण वे एक हो गए। इस दृष्टि से पश्चिमी यूरोप और जर्मनी से यहां की स्थिति भिन्न थी। 1917 की क्रांति तक भूमिपति वर्ग का सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक वर्चस्व कायम रहा। 1861 में हुए कृषीय सुधार भी इस तरह किए गए कि उनके विशेषाधिकारों पर आंच नहीं आई और बड़े राजनैतिक सुधारों पर अंकुश लगाकर भी वे अपना वर्चस्व कायम रखने में सफल रहे। रूस पर लिखी इकाई में आपने इसे विस्तृत रूप से पढ़ा होगा। परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि उनके वर्चस्व में किसी प्रकार का परिवर्तन आया ही नहीं। वे ज्यादा से ज्यादा मजदूर रखने लगे, जमीन का किराया वसूल करने लगे, अधिक प्रत्यक्ष रूप में बाजार से जुड़ने लगे, किसानों से भी उनके संबंध व्यावसायिक हो गए, और भूमि पर उनका विशिष्ट स्वामित्व हमेशा के लिए समाप्त हो गया। भूमि सम्पदाओं को भंग कर जमीनें किसानों को दे दी गई। यह उन पर अंतिम प्रहार था। इससे उनका सामाजिक और राजनैतिक प्रभुत्व समाप्त हो गया। दूसरे शब्दों में रूस में पूंजीवाद के ध्वस्त होते ही भूमिपति वर्ग का अस्तित्व समाप्त हो गया; द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति तक पूर्वी यूरोप के सिवा और कहीं भी ऐसा नहीं हो सका था। बाकी सारे यूरोप में भूमिपतियों का आधिपत्य भले ही कम हो गया हो परंतु उनका अस्तित्व बना रहा और वे पश्चिमी यूरोपीय समाजों के 'संभ्रांत' या विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग बने रहे।

14.2.5 यूरोप में कृषक वर्ग

जैसा कि पिछली इकाई में बताया जा चुका है 18वीं ओर 19वीं शताब्दियों में कृषि क्षेत्र में परिवर्तन आने से यूरोप में औद्योगिक पूर्व युग का कृषक वर्ग समाप्त हो गया। 40 के दशक तक यानि मशीनीकरण होने तक कृषि में लगे लोगों की कुल संख्या में कोई खास गिरावट नहीं आई तथा किसान और भूमिपति आधुनिक यूरोपीय समाज के अभिन्न अंग बने रहे। कृषक वर्ग की स्थिति और आधुनिक वर्ग समाज में इसके विलयन का निर्धारण भूमि बंदोबस्त की प्रकृति और बाजार की ताकतों यानी इन देशों में पूंजीवाद के विकास के ढंग से हुआ। समुदाय, धर्म और संस्कृति के प्रभावों में बाजार के अनुभवों और भूमि परिवेश का हस्तक्षेप हुआ। भूमिपति के साथ संबंध अभी भी उनके सामाजिक और राजनैतिक अनुभवों का महत्वपूर्ण हिस्सा था। हालांकि यह संबंध ज्यादातर प्रतिकूल और विरोधात्मक होता था परंतु कभी-कभी उद्योग समर्थित नीतियों का विरोध करते समय वे एक हो जाते थे। इससे पता चलता है कि निर्णायक मोड़ों पर वे यथास्थितिवाद का समर्थन करते थे। गांव और शहर दोनों जगह काम करने वाले मजदूरों के लिए शहरों में परिवहन, साक्षरता, राजनैतिक विकास के जरिए उनकी दुनिया में 'बाहरी दुनिया' का तेजी से प्रवेश हुआ। इन सबके परिणामस्वरूप सम्पत्ति, अपराधवृत्ति और राज्य सत्ता की अवधारणा परिवर्तित होने लगी। यूरोप के अधिकांश क्षेत्रों में ग्रामीण इलाकों में पूंजी इकट्ठी होने और आम सामुदायिक अधिकारों के समाप्त होने से कृषक वर्ग के भीतर एक नए ढंग से वर्ग निर्मित हुए।

18वीं शताब्दी में हुई घेराबंदी से एक वर्ग के रूप में इंग्लिश सामाजिक संरचना में एक वर्ग के रूप में भूस्वामियों का अस्तित्व समाप्त हो गया और हालांकि 19वीं शताब्दी में भी कुछ कृषकों के पास भूमि बची थी परंतु यह कहा जा सकता है कि इंग्लैंड में सामाजिक तौर पर कृषक वर्ग का कोई अस्तित्व नहीं रह गया क्योंकि अब कृषि उत्पादन में पूंजीपति खेतिहर और ग्रामीण मजदूर ही प्रमुख हो गए। लगभग पूरे यूरोप में (इंग्लैंड तथा अधिक स्पष्ट रूप में जर्मनी में) पूंजीवाद और आधुनिक वर्ग समाज के विकास के कारण कृषक समाज टूटने लगा और कृषक वर्ग का छोटे बुर्जुआ किसानों से लेकर ग्रामीण सर्वहारा वर्ग तक में विभाजन होने लगा। पूरे यूरोप में कृषक वर्ग के बाजार, जमीन, भूमिपति और स्थानीय राजनैतिक संस्थाओं के साथ संबंध विविध और जटिल थे। इसके सामाजिक दृष्टिकोण और राजनैतिक निष्ठाएं भी जटिल थीं। किसानों के व्यवहार और आधुनिक ग्रामीण समाज में इसके स्थान का निर्धारण मुख्य तौर पर इस बात से होता था कि किसी क्षेत्र विशेष में उस कृषक समुदाय के पास और उस क्षेत्र के भीतर व्यक्तिगत रूप से कृषकों के पास कितनी सम्पदा है। बाजार और पूंजीवाद द्वारा लाए गए बदलाव के अनुसार अपने को बदलने की आवश्यकता से इनकी सामाजिक और राजनैतिक अभिव्यक्तियां निर्धारित हुईं।

फ्रांस में 1789 की क्रांति को सामाजिक समर्थन देनेवाला कृषक वर्ग स्तरीकृत हो गया जिस स ग्रामीण समाज में परस्पर विरोधी हित पैदा हो गए। साथ ही साथ ये क्रांति के बाद बने राजनैतिक ढांचे में भी समाहित हो गए। क्रांति के बाद हुए भूमि बंदोबस्त से उन्हें फायदा हुआ और कृषि के क्षेत्र में नए प्रयासों के कारण राजनैतिक दृष्टि से नेपोलियन युग और पुनर्स्थापना के समय भी एक वर्ग के रूप में इनकी प्रतिष्ठा बनी रही। इसने न तो गणतंत्र को भारी समर्थन दिया और न ही साम्राज्य का विरोध किया। इनके विभिन्न स्तरों में मूल्यों, बाजारों या खद्यान्न की कमियों के कारण ज्यादा तीव्र प्रतिकिया हुआ करती थी परंतु विरोध सामाजिक स्तर पर ही बना रहा; यह कभी इस हद तक राजनैतिक न बन सका कि राजनैतिक व्यवस्था को चुनौती दे सके। 20वीं शताब्दी में फ्रांसीसी कृषक वर्ग अधिकांशत: सुधारवादी या मजदूर आंदोलनों से जुड़ने के बजाए रुढ़िवादी समूहों से जुड़े रहे। शैक्षिक और सांस्कृतिक गतिविधियों तथा जनसंचार माध्यमों खासकर अखबारों के जरिए वे राष्ट्र की दृष्टि से फ्रांसीसी बन गए।

जर्मनी में, एल्बे से पूर्व के क्षेत्रों और कृषि प्रधान बैवेरिया में ही नहीं बल्कि रूर और सैक्सोनी जैसे औद्योगिक केंद्रों के आस पास भी जर्मनी के किसान न केवल बचे रहे बल्कि वे समृद्ध भी होते चले गए। बैवेरिया और वेस्टफैलिया पर हुए अध्ययनों से यह पता चलता है कि बड़े किसान (जिनके पास अपने घोड़े थे और जो अपनी जमीन की पैदवार से अपने परिवार का भरण पोषण कर सकते थे) दासों की मुक्ति के बावजूद अपनी पैदावार बढ़ाने में सफल रहे और वे अपने क्षेत्र से बाहर के बाजारों के लिए किए जाने वाले प्रारंभिक औद्योगिक उत्पादन में भी हिस्सा लेते थे। कृषि का वाणिज्यिकरण होने और कृषकों में आपसी वर्ग संघर्ष पनपने से कृषकों की सर्वसामान्यता अथवा सभी कृषक एक समान की अवधारणा समाप्त हो गई। यहां तक कि 1939 में, जर्मनी के तीव्र औद्योगीकरण के पथ पर अग्रसर होने के बावजूद, 25 प्रतिशत लोग कृषि कार्य में लगे हुए

थे। इससे यह पता चलता है कि किसान कृषीय पूंजीवाद के जरिए आधुनिक वर्गीय समाज के अंग बन चुके थे। रूस में भी कृषि के वाणिज्यिकरण और कृषकों के एक वर्ग के सर्वहाराकरण के कारण किसानों के बीच काफी भिन्नता आ गई; कुछ बड़े किसान भी पनपने लगे जो भूमिपतियों के अभिजात वर्ग के खिलाफ थे। कृषि में पूंजीवाद के विकास के साथ इसकी मांगों और प्रतिरोध के तरीके में बदलाव आया और इसकी अपने दुश्मनों के बारे में समझ भी बदल गई। यूरोप में, रूस में, कृषक वर्ग राजनैतिक दृष्टि से सबसे ज्यादा जागरूक था जिसने पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने और समाजवादी शासन कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रूस से संबंधित इकाई में आप इसका अध्ययन करेंगे।

यहां हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि यूरोप में पूंजीवाद के विकास के साथ ग्रामीण संघर्ष पूंजी और श्रम के मूलभूत द्विभाजन में समाहित हो गया। इसके बावजूद किसान खेती करते रहे और यूरोपीय समाज में भूमिपति विशेषाधिकार वर्ग बने रहे।

बोध प्रश्न 1

1) 19वीं शताब्दी के इंग्लिश और फ्रांसीसी कुलीन वर्ग के बीच प्रमुख अंतर क्या थे ?

....

....

....

....

....

2) क्या हम कह सकते हैं कि 19वीं शताब्दी में जर्मनी में भूमि पर आधारित वर्ग समाप्त हो गया? कारण बताइए।

....

....

....

....

....

3) फ्रांस में कृषक वर्ग की भूमिका पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

14.3 बुर्जुआ वर्ग

पश्चिम यूरोप में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध को बुर्जुआ वर्ग का युग कह सकते हैं। पूर्वी हिस्सों में हालांकि बुर्जुआ वर्ग अपनी पहचान बना चुका था और समृद्धि पा चुका था परंतु अभी उसका वर्चस्व स्थापित नहीं हो सका था। इंग्लैंड, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैंड, स्वीटजरलैंड, और स्कैंडिनेविया में, जहां औद्योगीकरण पहले और तीव्र गति से हुआ था, यह सफलता स्पष्ट और स्वाभाविक थी। आरंभ में आर्थिक और सामाजिक ढांचे

में धीमी गति से हुए परिवर्तन के कारण जर्मनी और इटली में इसकी गति धीमी थी। रूस, आस्ट्रिया, हंगरी, पोलैंड, और स्पेन में सामंती काश्तकारी और कुछ मामलों में निरंकुश राजनैतिक ढांचों के कारण इसके शक्ति प्राप्त करने और एक वर्ग के रूप में इसके मजबूत होने की प्रक्रिया धीमी और कम प्रभावशाली रही। रूस में ये भूमिपतियों के कुलीन वर्ग को चुनौती देने से पहले ही इन्हें उखाड़ फेंका गया।

पूरे पश्चिम यूरोप में 1850 के दशक के बाद बैंकर, कारखानों के मालिक और खान मालिक अर्थात पूंजीपति बुर्जुआ वर्ग के सबसे धनी और प्रभावशाली हिस्से बन गए। इस वर्ग के प्रभुत्व में आने से वर्ग के रूप में व्यापारियों का महत्व घट गया। वाणिज्यिक बुर्जुआ वर्ग पुराने व्यापारियों जैसे नहीं थे। इसके विविध रूप हो गए। अपने आर्थिक और सामाजिक रिश्तों और आर्थिक गतिविधियों के कारण इसकी अलग-अलग पहचान बनी। औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग छोटी उत्पादन इकाइयों के मालिक या छोटे निजी श्रम पर आधारित उत्पादन संस्थाओं के मालिक की हदों को पार कर गया था जिनका प्रभुत्व और समृद्धि धीरे-धीरे पूंजी जमा करने पर आधारित थी। औद्योगिक और बैंकिंग पूंजी के विलयन, और वित्त, बैंकिंग के समान हित और उत्पादक-संघ और अर्थव्यवस्था में एकाधिकार के परिणामस्वरूप वित्त और बैंकिंग भी उनकी आय के स्रोत में शामिल था। यह भी भूमिपतियों के समान शासकीय वर्ग में शामिल था।

औद्योगिक समृद्धि जैसे-जैसे सामाजिक प्रगति का प्रतीक बनती गई वैसे-वैसे मध्यवर्ग और प्रभावशाली हो गया। पूरे यूरोप में मध्यवर्ग के धनी लोग बड़ी-बड़ी सम्पदाएं खरीदने लगे, अभिजात वर्ग की तरह व्यवहार करने लगे; यहां तक कि भूमि आधारित वर्ग भी शहरी सम्पत्ति में निवेश करने लगे। इस वर्ग ने व्यक्तिवाद, मितव्ययिता, कड़े परिश्रम, प्रतियोगिता, पैसे की शक्ति के इस्तेमाल, परिवार आदि पूंजीवादी मूल्यों को बढ़ावा दिया और पूरे औद्योगिक समाज पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली।

नौकरशाही, स्वास्थ्य और दवा क्षेत्रों, कानून और व्यवस्था, शिक्षा, प्रकाशन, मुद्रण और बड़े पैमाने पर होने वाले उत्पादन से जुड़ी संरक्षण की नई व्यवस्था के साथ जनसंचार और उद्योग के रूप में संस्कृति के विकास के साथ-साथ बुर्जुआ वर्ग में वेतनभोगी पेशेवर भी शामिल हो गए। जनतंत्रीकरण से बुर्जुआ वर्ग का विस्तार हुआ और एक वर्ग के रूप में बुर्जुआ वर्ग के प्रभुत्व स्थापित होने से असमानता भी पैदा हुई। उच्च और अधिक लाभप्रद पदों पर बुर्जुआ वर्ग के धनी वर्ग और भूमि से अलग हुए भूमिपतियों का वर्चस्व था।

सम्पूर्ण बुर्जुआ वर्ग ने अपने-अपने देशों में शक्ति और महत्व प्राप्त करने के बाद भूमिपतियों और राजतंत्रों से एक आलोचनात्मक दूरी रखी। उनके बीच आपसी मतभेद था परंतु विशेषाधिकार और तानाशाही के खिलाफ वे पूर्णतः एकजुट थे। जब वे शासक वर्ग में शामिल हुए और मजदूरों की ओर से चुनौती दी गई तब भी वे एक वर्ग के रूप में एकजुट रहे। धीरे-धीरे भूमिपतियों का भी बुर्जुआकरण हो गया और 20वीं शताब्दी आते-आते यह एक संयुक्त संभ्रांत वर्ग के सदस्य बन गए। विशिष्ट समय और विशिष्ट क्षेत्रों में इन्होंने अलग-अलग प्रकार के राष्ट्रवाद को जन्म दिया। 20वीं शताब्दी में शिक्षा के प्रचार प्रसार से इस वर्ग में मध्य स्तर पर सामान्य जनों का भी प्रवेश हुआ और पूरे यूरोप तथा रूस में उग्र सुधारवादी राजनीति में इसी वर्ग के लोग आए। इससे सामाजिक प्रजातंत्र और महिला आंदोलनों का जन्म हुआ जिन्होंने यथास्थिति पर प्रश्न चिन्ह लगाया।

ये सारी घटनाएं अलग-अलग समय में घटित हुई। इसकी शुरुआत इंग्लैंड में हुई, इसके बाद फ्रांस, जर्मनी और अन्त में पूर्वी यूरोप में हुआ। जर्मनी और रूस में इस प्रक्रिया की शुरुआत देर से पर तेजी से हुई और यह अपेक्षाकृत ज्यादा सुगठित था। कम समय में गठित होने के कारण औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग में एकरूपता थी और औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग और इस वर्ग के अन्य हिस्सों के बीच कम अन्तर था। यूरोप के पिछड़े क्षेत्रों खासकर पोलैंड, चेक और स्लोवाक क्षेत्रों हंगरी और यहां तक कि रूस में भी पूंजी के मालिक, उद्यमी और प्रबंधक अक्सर विदेशी नागरिक हुआ करते थे; कभी-कभी दूसरे क्षेत्र के जर्मन और यहूदी भी इनमें शामिल होते थे। पूरे यूरोप में बुर्जुआ वर्ग में अलग-अलग धर्म को मानने वाले थे। कोई कैथोलिक था तो कोई गैर कैथोलिक और किसी पर गहरा इवैनजेलिकल प्रभाव था। रूस में भूमिपतियों के एक वर्ग और राजनैतिक दृष्टिकोण से अपने वर्ग से कटे बुर्जुआ वर्ग के लोगों से मिलकर एक बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण हुआ जिन्होंने उसी पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध किया जिनके कारण इसका जन्म और विकास हुआ था।

14.4 निम्न मध्य वर्ग

आधुनिक वर्गीय समाज में निम्न मध्य वर्ग भी प्रमुख रूप से उभरा और इसका एक खास स्वरूप सामने आया। पूंजीवाद के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की सेवाओं के विस्तार से उनकी संख्या तेजी से बढ़ी। खुदरा समान बेचने समान का प्रचार करने, समान का वितरण, बैंकिंग और वित्त – इन सभी क्षेत्रों में तेजी से विकास हुआ और इनमें जटिलता भी आई। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन उद्योग क्षेत्र का बड़े पैमाने पर नौकरशाहीकरण हुआ और शिक्षा के प्रसार से शिक्षकों के रूप में अधिकांश महिलाओं की नियुक्ति हुई।

हालांकि निम्न वर्ग कई स्तरों पर बंटा हुआ था। परंतु इसे मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता था – दुकानदारों और छोटे-छोटे व्यापारियों का निम्न बुर्जुआ वर्ग और नौकरी करने वाले नए वेतनभोगी जिसमें अधिकांशत: क्लर्क शामिल थे। इसके अतिरिक्त इस वर्ग में फेरी लगाने वाले, छोटे स्कूल के शिक्षक और दुकान में काम करने वाले सहायक भी शामिल थे। सबसे ज्यादा वृद्धि क्लर्क, समान बेचने वालों, सचिवों और निम्न पदीय नौकरशाहों जैसे तबकों की हुई। ब्रिटेन में 1911 तक कुल वाणिज्यिक क्लर्कों में से 42 प्रतिशत क्लर्क उत्पादन उद्योग में नौकरी करते थे। 1882 से 1907 की अवधि में कुल श्रम शक्ति में वेतन भोगियों का प्रतिशत 7 से बढ़कर 13.1 हो गया। फ्रांस में 1876 में 772,000 लोग नौकरी करते थे और पूरे श्रम बल में इनका हिस्सा 5 प्रतिशत था जो 1911 में बढ़कर 1,869,000 हो गया तथा श्रम बल में उनका प्रतिशत बढ़कर 9.3 हो गया। रूस में भी औद्योगीकरण में हुई तीव्र वृद्धि के कारण उनकी संख्या तेजी से बढ़ी।

इन दोनों समूहों का बाजार के प्रति नजरिया अलग-अलग था। परंतु कुछ मामलों में वे अपने को एक दूसरे के समीप पाते थे। सबसे पहली बात कि वे अपने को मजदूर नहीं मानते थे और वे उनसे दूरी बनाए रखने का भरसक प्रयत्न करते थे तथा वे इस बात को स्पष्ट करना चाहते थे कि वे मजदूरी नहीं करते। इन दोनों समूहों को जोड़ने वाला दूसरा तथ्य यह था कि बुर्जुआ वर्ग की तुलना में ये दोनों उपेक्षित थे। अन्य समूहों की तुलना में उनकी स्थिति डावांडोल थी। उन्हें सबसे ज्यादा डर इस बात का लगा रहता था कि आर्थिक संतुलन तनिक भी बिगड़ने पर उनकी नौकरी छूट जाएगी और वे वापस अपने मूल मजदूर वर्ग में शामिल हो जाएंगे जिनसे वे हमेशा दूरी बनाए रखने का प्रयत्न करते थे। उनकी नौकरी सुरक्षित नहीं थी और उन्हें बराबर यह डर लगा रहता था कि अर्थव्यवस्था में मंदी आने पर उनकी नौकरी छूट जाएगी।

वे पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के समर्थक थे और निजी सम्पत्ति के जबरदस्त समर्थक थे। सामाजिक सीढ़ी पर ऊपर चढ़ना और बुर्जुआ वर्ग की हैसियत प्राप्त करना उनका लक्ष्य और महत्वाकांक्षा थी। बुर्जुआ सामाजिक व्यवस्था को हटाने या निजी सम्पत्ति के अधिकार को चुनौती देने की मांग उन्होंने कभी नहीं की, हालांकि उन्हें उत्पादन और व्यापार के बढ़ते केंद्रीकरण के परिणामस्वरूप नुकसान उठाना पड़ा और इस प्रतियोगिता में उनको काफी कुछ गंवाना पड़ा। श्रम बाजार में भी उनकी स्थिति डावांडोल थी।

स्थानीय संदर्भ में कार्यरत होने के कारण निम्न मध्य वर्ग समाज में अकेले पड़ गया था और उनमें सामूहिक रूप में समस्याओं को देखने की दृष्टि विकसित न हो सकी बल्कि वे समस्याओं के व्यक्तिगत स्तर पर निदान करने में रुचि रखते थे। अपने काम के दौरान और रोजमर्रा के जीवन में वे मजदूर वर्ग की अपेक्षा ज्यादा बड़े सामाजिक समुदायों के सम्पर्क में भी आते थे। अत: मजदूर वर्ग और बुर्जुआ वर्ग की अपेक्षा उनमें वर्ग चेतना की कमी थी और वे सामूहिक रूप से कोई कार्यवाही करने में असफल रहे। केवल जर्मनी ही इस दृष्टि से अपवाद था। नौकरियों के मामले में रेलवे और डाकघरों में इनका बड़ा विस्तार था और इनका संबंध अवैयक्तिक था जो अपवाद था। यह कुछ हद तक अपनी हैसियत के प्रति जरूरत से ज्यादा सचेत रहने और मजदूर वर्ग से दूरी बनाए रखने का भी परिणाम था।

स्थानीय संदर्भ के कारण वे परिवर्तन को भी सहजता से स्वीकार नहीं कर पाते थे और कई अर्थों में राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बुर्जुआ वर्ग की अपेक्षा ज्यादा रूढ़िवादी और संकीर्णवादी थे। ब्रिटेन में समाज के इस हिस्से की स्थिति ज्यादा डावांडोल थी क्योंकि वे राजनैतिक दृष्टि से लामबंदी नहीं कर सकते थे क्योंकि ब्रिटेन की राजनैतिक संरचना ऐसी थी जिसमें एक संसद थी और एक हाउस ऑफ लॉर्ड था। संसद की राजनीति और उसकी नीतियों से ही राजनैतिक परिवर्तन होता था। ब्रिटेन में महाद्वीप के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा व्यक्तिवाद की भावना भी ज्यादा विकसित थी।

14.5 मजदूर वर्ग

पूंजी और श्रम के द्विभाजन से यूरोप के मजदूर वर्गों की प्रकृति निर्धारित हुई। मजदूर वर्गों की बनावट और अनुभव भी बिलकुल अलग-अलग थे। औद्योगीकरण के कारण भूमिपति वर्गों के और धनी मध्य वर्गों के बीच की दीवार भले ही टूट गई हो परंतु इससे मध्य वर्ग और मजदूर वर्ग के बीच का अंतर तीखा हो गया। इसी कारण से अपने संघटन की बहुलता के बावजूद वे एक राजनैतिक और सामाजिक वर्ग के रूप में उभर सके।

शहरी और सामाजिक जीवन से अमीर गरीब का भेद बढ़ गया। वे शहरों में अलग-अलग इकाइयों में रहते थे और उन्हें उपलब्ध सुविधाओं में भी काफी अन्तर था। बिलकुल आज के हमारे देश जैसी स्थिति थी। 19वीं शताब्दी के अन्त तक भवन निर्माण के क्षेत्र में नई तकनीक आने से शहरों के रूप बदलने लगे। पहले औद्योगिक शहरों में धुंआ, भीड़ और गन्दी बस्तियों के सिवा कुछ नहीं होता था अब शहरों में बहुमंजिली इमारतें बनने लगीं। सीवर, फुटपाथ, बिजली की रोशनी, कैफे, किराना की दुकानों, पार्कों, शहरी सड़कों, सम्मेलन कक्ष, सार्वजनिक पुस्तकालय का निर्माण हुआ। इससे शहरों का नक्शा बदल गया। परंतु ये सारी सुविधाएं अमीरों को ही उपलब्ध थीं। मजदूर वर्ग तो भीड़भाड़ में ही रहता था। एक कमरे के घर जिनमें दो या तीन परिवार एक साथ रहते थे, जगह कम होने के कारण लोग बारी-बारी से सोते थे, शौचादि की भी पर्याप्त व्यवस्था नहीं थी। आने जाने के लिए परिवहन का भी कोई खास इन्तजाम नहीं था और वे हमेशा अपने को असुरक्षित महसूस करते थे। अमीर लोग रेलगाड़ी में चढ़कर घूमने जाते थे और समुद्र के किनारे आरामगृहों में ऐश करते थे। गरीब मजदूर जब रोजी-रोटी की खोज में बाहर निकलता था तभी उसे रेलगाड़ी में चढ़ना नसीब होता था। पूर्ववर्ती सामान्य जन, जो अब विशेषाधिकार भोगी मध्य वर्ग में परिवर्तित हो गए थे। अब वे निम्न वर्ग के मेलों, मुर्गों की लड़ाई, *पब* जैसे मनोरंजन के स्थलों को नीची निगाह से देखते थे।

20वीं शताब्दी के आरंभ तक यूरोप में मजदूर वर्ग काफी स्तरों और हिस्सों में बंटा हुआ था क्योंकि विभिन्न उद्योगों का मशीनीकरण एक साथ और अचानक नहीं हुआ था। शहरों में कुशल कारीगर रहते थे जिन्होंने यह देखा कि उनके निपुणता का स्थान मशीनों ने ले लिया। कुछ ऐसे भी शिल्पी थे जो इस शताब्दी के पूर्वार्ध में फले फूले क्योंकि मशीनीकरण के कारण किसी दूसरे क्षेत्र में उनके उत्पाद की मांग बढ़ गई। औद्योगीकरण के आरंभिक चरणों में बुनाई और कताई प्रक्रियाओं में मशीनीकरण के बीच अलगाव इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। मशीनीकरण के बाद भी कुछ कौशल आधारित व्यापारों का महत्व बना रहा। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले उद्योगों के कारण बड़े पैमाने पर अन्य कौशल आधारित रोजगार उत्पन्न हुए। सभी शहरों में कुशल कारीगर, घरेलू नौकर, दर्जी, धोबी, रंगरेज, राज मिस्त्री और भवन निर्माण मजदूर, डाक और तार विभाग में काम करने वाले मजदूर, विभिन्न कामों में लगे रेलकर्मी, खान में काम करने वाले लोग तथा कुशल और अकुशल कारखाना मजदूर एक साथ रहते थे। कारखानों में हुई वृद्धि के कारण भूतपूर्व किसान बड़ी संख्या में मजदूर बने; वे दूसरी और तीसरी पीढ़ी के मजदूर थे। खासतौर पर रूस में किसानों और मजदूरों में गहरा संबंध था और उन्होंने मजदूर वर्ग आंदोलन को उग्रवादी चरित्र देने में काफी मदद की। महिलाओं और बच्चों के मजदूर बनने से मजदूर वर्ग की प्रकृति को एक नया आयाम मिला। उनकी जीवन शैली और मजदूरी में काफी विभिन्नता थी और इसके फलस्वरूप श्रमिक अभिजात वर्ग का जन्म हुआ। 1850 के दशक तक इंग्लैंड में भी श्रम बल में कारखाना मजदूरों की संख्या कम थी; इसके बाद उनकी संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। बाद में हुए औद्योगीकृत देशों में तीव्र गति से औद्योगीकरण हुआ और उसी अनुपात में मजूदरों की संख्या में भी वृद्धि हुई। फ्रांस में लम्बे समय तक कुशल शिल्पियों की मांग ज्यादा दिनों तक बनी रही।

औद्योगिक क्रांति ने नए कारखाना मजदूरों की परम्परागत दुनिया नष्ट कर दी। नया मजदूर अब पूरी तरह नगद मजदूरी पर आश्रित था, उसे नए माहौल में काम करना पड़ रहा था; उसे मशीनों और अनुशासन से बंध कर काम करना पड़ रहा था। काम करने की स्थिति खराब ही नहीं नुकसानदेह भी थी। वे अपने को असुरक्षित महसूस करते थे। बड़े परिवार से अलग होने से वे अपने को अकेला महसूस करने लगे थे। उनका सामाजिक जीवन छोटे ढाबों और चाय पान की दुकानों तक सीमित रह गया था। अकुशल कार्यों के लिए अधिकतर महिलाओं और बच्चों को काम पर रखा जाता था। उनकी स्थिति भी काफी दयनीय थी। उन्हें मजदूरी भी काफी कम दी जाती थी। बेरोजगारी एक भयानक यथार्थ थी।

आरंभिक औद्योगिक विकास का खामियाजा सामान्यत: नए मजदूर वर्ग को उठाना पड़ा। मजदूरों की दयनीय स्थिति और करुण दशा की दिल हिला देने वाली घटनाओं के अनेक उल्लेख मिलते हैं। उन्हें 15-16 घंटे तक (बाद में 12 घंटे तक) काम करना पड़ता था, उनके पर्यवेक्षक उनसे निर्ममता से काम लेते थे, औद्योगीकरण के आरंभिक वर्षों में मजूदरों को यातना के दौर से गुजरना पड़ा। इसके फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में मजदूरों के कई दंगे हुए। बाद में कानून बनने, औद्योगिक अर्थव्यवस्था के विस्तार और उपनिवेशों के साथ असमान आर्थिक सबंधों के परिणामस्वरूप उनकी मजूदरी बढ़ी। मजदूर वर्ग पूंजी और श्रम के द्विभाजन से परिचित हुआ और उन्होंने अपने और अपने नियोक्ताओं के बीच का अन्तर्विरोध जाना जिसके कारण कई प्रकार की वर्गीय अभिव्यक्तियां सामने आईं।

14.6 राजनैतिक चेतना

समाज के अलग-अलग हिस्सों के अलग-अलग वर्ग अनुभवों के कारण वर्ग चेतना का उदय हुआ और यह विभिन्न प्रकार की राजनैतिक सम्बद्धताओं के जरिए अभिव्यक्त हुआ। समस्त यूरोप में भूमिधर वर्गों ने अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के राजनैतिक संगठनों के जरिए लड़ाई लड़ी; जैसे, जर्मनी में कृषि लीग, इंग्लैंड में हाउस ऑफ लॉर्ड्स, रूस में संयुक्त कुलीन वर्ग आदि। इसके अलावा उन्होंने दक्षिणपंथी नीतियों का समर्थन किया। अपने हितों की जनतांत्रिक संस्थाओं और प्रथाओं के जरिए रक्षा करने के लिए उन्होंने जनतंत्र की कार्य पद्धति से समझौता कर लिया। कृषकों के बारे में आम धारणा यह थी कि वे सबके सब एक समान रूढ़िवादी और संकीर्ण विचारों वाले होते हैं परंतु इस आम धारणा को गलत सिद्ध करते हुए उन्होंन तात्कालिक और स्थानीय कारकों का कड़ा विरोध किया। उनके भी कई संगठन थे। उन्होंने जमीन, शिक्षा और अन्य सुविधाओं की मांग कर अपने हितों को सामने रखा। रूस में भी उन्होंने यही मांग की और वे क्रांतिकारी आंदोलन के अभिन्न अंग बन गए।

बुर्जुआ वर्ग ने आरंभ में विशेषाधिकार और राजतंत्र के खिलाफ आवाज उठाई जो वस्तुत: जनता की ही आवाज थी। इस प्रकार उनकी राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्ति मिली। धीरे-धीरे उन्होंने अपने हितों को आगे बढ़ाना शुरू किया और अपने वर्ग हित में आर्थिक नीतियां बनाईं जो कृषि और भूमिपतियों के खिलाफ थीं। प्रातिनिधिक संस्थाओं पर उन्होंने अपनी पकड़ मजबूत की। हालांकि विचारधारात्मक स्तर पर यह उदारवाद का समर्थक था परंतु मजदूर वर्ग के दबाव को निरस्त करने के लिए उन्होंने मध्यमार्गी तथा दक्षिणपंथी दलों को समर्थन दिया। राज्य और राजनैतिक संरचना से संबंधित अध्ययन में आप इसके बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

मजदूर वर्ग ने पहली बार पूंजीवादी व्यवस्था को चुनौती दी। उन्होंने रोटी के लिए दंगे किए, मशीनें तोड़ीं और संगठित प्रतिरोध किया जिसने महत्वपूर्ण राजनैतिक स्वरूप ग्रहण कर लिया। मजदूर कभी-कभी अपने आस पास के माहौल से तंग आकर उबल पड़ते थे। कई बार उनका प्रतिरोध सामान्य क्रांतिकारी सामाजिक असंतोष का हिस्सा होता था और वे राजनैतिक संरचना और राज्य के स्वरूप में बदलाव चाहते थे। उन्होंने मजदूर संघ बनाए और 20वीं शताब्दी में मजदूर संघ आंदोलन का तेजी से विकास हुआ। समाजवादी विचारों के विकास के साथ-साथ मजदूर आंदोलन सामाजिक प्रजातंत्र से जुड़ गया और इसने सामाजिक जनतांत्रिक दलों को समर्थन दिया। रूस में मजदूर वर्ग ने पूंजीवादी व्यवस्था को अपदस्थ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बोध प्रश्न 2

1) बुर्जुआ वर्ग से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

....

....

2) नौकरी पेशा वेतनभोगी कर्मचारियों और दुकानदार तथा व्यापारी जैसे छोटे बुर्जुआ के बीच सोच के स्तर पर क्या समानताएं थीं ?

....

....

....

....

....

3) क्या हम कह सकते हैं कि यूरोप में मजदूर वर्ग के बीच कोई स्तरीय भेद नहीं था ? कारण दीजिए।

....

....

....

....

....

4) वर्ग अनुभव वर्ग चेतना के रूप में किस प्रकार अभिव्यक्त हुआ ?

....

....

....

....

....

14.7 सारांश

इस इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है:

- किस प्रकार यूरोप में पूंजीवाद के उदय के साथ भूमिपति और किसान विभिन्न तरीकों से नई अर्थव्यवस्था में ढल गए,
- किस प्रकार कुछ देशों में भूमिधर वर्गों के हित समाज और अर्थव्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करते रहे,
- किस प्रकार कुछ देशों में इन भूमिधरों के हितों के वर्चस्व के कारण बुर्जुआ वर्ग की स्वतंत्र अस्मिता या पहचान नहीं बन सकी,
- किस प्रकार नए उभरते वर्गों को नई चेतना से युक्त होने के लिए राजनैतिक स्तर पर लड़ाई लड़नी पड़ी।

14.8 शब्दावली

जुंकर : जर्मनी के बड़े भूमिपति जो औद्योगीकृत जर्मनी में भी शक्तिशाली बने रहे।

योमैन : ब्रिटेन के छोटे भूस्वामी जो वाणिज्यिकरण और घेराबंदी के कारण खेती से बाहर हो गए।

मशीनीकरण : औद्योगिक और कृषीय अर्थव्यवस्थाओं के संचालन में तकनीकी प्रयोग की प्रक्रिया

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 14.2.1 और 14.2.2। आप इसमें बता सकते हैं कि किस प्रकार फ्रांसीसी कुलीन वर्ग का प्रभाव मौजूद था।

2) देखिए उपभाग 14.2.3। नहीं, वे लुप्त नहीं हुए थे। असल में वे और ताकतवर बन गए थे।

3) देखिए उपभाग 14.2.5। आप इसमें रूढ़िवादी और सुधारवादी दोनों भूमिकाओं की चर्चा कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 14.3। इसमें आप नव उदित औद्योगिक वर्गों और भूमिधरों से इसकी आलोचनात्मक दूरी की चर्चा की सकते हैं।

2) देखिए भाग 14.4। आप बताइए कि किस प्रकार उन्होंने बुर्जुआ वर्ग और मजदूर वर्ग से अपनी विशिष्टता बना रखी थी।

3) देखिए भाग 14.5। मशीनीकरण के धीमे प्रयोग की चर्चा की जा सकती है।

4) देखिए भाग 14.6

इकाई 15 वर्ग समाज की ओर

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप:

- आधुनिक वर्ग समाज का अर्थ समझ सकेंगे,
- पूर्व-आधुनिक और आधुनिक वर्ग समाजों का अंतर स्पष्ट कर सकेंगे,
- आधुनिक वर्ग समाज के उदय के लिए उत्तरदायी कारकों पर प्रकाश डाल सकेंगे, और
- आधुनिक वर्ग समाज में राष्ट्र और वर्ग के बीच का संबंध स्पष्ट कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

पूंजीवादी औद्योगिक अर्थव्यवस्था के प्रसार और आधुनिक राजनीति के विकास का अध्ययन आप पिछली इकाइयों में कर चुके हैं। इन परिवर्तनों ने यूरोपीय समाज और जीवन को पूरी तरह बदल दिया। इसके परिणामस्वरूप संरचना पूरी तरह बदल गई और इसी के तहत आधुनिक वर्ग समाज का उदय हुआ। इस आधुनिक वर्ग समाज की चर्चा करने का उद्देश्य मात्र पुराने सामाजिक वर्गों और नए सामाजिक वर्गों का उल्लेख मात्र करना नहीं है बल्कि उस पूरी सामाजिक अभिव्यक्ति की ओर इशारा करना है जिसके द्वारा नए समाज ने अपने को औद्योगिक समाज के रूप में परिभाषित किया था।

औद्योगीकरण और फ्रांसीसी क्रांति ने औद्योगिक वर्ग व्यवस्था के लिए आधुनिक संदर्भ प्रस्तुत किया था। इसी संदर्भ में उदित आधुनिक वर्गो ने अपने को परिभाषित किया था और एक दूसरे के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक भूमिका निर्धारित की थी। इसी संदर्भ में 18वीं शताब्दी से लेकर आजतक समाज और राजनीति को स्वरूप प्रदान करने में भी उन्होंने अहम भूमिका निभाई थी।

समाजवादी आंदोलनों खासकर 1917 की रूसी क्रांति ने इस सामाजिक व्यवस्था को बड़ी चुनौती दी। पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था में अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार विभिन्न वर्गों ने इस चुनौती पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। भूतपूर्व सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप में सामाजिक व्यवस्था के ध्वस्त हो जाने के बाद एक बार फिर पूंजीवादी विश्व में विभिन्न वर्गों की सामाजिक और राजनैतिक भूमिकाएं प्रभावित हुईं।

इस इकाई में हम पुराने, पूर्व-बुर्जुआ सामाजिक व्यवस्था के टूटने और आधुनिक वर्ग समाज, खासकर एक बुर्जुआ उदारवादी समाज की ओर बढ़ने की चर्चा करेंगे।

15.2 वर्ग समाज की परिभाषा

जब हम यह कहते हैं कि औद्योगीकरण और फ्रांसीसी क्रांति के बाद 18वीं शताब्दी में वर्ग समाज का उदय हुआ तो यह कहने का तात्पर्य क्या है? तो क्या इससे पहले समाज के विभिन्न वर्ग असमान नहीं थे ? क्या पूर्व-पूंजीवादी यूरोप के समाज में विभाजन नहीं था ? क्या वर्गों का अस्तित्व नहीं था ?

मध्य युग के कला और साहित्य में मूलत: तीन प्रकार के सामाजिक समूहों का प्रतिनिधित्व हुआ था। वे जो युद्ध करते थे (भूमिधर कुलीन वर्ग), वे जो प्रार्थना करते थे और समाज के आध्यात्मिक कल्याण की देखरेख करते थे (पुजारी) और वे जो खेत और दुकानों में काम करते थे (किसान और ग्रामीण शिल्पी)। शहरों के उदय के बाद एक चौथा सामाजिक समूह उदित हुआ जिसमें व्यापारी शामिल थे। मध्ययुगीन अर्थव्यवस्था में भूमिधर अभिजात वर्ग और किसान केंद्रीय धुरी थे और आधुनिक वर्ग संबंधों की तरह उनका संबंध भी उत्पादन से जुड़ा हुआ था। भूमिधर अभिजात वर्ग खेत के मालिक थे परंतु वे खेत में काम नहीं करते थे। खेतों के मालिक किसानों और कृषि मजदूरों से जबरदस्ती काम करवाते थे। पराधीन होने के बावजूद वे खेती के द्वारा अपने परिवार का पालन पोषण कर लेते थे। सामंती पदानुक्रम की पूरी इमारत, उनके उपभोग के तरीके और सामाजिक प्रथाएं किसानों से प्राप्त अधिशेष पर आधारित थी। वे किसानों से जबरन श्रम करवाते थे और उनसे कर भी वसूल करते थे। इसी का उल्लेख करते हुए मार्क्स ने लिखा था कि अभी तक के समाज का इतिहास 'वर्ग संघर्ष' का इतिहास है। यहां तक कि आरंभ में शहरों पर भी सामंतों का वर्चस्व था। राजनैतिक स्तर पर भी संबंधों की एक पूरी व्यवस्था कायम की गई थी जिसमें कमजोर व्यक्ति अधिक शक्तिशाली भूस्वामीयों से संरक्षण चाहते थे और उसके बदले में आजीवन निष्ठा और सैनिक सेवा का वचन देते थे और इसके बदले में उन्हें जमीन दी जाती थी। इस प्रकार मध्ययुगीन समाज में किसानों के साथ एक विशेष संबंधों के जरिए कृषीय अधिशेष की प्राप्ति और भूमि सम्पदा शक्ति के विकेंद्रीकरण का आधार बने। इस विकेंद्रीकरण के द्वारा भूमिपतियों का सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक वर्चस्व कायम हुआ जिसकी प्रकृति सामंती थी।

इन अनिवार्य विशेषताओं के अलावा मध्ययूगीन आर्थिक व्यवस्था में अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए अतिरिक्त आर्थिक अधिकारों और क्षेत्रीय नियंत्रणों का इस्तेमाल किया जाता था। समाज में उसकी हैसियत सबसे ज्यादा होती थी जिसके पास धन का स्रोत ज्यादा होता था, जिसके पास अधिक समय से पदवी होती थी और जिसके पास ज्यादा सशस्त्र सैनिक और कर्मचारी होते थे। एक अपेक्षाकृत कम धनी कुलीन भी एक अधिक अमीर शहरी व्यापारी से अधिक सम्मान्य होता था। इसलिए व्यापारी वर्ग अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए अपनी बेटियों की शादी भूमिपतियों से करना चाहते थे। उनके अलग राज्य चिह्न, वस्त्र और सामाजिक रीति रिवाज तो होते ही थे। इस कुलीन वर्ग की एक अन्य खासियत थी कि चाहे जैसी भी स्थिति हो वे स्वंय श्रम नहीं करते थे बल्कि दूसरों से श्रम करवाते थे। वे न तो खेती करते थे और न ही व्यापार करते थे बल्कि दोनों ही कार्यों को नीची निगाह से देखते थे। वे नाइटहुड (नाइट की उपाधि) पदवियों की प्राप्ति को ही अपना कर्म मानते थे और इसके जरिए समाज में वे अपना विशिष्ट स्थान बनाए रखते थे। केवल उच्च वंश के सदस्यों को ही नाइट की उपाधि दी जाती थी। इस प्रकार कुलीन वर्गों जिस में पुरुष और महिलायों दोनों शामिल थे का एक अलग वर्ग था। पुजारी वर्ग भी पहले दर्जे के सदस्य थे क्योंकि वे अपने को ईश्वर मनुष्य के बीच का मध्यस्थ मानते थे। अपने इस विशिष्ट स्थान के लिए उन्हें समाज में कई प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त थे। उन्हें स्वंय और एक संस्था के रूप में चर्च को कोई कर नहीं देना पड़ता था। कुलीन वर्ग उनके इस विशेषाधिकार को मंजूरी देता था तो बदले में चर्च कृषि दास प्रथा को वैधता प्रदान करता था। चर्च सामंती व्यवस्था का एक अभिन्न अंग था। इसके पास भूमि थी और वे सामंतों के समान ही कृषि दासों से खेती करवाते थे और यह उनकी आय का स्रोत था। इस पुजारी वर्ग पर राज्य के कानून भी लागू नहीं होते थे उच्च स्तरीय पुजारी बहुत शक्तिशाली और धनी होते थे। उन्होंने कानूनी संस्थाएं बनाई थीं और उसे सामान्य जनों की आंखों में न्यायोचित ठहराया था। शिक्षा पर भी उनका अधिकार था और उन्होंने कला को धार्मिक कला में परिवर्तित कर दिया था। वे समाज पर शासन करते थे और उनके पास अपार धन सम्पत्ति थी। कुलीन वर्ग के साथ मिलकर उन्होंने समाज में तीन स्तर या वर्ग कायम किए थे -- कुलीन वर्ग, पुजारी और सामान्य जन। उनके अनुसार ऊपरी दोनों दर्जों की सेवा करना और उनके लिए धन अर्जित करना सामान्य जनों का कर्तव्य था।

भूमि पर नियंत्रण, कुलीन वर्ग के पुरुषों की बड़े धार्मिक पदों पर नियुक्ति, भूमिपतियों द्वारा प्रार्थना स्थलों और चर्चों के निर्माण और उन पर काम करने वालों की नियुक्ति अधिकार के कारण दोनों दर्जों में घनिष्ठ आर्थिक और राजनैतिक संबंध स्थापित हो गया था। इन तीनों दर्जों को एक वैधानिक रूप दे दिया गया था जिनके कारण कृषि दास व्यवस्था को जारी रखा गया और इसी कारण कृषि दास व्यवस्था की समाप्ति और अन्य मध्ययूगीन संस्थाओं के रूपातंरण के बावजूद काफी दिनों तक उनका वर्चस्व कायम रहा।

अत: जब हम नए वर्ग समाज की बात करते हैं तो इसका मतलब यह नहीं है कि वर्गों का उदय पहली बार हुआ था। हमारे कहने का बस इतना ही मतलब है कि समाज आधुनिक वर्ग समाज की ओर बढ़ रहा था जिसमें जन्म, सामाजिक दर्जे और वैधानिक आधारों पर विशेषाधिकार के लिए कोई स्थान नहीं था। इस आधुनिक वर्ग समाज के जन्म को बुर्जुआ उदारवाद के उदय और पूंजीवाद के विकास से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। यह परिवर्तन रातों रात नहीं हुआ। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चली जिसमें पुराना समाज टूटता गया और औद्योगिक क्रांति ने इसे बदलने के लिए मजबूर किया।

विश्व स्तर पर पूंजी का महत्व बढ़ने से इसमें तेजी आई। एक ओर हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक समाज के बनने की एक लम्बी, जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया थी। दूसरी ओर हम यह भी कह सकते हैं कि इसका उदय अचानक और नाटकीय रूप से हुआ। प्राचीन और मध्ययुगीन विश्व की अपेक्षा ऐतिहासिक विकास तेजी से हुआ और अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग समयों में एक पूरी पीढ़ी ने अचानक यह महसूस किया कि उनकी पुरानी दुनिया उजड़ गई थी। सम्पूर्ण समाजिक परिदृश्य और बाहरी दुनिया के साथ उनके संबंध रातों रात बदल गए थे। उन्होंने अपने को बदला हुआ पाया, अपनी एक नई तस्वीर देखी और यह देखा कि उनका जीवन बिलकुल दूसरी तरह से व्यवस्थित हो गया था। वे एक नई सामूहिक व्यवस्था के अंग बन गए थे। नए वर्ग उदित हुए और नए वर्ग रूपांतरित होने लगे।

15.3 संक्रमण

ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक वर्ग समाज का जन्म पूर्व-आधुनिक समाज के गर्भ से ही हुआ था। कृषक समुदाय और बुर्जुआ वर्ग के बीच हुए वर्ग संघर्ष ने सामंती सामाजिक संरचनाओं को चुनौती दी। राजनैतिक स्तर पर राष्ट्र-राज्य के निर्माण से भी सामंती संरचना को धक्का पहुँचा । यह संक्रमण बहुत ही जटिल था क्योंकि इसमें भूमिधर अभिजात वर्ग और ग्रामीण समुदायों को रूपांतरित होना था जो सामंती सामाजिक ढांचे के प्रमुख स्तंभ थे। सामंती आर्थिक व्यवस्था के वर्ग संघर्ष के क्षेत्रों और रूपों को धक्का पहुंचा और पूंजीवाद विकसित हुआ। पिछली इकाइयों में आप इसकी थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। आधुनिक बुर्जुआ-उदारवादी समाज का विकास सब जगह एक जैसा नहीं था।

आरंभिक आधुनिक यूरोप में मजबूत केंद्रीकृत राजतंत्र स्थापित हुए जिनमें आधुनिक राज्य और राष्ट्र की कई विशेषताएं मौजूद थीं। इन निरंकुश राज्यों ने सामंती भूमिधर अभिजात वर्ग को राजनैतिक तौर पर कम महत्व दिया और व्यापार तथा वाणिज्य की वृद्धि तथा खेती के तरीकों में हुए सुधार ने इस अभिजात वर्ग की प्रकृति रूपांतरित कर दी। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप की राज्य व्यवस्था में राजतंत्रों द्वारा अपनी सत्ता को केंद्रीकृत करने और उसका दायरा बढ़ाने का प्रयास किया गया जिससे तनाव पैदा हुआ। इन राजतंत्रों ने अपने अधिकार को दैवीय अधिकार कहकर अपनी स्थिति मजबूत करने की कोशिश की। भूमिधर अभिजात वर्ग ने आमतौर पर उनका विरोध किया और अपने परम्परागत विशेषाधिकारों को पुन: स्थापित करने की कोशिश की। अधिकांश मामलों में राजतंत्र कमोवेश हावी रहे। परंतु कुलीन वर्ग और उभरते पूंजीपति समुदायों जैसे विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के दावों को पूरी तरह नजरअंदाज नहीं किया जा सका। इन वर्गों ने राजतंत्र को समर्थन देने के बदले में राज्य सत्ता में हिस्सेदारी और राज्य संरक्षण की मांग की जिससे शासकों की निरंकुश शक्ति कुछ सीमित हो गई।

नए राष्ट्र-राज्यों में बुर्जुआ वर्ग और राजतंत्रों के बीच स्वाभाविक समझौता था। उन्होंने कर, शुल्क और अन्य ऐसे नियमों का विरोध किया जो व्यापार और अन्य वाणिज्यिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाते थे। सामंती समाजों का राष्ट्र-राज्यों के रूप में गठन और आधुनिक वर्ग समाजों की ओर संक्रमण में शहरों और बुर्जुआ वर्ग की भूमिका प्रमुख थी। एक बार पुरानी अर्थव्यवस्था के समाप्त होते ही प्राचीन सामाजिक स्तरीकरण (इस्टेट सिस्टम)

पूरी तरह समाप्त तो नहीं हुआ परंतु उसमें काफी बदलाव आ गया। यूरोप में व्यापारिक बुर्जुआ वर्ग का उदय हुआ; उनकी आय का जरिया केवल अचल भू सम्पत्ति नहीं थी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत बाजार के विस्तार के कारण यूरोपीय समाज में ऐसी सामाजिक शक्तियों का जन्म हुआ जिनके हित और मूल्य व्यवस्था पूर्ववर्ती भूमिपतियों, किसानों और यहां तक कि श्रेणियों में संगठित शिल्पियों से अलग थी। ग्रामीण समाज में भी घरेलू उत्पादन व्यवस्था (पुटिंग आउट) ने नवजात बुर्जुआ वर्ग को मजबूत किया जो श्रेणियों पर संगठित शिल्पियों पर सारा भार लादकर मुक्त हो गए। चर्च की भूमि के अधिग्रहण से न केवल चर्च को स्रोत रहित कर दिया गया जो सामंती व्यवस्था का एक प्रमुख स्तंभ था बल्कि चर्च की भूमि की बिक्री से भू सम्पदा अब केवल पुराने भूमिधर अभिजात वर्ग के पास ही सीमित नहीं रह गई। उत्पादन केंद्रों और कारखानों के निर्माण के परिणामस्वरूप मजदूर वर्ग का उदय हुआ जिसका सीधा संबंध औद्योगिक उत्पादन और उद्योग से जुड़े बुर्जुआ वर्ग से था। बुर्जुआ वर्ग के सदस्यों के भूमि प्रबंधक या पूंजीपति किसान बनने से (खासकर इंग्लैंड में घेराबंदी के बाद) महत्वपूर्ण कृषि सर्वहारा वर्ग अस्तित्व में आया। इस प्रकार दो नए वर्गों का जन्म हुआ – एक बुर्जुआ वर्ग जो व्यापार, वित्तीय और औद्योगिक क्षेत्रों में फैला हुआ था और दूसरा सर्वहारा वर्ग जो कृषि और उद्योग में श्रमरत था। इन दो वर्गों ने अठारहवीं शताब्दी के सामाजिक परिदृश्य को बदलना शुरू किया।

इन सब परिवर्तनों के बावजूद यूरोप में भूमिधर अभिजात वर्ग का सामाजिक और राजनैतिक वर्चस्व बना रहा। अभी भी भू सम्पदा प्रतिष्ठा का आधार थी और यह आमदनी का प्रमुख जरिया भी थी। पुराने जमाने में यह सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संबंधों का आधार भी था जिसके बारे में आप पिछली इकाई में जानकारी हासिल कर चुके हैं। अभी भी यूरोप में किसी न किसी रूप में ये व्यवस्थाएं मौजूद थीं। अभी भी भूमिधर अभिजात वर्ग को किसी न किसी रूप में जन्मजात वैधानिक विशेषाधिकार प्राप्त थे। अभी भी रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट चर्च भूमिधर अभिजात वर्ग से जुड़े हुए थे। शहरों में रहने वाला अधिकांश श्रमबल श्रेणियों में संगठित था और पूरे महाद्वीप में किसान उच्च सामंती करों से मुक्त नहीं हो सके थे। उद्योगों के उभरने के बावजूद प्रत्येक देश का कुलीन वर्ग सबसे समृद्ध वर्ग था। हालांकि भूमि इस अभिजात वर्ग की आय का प्रमुख स्रोत था परंतु इनकी भूमिका अपने इलाके तक ही सीमित नहीं थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका प्रभाव देखा जा सकता था। 18वीं शताब्दी का युग भूमिधर अभिजात वर्ग के वर्चस्व का युग था। हालांकि यह अभिजात वर्ग अपने को उभरते पूंजीवाद से जोड़ रहा था। एक नया समाज बन रहा था परंतु पुराना समाज पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ था।

बोध प्रश्न 1

1) पूर्व-आधुनिक वर्ग समाज आधुनिक वर्ग समाज से किस प्रकार भिन्न था?

....

....

....

....

....

2) यूरोप में केंद्रीकृत राजतंत्रों की क्या भूमिका थी?

....

....

....

....

....

3) आधुनिक वर्ग समाज की ओर संक्रमण से हमारा क्या तात्पर्य है?

....

....

....

....

....

15.4 प्राचीन अवशेष के तत्व : सम्पदा और नैगमिक निकाय

नए समाज में पुराने जमाने के अवशेष के रूप में भू-सम्पदाएं और निगम निकाय मौजूद थीं और 19वीं शताब्दी में इनका अस्तित्व कायम रहा। यहां तक कि इंग्लैंड ,जहां 1640 की क्रांति के बाद संसदीय सरकार और आर्थिक विकास का सिलसिला आरंभ हो चुका था और जिसके फलस्वरूप पूंजीवाद का जन्म हुआ, में भी कुलीन वर्ग और भद्रजन राज्य के प्रमुख समर्थन आधार बने रहे और ग्रामीण इलाकों में इनके पास काफी मात्रा में शक्ति केंद्रित रही। 18वीं और 19वीं शताब्दी के आरंभ का संसद आज से बिलकुल अलग था जो संसदीय प्रजातंत्र में रहने वाले अमीर और गरीब सभी लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करता है। पूरे यूरोप में प्रतिनिधि संस्थाओं में केवल उच्च वर्ग का ही प्रतिनिधित्व था क्योंकि किसी न किसी प्रकार के सम्पत्ति के मालिक ही इसमें भाग ले सकते थे जिन्हें 'मुक्त प्रजा' कहा जाता था। गरीब जनता को किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं था। इसलिए जब सांसद उदारवाद और सम्पत्ति के पक्ष में बोलते थे तो वे और भी विशेषाधिकार और सम्पत्ति की मांग कर रहे होते थे। ये सांसद अपने समाज के अमीर लोगों के या स्वंय अपने विशेषाधिकारों में वृद्धि करने का प्रयत्न करते थे। उन्हें आम आदमी की कोई चिंता नहीं थी। हालांकि जब उन्हें अपने शासकों से कोई बात मनवानी होती थी तो वे उन्हीं आम वर्गों का सहारा लेते थे।

फ्रांसीसी क्रांति के विचारों में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का विचार शामिल था। इसके अलावा आधुनिक राजनीति और आधुनिक जनता के निर्माण में जन सम्प्रभुता और राष्ट्र का भी योगदान था। पंरतु पूरे यूरोप की प्रातिनिधिक संस्थाओं में जनता को प्रतिनिधि के रूप में शामिल नहीं किया गया। अभी प्रजातंत्र अमीरों की मुट्ठी में था और इसमें उन्हीं की हित पूर्ति होती थी। 19वीं शताब्दी के दौरान भी भूमिधर अभिजात वर्ग संसदीय-प्रातिनिधिक संस्थाओं के नियंत्रण और एकाधिकार के द्वारा अपने हितों की रक्षा करता था।

इंग्लैंड में मत देने का अधिकार केवल धनी व्यक्तियों को ही था। यहां तक कि 1867 और 1881 के सुधार अधिनियमों तक बुर्जुआ वर्ग को भी मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। इसके अलावा शहरों की अपेक्षा गांव में रहने वालों को अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त था जबकि शहरों की जनसंख्या ज्यादा संकेदित थी। इसलिए बुर्जुआ वर्ग के मजबूत सामाजिक और आर्थिक शक्ति के रूप में उभरने के बावजूद भूमिधर अभिजात वर्ग केवल अपने हितों की रक्षा करता रहा। यहां तक कि संसद के कई सुधार अधिनियमों के जरिए हाउस ऑफ कॉमन्स में सामान्य जनों के प्रवेश के बावजूद संसद में हाउस ऑफ लॉर्ड्स में ब्रिटेन के कुलीन वर्ग के 400 अमीर घरानों का प्रतिनिधित्व था। फ्रांस में भी इसी तरह संसद और प्रांतीय विधान सभाओं में भूमिधर अभिजात वर्ग का वर्चस्व था। पुनर्स्थापना (रेस्टोरेशन) के बाद सदन को दो भागों में विभाजित किया गया। ऊपरी सदन के सदस्यों का मनोनयन सम्राट किया करता था। जर्मनी में विभिन्न राज्यों की प्रांतीय विधान सभाओं में और जर्मनी के एकीकरण के बाद भी उच्च सदन में भूमिधर अभिजात वर्ग का वर्चस्व था और चांसलर बिस्मार्क सम्राट के प्रति उत्तरदायी था जिसके पास असीम शक्ति थी। रूसी साम्राज्य में कुलीन वर्ग के घोषणा पत्र, सुधार पूर्व प्रांतीय सभाओं और सुधारोत्तर जेम्स्तवो ने कानूनी दृष्टि से भूमिधर अभिजात वर्ग और बुर्जुआ वर्ग को अलग कर दिया। 20वीं शताब्दी में भूमिधर अभिजात वर्ग और किसान 'इस्टेट्स' में विभाजित और वैधानिक बने रहे। इन राजनैतिक संस्थागत व्यवस्थाओं ने संविधानवाद में बाधा पहुंचाई और व्यापक राजनैतिक प्रजातंत्र के लिए होने वाले वर्ग संघर्ष को कमजोर बनाया।

15.5 वर्गीय पहचान

यूरोप में सामंती व्यवस्था ने प्रत्येक राज्य या समाज की सामूहिकता के विचार को मजबूत किया जिसमें कई छोटे समुदाय शामिल थे। 18वीं शताब्दी तक लोग व्यक्तिगत अधिकारों से परिचित नहीं थे। एक व्यक्ति को इस प्रकार का अधिकार और विशेषधिकार अपने समुदाय या समूह से प्राप्त होता था। इस 'समुदाय' में गांव, नगर निगम, कुलीन वर्ग, चर्च शामिल होते थे। प्रत्येक समुदाय को अपनी हैसियत के अुनसार या तो कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे या उनकी स्थिति कमजोर थी। फ्रांसीसी क्रांति की इकाई का अध्ययन करते समय आप पुरानी शासन व्यवस्था का विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं।

15.5.1 समुदाय

इस सामुदायिक जीवन और सामूहिक चेतना का आधार पूर्व- औद्योगिक परिवार आधारित अर्थव्यवस्था थी जो एक विस्तृत परिवार के उपभोग और उत्पादन की आधरभूत इकाई थी। सामूहिक परम्परागत अधिकार इस परिवार अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग था और भूमिधर अभिजात वर्ग द्वारा इन अधिकारों के हनन के खिलाफ पहली बार शोषितों ने संघर्ष किया था। अपने सामुदायिक अधिकारों, सामूहिक स्वतंत्रता और समतावाद की रक्षा करने के लिए सबसे पहले वर्ग संघर्ष हुए थे। इन आरंभिक सामंत विरोधी संघर्षों में प्राचीन समुदायों के विघटन और किसान चेतना के उदय के बीच सेतु का काम किया। किसान चेतना के द्वारा खेत में काम करने वाले लोगों का वर्ग हित सामने आया। 1789-91 में फ्रांस में शहरों के साथ-साथ गांवों में जो भी आन्दोलन हुए उससे राष्ट्र का सामाजिक और राजनैतिक जीवन रूपांतरित हो गया। इस्टेट्स जेनरल को राष्ट्रीय सभा में रूपांतरित करने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही। इंग्लैंड में घेराबंदी के खिलाफ किसानों ने विद्रोह कर दिया। जर्मनी में किसानों ने संस्थागत व्यवस्थाओं में होने वाले परिवर्तन को आसानी से स्वीकार नहीं किया। रूसी साम्राज्य में 1861 के सुधारों के बाद किसानों के आंदोलनों की प्रकृति में काफी बदलाव आया।

15.5.2 भूमिधर अभिजात वर्ग

भूमिधर अभिजात वर्ग को इस्टेट से वर्ग में रूपान्तरित होने के लिए समान रास्ता अख्तियार करना पड़ा। सबसे पहले उन्होंने इस बात पर बल दिया कि अभिजात होने का संबंध जन्म और वैधानिक विशेषाधिकार से जुड़ा हुआ है। परिवर्तन के समय वे अपने जन्म और वंश के आधार पर पदों पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न करते थे। यह बात पूरे यूरोप पर लागू होती थी। पूरी 18वीं और 19वीं शताब्दी के कुछ समय तक तथा रूस में इसके काफी बाद तक और चर्च, सेना और नौकरशाही के सभी ऊंचे पद कुलीन वर्ग के लोगों को मिलते थे। अभी भी कुछ विशेषाधिकार 'अनुवांशिक' थे। दूसरे उन्होंने अपने को विशिष्ट बनाए रखने का प्रयत्न किया ताकि उनके पदों और संस्थाओं में किसी का प्रवेश न हो सके। राजतंत्रों द्वारा नए अभिजात वर्ग के निर्माण के प्रयत्न के बावजूद वे अपनी विशिष्टता कायम रखने का प्रयत्न करते थे। पूरे महाद्वीप में उन्होंने अपने सामंती मांगों पर पुन: दावा किया। इसी प्रकार उन्होंने ग्रामीण इलाकों में अपना वर्चस्व कायम करने का प्रयत्न किया। इंग्लैंड में उन्होंने शिकार कानून बनवाया जिसके द्वारा उन्हें शिकार करने का विशिष्ट अधिकार प्राप्त हुआ। वे इस अधिकार पर स्वंय नियंत्रण भी रख सकते थे क्योंकि वे ही कानून बनाने वाले थे और कानून तोड़ने वालों को दंडित करना भी उन्हीं के अधिकार क्षेत्र में आता था। फ्रांस के अभिजात वर्ग ने अपने और चर्च के लिए करों से मुक्ति संबंधी विशेषाधिकार की समाप्ति को रोकने का प्रयास किया और इसके लिए 1789 में 'इस्टेट जेनरल' की बैठक बुलाई। जर्मनी में 1848 की क्रांति और फ्रैंकफर्ट सभा के बाद भी अपने कई विशेषाधिकार बचा कर रखे रूस में सभी पदों पर नियंत्रण रखने के साथ-साथ उन्होंने तानाशाही व्यवस्था को समर्थन दिया और उनके अधिकारों की रक्षा की।

अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के साथ-साथ अभिजात वर्ग ने भी अपने को पूंजीवादी विकास के अनुसार ढालना शुरू कर दिया और खासतौर पर इंग्लैंड, पूर्वी जर्मन राज्यों और रूसी साम्राज्य में उन्होंने भूमि पर सीधे नियंत्रण स्थापित करने पर बल दिया। इंग्लैंड में घेराबंदी और सड़कों, नहरों, रेलवे, कोयला खानों, आदि में पूंजी निवेश, पूर्वी जर्मनी में भूमिहीन कृषकों की मुक्ति, पश्चिम जर्मनी में किराया कानून और रूसी साम्राज्य में मुक्ति की शर्तें वस्तुत: एक वर्ग के रूप में भूमिपतियों के हितों और आधिपत्यों की ही अभिव्यक्ति थी। इसके अलावा एक वर्ग के रूप में ऐसे भूमिधर अभिजात वर्ग का जन्म हुआ जिसका हित पूंजीवादी विकास से जुड़ा हुआ था।

15.5.3 बुर्जुआ और मजदूर वर्ग

वर्ग के रूप में बुर्जुआ वर्ग के निर्माण की कथा कुछ अलग है। आरंभ से ही पूर्व- आधुनिक और सामंती समाज के गर्भ से जन्म लेने और अभी भी सामान्य जनों का हिस्सा होने के कारण इसे कुछ खोना नहीं था। इसका जन्म सामंतवाद की समाप्ति के लिए हुआ था। यह वर्ग, जो अपने आरंभिक दौर में कुछ छोटे-मोटे व्यापारियों का प्रतिनिधित्व करता था, शक्तिशाली बना और पूंजीवाद का वाणिज्यिक, वित्तीय और औद्योगिक प्रतिनिधि बनकर उभरा।

शिल्पियों ने सबसे पहले उन मशीनों को नकारना शुरू किया जिन्होंने उनकी रोजी-रोटी छीनी थी और उनकी जीवन शैली को तहस-नहस कर दिया था। धीरे-धीरे इसने मजदूर आंदोलन का रूप ले लिया। कारखानों में कार्यरत सर्वहारा वर्ग के उदय से अन्तत: पूंजी और श्रम का द्विभाजन सामने आया जो आधुनिक वर्ग समाज का प्राथमिक अन्तर्विरोध बन गया। अपनी श्रम प्रक्रिया और अपनी वस्तुनिष्ठ स्थिति में सर्वहारा एक वर्ग के रूप में उभरा जिनके हित अनिवार्यत: बुर्जुआ वर्ग के विरोधी थे और समाज की पूंजीवादी व्यवस्था के भी वे विरोधी थे। आर्थिक उत्पादन में पूंजी के महत्वपूर्ण होते ही बुर्जुआ वर्ग यथास्थिति का प्रतिनिधि बन गया और मजदूर वर्ग का वर्ग संघर्ष इतिहास की नियामक शक्तियां बन गईं। जैसा कि मार्क्स ने बताया है कि एक ऐसा वर्ग निर्मित हुआ जिसकी मुक्ति से वर्ग शोषण की समाप्ति हो सकती थी और होगी। अर्थव्यवस्था और समाज का पूरा आधार बदल गया। अब वह वर्ग जिसका सम्पत्ति पर अधिकार था और जो इस पर काम करते थे उनके बीच का संबंध सामंतवादी संबंधों से अलग था। फ्रांसीसी क्रांति के आदर्शवाद और 1830 और 1848 की क्रांतियों से जन्मी आधुनिक राजनीति का मूलभूत आधार यही था कि किसी भी विशेषाधिकार पर प्रश्न उठाया जा सकता है। जनतंत्र की शक्तियों ने क्रांति की जिसने 'इस्टेट्स' की सभी वैधानिकताओं को समाप्त कर दिया। वर्गीय अस्मिताएं पूंजीवाद के उत्पादन संबंधों से जुड़ गई और इसके साथ यूरोप के अधिकांश हिस्सों में आधुनिक वर्ग समाज की स्थापना हुई।

15.6 प्रतिस्पर्धी पहचान : राष्ट्र

राष्ट्र-राज्य के जन्म और संगठित होने के सिद्धांत के रूप में राष्ट्र के उदय के समानांतर आधुनिक वर्ग समाज का उदय और विकास हुआ। वस्तुत: राष्ट्र आधुनिक समाज का राजनैतिक रूप था। फ्रांसीसी क्रांति के द्वारा सभी लोगों को मौलिक अधिकार प्रदान करने के लिए राष्ट्र की अवधाराणा के जनतंत्रीकरण के प्रयत्न से भी दोनों के बीच के संबंध का पता चलता है। राजा या रानी की प्रजा से नागरिकता की ओर संक्रमण में कानून के समक्ष समानता, निजी सम्पत्ति और एकीकृत बाजार अन्तर्भूत था। 19वीं शताब्दी के दौरान समाचार पत्र, शैक्षिक व्यवस्था, धार्मिक आंदोलन और अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता ने राष्ट्रीय अस्मिताओं को मजबूत बनाने में और आत्म-जागरूक राष्ट्रीय आंदोलनों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इटली, जर्मनी और मध्य यूरोप में उन्होंने शक्तिशाली ताकतों का प्रतिनिधित्व किया और छोटे तबकों के लोगों और उभरते मध्य वर्ग के वर्ग हितों को शामिल किया। लोग स्वाभाविक रूप से इन राष्ट्रीय आंदोलनों से जुड़ गए। कई बार इन राष्ट्रीय आंदोलनों में उनके वर्ग हित की उपेक्षा हुई और कभी प्रतिनिधित्व भी नहीं मिला फिर भी लोग राष्ट्रीय भावना में बह गए। कुछ देशों में जो पहले से ही राष्ट्र थे किसान फ्रांसीसी नागरिक बन गए। प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत के साथ इन सभी देशों की सरकारों द्वारा राष्ट्रीय हितों की रक्षा का आह्वान किया गया और मजदूर वर्ग ने उनका साथ दिया। इन सभी घटनाओं की चर्चा विस्तार से पिछली इकाइयों में की जा चुकी है और आप राष्ट्रवाद के विभिन्न प्रकारों और चरणों से भलिभांति परिचित हैं। परंतु यहां यह याद करना आवश्यक है कि राष्ट्रीय अस्मिता ने वर्ग निष्ठाओं को समाप्त नहीं किया। जर्मनी, इटली और रूस में मजूदर आंदोलन एक महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति थी और पूरे यूरोप में सामाजिक जनतांत्रिक दल में बड़ी संख्या में मजदूर वर्ग शामिल था और यह सबसे बड़ा राजनैतिक दल था। रूस की 1917 की क्रांति में और पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में मजदूर वर्ग एक प्रमुख राजनैतिक शक्ति था। बुर्जुआ वर्ग ने राष्ट्र के हित से ज्यादा अपने हितों को ध्यान में रखा और राष्ट्र को अपने हित के लिए इस्तेमाल किया। यहां यह याद रखना आवश्यक है कि जब हम राष्ट्र की बात करते हैं तो उसमें सभी वर्गीय अस्मिताएं शामिल होती हैं।

15.6.1 अन्य प्रतिस्पर्धी

महिलाओं के आंदोलनों खासकर नारीवादी आंदोलनों और महिला अध्ययनों के कारण स्त्री अस्मिता की चेतना जागृत हुई। महिलाओं के विभिन्न आंदोलनों और मजदूर संघर्षों के बीच अनुभवों से आदान-प्रदान के कारण स्त्री अस्मिता का प्रश्न काफी तीखे रूप में उभर कर आया। यह बात बहुत शिद्दत से महसूस की जा रही थी कि उनकी मांगों को आम मांगों से अलग रखा जाना चाहिए। मताधिकार के लिए संघर्ष, समान काम के लिए समान वेतन, उत्तराधिकार का अधिकार और पितृसतात्मकता की कतिपय अभिव्यक्तियों ने स्त्री-पुरुष भेदभाव के मुद्दों के विषय में जागरूकता पैदा करने में मदद की।

हाल के दशकों में श्रम और औद्योगिक क्षेत्रों से दूर पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं की पुनर्रचना होने से पुराने श्रम आधारित मजदूर वर्गों की शक्ति क्षीण होने लगी और 'उत्तर औद्योगिक' समाज का जन्म होने लगा। इसके परिणामस्वरूप नए प्रकार के श्रम रहित रोजगार सामने आने लगे जिसमें सेवा क्षेत्र प्रमुख है। ऐसा माना जाता है कि जनता की सामूहिक और व्यक्तिगत अस्मिता पर इन परिवर्तनों का पर्याप्त प्रभाव पड़ेगा। समाज में संरचनात्मक विभाजनों और इकाइयों के लिए नए आधार के रूप में अपने और समाज के बारे में लोगों की धारणा बदलने लगी और इसमें उत्पादन की अपेक्षा उपभोग पर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा। इस 'उत्तर औद्योगिक' समाज को एक जन समाज के रूप में देखा गया जिसमें संभ्रांत और जनता के बीच आधारभूत विभाजन था और इस तरह वर्ग समाज का अन्त माना गया। क्षेत्रीय, जातीय, सामुदायिक और स्त्री-पुरुष अस्मिताएं प्रमुखता से उभर कर सामने आईं।

इस विचार पर भी विद्वान एकमत नहीं हैं। दृष्टिकोण चाहे कुछ भी हों वर्ग अब भी समकालीन समाज का एक आधारभूत यथार्थ है और वर्गीय सदभाव तथा एकजुटता का अभी भी महत्व है। उच्च तकनीकी विशेषज्ञता से केवल कुछ श्रम बल ही प्रभावित होते हैं और शारीरिक श्रम बल पर ही आधारित कई नए रोजगार ऐसे हैं जिसमें किसी कुशलता की जरूरत नहीं है और इसे शारीरिक श्रम करने वाला कोई भी मजदूर कर सकता है। आज पूंजीवाद के तहत मजूदरों की मजदूरी का यथार्थ यह है कि यह शोषणात्मक है और यह पूंजी के हित को साधता है। जन संचार माध्यमों की शक्ति के नीचे भले ही वर्ग संबंध दबे या छिपे हुए हैं और उत्पादन तथा उपभोग के अधिक परिष्कृत रूप उपलब्ध हों परंतु उत्तर औद्योगिक पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था में पूंजी और श्रम के संबंध का अन्तरविरोध मौजूद है। पूंजी और श्रम का द्विभाजन भी समकालीन समाज का अनिवार्य आधार बना हुआ है। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति के बाद ही श्रमिकों का शोषण समाप्त हो सकता है।

बोध प्रश्न 2

1) पूर्व-औद्योगिक समाज में सामुदायिक चेतना की क्या भूमिका थी ?

....

....

....

....

....

2) भूमिधर अभिजात वर्ग ने किस प्रकार अपने को बनाए रखने का प्रयत्न किया?

....

....

....

....

....

3) औद्योगिक समाज में नई अस्मिताओं के उदय के बारे में आप क्या जानते हैं ?

....

....

....

....

....

15.7 सारांश

इस इकाई में आपने निम्नलिखित मुद्दों पर विचार किया।

- अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए किस प्रकार पूंजी ने पुरानी सामंती व्यवस्था को बदल दिया।
- कई छोटे समुदायों में मौजूद पूर्व आधुनिक समाज में किस प्रकार कई तरीकों से अस्मिता को नजरअंदाज किया गया।
- किस प्रकार औद्योगिक समाज के नए अनुभवों ने नई सामूहिकताओं और अस्मिताओं का निर्माण किया।

15.8 शब्दावली

केंद्रीकृत राजतंत्र : राजतंत्र में राजा के पास सारी राजनैतिक शक्ति होती थी। इसमें कुलीनों और अन्य सामंतों की शक्ति कमजोर रहती थी।

धार्मिक पद : चर्च द्वारा स्वीकृत पद

बरो : इंग्लैंड में एक संसदीय क्षेत्र

ज़ेम्सतोव : रूसी विधान सभा

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 15.2। इसमें आप समुदाय की भूमिका आदि की चर्चा कर सकते हैं।
2) देखिए भाग 15.3। सामंती भूमिधर अभिजात वर्ग की शक्ति कम करने में इसकी भूमिका पर विचार कर सकते हैं।
3) देखिए भाग 15.2। जन्म आदि के आधार पर विशेषाधिकारों की समाप्ति की चर्चा की जा सकती है।

बोध प्रश्न, 2

1) देखिए उपभाग 15.5.1।
2) देखिए उपभाग 15.5.2। जन्म आदि के आधार पर विशेषाधिकार को बढ़ावा देने के प्रयत्नों का उल्लेख कर सकते हैं।
3) देखिए उपभाग 15.5.3, भाग 15.6 और उपभाग 15.6.1।

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

पी लैसलेट, आर. वाल (संपादन) **हाउसहोल्ड ऐंड फेमिली इन पास्ट टाइम,** कैम्ब्रिज 1972

आर वाल, जे रॉबिन, पी.लैसलेट (संपादन) **फेमिली फॉर्म्स इन हिस्टोरिक यूरोप,** कैम्ब्रिज, 1983।

रिगले ऐंड रोजर शोफिल्ड, **द पोपुलेशन हिस्ट्री ऑफ इंग्लैंड,** 1541-1871, कैम्ब्रिज, 1981।

बैरिंगटन मोरे (जरनल), **सोशल ऑरिजिन्स ऑफ डिक्टेटरशीप ऐंड डेमोक्रेसी,** 1974।

हॉब्सबॉम, **द एज ऑफ रिवोल्यूएशन,** 1789-1848, रूपा ऐंड कां०, 1992।

हॉब्सबॉम, **द एज ऑफ कैपिटल,** रूपा ऐंड कं०, 1992।

इकाई 16 राष्ट्रवाद और राष्ट्र-राज्य

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जान सकेंगे कि यूरोप में राष्ट्रवाद के विचारों का उदय कैसे हुआ;
- राष्ट्र-राज्य के निर्माण में आधुनिक राज्य और राष्ट्रवाद की भूमिका पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- लोगों को संगठित करने और राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र-राज्य के विकास में भाषा और जनतांत्रिक राजनीति की भूमिका को रेखांकित कर सकेंगे; और
- कुछ पूर्वी यूरोपीय देशों में राष्ट्रीय अस्मिताओं के विकास के विभिन्न चरणों के बारे में जान सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

राष्ट्रवाद एक आधुनिक परिघटना है। हालांकि इस विचार को इससे पहले के काल में भी देखा जा सकता है परंतु आधुनिक राष्ट्रवाद का उदय 18वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में ही हुआ था। 19वीं और 20वीं शताब्दी के दौरान यह पूरी दुनिया में फैल गया। आधुनिक राज्य में राष्ट्रवाद का तत्व मिल जाने से राष्ट्र-राज्य का

उदय हुआ। कई मामलों में तो आधुनिक राज्य ने लोगों के बीच राष्ट्रवाद की चेतना का संचार किया और इसकी सीमाओं में रहने वाले लोगों को राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रेरित किया। दोनों ने मिलकर जनता को संगठित किया जिसने राज्य को मजबूती प्रदान की और राष्ट्र-राज्यों के निर्माण में सहायता मिली।

16.2 राष्ट्रवाद का अर्थ

मार्च 1882 में सोरबोन में दिए अपने भाषण में फ्रांसीसी प्राच्यविद और इतिहासकार अर्नेस्ट रेनन ने कहा था कि राष्ट्र एक आध्यात्मिक समुदाय है जो रोजमर्रा के विश्वास के आधार पर अपने बीच एकता स्थापित करता है। **मार्क्सवाद और राष्ट्रीय प्रश्न** शीर्षक के अपने एक लेख में जोसफ स्टैलिन लिखते हैं कि "एक राष्ट्र ऐतिहासिक रूप से निर्मित होता है जिसमें एक स्थाई समुदाय के लोग रहते हैं और इसका निर्माण समान भाषा, क्षेत्र, आर्थिक जीवन और मनोवैज्ञानिक बनावट अर्थात कुल मिलाकर एक समान संस्कृति के आधार पर होता है"। हालांकि स्टैलिन के 'भौतिकवादी' विश्लेषण के विपरीत रेनन ने राष्ट्र की एक 'आदर्शवादी' परिभाषा प्रस्तुत की है परंतु यह एक रोचक तथ्य है कि दोनों ही लेखक इस बात को स्वीकार करते थे कि राष्ट्र कभी भी अमर या शाश्वत नहीं होते। राष्ट्रों की शुरुआत भी होती है और अन्त भी होता है।

राष्ट्रवाद के संस्थापक अध्ययनकर्ता हैन्स कोहन का मानना था कि "राष्ट्रीयताएं इतिहास की जीवित शक्तियों की उपज हैं इसलिए ये अटल नहीं होतीं और इनमें हमेशा उतार चढ़ाव होता रहता है"। राष्ट्रीयताओं की पहचान कुल, वंश, जनजाति या लोक समूहों से नहीं बनती और न ही समान अतीत या समान निवास स्थान मात्र से ही उनका संबंध होता है। कोहन यह तर्क देते हैं कि "आदिम जातियों के पास प्राचीन काल से एक इतिहास रहा है परंतु अभी तक उनमें राष्ट्रीयताओं का निर्माण नहीं हो पाया है; वे और कुछ नहीं बल्कि 'नृजातीय सामग्री' हैं जिसमें से कुछ विशेष परिस्थितियों में एक राष्ट्रीयता का उदय हो सकता है। एक राष्ट्रीयता का जन्म हो सकता है, मृत्यु हो सकती है या फिर किसी बड़ी राष्ट्रीयता में विलयन हो सकता है।

कोहन का मानना था कि "राष्ट्रवाद का विचार और स्वरूप राष्ट्रवाद के युग से पहले ही विकसित हो चुका था।" प्राचीन हेब्रू और ग्रीकों के समय से ही राष्ट्रवाद का विचार मौजूद था। प्राचीन काल में यहूदियों के बीच, चुने हुए लोगों की संकल्पना, राष्ट्रीय इतिहास की चेतना और राष्ट्रीय मसीहा, के रूप में राष्ट्रवाद के तीन लक्षण मौजूद थे। परंतु वे यह मानते हैं कि अपने 'प्रचंड राष्ट्रीय विचारधारा' के बावजूद ग्रीकों में "राजनैतिक राष्ट्रवाद" नहीं था और केवल फारसी युद्धों के दौरान ही थोड़े समय के लिए देशभक्ति का उदय हुआ था।

हालांकि प्राचीन काल से ही राष्ट्र का विचार मौजूद था और सोलहवीं शताब्दी में तो इसके प्रमाण भी मिलते हैं। मसलन जर्मन शब्द फोक्स का इस्तेमाल जनता के लिए किया जाता था। परंतु अधिकांश इतिहासकार इस बात पर काफी हद तक सहमत हैं कि राष्ट्रवाद एक आधुनिक अवधारणा है। अन्य मुद्दों पर असहमति के बावजूद बेन्डिक्ट एन्डरसन, अर्नेस्ट गेलनर और एरिक हॉब्सबाम इस बात पर सहमत हैं कि राष्ट्रवाद एक ऐसी परिघटना है जिसका उदय पश्चिमी यूरोप में 18वीं शताब्दी में हुआ और बाद में 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में दुनिया के अन्य भागों में इसका प्रसार हुआ। **अधिकांश विद्वानों का मानना है कि आधुनिक राष्ट्रवाद का उदय औद्योगिक पूंजीवाद या मुद्रण पूंजीवाद के साथ हुआ और इसमें कई कारक शामिल हुए जैसे भाषा, जातीयता या धर्म पर आधारित समुदाय या राज्यों या कल्पित समुदायों के बीच प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता।**

मार्क्सवादी परम्परा में राष्ट्रवाद की परिभाषा मार्क्स, एंगेल, लेनिन और स्टालिन से होती हुई हॉब्सबॉम तक पहुंची। मुख्य रूप से इस परम्परा में राष्ट्र को एक एतिहासिक रूप से विकसित परिघटना माना जाता है जिसका उदय सामंतवाद के पतन और पूंजीवाद के उदय के साथ हुआ था। जनजातियां, कुल, वंश और लोग पूंजीवाद के उदय से पहले भी मौजूद थे परंतु पूंजीवादी उत्पादन के तरीके के कारण नए आर्थिक संबंध विकसित हुए और परिणामस्वरूप राष्ट्रों का जन्म हुआ। राष्ट्रवाद को एक ऐसे वैचारिक आधार के रूप में देखा जाता है जिसने पूरे समाज के हितों के परिप्रेक्ष्य में बुर्जुआ वर्ग को एक वर्ग के रूप में अपने हितों की पहचान कराने में मदद पहुंचाई।

हॉब्सबॉम ने इस बात पर भी बल दिया है कि "प्रौद्योगिकी और आर्थिक विकास के किसी विशेष चरण" के संदर्भ में राष्ट्रों और राष्ट्रवादी आकांक्षाओं का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। "हालांकि राष्ट्रवाद ऊपर से आरोपित किया गया था परंतु जनता की आकांक्षाओं, आशाओं, सोच, जरूरतों और हितों का विश्लेषण किए बिना राष्ट्रवाद को नहीं समझा जा सकता। यह अनिवार्य तौर पर राष्ट्रीय नहीं होते और अभी भी कम राष्ट्रवादी हैं।"

16.3 राष्ट्रवाद का विचार और राष्ट्र-राज्य

क्रांति के युग (1706 की अमेरिकी क्रांति और 1789 की फ्रांसीसी क्रांति) के दौरान राष्ट्रवाद की आधुन्कि अवधारणा का जन्म हुआ। अमेरिकी राजनैतिक विकास में राष्ट्रवाद के एकीकरण के पक्ष पर बल नहीं दिया गया। अमेरिकी नेतृत्व जीवन के अधिकारों, स्वतंत्रता और खुशी की खोज के प्रति ज्यादा प्रयत्नशील थे और वे चाहते थे कि अमेरिकी संघ और राज्यों के बीच समुचित संबंध बना रहे और एक उदारवादी पूंजीवादी समाज का विकास हो। इसके विपरीत फ्रांस में राष्ट्र का अर्थ "एक और अभिभाज्य" माना गया। राष्ट्र का विचार अभिन्न रूप से जनभागीदारी, नागरिकता और जनता की सामूहिक संप्रभुता या एक राष्ट्रीयता से जुड़ा हुआ था। हॉब्सबॉम राष्ट्र की क्रांतिकारी जनतांत्रित और राष्ट्रवादी अवधारणा में फर्क करते हैं। राष्ट्र के क्रांतिकारी जनतांत्रिक दृष्टिकोण के अनुसार एक राज्य के भीतर संप्रभु नागरिक दूसरों के संदर्भ में एक राष्ट्र बनाते हैं जबकि राष्ट्रवादी विचारधारा के अनुसार समुदाय की खास विशेषताएं जो इसे दूसरों से अलग करती हैं और जो पहले से मौजूद होती हैं, एक राष्ट्र के निर्माण के लिए आवश्यक होती हैं। क्रांति के बाद फ्रांसीसियों द्वारा जबरदस्त ढंग से भाषाई एकरूपता पर बल दिया गया साथ ही यह भी दर्ज किया कि कितने कम लोग इस भाषा का प्रयोग करते हैं। राष्ट्र की क्रांतिकारी फ्रांसीसी अवधारणा में फ्रांसीसी बोलने की इच्छा प्रकट करना (फ्रांस में गैर फ्रांसीसी लोगों द्वारा) पूर्ण फ्रांसीसी नागरिकता पाने की एक शर्त थी।

इटली में एकीकरण और राष्ट्रवाद का एकमात्र आधार इतालवी भाषा थी। 1860 में इटली का एकीकरण हुआ और उस समय केवल 2.5% जनता रोजमर्रा की भाषा के रूप में इसका इस्तेमाल करती थी। इतालवी राष्ट्रवाद के जनक, युवा इटली के नेता मेजनी का मानना था कि राष्ट्र की लोक संप्रभुता अविभाज्य होनी चाहिए और संघीय इटली के सभी प्रस्ताव स्थानीय शासकीय वर्गों को अधिक से अधिक जीवित रखने के प्रयास मात्र थे। मेजनी का मानना था कि इटली की जनता का 'निर्माण' करना होगा ताकि इटली का विभाजन रोका जा सके। हालांकि जन इच्छा की एकता और पवित्रता में उसका एक रहस्यात्मक विश्वास था। मेजनी का कहना था कि 'लेखकों को जनता की जरूरतों' की खोज करनी चाहिए ताकि इतालवी साहित्य राष्ट्र को प्रेरित और प्रोत्साहित कर सके। राजनैतिक विकास को दिशा देने में साहित्य एक प्रमुख भूमिका निभा सकता है।

16.4 राष्ट्रवाद के विकास के चरण

राष्ट्रवाद के उदय को मुख्य रूप से दो चरणों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम चरण की शुरुआत 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पहले के काल से मानी जा सकती है। जब राष्ट्रीय एकता की कुछ अवधारणा अपने आरंभिक रूप में उपस्थित थीं। प्रत्येक राष्ट्र में इसका इतिहास अलग-अलग हो सकता है परंतु भौगोलिक या सांस्कृतिक एकता आधुनिक राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि मात्र था। फ्रांस की क्रांति के बाद ही आधुनिक राष्ट्रवाद स्वरूप ग्रहण करने लगा। इस मामले में ब्रिटेन और फ्रांस अपवाद थे। वहां क्रमशः 16वीं और 17वीं शताब्दी से ही राष्ट्र निर्माण के प्रयास शुरू हो गए थे।

16.4.1 1789 के पहले राष्ट्रवाद : प्रारंभिक राष्ट्रवाद

ऐतिहासिक रूप से आधुनिक राष्ट्र और राष्ट्रवाद का उदय 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जन राजनीति का युग शुरू होने से राष्ट्रवाद का स्वरूप अधिक जनतांत्रिक हो गया। हालांकि इधर लिखी कुछ पुस्तकों में उत्तर-मध्ययुगीन यूरोप को समझने के लिए मध्ययुगीन अतीत में देखने पर बल दिया गया है।

19वीं शताब्दी के कई पर्यवेक्षकों का यह मानना था कि राष्ट्रवाद के तत्व मध्य युग में ही उभरने लगे थे; एकजातीय या भाषाई राष्ट्रीय पहचान के रूप में राष्ट्रवाद के ये तत्व सामने आए थे। इसे राष्ट्रभक्ति या राष्ट्रभक्तिवाद का एक रूप कहा जा सकता है। 19वीं शताब्दी के फ्रांसीसी इतिहासकार और राजनीतिज्ञ ग्यूजो का मानना था कि इंगलैंड और फ्रांस के बीच हुए सौवर्षीय युद्ध (1337-1453) ने, राष्ट्रवाद को हवा दी थी। इंगलैंड के राजा ने फ्रांस की गद्दी पर अपना दावा पेश किया था। इससे कुलीनवर्ग, किसान और मजदूर सबकी एक ही इच्छा थी कि उस विदेशी को हटाया जाय जिसने उस पर आक्रमण किया और उनके देश को लूटा है। हालांकि आधुनिक इतिहासकार इसे युद्ध, बीमारी और अकाल के कारण उत्पन्न संकट की स्थिति मानते हैं परंतु इसने देशभक्ति की भावना तो अवश्य पैदा की। बाद में राजतंत्र मजबूत हुआ और इसने एकीकृत फ्रांसीसी राज्य की स्थापना की। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि फ्रांस एक भौगोलिक यथार्थ है और यहां किसी केंद्रीकृत राजतंत्र द्वारा भौगोलिक एकता कायम करने का कोई महत्व ही नहीं था परंतु इस तर्क में बहुत दम नहीं है। भौगोलिक दृष्टि से गैलो-रोमन की कोई पूर्व नियति नहीं थी और फ्रांस की कोई वास्तविक प्राकृतिक सीमाएं भी नहीं थीं। फ्रांस के राष्ट्रवाद के निर्माण की घटना इतिहास का एक संयोग था और इस क्रम में एक दक्षिणी भूमध्यसागरीय फ्रांस, फ्रांसीसी इंगलिश साम्राज्य या यहां तक कि बुर्गुफ्रन्डियन फ्रांस का भी निर्माण हो सकता था।

13वीं शताब्दी के बाद से सामंती व्यवस्था के खिलाफ बड़े शहरों और ग्रामीण समुदायों के मुक्त किसानों के संघर्ष के कारण स्विस राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ। चार विभिन्न राष्ट्रीयताओं ने मिलकर 1648 में आधुनिक राज्य की स्थापना की। परंतु 1848 में उदारवादियों की विजय और नए संघीय संविधान के निर्माण के बाद ही एक विशिष्ट स्विस राष्ट्रीय चेतना का निर्माण हो सका।

16.4.2 आधुनिक राष्ट्रवाद : 19वीं शताब्दी

19वीं शताब्दी को राष्ट्रवाद की शताब्दी माना जाता है क्योंकि इसी युग में ब्रिटेन और फ्रांस के आधार पर राष्ट्र और राष्ट्र-राज्य का सामान्यीकरण किया गया था और इसे आधुनिक समाजों के लिए सार्वभौम माना गया था। फ्रेडरिक लिस्ट ने **द नेशनल सिस्टम ऑफ पॉलिटिकल इकोनोमी** (लंदन 1885) में लिखा था कि "एक बड़ी जनसंख्या और बृहद क्षेत्र, जिसमें कई प्रकार के राष्ट्रीय संसाधन उपलब्ध हों– एक सामान्य राष्ट्रीयता की अनिवार्य जरूरते हैं ....एक राष्ट्र अपनी जनसंख्या और क्षेत्र में सीमित होता है; खासतौर पर इसकी अपनी एक अलग भाषा होती है, इसके पास अपना एक सशक्त साहित्य होता है और कला तथा साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिए सशक्त संस्थाएं होती हैं। एक छोटा राज्य अपने क्षेत्र के भीतर सम्पूर्ण नहीं बन सकता और उत्पादन की सभी जरूरतें वहां उपलब्ध नहीं होती।" व्यवहार में राष्ट्रवाद के उदारवादी युग में राष्ट्रीयता का सिद्धांत केवल कुछ खास आकार के राष्ट्रीयताओं पर ही लागू हो सकता था क्योंकि उस समय बड़े स्तर के राज्यों को ही बेहतर समझा जाता था। राज्यों के खास आकारों के बारे में इस उदारवादी धारणा को हॉब्सबॉम "राष्ट्रीयता का दहलीज सिद्धांत" कहते हैं जिसे 1830 और 1880 के बीच उदारवादी बुर्जुआ वर्ग का समर्थन प्राप्त था। जॉन स्टुअर्ट मिल, फ्रेडरिक एंगेल्स और मेजनी जैसे लोगों ने भी राष्ट्रीयता के इस दहलीज सिद्धांत को पहले भी स्वीकार किया था। इसी सिद्धांत के आधार पर राष्ट्रवाद के जनक मेजनी ने आइरिश स्वतंत्रता को अपना समर्थन नहीं दिया था। इसी प्रकार मिल और मेजनी के समय में राष्ट्रीय आत्म निर्धारण का सिद्धांत अमेरिकी राष्ट्रपति वुडरो विलसन के युग से काफी अलग था। 1857 में मेजनी ने यूरोप का जो नक्शा बनवाया था उसमें केवल एक दर्जन राज्य और संघ थे। इसके विपरीत द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप ने राष्ट्रीय आत्म निर्धारण के सिद्धांत के आधार पर 26 राष्ट्र-राज्य बनाए थे। प्रथम विश्व युद्ध के बाद की अवधि में केवल पश्चिमी यूरोप में 42 क्षेत्रीय आंदोलनों की पहचान की गई। जनतांत्रिक राजनीति के युग में जन राजनीतिक आंदोलनों के उदय के साथ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के बारे में नजरिया काफी बदल गया। 1880 के बाद राष्ट्रीय प्रश्न पर बहस महत्वपूर्ण हो गई क्योंकि अब विभिन्न राजनीतिक दलों को वोट जुटाना था और छोटे समाजवादियों या छोटे भाषाई समुदायों तथा राष्ट्रीय समूहों के बीच नई विचारधारा को फैलाना था। जन राजनीति और राष्ट्रीय आंदोलनों के अंतिम चरण में राज्य ने सक्रिय भूमिका अदा की। पोलैंड के उद्धारक कर्नल पिल्सुड्स्की का विश्वास था

कि "राष्ट्र राज्य का निर्माण करता है न कि राज्य राष्ट्र का"। राष्ट्र और राज्य के बीच के संबंध को चाहे जिस रूप में देखा जाए, चुनावी जनतंत्र कायम होने के बाद राष्ट्र के उदारवादी सिद्धांत का महत्व समाप्त हो गया।

16.5 राष्ट्रवाद और आधुनिक राज्य द्वारा राष्ट्र-राज्य का निर्माण

19वीं शताब्दी में राष्ट्रवाद की आदर्शतः शुरुआत हुई। फ्रांसीसी क्रांति के विचारों, नेपोलियन की जीत और इन विजयों के परिणामस्वरूप हुए राजनैतिक गठबंधनों के परिणामस्वरूप राष्ट्रवाद का उदय हुआ। यूरोप में राष्ट्रवाद के विकास के लिए अनेक कारक जिम्मेदार थे। जर्मन साम्राज्य में राज्यों की संख्या में कमी करके यूरोप के राजनैतिक नक्शे को आसान बना दिया गया। प्रायद्वीपीय युद्ध के सैनिक अभियानों के दौरान स्पैनिश राष्ट्रवाद की धड़कने तेज हो गईं। फ्रांसीसी सेनाओं की प्रेरणा से इतालवी और जर्मन राष्ट्रवाद का उदय हुआ। राष्ट्र-राज्य के निर्माण में नेपोलियन की भी भूमिका थी। इसके अलावे यूरोप में जन्मे क्रांतिकारी और जनतांत्रिक विचारों ने राष्ट्रवाद के फैलने और विकास में मदद पहुंचाई। इसने बुद्धिजीवी वर्ग और बुर्जुआ वर्ग दोनों को प्रेरित किया जिनके नेतृत्व में इतालवी और जर्मन एकीकरण का आंदोलन चलाया गया। 19वीं शताब्दी के अंत में जन राजनीति का आगमन हुआ जिसने खासतौर पर पूर्वी यूरोप में राष्ट्रवाद को अतिरिक्त गति प्रदान की। यह क्षेत्र पश्चिमी यूरोप के अधिक औद्योगीकृत हिस्सों की अपेक्षा पिछड़ा हुआ था।

16.5.1 निरंकुशता और आधुनिक राज्य

पश्चिमी यूरोप के तानाशाही राज्यों ने सामंतवाद से पूंजीवाद की ओर क्रमशः विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 16वीं और 17वीं शताब्दी में यूरोप के निरंकुश शासकों ने केंद्रीकृत राज्यों और बड़ी संख्या में स्थाई सेना का निर्माण किया। तानाशाही राज्य अपने राज्य की सीमा के भीतर कराधान के लिए अपने अधिकारों का प्रयोग करते थे और वहां एकाधिकार स्थापित करने के लिए शक्ति का प्रयोग करते थे। तानाशाही शासकों के बीच हुए युद्ध के परिणामस्वरूप मजबूत केंद्रीकृत राज्यों का उदय हुआ था, युद्धों की लागत को पूरा करने के लिए राज्य कर लगाया करती थी और इस प्रकार तानाशाही शासकों की व्यापारिक नीतियों का प्रमुख उद्देश्य अन्य राज्यों की अपेक्षा अपनी आर्थिक और राजनैतिक शक्ति को मजबूत करना था। 16वीं और 17वीं शताब्दी के युद्धों ने "राज्य निर्माण प्रक्रिया के सभी आधारभूत तत्वों" को एक साथ जोड़ना शुरू कर दिया। इस युग के आर्थिक और सैन्य प्रतियोगिता में 500 से भी अधिक राजनैतिक इकाइयां और राज्य समाप्त हो गए परंतु 19वीं शताब्दी में राष्ट्रवादी विचारधारा के उदय के बाद ही इटली और जर्मनी का राजनैतिक एकीकरण संभव हो पाया।

टिली के अनुसार " यूरोपीय राज्य निर्माण की प्रक्रिया के कारण राज्य के भीतर सांस्कृतिक विविधता में कमी आई और राज्यों के बीच विभिन्नता बढ़ी। राज्य के भीतर आंतरिक सांस्कृतिक विभिन्नता को कम किए जाने के साथ-साथ राज्य शक्ति को केंद्रीकृत किया गया और संप्रभुता की अवधारणा को आगे बढ़ाया गया जो अपने आप में निरंकुश और अमूर्त था। केंद्रीकरण के अपने प्रयास में राजाओं ने स्थानीय और प्रांतीय सभाओं या कुलीनतंत्र, पुजारियों या बुर्जुआ वर्ग द्वारा संप्रभु अधिकारों का प्रयोग करने की चेष्टा को दबाने का प्रयत्न किया। अन्ततः हौलैंड, इंगलैंड और फ्रांस में 'नीचे से क्रांति' हुई जिसने आधुनिक राज्य के मार्ग की सभी बाधाओं को हटा दिया। क्रांतियों के इस युग में केवल बुर्जुआ क्रांतियां हुईं जिसने अन्ततः आधुनिक पूंजीवादी राज्य की स्थापना की।

16.5.2 आधुनिक राज्य और राज्यों की व्यवस्थाएं

16वीं और 17वीं शताब्दी के बाद अर्थव्यवस्था के विकास तथा 19वीं शताब्दी के दौरान पूंजीवादी विकास और समूचे यूरोप में इसके अ-समान प्रसार के अध्ययन के लिए राज्यों की व्यवस्था का अध्ययन लाभदायक हो सकता है।

ब्रिटेन में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में औद्योगीकरण का विकास हुआ और आगे चलकर 19वीं शताब्दी में

यूरोप में उद्योगों का क्रमशः विकास हुआ। सब जगह औद्योगीकरण एक जैसा नहीं हुआ और जिन देशों में औद्योगीकरण देर से हुआ उन्हें पहले औद्योगीकृत हुए देश के मुकाबले नुकसान में रहना पड़ा। गेरशेनक्रोन ने अपनी पुस्तक *इकोनोमिक बैकवर्डनेस इन हिस्टोरिकल प्रोस्पेक्टिव* में लिखा है कि जर्मनी और रूस जैसे देशों में, जहां ब्रिटेन (यह पहला औद्योगिक देश था) के बाद औद्योगीकरण शुरू हुआ, राज्य की भूमिका अपेक्षाकृत ज्यादा थी। औद्योगीकरण देर से शुरू होने की भरपाई करने के लिए राज्य ने एक अनुकूल माहौल बनाने का प्रयास किया। कर संरक्षण की व्यवस्था लागू कर तीव्र औद्योगीकरण का माहौल तैयार किया गया और उद्योग के तीव्र उत्पादन की प्रक्रिया में सहायता प्रदान की गई।

ब्रिटेन की अपेक्षा जर्मनी में पूंजी का जमाव ज्यादा था और बैंकों तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों के बीच गहरा संबंध था। ब्रिटेन से मुकाबला करने के लिए और जर्मन अर्थव्यवस्था को एक संरक्षित दीवार के भीतर विकसित करने की दृष्टि से जर्मन अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट ने ब्रिटेन द्वारा प्रतिपादित मुक्त व्यापार उदारवादी पूंजीवाद के सिद्धांत को चुनौती दी। व्यापारियों और उद्योगपतियों ने राजनैतिक एकीकरण का समर्थन किया क्योंकि एक वर्ग के रूप में उनका स्वार्थ जर्मन उद्यमियों के लिए एक राष्ट्रीय बाजार के निर्माण से जुड़ा हुआ था। जर्मन बुर्जुआ वर्ग का मानना था कि जर्मन आर्थिक विकास के लिए जर्मन राष्ट्र-राज्य का निर्माण अनिवार्य था। नेपोलियन के नेतृत्व में फ्रांस द्वारा दी गई राजनैतिक चुनौती का जर्मन राष्ट्रवाद पर तो असर पड़ा ही परंतु इंगलैंड द्वारा दी गई आर्थिक चुनौती का भी इस पर कम प्रभाव नहीं पड़ा। इसका प्रभाव सभी जर्मनों पर एक सा पड़ा चाहे उनके आर्थिक और राजनैतिक आदर्श कुछ भी रहे हों। आमतौर पर यह स्वीकार कर लिया गया कि आर्थिक प्रगति के लिए जर्मन राष्ट्र-राज्य का निर्माण अनिवार्य था। जर्मन राष्ट्र-राज्य का निर्माण ऊपर से आरोपित क्रांति द्वारा हुआ। बिस्मार्क और प्रशा की सेना द्वारा लड़े गए 1864-1866 और 1870-71 के युद्धों के बाद ही इसका निर्माण हो सका। इटली में राष्ट्रवाद का विचार दांते के इतालवी साहित्य और मेजनी के युवा इटली के उत्साही आदर्शवाद से संबंधित था। बाद में इसमें बुर्जुआ वर्ग की आर्थिक विचारधारा भी शामिल हुई।

1840 के दशक में पत्रकारों और बुद्धिजीवियों ने आर्थिक एकीकरण के लिए एक कार्यक्रम सामने रखा। यह नई विचारधारा नव इतालवी बुर्जुआ वर्ग के हितों के साथ-साथ जर्मन सीमा शुल्क संघ और जोल्वेरियन की सफलता से भी प्रेरित था। 'इतालवी रेलवे की एकीकरण' और इसे पिडमांट और लोमबार्ड रेलवे व्यवस्था से जोड़ने का आस्ट्रिया ने विरोध किया जिसके कारण आर्थिक राष्ट्रवाद को पनपने का मौका मिला। हालांकि इतालवी उद्योगपतियों की कार्यसूची में रेलवे निर्माण, सीमा शुल्क संघ, एक समान मुद्रा और राष्ट्रीय बाजार का निर्माण जैसे कार्य शामिल नहीं थे। मिलान के उद्योगपति पिडमौंट के उद्योगपतियों को अपना प्रतिद्वंद्वी मानते थे और मिलान के उद्योगपतियों ने वस्तुतः बड़े जर्मन बाजार के निर्माण का समर्थन किया था। उद्योगपति इतने कमजोर थे कि बाजारों के विस्तार से उन्हें बहुत फायदा नहीं होने वाला था और इस बात का भी खतरा था कि प्रतियोगिता बढ़ने से उन्हें नुकसान न उठाना पड़े। यहां तक कि वाणिज्यिक हित भी इटली के एकीकरण के समर्थन में नहीं थे। वस्तुतः बाजार के लिए उत्पादन में लगे भूमिपति और किसानों ने हमेशा एकीकरण का समर्थन किया। बोलोगाना में कैवूर, मिंगेटी और तुसकैनी में रिकासोली जैसे समृद्ध भूमिपतियों और उदारवादियों ने इटली के राष्ट्रीय एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इटली में बुर्जुआ वर्ग के कमजोर होने के कारण आर्थिक एकीकरण में भूमिपतियों और शहरी पेशेवरों की भूमिका प्रमुख रही।

16.5.3 राष्ट्र और राष्ट्र-राज्य

आधुनिक राज्य, राष्ट्र और राष्ट्रवाद सभी इस अर्थ में क्षेत्रीय हैं कि वे खास भौगोलिक क्षेत्रों पर आधारित हैं या उस पर दावा करते हैं। 19वीं शताब्दी में यह विचार प्रतिपादित किया गया कि राज्य और राष्ट्र 'राष्ट्र-राज्य में भौगोलिक दृष्टि से समाहित' होने चाहिए। आधुनिक राज्य को अक्सर 'क्षेत्र आधारित राज्य' कहा जाता है क्योंकि इसमें एक स्पष्ट भौगोलिक क्षेत्र होता है जिसमें उसका अपने सभी नागरिकों पर संप्रभु अधिकार होता है। राष्ट्रवाद विशिष्ट क्षेत्र आधारित विचारधारा है जो आंतरिक रूप से जोड़ती है और बाह्य रूप से विभाजित करती है। एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद राष्ट्र के भीतर सामाजिक वर्ग या हैसियत पर आधारित संघर्ष को हतोत्साहित करता है परंतु इसमें विभिन्न लोगों और राष्ट्रों के बीच मतभेद बढ़ते हैं।

मैक्सवेबर और लेनिन जैसे भिन्न विचारकों ने यह माना है कि राष्ट्र और राष्ट्रवाद को "मुख्य रूप से राज्य के राजनैतिक निर्माण" के रूप में देखा जाना चाहिए। राष्ट्रवाद एक विचारधारा है जो राष्ट्र कहे जाने वाले सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप से परिभाषित क्षेत्र आधारित समुदायों को राजनैतिक निर्माण से जोड़ता है। एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद एक स्वतंत्र राज्य की मांग कर सकता है या पहले से मौजूद राज्य का रूपांतरण कर सकता है या राष्ट्रीय हित में राज्य नीति के लिए राजनैतिक वैधता प्राप्त करने का प्रयास कर सकता है।

यह पाया गया है कि राष्ट्रवाद तीन तरीकों से आधुनिक राज्य का निर्माण करता है। इंगलैंड और फ्रांस जैसे पुराने राज्यों में राष्ट्रवाद के उदय का संबंध राज्य और नागरिक समाज के बीच के जनतांत्रिक संबंधों के विकास से जुड़ा हुआ है। दूसरे, राष्ट्रवाद सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से बिखरे विविध क्षेत्रों को एकरूप राज्य क्षेत्र में जोड़कर एक आंतरिक एकता पैदा करता है। अन्ततः राष्ट्रवाद एक राजनैतिक समुदाय या राष्ट्र को दूसरे राजनैतिक समुदाय या राष्ट्र से जोड़ता है और यहां तक कि कई मामलों में राष्ट्रवाद की भौगोलिक सीमाएं निर्धारित करता है।

राष्ट्रवाद एकीकरण और विभाजन दोनों प्रकार के आंदोलनों को समर्थन दे सकता है। इटली और जर्मनी में राष्ट्रवाद और राज्य ने एक नया राष्ट्र-राज्य निर्मित किया था। स्कैन्डेनेविया में राष्ट्रवाद ने स्वीडेन से नार्वे को अलग कर दिया था। पोलैंड के मामले में एकीकरण और विभाजन दोनों हुआ जिससे पोलिश राष्ट्र-राज्य का निर्माण हुआ। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय आत्मनिर्धारण के सिद्धांत के अनुसार भाषा, एक निर्मित राष्ट्रीय भाषा, जातीयता या आम संस्कृति और परम्परा के आधार पर नए राष्ट्र-राज्यों का निर्माण हुआ। इन राष्ट्र-राज्यों के उदय से पहले ही ग्रीस, चेकोस्लोवाकिया और आयरलैंड का उदय हो चुका था जिन्होंने बहु-राष्ट्रीय साम्राज्यों से स्वतंत्रता हासिल कर ली थी। इन राष्ट्र-राज्यों का निर्माण क्रमशः औटोमन साम्राज्य, आस्ट्रिया-हंगरी और ब्रिटेन से काटकर हुआ था। मध्य और पूर्वी यूरोप में राष्ट्रवाद की बागडोर निम्न मध्य वर्ग और किसानों ने संभाल ली क्योंकि वहां औद्योगीकरण कम हुआ था और बुर्जुआ वर्ग कमजोर था। औद्योगीकरण के विकास के कारण कामगार वर्ग और समाजवाद का उदय हुआ, अन्तर-साम्राज्यवादी टकराव बढ़ा। इस कारण अब राष्ट्रवाद मात्र फ्रांसीसी क्रांति की रिपब्लिकन विचारधारा नहीं रह गई बल्कि इसका संबंध रूढ़िवादी और दक्षिणपंथी विचारधाराओं से भी हो गया।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हां या नहीं में दीजिए।

   क) राष्ट्रवाद अनन्तकाल से मौजूद था।

   ख) राष्ट्रवाद के विचार के प्रसार में फ्रांसीसी क्रांति की कोई भूमिका नहीं थी।

   ग) ब्रिटेन और फ्रांस पहले राष्ट्र-राज्य थे।

   घ) राष्ट्रवाद के विकास में भाषा ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

2) राष्ट्रवाद का विचार कब विकसित हुआ ? 100 शब्दों में सोदाहरण उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

3) राष्ट्र-राज्यों के विकास में राष्ट्रवाद और आधुनिक राज्यों की भूमिका पर विचार कीजिए। 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

16.6 जनतांत्रिक और राष्ट्रवादी लामबंदी के बीच संबंध

इस भाग में हम विभिन्न प्रमुख आंदोलनों और राष्ट्रवाद के उदय पर विचार करने जा रहे हैं।

16.6.1 उदारवादी जनतंत्र और राष्ट्रवाद

स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा तथा मानव अधिकार फ्रांसीसी क्रांति की प्रमुख विचारधाराएं थीं। ये विचारधाराएं भविष्य में होने वाली सभी जनतांत्रिक और जन आंदोलनों का प्रेरणा स्रोत बनीं। 19वीं शताब्दी के दौरान पूरे यूरोप में सुधारवादियों को जैकोबिन विचारों ने प्रेरित किया। वस्तुतः फ्रांसीसी क्रांति के अनुभव से ही बुर्जुआ क्रांति का आदर्श प्राप्त हुआ था। फ्रांस में आर्थिक विकास के लिए बुर्जुआ क्रांति के महत्व पर हाल के कुछ इतिहासकारों ने प्रश्न चिह्न लगाया है। संशोधनवादियों ने यह माना है कि जनतांत्रिक आंदोलनों और सुधारवादी विचारों को इससे काफी बल मिला था। फ्रांस का जनतांत्रिकरण धीरे-धीरे हुआ था और 1830 तथा 1848 की फ्रांसीसी क्रांतियां और 1871 का पेरिस कम्यून फ्रांसीसी राजनीति और समाज की जनतांत्रिक प्रक्रिया के अंग थे; इसके बावजूद 1792-95 के वर्षों में सुधारवाद के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

1792-95 के दौरान फ्रांसीसी राजनीति के सुधारवादी आंदोलन की शुरुआत सैन्स-कुलोत द्वारा हुई। ये लोग युद्ध, खराब फसल, भोजन की कमी, मूल्य वृद्धि और मुद्रा के ढह जाने के कारण बुरी तरह प्रभावित हुए थे। सैन्स-कुलोत लोग शहर में कार्यरत सक्रिय समूह थे जो युद्ध और आर्थिक संकट से बुरी तरह प्रभावित हुए थे। दुकानदार, कारीगर, मजदूर और बेरोजगार लोगों को सैन्स-कुलोत कहा जाता था जिन्होंने न केवल मूल्य नियंत्रण और राशनिंग का समर्थन किया बल्कि वे जनता की प्रभुसत्ता और प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के सिद्धांतों में विश्वास रखते थे। अगस्त 1792 में फ्रांस के आक्रमण और राजा की हत्या के बाद सार्वभौम पुरुष मताधिकार द्वारा एक नई संविधान सभा का चुनाव हुआ। एक बार फ्रांस पर युद्ध के बादल छंटने के बाद 1794 में जैकोबिन समाजों और सैन्य संगठनों के साथ-साथ स्थानीय सरकारी सभाओं पर भी नियंत्रण स्थापित कर लिया गया। सम्पत्ति के समतावादी वितरण, क्रांतिकारी न्याय और जीने के अधिकार जैसे विचारों पर आधारित प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का चरण समाप्त हो गया।

1795-1799 के दौरान उदारवादी जनतांत्रिक राज्य की असफलता के बाद फ्रांस पर नेपोलियन के नेतृत्व में सेना का अधिकार हो गया। जनता के बीच मत विभाजन और राज्य के भीतर जनता की भलाई के संबंध में किसी प्रकार की सर्वसम्मति के अभाव के कारण फ्रांस की सेना को राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करने में सफलता मिली। इसके परिणामस्वरूप नेपोलियन फ्रांस का सम्राट बन गया और उसने 1804 में शाही संविधान की स्थापना की। हालांकि नेपोलियन की तानाशाही ने क्रांति के आदर्शों को छोड़ दिया परंतु यह भी इतना ही सत्य है कि उसकी सैनिक कार्यवाइयों और अभियानों ने यूरोप के राजनैतिक मानचित्र को सरल बना दिया

और विजित लोगों के बीच राष्ट्रवाद और प्रजातंत्र के विचारों को प्रसारित करने में मदद पहुंचाई। वियेना सम्मेलन में न केवल फ्रांस पर प्रतिबंध लगाने की कोशिश की गई बल्कि प्रशा, आस्ट्रिया और रूस जैसी संकीर्णवादी यूरोपीय शक्तियों ने मेटरनिख प्रणाली द्वारा प्रजातांत्रिक और राष्ट्रवादी प्रसार को रोकने का प्रयत्न किया। यूरोपीय सभा में यूरोप में चलने वाले सभी उदारवादी और राष्ट्रवादी आंदोलनों को दबाने का सक्रिय प्रयास किया गया जिसके कारण निरंकुश राजाओं का सिंहासन खतरे में पड़ गया था। 1820 में स्पेन, ग्रीस और इटली में क्रांतियां हुईं। 1830 में फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम और पौलैंड में और भी विकट क्रांतियां हुईं। मध्य वर्ग के सुधारवादी किसान और मजदूरों ने मिलकर क्रांति की और बेल्जियम को आजादी दिलवाई। यूरोप में प्रजातंत्र को दबाने के व्यवस्थित प्रयत्नों के बावजूद उदारवादी विचारों को फैलने से ज्यादा दिन तक रोका न जा सका।

1848 में हुई क्रांतियों ने पूरे यूरोप को अपने चपेट में ले लिया जिससे प्रजातंत्र और राष्ट्रवाद के लिए आंदोलन तेज हो गया। इसके बाद फ्रांस में नेपोलियन III सत्ता में आया, इटली और जर्मनी के एकीकरण में तेजी आई और बहु-राष्ट्रीय आस्ट्रियाई समाज में राष्ट्रवादी विचार को बल मिला। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जनतांत्रीकरण की प्रक्रिया से न केवल क्रांतियों के लिए माहौल तैयार हुआ बल्कि सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की सतत प्रक्रिया के द्वारा उद्योगों का विकास हुआ और बुर्जुआ वर्ग जैसे नए सामाजिक वर्ग पैदा हुए। आधुनिक राज्य और नौकरशाही का भी विकास हुआ जिसके फलस्वरूप सरकारी भाषाओं का विकास हुआ और जन शिक्षा में बढ़ोत्तरी हुई। यूरोप में प्रेस के उदय से जनतांत्रिक और राष्ट्रवादी विचारों के प्रसार में मदद मिली। जैसे-जैसे प्रकाशनों का सिलसिला बढ़ा वैसे-वैसे इसके पढ़ने वाले पाठकों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हुई। जनता राज्य की नीतियों पर नजर रखने लगी। सार्वजनिक संस्थाओं और रोजगार में वद्धि होने से उदारवादी मध्य वर्ग का आकार बढ़ा और विभिन्न वर्गों द्वारा राज्य के खिलाफ राजनैतिक आंदोलन चलाए जाने लगे। 19वीं शताब्दी के दौरान फ्रांसीसी क्रांति से प्रभावित होकर ब्रिटेन में कोई आंदोलन नहीं हुआ। वहां चार्टिस्ट आंदोलन हुआ और 1832 तथा 1867 के सुधारवादी नियमों के द्वारा मताधिकार का क्षेत्र विस्तृत किया गया। ब्रिटेन में हुई औद्योगिक क्रांति ने न केवल निजी पूंजीवादी संग्रहण पर आधारित पूंजीवाद का विकास किया बल्कि ब्रिटिश राज्य के रू-ब-रू नागरिक समाज को एक निर्णायक लाभ की स्थिति प्रदान की। उसके बावजूद ब्रिटिश शासकीय वर्ग और राज्य उभरते बुर्जुआ वर्ग और पुराने कुलीनतंत्र के बीच एक समझौते का प्रतिनिधित्व करते थे। ब्रिटेन के राजनैतिक संभ्रांत वर्ग द्वारा नागरिक साम्राज्य की बदलती प्रकृति के अनुरूप अपने को ढालने की क्षमता या सामाजिक वर्गों के बीच संतुलन को उदारवादी और मार्क्सवादी एक साथ देख रहे थे। कुछ के अनुसार यह एक प्रकार का वर्ग समझौता था जो सफल वाणिज्यिक भूमिपतियों, उभरते उद्योगपतियों और अन्ततः पूंजी और अलक्ष्य वस्तुओं के निर्यात पर आधारित वित्तीय पूंजीपतियों के वर्चस्व को बनाए रखने के लिए अनिवार्य था। केन और हॉपकिन्स ने सामाजिक वर्गों के सफल मोर्चे को व्याख्यायित करने के लिए 'भद्र समूह' की अवधारणा विकसित की जिसने 1688 के बाद 20वीं शताब्दी के मध्य तक ब्रिटेन पर शासन किया। केन और हॉपकिन्स ने ब्रिटेन के आकार और संसाधनों को देखते हुए वहां के आर्थिक विकास को संतोषजनक माना जबकि दूसरों ने यह कहा कि ब्रिटेन विक्टोरिया युग के अन्त में असफल रहा और 19वीं शताब्दी के अंत की दूसरी औद्योगिक क्रांति का सफलतापूर्वक निर्वाह न कर सका। उनका मानना था कि बुर्जुआ क्रांति के अभाव और ब्रिटिश राज्य सत्ता पर औद्योगिक पूंजीपतियों का प्रभाव न होने के कारण ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की प्रगति अवरूद्ध हुई। बीसवीं शताब्दी के अंत में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के संकट का विश्लेषण करते हुए पेरी एन्डरसन ने ब्रिटिश राज्य के पुरानेपन और सामाजिक वर्गों के बीच के संबंधों के इसके प्रबंधन का हवाला दिया। ब्रिटेन की आर्थिक प्रगति पर इस सामाजिक और वर्ग संघर्ष के कौशलपूर्ण ब्रिटिश प्रबंधन का जो भी प्रभाव पड़ा हो, इससे मताधिकार का विस्तार हुआ और इसके फलस्वरूप ब्रिटिश प्रजातंत्र ने आगे की ओर कदम बढ़ाया इसके फलस्वरूप ब्रिटिश समाज में मजदूर वर्ग और साधारण ब्रिटिश नागरिकों को सफलतापूर्वक समाहित किया गया। यहां तक कि ब्रिटिश मजूदर आंदोलन ने भी ब्रिटिश राष्ट्र के आदर्शों, राजतंत्र और ब्रिटिश साम्राज्य को संरक्षित रखने के मूल्य को स्वीकार किया।

16.6.2 राष्ट्रवादी लामबंदी और जनतांत्रीकरण को प्रभावित करने वाले कारक

19वीं शताब्दी के चरण जैसे-जैसे आगे बढ़े वैसे-वैसे यूरोपीय सभा और पवित्र संघ की प्रतिक्रियावादी भूमिका के बावजूद प्रजातंत्र के विचार को लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसी के साथ-साथ ब्रिटेन और फ्रांस में पूंजीवाद का विकास हुआ था। ब्रिटेन और फ्रांस में पूंजीवाद की आई पहली लहर की तुलना जर्मनी और इटली में देर से हुए औद्योगीकरण या दूसरे लहर की अक्सर तुलना की जाती है। इस मुद्दे पर विचार करने के पूर्व आइए, पहले हम आर्थिक विकास, आधुनिकीकरण और जनतांत्रीकरण के सामान्य परिणामों का अवलोकन करें। अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ नए सामाजिक वर्गों का विकास हुआ। इन सामाजिक वर्गों ने, और खासतौर पर मजदूर वर्ग के उदय से, 19वीं शताब्दी के दौरान आधुनिक राज्यों और उदारवादी बुर्जुआ वर्ग के सामने नई समस्याएं पैदा हुईं। ब्रिटेन में 1832 के सुधार अधिनियम के बाद उदारवादी मध्यवर्ग और मजदूर वर्ग के संघर्ष के रास्ते अलग-अलग हो गए। चुनाव पर आधारित प्रजातंत्र में समृद्ध मध्य वर्ग को शामिल किया गया और 19वीं शताब्दी के मध्य तक कई यूरोपीय राज्यों में यह व्यवस्था कायम हो गई। 19वीं शताब्दी के अंत में जर्मनी में सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के उदय ने जर्मन राजनीति और समाज में संकीर्णतावादियों की तुलना में उदारवादी बुर्जुआ वर्ग की स्थिति को प्रभावित किया। बड़े जनाधार वाले समाजवादी दल भी सफलतापूर्वक जर्मन समाज को जनतांत्रिक नहीं बना सके; हालांकि प्रथम विश्व युद्ध के पहले जर्मनी में विद्यमान संकीर्णतावाद को बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया।

राष्ट्रीयता और भाषा

राज्यों के आधुनिकीकरण के साथ-साथ केंद्रीय प्रशासन का विकास हुआ और तर्कसंगत-वैधानिक सिद्धांतों के आधार पर बृहद नौकरशाही की स्थापना की गई। इस प्रक्रिया के साथ-साथ राष्ट्रीय भाषा, प्रशासन की भाषा और स्थानीय संप्रेषण की भाषा का विकास हुआ। किसी भी बोली या भाषा को सरकारी संप्रेषण का माध्यम बनाने के बाद इसके प्रचार-प्रसार के लिए जनता या राज्य का समर्थन प्राप्त किया गया। राज्य भाषा के प्रचार प्रसार के लिए स्कूलों में भाषाएं पढ़ाई जाने लगीं। आधुनिक विश्वविद्यालय, विधि और पत्रकारिता के विकास के कारण पेशेवर मध्य वर्ग और आधुनिक राज्य अधिकारीतंत्र का विकास हुआ। माध्यमिक स्कूल प्रणाली के विस्तार और स्कूलों में सरकारी या राष्ट्रभाषा को पढ़ाए जाने से आस्ट्रिया-हंगरी और पूर्वी यूरोप के बहुजातीय राज्यों में प्रतिद्वंद्वी जातीय भाषाई समूह के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई। इसके पहले भाषा लोगों में दरार नहीं पैदा करती थी क्योंकि साक्षरता स्तर काफी नीचे था, जनता और संभ्रांत वर्ग में नियमित संवाद नहीं होता था और राज्य में किसी भी प्रकार की कोई प्रातिनिधिक सरकार नहीं होती थी। 'विद्यालय और कार्यालय' में पढ़ाई और प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को लेकर सबसे पहले 19वीं शताब्दी में विवाद उठा और भाषाई राष्ट्रवाद का संबंध आधुनिक अधिकारीतंत्र के उदय और निम्न बुर्जुआ वर्ग की नौकरी प्राप्त करने की आकांक्षाओं और सांस्कृतिक प्रभाव से था।

1840 के दशक में राइन सीमा को लेकर जर्मनों और फ्रांसीसियों के बीच तथा स्लेसविग-होल्सटिंन को लेकर डेन्स और जर्मनों के बीच हुए मतभेद से भाषा अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में एक प्रमुख मुद्दा बन गई। 19वीं शताब्दी के अंत में विभिन्न राष्ट्रीयताओं के बीच हुए मनमुटावों में भाषा की प्रमुख भूमिका रही है। आधुनिक राज्य और इसकी प्रशासनिक इकाइयों के कारण आम जनता के बीच भाषाई पहचान का भाव तीव्र हो गया। 1860 के दशक के बाद सांख्यिकीविदों और जनसंख्या संबंधी आंकड़ा इकट्ठा करने वालों ने भाषा संबंधी आंकड़े भी इकट्ठे किए। अंतरराष्ट्रीय सांख्यिकी सम्मेलन या हैब्सबर्ग साम्राज्य के सांख्यिकीविदों द्वारा भाषा संबंधी मुद्दों पर विचार-विमर्श करने का भाषाई राष्ट्रवाद के विकास पर कोई खास असर नहीं पड़ा। भाषा परिवर्तन की अवस्था में थी और जन भाषा का चुनाव कई बातों पर निर्भर करता था जैसे राज्य और स्कूल की भाषा, मातृभाषा, परिवार की भाषा आदि। हाब्सबॉम के अनुसार "भाषा के आंकड़ों का संकलन करने से पहली बार सभी को अपनी राष्ट्रीयता का ही नहीं बल्कि भाषाई राष्ट्रीयता का भी चुनाव करना पड़ा।"

19वीं शताब्दी के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस जैसे पुराने राज्यों में राज्य आधारित देशभक्ति ने राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित किया। जनता के नागरिक में बदलने की प्रक्रिया के कारण कई राज्यों में राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रवाद की भावना को बल मिला। चाहे ब्रिटेन जैसा उदारवादी पूंजीवादी राज्य हो या जर्मनी जैसा बाद में औद्योगीकृत हुआ देश। 19वीं शताब्दी के अंत में सभी देशों में राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय अतिराष्ट्रवाद के विकास में प्राकृतिक-सांस्कृतिक मतभेदों के संबंध में जनता की भावनाओं, राजनैतिक और राष्ट्रीय विशेषताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यूरोप में कामगार वर्गों की देशभक्ति का यह मतलब नहीं था कि वे सभी राष्ट्र-राज्य के प्रति निष्ठावान थे। इसका सबसे अच्छा उदाहरण द्वितीय अन्तरराष्ट्रीय (सेकेन्ड इन्टरनेशनल) के समाजवादी दल और कामगार वर्ग हैं जिन्होंने आंरभ से ही साम्राज्यवादी युद्ध के विचार की आलोचना संबंधी राजनैतिक प्रस्ताव पारित कर रखा था और समाजवादी दलों के संघर्ष के अन्तरराष्ट्रीय चरित्र पर बल दिया था। परंतु जैसे ही प्रथम विश्वयुद्ध की शुरुआत हुई वैसे ही वे अपने राष्ट्रीय हितों और राष्ट्र का समर्थन करने लगे। शासकीय वर्गों और साम्राज्यवादी गुटों का विरोध करने के बावजूंद समाजवादी दल, समाज और मजदूर 1914-18 के बड़े युद्ध में देशभक्ति से ओत-प्रोत होकर शामिल हो गए। लेनिन को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ जब उसने पढ़ा कि यूरोप का सबसे बड़ा समाजवादी दल जर्मन सोशल डेमोक्रेट, जिसका जर्मनी के एक तिहाई मत पर नियंत्रण था, ने युद्ध की घोषणा होते ही इसका पूर्ण रूप से समर्थन कर दिया। बाद के पर्यवेक्षकों का मानना है कि समाजवादी और मार्क्सवादी कामगार वर्गों, समाजवाद के प्रचारकों और साम्राज्यवादी जनतांत्रिक दलों से जुड़े लोगों की देशभक्ति और राष्ट्रवाद की शक्ति के सामर्थ्य को ठीक से पहचान नहीं पाए।

राष्ट्रवाद, साम्राज्य और शाही प्रतिद्वंद्विता

मताधिकार का बढ़ता क्षेत्र और ब्रिटेन जैसे उदारवादी राज्यों के प्रयासों, जर्मनी जैसे आधुनिकीकृत राज्यों या रूस में जार शासन जैसे निरंकुश शासकों द्वारा अपने को बचाने के लिए वैधता और जन समर्थन प्राप्त करने की रणनीतियों के कारण देशभक्ति का उदय हुआ। समुद्रपारीय विस्तार से राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय पहचान को प्रोत्साहन मिला। इसके अलावा ब्रिटेन, फ्रांस और यहां तक कि हौलैंड और स्पेन जैसे देशों के साम्राज्यवादी विस्तार के कारण उन्हें एक भौतिक और मनोवैज्ञानिक सुख प्राप्त हुआ। इससे भी राष्ट्रीय गौरव की भावना बढ़ी। ब्रिटेन में राष्ट्रीय पहचान की भावना का विकास हुआ। इसका कारण केवल अंग्रेजों की 'खासियत' और आजाद अंग्रेजों की महान परम्परा से मिली प्रेरणा ही नहीं था बल्कि इसे विश्वव्यापी साम्राज्य ने भी गौरवान्वित किया। 1851 की औद्योगिक प्रदर्शनी में ब्रिटेन की औद्योगिक उपलब्धियों को गौरवान्वित किया गया और रानी विक्टोरिया के राज्यारोहण और 1877 में भारत में शाही दरबार जैसे भव्य समारोहों का आयोजन कर साम्राज्यवादी शान-शौकत का प्रदर्शन किया गया। 1707 में संघ-निर्माण के बाद 18वीं और 19वीं शताब्दी में स्कॉटिश राष्ट्रवाद का उदय हुआ परंतु आर्थिक विकास के कारण स्कॉटलैंड के भीतर क्षेत्रों और सामाजिक वर्गों के बीच का अंतर गहराता चला गया। स्कॉटिश मजदूर, खेतों में काम करने वाले मजदूर और कर के बोझ से दबे काश्तकार स्कॉटिश भूमिपतियों से संघर्षरत थे और स्कॉटिश राष्ट्रवाद एक कमजोर और प्रभावहीन शक्ति थी। स्कॉटलैंड के लोगों ने साम्राज्य के अधिग्रहण और प्रबंधन में बड़ी भूमिका निभाई थी; ''इन साम्राज्यिक उपलब्धियों से उनके आत्म गौरव और पहचान की भावना कमजोर होने की बजाए मजबूत हुई हालांकि इसका फायदा ज्यादातर लंदन को ही मिला।'' हालांकि जैसा कि विक्टर केरनैन का मानना था कि स्कॉटलैंड के लोगों के विपरीत वेल्श के लोगों ने ''सेना या साम्राज्य के प्रति कोई प्रेम प्रदर्शित नहीं किया''।

राज्य की नीतियों के लिए समर्थन और वैधता प्राप्त करने, साम्राज्यिक शोषण और औपनिवेशिक मुनाफे के लिए स्वतः स्फूर्त और राज्य प्रायोजित समर्थन प्राप्त करने के लिए राज्य द्वारा बनाई गई नीतियों ने राष्ट्रीय गौरव की भावना को प्रोत्साहित किया। 19वीं शताब्दी के अंत में (1898-1902) दक्षिण अफ्रीका में बसे लोगों के खिलाफ लड़े बोआर युद्ध में ब्रिटेन के उद्धत राष्ट्रवाद की प्रक्रियाओं में इस प्रकार की राष्ट्रभक्ति देखने को मिलती है। 19वीं शताब्दी के अंत में जैसे-जैसे यूरोपीय शक्तियों के बीच साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता बढ़ी

वैसे-वैसे घरेलू आर्थिक मुश्किलों या वर्ग संघर्षों से लोगों का ध्यान हटाना आसान हो गया। हालांकि अफ्रीका के विभाजन के लिए यूरोपीय शक्तियों को आपस में लड़ना नहीं पड़ा परंतु समुद्रपारीय बाजारों और कच्चे मालों के निवेश के अवसरों के साथ-साथ क्षेत्रीय विस्तार की महत्वाकांक्षा ने भी देश की अधिकांश जनता को राष्ट्र-राज्य की संकल्पना और पहचान के साथ जोड़ दिया। चाहे ब्रिटेन जैसा देश हो, जिसका साम्राज्य पूरी दुनिया में फैला हुआ था; चाहे जर्मनी जैसा देश हो जिसका समुद्र पारीय प्रभाव कम था; सभी देशों को 19वीं शताब्दी के दौरान सैनिक अभियान और सफल व्यापारिक उपलब्धियों से हमेशा समर्थन जुटाने में मदद मिली।

19वीं शताब्दी का राष्ट्रवाद कुछ हद तक ब्रिटेन और जर्मनी की आर्थिक और सैनिक प्रतिद्वंद्विता से भी जुड़ा हुआ था। इन दो शक्तियों के बीच नौसैनिक प्रतिद्वंद्विता तथा जर्मनी और इटली में दक्षिणपंथी सरकारों की ब्रिटेन और फ्रांस के स्तर तक पहुंचने की महत्वाकांक्षा (जिनका पहले ही औद्योगीकरण हो चुका था और जिनके पास बड़े उपनिवेश थे) के कारण भी राष्ट्रवाद की भावना को बल मिला। जर्मनी जैसे देर से औद्योगीकृत हुए देशों की संकीर्ण शासन व्यवस्थाओं ने अपने लिए समर्थन जुटाने के लिए आक्रामक राष्ट्रवाद का उपयोग किया और इससे पूरे यूरोप में राष्ट्रीय भावना का प्रसार हुआ। जर्मन सम्राट विलियम II ने 1905 में मोरक्को के टैन्जियर्स में जो भाषण दिया उससे पूरे फ्रांस में भय की लहर दौड़ गई। इस भय को बढ़ाने में फ्रांसीसी समाचार पत्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। फ्रांस अपने प्रति जर्मनी की शत्रुता से आशंकित था और 1870 में सेडान में हुए फ्रांस-जर्मन युद्ध में फ्रांस की हार की यादें अभी ताजा थीं। इस पृष्ठभूमि में फ्रांस के लोगों में राष्ट्रीय एकता का जन्म हुआ जिसके कारण इस संकट की घड़ी में घरेलू टकरावों को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया। हालांकि फ्रांस में परस्पर विरोधी कई गुट थे और प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत के समय भी वैचारिक और राजनैतिक मतभेद मौजूद थे परंतु पूरा फ्रांस राष्ट्र जर्मनी के खिलाफ युद्ध में एक साथ खड़ा था। राष्ट्रवादियों को फ्रांसीसी महानता को हासिल करने का एक अवसर प्राप्त हो गया। इसी के साथ-साथ कैथोलिकों को अपनी देशभक्ति साबित करने तथा समाजवादियों को फ्रांसीसी क्रांति के सिद्धांतों की रक्षा करने का अवसर प्राप्त हुआ। 1890 से लेकर 1914 तक के समय को आमतौर पर 'सशस्त्र शांति' का युग कहा जाता है। यह शांति प्रतिद्वंद्वी सैनिक और कूटनीतिक संधियों के जरिए कायम की गई थी। उपनिवेश प्राप्त करने और मुनाफा कमाने तथा औद्योगिक सैनिक सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए विभिन्न देशों के बीच इस प्रकार की संधियां हुईं। स्कूल की किताबों और राष्ट्रवादी समाचार पत्रों में प्रमुख राष्ट्रीय घटनाओं की बार-बार याद दिलाई गई, कूटनीतिक सैनिक प्रतिद्वंद्विता के प्रति प्रेस और जनता दोनों की प्रतिक्रियाएं सामने आई जिसके कारण 19वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में राष्ट्र-राज्य के निर्माण को स्वतः स्फूर्त और राज्य प्रायोजित समर्थन प्राप्त हुआ।

16.6.3 19वीं शताब्दी के अंत में राष्ट्रवाद का जातीय-भाषाई आधार

19वीं शताब्दी के अंत तक आधुनिकीकरण और एकरूपरीकरण की प्रक्रिया के कारण पुराने राज्यों और उन बड़े राज्यों में, जहां उस समय तक एकीकरण हो चुका था, राष्ट्रवाद की भावना का उदय हुआ। एकल राष्ट्रवाद के विचार के कारण अक्सर जातीयता या भाषा के आधार पर विभिन्न समूहों द्वारा राष्ट्रवाद के समानांतर एक प्रतिराष्ट्रवाद की शुरुआत कर दी जाती थी। इसका कारण यह था कि वे राष्ट्रवादी एकरूपीकरण की प्रक्रिया के कारण अपने को शोषित और अलग-थलग महसूस करते थे। 1880-1914 के बीच राष्ट्रवाद 'दहलीज सिद्धांत' से बंधा नहीं था जिसने पहले राष्ट्र-राज्यों की मांग को सीमित कर दिया था। जनता के बीच से कोई भी यदि राष्ट्र होने का दावा करे तो वह राष्ट्रीय आत्म निर्धारण के अधिकार का दावा कर सकता था। इन 'गैर-राज्य' राष्ट्रों में राष्ट्रवाद को परिभाषित करने का एक मात्र निर्णायक आधार जातीय और भाषाई होता था। हॉब्सबॉम के अनुसार राष्ट्रों को परिभाषित करने में जातीय भाषाई आधार ने जो भूमिका निभाई उसका समुचित उल्लेख राष्ट्रवाद की पुस्तकों में नहीं हुआ है। हालांकि 1780 के दशक से लेकर 1840 के दशक में यूरोप में भाषाई और सांस्कृतिक पुनरूत्थान आंदोलनों का विकास हुआ परंतु आंदोलनकारियों ने ही राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे चरण में एक राष्ट्रीय विचार का निर्माण किया। रॉक के अनुसार तीसरे चरण में आकर ही 19वीं शताब्दी के अंत में यूरोपीय राष्ट्रवादी आंदोलनों में जन समर्थित राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

इस अवधि में तीव्र परिवर्तन, आर्थिक संकट और लोगों के बड़े पैमाने पर देशांतरण के कारण वास्तविक और कल्पित समुदाय राष्ट्रत्व और राष्ट्रीय आत्म निर्धारण के दावे करने लगे। आधुनिकीकरण की तीव्रता के कारण परम्परागत समूह खतरा महसूस करने लगा। पत्रकार, स्कूल शिक्षक और छोटे अधिकारी जैसे शिक्षित मध्यवर्ग जिनकी आय मामूली थी, ने भाषाई राष्ट्रवाद का मार्ग प्रशस्त किया। देशांतरण के कारण विभिन्न समूहों के बीच टकराव और झगड़े हुए क्योंकि ये विभिन्न समूह एक साथ रहने के आदी नहीं थे। राष्ट्रवादी बुर्जुआ वर्ग ने नए जातीय भाषाई राष्ट्रवाद के साथ-साथ पुराने राष्ट्र-राज्यों में अंधराष्ट्रवाद और दक्षिणपंथी आंदोलनों के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। परम्परागत विचारों से अलग हॉब्सबॉम का मानना है कि समाजवाद, राष्ट्रवाद और धर्म को जनता से प्राप्त समर्थन को व्यवहारतः अलग करना बड़ा मुश्किल है क्योंकि "राष्ट्रवाद के साथ-साथ उनकी निष्ठाएं और जुड़ाव कई स्तरों पर होता है" इन जन आंदोलनों के द्वारा कुछ ऐसी आकांक्षाएं व्यक्त की जा सकती थीं जिन्हें परम्परागत रूप से असंगत माना जाता था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जन आधारित राष्ट्रीय आंदोलनों में वर्ग आधारित अपील की जा रही थी। हालांकि हॉब्सबाम ने युद्ध के बाद के यूरोप में राष्ट्रवाद के मूल्यांकन के लिए 1917 के परिदृश्य को क्रांतिकारी या मुख्यतः वर्ग आधारित आंदोलनों के द्वारा सामाजिक रूपातंरण को जरूरत से ज्यादा महत्व दिया है। विलसन के राष्ट्रीय आत्म निर्धारण के सिद्धांत के समर्थन के आधार पर पूर्वी यूरोप की शोषित राष्ट्रीयताएं स्वतंत्र राज्य नहीं बना सकीं। परंतु इस बात पर भी जरूरत से ज्यादा बल नहीं दिया जा सकता कि काफी लोगों ने सामाजिक क्रांति और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के सपने देखे थे। युद्धरत राज्यों के पतन के बाद छोटी-मोटी अल्पजीवी और अलग-थलग क्रांतियां हुईं और इससे फासीवादी और दक्षिणपंथी आंदोलनों की शुरुआत हुई। फिर भी क्रांतिकारी आंदोलनों और सामाजिक रूपांतरण की इच्छा के संबंध के बारे में विस्तृत विश्लेषण की आवश्यकता है।

16.6.4 राष्ट्रवादी आंदोलन और जनतंत्र

एक विचार के रूप में राष्ट्र और राष्ट्रवाद का संबंध जनता की सम्प्रभुता और जनतांत्रिक विचारों से जोड़ा जाता है। 19वीं शताब्दी की राजनीति को जनतांत्रिक विचारों से जोड़ने में रूसो की आम जनता की इच्छा, मनुष्यों के अधिकारों, सार्वभौम वयस्क पुरुष मताधिकार के आधार पर सरकारों के चुनाव के अधिकार से जुड़ी अवधारणा का विशेष महत्व है। हालांकि 19वीं शताब्दी में राष्ट्रीय आंदोलनों पर फ्रांसीसी आंदोलन का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा परंतु 19वीं शताब्दी के अंत में राष्ट्रवादी राजनीति में अनुदार या दक्षिणपंथी शासन व्यवस्थाओं का उदय हुआ। नियमित चुनाव पर आधारित जनता की बढ़ती भागीदारी के बावजूद राष्ट्रवादी राजनीति में दक्षिणपंथी झुकाव बढ़ा। जनता, खासकर मजदूर वर्ग तथा वामपंथी या समाजवादी दलों की बढ़ती भागीदारी के भय से ही दक्षिणपंथी राष्ट्रवाद का उदय हुआ। उदारवादी बुद्धिजीवियों और मध्य वर्ग ने, जिन्होंने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गणतंत्रीय या उदारवादी राष्ट्रवाद का समर्थन किया था, 1848 की क्रांतियों की विफलता के बाद संकीर्णवादी भूमिपतियों और राजतंत्रीय राज्यों से समझौता कर लिया। सबसे पहले उदारवादियों ने ही राष्ट्रीय एकता और बाद में मजदूर वर्गों और समाजवादी दलों की राजनीति कर समझौता किया। हालांकि सामाजिक साम्राज्यवाद और सामाजिक डार्विनवाद को अपना समर्थन न देने के बावजूद मजदूर वर्ग और यहां तक कि समाजवादी समर्थक भी इन प्रभावों से बच नहीं सके।

जनतांत्रिक और लोकप्रिय आंदोलनों और राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय आंदोलनों का संबंध हमेशा से जटिल रहा है। लिंडा कौले ने बताया है कि 18वीं शताब्दी के अंत में ब्रिटेन में आम आदमी क्रांतिकारी और नेपोलियन युग के फ्रांस के खिलाफ संघर्ष करने के लिए राष्ट्रीय संसाधनों और मानव शक्तियों के राष्ट्रीय लामबंदी के पक्ष में था परंतु शासक वर्ग और ब्रिटिश राज्य जनता की इस शक्ति का उपयोग करने में हिचक रहा था क्योंकि इससे उनका वर्चस्व खतरे में पड़ सकता था। दूसरी ओर वेंडी और ब्रिटेनी में फ्रांसीसी क्रांति का विरोध किया गया जो पेरिस से दिए गए आदेशों और सेना के अनिवार्य भर्ती के आदेशों का स्पष्ट उल्लंघन था। इसने न केवल स्थानीय कुलीनतंत्र और पुजारियों को प्रोत्साहित किया बल्कि फ्रांस के गांवों में भी इसे काफी समर्थन मिला। फ्रांसीसी क्रांति के विचारों को सार्वभौम सम्मान नहीं प्राप्त था और क्रांतिकारी फ्रांस की सेना और खासतौर पर नेपोलियन की सेनाओं को पलायन का सामना करना पड़ा। हालांकि मेजिनी ने जनतांत्रिक आदर्शों को आगे बढ़ाया और राष्ट्रीय मुक्ति के लिए जनता के युद्ध का आह्वान किया परंतु वह इटली की

उदारवादी जनता को प्रेरित करने में असफल रहा और उसका प्रभाव शहरों तक ही सीमित रहा। हालांकि मेजिनी ने जनयुद्ध की अपनी अवधारणा 1808-13 के स्पेन युद्ध से ग्रहण की थी परंतु वह यह देखना भूल गया कि स्पैनिश राष्ट्रवाद के लिए जनता का दिल जीतने में पुजारियों ने प्रमुख भूमिका निभाई थी। कार्लो पिसाकाने एक नेपोलियन समर्थक था जिसने रोमन रिपब्लिक को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी और जिसका यह मानना था कि इतालवी नेतृत्व जनता को अपने साथ लेकर नहीं चल सका और गैरीबाल्डी एक क्रांतिकारी सेना का निर्माण करने में असफल रहा। 1857 में साप्रि में स्थानीय किसानों ने उसे और छोटी क्रांतिकारी सेना को समूल नष्ट कर दिया। इटली में राजनैतिक एकीकरण के लिए राष्ट्रीय आंदोलन और जनता की भागीदारी का संबंध इतना कमजोर था कि मैसिमो डी एजेग्लियो को यह कहना पड़ा कि 'हमने इटली बना दी है अब हमें इतालवियों का निर्माण करना है'।

16.7 राष्ट्रवाद और सामाजिक वर्गः जर्मनी और ब्रिटेन

1848 की क्रांतियों ने यूरोप में उदारवादी बुर्जुआ वर्ग की कमजोरियों को उजागर कर दिया। इसने जर्मनी के उदारवादियों को प्रशा राज्य के साथ समझौता करने के लिए मजबूर किया और इटली में पिडमौंट-सार्डिनिया का आधिपत्य कायम हुआ। यूरोप में 1848 की क्रांतियों के बाद हैब्सबर्ग साम्राज्य और पूर्वी यूरोप के भीतर राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास हुआ, पूरे यूरोप में मजदूर वर्ग और समाजवादी विचारधारा का उदय हुआ। इसके अलावा उदारवादी जनतांत्रिक आंदोलन के मतभेदों के कारण मध्यवर्ग मजदूरों, किसानों और शहरी गरीबों से अलग हो गया। यूरोप में 1848 की क्रांतियों के दौरान निर्धनों और मध्य वर्ग की विशेषताएं और उद्देश्य स्पष्टतः अलग-अलग थे। मध्य वर्ग तीव्र परिवर्तन को स्वीकार करने के बजाए संकीर्णवादी प्रशा या फ्रांस के सम्राट नेपोलियन III का समर्थन करना ज्यादा उचित मानते थे।

जर्मनी में, उदारवादी राष्ट्रवाद के सामंत विरोधी स्वरूप ने कुल्टुरकैम्फ के दौरान पुरोहित विरोधी और समाजवाद विरोधी रुख अपना लिया। ज्ञानोदय तर्कसंगतता के समर्थन करने की दृष्टि से पुरोहित विरोध अंशतः प्रगतिशील था परंतु "बिना पितृभूमि वाले रोमनों के काले झुंड" की आलोचना करते समय उनका प्रतिगामी रुख सामने आता था। 1870-1878 के वर्षों के दौरान बुर्जुआ राष्ट्रवाद में मौजूद पुरोहित विरोधी तत्वों ने सामाजिक जनतांत्रिक दल और 1878 के बाद के आंदोलन का आधार तैयार किया। 1870 के दशक के अंत में पनपने वाला नया दक्षिणपंथी राष्ट्रवाद वामपंथी उदारवादियों और सोशल डेमोक्रेट्स के खिलाफ था। दक्षिणपंथी राष्ट्रवाद के इस नए दौर में आर्थिक बोझ से दबे प्रशा के भूमिपति और छोटे उत्पादक सक्रिय रूप से उद्योगपतियों को सहयोग देने लगे और संरक्षणवादी आर्थिक नीतियों के सर्मथक हो गए। 1870 के दशक के आर्थिक संकट में धीमी प्रगति हुई और अन्तरराष्ट्रीय मूल्य में मंदी आई, सामाजिक तनाव तेजी से बढ़ा और पूंजीवाद तथा वर्ग संघर्ष के बारे में मार्क्सवादी सिद्धांत को समर्थन मिला। नए और पुराने मध्य वर्ग (नए मध्य वर्ग में नौकरी पेशा लोग तथा अधिकारी शामिल थे) अपना आर्थिक और सामाजिक मत सुरक्षित रखना चाहते थे और मार्क्सवादी अन्तरराष्ट्रीयतावाद से अपने को दूर रखना चाहते थे। विंक्लर के अनुसार " 1870 के दशक के अंत में राष्ट्रवादी होने का मतलब सामंत विरोधी होना नहीं था बल्कि अन्तरराष्ट्रीय विरोधी होना और शामी विरोधी होना था"। जर्मनी में उदारवाद बहुत मजबूत नहीं था, और हालांकि 19वीं शताब्दी में जर्मनी में अपेक्षाकृत शांत बुर्जुआ क्रांति हुई थी, फिर भी ब्रिटेन और फ्रांस के मुकाबले राजनैतिक प्रजातंत्र की परम्पराएं कमजोर थीं। 19वीं शताब्दी में जर्मनी के जनतांत्रिक आंदोलन की कमजोरियों के कारण निश्चित रूप से दक्षिणपंथी राष्ट्रवाद का विकास हुआ और समाजवादी प्रजातंत्र की गति धीमी हुई। उदारवादी समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने सम्मानजनक जर्मन विश्व नीति अपनाना एक मात्र महत्वपूर्ण तरीका माना जिसके द्वारा जुनकरों और निरंकुश राज्य की शक्ति कम की जा सकती थी।

समुद्रपारीय सफल विस्तारवादी नीति का समर्थन दक्षिणपंथियों ने किया जिसका आर्थिक फायदा न केवल व्यापारियों और मध्यवर्गीय औपनिवेशिक अधिकारियों को होना था बल्कि औद्योगिक मजदूरों, (निर्यात उद्योगों में काम करने वाले) को भी फायदा होना था। ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी जैसे देशों में मजदूर समृद्ध हुए हों या न हुए हों, पारसमुद्रीय व्यापार और निवेश में भारी मात्रा में वृद्धि हुई हो या न हुई हो परंतु इतना सत्य

है कि आर्थिक समृद्धि और सस्ते औपनिवेशिक तथा समुद्र पारीय उत्पादन के कारण इन साम्राज्यवादी देशों के औद्योगिक मजदूरों और आम जनता के जीवन में सुधार अवश्य आया। हालांकि डेविस और हटेन बैंक जैसे आधुनिक विशेषज्ञ यह मानते हैं कि समुद्र पारीय और खासतौर पर औपनिवेशिक निवेश से होने वाली प्राप्ति बहुत ऊंची नहीं थी (खासतौर पर ब्रिटिश विदेशी निवेश के मामले में), समुद्र पार से सस्ते भोजन और कच्चे माल की प्राप्ति से कोई खास फायदा नहीं होता था। समुद्रपारीय विस्तार और निवेश के लिए जनता का समर्थन प्राप्त करने का संबंध अंधराष्ट्रवाद और विचारधारा से नहीं था बल्कि आर्थिक लाभ से भी था। हालांकि पैट्रिक ओ ब्रिएन जैसे हाल के लेखक फिर से कैबेडेनाइट मुक्त व्यापार सिद्धांत का समर्थन करने लगे हैं जिसमें उन्होंने ब्रिटेन के लिए साम्राज्य की आर्थिक अप्रासंगिकता का तर्क दिया है परंतु अभी भी साम्राज्यवादी विस्तार की प्रेरणाओं का सामाजिक वर्गीय विश्लेषण साम्राज्य के विस्तार और आर्थिक विकास का मूल्यांकन करने में काफी उपयोगी है। ब्रिटेन और जर्मनी जैसे औद्योगिक देशों में मजदूरों और शहरी उपभोक्ताओं के जीवन स्तर में सुधार होने से मजदूर आंदोलनों में भी तेजी आई। ब्रिटेन में हुए सुधारवादी मजदूर आंदोलन और बिस्मार्क की जर्मनी में दमन और सामंजस्य की नीति ने प्रजाति साम्राज्य और दक्षिणपंथी राष्ट्रवाद के खिलाफ मजदूर और वामपंथी प्रतिरोध की चुनौती को कमजोर बना दिया। ब्रिटेन में 1867-1884 में मताधिकार का दायरा विस्तृत किया गया और अधिकांश वयस्क पुरुषों को सुधारवादी संसदीय प्रजातंत्र में शामिल कर लिया गया। मजदूर संघ 1878-1890 के बीच मजदूर संगठनों और समाजवादी राजनैतिक दलों के खिलाफ जर्मनी में बनाए गए दमन कानूनों के साथ-साथ प्रगतिशील कल्याणकारी विधान बनाए गए, 1881 में होहेनजोलेरन सम्राट का 'सामाजिक संदेश' और मजदूरों के लिए सामाजिक बीमा की व्यवस्था की गई। हालांकि दमनकारी और दक्षिणपंथी शासन व्यवस्था के अंतर्गत एस.पी.डी का विकास हुआ परंतु इसकी कमजोरियां केवल इन प्रतिबंधित परिस्थितियों के कारण ही नहीं थी। एस.पी.डी के आलोचकों का कहना है कि हालांकि इस दल की मत संख्या में वृद्धि हुई - (1884 में 5,50,000 से बढ़कर 1898 में 20 लाख और 1913 में लगभग 40 लाख हो गया)। परंतु इस दल की कमजोरी इसकी सामाजिक सीमाओं और सैद्धांतिक विश्वासों में निहित थी। यह दल संसदीय प्रजातंत्र में बंध कर रह गया। इसके नेता और कुछ कार्यकर्ता मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय आय अर्जित करने लगे। संशोधनवाद और आर्थिकवाद से दल के मूल्यों और विचारों को धक्का पहुंचा। इसलिए 1914 के कैसर के युद्ध में एस.पी.डी और इसके समर्थकों की उत्साहपूर्ण भागीदारी स्वाभाविक थी। इसके अलावा एसी.पी.डी की असफलताओं के विश्लेषण से उस एक वैचारिक और राजनैतिक कारक का पता चलता है जिसके कारण जर्मन राजनीति और समाज में उभरी तमाम शक्तिशाली विरोधी ताकतों के बावजूद जर्मन दक्षिणपंथी राष्ट्रवाद को राजनैतिक आधिपत्य स्थापित करने में सफलता मिली। जर्मन दक्षिणपंथियों ने, उदारवादी मध्यवर्ग, मजदूरों और समाजवाद के विकास को रोकने के लिए भूमिपतियों, उद्योगपतियों और मध्यवर्ग के साथ समझौता किया परंतु इसे जर्मनी के निरंकुश आधुनिकीकरण और राजनैतिक एकीकरण का अपरिहार्य परिणाम नहीं माना जा सकता।

16.8 इतालवी राष्ट्रवाद और जनसंगठन

19वीं शताब्दी के दौरान कई कारणों से जनता और किसानों की भागीदारी सीमित थी। राज्यों के शासक संकीर्णतावादी थे और भूमिपति किसानों को राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए रियायत देने को तैयार नहीं थे। बुद्धिजीवी और क्रांतिकारी गांव और शहर के बीच की खाई को पाटने में असफल रहे थे। एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि वहां का संभ्रांत वर्ग किसी भी प्रकार के आमूल परिवर्तन से आशंकित था और समाज पर उनका वर्चस्व था।

कोप्पा ने लिखा है कि 1848 का युद्ध इतालियों के समान एक "वैचारिक युद्ध" था। आस्ट्रिया के खिलाफ इस युद्ध में गैरीबाल्डी के स्वयं सेवकों और मिलान के क्रांतिकारियों ने पिडमौंट, पोप के राज्य, टस्कनी और नेपल्स के सैनिकों के साथ मिलकर युद्ध किया था। क्रांति के भय से और जनमत की शक्ति से मजबूर होकर शासकों ने इसमें भाग लिया था। वेनिस और रोम में लोकतंत्र की असफलता मेजिनी के जनयुद्ध के आदर्श की असफलता का एक और प्रमाण है। 1859-61 में कैवूर का उद्देश्य "राष्ट्रवाद की अपेक्षा देशभक्ति" से

प्रेरित था क्योंकि वह इटली के एकीकरण के प्रति वैचारिक वचनबद्धता की अपेक्षा पिडमौंट को मजबूत बनाने के प्रति ज्यादा निष्ठावान था। गैरीबाल्डी के सफल 'दक्षिणी पहल' से सिसली में क्रांति हो गई और नेपल्स में प्राप्त विजय के बाद उसने कैवूर द्वारा प्रदत्त इतालवी एकीकरण की प्रक्रिया में सहायक की भूमिका स्वीकार कर ली। आंदोलन प्रारंभ करने से पहले ही गैरीबाल्डी ने राजतंत्र के साथ काम करने का मन बना लिया था। इस प्रकार अब इटली को ताकत और जनमत से एकीकृत करना संभव था। जनमत संग्रह में भी यह बात सामने आई थी। दोनों नए इतालवी राज्यों, नेपल्स और सिसली, में केंद्रीकृत सरकारों की स्थापना हुई और जनमत की अवहेलना की गई। 1861 और 1865 के बीच नीपोलिटन प्रांतों में विद्रोहियों के साथ हुए युद्ध से यह पता चलता है कि इटली के दक्षिणी क्षेत्र में इटली के केंद्रीकृत राष्ट्र-राज्य से अलगाव का भाव पनप रहा था। इटली के एकीकरण में जनता की पर्याप्त भागीदारी नहीं हुई। इसके कई प्रमाण उपलब्ध हैं। जिस समय इटली का एकीकरण हुआ उस समय मात्र 2.5 % लोग इतालवी भाषा बोलते थे। एकीकरण के तुरंत बाद दक्षिण क्षेत्र में हो रहे उपद्रव को दबाने के लिए वहां 100,000 सैनिकों को तैनात करना पड़ा। एकीकरण के बाद कैवूर को केंद्रीय इटली में अपने प्रतिनिधियों को जनमत संग्रह करने का आदेश देना पड़ा ताकि यह दिखाया जा सके कि पिडमौंट के साथ मिलने की उनकी सभाओं (निर्णय) को जनता का समर्थन प्राप्त था। फ्रांस के नेपोलियन III और पिडमौंट के कैवूर ने मिलकर षड्यंत्र किया कि जनमत संग्रह रोमाग्ना और डचीज में पिडमौंट के पक्ष में जाएं और नाइस तथा सैवाय में फ्रांस के पक्ष में जाएं।

इटली के एकीकरण के बाद उत्तरी औद्योगिक क्षेत्र, कम विकसित मध्य क्षेत्र और पिछड़े दक्षिण क्षेत्र के बीच का विभाजन तीखा हो गया। दक्षिण इटली अलग-थलग और लगभग औपनिवेशिक क्षेत्र बना रहा। इटली एकीकरण वस्तुतः सैन्य सफलता और अन्तरराष्ट्रीय कूटनीति का परिणाम था। यह किसी जन संघर्ष या जनता के युद्ध का प्रतिफलन नहीं था। इसमें जनता को बस उतनी ही मात्रा और संख्या में शामिल किया गया जितना आजादी और एकीकरण के लिए अनिवार्य था। इटली राज्य के निर्माण के बावजूद राष्ट्र की राजनीति में प्रमुख राजनीतिक दलों का सामाजिक आधार काफी सीमित और इतालवी जनता से संपर्क काफी क्षीण था। फ्रांस और जर्मनी की अपेक्षा इटली में मताधिकार का प्रसार, जन शिक्षा का विस्तार, उद्योगों और शहरों का विकास धीमी गति से हुआ। इसलिए इटली की राजनीति को 'ट्रांसफारमिस्मो' कहा जाता था जिसमें लगातार होने वाले राजनैतिक बदलावों और संयोजन के बावजूद परिवर्तन की प्रक्रिया काफी धीमी थी। ग्राम्सी के शब्दों में, इटली के एकीकरण की प्रक्रिया निश्चेष्ट क्रांति के रूप में सामने आई जिसमें इटली के संभ्रांत वर्ग ने इटली की जनता का समर्थन उसी हद तक प्राप्त किया जितना राष्ट्रीय एकीकरण और आस्ट्रिया से आजादी प्राप्त करने के लिए जरूरी था। इटली में जनता की जनतांत्रिक लामबंदी धीमी होने और सुसंघटित बुद्धिजीवी वर्ग की अनुपस्थिति के कारण वहां अधिक अति सुधारवादी आंदोलनों के विकास में बाधा पड़ी। उद्योगों, मजदूर संगठनों और समाजवाद के विकास के कारण इटली के संकीर्णतावादी राजनीतिज्ञ, भूमिपति और निम्न मध्य वर्ग खतरा महसूस करने लगे। वस्तुतः इटली का आर्थिक विकास और नागरिक समाज तथा जनतांत्रिक मूल्यों की प्रगति की गति इतनी धीमी और अपर्याप्त थी कि प्रथम विश्व युद्ध के संकट ने फासीवाद के पनपने और मुसोलिनी की जीत के लिए माहौल निर्मित कर दिया। इटली के युद्ध में कम महत्वपूर्ण भूमिका निभाने और बाद में शामिल होने के बावजूद युद्ध के बाद उभरे संकट ने फासीवाद विजय की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। एकीकरण के बाद भी इटली में प्रजातंत्र की दिशा में बहुत धीमी प्रगति हुई और इतालवी राष्ट्रवाद दक्षिण क्षेत्र के इटलीवासियों का दिल जीतने में असफल रहा।

16.9 राष्ट्रीय अस्मिता के विकास के चरण : पूर्वी यूरोप

मिरोस्लाव ह्रोख ने पूर्वी यूरोप के छोटे राज्यों में राष्ट्रवाद का अध्ययन करने के बाद राष्ट्रीय आंदोलनों के विकास के तीन चरणों की अवधारणा सामने रखी। पहले चरण (क) या काल में संस्कृति, साहित्य और लोक साहित्य पर बल होता था; दूसरे चरण (ख) में राष्ट्रीय विचारों का प्रचार किया जाता था। अंतिम चरण में राष्ट्रीय आंदोलनों में बड़े पैमाने पर जनता शामिल होती थी। इस समीकरण में कई समस्याएं हो सकती हैं परंतु पूर्वी यूरोप में राष्ट्रवाद के अध्ययन की शुरुआत यहां से की जा सकती है। पहले और दूसरे चरण को एक साथ रखने से अध्ययन करने में सुविधा होगी।

16.9.1 सांस्कृतिक राष्ट्रवादः चरण क और ख

18वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में कृषकों की सादगी और निश्छलता के संबंध में एक स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण के विकास और लोक साहित्य के गंभीर अध्ययन ने 19वीं शताब्दी के अंत में पूर्वी यूरोप में कई लोगों को राष्ट्रीय आंदोलन का आधार प्रदान किया। 1780 और 1840 के बीच यूरोप में सांस्कृतिक और भाषाई पुनरुद्धार आंदोलन हुए। इस प्रकार के आंदोलन की शुरुआत कुछ विद्वानों और शासकीय संभ्रांत वर्ग ने की जो भुला दिए गए लोगों या किसानों की राष्ट्रीय परम्परा को संरक्षित और विकसित करना चाहते थे। कुछ विदेशी विद्वानों और संभ्रातों ने भी इस दिशा में मदद की। हालांकि यह माना जाता है कि इस आरंभिक चरण में भाषा आधारित सांस्कृतिक पुनरूद्धार का लक्ष्य पुरानी बोली और संस्कृति को बचाने की अपेक्षा एक 'राष्ट्रीय' भाषा बनाने का सायास प्रयत्न थी। सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों ने कई बोलियों में से एक बोली को चुनकर उसे राष्ट्रीय भाषा बना लिया; व्याकरण के मानकीकरण और शब्दावली निर्माण पर अपेक्षाकृत कम जोर दिया गया। बुल्गेरिया का साहित्य पश्चिमी बुल्गेरिया बोली पर; यूक्रेन का साहित्य दक्षिण-पूर्वी बोली पर; लिथुआनिया का साहित्य यहीं की दो में से एक बोली पर और लैटविया का साहित्य तीन बोली में से एक बोली पर आधारित था। हंगरी में 16वीं शताब्दी से ही साहित्य रचा जा रहा था। अन्य पूर्वी यूरोपीय भाषाओं का साहित्य विकास या निर्माण 18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दियों में हुआ।

हालांकि क्रोश तीन बोलियां बोलते थे परंतु इल्लिरियानिज्म के क्रोश प्रस्ताव जुडेविक गज (1809-72) ने 1838 में स्लोकेवियाइ भाषा अपना ली क्योंकि यह सर्बों की प्रमुख बोली थी। दक्षिणी सर्बों को एकीकृत करने का सायास प्रयत्न किया गया। हालांकि सर्बो-क्रोश एक साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हुई परंतु कैथोलिक क्रोश रोमन लिपि का इस्तेमाल करते थे जबकि रूढ़िवादी सर्ब क्रिलिप लिपि का उपयोग करते थे। हालांकि जहां तक स्लोवाक का संबंध है 1790 के आसपास स्लोवाक साहित्य के निर्माण के लिए एक बोली को चुना गया और बाद में कुछ दशकों के बाद उसे छोड़ कर दूसरी बोली को आधार बनाना पड़ा। पूर्वी यूरोप, खासकर दक्षिण पूर्वी यूरोप में, यूरोप के अन्य भागों, खासकर पश्चिमी यूरोप, की तुलना में जातीय और भाषाई विविधता ज्यादा थी और विशिष्ट भाषाई सांस्कृतिक अस्मिता की जागरूकता बाद में आई। माग्यारों की संभवतः एक विशिष्ट जातीय समूह के रूप में 13वीं शताब्दी में ही अपनी भाषा थी। वस्तुतः केवल माग्यार ही नहीं बल्कि चेक और पोल ने भी जातीयता या भाषा पर आधारित विशिष्ट पहचान बनाई थी परंतु राष्ट्र संबंधी उनकी धारणा में किसान और आम आदमी शामिल नहीं थे।

चेक राष्ट्रवाद

देसी पुरोहितों को बाहर से आकर बसने वाले जर्मन पुरोहितों से यह खतरा महसूस होने लगा कि वे ऊंचे पदों के लिए उनके प्रतिस्पर्धी बन जाएंगे। इसी भावना से आम चेक राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। जर्मन उपनिवेशवादी 12वीं शताब्दी में बोहेमिया आए और वहां वे खनन और हस्तशिल्प उत्पादन में सफलतापूर्वक काम करने लगे। जर्मन विदेशियों और अपने बीच अंतर स्पष्ट करने के लिए चेक लोगों ने अपनी भाषा पर बल दिया। मजबूत राज्य होने और अपनी भाषा से जुड़ाव होने के कारण चेक लोगों में मध्ययुग में ही आम पहचान की भावना आ गई थी। हसिट युग के दौरान भाषा, उत्पत्ति और विश्वास ने चेक राष्ट्र का निर्माण किया। 18वीं और 19वीं शताब्दियों में चेकों का अपना स्वतंत्र राज्य नहीं था। परिणामस्वरूप कुलीन वर्ग के लोग जर्मन, स्पैनिश और फ्रेंच तथा शहरी लोग जर्मन बोलते थे। केवल किसान और शहर में रहने वाले गरीब लोग ही चेक भाषा बोलते थे। पूंजीवाद के विकास और चेक मजदूरों के गांव से शहर की ओर प्रयाण के कारण आधुनिक चेक राष्ट्रवाद का आधार तैयार हुआ। 18वीं और 19वीं शताब्दी के अंत में किरानियों, हस्तशिल्पियों और सेवकों के विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त पुत्रों से निर्मित बुद्धिजीवी वर्ग ने चेक भाषा और साहित्य के पुनरूद्धार का मामला उठाया। 1780 के दशक में शिल्पियों और मजदूरों ने भी चेक भाषा और रंगमंच को संरक्षण प्रदान किया। उभरते चेक बुद्धिजीवियों का उद्देश्य था "चेक भूमि में जर्मन राष्ट्र के बराबर आधुनिक चेक राष्ट्र के लिए समान अधिकार प्राप्त करना।" 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुख्य रूप से छोटे शहरों के शिल्पियों के परिवारों से आए चेक बुद्धिजीवियों ने स्कूलों में शिक्षा की भाषा के रूप में चेक भाषा को बढ़ावा दिया। अखबारों, रंगमंचों और सार्वजनिक बहसों में चेक पक्ष को सामने रखा गया और इस
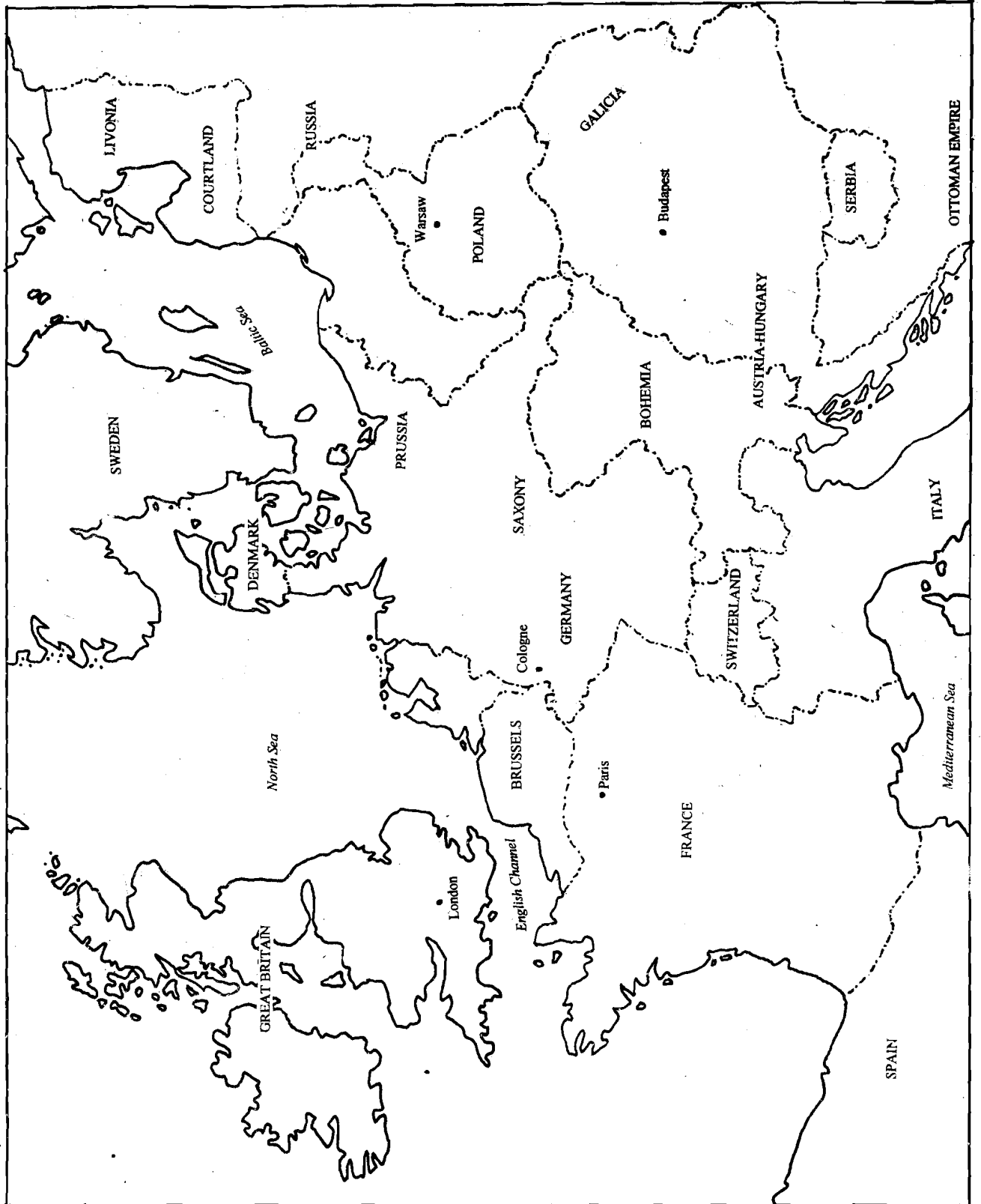
मानचित्र 1 : 19वीं शताब्दी में यूरोप

स्लाव बंधुत्व के साथ जोड़ा गया। 19वीं शताब्दी के मध्य में बोहेमिया और मोराविया में 70% चेक रहते थे। उनके पास कोई राजनैतिक अधिकार नहीं थे और सारे राजनैतिक अधिकार जर्मनों के पास थे। जर्मनी की आंतरिक परिस्थितियों पर चेक बुद्धिजीवियों ने खुलकर सार्वजनिक रूप से बहस की। इसके परिणामस्वरूप चेक बुद्धिजीवियों ने आस्ट्रिया ढांचे के अंतर्गत ही चेक भूमि पर जर्मनों से समानता की मांग की। आस्ट्रिया में स्लाव-पोल, सर्ब, स्लोवाक, क्रोश आदि लोगों के साथ सुरक्षित रहना अधिक संभव था और जार तानाशाही के निरंकुश शासन या अधिक सजातीयतावादी जर्मन साम्राज्य की अपेक्षा यहां चेक लोगों को अपने अधिकार प्राप्त करने की अधिक संभावना थी एल्ब स्लावों के जर्मनीकरण का चेक लोगों पर विशेष प्रभाव पड़ा और इसी कारण वे जर्मनी के साथ कोई राजनैतिक संघ नहीं बनाना चाहते थे। इन कारकों के कारण 1840 के दशक में आस्ट्रोस्लाववाद की राजनैतिक अवधारणा सामने आई। इस सिद्धांत के अनुसार आस्ट्रियाई निरंकुश राज्य को "राष्ट्रों के संघीय राज्य" में बदला जाना था जहां सभी लोगों को "समान अधिकार" प्राप्त हो।

हंगेरियाई राष्ट्रवाद

हंगरी में भी 18वीं शताब्दी के अंत में अन्य जातीय समूहों के साथ राष्ट्रीय जागरूकता आई। नाइदर हाउजर ने राष्ट्रीय आंदोलनों को दो चरणों — सांस्कृतिक और राजनैतिक — में विभक्त किया है। सांस्कृतिक राष्ट्रवादी चरण के दौरान कई बोलियों के बीच से राष्ट्रीय भाषा का निर्माण किया गया और एक ऐतिहासिक चेतना का संचार हुआ। राजनैतिक चरण में स्थानीय स्वायत्तता की मांग हुई और प्रशासन में राष्ट्रभाषा के प्रयोग से अंततः राष्ट्र-राज्य का निर्माण हुआ। हंगरी में अलग-अलग प्रकार की जातीयताएं मौजूद थीं – स्लाव जनजातियों के बीच रह रहे आक्रमणकारी हंगेरियाई जनजातियों, बाहर से आकर बसनेवाले जर्मन, तुर्की जातीय समुदाय, ट्रांसिलवेनिया में बसे व्लाख; इससे हंगरी में जातीयताओं की संख्या और भी बढ़ गयी। 1541 से लेकर 17वीं शताब्दी तक हंगरी के मध्य भाग में औटोमन साम्राज्य के आधिपत्य ने जातीय संतुलन को प्रभावित किया। दक्षिण हंगरी में जर्मनों को बसाने की हैब्सबर्ग नीति के कारण भी ऐसे ही जातीय संतुलन प्रभावित हुआ। हंगरी के संभ्रांत सामंत वर्ग में माग्यरों और क्रोशों का वर्चस्व था और डायटों में भी उनका ही वर्चस्व था, अतः उनका राजनैतिक बोलबाला भी था । केवल ट्रांसिल्वेनिया का अपना डायट था।

16.9.2 राष्ट्रवादी विकासों का प्रचार और राष्ट्रवाद

हॉब्सबाम प्रमाण देकर यह दिखाते हैं कि विदेशी आक्रमणकारियों के खिलाफ राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संबंधी स्वायत्त जन आंदोलनों की विचारधाराएं राष्ट्रीय होने की अपेक्षा "सामाजिक और धार्मिक थीं"। 15वीं और 16वीं शताब्दी में यूरोप के किसानों ने यह महसूस किया कि उनके सामंत उन्हें धोखा दे रहे हैं तब उन्होंने आक्रमणकारी तुर्कों के खिलाफ अपनी आस्था का सहारा लेकर विरोध करने का निश्चय किया। हुसांइट बोहेमिया में या ईसाई राज्यों के सैनिक सीमांतों पर सशस्त्र किसान समुदायों के बीच एक लोकप्रिय राष्ट्रीय देशभक्ति का उदय हो सकता था यदि इन्हें आक्रमणकारियों से लड़ाई करने की पूरी छूट दी जाती। कोसैक लोग इसके उदाहरण हैं। सर्ब लोगों में प्रारंभिक-राष्ट्रीय भावना मौजूद थी क्योंकि उनके मन में अभी भी पुराने सर्ब राज्य की याद ताजा थी जिसे तुर्कों ने नष्ट कर दिया था। सर्बियाई चर्च ने भी देशभक्ति को किसी न किसी रूप में जिन्दा रखा था और सर्ब राजाओं को धर्म ग्रंथ का पाठ कराया था। हालांकि कोसैक किसी एक जातीय समुदाय के लोग नहीं थे फिर भी उनकी आस्थाएं एक जैसी थीं। 17वीं शताब्दी में रूस में कैथोलिक पोलैंड और मुसलमान तुर्कों के दबाव में धर्म और धार्मिक प्रतीक लोकप्रिय राष्ट्रीय जागरूकता में महत्वपूर्ण तत्व के रूप में उभरे। भाषा, संस्कृति और इतिहास की भावना पर आधारित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उदय के बाद राष्ट्रवाद एक विचार के रूप में उभरा और इसने पूर्वी यूरोप की छोटी-छोटी राष्ट्रियताओं को प्रभावित किया।

चेकोस्लोवाकिया

19वीं शताब्दी के अंत में चेक राजनीतिज्ञों ने कोई बृहद राजनैतिक योजना सामने नहीं रखी और उन्हें छोटी रियायतों पर ही संतोष करना पड़ा। चेक भूमि में आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति के बावजूद बुर्जुआ वर्ग के पास चेक राष्ट्रवाद को समर्थन देने का पर्याप्त आधार नहीं था। प्रथम विश्व युद्ध ने यूरोप के अन्य क्षेत्रों के

समान चेक क्षेत्रों में भी राष्ट्रवाद की भावना का संचार किया। युद्धकालीन कठिनाइयों के दौरान शहरों में खलबली मच गई, 1915 के बाद लोग युद्ध भूमि को छोड़कर भागने लगे और 1917 में चेक लेखकों ने एक घोषणा पत्र तैयार किया जिसमें यूरोप के भावी जनतांत्रिक राष्ट्रों का समर्थन किया गया। अक्टूबर 1915 में टॉमस मासरिक ने यूरोप के सभी छोटे राज्यों की आजादी की मांग की और प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हुए राजनैतिक परिवर्तन के कारण यह सपना सच्चाई में बदलने लगा। 1915 में आजाद चेकोस्लोवाक राज्य की मांग की गई। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान चेक और स्लोवाक सैनिक इकाइयों ने आस्ट्रिया-हंगरी के शत्रुओं के साथ हाथ मिलाया और इस प्रकार विजयी शक्ति समूहों के साथ अपने को जोड़कर अपना दावा प्रस्तुत किया। चेक राष्ट्रवाद के परिणामस्वरूप एक हजार वर्षों के बाद चेक भूमि को स्लोवाकिया के साथ पुनः एकीकृत किया गया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान बड़े राज्यों पर पड़े प्रभाव और राष्ट्रीय आत्म निर्धारण के लिए राष्ट्रपति विलसन के समर्थन के कारण भी चेक और स्लोवाकिया को जोड़ने में मदद मिली।

हंगरी

हंगरी में द्वैध राजतंत्र की स्थापना से हंगेरियाइयों को तो खुशी हुई परंतु इससे अन्य राष्ट्रीयताओं में राष्ट्रीय भावना का जन्म हुआ। हैब्सबर्ग द्वारा 1850 और 1910 के बीच हुए सरकारी जनमत संग्रह के अुनसार 1900 के बाद ही हंगेरियाई बहुमत में आ सके। यहां तक कि 1910 में क्रोएशिया सहित हंगेरियाइयों की संख्या कुल जनसंख्या की 51.5 प्रतिशत थी। 1868 के राष्ट्रीयता अधिनियम के तहत राज्य ने गैर-माग्यारों को अपनी मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करने, बैंक बनाने तथा आर्थिक संगठन कायम करने का अधिकार प्रदान किया । परंतु राष्ट्र-राज्य के विचार के कारण यह मांग की गई कि हंगेरियाई राष्ट्र और इसके दावे सबसे ऊपर रखे जाएं। 1883 में सरकार ने कानून बनाकर हंगेरियाई भाषा को माध्यमिक शिक्षा में अनिवार्य बना दिया। 1907 तक यह प्राथमिक विद्यालय में अनिवार्य नहीं था। हंगेरियाई राजनेताओं ने हंगेरियाई भाषा को राजभाषा बनाकर गैर-मैग्यार लोगों को अपने में समाहित कर लेने की कोशिश की। पीटर हेनाक के अनुसार 1890-1914 के बीच आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के कारण लाखों लोगों को मैग्यारों ने अपने में मिला लिया। 19वीं शताब्दी के मध्य में बुडापेस्ट में जर्मन भाषी और गैर-मैग्यार लोग रहते थे; 20वीं शताब्दी के आंरभ तक यहां हंगेरियाई भाषा बोलने वाले लोगों का वर्चस्व हो गया। वस्तुतः मैग्यारकरण आर्थिक सफलता और सामाजिक गत्यात्मकता के लिए अनिवार्य शर्त हो गई। गैर-मैग्यार जनसंख्या को कम करने के लिए सरकार ने उन लोगों के संयुक्त राज्य अमेरिका जाने को प्रोत्साहित किया। लगभग 30 लाख लोग, जिनमें मुख्य रूप से स्लोवाक और सर्ब शामिल थे, अमेरिका चले गए।

परंतु सरकार विभिन्न राष्ट्रीयताओं की आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित नहीं कर सकी। रोमानियाई स्वामित्व वाले बचत बैंकों की उन्नति को भी यह न रोक सकी। चर्चों ने मातृभाषा में पढ़ाए जाने वाले माध्यमिक विद्यालयों का समर्थन किया। ऊपरी सदन में चर्च धर्माधिकारियों का प्रतिनिधित्व होने से वहां वे अपनी राष्ट्रीयताओं का प्रतिनिधित्व कर सकते थे। सभी चर्चों को 'राष्ट्रीय' माना जाता था। केवल स्लोवाकों और जर्मनों के चर्च अपवाद थे क्योंकि ये राष्ट्रियताएं कैथोलिकवाद और लूथरवाद पर आधारित आस्थाओं में बंटी हुई थी। रूढ़िवादी चर्च ने सर्बों और रोमानियाइयों के बहुमत, यूनिएट चर्च के लिए रूथेनेस और रोमानियाइयों के अल्पमत का समर्थन किया। गैर-मैग्यार लोगों और शासन के विरोधी मैग्यार दलों को राजनैतिक व्यवस्था से अलग रखने के लिए उच्च जनमत संग्रह करवाया। 20वीं शताब्दी के आंरभ तक रोमानियाइयों और स्लोवाकों में से अधिक सक्रिय और नए राजनैतिक संभ्रांत वर्ग का उदय हुआ, आस्ट्रिया-हंगरी के हेब्सबर्ग साम्राज्य के टूटने के बाद चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, युगोस्लाविया जैसे नए राज्य कायम हुए। युद्ध के बाद एक नई समस्या सामने आई। राष्ट्रीय सीमाओं के ठीक-ठीक निर्धारण में समस्याएं आ रही थीं। हंगरी को काटकर जो तीन पड़ोसी राज्य बनाए गए उसमें तीन लाख मैग्यार अल्पमत में आ गए। 1920 में हुई ट्रियानन की संधि के कारण तीन में से एक मैग्यार को देश से बाहर जाकर रहने को मजबूर होना पड़ा। इसके कारण मैग्यार बहुमत से अल्पमत में आ गए और एक प्रकार से इसने प्रतिगामी भूमिका निभाई। हंगेरियाई शासकीय संभ्रांत वर्ग ने अपनी बड़ी भू सम्पत्तियां, बैंक और कारखाने खो दिए। हंगरी को काट छांट कर एक तिहाई कर दिया गया। इससे लोगों के मन में काफी असंतोष था। हंगेरियाई शासकीय संभ्रांत वर्ग ने लोगों को

लामबंद करने तथा ट्रियानन की संधि को गलत ठहराने के लिए इस असंतोष का उपयोग किया। संकीर्णवादी संभ्रांतों ने इस संधि का उपयोग कर जनता के असंतोष को राष्ट्रवाद की धारा में बहा दिया और अन्ततः हंगरी द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान फासीवादी जर्मनी और इटली के गुट में शामिल हो गया।

पोलैंड

18वीं शताब्दी के दौरान पोलैंड के कुलीन वर्ग में पोलिश भाषा और संस्कृति के आधार पर पोलिश पहचान की भावना विकसित हुई। पोलिश कुलीन वर्ग कुल जनसंख्या के 8% थे जो यूरोपीय मानदंड के हिसाब से ज्यादा थे। 18वीं शताब्दी के अंत में किसानों और यहां तक कि नागरिकों को भी राजनैतिक राष्ट्र में शामिल नहीं किया गया। जहां तक किसानों का संबंध है वे पश्चिमी प्रांत में पोलिश बोलते थे। पूर्वी प्रदेश में रूथेनियन बोलते थे और उत्तर पूर्व में लिथुआनियन बोलते थे। 18वीं शताब्दी तक भाषा राष्ट्रीय चेतना का आधार नहीं बन सकी। पोलिश जनता के धार्मिक मतभेदों ने इस युग में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। किसानों में राष्ट्रीय चेतना का विकास नहीं हो सका था। परंतु 18वीं शताब्दी के अंत में पोलिश स्वतंत्रता के लिए हुए इस युद्ध में उन्होंने हिस्सा लिया था। प्रशा, आस्ट्रिया और रूस जैसी तीन बड़ी शक्तियों के तत्वावधान में अलग-अलग समयों पर 19वीं शताब्दी के दौरान कृषि दास प्रथा के उन्मूलन के साथ कृषि दासता का अंत हुआ जिन्होंने 18वीं शताब्दी में पोलैंड को आपस में बांट लिया था। पहले नागरिकों को और बाद में यहूदियों को नागरिक और प्रजातांत्रिक अधिकार देकर राष्ट्रीय चेतना के प्रसार को तीव्र किया गया। इसके लिए आंदोलन चलाए गए और कृषीय सुधार किए गए तथा विभिन्न वर्गों के बीच कानूनी असमानताओं को दूर किया गया।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भाषा और साहित्य पर आधारित बेलोरूसी और यूक्रेनियाई राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ जिसने पोलिश भाषा और साहित्य के वर्चस्व का विरोध किया। बेलोरूसी इलाके के पोलिश लेखकों ने बेलोरूसी में लिखना शुरू किया और एक राष्ट्रीय साहित्य परम्परा के विकास का निर्माण किया।

भाषा का यह अंतर सामाजिक अंतर से जुड़ा हुआ था। पोलिश भाषा कुलीन और बुद्धिजीवी वर्ग से जुड़ी थी जबकि बेलोरूसी और यूक्रेनी भाषा निम्नवर्गीय परम्परा से उभरी थी जो पोलिश राज्य की विरोधी थी। पोलिश उच्च वर्ग की या उच्च वर्ग में शामिल होने की आकांक्षा रखनेवालों की भाषा थी। इसलिए यह माना जाता था कि किसान उच्च सांस्कृतिक भाषा के रूप में इसे स्वीकार कर लेंगे। इसलिए बेलोरूसी, यूक्रेनी, लिथुनियाई भाषा को किसानों की भाषा माना जाता था और इसे निचले दर्जे की भाषा समझा जाता था। 1918 में स्वतंत्र पोलैंड के निर्माण के बाद दमनकारी जर्मन राष्ट्रवाद के प्रतिक्रियास्वरूप पोलिश राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ।

1920 में अस्तित्व में आया पोलिश गणतंत्र उन क्रांतिकारी परिवर्तनों का प्रतिफलन था जिन्होंने सम्पूर्ण मध्य और पूर्वी यूरोप के कई समुदायों में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। नए पोलिश राज्य में एक तिहाई जनता गैर पोलिश थीः 1931 में 16% यूक्रेनी, 10% यहूदी और 6% बेलोरूसी थे। यूक्रेनियाइयों और बेलोरूसियों में दोनों महायुद्धों के बीच के समय में राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ हालांकि आत्मसातकरण की प्रक्रिया भी साथ-साथ चल रही थी और कई लोग मध्यवर्ती या आरंभिक राष्ट्रीय चेतना के समुदायों का प्रतिनिधित्व करते थे।

1930 के दशक में फासीवाद के उदय से पूरे यूरोप में राष्ट्रीय वैमनस्य की प्रक्रिया तेज हो गई और प्रथम विश्व युद्ध के अंत में राष्ट्रीय आत्म निर्धारण के सिद्धांत पर आधारित वर्साय की संधि की अवहेलना करने में मदद मिली। युद्ध अंतराल के समय पूर्वी यूरोप में राष्ट्रीय आंदोलनों और राष्ट्रवाद के विकास, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुई घटनाओं और अन्ततः तेहरान, पोट्सडैम और याल्टा में विजयी शक्तियों द्वारा किए गए समझौते से पूर्वी यूरोप राष्ट्र-राज्यों का नक्शा और पूरे यूरोप का राजनैतिक मानचित्र तैयार हो गया।

बोध प्रश्न 2

1) यूरोप में राष्ट्रवाद के विकास में उदारवादी जनतांत्रिक विचारों ने किस प्रकार मदद की ?

....

....

....

....

2) राष्ट्र-राज्यों के विकास में भाषा की क्या भूमिका थी ?

....

....

....

....

3) पूर्वी यूरोप में राष्ट्रवाद के उदय पर विचार कीजिए। लगभग 100 शब्दों में अपने उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

16.10 सारांश

इस इकाई में राष्ट्रवाद और राष्ट्र-राज्य पर विचार करते हुए हमने देखा कि राष्ट्र-राज्य के उदय के पूर्व राष्ट्रवादी विचारों का प्रचार-प्रसार हुआ। यूरोप में राजनीति के प्रजातांत्रीकरण से भाषा और समाज के निर्माण जैसे मुद्दों को आधार बनाकर जनता को संगठित किया गया जिसने जनता के बीच राष्ट्रवाद की भावना फैलाई। आधुनिक राज्यों ने भी राष्ट्रवाद की भावना को आकार देने और राष्ट्र-राज्यों के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाई। हमने इस बात पर भी विचार किया कि पूर्वी यूरोप में रूस को छोड़कर राष्ट्रीय भावनाओं को उभारने में सांस्कृतिक मुद्दों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

16.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (क) नहीं; (ख) नहीं; (ग) हां; (घ) हां

2) देखिए भाग 16.2 और 16.3

3) देखिए भाग 16.5

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 16.6.1

2) देखिए उपभाग 16.6.2 और 16.6.3

3) देखिए भाग 16.9

इकाई 17 राष्ट्र राज्यों का निर्माण-1: ब्रिटिश और फ्रांसीसी

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम, खासतौर पर 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, ब्रिटेन और फ्रांस में राष्ट्र-राज्य के निर्माण की प्रक्रिया पर विचार करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- बता सकेंगे कि निरंकुश राजतंत्रों ने राष्ट्र-राज्य निर्माण की प्रक्रिया कैसे आरंभ की,
- राष्ट्रीय एकीकरण में आने वाली बाधाओं की व्याख्या कर सकेंगे,
- पूंजीवादी विकास के लिए अधिसंरचना के निर्माण का विवेचन कर सकेंगे,
- वर्ग निर्माण के जरिए राष्ट्रीय अस्मिताओं के विकास को जान सकेंगे,
- ब्रिटेन और फ्रांस में राष्ट्र-राज्यों के उदय में क्रमशः औद्योगिक क्रांति और फ्रांसीसी क्रांति की भूमिका पहचान सकेंगे,
- राज्य हस्तक्षेप के क्षेत्रों की जानकारी हासिल कर सकेंगे, और
- सामाजिक तनावों और क्षेत्रीय विविधताओं को अपनाते हुए आधुनिक जनतांत्रिक राज्यों के निर्माण पर प्रकाश डाल सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

उत्पादन के बदलते साधनों और खास तौर पर बुर्जुआ वर्ग के उदय के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र-राज्यों के उदय को देखा जा सकता है। ब्रिटेन और फ्रांस में नए प्रकार का राज्य कायम होने से आधुनिकीकरण की कई समस्याओं का समाधान हो गया। दोनों देशों में राष्ट्र-राज्यों ने छोटी इकाइयों के सामाजिक और आर्थिक

एकीकरण की प्रक्रिया में योगदान दिया। पूंजीवादी विकास में राष्ट्र-राज्यों की भूमिका निर्णायक साबित हुई क्योंकि इससे राजनैतिक और आर्थिक एकीकरण में मदद मिली और हाशिए पर खड़े क्षेत्रों को पूंजीवादी आधुनिकीकरण का फायदा मिला। साथ ही साथ आर्थिक विकास के लिए राज्य को अनुकूल परिस्थिति का निर्माण करना पड़ा। औद्योगीकरण के कारण अनेक ऐसी मांगे सामने आई जिनका समाधान केंद्रीकृत नियंत्रित व्यवस्थाओं और संस्थाओं द्वारा ही किया जा सकता था। इन लोगों को सीधे पेशेवर सेना और थल सेना में नियुक्त कर इन राज्यों ने देशभक्ति का संचार किया और राष्ट्रवाद, साक्षरता, सांस्कृतिक एकरूपीकरण और सुधारों को ऊपर से आरोपित किया गया।

राष्ट्र-राज्य का उदय एक आधुनिक परिघटना है। हालांकि इसका विकास 18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी में हुआ परंतु इसका जन्म आधुनिक काल से पहले हो चुका था। नौकरशाही निरंकुश राज्यों का निर्माण कर, सीमांतों को बदलकर, राज्यों की स्पष्ट सीमा रेखा निर्धारित कर क्षेत्रीय इकाइयों को मजबूत बनाने का प्रयत्न किया गया। राष्ट्र-राज्य एक बहु आयामी प्रक्रिया है परंतु इस प्रयत्न में इसके लक्षण देखे जा सकते थे। इसके अलावा बुर्जुआ वर्ग के उदय और शासक तथा शोषित के आपसी संबंधों में भी आधारभूत अंतर आया। यह कहा जा सकता है कि आधुनिक काल के पहले ब्रिटेन और फ्रांस में मजबूत राजतंत्रों के तहत निरंकुश राज्यों का उदय काफी निर्णायक साबित हुआ क्योंकि इस समय आधुनिक राज्य के निर्माण की शुरुआत ही हुई थी जिसमें उत्तर मध्य काल के कई मुद्दों को विवेक सम्मत ढंग से सुलझा लिया गया था। ब्रिटेन और फ्रांस में इन्हीं रूपांतरित निरंकुश राज्यों से राष्ट्र-राज्यों का विकास हुआ।

17.2 ब्रिटिश राष्ट्र-राज्य का निर्माण

ब्रिटिश राष्ट्र-राज्य की चौहद्दी बताना बहुत मुश्किल है क्योंकि ब्रिटेन और खासकर इंगलैंड के लोग 'राष्ट्र' की बात करते हैं तो यह हमेशा स्पष्ट नहीं होता कि उनके दिमाग में कौन सा राज्य है। बहु राष्ट्रीय राज्य के भीतर एक प्रभुत्वशाली राष्ट्र के रूप में इंगलैंड को यूनाइटेड किंगडम के नाम से जाना जाता था। 'ब्रिटिशनेस' की अवधारणा को 'इंगलिशनेस' से अलग करना आसान नहीं है। ऐसा लगता है कि वेल्स, स्कॉटिश और इंगलिश लोगों में 18वीं और 19वीं शताब्दियों के दौरान कुछ हद तक ब्रिटिश अस्मिता का विकास हुआ था। परंतु स्कॉट्स और वेल्स आज भी राजनैतिक अस्मिता की दृष्टि से ब्रिटिश राज्य से और जातीय या राष्ट्रीय अस्मिता की दृष्टि से स्कॉटलैंड या वेल्स से जुड़े हुए हैं। ब्रिटेन में मिलाए जाने के दिन से ही आयरलेंड अपनी स्वतंत्रता के लिए छटपटा रहा था।

17.2.1 एकीकरण की प्रक्रिया

केंद्रीकृत शासन प्रणाली या सरकार की स्थापना कर ट्यूडर राजवंश (1485-1603) के राजाओं ने राष्ट्र-राज्य के निर्माण का पहला प्रयत्न किया।

केंद्रीकृत प्रशासन के लिए उच्च वर्गों का सहयोग प्राप्त करने की दृष्टि से एक संस्था के रूप से संसद की भूमिका महत्वपूर्ण साबित हुई (1275 के बाद संसद की लगातार मौजूदगी का प्रमाण मिलता है)। इंगलैंड एक राजनैतिक समाज बन गया जिसमें केंद्रीकृत राजतंत्र को एकत्रित स्थानीय मांगों के साथ चलना था जिन्हें संसद में रखा जाता था। 16वीं शताब्दी के दौरान इंगलिश शहरों को एक इकाई में बांध दिया गया। राज्य ने आर्थिक नियम बनाकर अधिकांश आंतरिक बंधन हटा दिए। दो कारणों से ऐसा संभव हो सका — एक तो राजा के हाथ में शक्ति का संकेंद्रण था और दूसरे राज्य का क्षेत्रफल काफी कम था। शहरी बाजार के विस्तार से पूरे राज्य में एकीकृत बाजार की स्थापना हो गई। लंदन में खाद्यान्न की मांग बढ़ी। खाद्यान्न की आपूर्ति के लिए कृषि पर दबाव पड़ा। इस कारण गांवों में कृषीय उत्पादन के वाणिज्यिकरण और पूंजी निवेश को बढ़ावा मिला।

धार्मिक सुधारों में हुई प्रगति के कारण भी राष्ट्र-राज्य के निर्माण में मदद मिली। धार्मिक सुधारों के द्वारा राष्ट्रीय चर्च न केवल राजा के मातहत हो गया बल्कि इसके द्वारा गांव भी शहर के अधीन हो गए। यह पोप की सत्ता पर विदेशी आधिपत्य के खिलाफ उभरती भावना को प्रतिबिंबित करता था। एलिजाबेथ के शासन

काल में साहित्य के उत्थान, धार्मिक भावनाओं के प्रसार, नए सामाजिक वर्गों के उदय और बदलते राजनैतिक विचारों ने मिलकर इंगलिश राष्ट्र-राज्य का निर्माण किया। ऐंग्लिकन चर्च ने राज्य को मजबूत नींव प्रदान की। बाद में, ऐंग्लिकन पुजारियों ने धर्म प्रचारकों के जरिए जन-जन तक यह संदेश पहुंचाया कि जनता को राज्य के प्रति निष्ठावान रहना चाहिए, प्रजा को राजा का आदर और सम्मान करना चाहिए। चर्च के पुजारियों ने राजा का एक स्मारक कैलेंडर बनाया जिसमें सभी महत्वपूर्ण दिवसों पर राजा द्वारा विशेष सेवाओं का उल्लेख किया गया है। अपने प्रवचनों के दौरान धर्माधिकारी बच्चों और उनके माता-पिता को "राज्य के प्रति उनकी निष्ठा और राज्य में शांति बनाए रखने की जिम्मेदारी निभाने" की याद दिलाते थे। हालांकि, औद्योगीकरण के आगमन के बाद से चर्च के कैथोलिक विरोधी और राष्ट्रवादी आह्वान का असर कम होता चला गया।

वेल्स

1536 में इंगलैंड में वेल्स का विलयन राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कदम था। हेनरीVIII द्वारा यह आरोपित किया गया था। वेल्स को इंगलिश संसद में 24 सदस्य भेजने थे और स्थानीय स्वतंत्रता और अशांति को रोकने के लिए प्रांतीय प्रशासन की इंगलिश प्रणाली लागू की गई। इसके बावजूद 1880 के दशक के अंत तक वेल्स अपनी विशिष्ट संस्कृति ओर समाज को बनाए रखने और इंगलिश के विपरीत अपनी वेल्स पहचान और वेल्स भाषा को सुरक्षित रखने में कामयाब रहा। ऐंग्लिकन संस्कृतियों और अंग्रेजी भाषा के अतिक्रमण के खिलाफ सांस्कृतिक पुनरूत्थान के भी प्रयत्न किए गए। हालांकि औद्योगीकरण के कारण कृषक बहुल क्षेत्र आधुनिक और जनतांत्रिक समाज में परिवर्तित हो गया। खनन और उत्पादन गतिविधियों के तीव्र प्रसार का वेल्स जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा। शहरीकरण बढ़ा, बड़े पैमाने पर देशांतरण हुआ, मजदूर वर्ग और मजदूर आंदोलनों का जन्म हुआ, ऐंग्लिकन शिक्षा का प्रसार हुआ और इस प्रकार इंगलिश राज्य में पूरे वेल्स का विलयन हो गया।

स्कॉटलैंड

शाही राजवंशों में वैवाहिक संबंध होने के बावजूद स्कॉटलैंड और इंगलैंड एक दूसरे के शत्रु बने रहे। शताब्दियों से यह एक स्वतंत्र राज्य था। 17वीं शताब्दी में जेम्स प्रथम ने दोनों देशों के एक 'आदर्श मिलन' का प्रस्ताव रखा परंतु इंगलिश और स्कॉट्स के आपसी अविश्वास और शत्रुता के कारण यह प्रस्ताव धाराशाई हो गया। 1650 के दशक में क्रामवेलियाई एकीकरण इंगलिश सेना द्वारा जबरदस्ती थोपा गया। 1707 में ऐक्ट ऑफ यूनियन द्वारा स्कॉटलैंड को अंततः इंगलैंड में मिला लिया गया। यह स्वैच्छिक एकीकरण था जिसका स्कॉटिश संसद ने बहुमत से समर्थन किया था; इसके बाद इस संसद को समाप्त कर दिया गया। परंतु दूसरी स्कॉटिश संस्थाएं यथावत रहीं; जैसे, विशिष्ट विधि और शैक्षिक व्यवस्था तथा प्रेसबिटेरियन चर्च बने रहे।

गरीब और पिछड़े गेलिक उच्च भूमि में रहने वाले और निम्न भूमि में रहने वाले अंग्रेजभाषी स्कॉटिश लोगों की इस मिलन के प्रति प्रतिक्रिया अलग-अलग थी। इस अधिनियम को जिस तरह लागू किया था उससे कई स्कॉटिश राष्ट्रवादियों को धक्का लगा था। शताब्दियों से स्कॉटिश अस्मिता के निजता संबंधी दृष्टिकोण के कारण धीरे-धीरे एक अलग चेतना का विकास हो रहा था। लोक स्मृति में लोक नायकों की छवि मौजूद होने से इसे और बल मिला। रानी मेरी की छवि लोक-समृति में व्याप्त थी। इसके अलावा लोक गीतों और डेविड ह्यूम तथा एडम स्मिथ जैसे स्कॉटिश विचारकों के योगदानों और जेम्स वॉट जैसे वैज्ञानिकों के आविष्कारों ने पृथक स्कॉटिश अस्मिता को मजबूती प्रदान की। 19वीं शताब्दी के दौरान देश के औद्योगिक विकास के कारण पुरानी जीवन पद्धति समाप्त कर दी गई और स्कॉटलैंड की अर्थव्यवस्था को इंगलिश अर्थव्यवस्था में मिला लिया गया। औद्योगिक क्रांति की सफलता के कारण स्कॉटलैंड और वेल्स के मध्य वर्ग इंगलिश और ब्रिटिश राष्ट्र के प्रति निष्ठावान हो गए। स्कॉटलैंड के बुर्जुआ वर्ग के ब्रिटेन में विलयन का पता इस बात से चलता है कि वे स्कॉटलैंड को उत्तरी ब्रिटेन कहने लगे थे; स्कॉटलैंड में प्रथम रेलवे को नार्थ ब्रिटिश रेलवे और कई होटलों को नार्थ ब्रिटिश होटल कहा गया। 19वीं शताब्दी के अंत तक स्कॉटलैंड और वेल्स के सभी वर्गों में पूरक के रूप में नहीं बल्कि सहगामी के रूप में ब्रिटिश की अवधारणा फ़ैल चुकी थी।

आयरलैंड

आयरलैंड को ब्रिटिश राष्ट्र-राज्य में मिलाना एक बड़ी राजनैतिक असफलता थी; इससे ब्रिटिश राज्य में काफी अशांति फैली। इंगलिश भूमिपतियों ने आयरलैंड पर अंशतः कब्जा जमा लिया था और 16वीं शताब्दी के अंत तक यह वस्तुतः इंगलिश उपनिवेश बन गया। ऐंग्लिकन भूमिपतियों के खिलाफ कैथोलिक कृषकों के लगातार आंदोलन के कारण आयरलैंड में बार-बार सेना भेजनी पड़ती थी। डब्लिन स्थित आयरिश संसद वस्तुतः विजेताओं और बाहर से आकर बसे लोगों की संसद थी जो आयरलैंड के बहुसंख्यक रोमन कैथोलिक लोगों के प्रति दुराग्रह का भाव रखते थे। 1798 में आयरिश क्रांति हुई। इंगलिश सत्ताधारियों को यह भय हुआ कि कैथोलिक आयरिश फ्रांसीसी क्रांतिकारियों का समर्थन कर सकते थे। अतः आयरलैंड को औपचारिक रूप से इंगलैंड, स्कॉटलैंड और वेल्स में मिला लिया गया और 1800 में यूनाइटेड किंगडम का निर्माण हुआ।

आयरलैंड का विलयन कई कारणों से असफल रहा। इस विलयन से बेलफास्ट क्षेत्र को छोड़कर और कहीं भी तीव्र औद्योगीकरण नहीं हुआ। इंगलिश आक्रमण से वेल्स के समान ऐंग्लिकन मध्य वर्ग को प्रोत्साहन नहीं मिला। इंगलिश अधिवासियों ने आयरलैंड के कैथोलिक चर्च को दबा दिया और डब्लिन स्थित एकमात्र विश्वविद्यालय में केवल प्रोटेस्टेंट विद्यार्थी ही पढ़ सकते थे। 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में आयरिश साहित्य का तेजी से विकास हुआ। इस दौरान डब्लिन में जार्ज मूर, जे.एम सिंगे, डब्ल्यू.बी.ईट्स, ज्योर्ज रसेल ओर जेम्स ज्वायस जैसे मेधावी कवियों, नाटककारों और उपन्यासकारों का उदय हुआ। इसी समय गैलिक लीग (1893) ने गैलिक को आयरिश राष्ट्र की प्रथम भाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया और गैलिक एथेलेटिक एसोसिएशन ने ब्रिटिश के स्थान पर परम्परागत आयरिश खेलकूद को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। सिन-फिन राष्ट्रवादी दल (1905) का निर्माण, होमरूल आन्दोलन के प्रसार और आयरिश रिपब्लिकन सेना के नेतृत्व में लोकप्रिय राष्ट्रवादी आंदोलनों (1891-1921) के कारण आयरलैंड ब्रिटिश क्राउन के प्रति निष्ठावान रहा जबकि शेष आयरलैंड ने अपने गणतंत्र और संविधान की घोषणा की। ब्रिटिश राष्ट्र-राज्य की सांस्कृतिक नीति के तहत अंग्रेजी भाषा का पक्ष लिया गया और अल्पसंख्यक भाषाओं को निरुत्साहित किया गया। राज्य ने अलग सांस्कृतिक पहचान बनाने के लिए राष्ट्रीय प्रतीकों को प्रोत्साहित किया; उदाहरण के लिए यूनियन जैक इंगलिश, स्कॉटिश और आयरिश अस्मिताओं के सम्मिलन का प्रतीक था। प्रत्येक राज्य का अपना एक ध्वज, राष्ट्र गान और सेना होती थी और वह अन्तरराष्ट्रीय खेलों में हिस्सा लेता था।

17.2.2 राष्ट्रीय पहचान का विकास

18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी के आरंभ में हुए घरेलू और बाह्य परिवर्तनों के कारण ब्रिटिश अस्मिता के बारे में व्यापक राष्ट्रीय चेतना का प्रसार हुआ। कई लोग इस युग को नए सामाजिक तनावों और नए वर्ग निर्माण का काल मानते हैं। इस युग में एक मध्यवर्गीय सामाजिक राजनैतिक पहचान का निर्माण हुआ। राष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटिश भूमिपति संभ्रांत वर्ग सामने आया और इंगलिश मजदूर वर्ग का जन्म हुआ।

1756 से लेकर 1815 तक हुए ब्रिटिश युद्धों ने ब्रिटिश राष्ट्र के एकीकरण में योगदान दिया। सेना में अनिवार्य भर्ती और अनिवार्य सेवा के कारण लोगों में राष्ट्र-राज्य की राजनैतिक और विचारात्मक मांगों के प्रति जागरूकता पैदा हुई और औद्योगिक पूंजीवाद की जरूरतों को पूरा करने में मदद मिली।

अमेरिकी उपनिवेशों के छिन जाने के बाद वेल्स और स्कॉटलैंड में नए सिरे से रुचि जागृत हुई और इस प्रकार आंतरिक पर्यटन को बढ़ावा मिला। क्रांतिकारी युद्धों के कारण ब्रिटिश राज्य को बड़े पैमाने पर सेना में भर्ती करनी पड़ी। ब्रिटिश किंगडम के सभी हिस्सों के वयस्क पुरुषों को ब्रिटिश सेना में शामिल करने का अभियान चलाया गया। इस सेना युग में चार में से एक स्कॉटलैंडवासी ब्रिटिश सेना में कार्यरत था। युद्धों के परिणामस्वरूप संचार का तेजी से विकास हुआ। 1750 और 1800 के बीच केवल इंगलैंड में ही प्रांतीय प्रेस में तीन गुनी वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरूप नगरीय और राष्ट्रीय निर्देशिकाएं, राजनैतिक मानचित्र, अंग्रेजी व्याकरण की पुस्तकें और शब्दकोश तैयार किए गए। 19वीं शताब्दी के अंत में अखबारों और पत्रिकाओं में हुई प्रगति के कारण ग्लैडस्टोन और डिजरैली जैसे नेताओं को राष्ट्रीय स्तर पर उनकी बात सुनने वाले लोग मिले। दैनिक समाचार पत्रों में छपने वाली संसदीय बहसों का जनमत पर व्यापक प्रभाव पड़ा। पूरे देश में

उपन्यास का एक मध्यवर्गीय पाठक वर्ग तैयार हुआ। जी.बी.शॉ, एच.जी.वेल्स, एडगर वैलेस, एच.डी. बकल और ऐसे अनेक जाने माने लेखकों ने ब्रिटेन की साहित्यिक दुनिया को एक साथ जोड़ दिया। लोकप्रिय प्रेस, याचिका और मंच ब्रिटिश स्वतंत्रता के तीन आधारभूत स्तंभ बन गए जिनका राष्ट्रीय जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

जनसंख्या की तीव्र वृद्धि और शहरीकरण के कारण न केवल स्थानीय तौर पर देशांतरण हुआ परंतु एक खास आयु के लोगों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हुई। 1826 तक 60 % अंग्रेज 24 वर्ष से कम आयु के थे। इस युवा अंग्रेज पीढ़ी ने राष्ट्रवाद और उदारवाद जैसी राजनैतिक चेतना को ग्रहण किया।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने राष्ट्रीय गौरव की भावना का भी संचार किया। औपनिवेशिक सेनाओं के चित्रों और पोस्टकार्डों, सेना की धुनों, दरबारों के चित्रों और ब्रिटिश सम्राटों के राज्यारोहण में शामिल नतमस्तक महाराजाओं के चित्रों के माध्यम से लोकप्रिय छवियां निर्मित की गईं। स्कूलों में 1902 में एम्पायर डे को संस्थानीकृत किया गया और पाठ्य पुस्तकों में ब्रिटिश शासन के लाभों पर बल दिया गया। ग्लैस्गो (1901) और क्रिस्टल पैलेस (1911) में आयोजित शाही प्रदर्शनियों को देखने के लिए बड़ी संख्या में लोग इकट्ठे हुए। इससे लोगों में एक तरह की श्रेष्ठता की भावना पैदा हुई। इस श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए राज्य ने नस्लवादी कानूनों का सहारा लिया।

औद्योगीकरण से मध्य वर्ग को आपार धन और शक्ति प्राप्त हुई और इसका प्रभाव सीधे राज्य और राजनीति पर पड़ा। जहां एक ओर भूमिपति वर्ग रूढ़िवादी था वहीं बुर्जुआ वर्ग परिवर्तन को तेजी से अपना रहे थे। औद्योगीकरण के कारण मिलों और खानों के मजदूरी कमाने वाले वर्ग का जन्म हुआ। मजदूरों के पास शक्ति न होने के कारण उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए राज्य की ओर याचना भरी दृष्टि से देखा। जब उन्हें यह महसूस हुआ कि सरकार भी राजनीतिक दबावों के तहत ही काम करती है तो उन्होंने मतों और अधिकारों की मांग की (1832 के सुधार अधिनियम ने उनकी आकाक्षांओं को जागृत किया और 1867, 1884-85 तथा 1918 के अधिनियमों के द्वारा जनतांत्रीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया गया)। ओवेन, लावेट और फ्रांसिस प्लेस के नेतृत्व में हुए मजदूर वर्ग के आंदोलनों ने औद्योगिक ब्रिटेन की खामियों के प्रति सामाजिक और राष्ट्रीय जागरूकता पैदा की। सुधारवादियों ने संसद की संप्रभुता के स्थान पर जनता की संप्रभुता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

17.2.3 राज्य हस्तक्षेप के क्षेत्र

प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों में राज्य के हस्तक्षेप के कारण न केवल राष्ट्रीय एकीकरण में मदद मिली बल्कि पूंजीवादी विकास के लिए अधिसंरचना का भी निर्माण हुआ। रेलवे ने समय और स्थान के बारे में पूरी सोच में आधारभूत परिवर्तन कर दिया। जैसा कि डोनाल्ड रिग मानते हैं कि इससे मानसिक और भौतिक दोनों ही स्तरों पर संचार में तेजी आई। इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे पूरे देश में समय का मानकीकरण हुआ और 1880 के अधिनियम के द्वारा 'रेलवे समय को ग्रीनविच समय मान लिया गया', पूरे देश को यातायात के साधनों और डाक से जोड़ दिया गया। सम्प्रेषण और समाचार के आदान-प्रदान में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आया। इसके बाद राष्ट्रीय टेलीफोन कम्पनी की स्थापना हुई जिसने जनता को सरकार के और करीब ला दिया।

राजनैतिक दृष्टि से प्रातिनिधिक सरकार की ओर बढ़ने से राजनीति में दो बिलकुल अलग प्रकार की समस्याएं पैदा हुईं जिनका संबंध 'वर्ग' और 'जनता' से था अर्थात उच्च और मध्य वर्ग तथा संभ्रांत और गरीब वर्ग से था। हालांकि ब्रिटेन राष्ट्र में पैदा हुए सामाजिक तनावों में वर्ग संघर्ष नहीं हुआ और इसे निम्न वर्गों का सक्रिय समर्थन नहीं मिला।

इसके स्थान पर राजनैतिक दलों, विभिन्न प्रमुख समुदायों और मजदूर संघों जैसी संस्थाओं के भीतर वर्ग मतभेदों को समाविष्ट कर लिया गया। इन सामाजिक टकरावों के प्रति राज्य ने तटस्थ रवैया अपनाया; 1840 के दशक में चार्टिज्म की समस्या के समाधान में सरकार के रवैये को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। प्रजातंत्र के विकास के साथ राज्य की एक नई अवधारणा सामने आई। अब भूमिपतियों के पुराने समाज के

हितों की रक्षा करने के लिए, जनता को दबाने के लिए इसका उपयोग नहीं किया जाता था। संसदीय मत संग्रह के विस्तार से नए प्रकार का सुझाव सामने आया। **लैसेजफेयर** के अप्रतिबंधित व्यक्तिवाद के स्थान पर कल्याणकारी राज्य की एक नई अवधारणा सामने आई जिसमें यह बात उभर कर सामने आई कि समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले सामूहिक राज्य के ढांचे के अन्तर्गत ही प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम स्वतंत्रता दी जा सकती है।

लगातार एकीकृत होते हुए और परिष्कृत ब्रिटिश राष्ट्र और ब्रिटिश राज्य के बीच का संबंध बहुत स्पष्ट नहीं है। वेन्थम जॉन फिल्डिंग और पैट्रिक कोलोहन जैसे विचारकों के अनुसार एक अधिक एकीकृत राष्ट्र के द्वारा ही एक निगरानी राज्य का निर्माण संभव है। अन्य विचारकों का यह मानना है कि व्यापक राष्ट्रीय सौहार्द और एकरूपता से ब्रिटेन के शासकीय संभ्रांतों के नियंत्रण और वर्चस्व में बढ़ोत्तरी हुई थी। सामाजिक कल्याण या राष्ट्रीय प्रतिरक्षा जैसे किसी भी मामले में राज्य द्वारा की गई कार्यवाई से शक्तिशाली राज्य और प्रत्येक नागरिक के बीच के संबंध का नया मुद्दा सामने आया था। हालांकि ब्रिटिश राष्ट्र-राज्य ने यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया कि सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना से राष्ट्रवाद का प्रसार होता है और राष्ट्र-राज्य मजबूत बनता है। राज्य राष्ट्रीय जीवन में तनावों को दूर करने के लिए आर्थिक और सामाजिक न्याय की दिशा में कई प्रकार के उपाय करता है।

बोध प्रश्न 1

1) ब्रिटिश राष्ट्रीय एकीकरण के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारकों का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में ब्रिटिश राज्य की क्या भूमिका थी ?

....

....

....

....

....

....

....

17.3 फ्रांसीसी राष्ट्र-राज्य का निर्माण

जैसा कि आपने देखा कि ब्रिटिश राज्य का निर्माण धीरे-धीरे कई शताब्दियों में हुआ। यह एक लगातार चलने वाली प्रकिया थी। वहीं दूसरी ओर फ्रांस में यह प्रक्रिया 1789 की क्रांति के बाद शुरू हुई। क्रांति ने सिद्धांततः जिस राष्ट्रीय एकता की बात की थी उसे 19वीं शताब्दी में राज्य द्वारा यथार्थ में बदला जा सका। शहरीकरण और औद्योगीकरण के साथ-साथ साक्षरता प्रसार, आर्थिक एकीकरण, अलग-अलग सांस्कृतिक अस्मिताओं के समरूपीकरण जैसी सामाजिक और सांस्कृतिक क्रियाओं से भी इसे मदद मिली।

17.3.1 केंद्रीकृत राज्य तंत्र का जन्म

15वीं शताब्दी से ही राज्य सत्ता के केंद्रीकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। 100 वर्षीय युद्ध, धार्मिक युद्धों और फ्रॉन्डे विद्रोह जैसे संकटों के फलस्वरूप मध्ययुगीन राजतंत्र के स्थान पर निरंकुश राजतंत्र आकार ग्रहण करने लगा। एक स्थाई सेना, विकसित वित्तीय तंत्र, एक नौकरशाही राज्य के विशेषीकृत विभाग और वेतन भोगी शाही अधिकारियों की संस्था, जिनके पास व्यापक प्रशासनिक वित्तीय और न्यायिक अधिकार थे, आदि फ्रांसीसी निरंकुशतावाद के अनिवार्य संस्थागत लक्षण थे। राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तरों पर फ्रांस के व्यापक राज्य ढांचे ने प्रातिनिधिक संस्थानों की भूमिका सीमित कर दी। राज्य ने केंद्रीय प्रातिनिधिक सभा, इस्टेट जेनरल से कोई सलाह नहीं ली (1614 और 1789 के बीच इसकी कोई बैठक नहीं हुई)। किसी प्रातिनिधिक सभा के अभाव में राजाओं को अपने साम्राज्य में अपनी नीतियों के लिए समर्थन जुटाने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता था। सरकार वाणिज्यिक और उत्पादन की गतिविधियों में सक्रिय रूप से हिस्सेदारी लेती रही और ब्रिटेन की तरह संरक्षणवादी कानूनों की आवश्यकता नहीं पड़ी। कोई भी ऐसी वैकल्पिक संस्था नहीं थी जिसके जरिए सम्राट के विरोध में संगठित हुआ जा सके। हालांकि राजनैतिक सत्ता का केंद्रीकरण काफी हद तक हो चुका था परंतु फ्रांस एक राजनैतिक इकाई बना रहा और 1789 में क्रांति की शुरुआत के समय यह एक पूर्ण विकसित राष्ट्र नहीं बन सका था। संस्कृति, पारिवारिक संरचना, सामाजिक विश्वास और आर्थिक गतिविधियों की दृष्टि से फ्रांस में पर्याप्त विविधता थी।

17.3.2 प्रतिद्वंद्वी अस्मिताएं

भौगोलिक इकाइयों के रूप में फ्रांस और ब्रिटेन में पर्याप्त विभिन्नता थी। फ्रांस क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से पूर्व-आधुनिक यूरोप में सबसे बड़ा था। यह एटलांटिक और भूमध्य सागर के बीच फैला हुआ था। यहां पर्याप्त विविधता थी परंतु संचार और परिवहन बहुत ही पिछड़ा हुआ था। शहरी और ग्रामीण जीवन के बीच के अंतर और उत्तर-पूर्व तथा देश के अन्य हिस्सों के बीच क्षेत्रीय आर्थिक विविधता के कारण 19वीं शताब्दी के अंत तक फ्रांस एक आर्थिक इकाई नहीं बन सका। उस समय तक यहां स्थानीय और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था ही कायम थी।

आधिकारिक रिपोर्टों से यह पता चलता है कि 1870 के दशक के अन्त तक फ्रांस में मानकीकृत फ्रांसीसी भाषा आधे से अधिक लोगों के लिए विदेशी भाषा थी जो ब्रिटन, बास्क, फ्लेमिश और जर्मन भाषाएं बोलते थे। 19वीं शताब्दी के अंत में फ्रांसीसी भाषा का उत्थान हुआ और यह राष्ट्रीय भाषा बनी। इसके अलावा सांस्कृतिक दृष्टि से भी कई क्षेत्र बिलकुल अलग थे और सीमा पार के प्रांतों से उनका गहरा संबंध था। 1891 तक पूरे देश में कोई एक मान्य मानकीकृत समय भी नहीं था।

17.3.3 क्रांति और राष्ट्र-राज्य

फ्रांसीसी क्रांति के फलस्वरूप राजनैतिक राज्य को राष्ट्र-राज्य में बदलने की बात सामने आई। राजनैतिक केंद्रीकरण से क्षेत्रीय पहचान की भावना तो पनपने लगी थी परंतु इससे राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सका था। फ्रांस के लोग 'प्रजा' तो बन गए थे परंतु 'नागरिक' न बन सके थे। वे बाशिंदे तो थे परंतु राष्ट्र के निर्माता नहीं। क्रांति की घटनाओं ने उन्हें राजनैतिक अभिनेताओं में बदल दिया और निरंकुश सत्ता और विशेषाधिकार के खिलाफ जनतांत्रिक आंदोलन ने जनता की सम्प्रभुता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। **मानव और नागरिक अधिकारों की उद्घोषणा** और 'वर्गों' के दमन पर सामाजिक फ्रांसीसी राष्ट्रत्व की आधारशिला रखी गई। **अधिकारों की उद्घोषणा** में कहा गया: "सभी प्रकार की संप्रभुता का सिद्धांत अनिवार्यतः राष्ट्र में निहित होता है।"

प्राचीन शासन व्यवस्था के अध्यारोपित राज्य के स्थान पर प्रत्यक्ष शासन पर आधारित एकीकृत राष्ट्रीय राज्य की स्थापना हुई। कराधान, सार्वजनिक कार्यों, न्याय, प्रशासनिक उपायों आदि क्षेत्रों में इसका व्यापक प्रभाव पड़ा जिन्होंने आनेवाले दशकों में फ्रांस में पूंजीवादी विकास को एक स्वरूप प्रदान किया।

क्रांति राष्ट्रीय पुनरूद्धार की ओर अग्रसर हुई। जैसा कि लिनहन्ट ने बताया है कि इस प्रक्रिया में अतीत से
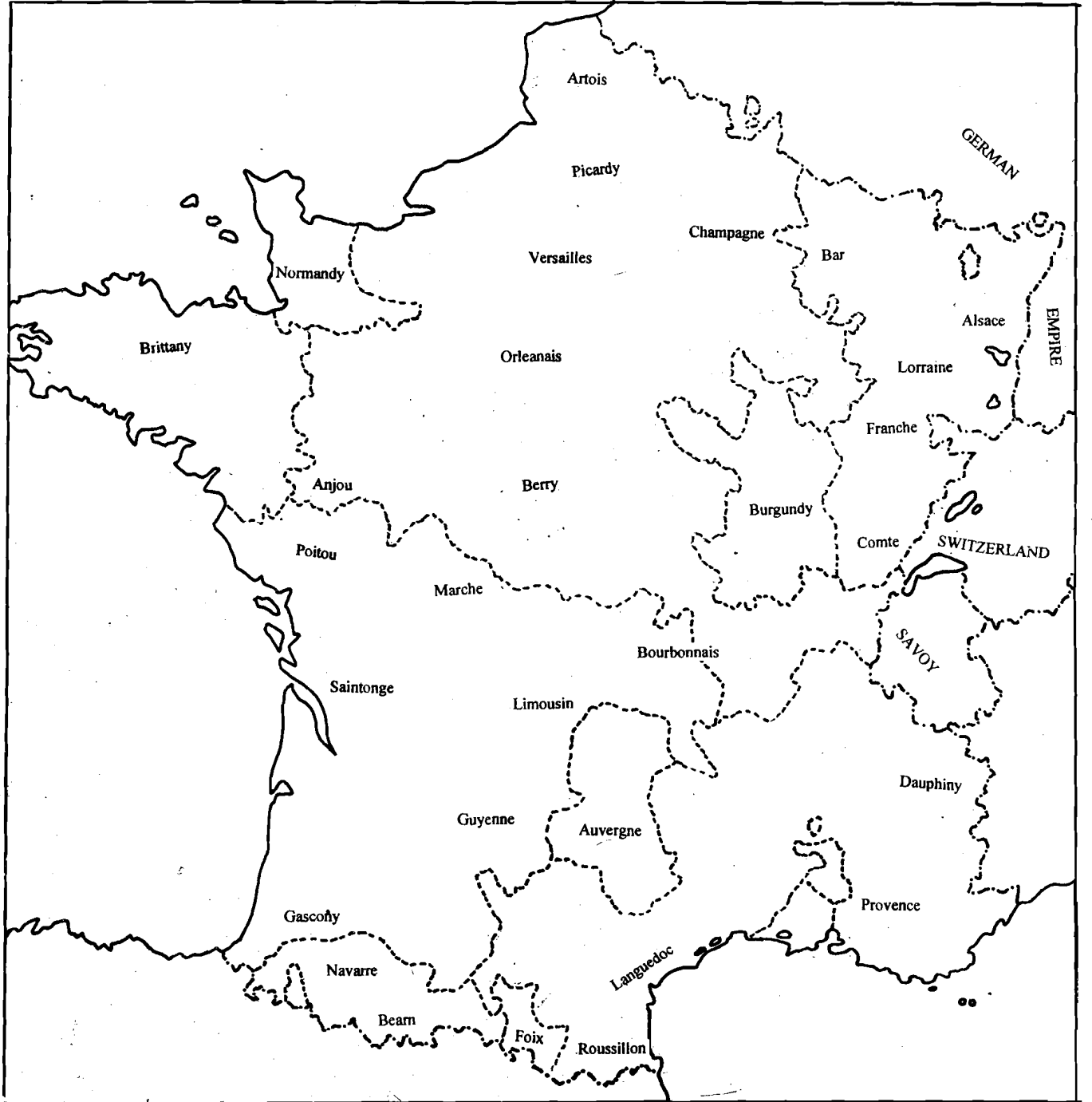
मानचित्र 2 : 18वीं शताब्दी में फ्रांस

छुटकारा पाया गया और एक नए प्रतीक, भावना और शब्दावली का विकास तथा राष्ट्रत्व की अवधारणा को केंद्र में रखा गया। क्षेत्रीय ध्वजों के स्थान पर एक तिरंगे राष्ट्रीय ध्वज का निर्माण किया गया। पेरिस और क्षेत्रीय प्रकाशनों (**जनरल डे पेरिस, मरक्यूरे, द गजट,** ब्रिसॉट का **पेट्रियोट, फ्रांसेसे** आदि जैसे अखबार) द्वारा प्रचारित राजनैतिक संस्कृति और छापाखानों के आगमन से लोग राष्ट्रीय बहसों में शामिल होने लगे। 1789 में चेनियर के प्रमुख मंचीय नाटक चार्ल्स IX ने राष्ट्रीय विधि और संविधान के नाम पर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। **प्राइजे डे ला बैस्टिले, चेने पैट्रियोटिक, फेटे डे ला लिबर्टे** जैसे कई नाटकों के द्वारा दर्शकों को राष्ट्र के करीब लाया गया। इसके बावजूद क्रांति द्वारा राष्ट्रीय प्रश्नों को पूर्णतः नहीं सुलझाया जा सका। 1870 में जाकर (जब तीसरा गणतंत्र स्थापित हुआ) औपचारिक बुर्जुआ दृष्टि से जनतांत्रिक वैधता का सिद्धांत वास्तविक रूप धारण कर सका। 19वीं शताब्दी के अंत तक दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाली अधिकांश ग्रामीण जनता राष्ट्रीय समुदाय का सदस्य नहीं थी। राष्ट्र निर्माण की गति धीमी थी।

नेपोलियन कालीन राज्य ने राष्ट्र और राज्य के बीच एक नए प्रकार की समता स्थापित की। राष्ट्रत्व के निर्माण के लिए राज्य को एक प्रमुख एकीकृत शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया गया था। राष्ट्र के प्रति निष्ठा का मतलब राज्य के प्रति समर्पण माना गया। सामंतवाद का उन्मूलन, कानून के समक्ष समानता, भ्रष्ट कार्यालयों और अनुवांशिक पदों की समाप्ति और उद्यम की स्वतंत्रता जैसे निर्णायक सुधार इसी दृष्टि से लागू किए गए। कानून बनाकर निजी सम्पत्ति के सिद्धांतों, पारिवारिक सत्ता और प्रशासनिक केंद्रीकरण को बढ़ावा दिया गया। शिक्षा प्रणाली में बुर्जुआ विचारधारा को प्रमुखता दी गई जिसमें योग्यता आधारित सामाजिक संभ्रांतीकरण को बढ़ावा दिया गया। इस प्रकार नेपोलियनकालीन राज्य के आधुनिकीकरण और दृढ़ीकरण की नीतियों के फलस्वरूप पूर्ण विकसित बुर्जुआ राज्य के उदय की आधारशिला रखी गई जो 19वीं शताब्दी के अंत तक कायम रही।

17.3.4 वर्ग अस्मिताओं का निर्माण

हालांकि पश्चिमी यूरोप के कई देशों में सामाजिक और आर्थिक आधुनिकीकरण हो रहा था परंतु फ्रांस में होने वाले विकास की विशेषता यह थी कि वहां राज्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था और वर्ग अस्मिताओं के विकास में क्रांति की विचारधारात्मक विरासत का महत्वपूर्ण योगदान था।

जहां तक बुर्जुआ वर्ग की वर्गीय पहचान का सरोकार है, फ्रांस में ब्रिटेन के समान राजनैतिक मामलों में सक्रियता से संलग्न बुर्जुआ वर्ग का स्वरूप बहुत स्पष्ट नहीं था। जैसा कि ब्रिटेन में एन्टीकॉर्नलीग से स्पष्ट था, भूमि संबंधी हितों से इनकी पहचान अलग नहीं की जा सकती थी । फ्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग अन्य यूरोपीय देशों के बुर्जुआ वर्ग से इस मायने में अलग था कि उनका राज्य से निकट का संबंध था। फ्रांसीसी अर्थव्यवस्था के धीमे रूपांतरण के कारण छोटे व्यापारों का स्थायित्व और लगभग स्थिर जनसंख्या के कारण 1830 के बाद बुर्जुआ संभ्रांत वर्ग के लोगों को उच्चस्थ राजनैतिक और नौकरशाही पदों पर आसीन होने में मदद मिली। इनका विस्तार और प्रभाव राज्य के प्रभाव के साथ जुड़ गया। इस प्रकार फ्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग लगातार राज्य के हित को पूरा करने और संरक्षित करने का प्रयास करते रहे।

फ्रांस की कृषक जनसंख्या को एक वर्ग नहीं कहा जा सकता क्योंकि कृषि समाज कई समाजों से मिलकर बना था और उनमें भौगोलिक ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी पर्याप्त भिन्नता थी। राज्य की राजनीति और नीतियों का प्रभाव उन पर पड़ा और उनमें कुछ बदलाव आया। 1789 का **ग्रैन्डे पेर** (बड़ा डर) और 1790 के दशक के वेन्डे और शोआन विद्रोह इसके उत्तम उदाहरण हैं। फरवरी 1848 के बाद पेरिस की राजनैतिक घटनाओं ने ग्रामीण जीवन को प्रभावित करना शुरू किया। राजनैतिक लामबंदी के जरिए कृषकों में वर्ग चेतना पैदा होने लगी। 45% भूमिकर अधिभार लगाए जाने का एक साथ विरोध किया गया और इसे शहरों द्वारा किसानों के शोषण के रूप में देखा गया। अप्रैल 1848 में किसानों ने बड़ी संख्या में मतदान में हिस्सा लिया। लुई बोनापार्ट के लिए किसानों के समर्थन और 1849 तथा 1851 के बीच जन राजनीतिकरण कृषक वर्ग के राजनैतिक संघटन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। 1870 ओर 1880 के दशकों में हुए राजनैतिकरण के कारण किसान संगठनों का महत्व तो बढ़ा परंतु इससे स्वतंत्र वर्ग चेतना का निर्माण नहीं हो सका।

19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में काफी दिनों तक चली आर्थिक मंदी फ्रांसीसी मजदूर वर्ग के इतिहास में एक निर्णायक युद्ध साबित हुआ। तैयार वस्तुओं के उत्पादन के क्षेत्र में सघन अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिता, गिरती कीमतों, नई प्रौद्योगिकी और प्रतियोगी विधियों के कारण बड़े शहरी और हस्तशिल्प उद्योग नष्ट हो गए। छोटे कपड़ा और धातु उत्पादकों की पूंजी डूब गई और भूमिपति तथा दुकानदार दरिद्र हो गए। उन्होंने कई संगठन बनाए और राज्य से सहायता और सुरक्षा की मांग की। ऐसा लगता है कि फ्रांसीसियों को पैत्रिकवाद और निरंकुशतावाद के सिवा श्रम संबंधों के लिए कोई दूसरी प्रभावी व्यवस्था नहीं मिल पा रही थी। विभिन्न प्रतीकों और त्योहारों के जरिए इस युग में सर्वहारा वर्ग की पहचान बनाई गई। मजदूरों ने प्रतिबंधित लाल झंडे और गान**ला इन्टरनेशनल** को अपनाया जो बुर्जुआ गणतंत्र के तिरंगे और **मार्सेलेस** (फ्रांसीसी राष्ट्रीय गीत) से अलग था। 1880 से **मुर डे फेडरेस** में वार्षिक रैलियां आयोजित होने लगीं। 1879 में मार्सेल्स में आयोजित मजदूरों के एक सम्मेलन में खुले तौर पर मार्क्सवादियों और प्रोधोनवादियों के संयुक्त कार्यक्रम को अपनाया गया। मजदूरों के इन संगठनों पर राज्य के दृष्टिकोण का काफी प्रभाव पड़ा। 1895 और 1914 के बीच 20% औद्योगिक संघर्षों में फ्रांसीसी मजदूरों ने राज्य को शामिल किया।

उत्तर-क्रांतिकारी राज्य ने समाज के नियंत्रक की भूमिका अदा की। इसने सामाजिक और आर्थिक मतभेदों में हस्तक्षेप किया। जिस समय ब्रिटेन जैसे अन्य प्रमुख जनतांत्रिक राज्य नागरिक समाज की गतिविधियों से अपना हाथ खींच रहे थे उस समय फ्रांस स्वायत्त संस्थाओं के विकास को जान-बूझकर रोक रहा था। राज्य के हस्तक्षेप के कारण सामाजिक मतभेदों का अनिवार्य तौर पर राजनीतिकरण हुआ और प्रत्येक सामाजिक समूह राज्य को प्रभावित करने की कोशिश करने लगा।

17.3.5 राज्य और राष्ट्रीय एकीकरण

1830 के बाद फ्रांस के सभी शासकों ने एक एकीकृत राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया में सीधे तौर पर हिस्सा लिया। राज्य ने अपने साधनों से आगे बढ़कर तथा तात्कालिक आर्थिक हितों की पूर्ति न होने से भी केवल राष्ट्रीय एकता के लिए संचार व्यवस्था की स्थापना की। राष्ट्रीय हित में मुनाफे की चिंता नहीं की गई। पुरानी शासन व्यवस्था के तहत पहली मुख्य सड़क व्यवस्था कायम की गई जो 1840 के दशक के अन्त में पूरी हुई। राज्य शक्ति को मजबूत बनाने के लिए मुख्य रेलवे व्यवस्था भी कायम की गई। इससे प्रशासनिक संप्रेषण या सेनाओं के आवागमन में सुविधा हुई। परंतु केवल रणनीतिक संचार व्यवस्था कायम होने से राष्ट्र नहीं बन सकता। स्थानीय सड़कों को नियंत्रित करने और इन्हें बनाने में छूट देने के कानून पारित किए गए। 1880 के दशक में ऐसी सड़कों का निर्माण किया गया जो सभी मौसमों में चालू रह सके। प्रथम विश्व युद्ध तक आते-आते फ्रांस के दूरस्थ क्षेत्र भी राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक गतिविधियों में शामिल हो सकते थे। सड़कों का जाल बिछाने से सीमाएं एक दूसरे के करीब आ गईं। राज्य प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र के आर्थिक एकीकरण का प्रयास कर रहा था।

बैंके डे फ्रांस (फ्रांसीसी बैंक) ने बड़ी संख्या में अपनी प्रांतीय शाखाएं खोलीं। इसके परिणामस्वरूप स्थानीय स्टॉक एक्सचेंज और वाणिज्यिक संस्थाएं खड़ी होने लगीं। नए शहरों और कारखानों का निर्माण हुआ और यहां फ्रांसीसी समाज नया रूप ग्रहण करने लगा। सेना ने भी राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को जानबूझकर सेना में एक साथ रखा गया और उन्हें घरों से दूर तैनात कर दिया गया। सेना की टुकड़ियों को देश के विभिन्न प्रांतों में घुमाया जाता रहा। कृषक सैनिक अपरिचित क्षेत्रों और रीति रिवाजों को देखकर चकित भी होते थे और उन्हें अपने राष्ट्र की विविधता पर गर्व भी होता था।

लोगों में एकता की भावना भरने और राष्ट्रीय स्मृति को फिर से ताजा करने के लिए फ्रांसीसी सरकार ने बड़े उत्सवों का आयोजन किया। 1830 की क्रांति की वर्षगांठ मनाई गई; 1880 में गणतंत्र ने 14 जुलाई का उत्सव आरंभ किया; गणतंत्र के नायकों (जैसे 1885 में विक्टर ह्यूगो) का समारोहपूर्ण विशिष्ट सम्मान; 1889 में क्रांति की शताब्दी महोत्सव और 1867, 1889 (इसी वर्ष पेरिस में एफिल टावर का निर्माण किया गया था) और 1900 में प्रदर्शनियां आयोजित की गईं। इसी प्रकार के आयोजन पूरे फ्रांस में शहर-शहर और गांव-गांव में आयोजित किए गए। इन आयोजनों में सेना की धुन बजाई जाती थी, आतिशबाजी छोड़ी जाती थी और लोग गलियों तथा नुक्कड़ों पर उत्सव मनाते थे।

आर्थिक और सांस्कृतिक एकीकरण के इन प्रभावों को राज्य और इसकी संस्थाओं ने प्रचारित-प्रसारित किया। राज्य, चर्च या निजी क्षेत्र के विद्यालयों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और उन्होंने फ्रांसीसी भाषा और देशभक्ति के मूल्यों को बढ़ावा दिया। **ले टूर डे ला फ्रांस पार डेक्स एन्फैंन्ट्स** (1877) स्कूल स्तर की सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक थी। 1901 तक इसकी 60 लाख प्रतियां बिक चुकी थी। इसने युवाओं में देशभक्ति की भावना पैदा की। राज्य ने फ्रांसीसी भाषा का भी प्रचार-प्रसार किया और यह पूरे राष्ट्र की भाषा बन गई। यह फ्रांस की विभाजक संस्कृति और अलगाववादी तत्वों पर फ्रांसीसी राष्ट्र-राज्य की विजय थी।

बाहरी खतरों के जरिए भी फ्रांसीसी राष्ट्र-राज्य की भावना मजबूत हुई। फ्रांसीसी क्रांति के दौरान वालमी में नागरिकों की सेना की महान विजय के द्वारा इस भावना को मजबूत बनाने में मदद मिली। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जर्मन आक्रमणकारियों का विरोध करते हुए पूरा राष्ट्र एकजुट हो गया और विभाजित देश में एकता का स्वर सुनाई देने लगा। हाल के वर्षों में डि गाल की फ्रांसीसी राष्ट्रीयता भी एक राष्ट्रवादी राजनैतिक आंदोलन था जो राज्य में चारों ओर आयोजित था। सोवियत यूनियन के सैन्य खतरे और संयुक्त राज्य अमेरिका की आर्थिक और सांस्कृतिक चुनौतियों का सामना करने के लिए जेनरल डि गाल ने फ्रांस के लिए मजबूत राष्ट्र-राज्य की जरूरत महसूस की ताकि देश की स्वायत्ता बरकरार रखी जा सके।

उसने न केवल सैन्य और आर्थिक शक्ति को मजबूत बनाने की वकालत की बल्कि फ्रांसीसी भाषा के 'आंग्लिकरण' और संस्कृति के अमेरिकीकरण के दोहरे खतरे से बचने के लिए फ्रांसीसी संस्कृति के पुनरुद्धार की भी बात की।

बोध प्रश्न 2

1) फ्रांसीसी राष्ट्र-राज्य के निर्माण में फ्रांसीसी क्रांति की भूमिका पर विचार कीजिए। 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

2) क्रांति के पहले और क्रांति के बाद फ्रांसीसी राज्य ने राष्ट्रीय एकता कायम करने की दिशा में क्या भूमिका निभाई ?

....

....

....

....

17.4 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार ब्रिटिश और फ्रांसीसी राष्ट्र-राज्यों का उदय हुआ। दोनों ही देशों में केंद्रीकरण की प्रक्रिया 16वीं शताब्दी में शुरू हो चुकी थी। परंतु इंग्लैंड में राष्ट्रीय एकता की अवधारणा अधिक विकसित और लगातार चलने वाली प्रक्रिया थी जबकि फ्रांस में फ्रांसीसी क्रांति के पहले तक यह मात्र एक राजनैतिक एकीकरण था। राजनैतिक बहसों से फ्रांसीसी राष्ट्र-राज्य को सैद्धांतिक ढांचा प्राप्त हुआ। राज्य ने आर्थिक एकीकरण का काम पूरा किया। ब्रिटेन में राष्ट्र-राज्य का निर्माण एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया थी और आर्थिक एकीकरण में राज्य के साथ-साथ व्यापारिक समुदायों और उत्पादकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

वेल्स, स्कॉटलैंड और आयरलैंड को इंगलैंड में मिलाए जाने से ब्रिटिश राष्ट्र-राज्य का उदय हुआ और एक बहु राष्ट्रीय राज्य कायम हुआ। पूंजीवादी विकास और आर्थिक विकास की प्रक्रिया के द्वारा अलग-अलग अस्मिताओं की समस्याओं को काफी हद तक सुलझा लिया गया। हालांकि फ्रांसीसी राज्य को पूंजीवादी विकास का वाहक बनना पड़ा।

आपने यह भी देखा कि संसद और राजनैतिक दलों जैसी प्रातिनिधिक संस्थाओं के जरिए ब्रिटिश राज्य में पृथक वर्ग अस्मिताओं का विलयन हो गया। फ्रांस में वर्ग अस्मिताओं और वर्ग मतभेद राज्य से ही जुड़े रहे और इन्होंने फ्रांसीसी राष्ट्र-राज्य की प्रकृति निर्धारित की और इसका संबंध सामाजिक मुद्दों से भी बना रहा।

17.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 17.2.1

1) देखिए उपभाग 17.2.3

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 17.3.3

1) देखिए उपभाग 17.3.1 और 17.3.5

इकाई 18 राष्ट्र-राज्यों का निर्माण-2: जर्मनी और इटली

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

इस खंड की पिछली इकाइयों में आप राष्ट्रवाद के विचारों के विकास और राष्ट्र-राज्यों के उदय का अध्ययन कर चुके हैं। आप यह भी पढ़ चुके हैं कि 16वीं और 17वीं शताब्दियों के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस में राष्ट्र-राज्यों का निर्माण कैसे हुआ। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- जर्मन राष्ट्रीय विचारों के विकास का विवेचन कर सकेंगे;
- जर्मन राष्ट्रवाद की राजनैतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे;
- इतालवी राष्ट्रवाद की राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि की चर्चा कर सकेंगे; और
- राष्ट्र-राज्यों के निर्माण में युद्ध और जन संगठनों की भूमिका पर विचार कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप पिछली इकाइयों में पढ़ चुके हैं ब्रिटेन और फ्रांस जैसे पुराने राज्यों में ऐतिहासिक परिस्थितियों द्वारा निर्मित राज्य की सीमाओं के भीतर ही राष्ट्रवाद का विकास हुआ। फ्रांसीसी क्रांति ने ही न केवल प्रजातंत्र की बल्कि उस राष्ट्रवाद के आदर्श का भी निर्माण किया जिसमें राष्ट्र को 'एक' और 'अविभाज्य' माना गया। जर्मनी और इटली में जर्मन और इतालवी भाषा भाषी लोगों के बीच राजनैतिक और क्षेत्रीय एकता न होने के कारण सबसे पहले राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता हुई। इसलिए जर्मन और इतालवी राष्ट्रवाद का इतिहास जर्मन और इतालवी भाषा भाषी लोगों का एक राष्ट्र-राज्य के रूप में एकीकृत होने के संघर्ष का इतिहास है। इन दो प्रमुख राज्यों में राष्ट्रवाद का इतिहास ऐसे राजनैतिक आंदोलनों और सांस्कृतिक परिवेश की कहानी है जिसमें घरेलू असंतोष और राजनैतिक विभेदीकरण को दूर कर तथा अंतरराष्ट्रीय कूटनीति और युद्ध के द्वारा भी राष्ट्र-राज्य का निर्माण किया गया। जर्मनी और इटली में, 19वीं शताब्दी के मध्य में घरेलू स्तर पर आर्थिक और राजनैतिक एकीकरण की प्रक्रिया द्वारा राष्ट्र-राज्य की एकता कायम की गई। परंतु अंततः घरेलू प्रतिद्वंद्वियों और अंतरराष्ट्रीय शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए सेना की मदद लेनी पड़ी। वस्तुतः 19वीं शताब्दी के मध्य में राष्ट्र-राज्यों के निर्माण में प्रशा और पिडमौंट-सार्डिनिया ने पहल की और उन्होंने कुशल कूटनीति द्वारा तथा युंद्ध लड़कर राष्ट्रीय एकता कायम की तथा दूसरी ओर जनता की राष्ट्रीय भावनाओं और कभी-कभार उभरे क्रांतिकारी उभारों का बड़ी ही कुशलता से उपयोग किया।

18.2 जर्मन राष्ट्रवाद

फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन की सेना द्वारा होली रोमन साम्राज्य को नष्ट किए जाने से यूरोप और जर्मन राज्यों के राजनैतिक मानचित्र के हुए सरलीकरण से लगभग 18वीं शताब्दी के अंत में आधुनिक जर्मन राष्ट्रवाद का मार्ग प्रशस्त हुआ। हालांकि आधुनिक राष्ट्रवाद का संबंध पूंजीवाद और बुर्जुआ उदारवाद के उदय के साथ जोड़ा जाता है जिसमें राष्ट्रों की भाषाई या जातीय परिभाषा निर्धारित की गई परंतु राष्ट्रवाद की शुरुआत काफी पहले हो चुकी थी।

18.2.1 जर्मन राष्ट्रीय विचार

आरंभिक मध्य काल के दौरान टकराव और मेल की प्रक्रिया द्वारा कई जर्मन कबीले और सेल्ट तथा स्लाव एक सूत्र में पिरो दिए गए और उन्हें जर्मन माना जाने लगा। 19वीं शताब्दी के बाद से इस्टर्न फ्रैंक्स के साम्राज्य में रहने वाले बड़े कबीलों को 'जर्मन' के रूप में जाना गया। रोमन और स्लावियाई भाषा समूहों से इन्हें अलग चिन्हित करने के लिए ऐसा किया गया।

1000 ई. के बाद जर्मन शब्द का विस्तार हुआ और यह जर्मन राष्ट्र की जातीयता का प्रतीक बन गया। जर्मन राष्ट्र का इतिहास प्रथम सहस्राब्दी के उत्तरार्ध में आरंभिक सामंती युग से शुरू होता है। मध्य काल में राष्ट्रीय भावना के कुछ ज्यादा प्रमाण नहीं मिलते हैं। हालांकि कुछ इतिहासकारों ने बड़े राजतंत्रीय राज्यों में सामंती राष्ट्रवाद का विकास दिखाया है। मध्यकालीन शाही विचार, जिस पर जर्मन साम्राज्य आधारित था, एक सार्वभौम विचार था और इस अवधि में पूरब में जर्मन औपनिवेशीकरण और आक्रमण धार्मिक उद्देश्यों से नियंत्रित होते थे।

8वीं और 9वीं शताब्दी में जर्मन भाषा के लिए *ड्यूश* शब्द का इस्तेमाल किया गया। 11वीं शताब्दी में जाकर *ड्यूश* शब्द का इस्तेमाल जर्मन भाषी समूहों और उनके क्षेत्रों के लिए किया जाने लगा। यहां तक कि पूर्व और उत्तर-पूर्व के जर्मन औपनिवेशीकरण को आगे बढ़ाने वाला ट्यूटॉनिक ऑडर का चार्टर भी किसी प्रकार की जर्मन राष्ट्रीय चेतना नहीं जगा सका। यहां तक कि सैक्सन, फ्रैंक, बवोरियाई, स्वाबियाई जैसी जर्मन प्रजातियों में जब आपस में खून के रिश्ते से जुड़ने की भावना पनपने लगीं थीं उस समय भी उनमें जर्मन होने की चेतना नहीं थी। जर्मन पुनर्जागरण के रचनाकारों के राष्ट्रवाद ने एक नई चेतना पैदा की, वह 1455 में प्राप्त टैसीट्स जर्मेनिया की पांडुलिपि पर आधारित थी। इस चेतना को इसाई धर्म और रोमन लोगों से [illegible]

पुराना और श्रेष्ठ समझा गया। लूथरवाद और जर्मन राष्ट्रवाद के उदय के बीच क्षीण संबंध था क्योंकि उनका संघर्ष मुख्य रूप से रोम में कैथोलिकवाद के खिलाफ था जिसे वे ईसा-विरोधी मानते थे और यह लूथरवाद राष्ट्रीय मुद्दों तक सीमित नहीं था। प्रोटेस्टेंटों द्वारा बाइबल के जर्मन भाषा में अनुवाद से आधुनिक जर्मन का तो विकास हुआ परंतु जर्मन राष्ट्रवाद का विकास वस्तुतः जर्मन स्वछंदतावाद के साथ शुरू हुआ। जर्मनी में पुनर्जागरण और धर्म सुधार आंदोलन मुख्यतः विद्वानों और धर्मशास्त्रियों तक सीमित थे। अतः पश्चिमी यूरोपीय देशों की तरह राजनीति और समाज को या विश्व साम्राज्य के मध्ययुगीन विचार को समाप्त करने में ये आंदोलन असफल रहे। जर्मन राष्ट्रवाद 18वीं शताब्दी में शुरू हुआ और समुदाय का 'प्राकृतिक' गठजोड़ तथा सगोत्रता इसका आधार बना; यह किसी अनुबंध या नागरिकता की अवधारणा पर आधारित नहीं था। जर्मन राष्ट्रवाद 'लोक' की अनिश्चित अवधारणा पर आधारित था जिसे पहली बार जर्मन मानवतावादियों ने विकसित किया था। हर्डर और जर्मन स्वछंदतावाद ने जर्मन *फोक* की अवधारणा को और भी स्पष्ट किया। रूसियों की तरह जर्मन राष्ट्रवाद भी राष्ट्र की 'आत्मा' या 'लक्ष्य' से पूर्वाग्रह ग्रस्त था क्योंकि इसका संबंध सामाजिक और राजनैतिक यथार्थ से नहीं था और नीति निर्माण तथा सरकार की अपेक्षा शिक्षा और अधिप्रचार के द्वारा इसका माहौल बनाया गया था।

मार्टिन लूथर द्वार पोप की सत्ता को अस्वीकार किए जाने से राष्ट्रीय चेतना का आधार निर्मित हुआ। 1486 में पहली बार जर्मन राष्ट्र के लिए पवित्र रोमन साम्राज्य अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया और 16वीं शताब्दी में इसका आम प्रयोग होने लगा। सबसे पहले लूथर, उलरिख वोन हटेन और मानवतावादियों ने 'जर्मन राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किया। हालांकि जर्मन स्वछंदतावादियों और बुद्धिजीवियों ने 'सांस्कृतिक राष्ट्र' (कल्चर नेशन) की अवधारणा के आधार पर राष्ट्रवाद की जातीय और भाषाई परिभाषा विकसित की परंतु राष्ट्र-राज्य के निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया जटिल ऐतिहासिक वास्तविकताओं से होकर गुजरी जिसका उल्लेख हम बाद में करेंगे।

18.2.2 राजनैतिक पृष्ठभूमि

नोपोलियन के युद्धों की समाप्ति के समय जर्मनी का राजनैतिक विखंडीकरण अंशतः समाप्त हुआ। होली रोमन साम्राज्य की समाप्ति के बाद संप्रभु जर्मन राज्यों की संख्या 300 से घटकर 38 हो गई। प्रत्येक जर्मन राज्य की स्वतंत्रता और संप्रभुता को कायम रखने के लिए 1815 में जर्मन संघ (Bund) की स्थापना हुई। वियेना कांग्रेस (सम्मेलन) के बाद यूरोपीय व्यवस्था का निर्माण हुआ। इस व्यवस्था का निर्माण आस्ट्रिया, प्रशा और रूस के संकीर्णवादी राजतंत्रों द्वारा किया गया था जिनका उद्देश्य यूरोप में जनतांत्रिक बिचार के प्रसार को नियंत्रित करना था। इस नीति के प्रमुख निर्माता आस्ट्रिया के चांसलर प्रिंस मेटरनिख ने 1820 और 30 के बीच जनतांत्रिक विचारों और आंदोलनों तथा शाही सत्ता को दी गई चुनौतियों को दबाने में सक्रिय भूमिका निभाई।

19वीं शताब्दी में जर्मनी का राजनैतिक एकीकरण कठिन था क्योंकि संकीर्णवादी शासक उदारवादी विचारों के खिलाफ थे। 1815 के बाद जर्मन राज्यों में प्रतिनिधिक संस्थाओं की स्थापना की गई और उन्हें काफी सीमित अधिकार दिए गए। 1848 के बाद अधिकांश जर्मन राज्यों में जनतांत्रिक सुधार लागू किए गए। प्रशा में सुधार की गति धीमी थी क्योंकि मत देने का अधिकार तीन प्रकार के आयकर दाताओं को समान रूप से प्रदान किया गया। यह विभाजन आयकर देने के परिमाण पर आधारित था। समृद्ध अल्पसंख्यक एक तिहाई आयकर देते थे। अतः प्रशा की विधाई संस्थाओं में उन्हें एक तिहाई मत देने का अधिकार प्राप्त था। प्रशा में प्रतिनिधित्व की यह व्यवस्था 1918 तक जारी रही और इसने एक पिछड़ी राजनैतिक व्यवस्था को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

जर्मन एकीकरण की प्रक्रिया युद्ध और सैनिक प्रयत्नों से प्रभावित हुई। सबसे बड़े जर्मन राज्य प्रशा ने इस प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाई। यदि प्रशा और आस्ट्रिया ने समय पर सेना न भेजी होती तो हेसे-कैसल, ब्रानशेविग और सैक्सोनी जैसे छोटे जर्मन राज्य 1830 के क्रांतिकारी विप्लवों में धाराशाई हो जाते। 1848-49 में एक बार फिर प्रशा और आस्ट्रिया ने जन आंदोलनों को दबाने के लिए सैन्य शक्ति का उपयोग किया।

डेनमार्क के खिलाफ लड़ाई लड़कर स्लेश-विग, हौल्सटीन को जर्मन संघ में शामिल कर लिया गया। 1866 के आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध में आस्ट्रिया की हार के बाद उत्तरी जर्मन संघ का निर्माण हुआ। 1870-71 के फ्रांसीसी-जर्मन युद्ध में फ्रांस की हार के बाद शाही जर्मन सरकार की स्थापना हुई। वयस्क मतदान के आधार पर एक राइखस्टैग या राष्ट्रीय संसद का चुनाव किया गया और संघीय परिषद या बंड्सरैट में शामिल 25 जर्मन राज्यों के प्रतिनिधियों को शाही जर्मनी की नीति बनानी थी। प्रशा का राजा जर्मनी का सम्राट बना और जर्मन सेना और उसका नियंत्रण स्थापित हुआ तथा राइख का चांसलर भी प्रशियन ही बना। शाही राइख ब्रिटेन की तरह एकीकृत राज्य या फ्रांस की तरह केंद्रीकृत राज्य नहीं था। संघीय परिषद या बंड्सरैट में प्रशावासियों की संख्या सबसे अधिक थी परंतु वे बहुमत में नहीं थे। शाही राइख में बवेरिया और बर्टिमबर्ग को शामिल करने के लिए उन्हें कुछ रियायतें दी गई थी। जर्मन राइख को संघ में शामिल होने वाले राज्य या लैंडर और कम्यून या जैमेडेंन के साथ संसाधनों का बंटवारा करना पड़ता था और इसका उपभोग जो 1875-79 में कुल सार्वजनिक उपभोग के 46 % था, 1910-13 में घटकर 36 % रह गया । जर्मन राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया का निर्धारण प्रशा के संकीर्णवाद और सैन्यवाद द्वारा हुआ परंतु शाही राइख के तहत केंद्रीकरण की प्रक्रिया स्थानीय और अपकेंद्री शक्तियों द्वारा प्रभावित हुई।

18.2.3 आर्थिक पृष्ठभूमि

ब्रिटेन की तुलना में जर्मनी का सापेक्षिक पिछड़ापन और ब्रिटिश प्रतियोगिता का सामना करने की आकांक्षा ने बुर्जुआ विचारधारा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और कुछ हद तक बुर्जुआ और जंकर हितों, जर्मन राज्यों और खासकर प्रशा की नीतियों के बीच संतुलन स्थापित किया। हालांकि कृषि अभी भी अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्रोत था परंतु 1833 में सीमा शुल्क संघ या जॉल्वेरियन की स्थापना के बाद 1830 के दशक में कपड़ा उद्योग में महत्वपूर्ण विकास हुआ। 1840 के दशक में औद्योगिक विकास हुआ और रेलवे में निवेश किया गया। 1846-47 में खराब फसल होने और 1848-49 की क्रांतियों के कारण रेलवे आधारित प्रगति में बाधा पड़ी। जर्मन औद्योगीकरण की शुरुआत की अवधि में 1850-1873 के दौरान कोयला, लोहा और रेलवे पर आधारित भारी उद्योगों का विकास हुआ। 1870-73 में जर्मनी के एकीकरण के बाद एक आर्थिक उछाल आया। इसके बाद 1873-95 के दौरान मंदी आने से संकट पैदा हुआ। 1850-74 की अवधि के दौरान कुल उत्पाद 2.5% प्रतिवर्ष की दर से, कुल उत्पाद प्रति व्यक्ति 1.7 % की दर से और औद्योगिक रोजगार 1.6% की दर से बढ़ा। 1875-91 की अवधि में यह वृद्धि क्रमशः प्रतिवर्ष 1.9%, 1.0% और 2.3% थी।

जर्मन और खासकर प्रशा के औद्योगीकरण में रेलवे ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1850 के दशक में प्रशा में लोहा और कोयला क्षेत्रों में विशेष प्रगति हुई। रेलवे निर्माण के लिए घरेलू लोहे और कोयले का इस्तेमाल किया गया और इस प्रकार ब्रिटिश और बेल्जियन आपूर्ति पर इसे निर्भर नहीं रहना पड़ा। 1870 के दशक के आरंभ में रूर कोयला क्षेत्र के अध्ययन से यह पता चलता है कि लोहा उद्योग के कुल उत्पादन के आधे हिस्से का उपयोग रेलवे करता था जबकि लोहा उद्योग रूर से निकाले गए कोयले के एक तिहाई हिस्से का उपयोग करता था। इसके अलावा रेलवे को एक चौथाई माल भाड़ा कोयला उद्योग से ही प्राप्त होता था। रेलवे ने जर्मन अर्थव्यवस्था को एकीकृत करने और आर्थिक प्रगति को तेज करने में मदद की। ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका के रेलवे के विपरीत जर्मन रेलवे ने लोहा और कोयला उद्योगों की मांगों में काफी अंतर पैदा किया।

हालांकि जॉल्वेरिन और रेलवे के तीव्र विकास के कारण जर्मन उद्योग में तीव्र प्रगति हुई परंतु जर्मन एकीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने की दृष्टि से औद्योगिक प्रगति पर्याप्त मजबूत नहीं थी। हालांकि प्रशा में 1816-22 और 1840-49 के बीच निवेश लगभग 51% था, 1851-1860 और 1881-90 के बीच पूरी जर्मनी में इसमें 200% से ज्यादा की वृद्धि हुई। हालांकि जर्मन औद्योगीकरण को फ्रेडरिक लीस्ट की आर्थिक संरक्षणवाद की नीति के अनुकूल होना था, पर एकीकरण के काफी बाद 1879 में उच्च सीमा शुल्क लगाया गया। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में संरक्षणवाद तेजी से बढ़ा और उद्योगपतियों और भूमिपतियों के बीच संधि हुई। जर्मन औद्योगिक वर्ग इतना बड़ा या अर्थव्यवस्था में इतना महत्वपूर्ण नहीं था कि वह जर्मन राजनीति, चाहे वह एकीकरण हो या उदारवादी जनतंत्र हो, में निर्णायक भूमिका अदा कर सके।

19वीं शताब्दी के दौरान जर्मन बुर्जुआ वर्ग का तेजी से विकास हुआ और इसके फलस्वरूप 1800-1830 के बीच उदारवाद के आरंभिक युग में उत्पादन प्रणाली के स्थान पर औद्योगिक क्रांति की कारखाना प्रणाली की स्थापना हुई। खराब प्रबंधन और अपेक्षाकृत अविकसित और राजनैतिक दृष्टि से विभाजित बाजारों के कारण कई समस्याएं पैदा हुईं और कई उद्यम 1800-1830 के बीच दिवालिए हो गए। पूर्व औद्योगिक काल और औद्योगिक क्रांति के बीच केवल इसी सीमित अर्थव्यवस्था में निरंतरता थी कि व्यापारिक संस्थाओं और उनके निवेशकों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। बुर्जुआ समूहों ने परिवहन और औद्योगिक विकास की मांग के लिए आर्थिक प्रगति का जो रास्ता अख्तियार किया वह 1848 के पहले ही पितृभूमि के लिए उद्योग के संदेश से जुड़ गया। प्रशा में 1820 के बाद सार्वजनिक औद्योगिक और तकनीकी विद्यालयों ने राष्ट्रीय राजनैतिक कारणों से उद्योग को बढ़ावा दिया। उदारवादी उद्यमियों ने पितृभूमि के लिए उद्योग के मुद्दे को 1848 के पहले राजनैतिक एकता की अपेक्षाओं के साथ जोड़ दिया। 1850 और 1860 के दशक के इंजीनियरिंग संगठनों ने इन विचारों को और आगे बढ़ाया। जर्मनी में औद्योगिक क्रांति से संबंधित कुछ प्रमुख राजनैतिक निर्णय ऐसे वर्ग द्वारा लिए गए जो आत्मविश्वास से भरा हुआ संगठित और प्रगतिशील बुर्जुआ वर्ग था। कैम्पहाउसेन, सिमेन्स, हैन्समैन, लिस्ट और हरकोर्ट जर्मन उद्यमी थे जिनका मानना था कि वे "एक राष्ट्रीय सभ्यता अभियान" के एक हिस्से थे।

अन्य स्रोतों से यह पता चलता है कि राज्य और प्रगतिवादी बुर्जुआ वर्ग, जिन्होंने "प्रतिनिधि बुर्जुआ वर्ग" की भूमिका निभाई थी, का केंद्रीय और महत्वपूर्ण योगदान था। 19वीं शताब्दी के मध्य में भौतिक और नैतिक प्रगति के विचार ने बुर्जुआ-व्यापारी, अधिकारी और पेशेवर लोगों के विभिन्न समुदायों को एक साथ लाने में मदद की। ब्लैकबॉर्न के अनुसार 1850 और 1860 के दशकों में जर्मनी में हुए परिवर्तन के फलस्वरूप एक चीखने चिल्लाने और आत्म प्रशंसा करने वाला बुर्जुआ वर्ग पैदा हुआ जिन्हें 'नव धनाढ्य वर्ग' कहा जा सकता था। एंगेल्स का मानना था कि ब्रिटेन में एक बुर्जुआ वर्ग था, बुर्जुआ कुलीनतंत्र था और एक बुर्जुआ मजदूर वर्ग था। मैक्स वेबर का मानना था कि जर्मनी में नव धनाढ्य बुर्जुआ वर्ग, कुलीनतंत्र और मजदूर वर्ग था। नई व्यवस्था में आए तीव्र बदलाव के कारण बुर्जुआ वर्ग में एक उग्रता आ गई जिसके कारण 'पूरे समाज में एक खास स्थिति प्राप्त करने के लिए नव धनाढ्यों के दावे अपनी ऊंचाई पर पहुंच गए'। डाहरेन डॉल्फ का मानना था कि जर्मनी एक औद्योगिक समाज था परंतु वह पूंजीवादी समाज नहीं बन सका था। बिचौलिए, छोटे उत्पादकों या मिट्लस्टैंड की बड़ी संख्या में उपस्थिति अधूरे आधुनिकीकरण का ही प्रमाण था। जर्मन इतिहास की दृष्टि से एक अधिक गंभीर बात यह थी कि जर्मन बुर्जुआ वर्ग जर्मन समाज का जनतांत्रीकरण नहीं कर सका। यहां तक कि एक मूक बुर्जुआ आंदोलन भी जनतांत्रीकरण की सम्पूर्ण और समुचित प्रक्रिया का विकल्प नहीं होता। फ्रांस के समान जर्मन राष्ट्र-राज्य उदारवादी जनतांत्रिक विचारों पर आधारित नहीं था और जर्मन उदारवादी बुर्जुआ वर्ग की कमजोरियां इसके लिए ज्यादा जिम्मेदार थीं।

18.2.4 राष्ट्रवाद और प्रजातंत्र

हालांकि जर्मन उदारवादी बुर्जुआ वर्ग ने जनतांत्रिक सुधारों के साथ-साथ राष्ट्रीय एकीकरण की भी इच्छा प्रकट की थी परंतु 1848-49 की क्रांति की हार के बाद उन्हें इन दोनों में से किसी एक का चुनाव करना था। शिक्षित और सम्पत्तिधारी उदारवादियों ने यह महसूस किया कि वे जर्मनी में संकीर्णवादी समूहों के साथ सीधे टकराव कर राज्य या जनतांत्रिक स्वतंत्रताओं को प्रभावित नहीं कर सकते थे। इसके अलावा जर्मनी राजनैतिक दृष्टि से कई हिस्सों में बंटा हुआ था। छोटे और मध्यम आकार के जर्मन राज्यों को कानून व्यवस्था और यथास्थिति बनाए रखने के लिए प्रशा की सैन्य शक्ति पर आश्रित रहना पड़ता था। इस प्रकार राष्ट्रीय एकीकरण और जनतांत्रीकरण को एक साथ प्राप्त करना कठिन हो गया। उदारवादी इतने कमजोर थे कि वे जुंकर (प्रशाके) भूमिपतियों और संकीर्णवादियों से टक्कर नहीं ले सकते थे। वे खुद भी संकीर्णवादी थे। यहां तक कि बुर्जुआ क्रांति की संभावना भी क्षीण पड़ गई क्योंकि इस समय तक पर्याप्त संख्या में मजदूर वर्ग पैदा हो चुका था जो उदारवादी बुर्जुआ वर्ग के मूल्यों में विश्वास नहीं रखता था।

प्रशा की पुरानी व्यवस्था के खिलाफ अपनी कमजोरियों को पहचानने के बाद राष्ट्रीय उदारवादियों ने 1866-1878 में बिस्मार्क से सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया। प्रशा में संसदीय प्रजातंत्र लागू किए जाने
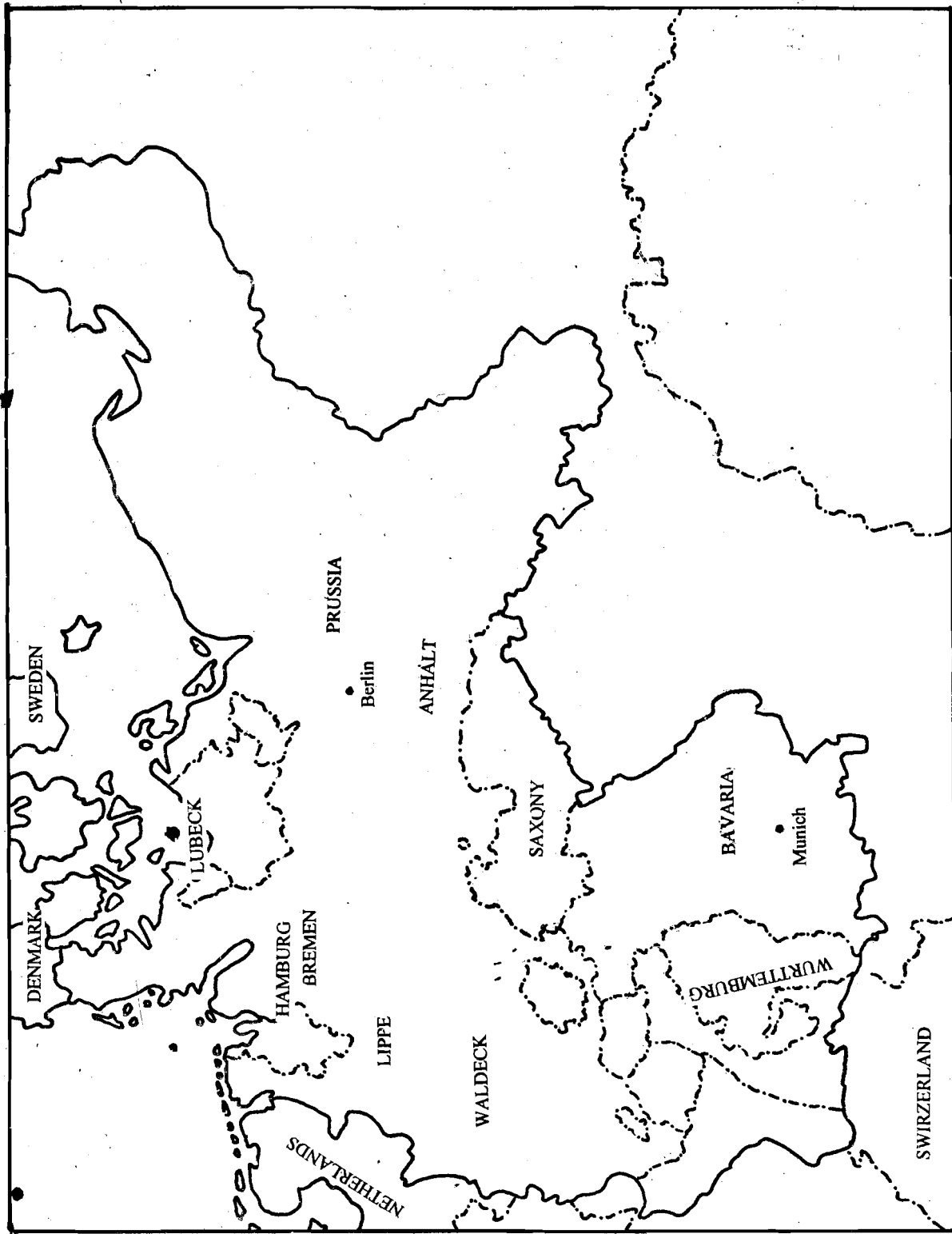
मानचित्र 3: जर्मनी, 1871-1914

की मांग के स्थगन के आधार पर यह सहयोग प्राप्त किया गया। वस्तुतः राष्ट्रीय एकीकरण और जनतांत्रिक सुधारों के समीकरण के साथ लक्ष्य की प्राप्ति बहुत मुश्किल थी। 1848-49 के क्रांतियों की पराजय और बिस्मार्क द्वारा रक्त तथा लौह की नीति अपनाए जाने के कारण एकीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने से निस्संदेह जर्मनी में बुर्जुआ वर्ग ने एक क्रांति की परंतु राजनैतिक जीवन का जनतांत्रीकरण न के बराबर हुआ।

18.2.5 एकीकरणः आरोपित क्रांति

राष्ट्रीय बाजार, रेलवे लाइन और संचार व्यवस्था के निर्माण तथा आत्म जागरूकता तथा बुर्जुआ वर्ग के उदय के कारण जर्मन एकीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। उदारवादी बुर्जुआ वर्ग और भूमिपति वर्ग के बीच युद्ध और कूटनीति द्वारा समझौता कराकर एकीकरण का लक्ष्य प्राप्त किया गया।

अपनी तमाम कमजोरियों के बावजूद 1815 का परिसंघ या जर्मन बंड 1876 तक जर्मनी की राष्ट्रवादी शक्तियों के लिए पूर्व निर्धारित और वैध रंगमंच बना रहा। 1851 में पूर्वी प्रशा और स्लेशविग जर्मन परिसंघ के हिस्से नहीं थे जबकि चेक बहुल क्षेत्र बोहेमिया और मोसविया इसमें शामिल थे। 1848 में जर्मन सभा के लिए होने वाले चुनावों में हिस्सा लेने से चेक उदारवादियों ने मना कर दिया। इस प्रकार यह परिसंघ एक ऐसे बृहद जर्मनी का आधार नहीं प्रदान कर सका जिसमें सभी जर्मन भाषी लोग शामिल हों बल्कि यह एक एकीकृत जर्मनी के लिए एक सर्वाधिक मान्य स्वरूप के रूप में उभरकर सामने आया। 19वीं शताब्दी में जर्मनी में हुए सबसे बड़े और व्यापक आंदोलन के कारण 1848 में जर्मन राष्ट्रीय सभा की स्थापना की गई। 1848 के फ्रैंकफर्ट संसद में संक्षेप में जनतांत्रिक और एकीकृत जर्मनी की संभावना का संकेत दिया गया। जनतांत्रिक आंदोलन को दबाए जाने से इस प्रक्रिया में देरी हुई और जर्मन राष्ट्रवाद की प्रकृति बदल गई। यदि फ्रैंकफर्ट उदारवादी संसद अपने उद्देश्यों में सफल हो गया होता तो इसके फलस्वरूप 'एक केंद्रीकृत राजतंत्र या एक संघीय या अविभाज्य गणतंत्र' की स्थापना हुई होती। यहां तक कि 1849 में राष्ट्रीय सभा ने क्लाइनडयेश राइख या लघु जर्मनी का विकल्प चुना। हालांकि उदारवादियों की पराजय के बाद जर्मनी एकीकरण की भावी राजनीति का निर्धारण प्रशा जर्मनी के संकीर्णवादियों और प्रशा तथा आस्ट्रिया की राजवंशीय शत्रता द्वारा निर्धारित हुआ। जर्मनी में इन दो प्रमुख राजशाही ताकतों की शत्रुता के कारण 1866 में आस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप आस्ट्रिया को जर्मन राष्ट्र से अलग कर दिया गया।

बिस्मार्क और जर्मन एकीकरण

हालांकि 1848-49 की क्रांतियां जर्मन राजनीति के जनतांत्रीकरण या जर्मनी के एकीकरण में असफल रहीं परंतु आनेवाले वर्षों में जर्मन राज्यों की संकीर्णवादिता और विशिष्टतावादिता में सुधार हो सका। बिस्मार्क ने कहा था कि "लैंडटैग निर्णयों, अखबारों और शूटिंग कल्ब उत्सवों से जर्मनी को एकीकृत नहीं किया जा सका परंतु उदारवाद ने युवराजों पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वे साम्राज्य को अधिक रियायतें प्रदान करें।" जर्मन सेना की सहायता से बिस्मार्क ने जर्मनी का एकीकरण किया।

युद्ध और कूटनीति के सहारे जर्मनी का एकीकरण किया गया क्योंकि मध्य यूरोप में एक मजबूत राज्य के बनने से बड़ी शक्तियों के संबंध में खलल पड़ना अवश्यभांवी था और इससे फ्रांस के हितों पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ना था। प्रशा की विधान सभा बिस्मार्क के सैन्य खर्च के प्रति सकारात्मक नहीं थी और इसके लिए उसने अनुमोदन देने से मना कर दिया था परंतु फिर भी प्रशा का यह नेता प्रशा के वर्चस्व और जर्मन एकीकरण के अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल रहा। 1863 में श्लेशविग-होस्टिंग के डचों पर जर्मनों के दावे के मुद्दे को फिर से उठाना जो कि 1848 में एक महत्वपूर्ण मुद्दा था और डेनमार्क से इन डच क्षेत्रों को छीन लेने के बाद आस्ट्रिया से युद्ध होना अवश्यंभावी हो गया। आस्ट्रिया और प्रशा के बीच हुए युद्ध में हालांकि कुस्टोज में आस्ट्रिया को विजय प्राप्त हुई परंतु कोनीग्राट्ज में उन्हें मुंह की खानी पड़ी। 1867 में उत्तर जर्मन परिसंघ के निर्माण से फ्रांस की शक्ति या सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया। इसलिए यह कथन सही माना जा सकता है कि कोनिग्राट्ज में आस्ट्रिया की नहीं फ्रांस की हार हुई। 1866 के आस्ट्रिया प्रशा युद्ध में बिस्मार्क की विजय से यह स्पष्ट हो गया कि फ्रांस और जर्मनी के युद्ध के बाद ही जर्मन एकता संभव हो सकेगी। नेपोलियन III के परामर्शदाता यह नहीं चाहते थे कि और जर्मन एकीकरण आगे बढ़ सके दूसरी ओर बिस्मार्क

जर्मन राष्ट्र-राज्य को मजबूत करने के लिए फ्रांस को युद्ध भूमि में हराना चाहता था। स्पेन की गद्दी पर होहेन जॉलरेन के उत्तराधिकार के विवाद को बहाना बनाकर बिस्मार्क ने फ्रांस के साथ युद्ध छेड़ दिया जिससे फ्रांस को प्रतिरक्षा की मुद्रा में आना पड़ा जबकि जर्मन लोगों में देशभक्ति की भावना पैदा हो गई।

अन्ततः प्रशा और आस्ट्रिया के बीच हुए युद्ध ने जर्मन एकीकरण की प्रक्रिया में एक और महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जुलाई 1863 में आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस जोसेफ ने संघीय सुधार की योजना पर विचार करने के लिए फ्रैंकफर्ट में सभी जर्मन राजाओं की एक बैठक बुलाई। इस सुधार के द्वारा पुनर्संगठित केंद्रीय सत्ता आस्ट्रिया और उसके सहयोगियों के हाथों में स्थाई रूप से सौंपी जानी थी। आस्ट्रिया के सम्राट ने प्रशा के राजा को इस सम्मेलन में आने का न्योता दिया और कहा कि यह सुधार संकीर्णतावादी दृष्टि से होना था और इसमें क्रांति का कोई खतरा नहीं था। हालांकि राजा विलियम इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए लगभग राजी हो गया था परंतु बिस्मार्क ने कहा कि अगर राजा ने फ्रैंकफर्ट के सम्मेलन में हिस्सा लिया तो वह इस्तीफा दे देगा और इस प्रकार प्रशा के इस मंत्री ने जर्मनी में आस्ट्रिया की स्थिति मजबूत करने की उसकी साजिश को नाकामयाब कर दिया। प्रशा की अनुपस्थिति से आस्ट्रिया के प्रस्ताव का कोई मतलब नहीं रह गया। संघीय सुधार की अपनी योजना पर जर्मन परिसंघ के साथ मिलने के आस्ट्रिया के प्रस्ताव को छोटे जर्मन राज्यों के साथ-साथ जनमत ने भी अस्वीकार कर दिया। छोटे राज्य अपनी स्वायत्ता और लेन देन की शक्ति बनाए रखना चाहते थे, अतः उन्होंने आस्ट्रिया का यह प्रस्ताव वैसे ही नामंजूर कर दिया था। उदारवादी विचारधारा ने आस्ट्रिया का प्रस्ताव ठुकरा दिया क्योंकि उसमें लोक जनमत पर आधारित संसद का कोई प्रावधान नहीं था। बिस्मार्क ने 1863 में यह घोषणा की कि वह प्रत्यक्ष मतदान पर आधारित जन सभा को समर्थन देने के लिए तैयार है। परंतु उसकी इस घोषणा पर किसी ने विश्वास नहीं किया। अंततः उत्तरी जर्मन परिसंघ ने राइखस्टैग का चुनाव व्यस्क मताधिकार के आधार पर किया।

बिस्मार्क की नीति को प्रशा की प्रातिनिधिक सभा में पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं था परंतु वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल रहा क्योंकि आन्तरिक नीति के कारणों से राजा बिस्मार्क की नीतियों को मानने के लिए तैयार था। अक्टूबर 1864 में 12 वर्षों के लिए जॉल्वेरिन को उसके मूल रूप में पुनः मंजूरी दे दी गई। इसका कारण यह था कि इससे प्रशा के हितों की पूर्ति होती थी और जर्मनी में संघीय सुधार के प्रश्न के साथ-साथ ज्यादातर लोग इसके समर्थन में थे। आस्ट्रिया ने दक्षिण जर्मन राज्यों के असंतोष का उपयोग कर जॉल्वेरिन को समाप्त करने की कोशिश की और प्रशा की उदारवादी सीमा शुल्क नीति के खिलाफ दक्षिण जर्मन राज्यों की भावनाओं का अपने पक्ष में उपयोग करने की कोशिश की परंतु आस्ट्रिया शुल्क संघ में शामिल होकर दक्षिण जर्मन राज्यों को अधिक संरक्षणवादी नीति अपनाने के लिए उकसाना चाहता था परंतु इसमें भी उसे सफलता नहीं मिली। अंशतः इसका कारण यह था कि उत्तर जर्मनी के छोटे राज्य प्रशा के क्षेत्र से घिरे हुए थे और उन्हें आस्ट्रिया की इस प्रकार की संरक्षणवादी नीति से फायदा होने वाला नहीं था। बावेरिया और आस्ट्रिया के साथ राजनीतिक संबंध रखने के बावजूद सैक्सोनी जॉल्वेरिन में बना रहा। दक्षिण जर्मन राज्य प्रशा की सीमा शुल्क नीति को मानने के लिए बाध्य हुए क्योंकि उत्तरी जर्मन राज्यों के बिना वे आस्ट्रिया के साथ शुल्क संघ में शामिल नहीं होना चाहते थे। चूंकि आस्ट्रिआई साम्राज्य के साथ शुल्क संघ में शामिल होने से उनका आर्थिक हित नहीं सधता था और चूंकि वे अलग-थलग नहीं रहना चाहते थे इसलिए छोटे दक्षिणी जर्मन राज्य भी जॉल्वेरिन में बने रहे।

1866 में आस्ट्रिया से युद्ध करने से पहले बिस्मार्क ने अपनी नीतिगत कुशलता से अन्तरराष्ट्रीय स्थिति अपने पक्ष में कर ली। 1866 में प्रशा की विजय के बाद छोटे जर्मन राज्यों को जिस तरह उसने संभाला और 1867 में जिस प्रकार उत्तरी जर्मन परिसंघ का निर्माण किया उससे उसकी कूटनीतिक योग्यता और सफलता का परिचय मिलता है। हैनोवर, हेसेका एलेक्टोरेट, नासू मिला लिए गए। दक्षिण जर्मन राज्यों के साथ गुप्त प्रतिरक्षात्मक और आक्रामक संधियां की गईं ताकि आस्ट्रिया और जर्मनी में युद्ध होने की स्थिति में सम्पूर्ण गैर आस्ट्रियाई जर्मनी एकीकृत हो जाए। निस्संदेह फ्रांस के डर से छोटे दक्षिण जर्मन राज्य प्रशा में जा मिले। बंड्सरैथ या उत्तरी जर्मन परिसंघ के संघीय परिषद में प्रशा अल्प मत में था और छोटे राज्यों का बहुमत था। कुल 43 सदस्यों में प्रशा के केवल 17 सदस्य थे। हालांकि उत्तरी जर्मन परिसंघ ने संयुक्त निवेश नीति और सैन्य व्यवस्था कायम की परंतु छोटे-छोटे राज्यों की स्वतंत्रता को विशेष महत्व दिया।

दक्षिण परिसंघ के निर्माण की असफलता से यह सिद्ध हो गया था कि दक्षिणी राज्य अंततः बिस्मार्क के उत्तरी जर्मन परिसंघ में शामिल हो जाएंगे। हालांकि बैडेन इसमें शामिल होने का इच्छुक था परंतु बावेरिया और वर्टेमबर्ग इसका विरोध कर रहे थे। 1870 में फ्रांस के साथ हुए युद्ध में प्रशा की विजय ने जर्मन साम्राज्य का निर्माण किया। दक्षिण जर्मन डायटों के अनुमोदन के बाद 1871 में चार दक्षिण राज्यों बावेरिया, वर्टेम बर्ग, बैडेन और हेस जर्मन साम्राज्य में शामिल हो गए। जर्मन साम्राज्य का संघीय स्वरूप सामने आया क्योंकि बावेरिया सेना, विदेश मामले, डाक विभाग और रेलवे के क्षेत्र में रियायतें प्राप्त करना चाहता था।

बोध प्रश्न 1

1) जर्मन राष्ट्रवाद की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर विचार कीजिए। उत्तर 100 शब्दों में दीजिए।

....

....

....

....

....

2) जर्मनी के एकीकरण में आर्थिक प्रक्रियाओं से किस प्रकार मदद मिली ?

....

....

....

....

....

3) जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क ने क्या भूमिका अदा की ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

18.3 इतालवी राष्ट्रवाद की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

आस्ट्रिया के मंत्री मेटरनिख ने 1847 की गर्मी में लॉर्ड पामर्स्टन से हुई अपनी बातचीत में इटली को एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' कहा था। निस्संदेह 18वीं शताब्दी के अंत में उभरा इतालवी राष्ट्रवाद वस्तुतः 1830 और 40 के दशक में ही व्यापक समर्थन पा सका।

18.3.1 राष्ट्रवाद का विचार

पुनर्जागरण काल और उसके पहले से ही इटली के विचार के रूप में इटली का अस्तित्व कायम था। इतालवी भाषा को एक सौम्य और सुंदर भाषा के रूप में देखा जाता था और इतालवी राज्यों की आम सांस्कृतिक जड़ों की बात की जाती थी।

सार्वभौमवाद की दो महान शक्तियों – होली रोमन साम्राज्य और पोप प्रथा – के पतन के बाद फ्रांसिसको पेट्रैक (1304-1374) प्रेरणा और सांत्वना के लिए पुरातनता की ओर मुड़ा। हालांकि देशभक्त कहकर उसकी प्रशंसा की जाती रही परंतु वे शुद्ध रूप से साहित्यिक देशभक्ति का प्रतिनिधित्व करते थे। 14वीं शताब्दी में कोला दी रियेन्जो ने रोम की छत्रछाया में पूरे इटली को एकीकृत करने का प्रयास किया था। हालांकि पुनर्जागरण के दौरान प्राचीन देशभक्ति के पुनरुत्थान से एक छोटे साहित्यिक समुदाय में राष्ट्रवाद के विचार पनपने लगे थे। रियेन्जो के रोमन लोगों की प्रभुसत्ता और इटली की एकता की उद्घोषणा और अभिजात्यतंत्र के खिलाफ सामान्य जनों के लिए उनके समर्थन में राष्ट्रवाद और प्रजातंत्र का विचार शायद ही कहीं नजर आता हो। हालांकि रियेन्जो ने 'पोपुलस रोमानस' की व्याख्या इतालवी राष्ट्रवाद के रूप की थी परंतु किसी भी प्रकार के 'सीमित राष्ट्रवाद' से उनका और उनके युग का परिचय नहीं था। 19 सितम्बर 1347 को इतालवी नगरों के नाम लिखे रियेन्जो के पत्र में आरंभिक राष्ट्रवाद की झलक मिलती है। हालांकि न तो संभ्रांत वर्ग के लोग और न ही आम जनता रियेन्जो के राष्ट्रवाद को समझ सकी।

16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इटली के राजनैतिक क्षेत्र पर राजनैतिक वर्चस्व स्थापित करने के लिए फ्रांसीसी स्विस और जर्मन सेनाओं के बीच लगातार संघर्ष चलता रहा। 15वीं शताब्दी के मध्य में पांच प्रमुख इतालवी राज्यों वेनिस, मिलान, फ्लोरेन्स, नेपल्स और पोप के राज्यों में जो संतुलन कायम हुआ था, वह 1494-1559 के इतालवी युद्धों से छिन्न-भिन्न हो गया। हालांकि फ्रांस और स्पेन में राष्ट्रवाद की भावना पनपने लगी थी। परंतु इटली के लोगों में मिलान, फ्लोरेन्स या जेनेवा के प्रति प्रांतीय या स्थानीय लगाव का भाव बहुत ही मजबूत था। परंतु वे कभी-कभी सर्वदेशीय भी हो जाते थे जो अधिक बड़े और शक्तिशाली राजनैतिक इकाइयों की सेवा में किसी भी शर्त पर सन्नद्ध हो सकते थे। लॉरो मार्टिन्स के अनुसार " कैस्टिग्लियनो के दरबारियों को राजाओं की सेवा करने का प्रशिक्षण दिया गया था राष्ट्र या मातृभूमि की नहीं।" इटलीवासियों के एकीकरण की सफलता का मूल उनके सामाजिक यथार्थ में ढूंढा जा सकता है। वहां शासक और शासित, भूमिपति और किसान तथा राजकुमार और कुलीन वर्ग के बीच विरोध का भाव था। मैक्एिवेली द्वारा कमजोर सरकार की आवेशपूर्ण आलोचना के पीछे यही यथार्थ काम कर रहा था। इन इतालवी युद्धों ने शासकीय वर्गो की चेतना को प्रभावित किया।

18.3.2 इतालवी भाषा

1500 ई. के आस-पास हुए इतालवी युद्धों के दौरान उपयुक्त साहित्यिक भाषा का प्रश्न महत्वपूर्ण रूप से उभरकर सामने आया। रोम और मिलान, उर्बिनो और मनतुआ के दरबारियों के बीच बहस शुरू हुई। इस बहस में ऐसी साहित्यिक भाषा पर विचार किया जाने लगा जो बोलियों से ऊपर उठकर इटली को एक सर्वमान्य भाषा दे सके और इस प्रकार पूरे इतालवी उपमहाद्वीप को एक भाषा देने का प्रयास किया जाने लगा। इटली पर सेनाओं के आक्रमण होने के फलस्वरूप एकीकृत साहित्यिक देशी भाषा के लिए अभियान शुरू हुआ। इस बहस के आरंभ से ही इतालवी भाषा में लिखे गए साहित्य को लैटिन से अगर श्रेष्ठ नहीं तो उसके बराबर माना गया।

परंतु भाषा पर हुई बहस से इटली में व्याप्त क्षेत्रीय मतभेद ही नहीं बल्कि सामाजिक विभाजन भी सामने आए। शासकीय वर्ग और आम जनता के बीच भाषाई मतभेद और यह माना जाना कि इटली में प्रभुत्वशाली सामाजिक समूहों के लिए एक अलग भाषा हो सकती है। उस समय के संभ्रांतवादी दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय देता है।

18.3.3 मानवतावाद

वस्तुतः इतालवी मानवतावादियों का महान योगदान भी संभ्रांतवर्ग के पक्ष में दिखाई देता है। महान इतालवी मानवतावादी "शक्तिशाली सामाजिक समूहों को संबोधित करते हैं और उन्हीं की बात करते हैं।"मानवतावादी जिन शैक्षिक और राजनैतिक व्यवस्था के आदर्शों में विश्वास रखते थे उन्हें विशेषाधिकार प्राप्त संभ्रांत वर्ग के समाजों में ही महसूस किया जा सकता था। मानवतावादियों ने सम्पन्न लोगों जैसे कुलीनवर्ग, राजाओं, नव धनाढ्यों, पेशेवरों और साहित्यकारों को भी संबोधित किया था। मानवतावादी चिंतन-मनन तथा पूजा-अर्चना

में विश्वास नहीं रखते थे बल्कि उनका उद्देश्य समाज में बड़े पदों पर स्थापित होनेवाले लोगों को व्यावहारिक दिशा निर्देश देना था। अपने किसी भी प्रकार के दृष्टिकोण के बावजूद सभी मानवतावादियों ने 'शक्ति के साथ खुला समझौता किया'। मानवतावादियों की साहित्यिक अभिव्यक्ति में भी उच्च वर्ग की चेतना को अभिव्यक्ति मिली थी। बुद्धिजीवी संभ्रांत साहित्यकार भीड़ के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि रखते थे और अपने को गरीबी के साथ नहीं बल्कि शक्ति के साथ जोड़कर देखते थे। चूंकि मानवतावादी अमीर आदमी की चेतना से संबोधित होते थे इसलिए वे शासकीय वर्ग में अपना प्रवेश चाहते थे। अतएव मानवतावादी 'इस बात का ध्यान रखते थे कि धन की आलोचना नैतिक दृष्टि से की जाए राजनैतिक दृष्टि से नहीं।' मानवतावादी अक्सर अज्ञानी जनता को घृणापूर्ण दृष्टि से देखते थे और कभी-कभी अमीर लोगों को कठोर हृदय और कुलीन वर्ग के लोगों को असभ्य के रूप में भी चित्रित कर देते थे। फ्लोरेनटाइन के मानवतावादी अलबर्टी ने सक्रिय राजनीति की इसलिए आलोचना की थी क्योंकि उसमें 'आलसी और डरपोक निम्न वर्ग के लोग' अधिक शामिल होते थे। यहां तक कि पुनर्जागरण के दौरान भी मनुष्य के सम्मान का आदर्श शहर में रहने वाले शासकीय समूहों को बनाया गया था।

इतालवी विचार और संस्कृति के विकास ने इटली को एक श्रेण्य (क्लासिकल) विरासत प्रदान की जिसके कारण इतालवी राष्ट्रवादी लोक संस्कृति से अपने को सम्बद्ध रखने के प्रति बहुत इच्छुक नहीं रहे। पीटरबर्क के अनुसार चूंकि एक मानकीकृत इतालवी साहित्य पहले से ही मौजूद था इसलिए दूसरी बोलियों का प्रचलन में आना विभाजनकारी था। 19वीं शताब्दी का इतालवी राष्ट्रवाद इतालवी मानवतावादियों और साहित्यकारों के सांस्कृतिक संभ्रांतवाद को दूर नहीं कर सका।

18.4 इतालवी राष्ट्रवाद की राजनैतिक पृष्ठभूमि

इटली के राजनैतिक एकीकरण की प्रक्रिया बहुत ही पीड़ादायक रही और इसमें बहुत धीमी प्रगति हुई। इस दिशा में कई क्षेत्रों में पहल की गई जिसका उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

18.4.1 आधुनिक इतालवी राजनैतिक राष्ट्रवाद

18वीं शताब्दी के अंत में फ्रांसीसी क्रांति ने इतालवी राष्ट्रवाद के लिए एक आदर्श पेश किया। जिस समय लोम्बार्डी में फ्रांसीसी सेना का आधिपत्य था उस समय उन्होंने इटली के लिए मुक्त सरकार के सर्वोत्तम रूप विषय पर एक निबंध प्रतियोगिता आयोजित की। इससे एक बहस की शुरुआत हुई जिसमें इटली की प्राचीन गरिमा का गुणगान किया गया, फ्रांस और 1795 के इसके संविधान की प्रशंसा की गई और इतालवी पुनरुद्धार और एकीकरण की योजना बनाई गई। मिल्कियोरे गिया, जिसने निबंध प्रतियोगिता जीती थी और जो इटली का एक प्रमुख अर्थशास्त्री बना, को 'व्यावहारिक, आधुनिकीकृत सुधार की बुद्धिवादी परम्परा और नई जैकोबिन देशभक्ति के बीच कड़ी माना जाता था'। चूंकि पुरानी राज्य इकाइयों ने पुराने शहरी विशेषाधिकारों का पक्ष लिया था अतः इसे अस्वीकृत करना जरूरी था। एक ओर जहां नरमपंथी राष्ट्रवादियों ने एकीकरण की धीमी प्रक्रिया का समर्थन किया और सिसैल्पाइन गणतंत्र के आत्मशासित इतालवी राज्य के आदर्श को सामने रखा वहीं उग्र सुधारवादियों ने केंद्रीकरणवाद और क्रांतिकारी राष्ट्र-राज्य का पक्ष लिया।

नेपोलियन द्वारा निर्मित इटली राज्य से इतालवी राष्ट्रवादी भावना को उभारने में मदद मिली परंतु 1806 में महाद्वीपीय व्यवस्था लागू होने के बाद इसके परिणामस्वरूप फ्रांस का महाद्वीपीय उपनिवेश बन गया। इटली का बजट काफी बढ़ गया और इसके आधे से ज्यादा हिस्सा फ्रांस के सैनिक खर्चे और अंशदान में खर्च होने लगा। नेपोलियन के कानूनी नियमों और प्रांतीय व्यवस्था के कारण इटली में एकीकृत राष्ट्र-राज्य का नया आदर्श विकसित हुआ। इटली में बुद्धिवाद के दौरान नौकरशाहों, मजिस्ट्रेटों, वैधानिक और वित्तीय विशेषज्ञों का उदय हुआ और इन्हें नेपोलियन व्यवस्था में काफी महत्व मिला। हालांकि इतालवी सेना में सैनिकों की जबरदस्ती भर्ती की गई और इसका उपयोग नेपोलियन के अभियानों के लिए किया जाता था परंतु इससे भी राष्ट्रवाद की भावना उभरी। यह फ्रांसीसी आधिपत्य के खिलाफ एक प्रतिक्रिया थी। शाही रोम के साथ नेपोलियन के जुड़ाव के कारण भी इटली के लेखकों ने रोमन विरासत को अस्वीकार कर दिया।

इटली में कवियों ने राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। फ्रांस के समान वहां कोई शक्तिशाली राज्य नहीं था जो राष्ट्र भाषा का प्रचार-प्रसार कर सकता था। जर्मनी के समान वहां कोई भाषा सुधार आंदोलन भी नहीं हुआ था इसलिए इटली भाषा मात्र 2.5% संभ्रांत वर्ग की भाषा बनी रही जो 1860 में भी इतालवी भाषा का ही उपयोग करते थे। इटली में स्वच्छंदतावाद ने राष्ट्रवाद को प्रभावित किया परंतु यह जर्मन स्वच्छंदतावाद से अलग था। इतालवी स्वच्छंदतावाद के प्रमुख व्यक्तित्वों ने न तो श्रेण्य परम्परा को और न ही बुद्धिवाद को अस्वीकार किया। अल्फेरी और मैनजोनी जैसे सांस्कृतिक व्यक्तित्वों ने राष्ट्रवाद के विकास में निर्णायक भूमिका अदा की। राष्ट्राय और स्थानीय शक्ति व्यवस्थाओं के बीच तनाव से भी इटली के राजनीतिक जीवन में मैनजोनी, डी एजेग्लियो, मेजनी, वर्डी और गैरिबाल्डी जैसे कलाकारों तथा साहसी लोगों को महत्वपूर्ण भूमिका मिली।

18.4.2 युवा इटली

इटली में आस्ट्रिया एक प्रमुख शक्ति थी। नेपोलियन की पराजय के बाद आस्ट्रिया का नियंत्रण और भी मजबूत हो गया। जर्मन परिसंघ की तर्ज पर इतालवी परिसंघ के लिए मेटरनिख के प्रस्ताव का पिडमौंट और पोप के परामर्शदाताओं ने विरोध किया। 1815 के बाद गुप्त संस्थाओं ने इतालवी जैकोबिन परम्पराओं के समर्थकों को अपनी ओर आकर्षित किया। कार्बोनरी और अन्य गुप्त संस्थाओं के सदस्यों का सरोकार केवल इतालवी राष्ट्रवाद से ही था। ब्योनारोति और अन्य प्रतिबद्ध जैकोबिन इटली के एकीकरण को सार्वभौम सामाजिक क्रांति की दिशा में एक कदम मानते थे। दक्षिण इटली के कार्बोनरी को 19वीं शताब्दी के क्रांतिकारी संगठनों में जनता का सबसे अधिक समर्थन हासिल था जो इटली के एकीकरण के बजाए नैपल्स के जनतांत्रीकरण में अधिक रुचि रखते थे। नैपल्स में हुए विद्रोह में कार्बोनरी ने एक जनतंत्रीय संविधान की मांग की और वे 1820 के स्पैनिश विद्रोह से प्रभावित थे। हालांकि नैपल्स में कार्बोनरी के उग्र सुधारवादी सदस्य पोप के राज्यों और पिडमौंट में लोम्बार्डी और इटली के अन्य भागों में क्रांति को फैलाना चाहते थे परंतु सैनिक षड्यंत्र बहुत सफल नहीं हुए। 1820-21 की क्रांतियों की असफलता के बाद काफी लोगों को देश निकाला दिया गया और उन्हें ब्रिटेन भेज दिया गया। इसके परिणामस्वरूप ब्यूनारोति के समतावादी दृष्टिकोण से अलग एक उदारवादी प्रवृत्ति सामने आई।

1830-31 की क्रांतियों की असफलताओं के बाद (खासतौर पर मोडेना और बोलोगना में) इटलीवासियों ने तीव्रता से यह महसूस किया कि उन्हें अपने प्रयत्नों पर ही निर्भर रहना होगा और आंदोलन की खुली विधि अपनानी होगी। ग्युसेप मेजनी ने युवा इटली की शुरुआत की और क्रांतिकारी तानाशाही तथा आतंकवाद के कट्टरपंथी नमूने को अस्वीकार कर दिया। मेजिनी एक जनतांत्रिक राष्ट्रवादी था जिसने हमेशा नरमपंथियों के संभ्रांतवाद और जैकोबिन के क्रांतिकारी तानाशाही के आदर्श को अस्वीकार किया। सुधारवादी मेजिनी का मानना था कि सभी प्रकार के संघवाद स्थाई संभ्रांतवर्ग के वर्चस्व को बनाए रखने के तरीके हैं। मेजिनी का राष्ट्रवाद विशिष्ट नहीं था और वे सभी राष्ट्रों की स्वतंत्रता के बाद यूरोप के संयुक्त राज्यों के उदय में विश्वास रखते थे। हालांकि वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए जन संग्राम में विश्वास रखते थे परंतु उनका यह भी मानना था कि सार्वभौम मताधिकार के आधार पर जनतांत्रिक सरकार की स्थापना की जानी चाहिए। मेजिनी ने जन संग्राम में किसानों के समर्थन के महत्व को समझा परंतु इटली के गणतंत्र कभी भी शहर और गांवों के अन्तर को पाट नहीं सके।

18.4.3 पिडमौंट-सार्डिनिया

इटली में कई राज्य थे जो फ्रांसीसी-आस्ट्रिआई शत्रुता के संबंध में अपनी स्वायत्ता और विशेषाधिकार सुरक्षित रखना चाहते थे। इटली में राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया इन्हीं पर आधारित थी। पिडमौंट इटली का एक राज्य था जिसने इटली को एकीकृत किया। 1840 तक यहां के राजा चार्ल्स एलबर्ट ने उदारवाद या देशभक्ति के किसी पक्ष में अपना झुकाव प्रदर्शित नहीं किया। चार्ल्स एलबर्ट (1831-1849) एक संकीर्णवादी राजा था जो मेटरनिख व्यवस्था से परहेज नहीं रखता था और इटली में क्रांति को रोकने के लिए आस्ट्रिआई फौज का उपयोग करने में उसके सामने कोई दुविधा नहीं थी। फ्रांस में आल्प से आगे के क्षेत्र पर भी एलबर्ट ने अपना दावा किया था और उसने नैपल्स के राजा द्वारा प्रस्तावित इतालवी राज्यों के संघ में शामिल होने से इनकार

कर दिया। वस्तुतः चार्ल्स एलबर्ट की आस्ट्रिया के साथ संधि को उसके दरबारियों ने पूर्ववर्ती शासन काल से अलग माना। 1847 में इतालवी राज्यों को एक दूसरे के निकट लाने में प्रथम चरण के रूप में पोप ने 1847 में सीमा शुल्क संघ के निर्माण का प्रस्ताव रखा। टुसकैनी का लियोपोर्डो ग्रैनड्यूक इस सीमा शुल्क संघ में शामिल होने के लिए राजी हो गया परंतु पिडमौंट को यह मान्य नहीं था। पोप के दूत कार्बोली बस्सि ने स्पष्ट किया कि उनके स्वामी इटली की एकता के लिए नरमपंथी मांगों को स्वीकार कर क्रांतिकारियों और एकीकृत इतालवी गणतंत्र के समर्थकों को रोकना चाहते हैं।

पोप के दूत ने महसूस किया कि पिडमौंट का राजा इस संघ में शामिल होने से हिचक रहा था क्योंकि वह उत्तर मध्य इटली के आस्ट्रिआई आधिपत्य वाले छोटे डच क्षेत्रों पर आधिपत्य जमाकर अपना राज्य बढ़ाना चाहता था। इटली में वर्चस्व स्थापित करने के लिए पिडमौंट और आस्ट्रिया के बीच चल रहे संघर्ष में पोप नेतृत्व की बागडोर पिडमौंट को सौंपने के लिए तैयार थे।

हालांकि आर्थिक दृष्टि से पिडमौंट प्रशा के समान मजबूत नहीं था परंतु इटली की क्रांति की प्रक्रिया में राजनैतिक और सैनिक दृष्टि से सर्वाधिक सक्रिय प्रतिभागी थे। कैवूर, मेजिनी और गैरिबाल्डी को एकीकरण का मस्तिष्क, हृदय और तलवार कहा गया है। हालांकि 1849 के पहले पिडमौंट की नीतियां बहुत स्पष्ट नहीं थीं परंतु 1850 के दशक में काउंट कैवूर की दृढ़ प्रतिज्ञ नीतियों और मेजिनी तथा गैरिबाल्डी के नेतृत्व में जन आंदोलनों ने मिलकर इटली का एकीकरण किया। कैवूर ने राजनैतिक एकीकरण के लिए और इटली को आस्ट्रिया के शिकंजे से मुक्त करने के लिए आस्ट्रिया के साथ युद्ध किया और इसमें नेपोलियन III के साथ अपनी मित्रता और संधि का उपयोग किया। पिडमौंट-सार्डिनिया की क्षेत्रीय विस्तार की आकांक्षाओं और सामाजिक स्थिरता कायम करने की इच्छा ने अभिजातीय वर्गीय कैवूर के दृष्टिकोण का निर्माण किया। एकीकरण को प्रमुखतः स्थाई सेना और नौकरशाही पर निर्भर होना था जन आंदोलनों पर नहीं।

पिडमौंट-सार्डिनिया ने जन आंदोलन का अपने अनुसार उपयोग किया। उन्होंने राष्ट्रीय एकीकरण के लिए किए जाने वाले युद्धों में उन्हें स्वतंत्र भूमिका प्रदान नहीं की। इसलिए युद्धों में कम लोग हताहत हुए। प्रथम (1848-49) और द्वितीय (1859-60) स्वतंत्रता संग्राम में केवल 3000 लोगों की मृत्यु हुई। 1855 के क्रिमिया युद्ध में केवल 14 इटलीवासी मरे। इटली के तीसरे स्वतंत्रता संग्राम में समुद्र और जमीन पर लगभग 1000 लोग मारे गए। 1867 में मेनताना में गैरिबाल्डी ने 600 लोगों को खोया, सितम्बर 1870 में इटली की स्थाई सेना के 24 जवान मारे गए। 1848 और 70 के बीच स्थाई और स्वैच्छिक सेनाओं के 6000 जवान मारे गए और 20,000 घायल हुए। एकीकरण के बाद दक्षिणी इटली को शांत करने के क्रम में सभी स्वतंत्रता संग्रामों की अपेक्षा ज्यादा लोग मरे। इन तीनों स्वतंत्रता संग्रामों के महत्व को देखते हुए काफी कम लोगों ने जानें गंवाईं। 1870 के फ्रांसीसी-प्रशा युद्ध के दौरान एक दिन में जितने लोग मारे गए थे उससे कम लोग इन तीनों स्वतंत्रता संग्रामों में मारे गए।

स्वतंत्रता संग्राम का वित्तीय बोझ पिडमौंट-सार्डिनिया को उठाना पड़ा और इस प्रकार 1850 के दशक में कैवूर द्वारा शुरू किया गया आधुनिकीकरण का कार्यक्रम बुरी तरह प्रभावित हुआ। इटली को एकीकृत करने में पिडमौंट को काफी त्याग करना पड़ा। इस कारण 1861 में एकीकृत राज्य में पिडमौंट का प्रभाव सबसे ज्यादा था।

18.4.4 कैथोलिक चर्च

इटली के सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन में कैथोलिक चर्च ने महत्पूर्ण भूमिका अदा की। नव-ग्वेल्फ इतिहासकारों और साहित्यकारों ने राष्ट्रवाद के विचार और चर्च के बीच मेल-मिलाप कराने की कोशिश की थी। पिडमौंट के पुरोहित विन्सेन्जो गियोबर्टी ने पोप की अध्यक्षता में इटली परिसंघ बनाने की बात की। 1846 और 1848 की क्रांति के बीच की अवधि में गियोबर्टी और मेजिनी के विचारों में मेल होने की संभावना दीख रही थी। अप्रैल 1848 में जब पोप पायस ने कैथोलिक आस्ट्रिया के खिलाफ राष्ट्रीय युद्ध से अपना समर्थन वापस ले लिया तो उन्हें इटली में राष्ट्रवादी विचार का समर्थन भी खोना पड़ा। हालांकि उदारवादी कैथोलिक आंदोलन ने पोप के विरोध के बावजूद कैथोलिकवाद के साथ राष्ट्रवाद के मेल-मिलाप के विचार

को आगे बढ़ाने में मदद दी। हालांकि 1847 में पिडमौंट के राजा की अपेक्षा पोप सीमा शुल्क संघ बनाने के लिए ज्यादा उत्सुक थे। परंतु वे जनता की चेतना को जगाने के लिए अपनी नैतिक सत्ता का उपयोग करने के पक्ष में नहीं थे। अप्रैल 1848 के उपदेश के बाद पोप ने यह घोषणा की कि वह आस्ट्रिया के दमन के खिलाफ धर्म युद्ध नहीं छेड़ेंगे। इस प्रकार आस्ट्रिया के साथ राजनैतिक संघ बनाने की संभावना कल्पना मात्र रह गई। इसके जवाब में पोप के मंत्री ने यह तर्क दिया कि पिडमौंट के विस्तार और इटली की स्वायत्ता को एक दूसरे का पर्याय नहीं माना जाना चाहिए।

रोम में हुई क्रांति और पोप के पलायन के बाद रोमन गणतंत्र की स्थापना हुई। फ्रांसीसी और आस्ट्रियाई सेनाओं की मदद से पोप जून 1849 में वापस लौटने में सफल रहा। इटली के एकीकरण के समय पोप और कैथोलिक चर्च ने संकीर्णवादी भूमिका निभाई। सांसारिक क्षेत्र में हारने के बाद पोप ने अपने धर्मावलंबियों को राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेने से मना कर दिया। यह मनाही 1904 तक कायम रही। हालांकि पूर्ण रूप से यह मनाही 1919 तक कायम रही पर 1882 में मताधिकार के विस्तार के बाद बहुत थोड़े कैथोलिकों ने अपने मतों का प्रयोग किया। चर्च द्वारा धर्मनिरपेक्ष राज्य, समाजवाद, अराजकतावाद और मजदूर आंदोलन का विरोध करने के कारण संसदीय प्रजातंत्र और पुरोहितवाद शक्तियों में गठबंधन हो गया। ईसाई प्रजातंत्र और पोपतंत्र का एक राजनैतिक शक्ति के रूप में उदय प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही हो सका।

18.5 इतालवी राष्ट्रवाद की आर्थिक पृष्ठभूमि

जर्मनी के समान इटली का राष्ट्रीय आंदोलन मजबूत औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग पर आधारित नहीं था। जर्मनी की तुलना में इटली के राजनैतिक एकीकरण के पहले आर्थिक एकीकरण का स्तर काफी कम था तथा इटली के सीमा शुल्क संघ की जर्मन जॉल्वेरिन से कोई तुलना ही नहीं की जा सकती। दक्षिणी इटली का पिछड़ापन एक अन्य गंभीर आर्थिक समस्या थी। 18वीं शताब्दी और मध्य 19वीं शताब्दी के बीच इतालवी अर्थव्यवस्था के कुछ विद्वानों का यह मानना था कि इटली में कोई एक विशिष्ट एकीकृत अर्थव्यवस्था नहीं थी। 17वीं शताब्दी के दौरान इटली की अर्थव्यवस्था में पतन आने के बावजूद वहां की स्थिति पूर्व – औद्योगिक यूरोप या अन्य महाद्वीपों के समान अल्प विकसित अर्थव्यवस्था नहीं थी।

18.5.1 उत्तर और दक्षिण की विभिन्नता

इटली के आर्थिक और राजनैतिक विकास का विश्लेषण करते समय उत्तरी क्षेत्र के पिडमौंट और लोम्बार्डी की समृद्धि की तुलना हमेशा एक कम आधुनिकीकृत दक्षिण क्षेत्र से की जाती है। इटली के औद्योगीकरण और राष्ट्रवाद पर विचार करने वाले इतिहासकारों ने इटली के इस क्षेत्रीय असंतुलन को सबसे बड़ी बाधा माना है। इटली की आर्थिक विकास दर और राजनैतिक समस्याओं पर विचार करने वाले विद्वानों ने दक्षिण की समस्याओं का भी विवेचन किया था। उनके अनुसार इन असमानताओं के कारण इटली का एकीकरण होने के बाद अनेक समस्याएं सामने आईं। इतालवी राज्य ने दोहरी नीति अपनाई परंतु यह अपनी समस्याओं का समाधान भी नहीं कर सकी। धीरे-धीरे इतालवी राज्य कम से कम 1880 के दशक के बाद ज्यादा से ज्यादा हस्तक्षेप करने की नीति अपनाने लगा। ट्रेबिल कॉक के अनुसार 'उपमहाद्वीप के देर से राजनीतिक एकीकरण होने से और उदारवादी-स्वायत्ततावादी राजनीति द्वारा इसे प्राप्त करने के कारण राज्य की नीतियों पर ज्यादा प्रभाव डाला गया और इटली के औद्योगिक अल्प विकास पर कम ध्यान दिया।

18.5.2 राज्य और अर्थव्यवस्था

एकीकरण के बाद इतालवी राज्य ने जो नीतियां अपनाई उसके कारण कृषि शांति असफल हो गई और उद्योग के क्षेत्र में भी उत्तर-दक्षिण का भेद बढ़ गया। इसके अलावा राज्य नीतियों से अ-समान और सीमित रूप में लाभ पहुंचाया गया। उद्योग के क्षेत्र में पहले मुक्त व्यापार की नीति अपनाई गई और उसके बाद संरक्षणवाद की नीति अपनाई गई। परंतु ये दोनों नीतियां और सार्वजनिक निवेश आर्थिक विकास को तेज करने में असफल रहे। सबसे पहले 1850 के दशक में पिडमौंट में कैवूर द्वारा लागू किए गए सीमा शुल्क और व्यापार समझौते को एकीकृत राज्य में लागू किया गया। 1862-1863 के फ्रांस के साथ हुए समुद्री और व्यापार

समझौतों के बाद इंगलिश मुक्त व्यापार के तर्ज पर सीमा शुल्क को कम किया गया। यह तर्क दिया गया कि एकीकरण के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा राजनैतिक और सैनिक सहायता देने के एवज में मुक्त व्यापार नीतियां अपनाई गईं। विदेशी बाजार में इटली के निर्यात की पहुंच बढ़ाने और विदेशी पूंजी तथा औद्योगिकी को आकर्षित करने के लिए भी मुक्त व्यापार अपनाया गया। 1870-74 के औद्योगिक सर्वेक्षण के प्रकाशन और एलेसैन्ड्रो रोसी के नेतृत्व में उद्योगपतियों के विरोध के पश्चात एक नया सीमा शुल्क ढांचा बनाया गया। 1887 में खुले रूप में संरक्षणवादी सीमा शुल्क नीति अपनाई गई जिससे इतालवी उद्योग को मदद तो मिली परंतु औद्योगिक उत्पादों पर नाममात्र के संरक्षण का औसत स्तर मुश्किल से 21% से आगे नहीं बढ़ सका।

विकसित देशों के समकक्ष आने के प्रयास में एकीकरण के बाद इतालवी राज्य ने आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए जोर लगाया। सबसे पहले एकल घरेलू उत्पाद के परिप्रेक्ष्य में सार्वजनिक व्यय का स्तर बढ़ाने का प्रयत्न किया। 1880 तक यह 12 से 14% तक के बीच ऊपर नीचे होता रहा और प्रथम विश्व युद्ध के पहले 17 से 18% तक पहुंच गया। सैनिक और प्रशासनिक खर्चे के अलावा रेलवे में भी बड़े पैमाने पर सार्वजनिक व्यय किया गया। एकीकरण और प्रथम विश्व युद्ध के बीच कुल सार्वजनिक खर्च का तीन चौथाई हिस्सा रेलवे निर्माण पर खर्च किया गया। इससे रेलवे विकास के लिए किए गए प्रयास का पता चलता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी और यहां तक कि फ्रांस के समान इटली के औद्योगीकरण को रेलवे से समर्थन नहीं मिला। सबसे पहली बात यह थी कि रेलवे निर्माण के लिए अधिकांश वस्तुएं बाहर से मंगवानी पड़ती थीं। इंजीनियरिंग क्षेत्र में रेलवे की वस्तुओं की मांग 1861-95 में 8% और 1896-1913 में 13% थी। यहां तक कि रेलवे का उपयोग भी बहुत कम हो रहा था क्योंकि उत्तर और दक्षिण के बीच असमानता थी। इसका एक कारण यह भी था कि इटली से निर्यात किए जाने वाली वस्तु का भार बहुत कम होता था; देश का पिछड़ापन भी इसके लिए उत्तरदायी था। समय और वित्त की दृष्टि से इतालवी राज्य की रेलवे नीति ऊपर से आरोपित थी। हालांकि रेलवे ने इटली को एक सूत्र में बांधने की कोशिश की परंतु इसे दक्षिण क्षेत्र को इटली की आर्थिक व्यवस्था से जोड़ने में या सम्पूर्ण औद्योगिक विकास में सफलता न मिल सकी। हालांकि रिसोर्जिमेंटो और बुर्जुआ वर्ग ने एकीकरण के बाद इटली को आधुनिकीकृत करने की कोशिश की परंतु वे द्वैधता, पिछड़ेपन और प्रांतीय असंतुलन से जुड़ी समस्याओं को दूर नहीं कर पाए।

18.6 एकीकरण की प्रक्रिया

कैवूर के नेतृत्व में पिडमौंट-सार्डिनिया ने इटली के एकीकरण का नेतृत्व किया और इसमें मेजिनी और गैरिबाल्डी के नेतृत्व में जन संगठन का समर्थन प्राप्त हुआ। हालांकि इस प्रक्रिया में जन संगठन की महत्वपूर्ण भूमिका थी परंतु संभ्रांत वर्ग ने जनता की भागीदारी को कम से कम करने का प्रयत्न किया। इसीलिए ग्राम्शी ने रिसोर्जिमेंटो और इटली के एकीकरण को निष्क्रिय क्रांति कहा है। हालांकि मेजिनी जन संग्राम की अवधारणा में विश्वास रखते थे परंतु वे कृषकों को एकजुट करने में असफल रहे। 1820-21, 1830-31 और 1848-49 की क्रांतियों की असफलता के बाद गणतंत्रीय राष्ट्रवादी विचारधारा सामने आई और इटली की एकता के लिए अधिक उदारवादी कैवूर के साथ समझौता किया गया। इतालवी राष्ट्रीय समाज ने 1857 से कैवूर और गणतंत्रीय राष्ट्रवादियों के साथ कभी मूक तो कभी खुला समझौता किया। इसी समझौते के तहत कैवूर ने एक ओर गैरिबाल्डी को स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को तैयार करने के लिए कहा और दूसरी ओर गैरिबाल्डी 1860 में 'इटली और विक्टर इमैन्यूएल' के नेतृत्व में लड़ने के लिए राजी हुआ। वस्तुतः 1860 के आरंभ में गैरिबाल्डी में स्वयं सेवी सेनानियों को जुटाने की क्षमता थी और विक्टर इमैन्यूल और पिडमौंट की सरकार ने गुप्त रूप से नेपोलियन III की सरकार के खिलाफ अभियान में नेतृत्व ग्रहण करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया।

18.6.1 जन आंदोलन

सभी प्रकार के जन आंदोलनों और सामूहिक हिंसा का संबंध प्रमुख राजनैतिक संकटों से नहीं था बल्कि वह प्रत्यक्षतः भोजन के लिए हुए दंगों, हिंसक हड़तालों, कर विद्रोहों और भूमि पर सामूहिक कब्जा किए जाने जैसी गैर राजनीतिक घटनाओं से सम्बद्ध था जो संकट के वर्षों में अनियमितताओं के कारण पैदा हुई थी। 1830

और 1840 में फिलाडेल्फी या युवा इटली जैसे गुप्त समाज सक्रिय थे। 1820-21 में क्यूरिन, नेपल्स, पैलेरमो और अल्प क्षेत्रों में कई विद्रोह हुए और 1828-31 के दौरान फिर से कई विद्रोह हुए और अगले दो वर्षों तक जिनका प्रभाव बना रहा। सिसली, नेपल्स, वेनिस, लोम्बार्डी और पैपेल राज्यों में स्थाई तौर पर बुर्जुआ क्रांतियां हुईं जिनमें सड़कों पर दंगे हुए, भोजन के लिए दंगा हुआ तथा भूमि संबंधी दस्तावेजों और कर कार्यालयों को नष्ट किया गया। मजदूरों और किसानों ने 1848-49 में क्रांतिकारी शासन व्यवस्थाओं के खिलाफ विद्रोह किया जो शहरों में रोटी और रोजगार तथा ग्रामीण इलाकों में जमीन के वितरण की उनकी मांग को पूरा करने में असमर्थ रही । क्रांतिकारी शासन व्यवस्थाओं द्वारा आरोपित आदेश का बहादुरी से हिंसात्मक विरोध किया गया। मध्य वर्ग अपने लिए जनतांत्रिक सविंधान चाहते थे। शहर में रहने वाले निर्धनों, मजदूरों और किसानों ने उनकी कराधान और सेना में जबरदस्ती भर्ती नीतियों का जमकर विरोध किया। जर्मनी में 1848-49 में हुई क्रांतियों के समान मजूदरों, किसानों, शहर में रहने वाले निर्धनों और समाजवादियों ने उदारवादी और उच्च वर्गों से अपना संबंध तोड़ लिया और इस प्रकार क्रांतिकारी गठबंधन धराशाई हो गया। 1848-49 की क्रांतियां जन क्रांतियां थीं पर यह राष्ट्रीय स्तर पर नहीं बल्कि सीमित क्षेत्रों तक ही सीमित थीं। इन छुट-पुट और असंयोजित विद्रोहों का पिडमौंट के राजतंत्र और स्थानीय अभिजात्य वर्गों के गठबंधन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। असल समस्या यह थी कि डेमोक्रेट्स ग्रामीण इलाकों से समर्थन जुटाने में असफल रहे। युद्ध किए जाने के तरीके और राजतंत्रवादी मेजिनी की नीतियों से मोहभंग होने पर 1848 के मध्य में मेजिनी जन युद्ध की अपनी अवधारणा पर वापस लौट आए। मेजिनी के प्रयत्नों के बावजूद उनके विचारों का प्रभाव ग्रामीण इलाकों पर नहीं पड़ा और वे शहर और गांवों के भेद को कम करने में सफल नहीं रहे। इसका एक कारण यह भी था कि वे उग्र सुधारवादी रूढ़िवादी पुरोहितों की अपेक्षा किसानों के कम निकट सम्पर्क में थे। गणतंत्रवादियों को किसानों का समर्थन इसलिए भी नहीं मिला क्योंकि उनमें देशभक्ति का संचार करने के लिए भूमिपतियों ने किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया। 1848-49 की क्रांतियां असफल रही परंतु रोम में मेजिनी और गैरिबाल्डी के द्वारा और वेनिस में मेनिन द्वारा वीरतापूर्वक गणतंत्र की रक्षा करने से इतालवी राष्ट्रवाद और वामपंथ को बढ़ावा मिला। इटली में 1848 की क्रांतियों और गणतंत्रों की रक्षा के प्रतीकात्मक महत्व के कारण इटली के एकीकरण और राजनैतिक सुधारों पर दूरगामी प्रभाव पड़ा।

18.6.2 युद्ध और एकीकरण

कुस्टोजा (जुलाई 1848) और नोवारा (मार्च 1849) के युद्धों की हार से उबरने में इटली को ज्यादा समय नहीं लगा। भविष्य में आस्ट्रिया से युद्ध की स्थिति में ब्रिटेन और फ्रांस का समर्थन प्राप्त करने के लिए कैवूर उनके प्रतिनिधि के रूप में 1855 में क्रिमिया युद्ध में शामिल हुआ। कैवूर के सैनिक अधिकारी ने यह घोषणा की थी कि क्रिमिया के गर्भ से ही इटली का जन्म होगा। हालांकि इटली को बहुत फायदा नहीं हुआ परंतु उसे 1856 में अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अपनी समस्याओं पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ। यूरोप के राजनैतिक नक्शे को बदलने के लिए पिडमौंट ने फ्रांस के साथ संधि करने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप 1858 में प्लौम्बियर्स में नेपोलियन III और कैवूर के बीच समझौता हुआ। 1852 में उरबानो रत्ताज्जी के मध्यमार्गी-वामपंथ से समझौता कर कैवूर ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली थी। मध्यमार्गी-दक्षिणपंथी और मध्यमार्गी-वामपंथ के बीच हुए समझौते से कैवूर को अपनी राजनीतिक स्थिति मजबूत करने में मदद मिली। कैवूर ने 1855 में इस समझौते का उपयोग किया। उसने क्रिमिया युद्ध के लिए रत्ताज्जी से बिना किसी शर्त के समर्थन प्राप्त किया जिसके बदले उसने रत्ताज्जी के लॉ ऑफ कान्वेन्ट का समर्थन किया जिसके तहत लगभग 300 धार्मिक घरानों और पंथों को दबाकर कैथोलिक चर्च के विशेषाधिकारों पर नियंत्रण लगा दिया गया।

आरंभ में गणतंत्रवादी कैवूर और पिडमौंटवासियों पर विश्वास नहीं करते थे परंतु धीरे-धीरे उन्होंने इटली के एकीकरण में पिडमौंट द्वारा निभाई जाने वाली केंद्रीय भूमिका को पहचाना। मानिन ने मेजिनी के साथ संबंध तोड़ लिया था और छुट-पुट विद्रोहों की आलोचना की थी। 1848-49 के वेनेशियन गणतंत्र के इस नेता ने पैलैविसिनो से यह आग्रह किया कि कैवूर को इटली की स्वतंत्रता में केंद्रीकृत भूमिका अदा करनी है। यहां तक कि गैरिबाल्डी और मेजिनी ने भी अपने-अपने ढंग से यह बात स्वीकार कर ली। कैवूर ने सितंबर 1856

में सिसली क्रांतिकारी ला फैरिना से गुप्त रूप से मुलाकात की और आस्ट्रिया से होनेवाले संभावित युद्ध में गणतंत्रवादियों का समर्थन हासिल किया। इटली में जनता की लगातार असफलता से मेजिनी के कई समर्थकों का मोहभंग हो गया।

नेपोलियनवादी कार्लो पिस्कैने ने एक आंदोलन की योजना बनाई। इसी समय लेघोर्न और जेनोआ में किसान विद्रोह हो गया। 1857 में साप्री में कार्लो ने आत्महत्या कर ली; संकीर्णवादी सानफेडिस्टी किसानों के हाथों बेदरदी से मारे जाने की बजाए उसने आत्महत्या करना ज्यादा बेहतर समझा। यह किसान उदारवादी या उग्र सुधारवादी विचारों की अपेक्षा राजा और पुरोहितों के साथ जुड़े हुए माने जाते थे। पिडमौंट को पूर्व क्रांतिकारियों और गणतंत्रवादियों के समर्थन को एक दिशा प्रदान करने के लिए पैलेविसिनो और ला फैरिना ने जुलाई 1857 में इतालवी राष्ट्रीय समिति की स्थापना की। यहां तक कि 1858 के आरंभ में गैरिबाल्डी ने भी ट्यूरिन के इशारे का इंतजार करना उचित समझा और राष्ट्रीय समिति में शामिल हो गया।

1859 में पिडमौंट और आस्ट्रिया के बीच युद्ध हुआ। 1858 में प्लोमबियर्स में नेपोलियन III के साथ हुए समझौते के अनुरूप फ्रांस ने इस युद्ध में पिडमौंट की सहायता की। हालांकि 1858 में विलाफ्रांका के शांति समझौते से निराश होकर कैवूर ने थोड़े समय के लिए पिडमौंट के प्रधानमंत्री के पद से इस्तिफा दे दिया था परंतु उसने मध्य इटली में भेजे गए आयुक्तों को वहीं रहने और पूर्व शासकों को पुनः बहाल किए जाने के खिलाफ जनमत तैयार करने की सलाह दी। अगस्त 1859 में कैवूर ने जनता को बधाई दी कि उन्होंने शासकों को वापस नहीं आने दिया और विदेशी शक्ति की सहायता लिए बिना स्वतंत्रता प्राप्त की। 1860 में फिर से प्रधानमंत्री बनने पर कैवूर ने मध्य इटली में अपने दूतों को आदेश दिया कि यूरोपीय मत को अपने पक्ष में करने के लिए वे यह दिखाने का प्रयत्न करें कि पिडमौंट के साथ मिलने की उनकी सभाओं के निर्णयों को जनता का समर्थन प्राप्त था। टुसकैनी, डची और लिशन को इटली में शामिल करने के बदले कैवूर फ्रांस को नाइस और सेवाय देने पर सहमत हो गया। कैवूर और नेपोलियन III के मत को इन क्षेत्रों में कराए गए मत संग्रह ने पुष्ट किया। हालांकि ये जनमत संग्रह नियंत्रित और नियोजित थे परंतु इसमें जन समर्थन प्राप्त करने में इतालवी राष्ट्रीय समाज की प्रमुख भूमिका थी। 1857 और 1862 के बीच इस समिति ने राष्ट्रीय समाचार पत्र प्रकाशित किया, स्वयंसेवक बहाल किए, मध्य इटली में क्रांतियां आयोजित की और उसके बाद जनमत संग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गैरिबाल्डी नेपल्स अभियान और पोप के राज्यों में कैवूर के प्रवेश का आरोप इसी समाज पर लगाया गया। कोपा के अनुसार " इस प्रकार यह तय हो गया कि 1861 का राज्य उत्तरी होने की अपेक्षा राष्ट्रीय होगा।"

अपने गृह प्रांत नाइस को फ्रांस को सौंपे जाने के कारण हालांकि गैरिबाल्डी दुखी था परंतु सिसली और नेपल्स के अभियान में उसने कैवूर का साथ दिया। दक्षिण अभियान में सफलता प्राप्त कर जब वह रोम की ओर बढ़ा तो कैवूर ने उसे रोक दिया क्योंकि इससे नेपोलियन III से टकराना पड़ता और इसका प्रतिकूल अन्तरराष्ट्रीय प्रभाव पड़ता। नेपोलियन की सेनाओं से निपटने के लिए, जो अक्टूबर 1860 में कापुआ और गेएटा के किले में पीछे हट चुकीं थीं, गैरिबाल्डी ने खुद पिडमौंट के राजा से दक्षिण की ओर बढ़ने का अनुरोध किया। गैरिबाल्डी के स्वयंसेवकों की अभूतपूर्व सफलता के कारण कैवूर को सम्पूर्ण इटली को एकीकृत करने की प्रेरणा मिली; अभी तक उसने अपना ध्यान उत्तरी और मध्य इटली पर ही केंद्रित कर रखा था। एकीकरण की प्रक्रिया में राजा और कैवूर की सत्ता को चुनौती देने और जनता को एकजुट करने के लिए हालांकि कुछ गणतंत्रवादियों ने पहले ही दक्षिण में अभियान का मन बना रखा था परंतु 1860 से पहले यह उद्देश्य पूरा न हो सका। 1859 में बिना किसी सामूहिक खून खराबे के उत्तरी और मध्य इटली पर कब्जा जमा लिया गया परंतु 1860 में दक्षिण में सत्ता के हस्तांतरण में भारी हिंसा हुई।

गैरिबाल्डी के सिसली पहुंचने के पहले ही दक्षिण इटली में हिंसा भड़क उठी थी। यह हिंसा बोर्बोन सरकार, इसकी सम्पत्ति और कर्मचारियों के खिलाफ केन्द्रित थी। जैसे ही गैरिबाल्डी ने सिसिली पर अपना नियंत्रण स्थापित किया वैसे ही हिंसा की दिशा बदल गई। गैरिबाल्डी ने मैसिनेटो को समाप्त करने और भूमि सुधार का वादा किया परंतु इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि उसने वहां की सेना और बुर्जुआ वर्ग से समझौता कर रखा था। बुर्जुआ वर्ग के गैरिबाल्डी से मिल जाने के बाद किसानों और मजदूरों को किसी प्रकार के न्याय

मिलने या मांगों की पूर्ति होने की आशा न रही। इस प्रकार गैरिबाल्डी और राष्ट्रीय क्रांति के विरोध में सम्पदाओं पर आक्रमण किया गया और जमीन पर कब्जा जमाया गया। दक्षिण की मुख्य भूमि पर हालांकि बोर्बोन के खिलाफ कोई प्रमुख ग्रामीण आंदोलन नहीं हुआ था परंतु गैरिबाल्डी के बुर्जुआ सहयोगियों के खिलाफ विद्रोह हुए थे। छीनी गई सार्वजनिक भूमि की वापसी की मांग करते हुए किसानों ने नए शासन के खिलाफ दक्षिणी शहर मातेरा में दंगा कर दिया। बैसीलीकाटा में नए शासन से निराश हुए समुदायों ने एकीकरण के लिए हो रहे मत संग्रह के खिलाफ दंगा कर दिया, राष्ट्रीय सैनिकों पर आक्रमण किया, अपदस्थ बोर्बोन राजा के प्रति समर्थन की घोषणा की और सैनिक दस्ते का विरोध किया। बोर्बोन राजाओं के खिलाफ लामबंद किए गए समूहों ने नए शासन का हिंसात्मक विरोध किया क्योंकि उनके हितों का नुकसान हो रहा था। अतः सत्ता के हस्तांतरण के बाद हिंसात्मक टकराव पहले से भी ज्यादा हो गया। ऐसा प्रतीत होता था कि पार्टी ऑफ ऐक्शन पर कई मायनों में पिडमौंट के राजा का नियंत्रण था। 1861 में इतालवी राष्ट्र-राज्य के निर्माण के बाद अन्य गणतंत्रवादियों के साथ यहां तक कि गैरिबाल्डी और मेजिनी को भी दरकिनार कर दिया गया।

जहां तक इटली के एकीकरण का सवाल है, वेनेशिया और रोम का प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहा। संभवतः नेपोलियन III के कहने से बैंकर इसाक पेरेरे ने यह प्रस्ताव रखा था कि 1860 के अंत तक आस्ट्रिया इटली को वेनेशिया बेच देगा। हर्जाने के तौर पर आस्ट्रिया तुर्की से बोसनिया-हर्जेगोबिना खरीद सकता था। कुछ वर्षों बाद इटली के प्रधानमंत्री ला मारमोरा ने 100,000,000 लीरा में वेनिस खरीदने का प्रस्ताव रखा था परंतु आस्ट्रिया ने एक बार फिर इनकार कर दिया। 1866 में आस्ट्रिया के साथ हुए युद्ध में इटली ने प्रशा का साथ दिया परंतु इटली की सैन्य शक्ति बहुत कारगर नहीं सिद्ध हुई क्योंकि जनमत संग्रह में संघ के पक्ष में जबरदस्त मतदान के बाद वेनिस को इटली में शामिल कर लिया गया। हालांकि 1866 के युद्ध के दौरान किसी भी शहर में विद्रोह नहीं हुआ और वेनिस के थोड़े लोग ही गैरिबाल्डी के स्वयं सेवकों में शामिल हुए। रोम पर कब्जा जमाए जाने के कई असफल प्रयत्न हुए जिनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रयत्न 1867 में गैरिबाल्डी ने किया था। सितम्बर 1870 में एक संक्षिप्त युद्ध के बाद इसे मिला लिया गया। इटली का एकीकरण हो गया परंतु 19वीं शताब्दी के अंत में जाकर इसकी उपलब्धियां सामने आईं।

बोध प्रश्न 2

1) इटली के राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक आधार के बारे में 100 शब्द लिखिए।

....

....

....

....

....

2) इटली के एकीकरण में जन आंदोलनों का क्या योगदान था ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

18.7 सारांश

जर्मनी और इटली दोनों ही 19वीं शताब्दी में राष्ट्र-राज्य के रूप में उभरे। दोनों ही मामलों में राष्ट्रवाद के विचार किसी न किसी रूप में काफी पहले से मौजूद थे। परंतु राष्ट्र-राज्यों का वास्तविक विकास 19वीं शताब्दी में ही जाकर हो सका। जर्मनी और इटली में एकीकरण की प्रक्रिया अलग-अलग थी। जहां जर्मनी में काफी ऊंचे स्तर की आर्थिक और राजनैतिक एकता हासिल की गई वहीं इटली में मुख्यतः राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर एकीकरण हुआ। तुलनात्मक दृष्टि से इटली में आर्थिक एकता काफी कमजोर थी। जर्मनी की एकता ऊपर से आरोपित की गई परंतु इटली में जन आंदोलनों ने भी प्रमुख भूमिका निभाई। इनके अलावा चाहे या अनचाहे युद्ध ने भी भूमिका निभाई और लोगों को एक सूत्र में बांधने के लिए प्रेरित किया तथा राष्ट्र-निर्माण में मदद की।

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 18.2.2

2) देखिए उपभाग 18.2.3

3) देखिए उपभाग 18.2.5

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 18.3

2) देखिए भाग 18.6

इकाई 19 साम्राज्य और राष्ट्र-राज्य-1: औटोमन और हैब्सबर्ग साम्राज्य

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- दो बड़े बहुजातीय साम्राज्यों – औटोमन और हैब्सबर्ग–के संघटन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- इन साम्राज्यों के आंतरिक अन्तरविरोध और तनावों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- यह जान सकेंगे कि किस प्रकार अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के साथ-साथ राष्ट्रवाद के विकास के कारण इन साम्राज्यों का पतन हुआ।

19.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप पहले देख चुके हैं राष्ट्र-राज्य एक नया सांस्कृतिक और राज्य-क्षेत्रीय रूप था जिसमें यूरोप में आधुनिक राज्य की स्थापना की गई थी और जिसके जरिए यूरोप की अन्तरराष्ट्रीय राजनीति को पुनर्संगठित किया गया था। नेता यथावत बने रहे मसलन, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी। इनके साथ-साथ कम महत्वपूर्ण लेकिन तेजी से आधुनिकीकृत होती शक्तियां भी मौजूद थीं जैसे स्कैनडिनेविया, हौलैंड, बेल्जियम, इटली, स्पेन और पुर्तगाल। प्रथम विश्व युद्ध में ध्वस्त होने तक यूरोप के तीन बड़े साम्राज्यों ने इन प्रवृत्तियों को रोकने की कोशिश की। ये तीन बड़े साम्राज्य थे रूसी, हैब्सबर्ग और औटोमन साम्राज्य।

इन साम्राज्यों में कई संभावित राष्ट्र निहित थे जो पूर्व-आधुनिक समय के राजवंशीय साम्राज्यों में शामिल थे। इन साम्राज्यों का अस्तित्व राष्ट्रीय आंदोलनों को दबाए रखने में निहित था जबकि उन्होंने अन्य मामलों में अपने राज्यों और सामाजों को आधुनिकीकृत किया था। परंतु आधुनिकता के आगमन से एक के बाद दूसरे क्षेत्र में लगभग अपने आप राष्ट्रवाद का उदय हुआ। निश्चित रूप से इन राष्ट्रीय आंदोलनों ने अन्तरराष्ट्रीय

सहयोग चाहा और बड़ी शक्तियों ने स्वभावतः जब उनके अन्तरराष्ट्रीय कूटनीति और युद्ध के अनुकूल साबित हुआ तब राष्ट्रवादों को प्रोत्साहित किया।

इन परिस्थितियों में राष्ट्र-राज्य एक उग्र सुधारवादी आधुनिक व्यवस्था प्रतीत होती है और बहुभाषी ढांचा जो इन राष्ट्रों को एक राजनैतिक व्यवस्था में गूंथने का प्रयत्न करता है, पुरातन प्रतीत होता है। इन तीनों राजवंशी साम्राज्यों में यूरोप के अधिकांश पिछड़े हिस्से शामिल थे। प्रत्येक सैनिक पराजय के बाद विखंडन की प्रक्रियाएं चलती रहीं और अन्ततः प्रथम विश्व युद्ध ने अंतिम आघात किया और उनसे टूटकर राष्ट्र-राज्य अलग हुए।

19.2 राष्ट्रवाद और साम्राज्य

परंतु यह कहना इतना सरल नहीं है कि राष्ट्र-राज्य आधुनिकता के प्रतीक हैं साम्राज्य पिछड़ेपन का। जैसा कि हम जानते हैं 1919 के बाद यूरोप में उभरने वाले कई राष्ट्र-राज्य यूरोप के पिछड़े हिस्से बने रहे और सोवियत संघ का नया बहु-राष्ट्रीय राज्य जो पुराने रूसी साम्राज्य को हटाकर स्थापित हुआ पिछड़ा हुआ नहीं था। उसने द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी को परास्त किया और महाशक्ति बन गया। बालकन में युगोस्लाविया एक बहु राष्ट्र-राज्य था और मध्य यूरोप में दूसरा बहु राष्ट्र-राज्य चेकोस्लोवाकिया था। स्वीटजरलैंड ने भी आधुनिक दुनिया में बहु राष्ट्र संघ के रूप में ही कदम रखा था। **वस्तुतः राष्ट्र-राज्य आधनिक नहीं होता बल्कि राष्ट्रवाद, जिस पर वह आधारित होता है, आधुनिक है**। यदि बहु राष्ट्र-राज्य में भी राष्ट्रवाद पनपता है तो वह भी उतना ही आधुनिक होगा। सोवियत संघ इसका उत्तम और उज्जवल उदाहरण है। परंतु छोटे राष्ट्र-राज्यों को भी नही भूलना चाहिए।

ये तीनों साम्राज्य इस दृष्टि से पुरातन और दुर्बल थे क्योंकि साम्राज्यवादी राज्य ने राष्ट्रवाद को पनपने नहीं दिया था। 19वीं शताब्दी के आरंभ से अलग-अलग मात्रा में इन सभी साम्राज्यों में राष्ट्रवाद पनपने लगा था। परंतु राज्य पूरे साम्राज्य को राजवंश, सेना और नौकरशाही के जरिए एक रखने का प्रयत्न कर रहा था और किसी भी आम विचारधारा, धर्म, भाषा या संस्थाओं को आधार नहीं बनाया जा रहा था। सिद्धांततः साम्राज्य एक राष्ट्र के रूप में रूपांतरित किया जा सकता है। जैसे कि इंगलैंड, वेल्स, स्कॉटलैंड और आयरलैंड को मिलाकर ग्रेट ब्रिटेन का निर्माण हुआ था। परंतु ब्रिटिश विकास में प्रगति के लक्षण मौजूद थे जिसमें शामिल होने में दूसरे राष्ट्र अपना लाभ देखते थे। निश्चित रूप से इस संघ में इंगलैंड का वर्चस्व था। दूसरी ओर आयरलैंड में होने वाले दंगे ब्रिटिश राष्ट्र की असफलता का प्रमाण थे और इस बात के द्योतक थे कि साम्राज्य को प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। हालांकि ब्रिटेन से अलग इन साम्राज्यों में दर्जनों ऐसे क्षेत्र थे जिनमें ब्रिटेन की अपेक्षा ज्यादा विविधता थी। इसके अलावा ये साम्राज्य पिछड़ेपन और अल्प विकास की समस्याओं से बुरी तरह जूझ रहे थे और अन्ततः कई क्षेत्रों में एक साम्राज्यवादी राष्ट्र के रूप में प्रदर्शित करने के लिए राष्ट्रवादी विचारधाराओं को लोकप्रिय बनाया गया। हालांकि इन रणनीतियों की शुरुआत रूसी राष्ट्रवाद और रूसी साम्राज्य के रूसीकरण, औटोमन साम्राज्य के औटोमीकरण और हैब्सबर्ग राजतंत्र में राष्ट्रीय केंद्रीकरण के रूप में देखा जा सकता है।

राष्ट्रवाद की एक दूसरी सैद्धांतिक संभावना भी हो सकती है। पश्चिम यूरोप की तरह एक राष्ट्र-राज्य निर्मित किए बिना राष्ट्रवाद आधुनिक राज्य का आधार बन सकता है। सोवियत और युगोस्लाव बहु राष्ट्र नमूना इसका एक उदाहरण है जो 1990-91 तक कायम रहा। नए सोवियत राज्य ने 1920 के दशक में जमकर राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित किया और साथ ही साथ उन्हें एक साम्यवादी राज्य में समाहित कर लिया। इस प्रकार यह नया राज्य न तो राजवंश नौकरशाही मात्र पर आधारित पुराने ढंग का साम्राज्य था और न हीं एक मात्र संस्कृति और क्षेत्र वाला राष्ट्र-राज्य। इसकी बजाए कई ऐसे राष्ट्र विकसित हुए जिनमें राष्ट्र-राज्य के सभी लक्षण मौजूद थे परंतु उन्हें पूर्ण संप्रभुता नहीं प्राप्त थी; उन्हें एक सोवियत महा-देश या जिसे आमतौर पर बहु-राष्ट्रीय राज्य कहा जाता है में पिरो दिया गया; और इस महा-राष्ट्र को केंद्रीकृत साम्यवादी दल, साम्यवादी दर्शन, नियोजन, सेना, नौकरशाही और सोवियत संस्कृति के सूत्र से जोड़ा गया। इस प्रकार सोवियत व्यवस्था में न केवल राष्ट्रवाद को स्वीकृति दी गई बल्कि इसके लिए प्रयत्न भी किया गया परंतु यह काम राष्ट्र-राज्य के जरिए नहीं किया गया। इस प्रक्रिया से कुछ मिलता-जुलता उदाहरण भारतीय संघ है जिसमें 1956 में भाषाई राज्यों को पुनर्संगठित किया गया। इनमें से प्रत्येक की अपनी उप-राष्ट्रवादी या क्षेत्रीय आकांक्षाएं हैं।

ये तीन साम्राज्य बहु-राष्ट्रीय एकता की इन रणनीतियों को ग्रहण करने में असफल रहे। परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी नीतियां अक्सर प्रतिक्रियावादी होती थीं और वे निम्नलिखित कार्यों में संलग्न होते थे: 1) संभावित राष्ट्रवाद को दबाना, 2) अवसर के अनुकूल एक मिश्रित राष्ट्रीयताओं वाले क्षेत्र में अथवा पड़ोसी क्षेत्र में रहने वाली विभिन्न राष्ट्रीयताओं में उभरने वाले राष्ट्रवाद को एक दूसरे के खिलाफ लड़ाना, 3) पड़ोस के साम्राज्य में कूटनीति, दुश्मनी और षडयंत्र के तहत राष्ट्रवाद को समर्थन देना। इन तीनों साम्राज्यों की असफलताओं को काफी हद तक राष्ट्रवादी रणनीति की असफलताओं के रूप में देखा जा सकता है और प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम को यूरोप में राष्ट्रवाद की विजय के रूप में देखा जा सकता है। सोवियत संघ भी इसका अपवाद नहीं है। जिस प्रकार राष्ट्र-राज्यों ने प्रभावी ढंग से राष्ट्रवाद को उदारवादी या फासीवादी विचारधारा से जोड़ दिया उसी प्रकार सोवियत संघ ने राष्ट्रवाद को साम्यवादी दर्शन के साथ मिला दिया।

इन साम्राज्यों के बीच राष्ट्रवाद से निपटने की दृष्टि से स्पष्ट अंतर था। पहला अंतर केंद्रीय राज्य में मौजूद संबद्धता की मात्रा में निहित था। इसमें रूसी राज्य प्रथम था, हैब्सबर्ग का स्थान उससे नीचे और औटोमन तीसरे स्थान पर था और उसे 'यूरोप के बीमार आदमी' की संज्ञा दी गई थी। दूसरा अंतर पहले से जुड़ा हुआ था; स्थानीय राष्ट्रवाद के अन्तरराष्ट्रीय समर्थन की मात्रा की दृष्टि से भी इनमें अंतर था। इसमें भी ऊपर का क्रम मौजूद था। तीसरा अंतर इस तथ्य में निहित था कि किस साम्राज्य में एक मात्र राष्ट्रीयता का वर्चस्व था। इसमें भी रूसी साम्राज्य का स्थान पहला था जहां रूसी (या अधिक से अधिक स्लाविक) राष्ट्रीयता का वर्चस्व था जबकि हैब्सबर्ग और औटोमन साम्राज्य का स्थान बहुत पीछे था। अतएव औटोमन और हैब्सबर्ग साम्राज्यों के कई राष्ट्र-राज्यों में टूटने की प्रक्रिया में स्थानीय राष्ट्रवाद के साथ-साथ अन्तरराष्ट्रीय कूटनीति का भी हाथ था। परंतु युद्ध और क्रांति (1914-1921) के दौरान रूसी साम्राज्य के भीतर चलनेवाली गतिविधियां अपेक्षाकृत अन्तरराष्ट्रीय उठापटक से अछूती रहीं। इन अन्तरों से यह भी पता चलता है कि सोवियत बहु-राष्ट्रीय राज्य क्यों रूसी साम्राज्य के रूप में उभरने में सफल रहा (उत्तर पश्चिम में कुछ नुकसान हुआ)। जबकि इस प्रकार की अन्य बहु-राष्ट्रीय संरचनाएं दो अन्य साम्राज्यों में न उभर सकीं; उदाहरणस्वरूप पश्चिमी बालकन में युगोस्लाविया और मध्य यूरोप में चेकोस्लोवाकिया ।

19.3 औटोमन साम्राज्य

औटोमन साम्राज्य इन तीनों में सबसे कमजोर था। 17वीं शताब्दी के अंत से ही उसका सिकुड़ना आरंभ हो गया था। 1699 में कार्लोविज और 1718 में पासोरोविज की संधियों द्वारा हैब्सबर्ग साम्राज्य ने पश्चिमी बालकन क्षेत्र का काफी बड़ा हिस्सा पुनःप्राप्त कर लिया। पूरी 18वीं शताब्दी के दौरान इसका पतन होता रहा; रूसी साम्राज्य के आगे यह टिक न सका और हमेशा इलाका छोड़ता गया। 1774 में कुचुक कईनार्का की संधि के कारण औटोमन साम्राज्य काले सागर के उत्तर के क्षेत्रों से हाथ धो बैठा। रूसी साम्राज्य काले सागर के पश्चिमी तट और औटोमन क्षेत्र से होते हुए रोमानिया में प्रवेश कर गया। उस समय रोमानिया को मोल्डेविया और वैलेशिया नामक डेन्यूबियन प्रांतों के रूप में जाना जाता था। यह पूरब की ओर भी बढ़ा और आरमेनिया में काकेशियन पर्वत क्षेत्र तक पहुंच गया।

18वीं शताब्दी के अंत में पश्चिमी यूरोप के तीव्र औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के कारण भी औटोमन साम्राज्य का तेजी से पतन हुआ। रूसी और हैब्सबर्ग साम्राज्यों में आधुनिकीकरण की कोशिशें की गईं। औटोमन साम्राज्य ने भी ऐसा करने का प्रयास किया। सुल्तान सलीम III, महमत II (1808-1839) और तंजीमात युग के दौरान (अब्दुल हमीद I, 1839-1861 और अब्दुल अजीज़ 1861-1879, का शासन काल) आधुनिकीकरण के प्रयास किए गए। परंतु रूसी और हैब्सबर्ग साम्राज्यों के तरह औटोमन साम्राज्य की संस्थाएं आधुनिकीकरण के प्रति बहुत उत्साहपूर्ण नहीं थीं और इस प्रकार साम्राज्य का धीरे-धीरे पतन होता चला गया।

19वीं शताब्दी के आरंभ तक इस साम्राज्य ने क्षेत्रों के एक ढीले समूह का रूप ले लिया था जिस पर समय-समय पर विभिन्न समूहों, स्थानीय प्रसिद्ध व्यक्तियों और राष्ट्रवादियों, विद्रोही औटोमन राज्याध्यक्षों और पदाधिकारियों, पड़ोस के बालकन या भूमध्यसागरीय राज्यों और अन्ततः बड़ी शक्तियों का वर्चस्व रहा। परंतु प्रथम विश्व युद्ध के बाद यह पूरी तरह टूटा नहीं क्योंकि बड़ी शक्तियां इसके विभाजन को लेकर सहमत नहीं

थीं। परंतु बड़ी शक्तियां औटोमन साम्राज्य को अपने हिसाब से और अपने हित के लिए लगातार निर्मम तरीके से सौदेबाजी के तहत टुकड़ों में काटती रहीं। परंतु हर बार उन्होंने जो अंग काटा उससे राष्ट्र या उनसे मिलता जुलता स्वरूप सामने आया क्योंकि इन क्षेत्रों में राष्ट्र-राज्यों का उदय बड़ी शक्तियों की इच्छा पर आधारित नहीं था बल्कि इसका आधार उन सभी क्षेत्रों में राष्ट्रवाद का स्वतंत्र विकास था। परंतु किसी भी राष्ट्र का बिना किसी बड़ी शक्ति के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के स्वतंत्र रूप से उभरने का सवाल ही नहीं उठता था।

बड़ी शक्तियों ने हमेशा दो अन्तरविरोधी नीतियां अपनाईं: उन्होंने केंद्रीय औटोमन राज्य को बनाए रखा और स्थानीय राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित किया। कई आक्रामक राष्ट्रवादी बालकन राज्यों से निपटने की अपेक्षा वे एक कमजोर औटोमन राज्य के साथ काम करना आसान समझते थे। इसलिए उन्होंने साम्राज्य को भंग करने की अपेक्षा धीरे-धीरे छोटा करना आरंभ किया। परंतु उनमें से प्रत्येक की एक स्वतंत्र क्षेत्रीय विस्तार की आकांक्षाएं भी थीं जिसके लिए प्रत्येक एक अलग राष्ट्र बनाने की योजना बनाता था और इसके लिए किसी एक स्थानीय राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित करता था। इस प्रकार ब्रिटिश और फ्रांसीसियों ने मिस्र और अरब क्षेत्र पर अपनी लोलुप दृष्टि गड़ाई और 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मिस्र पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित हो गया। आस्ट्रिया, पश्चिमी बालकन खासकर स्लोवेनिया, क्रोएशिया और बोस्निया-हर्जिगोविना में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था। ये सभी हिस्से बाद में युगोस्लाविया के हिस्से बने। रूसी आक्रमण के खिलाफ शेष बचे औटोमन साम्राज्य को बचाए रखने की कोशिश में हैब्सबर्ग साम्राज्य ने धीरे-धीरे और चुपके-चुपके कब्जा जमाने की नीति अपनाई।

रूस की महत्वाकांक्षा सबसे ज्यादा थी। पूरे बालकन क्षेत्र के स्लावियाई भाषा परिवार का अंग होने (रोमानिया के एक हिस्से को छोड़कर) और कट्टरपंथी धर्म, (सभी जगहों के मुसलमान और रोमन कैथोलिक क्रोयेशिया और स्लोवेनिया को छोड़कर) होने के कारण रूस अपने को इनके नेता और यहां के लोगों के संरक्षक होने का दावा कर सकता था। यह काम अखिल स्लावीय दर्शन के द्वारा किया गया जिसमें रूसी नेतृत्व में सभी स्लावों की एकता का आह्वान किया गया और औटोमन गुलामी की जंजीर को तोड़ फेंकने के लिए कहा गया। कई रूसी विचारधारात्मक समूहों ने तुर्की को छोड़कर बृहद बालकन स्थानीय परिसंघ का आकर्षक प्रस्ताव सामने रखा और इसका प्रचार भी किया परंतु यह रूसी राज्य की नीति नहीं थी। रूसी सरकार राजनीतिक और अन्य उद्देश्यों से बालकन की राजनीति को प्रभावित करने वाले साधनों की खोज में थी। कभी औटोमन सरकार के जरिए यह काम करना आसान होता था तो कभी किसी एक राष्ट्र-राज्य को समर्थन देना या इस राष्ट्र-राज्य के साथ भरोसेमंद समझौता किया जाना बेहतर उपाय होता था। वस्तुतः रूसी सरकार ने दोनों रास्ते अख्तियार किए इसलिए उसकी नीतियों में काफी उलझाव आ गया। इसके अलावा अति उत्साही राजनीतिज्ञों और सेनाध्यक्षों ने सरकार से अलग अपने निजी कार्यक्रमों और उद्देश्यों के लिए काम करना शुरू किया जिससे स्थिति और भी उलझनपूर्ण हो गई। परंतु कुल मिलाकर रूसी सरकार और अखिल स्लावीय आंदोलनों ने बालकन राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया और सर्बिया, बुल्गारिया और रोमानिया की स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण योगदान दिया; हालांकि रूस के लिए राष्ट्रवाद बहुत सुरूचिपूर्ण नहीं था क्योंकि इससे अन्ततः रूसी साम्राज्य के अस्तित्व को ही खतरा था। हैब्सबर्ग और औटोमन साम्राज्य को भी इसी विडम्बना का सामना करना पड़ा। ये साम्राज्य बालकन राष्ट्रवादों को एक दूसरे के खिलाफ लड़ाते थे और अन्ततः उन्हें ही राष्ट्रवाद से ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा।

19.3.1 ग्रीस

ग्रीस के लोगों ने पहली बार औटोमन बहु-राष्ट्रीय साम्राज्य के खोखलेपन का पर्दाफाश किया। अन्य स्वतंत्रता संग्रामों के समान उनकी आजादी की लड़ाई भी राष्ट्रवाद के तीन तथ्यों पर आधारित थी। साम्राज्यवादी राज्य का अपने स्थानीय राज्याध्यक्षों पर नियंत्रण नहीं था; वे बड़ी शक्तियों के हस्तक्षेप को रोक नहीं सकते थे। इसके अलावा बड़ी शक्तियों की प्रतिस्पर्द्धा का भी इसमें हाथ था। 18वीं शताब्दी के अंत में विद्वत और साहित्यिक मंडली ने अतीत की श्रेष्ठता और गौरव को उद्भाषित करते हुए ग्रीक राष्ट्रवादी विचारों का प्रचार-प्रसार किया। रिगस फेरोस (Rhigas Pheraios) एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवादी कवि था जिसे 1798 में औटोमन साम्राज्य ने मृत्युदंड दे दिया था और वह एक प्रमुख शहीद बन गया। फिल्की हितारिया (मित्रों का समाज) स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाला एक ऐसा प्रमुख संगठन था। एलेक्जेंडर इप्सीलांती के नेतृत्व में

इसकी स्थापना 1814 में क्रिमिया में ग्रीक व्यापारियों ने की थी। इस काल में परम्परा और प्राचीनता की महिमा पूरे यूरोप में गाई जाने लगी थी इस कारण इसका अन्तरराष्ट्रीय प्रचार हुआ। परंतु रूस ने इसके राष्ट्रवाद को ठोस समर्थन प्रदान किया।

1770 में ही रूस ने पेलोपनीज में हुए विद्रोह को अपना समर्थन दिया था। 1774 में कुचुक कईनार्जी की संधि द्वारा रूस ने सुलतान के समक्ष साम्राज्य के कट्टरपंथी ईसाइयों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इसके बाद कई विद्रोह हुए परंतु 1821 में हुआ विद्रोह सबसे निर्णायक साबित हुआ जो तेजी से मोरिया, अइगन द्वीपों, एथेन्स, कोरिन्थ, थिसेली और मैसीडोनिया में फैल गया। जनीना (आधुनिक ग्रीस में आइओनीना) के अलिपाशा, जो औटोमन साम्राज्य के एक राज्याध्यक्ष थे, ने सुल्तान के खिलाफ बगावत का झंडा उठा लिया और ग्रीस में दक्षिण तक अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। ग्रीक राष्ट्रवादी और अलिपाशा थोड़े समय के लिए इस्तम्बूल के खिलाफ एकजुट हो गए। औटोमन सरकार ने अलिपाशा पर आक्रमण किया जो उनके लिए काफी खतरनाक साबित हो रहा था और उसे 1822 में मृत्यु दंड दे दिया गया। परंतु इसके द्वारा उन्होंने अनचाहे एक ऐसी एकमात्र राजनैतिक शक्ति को समाप्त कर दिया जो ग्रीक राष्ट्रवादियों पर नियंत्रण रख सकता था। ग्रीकों को दबाए जाने के कारण पूरे यूरोप में इस्लाम विरोधी माहौल बन गया और 1822 में ग्रीस की स्वाधीनता की घोषणा की गई। अब सुल्तान ने मिस्र के अपने शक्तिशाली गवर्नर मुहम्मद अली की सहायता मांगी जो अल्बानिया मूल का था और ग्रीस में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था।

अब बालकन में नई स्थिति पैदा हो गई। रूस ने आत्मसमर्पण के लिए सुल्तान पर दबाव डाला। रूसी प्रभाव के बढ़ने के भय से ब्रिटेन और फ्रांस ने अलग-अलग मुहम्मद अली पर आक्रमण कर दिया और 1827 में नैवेरिनो खाड़ी के युद्ध में उसके बड़े जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया। रूसी भूमध्यसागरीय जहाजी बेड़े ने ग्रीकों को मदद पहुंचाई और रूस ने डैन्यूबियन प्रांतों (आधुनिक रोमानिया) और काकेशस से होकर औटोमन साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। औटोमन साम्राज्य की पराजय और 1829 में एडिरने (एड्रिओनोपल) की संधि के बाद ग्रीक स्वतंत्रता अन्तिम रूप से स्वीकार कर ली गई। 1832 में ग्रीक राज्य की स्थापना की गई परंतु रूसी प्रभाव को कम करने के लिए वहां एक जर्मन राजकुमार के नेतृत्व में इसका गठन किया गया जो धर्म से ग्रीक कट्टरपंथी नहीं बल्कि रोमन कैथोलिक था।

इसके परिणामस्वरूप रूस, आस्ट्रिया, ब्रिटेन, फ्रांस, सुल्तान, अलीपाशा और मुहम्मद अली सब एक साथ ग्रीस पर जूझ पड़े। सुल्तान ने सबसे पहले इस दौड़ से अलीपाशा को निकाल बाहर किया। इसके बाद रूस ने सुल्तान को हटाया जबकि ब्रिटेन और फ्रांस ने मुहम्मद अली का पत्ता साफ कर दिया। आस्ट्रिया ने चुपचाप ब्रिटेन और फ्रांस की कार्यवाई को स्वीकृति दे दी। उन्होंने मुख्य रूप से रूसी प्रभाव के डर से अंतिम रूप से एक ऐसे ग्रीस का निर्माण किया जो उनके राष्ट्रवादी सपने या आधुनिक ग्रीस से बहुत छोटा था। इसी कारण से धर्म और राष्ट्रीयता की दृष्टि से पूर्णतः एक विदेशी व्यक्ति को गद्दी पर बैठाया गया। इसके बाद अगले 150 सालों तक बालकन संकट जारी रहा और ग्रीस को अपना राज्य क्षेत्र फैलाने का मौका बड़े राष्ट्रों द्वारा दिया गया। **इसी प्रकार से प्रत्येक राष्ट्र-राज्य की शुरुआत न्यूनतम राज्य-क्षेत्र से हुई; बड़ी शक्तियों के टकराव में इन्होंने जिनका पक्ष लिया उसके पुरस्कार या दंड स्वरूप उनके राज्य-क्षेत्र में बढ़ोत्तरी या कमी होती रही।**

19.3.2 सर्बिया

सर्बियाई राष्ट्रीय आंदोलन में भी वही सारे तत्व मौजूद थे जैसे, औटोमन राज्य का पतन, स्थानीय शासकों और राष्ट्रवादियों के बीच क्षेत्रीय टकराव, रूसी संरक्षण और यूरोप की बड़ी शक्तियों की चालें।

1804 से लेकर 1813 तक काराज्योर्ज के नाम से पुकारे जाने वाले एक सूअर के व्यापारी के नेतृत्व में स्थानीय जैनीसेरी शासन के खिलाफ एक आंदोलन की शुरुआत हुई। सुल्तान का जैनीसेरी पर नियंत्रण समाप्त हो चुका था इसलिए वे इस आंदोलन के खिलाफ भी नहीं थे। यह आंदोलन नाम मात्र का राष्ट्रवादी था; और जब काराज्योर्ज ने बड़ी शक्तियों से मदद मांगी तो केवल रूस ने कुछ वित्तीय और सैनिक मदद की और सुलतान को संयम से काम लेने की सलाह दी। जैनीसेरी विद्रोहों और इस्तनबूल के उत्तराधिकार के संकट के

कारण विद्रोह सफल रहा। हालांकि 1813 में औटोमन साम्राज्य फिर से मजबूत हुआ और उसने काराज्योर्ज को भगा दिया जो भाग कर हंगरी चला गया था जहां उसके सर्बियाई साथी मिलोस ओबरनोविक ने उसकी हत्या कर दी। 1815 में मिलोस ने एक दूसरे विद्रोह का नेतृत्व किया और अपने को सुलतान का ईसाई पाशा घोषित किया। 1817 में उसने स्वयं को विशिष्ट व्यक्तियों की सभा द्वारा अनुवांशिक राजकुमार नियुक्त करवा लिया। सुलतान ने उसे साम्राज्य में एक अधीनस्थ राजकुमार के रूप में स्वीकार कर लिया।

मुख्यतः औटोमन राज्य के विध्वंसक सर्बियन राज्य की शुरुआत, जो बाद में युगोस्लाविया के रूप में विकसित हुआ, औटोमन साम्राज्य के पतन और राष्ट्रवादी लामबंदी के कारण हुई। तत्पश्चात बड़ी शक्तियों ने हस्तक्षेप किया। इस प्रकार 1820 और 70 के बीच राष्ट्रीय जागरूकता पैदा हुई। इसके लिए अतीत की महानता को लेकर ऐतिहासिक शोध किए गए और लोक संस्कृति को बढ़ावा दिया गया और वुक कराडजिक के साहित्यिक भाषा के सुधारों और उसके द्वारा सर्बियाई व्याकरण और शब्दकोश के निर्माण से भी इस जागरूकता में बड़ी मदद मिली।

इसके बाद बड़ी शक्तियों ने हस्तक्षेप करना शुरू किया। सबसे पहले रूस सर्बिया की ओर से आकृष्ट हुआ। सर्बिया बालकन क्षेत्र में रूस के लिए बहुत उपयोगी था और यहां पर पैर जमा कर हैब्सबर्ग और औटोमन साम्राज्य पर दबाव बनाया जा सकता था। सर्बिया के खास संदर्भ में हैब्सबर्ग औटोमन साम्राज्य को धीरे-धीरे छोटा करना चाहता था और क्रोयेशियाई, बोसनिया और हर्जिगोबिना को उससे अलग करना चाहता था। सर्बिया का अपना हित पूरब की ओर मेसीडोनिया में और दक्षिण की ओर अल्बेनिया में विस्तार करने में था जिसके लिए शासक समय-समय पर ओटोमन साम्राज्य के खिलाफ सर्ब-ग्रीक-बुल्गारिया संधि करते रहे थे। ग्रीस की तरह सर्बिया भी अपने राज्य-क्षेत्र को लेकर असंतुष्ट था। परंतु ग्रीस से भिन्न कम से कम यहां देशी राजवंश ओबरेनोविक का शासन तो था। औटोमन शक्ति को इतनी निर्ममता से सर्बिया से निकाल दिया गया कि 1867 तक बेलग्रेड में उसके ध्वज के सिवा कुछ भी नहीं बचा। 1877-78 के रूस तुर्की युद्ध में औटोमन साम्राज्य की पराजय और 1878 में बर्लिन सम्मेलन के निर्णयों के बाद सर्बिया अन्ततः पूर्णतः स्वतंत्र हो गया।

19.3.3 रोमानिया

15वीं शताब्दी के अंत में रोमानिया औटोमन साम्राज्य का एक प्रमुख प्रांत था। मोल्डेविया और वालेशिया इसके दो अंग थे जिन्हें डैन्यूबियन प्रांत के नाम से जाना जाता था जो 1859 में जाकर रोमानिया के रूप में एकीकृत हुए। यह एक विशिष्ट राजवंशीय साम्राज्य था जहां स्थानीय धर्म, रीति रिवाज और यहां तक कि देशी राजकुमार शासन करते थे। परंतु वे औटोमन नियंत्रण के अधीन थे। 1634 और 1711 के बीच इस प्रांत में कई ग्रीक राजवंशों ने शासन किया। परंतु पूरी 18वीं शताब्दी में औटोमन केंद्र के लगातार पतन और रूसी शक्ति के आगे बढ़ने से यूरोपीय प्रांत रूसी संरक्षण में आ गए और 1769 से यहां रूस का अधिपत्य हो गया। स्थानीय राष्ट्रवाद रूसी प्रदेश आस्ट्रिया द्वारा इसे नियंत्रित करने के प्रयास औटोमन द्वारा दोनों के बीच संतुलन बनाने के प्रयास ने मिलजुल कर रोमानिया राष्ट्र के उदय की पृष्ठभूमि तैयार की। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में 'राष्ट्रीय पुनर्जागरण' हुआ। *डासिया लिटेरारा* पत्रिका के सम्पादक मिहेल कोगलनिसेनु (1840) ने रोमानिया का राष्ट्रीय इतिहास लिखा। ग्रीगोर एलेक्जेन्डरस्क ने स्वच्छंदतावादी साहित्य की रचना की। 1833 में वालेशिया में सबसे पहले रोमानिया का समाचार पत्र प्रकाशित हुआ और उसके बाद बुखारेस्ट में पहली राष्ट्रीय नाट्यशाला स्थापित की गई। 17वीं शताब्दी में धार्मिक ग्रंथों और उपासना ग्रंथों का अनुवाद रोमानियाई भाषा में शुरू हुआ जो 19वीं शताब्दी में जाकर पूरा हुआ। 1865 में स्वतंत्र रोमानियाई कट्टरपंथी चर्च की अपने धर्माध्यक्ष के साथ स्थापना हुई। यहां तक कि आस्ट्रियाई-हंगेरियाई साम्राज्य में रोमानियाई कट्टरपंथी ईसाई धर्म पर इसका वर्चस्व स्थापित हो गया था। यह एक ग्रीक विरोधी कदम था; बुल्गेरिया में भी ठीक ऐसा ही हुआ था। राजनैतिक राष्ट्रीय आंदोलन के लिए सांस्कृतिक आधार निर्मित किए गए; अब इनका उपयोग बड़ी शक्तियों द्वारा किया जाना था।

1774 में कुचुक कचारिया की संधि के बाद रूसी प्रभाव ते[illegible] से बढ़ा। 1828 और 18[illegible] [illegible]बीच जब रूसी गवर्नर पैवेल किसलेव ने आधुनिक राज्य की नींव रखी [illegible] समय इन प्रांतों पर रूसी [illegible]धिपत्य था। इसके बाद यह नाममात्र को औटोमन साम्राज्य क्षेत्र रहा। परंतु [illegible] पर रूस का प्रभावी नियंत्रण था। [illegible]

एक विकट समस्या आ गई थी। यदि वह राष्ट्रवाद का समर्थन करता तो इस्तनबूल के खिलाफ उपयोगी होता परंतु यह स्वयं उसके लिए भी खतरनाक होता। इस प्रकार 1848-49 के क्रांतिकारी वर्ष में रूस ने दोनों ही प्रांतों में राष्ट्रीय आंदोलनों को दबा दिया । हालांकि नेपोलियन तृतीय के नेतृत्व में फ्रांस ने सब जगह राष्ट्रीय आंदोलनों को समर्थन प्रदान किया ताकि बहु-राष्ट्रीय साम्राज्य कमजोर हो सके और फ्रांस का प्रभाव बढ़ सके। क्रिमिया की हार के बाद रूस ने फ्रांस के अनुरोध पर इन दोनों प्रांतों का एकीकरण स्वीकार कर लिया, एलेक्जेंडर कूजा के अधीन रोमानिया नाम का एक राज्य बनाया गया जिसका चुनाव दोनों प्रांतों की राष्ट्रीय सभाओं द्वारा किया गया। उसके उग्र सुधारवादी कदमों के कारण बोयर के नाम से जाने जानेवाले आभिजात्य वर्ग ने 1866 में उसे अपदस्थ कर दिया; और बालकन के ढंग से ही होहेनजोलेर्न राजवंश के कैरोल जर्मन युवराज को राजा के रूप में चुना। बर्लिन सम्मेलन के बाद 1878 में रोमानिया को स्वतंत्र घोषित किया गया। राष्ट्रीय दृष्टि से आगे का इतिहास बालकन के अन्य क्षेत्रों के समान ही उतार चढ़ाव से परिपूर्ण था। आसपास के इलाकों को या तो खोना पड़ा या नए इलाके प्राप्त किए गए; ट्रैन्सिलवेनिया (हंगरी के साथ विवाद का क्षेत्र), बेसरबिया (सोवियत संघ का मोल्डेविया), बुकोविना और अंततः डोब्रुजा (बुल्गारिया के साथ विवाद का क्षेत्र) ऐसे ही क्षेत्र थे।

19.3.4 बुल्गारिया

बुल्गारिया सत्ता-केंद्र के नजदीक था अतः राष्ट्रवादी आंदोलन पहले शुरू होने के बावजूद यहां स्वतंत्रता अधिक धीमी गति से मिली। राष्ट्रवादी आंदोलन की शुरुआत वस्तुतः माउंट एथोस पर स्थित शिलेंदर (खिलेंदर) मठ के फादर पैसी ने 1762 में स्लावो-बुल्गारियाई इतिहास लिखकर की थी। यह एक स्वच्छंदतावादी और राष्ट्रवादी इतिहास था जिसमें बुल्गारियावासियों से विदेशी वस्तुओं को त्यागने का आह्वान किया गया था। इसके बाद 1806 में वृत्स के बिशप सोफ्रोनी ने *संडे बुक* लिखकर इस परंपरा को आगे बढ़ाया; यह बुल्गारिया भाषा में पहली मुद्रित पुस्तक थी। वैयाकरण रिलस्की ने 1835 में पहला आधुनिक बुल्गारियाई स्कूल खोला। इसके बाद जल्द ही एन-गेरोव ने पहला बुल्गारियाई शब्दकोश बनाया और वाइ. वेनेलिन, वी. रिलोव और आर. वोगोर्व ने पुरातत्व विषयक पुस्तकें लिखीं। इस अर्ध शताब्दी के दौरान इतिहास, लोक साहित्य और भाषा शास्त्र के जरिए 'राष्ट्रीय जागरूकता' को पनपने का मौका मिला। 1870 तक 2000 स्कूल खोले गए जिनमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। इसके अलावा पत्रिकाएं, वाचनालय, नाट्यशाला, सम्मेलन और सामाजिक समारोह आयोजित किए गए। इन सबने मिलकर नई चेतना का संचार किया। यह प्रक्रिया अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई जब 1870 में सुल्तान ने बुल्गारिया को इसके अपने धर्माध्यक्ष, जिसे एक्सार्ख कहा जाता था, के साथ इस्तनबूल में स्वतंत्र चर्च प्रदान किया और उसे ग्रीक धर्माध्यक्ष से मुक्त किया। खासकर मेसीडोनिया में चर्च एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक ताकत थी; परंतु सुल्तान द्वारा इसे मंजूरी दिए जाने का ग्रीकों ने जमकर विरोध किया।

हालांकि 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में स्वतंत्रता के लिए कोई आंदोलन नहीं हुआ और अधिकांश लोग 1817 में सर्बिया में मिलोस आब्रेनोविक द्वारा अपने को पाशा घोषित किए जाने के तर्ज पर ईसाई पाशा के नेतृत्व में साम्राज्य के राष्ट्रीय बुल्गारियाई प्रांत के गठन के बारे में सोच रहे थे। क्रीमिया युद्ध (1854-1856) के बाद स्वतंत्रता की मांग ने जोर पकड़ा। जी.एम. राकोव्स्की और ल्यूबेन करावेलोव ने इसका प्रतिनिधित्व किया था। स्वभावतः, रूस ने स्लाविक राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया; इसी प्रकार इस्तनबूल ने इस राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित किया क्योंकि यह ग्रीकों के विरुद्ध था और उसने 1870 में बुल्गारियाई चर्च को उसका अपना धर्माध्यक्ष प्रदान कर इसे खासतौर पर बढ़ावा दिया। रूस ने बालकन क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए सर्बिया की ओर देखा; परंतु राजकुमार मिलान के नेतृत्व में जब सर्बिया को 1876 में हुए युद्ध में औटोमन से हार माननी पड़ी तो रूस निराश होकर बुल्गारिया की ओर बढ़ा। रूसी अखिल स्लावियाई भावना ने बालकन क्षेत्र की आजादी के लिए रूस को अगुवाई करने का मौका दिया; इसी प्रकार उदारवादी राजनीतिज्ञ और कई बार प्रधानमंत्री रह चुके विलियम ग्लैडस्टोन ने 1875 में बुल्गारिया के विभिन्न आंदोलनों को तुर्कों द्वारा दबाए जाने के खिलाफ ब्रिटिश जनमत को उद्बुद्ध किया। इसके परिणामस्वरूप 1877-1878 में रूस और तुर्की के बीच युद्ध हुआ और स्वतंत्र बुल्गारिया का निर्माण हुआ। परंतु ग्रीस के समान रूस के प्रभाव की आशंका के कारण 1878

मानचित्र 4: बालकन्स

मानचित्र 5: बाल्कन और आस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य

में बर्लिन सम्मेलन हुआ और यहां बुल्गारिया का विभाजन कर दिया गया। बुल्गारिया को तोड़कर एक नए राज्य पूर्वी रूमेलिया का निर्माण किया गया और यहां भी उन्होंने बुल्गारिया पर एक जर्मन राजकुमार, बेटेनबर्ग के एलेक्जेंडर को गद्दी पर बैठा दिया।

जैसा कि हमेशा होता आया है बड़ी शक्तियों ने हमेशा राष्ट्रवाद का अपने हित में उपयोग करना चाहा है पर उनकी यह मनोकामना पूरी नहीं हो सकी है। हां, इतना जरूर है कि इससे उन्होंने पूर्वी रूमेलिया जैसे अस्थिर राज्य कायम किए। बुल्गारिया का शासन चलाने के लिए रूस रियायतें मांगने लगा; और आरंभ में बुल्गारिया के राष्ट्रवाद को समर्थन देने के बावजूद उसने बुल्गारिया और पूर्वी रूमेलिया के एकीकरण पर आपत्ति उठाई। ब्रिटेन ने यह जानकर इस एकीकरण का समर्थन किया कि राष्ट्र-राज्य अपनी नई-नई प्राप्त स्वतंत्रता का हक मांगने लगते हैं और कठपुतली बनने से इनकार कर देते हैं; रूस को भी इसी बात का डर था। 1885 में जब एलेक्जेंडर ने संघ को आगे बढ़ाने की कोशिश की तो रूसी नाराजगी के कारण उसे अपनी गद्दी से हाथ धोना पड़ा। एक बार फिर बाल्कन में अधूरा राष्ट्रवाद स्वरूप ग्रहण करने लगा। बुल्गारिया की सभा ने डेनिश राजकुमार वाल्मेदर के पक्ष में मत दिया, जबकि रूसी सम्राट एलेक्जेंडर III ने इसे खारिज कर दिया। इस बार सभी ने एक जर्मन राजकुमार, सैक्सेकोबर्ग के फर्डिनैंड को चुना, जो आम सहमति से तीस वर्षों तक गद्दी पर कायम रहा। 1912-13 के बाल्कन युद्धों से बुल्गारिया फैलता और सिकुड़ता रहा; परंतु प्रथम विश्व युद्ध में उसने गलत पक्ष का साथ दे दिया और विजेताओं ने 1919 में उसे दंडित किया: उसकी क्षेत्रीय सीमा को कम कर दिया गया और एजेन समुद्र की ओर निकलने का मार्ग भी बंद कर दिया गया। एक बार फिर यह देखा गया कि एक ओर बहु-राष्ट्रीय साम्राज्य क्षीण हो रहा था और उसके ऊपर एक राष्ट्र-राज्य का निर्माण हो रहा था; परंतु इसकी सीमाएं अभी भी बड़ी शक्तियों के नियंत्रण में थी।

बोध प्रश्न 1

1) औटोमन साम्राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए। 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

2) सर्बिया और रोमानिया की स्वतंत्रता से जुड़ी परिस्थितियों पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

3) ग्रीस और बुल्गारिया ने एक दूसरे से भिन्न किस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त की ?

....

....

....

....

....

19.4 हैब्सबर्ग राजतंत्र

हैब्सबर्ग राजतंत्र यूरोप का सबसे प्राचीन साम्राज्य था और यह यूरोप के मध्य में स्थित था; यह औटोमन के समान बहु-राष्ट्रीय था और इसकी समस्याएं समान थीं। हैब्सबर्ग एक राजवंश था जिसे हैप्सबर्ग भी उच्चरित किया जाता था; परंतु परिवार का मुखिया प्रत्येक राज्य, ड्यूक, प्रांत या काउंटी के लिए अलग-अलग उपाधि रखता था; और वह इन सभी क्षेत्रों में एक संप्रभु के रूप में अलग-अलग हैसियत से शासन करता था। उसे इलेक्टर (चुनाव करने वाले) कहे जाने वाले जर्मन राजकुमारों के एक समूह द्वारा रोम का राजा चुना जाता था, और फिर वह होली (पवित्र) रोमन सम्राट की पदवी धारण कर लेता था। अतः जिन क्षेत्रों पर उसका शासन था उसे होली रोमन साम्राज्य के नाम से जाना जाता था हालांकि इसमें रोमन जैसा कुछ भी नहीं था। नेपोलियन के हाथों पराजय के बाद 1806 में यह साम्राज्य समाप्त कर दिया गया; परंतु उस समय के सम्राट फ्रैंसिस II ने, घटना का पूर्वानुमान लगाते हुए, खुद ही आस्ट्रिया के अनुवांशिक सम्राट की पदवी ग्रहण कर ली। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के आरंभ से राजतंत्र को परिभाषित करने के लिए हैब्सबर्ग साम्राज्य या राजतंत्र, आस्ट्रियाई साम्राज्य, आस्ट्रो- हंगेरियाई राजतंत्र या द्वैध राजतंत्र जैसे परंपरागत पर्यायों का इस्तेमाल किया गया।

19.4.1 साम्राज्य के भीतर अन्तरविरोध

राजवंश और इनका प्रधान इन विषमतापूर्ण भूमि-क्षेत्रों को जोड़नेवाला एक मात्र कारक था। इसके अलावा जर्मन राजवंश का शासन होने के कारण नौकरशाही, सेना और जर्मन संस्कृति भी इनसे जुड़ी हुई थी। जीवन में सफल होने के लिए जर्मन राष्ट्रीयता का होना जरूरी नहीं था, परंतु इसके लिए जर्मन भाषा पर अधिकार आवश्यक था। सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से जर्मन अधिक विकसित थे और वे बड़े पदों पर आसीन थे; परंतु उन्होंने ऐसा गैर-जर्मनों पर वर्चस्वादी जर्मन के रूप में नहीं बल्कि *स्टैट्सवोल्क* या ''राज्य की प्रजा'' बनकर किया। जर्मन संस्कृति में ढला एक चेक, हंगेरियाई या क्रोट समान रूप से बिना किसी भेदभाव के उच्च पदों पर पहुंच सकता था। इसी प्रकार हंगरी में, जहां माग्यारों का वर्चस्व था, एक गैर- माग्यार भी बिना किसी भेदभाव के उच्च पदों पर जा सकते थे या किसी भी क्षेत्र में तरक्की कर सकते थे। ग्रीकों के साथ भी ऐसा ही हुआ था जो पूरे औटोमन साम्राज्य में उच्चस्थ पदों पर छा गए। इसी प्रकार बाल्टिक जर्मन रूसी साम्राज्य में बहुत सफल रहे। ये प्रक्रियाएं पूर्व-राष्ट्रीय या गैर-राष्ट्रीय राजनैतिक ढांचों की खास विशेषताएं थीं; परंतु राष्ट्रवाद ने निर्ममता से इन सबको ध्वस्त कर दिया।

औटोमन साम्राज्य के समान इस राजतंत्र की एकता को भी दो प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा। क्षेत्रीयतावाद पहली चुनौती थी जो परम्परागत थी और मध्य काल से चली आ रही थी। विभिन्न क्षेत्र राजा की केंद्रीय शक्ति के खिलाफ क्षेत्रीय विशेषाधिकार या विशेष संविधान का दावा करते थे। वे कराधान, सेना में नौकरी, धार्मिक अधिकार, किसानों पर जमींदारों के आधिपत्य और शहरों तथा व्यापारियों के अधिकारों जैसे सामान्य मुद्दे उठाते थे। ये समूह राजा से कुछ पाने के लिए उनके आगे-पीछे किया करते थे। इसका फायदा उठाकर राजा उन्हें एक दूसरे से लड़ाता था और अपनी गद्दी सुरक्षित रखता था। इसलिए हमेशा संबंधों का समीकरण बदलता रहता था, मोल-भाव होता रहता था और प्रत्येक राज्यारोहण और उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर नई 'सौदेबाजी' होती थी। राजवंशीय क्षेत्रीयतावाद में राजा सर्वेसर्वा था और वह एक खास ऐतिहासिक क्षेत्र का स्वतंत्र संप्रभु शासक होता था; जैसे बोहेमिया राज्य-क्षेत्र (बोहेमिया, मोराविया, सिलोसिया), हंगेरियाई राज्य क्षेत्र (हंगरी, स्लोवाकिया, ट्रान्सिलवैनिया, क्रोएशिया के हिस्से और सर्बिया) और पुश्तैनी क्षेत्र (ऊपरी और निचला आस्ट्रिया, कैरिन्थिया, कैरनिओला, लिट्टोरल, स्टिरिया, और टिरोल-वोरारलबर्ग), या गैलिशिया-बुकोविना। इस आधार पर और पृथक क्षेत्रीय निष्ठाओं के कारण राजा के नेतृत्व में एकता स्वीकार्य थी। परंतु इस प्रकार की व्यवस्था में कोई एकरूपता नहीं थी: एकरूपता स्थापित करने के प्रयत्नों के कारण राजा के प्रति क्षेत्र विशेष के ऐतिहासिक संबंधों पर असर पड़ता और राजतंत्र के अधीन एकता भी खतरे में पड़ती।

1830 और 1840 के दशक में उभर रहा राष्ट्रवाद दूसरी समस्या थी। प्रत्येक राष्ट्रीयता में विशेष अधिकारों

की मांग की गई। सबसे पहले एक भाषा और संस्कृति के संरक्षण और विकास, फिर किसी खास क्षेत्र पर भाषाई और सांस्कृतिक एकाधिकार जिसे उसके इतिहासकार उस संस्कृति के साथ जोड़ते और मांगते थे और अंततः संप्रभु राज्य के अधिकार की मांग की जाती थी। प्राचीन विशेषाधिकारों या प्रत्यक्षतः वर्ग से इसे कुछ लेना-देना नहीं था। सम्राट समूहों को तो एक दूसरे से आसानी से लड़ा सकता था पर राष्ट्रों के साथ वह आसानी से खेल नहीं खेल सकता था। आश्रय की राजनीति छोड़कर वह भी राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने लगता था और अंततः राजतंत्र समाप्त हो जाता था। राष्ट्रवाद में राजा के लिए गुंजाइश नहीं थी क्योंकि राष्ट्रवाद की परिभाषा में वह प्रत्येक राष्ट्रीयताओं के परिप्रेक्ष्य में विदेशी होता था। राजा संस्कृति से जर्मन था परंतु वह जर्मनों के लिए भी अंशतः विदेशी होता जा रहा था क्योंकि उसने अपनी राजवंशीय विरासत में गैर जर्मन राज्य क्षेत्रों को भी शामिल किया था जो जर्मन राष्ट्रवादी मानदंड का उल्लंघन था। अतः वे जर्मन साम्राज्य को अपने नए राष्ट्र के रूप में देख रहे थे। अतः यहां तक कि राजा के अधीन बना परिसंघ भी कारगर नहीं था। अब केवल युगोस्लाव और सोवियत जैसी व्यवस्थाएं चल सकती थीं जहां राष्ट्रवाद के आधार पर परिसंघ बनाया जा सकता था। परंतु परिसंघ बनानेवाला दर्शन भी आधुनिक और गैर राष्ट्रवाद के अनुकूल होना चाहिए; वंशीय व्यवस्था स्पष्ट रूप से इसके लिए उपयुक्त विचारधारा नहीं थी।

परिणामस्वरूप अपने प्रति लोगों को निष्ठावान बनाए रखना राजा की एक रणनीति थी। इसके लिए उसने सभी क्षेत्रों से अलग संबंध बनाए और उनकी संप्रभुता कायम रखी। परंतु इससे पुरानी शक्ति संरचनाओं तथा विशेषाधिकारों को कायम रखना पड़ा, कई प्रकार की क्षेत्रीय प्रशासन व्यवस्थाएं कायम हो गई जिनमें कोई एकरूपता नहीं थी, करों का असमान वितरण था, सेना को अलग-अलग पारिश्रमिक दिया जाता था आदि। इस प्रकार की हास्यास्पद विविधता का सबसे बड़ा उदाहरण अंतिम राजा फ्रैंसिस जोसेफ (1848-1916 तक शासन किया) था जिसके बारे में कहा जाता था कि वह उन्नीस भाषाएं बोलता था परंतु कोई भी भाषा ठीक ढंग से नहीं बोल पाता था। संक्षेप में केंद्रीकरण और समरूपीकरण द्वारा राज्य के आधुनिकीकरण के प्रयास को अवरूद्ध कर दिया गया। आधुनिकता की दौड़ में पीछे रह जाने के कारण अन्तरराष्ट्रीय युद्धों में उनकी हार हुई और अन्य शक्तियों ने उन्हें छिन्न भिन्न कर दिया गया। औटोमन साम्राज्य के समान राजतंत्र का भी पतन हो गया।

इसलिए सम्राट ने केंद्रीकरण की नीति अपनाई। परंतु इसके लिए परम्परागत क्षेत्रीयतावाद और आधुनिक राष्ट्रवाद दोनों पर आक्रमण करना पड़ा। यह मात्र एक प्रशासनिक प्रक्रिया थी जिसमें राजा के प्रति निष्ठा के अलावा कोई विचारधारा काम नहीं कर रही थी। राजा के प्रति निष्ठा अपने आप में क्षेत्रीयतावाद की एक पुरानी विचारधारा थी जिसे केंद्रीकरण ने समाप्त कर दिया था। अतएव केंद्रीकरण की इस रणनीति में पूर्णतः अंतर्विरोध था, यह एकीकरण की एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसने एकता के आधार को ही नष्ट कर दिया। जैसा कि ऊपर बताया गया है, राजा के प्रति निष्ठा और आधुनिक राष्ट्रवाद परस्पर विरोधी थे। राष्ट्रवाद के लिए उपयुक्त केवल एक ही संभावित जोड़नेवाली विचारधारा थी और वह सबके लिए अत्यंत घातक थी; मसलन साम्राज्य पर जर्मन राष्ट्रवादियों (परम्परावादी नहीं) का आधिपत्य। चेक, स्लोवाक, माग्यार, क्रोएशियाई और सर्ब राष्ट्रवादियों के मद्देनज़र यह नामुमकिन था। अतएव राजतंत्र के लिए सभी मार्ग बंद हो गए, चाहे वह किसी भी रूप में हों, परम्परा या आधुनिकता, गैर-राष्ट्रीय या राष्ट्रवादी। इस स्थिति में उसने हर विकल्प या कई विकल्पों को मिलाकर आजमाया जबकि वह जानता था कि वह समय टाल रहा है; साम्राज्य का विघटन अवश्यंभावी है।

सम्राट द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर लोगों को आकृष्ट करने की शाही रणनीति चलती रही, परंतु वियेना ने दो बार केंद्रीकरण करने की कोशिश की और असफल रहा। पहले जोसेफ II (1780-1790) के शासन काल के दौरान यह प्रयास किया गया। वह ऊर्जावान और निर्मम आधुनिकतावादी था जिसने क्षेत्रीय विशेषाधिकारों को निर्ममतापूर्वक दबाकर सारी शक्ति अपने हाथों में केंद्रित कर ली। अपनी मृत्यु के पहले उसने अपनी सारी असफलता स्वीकार कर ली और अपने सुधार वापस ले लिए जबकि बेल्जियम (उस समय साम्राज्य का अंग) ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। 1848 की क्रांतियों पर विजय प्राप्त करने के बाद 1850 के दशक में एक नए चरण की शुरुआत हुई जिसकी शुरुआत मुख्य रूप से 1851 में सिल्वेस्टर पेटेंट के नाम से विख्यात राजाज्ञा से हुई। इस बार निरंकुशता और आस्ट्रिया के साथ गठबंधन लंबे समय तक चला। जर्मन केवल हंगरी

जैसे विद्रोही क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि ट्रान्सिलवेनिया और क्रोएशिया में भी प्रशासन और शिक्षा की भाषा बन गई; हंगेरियाई कानून को आस्ट्रिया कानून में मिला लिया गया; और कानून के समक्ष समानता (अर्थात शक्तिशाली लोगों के परम्परागत विशेषाधिकारों की समाप्ति) लागू की गई। परंतु यह क्षणिक गठबंधन था जो सोल्फेरिनो के युद्ध और इटली के एकीकरण के बाद 1860 में टूट गया। अक्टूबर डिप्लोमा (20 अक्टूबर 1860 के संवैधानिक दस्तावेजों की एक श्रृंखला) द्वारा 1848 के पहले के अधिकांश क्षेत्रीय ढांचों को बहाल कर दिया गया। हंगरी, ट्रान्सिलवेनिया और क्रोएशिया ने नई संवैधानिक शक्तियां, संसद (क्रोएशिया और साबोर में डायट) और सरकारें (चांसलरी) प्राप्त की। हालांकि 1848 से साम्राज्य की राजनीति ऐतिहासिक क्षेत्र की बजाए राष्ट्र के आसपास मंडराने लगी; और 1867 के बाद निश्चित रूप से संतुलन राष्ट्रवाद के पक्ष में हो गया। 1866 में, सैडोवा (कोनिग्ग्रैज) के युद्ध में हार के बाद राजतंत्र को एक और गहरा धक्का लगा। इस युद्ध में प्रशा के हाथों उसकी करारी हार हुई जो जर्मन राष्ट्र-राज्य, जर्मन साम्राज्य, स्थापित करने के मार्ग पर अग्रसर था। इससे हैब्सबर्ग की जर्मनी के नेतृत्व में बढ़ने की सारी आशाएं धूमिल हो गईं। 1867 में राजतंत्र को दो अलग इकाइयों, हंगरी और आस्ट्रिया (गैर- हंगेरियाई क्षेत्र सहित) में विभक्त कर दिया गया परंतु ये सम्राट और कुछ समान मंत्रालयों के जरिए आपस में जुड़े हुए थे। इसे द्वैध शासन के रूप में जाना जाता था; इससे आस्ट्रो-हंगेरियाई राजतंत्र के द्वैधपूर्ण शासन और बोझिल अधिकारिक समीकरण "साम्राज्यिक और राजकीय सरकार" (क्रमशः आस्ट्रिया और हंगरी के लिए) सामने आया। स्लावों को इससे गहरी निराशा हुई जो संघीय ढांचे में जर्मनों, माग्यारों और स्लावों की "तिक्कड़ी" की आशा लगाए बैठे थे। यह व्यवस्था 1918 तक जारी रही।

हैब्सबर्ग राजतंत्र की राष्ट्रीयताएं-1910

	राजतंत्र		अस्ट्रिया		हंगरी	
राष्ट्रीयता	लाख में	%	लाख में	%	लाख में	%
जर्मन	120.11	23.58	99.50	35.59	19.03	9.55
माग्यार	100.66	19.76	–	–	99.94	49.93
चेक	66.43	13.04	64.36	23.02	–	–
पोलिश	49.78	9.77	49.68	17.77	19.46	9.77
रूथेनियन	39.99	7.85	35.19	12.59	4.64	2.33
रोमानियन	28.88	5.67	2.75	0.98	29.48	14.80
क्रोट	32.25	6.33	–	–	16	8.03*
सर्ब	20.42	4.01	–	–	6.5	3.26*
सर्बो-क्रोट	–	–	7.88	2.82	4.62	2.32
स्लोवाक	19.68	3.86	–	–	–	–
स्लोवेन	13.71	2.69	12.53	4.48	–	–
इतालवी	7.71	1.51	7.68	2.75	–	–
मुस्लिम स्लाव	6.12	1.20	–	–	–	–
अन्य	3.68	0.72	–	–	–	–
कुल	509.42	99.99	279.57	99.98	199.17	99.99

* *क्रोएशिया-स्लावोनिया में क्रोट और सर्ब हैं। हंगरी में स्लाव अल्पसंख्यकों की संख्या छिपाने के लिए जनसंख्या गणना में माग्यार क्रोएशिया-स्लावोनिया को छोड़ देते थे।*

(स्रोत - एडवर्ड क्रैकशॉ, **द फॉल ऑफ द हाउस ऑफ हैब्सबर्ग,** स्फेयर बुक एडिशन, लंदन, 1970, पृष्ठ-437 प्रतिशत और योग नहीं दिया गया था: इसे इस इकाई के लेखक ने जोड़ा है।)

1867 के बाद, साम्राज्य में राष्ट्रवादी तनाव काफी बढ़ गया। यह तनाव ज्यादातर शिक्षा और प्रशासन के लिए भाषा की राजनीति के कारण पैदा हुआ। अलग-अलग ढंग से वे सभी माग्यार, चेक, स्लोवाक, क्रोट, सर्ब, स्लोवेन, रूथेन (उक्रेइयाइ), पोलिश, इतालवी और अन्ततः जर्मन में विभक्त हो गए। गैर-राष्ट्रीय साम्राज्य का सिद्धांत और प्रथा समाप्त हो गई। बहुत जल्द ही साम्राज्य के सामने ऐसी घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय समस्याएं आईं जिससे साम्राज्य टूट गया। विदेशी शक्तियों ने आत्म निर्णय के नाम पर इसे विभाजित कर दिया क्योंकि सिद्धांत के रूप में इसे लागू करना आसान था।

औटोमन साम्राज्य के समान ही हैब्सबर्ग साम्राज्य का भी पतन हुआ परंतु दोनों के ढंग थोड़े-थोड़े अलग थे। औटोमन साम्राज्य के तोड़ने में बड़ी शक्तियों ने पहल की; राष्ट्रवाद बाद में आया और बड़ी शक्तियों ने भी इसका इस्तेमाल किया। हैब्सबर्ग भी इसी प्रक्रिया से गुजरा पर इसमें आडम्बर ज्यादा था और प्रथम विश्व युद्ध में हार के फलस्वरूप इसका पतन हुआ था। 19वीं शताब्दी में फ्रांसीसी आक्रमण के कारण इसे आरंभ में काफी नुकसान उठाना पड़ा। 1792 में फ्रांसीसी सेना ने बेल्जियम को कब्जे में कर लिया जो फिर हैब्सबर्ग के पास कभी नहीं जा सका। नेपोलियन की विजयों के बाद होली रोमन साम्राज्य समाप्त हो गया और 1806 में जर्मनी भी इसके हाथ से निकल गया। 1860 में इटली के एकीकरण को समर्थन देकर फ्रांस ने हैब्सबर्ग से इटली को भी अलग कर दिया। 1866 में, प्रशा ने अंतिम रूप से हैब्सबर्ग को जर्मन नेतृत्व से बाहर कर दिया। दूसरी ओर हैब्सबर्ग ने औटोमन साम्राज्य से पश्चिम बाल्कन में प्रमुख रूप से बोस्निया और हर्जेगोविना प्रांतों को हासिल कर लिया। परंतु हंगरी और चेकोस्लोवाकिया में राष्ट्रवादी दबावों के बावजूद प्रथम विश्व युद्ध में हुई हार के बाद ही साम्राज्य का पतन हुआ और विजयी शक्तियों ने चेकोस्लोवाकिया नाम के नए राष्ट्र का निर्माण किया। हंगरी में से गैर-माग्यारों को हटाकर, ट्रांस्लिवेनिया के साथ रोमानिया और दक्षिण स्लाव परिसंघ को युगोस्लाविया कहा गया और आस्ट्रिया कट छंट कर एक छोटा सा देश रह गया। यह प्रक्रिया औटोमन की अपेक्षा ज्यादा नाटकीय थी क्योंकि हैब्सबर्ग का केंद्रीय राज्य अधिक आधुनिक और प्रभावशाली था। यह बेहतर ढंग से स्थानीय राष्ट्रीयताओं और अन्तरराष्ट्रीय हस्तक्षेप को रोक सकता था। पहले की ही तरह अन्तरराष्ट्रीय शत्रुता ही निर्णायक सिद्ध हुई; और लगभग समान कारणों से औटोमन साम्राज्य की तरह हैब्सबर्ग साम्राज्य का पतन हो गया।

19.4.2 चेकोस्लोवाकिया

संभवतः पहली और प्रमुख राष्ट्रीय संस्कृति के रूप में जो संस्कृति विकसित हुई वह चेक थी। बोहेमिया (चेक देश) के आभिजात्य वर्ग के संरक्षण में एक आधुनिक 'राष्ट्रीय' संस्कृति का निर्माण हुआ। डोब्रोवस्की और जंगमैन ने चेक भाषा का मानकीकरण और शुद्धिकरण किया तथा उसे विदेशी प्रभाव से मुक्त किया; जान कोलर (एक स्लोवियाई) जैसे स्वच्छंदतावादी रचनाकारों ने ***द डॉटर ऑफ स्लाव*** (1824) नामक महाकाव्य लिखा, पॉल सफारिक (यह भी स्लावियाई था) ने स्लाव भाषाओं का इतिहास संग्रहीत किया (1826) और फ्रेंटिसेक पालाकी ने अपना ***बोहेमिया का इतिहास*** नामक विशाल ग्रंथ तैयार किया। प्राग् राष्ट्रीय पुनर्जागरण का केंद्र था और सभी लोग चाहे वह चेक, स्लाव या जर्मन हों चेक भाषा में लिखा करते थे।

स्लोवाकों के बीच टकराव के दो अवसर आए-पहला, चेक-स्लोवाक भाषाई एकता का सवाल और दूसरा स्लोवाक राष्ट्रवाद का सवाल। आर्कबिशप रूडने ने चेक आधिपत्य से मुक्त होने और स्लोवाक बोलियों को स्वतंत्र भाषा के रूप में विकसित करने का आह्वान किया। अतः स्लोवाकों को स्लोवाक अस्मिता को परिभाषित करने में कुछ समस्याएं आई थीं। इस प्रकार 1918 में जो चेकोस्लोवाकिया स्थापित हुआ उसमें दो राष्ट्र थे। सोवियत संघ और युगोस्लाविया के तरह 1992 में चेकोस्लोवाकिया भी दो राष्ट्रों में विभक्त हो गया।

साम्राज्य के भीतर चेकोस्लोवाकिया कोई राजनैतिक क्षेत्र नहीं था। चेक, बोहेमिया इलाके में जिसमें बोहेमिया, मोराविया और सिलेसिया शामिल था, चेक बहुमत में थे। जर्मन और पोलिश अल्प मत में थे। स्लोवाक हंगेरियाई राज्य के उत्तरी हिस्से में रहते थे। चेकोस्लोवाकिया की आधुनिक राजधानी प्राग पूर्णतः जर्मन शहर था जो 19वीं शताब्दी के मध्य में औद्योगीकरण और चेक मजदूरों के देशांतरण के बाद पूर्णतः चेक बन गया। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बोहेमिया इलाके पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए चेक और स्थानीय जर्मन संयुक्त रूप से अपने शाही केंद्र वियेना में रहते हुए अपनी डायटों (संसदों) में वाद-विवाद करते रहे। यह

मध्ययुगीन और परम्परागत क्षेत्रीयतावाद था। परंतु 1830 के दशक के बाद और खासकर 1848 और 1867 के बीच चेकों और जर्मनों में बोहेमिया इलाकों पर आधिपत्य जमाने के लिए होड़ शुरू हो गई। सार्वजनिक रूप से चेक और जर्मन भाषाओं के उपयोग को लेकर लोग एक दूसरे से टकराने लगे। इसके साथ-साथ चेकों ने वियेना से अधिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष छेड़ दिया। दूसरी ओर बोहेमिया के जर्मन अल्प संख्यकों ने जर्मन आधिपत्य स्थापित करने के लिए साम्राज्यिक केंद्र वियेना का समर्थन था। प्रशा के नेतृत्व में उभर रहे नए जर्मन राष्ट्रवाद में से एक का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की (जिन्होंने जर्मन साम्राज्य का निर्माण किया था।) अब दोनों ही राष्ट्रीयताएं चेक और जर्मन राष्ट्र-राज्य के आधार पर अपना हक मान रहे थे।

दूसरी ओर हंगेरियाई इलाके के भीतर स्लोवाकों को समानांतर संघर्ष चलाना पड़ रहा था। वे वियेना से मुक्त होना चाहते थे परंतु उनके लिए वियेना का मतलब केवल जर्मन नहीं था। वे हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट के नियंत्रणों का भी विरोध कर रहे थे। स्वाभाविक रूप से इस शताब्दी के पूर्वार्ध में बुडापेस्ट और वियेना के केंद्रीकरण के खिलाफ क्षेत्रीयता को बढ़ावा मिला। परंतु 1840 के दशक के बाद और खासकर 1860 के दशक के बाद स्लोवाक राष्ट्रवादी हंगरी के माग्यार राष्ट्रवादी केंद्रीकरण और स्लोवाकों के माग्यारीकरण के प्रयासों में बाधा पहुंचा रहे थे।

इस शताब्दी के अंत में चेक और स्लोवाक राष्ट्रवादों का मिलन हुआ और एक नए चेक स्लोवाक राष्ट्रवाद का उदय हुआ। इस विचार को प्रतिपादित करने के लिए 1896 में टी. जी. मसरिक के प्रेरणा से एक चेकोस्लोवाकिया समाज की स्थापना की गई। 1916 में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पेरिस में एक राष्ट्रीय परिषद की स्थापना की गई जहां मसरिक ने फ्रांसीसी नेतृत्व को यह समझाने की कोशिश की कि हैब्सबर्ग साम्राज्य के टूटने और राष्ट्रीय राज्यों तथा चेकोस्लोवाकिया के निर्माण से फ्रांसीसी सुरक्षा को मजबूती मिलेगी। फ्रांस और उनके सहयोगियों ने इस रणनीति को मंजूरी दे दी और 1918-19 के बीच नए राष्ट्र-राज्य बनाए गए। इस बार भी यूरोप में सैनिक पराजय और विजेताओं की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए गणनाओं के आधार पर राष्ट्र-राज्य व्यवस्था बनाई गई। सैनिक पराजय के बिना मध्य यूरोप में राष्ट्रीय इकाइयों से युक्त संघीय ढांचे का उदय हुआ होता जैसा कि सोवियत संघ, युगोस्लाविया और कुछ हद तक चेकोस्लोवाकिया में हुआ।

19.4.3 हंगरी

हंगरी के सम्राट के कब्जे वाले इलाके को आमतौर पर हंगरी के नाम से जाना जाता था। इसमें बहुसंख्यक और प्रबल माग्यार, रोमानियाइ (ट्रांस्लिवेनिया में जो 1919 में रोमानिया से होकर गुजरता था), उत्तर पश्चिम में स्लोवाक (जहां 1918 में चेकोस्लोवाकिया बना), दक्षिण और दक्षिण पश्चिम में सर्ब (जो 1919 के बाद युगोस्लाविया में मिल गए,) शामिल थे। इस प्रकार हंगेरिया हंगरी के सम्राट का इलाका बृहद हैब्सबर्ग राजतंत्र के अधीन खुद में एक बहु-राष्ट्रीय राज्य था (यह साम्राज्य नहीं था क्योंकि आस्ट्रिया का सम्राट हंगरी का केवल राजा था)। हंगेरियाई इलाके में माग्यारों का वर्चस्व था। इसलिए जब 1918 में राजतंत्रों का पतन हुआ तो अधिकांश माग्यार हिस्सों को काटकर दूसरे राष्ट्र-राज्यों जैसे चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, युगोस्लाविया में मिला दिया गया, और माग्यार राष्ट्र-राज्य, हंगरी को पीछे छोड़ दिया गया।

राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया में माग्यारों को थोड़ी बढ़त मिल गई थी। फेरेंज केजिंजी ने भाषा का शुद्धिकरण कर दिया था, व्याकरण को तर्कसंगत बनाया था, शब्दावली का विस्तार किया था और आधुनिक साहित्य के फलने फूलने के लिए आधार तैयार किया था। 1792 के बाद ही डायट या संसद नियमित रूप से सार्वजनिक जीवन में माग्यार भाषा के व्यापक उपयोग की मांग करने लगे थे। 1825 में काउंट इस्तवान स्चेनेइ ने संस्कृति और विद्वता की विशिष्ट राष्ट्रीय संस्था हंगेरियाई अकादमी की स्थापना की। 1830 के दशक तक हंगेरियाई इलाकों के परम्परागत क्षेत्रीय विशेषाधिकारों को लेकर हंगरी और वियेना के बीच टकराव होता रहा। इसके बाद संसद (डयाट) पर उदारवादियों और राष्ट्रवादियों की नई पीढ़ियों ने कब्जा जमा लिया जिसके नेता लाजोस कोसुत थे और जिनका उद्देश्य राष्ट्रवाद की प्राप्ति था। 1840 के दशक से माग्यारीकरण अर्थात माग्यार भाषा के उपयोग को गैर-माग्यारों के ऊपर आरोपित किया गया। इसके विरोध और प्रतिक्रिया में स्लोवाकों, क्रोटों और रोमानियाइयों ने अपनी-अपनी भाषाओं के लिए आंदोलन किया।
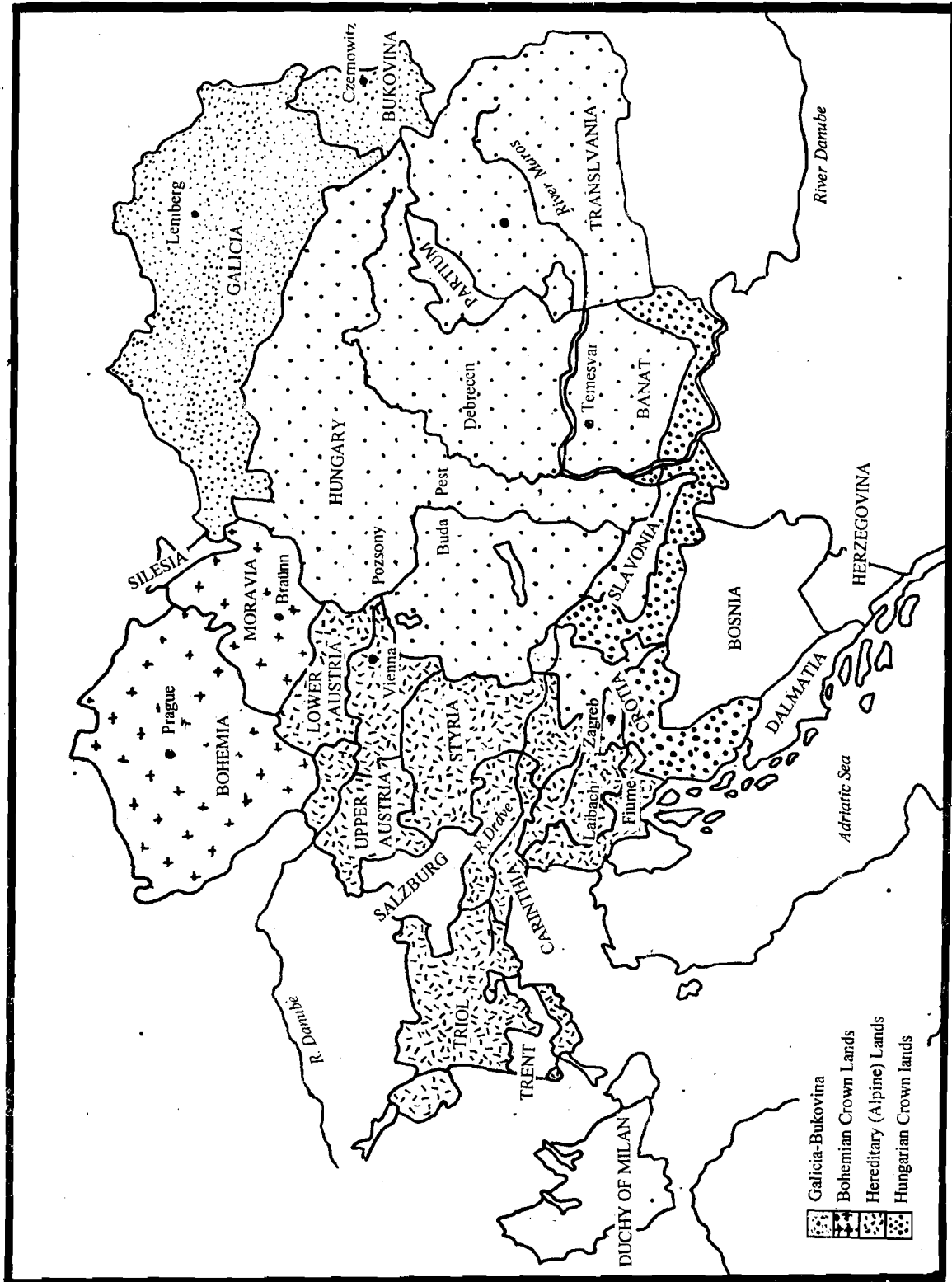
मानचित्र 6: 18वीं शताब्दी के अंत में हैब्सबर्ग राजतंत्र

यूरोप में 1848 में हुई क्रांतियों के दौरान इन राष्ट्रवादों की असल परीक्षा हुई। कोसुत के नेतृत्व में हुए हंगेरियाई राष्ट्रवादी आंदोलनों ने हंगरी पर नियंत्रण स्थापित करना चाहा, वियेना से मुक्त होने की कोशिश की और अपने को गैर माग्यारों पर आरोपित करने की कोशिश की। हालांकि स्लोवाकों और रोमानियों को हरा दिया गया, सर्ब और क्रोट पहले से ही संठित समुदाय थे और वियेना ने माग्यार के खिलाफ उनके राष्ट्रवाद का समर्थन करने का निर्णय लिया। इसलिए मार्च 1848 में कट्टर क्रुएशियाई जोसिप जेलासिस को क्रुएशिया का बैन (राज्यपाल) नियुक्त किया गया और माग्यारों को लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इसके बाद अपने मेट्रोपोलिटन विशप राजासिस के नेतृत्व में हंगरी के सर्बों ने एक 'राष्ट्रीय सम्मेलन' आयोजित किया और हैब्सबर्ग-राजवंश के अधीन अप्रैल 1849 में एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में 'हंगेरियाई सर्बों के राष्ट्र' की घोषणा की। इस प्रकार वियेना के समर्थन से क्रोट और सर्बों ने 1848-49 में माग्यारों के खिलाफ संघर्ष किया। अंत में 1849 में आस्ट्रिया का समर्थन करने के लिए आ रहे माग्यारों को रूसी सेना ने बुरी तरह परास्त कर दिया और कोसुत तुर्की भाग गया। वियेना माग्यार राष्ट्रवाद की चुनौती को टालने में सफल रहा लेकिन इससे सर्ब, क्रुएशिया और और राष्ट्रवादों को बढ़ावा मिला और साम्राज्य के राष्ट्रवादी पुनर्संगठन को वैधता प्राप्त हुई।

19.4.4 चेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया — नए बहु-राष्ट्रीय राज्य

दोनों साम्राज्यों को इस आधार पर विभक्त कर दिया गया कि उन्होंने राष्ट्रवाद के सिद्धांत का उल्लघंन किया था। इसके बावजूद वर्साय में आयोजित हुए 1919 के शांति समझौते से दो महत्वपूर्ण बहु-राष्ट्रीय राज्यों चेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया का जन्म हुआ।

चेकोस्लोवाकिया में उस समय 60 लाख चेक, 20 लाख स्लोवाक, 35 लाख जर्मन और 10 लाख माग्यार रहते थे; वहां की कुल जनसंख्या लगभग 1 करोड़ 20 लाख थी। जर्मन और चेकों तथा स्लोवाकों और माग्यारों के बीच राष्ट्रवादी घृणा के इतिहास के बावजूद जानबूझकर बहु-राष्ट्रीय राज्य का निर्माण किया गया। हालांकि हैब्सबर्ग राजतंत्र के राजवंशीय, ऐतिहासिक क्षेत्र और गैर-राष्ट्रीय एकता के पुरातन सिद्धांतों के बजाए राष्ट्रवाद की आधुनिक शक्ति को आधार बनाया गया। अपने निर्माण के समय से ही चेकोस्लोवाकिया संकट में पड़ा रहा। हालांकि इस प्रकार के राज्य आधुनिक राष्ट्रवाद के परिवेश में स्वीटजरलैंड के समान अन्तरराष्ट्रीय संरक्षण में ही फल-फूल सकते हैं; मसलन स्वीटजरलैंड त्रिराष्ट्रीय परिसंघ द्वारा संचालित होता था।

युगोस्लाविया की भी यही हालत थी। जैसे चेक और स्लोवाक राष्ट्रवादिता को चेकोस्लोवाकिया राष्ट्रवाद में मिला दिया गया उसी प्रकार सर्बियाई, क्रोएशियाई और सर्बो-क्रोट राष्ट्रवाद का विकास लगभग एक साथ हुआ था। 1830 और 1840 के दशक में जुडोविक गाज ने सभी दक्षिणी स्लावों को एकीकृत करने के लिए इलीरियानिस्ट आंदोलन चलाया था। इसके परिणामस्वरूप एकमात्र भाषा सर्बो क्रोट का निर्माण हुआ। दो पृथक राष्ट्रवाद पनपे, खासकर सर्बिया 1817 तक प्रभावी रूप में एक पृथक राज्य के रूप में मौजूद था। 1808 में जेरनेज कोपिटार, जो एक कवि और भाषाशास्त्री था, ने पहलो स्लोवेनी व्याकरण की किताब प्रकाशित की और लुब्लाना (जर्मन में लाइबाश) से पहला स्लोवेन भाषी समाचार पत्र 1843 में प्रकाशित हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में इससे स्लोवेन राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ावा मिला। इन तीनों राष्ट्रवादों और मौन्टेनिग्रो को मिलाकर दक्षिण स्लाव परिसंघ बना जिसे युगोस्लाविया के नाम से जाना गया। 1919 के पेरिस शांति सम्मेलन में सर्बिया में मौन्टेनिग्रो, डाल्मेशिया, बोस्निया, स्लोवेनिया और क्रोएशिया को मिलाकर युगोस्लाविया बना दिया गया। इनमें कुछ महत्वपूर्ण जुड़ाव थे और कुछ हद तक एक ढंग का राष्ट्रवाद भी था। परंतु कई पृथक राज्यों का भी जन्म हो गया जिसके कारण नए राष्ट्र-राज्यों का निर्माण आसान नहीं रह गया। यह राष्ट्रों का परिसंघ था जिसमें आन्तरिक शत्रुता गहराई में प्रविष्ट कर गई थी और कई स्तरों पर सर्बियाइयों का वर्चस्व क़ायम था। फिर भी यह 1990 तक कायम रहा।

बोध प्रश्न 2

1) हैब्सबर्ग साम्राज्य को एक साथ जोड़कर रखने में सम्राट ने क्या भूमिका निभाई ?

....

....

....

....

2) हैब्सबर्ग साम्राज्य के पतन में राष्ट्रवाद और युद्धों के महत्व पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

19.5 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि आधुनिक अन्तरराष्ट्रीय प्रणाली में गैर-राष्ट्रीय या राजवंशीय राज्य ज्यादा दिन तक नहीं टिक सकते। राष्ट्रवाद को रोककर, दबाकर या अनदेखा कर हैब्सबर्ग और औटोमन साम्राज्य ने जिन्दा रहने की कोशिश की। परंतु राष्ट्र-राज्य के निर्माण को वे रोक नहीं सके और खुद उनका पतन हो गया। यदि ऐसा न भी हुआ होता तो भी गैर-राष्ट्रीय-राज्य तो न ही बनते; हां, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया और सोवियत संघ जैसे और भी बहु-राष्ट्रीय राज्य बन सकते थे। आधुनिक राज्य राष्ट्रवाद के विकास के आधार पर ही टिक सकता था। एक राष्ट्र-राज्य के लिए एक राष्ट्रवाद और कई राज्यों को मिलाकर बहु राष्ट्र-राज्य का निर्माण हो सकता था। सिंद्धांततः औटोमन और हैब्सबर्ग साम्राज्य, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लोवाक और सोवियत राज्यों जैसे बहु-राष्ट्रीय इकाइयों के रूप में विकसित हो सकते थे। परंतु ये दोनों राष्ट्र अन्तरराष्ट्रीय युद्ध में हार गए और उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए। इतिहास में पराजितों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाता रहा है। इस मामले में विजेताओं ने साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े करने में राष्ट्रवाद के सिद्धांत का सहारा लिया। यह औजार उन्हें उस समय तैयार और प्रभावी रूप में मिल गया। परंतु वे एकमत पर टिके नहीं होते थे बल्कि अपनी सुविधाओं के अनुसार निर्णय लेते थे। इसलिए बाल्कन में सीमाओं का परिवर्तन होता रहा और चेकोस्लोवाकिया तथा युगोस्लावाक राज्यों का निर्माण भी यही साबित करता है। दोनों साम्राज्यों के पतन में राष्ट्रवाद के साथ-साथ सैनिक पराजय का भी हाथ था। सैनिक पराजय बताता है कि यह क्यों हुआ और राष्ट्रवाद यह बताता है कि यह किस रूप में हुआ।

19.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 19.3

2) देखिए उपभाग 19.3.2 और 19.3.3

3) देखिए उपभाग 19.3.1 और 19.3.4

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 19.4.1

2) देखिए उपभाग 19.4.1 और भाग 19.4 के अन्य उपभाग

इकाई 20 साम्राज्य और राष्ट्र-राज्य-2: रूसी साम्राज्य और सोवियत संघ

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि:

- रूसी साम्राज्य पिछली इकाई में विवेचित अन्य दोनों साम्राज्य से किस प्रकार अलग था;
- रूसी साम्राज्य अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं को अपने भीतर कैसे एकीकृत कर सका;
- प्रथम विश्व युद्ध के बाद साम्राज्य से अलग हुई इन अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं को सोवियत संघ किस प्रकार पुनर्एकीकृत कर सका।

20.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि कैसे औटोमन और हैब्सबर्ग साम्राज्य अपनी बहु-राष्ट्रीय बनावट के भार से और उभरते राष्ट्रवादी आंदोलनों की चुनौतियों के कारण ध्वस्त हो गए। इस इकाई में, हम विचार करेंगे कि रूसी साम्राज्य किस प्रकार अन्य दो साम्राज्यों से भिन्न था और युद्ध के बाद बिखरने के बावजूद किस प्रकार नया बना सोवियत संघ अपनी संघटक इकाइयों को साथ रखने में सफल रहा।

20.2 अन्य साम्राज्यों से अंतर

राष्ट्रवाद के युग में रूसी साम्राज्य ने अपनी बहुराष्ट्रीय बनावट की सभी दिक्कतों का सामना किया; और युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद विजेता अपना हिस्सा मांगने लगे थे। परंतु यह दोनों साम्राज्यों से कई मामलों में अलग था।

पिछली इकाई में आपने पढ़ा कि कैसे औटोमन और हैब्सबर्ग साम्राज्य अपनी बहुराष्ट्रीय बनावट के भार से और उभरते राष्ट्रवादी आंदोलनों की चुनौतियों के कारण ध्वस्त हो गए। इस इकाई में हम विचार करेंगे कि किस प्रकार रूसी साम्राज्य अन्य दो साम्राज्यों से भिन्न था और किस प्रकार युद्ध के बाद टूटने के बावजूद इसके उत्तराधिकारी राज्य सोवियत संघ इसके अधिकांश संघटक इकाइयों के एकीकृत करने में सफल रहा।

सबसे पहली बात यह है कि रूसी राज्य ने प्रभावी ढंग से आधुनिकीकरण को अपनाया और 1914-1918 की बड़ी विपदाओं के अलावा उसने कोई बड़ा युद्ध नहीं हारा। केवल 1854-1856 में क्रीमिया के युद्ध में यह ब्रिटेन और फ्रांस से हार गया था; परंतु इससे उसके किसी क्षेत्र पर कब्जा नहीं जमाया गया; सजा के रूप में बीस वर्षों के लिए काले सागर का असैन्यीकरण कर दिया गया। इसके बाद 1904-05 के रूस-जापान युद्ध में रूस को बड़ी हार का सामना करना पड़ा। परंतु यहां भी रूस सखालिन का आधे से कम हिस्सा ही जापान से हारा था और जापान में भी इतनी ताकत नही रह गई थी कि वह और ज्यादा हिस्से के लिए जोर लगाए। इसके अलावा नेपोलियन के खिलाफ 1812 और 1814-15 में, 1848 में हंगेरियाई क्रांति में, और 1812, 1829 और 1877-78 में औटोमन साम्राज्य में रूस को भारी सफलता हाथ लगी; इन सभी जीतों के साथ कूटनीतिक सफलताएं भी हाथ लगीं। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में काकेशस पर विजय प्राप्त की, मध्य एशिया में 1820 से 1880 तक, 1858-1860 में साइबेरिया के पूर्वी समुद्री तट, अमुर और उसुरी नदियों के उत्तर क्षेत्र में विजय प्राप्त की। इसके अलावा 1880 के बाद से कोरिया और चीनी साम्राज्य के मंचुरिया में साम्राज्यवादी घुसपैठ की। हैब्सबर्ग और औटोमन साम्राज्य की तुलना में रूसी साम्राज्य अन्तरराष्ट्रीय मसलों में कम उलझा।

दिए गए वर्ष में रूसी साम्राज्य और सोवियत संघ की राष्ट्रीयताएं

	1719		1897		1989	
	हजारों में	%	हजारों में	%	हजारों में	%
कुल	**15,764.8**	**100.00**	**125,640.0**	**100.00**	**285,743**	**100.00**
रूसी	11,127.5	70.58	56,665.5	44.31	145,155	50.80
यूक्रेनियाई	2,025.8	12.85	22,380.6	17.81	44,186	15.46
बेलोरूसी	382.7	2.43	5,885.6	4.68	10,036	3.51
कुल						
पूर्वी स्लाव	**13,536.0**	**85.86**	**83,933.7**	**66.80**	**199,377**	**69.77**
वोल्गा तातार	293.1	1.86	1,834.2	1.46	6,649	2.33
शुवाश	217.9	1.38	843.8	0.67	1,842	0.64
मौर्डोवियन	107.4	0.68	1,023.8	0.81	1,154	0.40
शेरेमिश	61.9	0.39	375.4	0.30	671	0.23
वोटियाक	48.1	0.31	420.8	0.33	747	0.26
बश्किर	171.9	1.09	1,321.4	1.05	1,449	0.51
तेप्तियार	22.6	0.14	117.8	0.09		
कुल वोल्गा/उराल	922.9	5.85	5,937.2	4.73	12,512	4.37
स्टोनियन	309.2	1.96	1,002.7	0.80	1,027	0.36
लैटवियन	162.2	1.03	1,435.3	1.14	1,459	0.51
फिनिश	164.2	1.04	143.1	0.11	69	0.02

स्वीडिश	8.0	0.05	14.2	0.01		
पोलिश			7,931.3	6.31	1,126	0.39
लिथुआनियन			1,659.1	1.32	3,067	1.07
यहूदी			5,063.2	4.03	1,449	0.51
मोल्डावियन/ रोमानियन			1,121.7	0.89	3,498	1.22
बुल्गारियन			172.5	0.14	373	0.13
गैगस			55.8	0.04	198	0.07
कुल पश्चिम	643.6	4.08	18,598.9	14.81	9,711	3.40

(स्रोत : एन्ड्रेस कैपलर, रसलैंड आल्स वियेलविलकेरिच, एन्ट्सटेहंग, गेशिशे, जेरॅफॉल वेरलाग सी.एच.बेक, मैनशेन, 1992, तालिका 3, पृष्ठ संख्या 323-325)

रूसी जनसांख्यिकी उत्कृष्टता स्पष्ट थी; और वहां स्लावों का भी वर्चस्व था। परंतु साम्राज्य के उत्तरार्ध में, पूरा अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में, साइबेरिया, बेसर्बिया (सोवियत संघ का मोल्डाविया) और अन्ततः मध्य एशिया में साम्राज्य के विस्तार और गैर-रूसियों को शामिल किए जाने से इस स्थिति में परिवर्तन आया। यह रूसियों के लिए राष्ट्रवादी चिंता का स्रोत बना जिससे विदेशी द्वेष पनपा। बाल्टिक को छोड़कर रूसी और स्लाव सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से सबसे ज्यादा विकसित थे। रूसी साम्राज्य में स्पष्ट रूप से कुछ लोगों का वर्चस्व था; हैब्सबर्ग और औटोमन साम्राज्यों में ठीक-ठाक स्पष्ट नहीं हो पाता था कि वर्चस्व किसका था।

तीसरे रूसी शाही राज्य या तानाशाही व्यवस्था के पास अपना रूसी रूढिवादी चर्च था और यहां दुनिया की सबसे बड़ी रूढिवादी ईसाई जनता रहती थी; इस व्यवस्था को कोई चुनौती देने वाला नहीं था। इससे राज्य में धार्मिक निष्ठा अविभाजित थी। दूसरी ओर, अन्य दोनों साम्राज्यों के मामले में, दोनों धर्मों (रोमन कैथेलिक और इस्लाम) के केंद्र और इस धर्म को मानने वाले अधिकांश लोग साम्राज्य के बाहर स्थापित थे। रूस को एक लाभ यह भी मिला कि रूसी रूढिवादी चर्च अठारहवीं शताब्दी के आरंभ से ही पूरी तरह राज्य के अधीन था और किसी अन्य मंत्रालय की तरह एक नौकरशाह इसके कार्यों को देखता था।

चौथा; साम्राज्य में रूसी राष्ट्रीयता ने सबसे पहले अपने को आधुनिक तर्ज पर राष्ट्र के रूप में परिभाषित किया और इस आधार पर पूरे रूसी साम्राज्य के निर्माण का प्रयत्न किया। जहां तक हैब्सबर्ग का संबंध है, हैब्सबर्ग राजतंत्र के जर्मन राष्ट्रवादी के रूप में शासन करने या वर्चस्व स्थापित करने की आशा नहीं कर सकते थे, हालांकि उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में ही जर्मन राष्ट्रवाद परिभाषित हो चुका था। जर्मन राष्ट्रवाद के कारण वे पहले प्रशा की ओर और बाद में जर्मन साम्राज्य की ओर झुके, जिसके बाद हैब्सबर्ग की रक्षा में कोई राष्ट्रवाद नहीं बच गया। औटोमन साम्राज्य के मामले में, तुर्की राष्ट्रवाद कम से कम किसी बाहरी राष्ट्र के प्रति निष्ठावान नहीं हुआ था जैसा कि हैब्सबर्ग राजतंत्र के जर्मनों के साथ हुआ था। परंतु तुर्की राष्ट्रवाद, सभी बाल्कन राष्ट्रवादों के तय होने और स्वतंत्र राज्य बनने के बाद देर से, 1870 के दशक के बाद से विकसित हुआ। रूसी राष्ट्रवाद ने पूरे साम्राज्य के रूसीकरण का प्रस्ताव रखा था परंतु तर्की राष्ट्रवाद में गैर-तुर्कियों के तुर्कीकरण की कोई योजना नहीं थी। तुर्की में आधुनिकीकरण में हुई देरी से यह स्पष्ट है, जहां तंजीमात युग (1839-1879) में प्रशासनिक आधुनिकीकरण के बावजूद राजनैतिक शक्तियां ज्यादातर राजवंशीय और ऐतिहासिक समस्याओं पर ही ज्यादा आश्रित थी।

अब पांचवा अंतर। अनेक महत्वपूर्ण पराजयों के बाद भी रूसी साम्राज्य प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही टूटा। इसके बाद, उत्तर-साम्राज्यिक क्रांतिकारी सोवियत राज्य फिनलैंड, बाल्टिक, पोलैंड ओर बेसरबिया (सोवियत संघ में मोल्डोविया) के अलावा साम्राज्य के अधिकांश हिस्से को सोवियत संघ में बनाए रखने में सफल रहा।

परंतु नवम्बर 1939 और मार्च 1940 में हुए सोवियत-फिनलैंड युद्ध में सोवियत संघ ने लेनिनग्राद के उत्तर के फिनलैंड राज्य क्षेत्र के हिस्से पर फिर से कब्जा जमा लिया। अक्तूबर 1939 में, सोवियत संघ ने वर्तमान पोलैंड के सीमांत तक फैले पूर्वी पोलैंड के अधिकांश हिस्से पर कब्जा जमा लिया। 23 अगस्त 1939 को तथाकथित नाजी-सोवियत संधि के जरिए जर्मनी से पोलैंड के बंटवारे से संबंधित समझौता हुआ। 1940 में, सोवियत संघ में निम्न निम्न शामिल थेः पूरा बाल्टिक, बेसारबिया (मोल्डोविया) जो 1918-40 से रोमानिया का अंग था; बुकोविना जो 1918 के पहले हैब्सबर्ग में और 1918-40 में रोमानिया में था और पूर्वी गलाशिया जो 1918 के पहले हैब्सबर्ग और 1918-40 में पोलैंड के अधीन था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इनमें से अधिकांश क्षेत्रों पर जर्मनों का अधिकार हो गया था परंतु 1944 में इसे वापस ले लिया गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध की अंतिम विजय के साथ सोवियत संघ ने दो और क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया— एक को पूर्वी प्रशिया कहा जाता था जो लिथुआनिया और पोलैंड के बीच पड़ता था और दूसरा टुकड़ा गलाशिया के दक्षिण चेकोस्लोवाक देश का था। यह पुनर्गठन दो चरणों में हुआ जिससे क्रांति की ताकत और रूसी राष्ट्रीयता के वर्चस्व का पता चलता है। यह चेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया और बहु-राष्ट्रीय राज्यों के समान बड़ी शक्तियों के निर्णयों से प्रभावित नहीं हुआ था।

20.3 राष्ट्रीय जागरण

अठारहवीं शताब्दी के अंत से लेकर 1840 के दशक तक रूस के राष्ट्रीय जागरण की प्रक्रिया आधुनिक साहित्य और भाषा के साथ फली-फूली। महान कवि एलेक्जेन्डर पुश्किन की कविता, महान रूसी इतिहासकार एन-एम. करमजीनिस के रूसी राज्य के महान इतिहास, सेर्जेई सोलोविविस द्वारा रचित रूस के विवरणात्मक इतिहास और लोक साहित्य संबंधी शोध प्रबंधों के जरिए राष्ट्रवाद का स्वरूप सामने आया। 1840 के दशक से राष्ट्रीय बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ जिन्होंने रूसी राष्ट्र और रूसी सभ्यता के अर्थ और उद्देश्य पर लगातार बहस की। वी.जी. बेलिन्सिकी और एलेक्जेंडर हेर्जेन जैसे पश्चिमवादी तथा के. आक्साकोव, आई. किरीविस्की और ए. खोमियाकोव जैसे स्लावभक्त इनमें प्रमुख थे। राज्य की तरफ से शिक्षा मंत्री सर्जेइ उवारोव ने रूसी राष्ट्रीय अस्मिता को परिभाषित किया और आधुनिकीकरण के बेहतर तरीके के रूप में गैर रूसियों के रूसीकरण की आवश्यकता पर बल दिया। इसके लिए प्रशासन, कानून और सामाजिक ढांचे में केंद्रीकरण और एकरूपता लागू करने की बात की गई। रूसी राज्य के पास इस एकरूपता को कायम करने के लिए रूसी रूढ़िवादी चर्च के रूप में एक प्रमुख औजार मौजूद था।

हालांकि अन्य राष्ट्रीयताओं ने भी लगभग उसी समय यही कार्य अपने लिए किए। 1820 के दशक में स्टोनियाई और लैटवियाई संस्कृतियों ने अपने साहित्य, इतिहास और लोक साहित्य को रचने की कोशिश की; 50 के दशक में इन भाषाओं में समाचार पत्र प्रकाशित हुए; और 70 तथा 80 के दशक में राष्ट्रीय अधिकारों के लिए राजनैतिक आंदोलन चलाए गए। पोलैंड से अलग करके ही लिथुनियाई राष्ट्र को परिभाषित किया जा सकता था। वे रेजपोस्पोलिटा से गहरे रूप से जुड़े हुए थे जो कि 14वीं और 18वीं शताब्दियों में पोलिश-लिथुनियाई साम्राज्य का नाम था। हालांकि इसकी संस्कृति के बारे में काफी कुछ काफी पहले ही लिखा जा रहा था परंतु लिथुनियाई राष्ट्र के लिए अलग से राष्ट्रीय कार्यक्रम 1860 के दशक में 1863 के पोलिश विद्रोह के बाद ही सामने आया। बेलोरूस का मामला भी अपने आप में अनूठा है। 1807 और 1809 में आकर बेलोरूस की भाषा का निर्माण हुआ। परंतु अगले दशक में जान बार्जवेस्की ने आधुनिक साहित्य की शुरुआत कर दी। हालांकि रूसी और पोलिश बेलोरूसियों को लिथुनियाई मानते थे क्योंकि दोनों का धर्म रोमन कैथोलिक था। 1860 के दशक में ही रूसी राष्ट्रवादियों को यह पता चला या वे आश्वस्त हुए कि रूसियों के समान बेलोरूसियों की भी अपनी भाषा और लोक साहित्य मौजूद था। राष्ट्रीय कवि तराश शेवचेनको की साहित्यिक उपलब्धियों के साथ ही 1840 के दशक में यूक्रेन की आधुनिक और राष्ट्रीय पहचान बनी। इसी के तुरंत बाद 50 के दशक से राजनैतिक नियति के विचार का प्रतिपादन किया गया। वोल्गा क्षेत्र में पचास के दशक में तातार को शिहाबेद्दिन मार्ज़ानी के रूप में एक राष्ट्रीय इतिहासकार प्राप्त हुआ; अब्दुल कयूयूम नासीरी (1825-1902) ने साहित्यक भाषा की रचना की; और 1880 के दशक से एक क्रीमियाई तातार,

इस्माइल बे गास्प्राली (गसप्रिंस्की) (1851-1914) ने एक सरलीकृत भाषा का निर्माण किया, एक प्रभावी पत्र की शुरुआत की और पानतुर्क्रिज्म (अखिल तुर्कीवाद) के नाम से एक राजनैतिक कार्यक्रम की शुरुआत की।

रूसी साम्राज्य में विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीय अस्मिताओं के एक साथ उभरने से अब निष्ठा सम्राट के प्रति न होकर प्रत्येक राष्ट्र के प्रति हो गई। मात्र सम्राट के प्रति निष्ठा के आधार पर एकता और सुरक्षा कायम नहीं की जा सकती थी (हैब्सबर्ग में भी यही समस्या थी); इसे रूसी राष्ट्र से जुड़ा और आधारित होना था। परंतु उभरते गैर रूसी राष्ट्रवादियों के लिए यह संभव न थाः इसलिए इन रूसी गैर रूसी राष्ट्रवादियों का रूसीकरण ही एकमात्र उपाय था। रूस में यह संभव दिखाई देता था क्योंकि वहां रूसी लोग अधिक थे और वहां उनकी सर्वोच्चता भी स्थापित थी (हैब्सबर्ग राजतंत्र के जर्मनीकरण से यहां स्थिति भिन्न थी)। इस नीति के तहत रूसी अधिकारी, रूसी भाषा और रूसी रूढ़िवादी चर्च को आरोपित करने की प्रक्रिया शुरू हुई। आज हमें यह निरर्थक प्रयास लग सकता है परंतु उन दिनों जब राष्ट्रों की शुरुआत हो रही थी तब यह संभव लग रहा था क्योंकि इंगलिश ने अपने को स्कॉटलैंड और वेल्स पर, आरोपित किया था, आधिकारिक तौर पर फ्रांस ने अभी हाल में ही फ्रांस में भी यही किया था और हंगरी में माग्यार, स्लोवाकों, क्रोटों और सर्बों पर हावी होने का प्रयत्न कर रहे थे। एकीकरण की समस्या के साथ आधुनिकीकरण का लक्ष्य भी जुड़ा हुआ था। इसके लिए केंद्रीकरण और एकरूपता की जरूरत थी। रूसीकरण ही इस एकरूपीकरण का एकमात्र उपाय था क्योंकि गैर-राष्ट्रीय केंद्रीकरण का हैब्सबर्ग नमूना घातक भी था और अन्तरविरोधों से युक्त भी था, जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं। लंबे समय तक शिक्षा मंत्री रहे सेरजी युवारोव के सामने यही विकल्प और मुद्दे थे जिसके आधार पर उसे यह प्रक्रिया शुरू करनी थी।

20.4 पोलिश संस्कृति का रूसीकरण

पोलिश भाषा और पोलिश संस्कृति से जुड़े धर्मों पर आक्रमण कर पश्चिम में रूसीकरण की शुरुआत हुई। इनमें रोमन कैथोलिक और यूनिएट शामिल थे (यूनिएट चर्च की स्थापना 1956 में हुई जिसने रोमन कैथोलिक और रूढ़िवादी मतों को एक में मिला दिया, परंतु पदानुक्रम में यह रोम के पोप से नीचे था और इस कारण रूस में इसे संदेह की निगाह से देखा जाता था)। 1831 में पोलिश विद्रोह के बाद रोमन कैथोलिक मतों को कड़ाई से दंडित किया गया क्योंकि पोलैंड एक कैथोलिक राष्ट्र था। स्थानीय स्वशासन को दबा दिया गया, प्रशासन, न्यायालयों और विद्यालयों में रूसी भाषा आरोपित की गई और लिथुआनिया की राजधानी विलना स्थित विलना विश्वविद्यालय को बंद कर दिया गया और रोमन कैथेलिक मठों में ताले लगा दिए गए। यूक्रेन, बेलोरूस (इसे श्वेत रूस के नाम से भी जाना जाता था) और लिथुआनिया में भी इसी प्रकार के पोलिश विरोधी सांस्कृतिक कदम उठाए गए। रूसी साम्राज्य में धीरे-धीरे मिलाए जाने के पहले ये सभी क्षेत्र 14-18वीं शताब्दियों में पोलिश-लिथुआनियाई साम्राज्य, रेक्पोस्पोलिटा के हिस्से थे। रूसी कानून द्वारा लिथुआनियाई अधिनियम के स्थान पर रूसी कानून लागू किया गया, और यूनिएट चर्च को 1839 में दबा दिया गया; यूक्रेन और बेलोरूस में इसके अनुयायियों की संख्या काफी अच्छी थी। रूढ़िवादी चर्च ने लिथुआनियाई और बेलोरूसी किसानों के बीच धर्मान्तरण की हवा चलानी चाही परंतु उन्हें कोई खास सफलता नहीं मिली। इसके बावजूद वर्ग संरचना को नहीं छेड़ा गया, कृषिदास प्रथा यथावत रही और पोलैंड के प्रभावशाली लोग अपने विशेषाधिकारों का उपयोग करते रहे। इस प्रकार के साम्राज्यों की यह विशिष्ट समस्या थी; राष्ट्रवादी और वर्ग नीतियां अलग दिशाओं में बढ़ीं और कभी-कभी ये अंतरविरोधपूर्ण भी हो सकती थीं। पूर्व-आधुनिक साम्राज्य कभी भी हमेशा राष्ट्रवादी नहीं बना रह सकता।

1863 के पोलिश विद्रोह के बाद 1860 के दशक में इस प्रकार की एक नई लहर पैदा हुई। रोमन कैथोलिक चर्च को एक बार फिर से दबाया गया और रूसी भाषा को प्राथमिक विद्यालयों तक में आरोपित कर दिया गया। चूंकि बेलोरूस और लिथुआनिया पोलैंड से भिन्न था अतः तानाशाही एक राष्ट्रवाद से भिड़ने लगी। 1860 के दशक से रूसी राष्ट्रवादियों ने बेलोरूसी भाषा को बढ़ावा देना शुरू किया और किसानों को बेलोरूसी भाषा में पर्चे बांटे गए कि वे अपने को रूसी कहें। इसी के साथ-साथ स्थानीय क्रांतिकारियों ने किसानों को

एकजुट करने और रोमन कैथोलिक पुरोहितों ने रूढ़िवादी आक्रमण को रोकने के लिए इसी भाषा का उपयोग किया। इसके फलस्वरूप एक उपेक्षित और तिरस्कृत बेलोरूसी भाषा का उल्लेखनीय विकास हुआ। दूसरी लहर 1905-1097 की क्रांति के दौरान उठी। बेलोरूसी राष्ट्रवाद एक प्रमुख सांस्कृतिक ताकत के रूप में उभरा परंतु दूसरे राष्ट्रवादों की तुलना में यह राजनैतिक दृष्टि से बहुत मजबूत नहीं था। इस दृष्टि से यह रूसी राज्य के लिए आदर्श था। इसने लोकप्रिय क्षेत्रीय चेतना का संचार किया, इसने पोलिश संस्कृति को दरकिनार कर दिया परंतु यह रूसी राज्य में बना रहा।

लिथुआनिया की स्थिति तानाशाही सरकार के लिए ज्यादा जटिल थी। पोलिश लोगों का नौकरी में और खासकर लिथुआनिया में चर्च पदानुक्रम में दबदबा था; अतः 1860 के दशक के बाद से लिथुआनिया के पुरोहित पोलिश-विरोधी राष्ट्रवादी के रूप में उभरे। रूसी सरकार खुश थी परंतु यह राष्ट्रवाद रूसियों के भी उतने ही खिलाफ था। रूसी सरकार ने अपनी रूसीकरण नीति के तहत लिथुआनियाइयों को नौकरी दिए जाने पर प्रतिबंध लगा दिया, इसके बावजूद चर्च पदानुक्रम में काफी लोग प्रवेश कर गए। इसी प्रकार लिथुआनियाई रोमन कैथोलिक चर्च बुद्धिजीवियों, और अति राष्ट्रवादियों का आधार बन गया और रूस तथा पोलिश राष्ट्रवाद के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया रखना शुरू कर दिया। निश्चित रूप से यह रूसी राज्य के लिए एक समस्या थी; परंतु इससे उसे लाभ भी हुआ। यह लिथुआनियाई राष्ट्रवाद रूढ़िवादी और समाजवाद विरोधी था। इस क्षेत्र के समाजवादी दो दलों में संगठित हुए; ये दल थे — 1) 1892 में स्थापित जोसेफ पिलसुडस्की का पोलिश समाजवादी दल और 2) 1893 में पोलैंड और लिथुआनिया राज्यों के सामाजिक जनतंत्री (सोशल डेमोक्रेट्स)। दोनों पोलैंड के साथ संघीय व्यवस्था चाहते थे जबकि लिथुआनियाई रूढ़िवाद और राष्ट्रवादी पोलिश मेलजोल के विरोधी थे। रूसी तानाशाही के दो प्रबल शत्रुओं, पोलिश राष्ट्रवाद और पोलिश समाजवाद, पर नियंत्रण रखने के लिए लिथुआनियाई राष्ट्रवाद बहुत उपयोगी था; परंतु इससे रूसी साम्राज्य की एकता को भी नुकसान पहुंचा।

20.5 बाल्टिक का रूसीकरण

बाल्टिक देश में भी ऐसी ही परिस्थिति पैदा हुई परंतु वहां राष्ट्रीयताएं और धर्म अलग-अलग थे। बाल्टिक को आज एस्टोनिया, लाटिविया और लिथुआनिया के नाम से जाना जाता है; परंतु 1918 से पहले यह अलग-अलग सीमाओं के साथ ऐतिहासिक प्रांतों में विभक्त थे और इसके हिस्सों को एस्टलैंड, लिफलैंड (लिवोनिया) और कुरलैंड (कोरलैंड) के नाम से जाना जाता था। 12वीं और 13वीं शताब्दियों में जर्मनों ने इस पर कब्जा जमाए रखा था; तब से शासकीय वर्ग जर्मन था, नौकरशाही में रूसी और जर्मन शामिल थे और किसान तथा आम आदमी एस्टोनियाई और लैटवियाई थे। बाल्टिक के जर्मन सामंत रूसी प्रजा थे और रूस के सम्राट के प्रति पूर्ण रूप से निष्ठावान थे। यूरोप के ही समान वे सामंती कुलीन वर्ग के विशेषाधिकारों का उपयोग कर रहे थे, हालांकि 1816-1819 में उनके कृषिदास स्वतंत्र हो चुके थे। सभी जगह जर्मन भाषा का उपयोग किया जाता था, वे अपनी न्याय व्यवस्था चलाते थे और वे सभी प्रकार की शिक्षा और पेशेवर रोजगार पर नियंत्रण रखते थे। काम काज ठीक ढंग से चलाने के लिए रूसी राज्य उनसे सहयोग चाहता था। लेकिन शिक्षा मंत्री, उवारोव ने चेतावनी दी कि बाल्टिक जर्मनों को दिया जाने वाला विशेषाधिकार रूसी तानाशाही (राज्य) के लिए खतरा था। स्लाव प्रेमियों के एक प्रभावशाली गुट और राष्ट्रवादी विचारधारा ने उसका समर्थन किया। बाल्टिक जर्मनों ने कभी भी कोई आक्रामक रुख नहीं अपनाया, परंतु पोलिश विद्रोह से राष्ट्रवाद की ताकत और खतरे का पता लग गया; और आधुनिकीकरण के लिए हर स्तर पर एकरूपता की आवश्यकता थी। अतः रातोरात बाल्टिक सामंत शक के घेरे में आ गए।

सबसे पहले स्टोनियाई ओर लैटवियाई किसानों को प्रोटेस्टेंट से रूसी रूढ़िवादी धर्म में परिवर्तित किया जाना था ताकि अपने जर्मन अधिपतियों से उनका सम्पर्क टूट जाएं (जो प्रोटेस्टेंट थे) और उन्हें तानाशाही (रूसी राज्य) और रूस के साथ जोड़ा जा सके। 1836 में रिगा (उस समय लिवोनिया और अब लैटविया की राजधानी) में एक रूढ़िवादी केंद्र (बिषप का क्षेत्र) की स्थापना की गई और 1845-47 में लगभग एक लाख किसानों को धर्मांतरित किया गया। हालांकि इनमें से अधिकांश 1860 में फिर अपने धर्म में लौट आए क्योंकि

इससे उन्हें कोई फायदा नहीं हुआ था। रूसी राष्ट्रवादी बाल्टिक विशेषाधिकारों के खिलाफ शोर मचाते रहते थे; परंतु सम्राट उन पर नियंत्रण रखने में सफल रहा क्योंकि वह अस्थिरता के खतरे से पूरी तरह अवगत था परंतु राष्ट्रवाद एक उभरती हुई शक्ति थी जिसका उपयोग रूसी राज्य ने खुद साम्राज्यिक एकीकरण के लिए किया; और 1870 के दशक से बाल्टिक विशेषाधिकार समाप्त किए जाने लगे। जर्मन सामंत वर्ग अपनी जागीर और नैगमिक सरकारों में प्रतिबंधित सम्पत्ति मताधिकार के जरिए शासन करते थे; और सभी किसानों (स्टोनियाई और लैटवियाई थी) ने जब इस मताधिकार को विस्तार देने की बात की तो उसे नामंजूर कर दिया गया। परंतु 1877 में निगम के चुनावों के लिए सम्पत्ति विषयक योग्यता को अधिक विस्तृत कर दिया गया और पहली बार राजनैतिक संघर्ष में गैर जर्मन शामिल हुए। 1852 में रूसी नगर निगम कानून पूरी तरह बाल्टिक में लागू कर दिया गया। 1888 के दशक से रूसीकरण के व्यापक अभियान के तहत बड़ी संख्या में जर्मन अधिकारियों को पदमुक्त कर दिया गया। स्टोनियाई और लैटवियाई याचिकाओं को स्थगित रखा गया और अन्ततः 1888-1889 में न्यायिक प्रशासन, स्कूलों के नियंत्रण और जर्मन भाषा के उपयोग से संबंधित पुराने बाल्टिक जर्मन विशेषाधिकारों जिन्हें *प्रिवेलिजियम सिगिसमुंडी अगस्ती* के नाम से जाना जाता था, को निरस्त कर दिया गया। इस प्रकार तानाशाही सरकार ने बाल्टिक जर्मन विशेषधिकारों के खिलाफ स्थानीय राष्ट्रवाद का उपयोग किया। परंतु 1890 के दशक में एक क्रांतिकारी आंदोलन की शुरुआत हुई जो 1905-1907 की महान क्रांति में तब्दील हो गई; स्टोनियाई, लैटवियाई राष्ट्रवाद के रूप में किसान और मजदूरों की क्रांति सामने आई। अतः तानाशाही सरकार ने एक वर्ग के रूप में जर्मनों का साथ देना शुरू कर दिया। इस प्रकार इस नीति का दो धारी तलवार के रूप में उपयोग किया गया; स्थानीय राष्ट्रवादों को जर्मनों के खिलाफ भिड़ाया गया और स्थानीय किसानों और मजदूरों के खिलाफ जर्मन वर्ग हितों को बचाने का प्रयास किया गया। यह अन्तरविरोध कभी भी दूर नहीं हो सका।

20.6 यूक्रेन का रूसीकरण

काफी दिनों तक यूक्रेनियाई भाषा पर प्रतिबंध लगा रहा और सोसाइटी ऑफ सेंट सिरिल और मेथोडियस (1847) जैसे राष्ट्रवादी संगठनों को दबाया गया। सभी स्तरों पर रूसी भाषा आरोपित की गई। यूक्रेनियाई भाषा में लिखी पुस्तकों पर भी प्रतिबंध लगाया गया; तब जाकर यूक्रेनियाई राष्ट्रवाद अपने को रंगमंच के द्वारा अभिव्यक्त करने लगा। लेकिन यूक्रेनियाई राष्ट्रवादी भागकर सीमा पार गैलेशिया चले गए जो हैब्सबर्ग राजतंत्र की सीमा में था; वहां उनका गर्मजोशी के साथ स्वागत हुआ। जिस प्रकार रूसी राज्य ने पोलों के खिलाफ लिथुआनियाई और बाल्टिक जर्मन के खिलाफ लैटिवाइयों तथा एस्टोनिआइयों को आगे बढ़ाया था ठीक उसी तरह हैब्सबर्ग राजतंत्र ने पोलिश राष्ट्रवाद और संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के खिलाफ गैलेशिया के रूथेन्स लोगों के बीच यूक्रेनियाई राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया। हैब्सबर्ग 1780 के दशक से ही इस खेल में लगा हुआ था; परंतु 1848 के बाद इसकी गति और भी तेज हो गई। इस प्रकार यूक्रेनियाई राष्ट्रवाद रूसी साम्राज्य के यूक्रेनियाई राज्य-क्षेत्र में तो दबा दिया गया परंतु हैब्सबर्ग साम्राज्य में खूब फला-फूला। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद गैलेशिया को अन्ततः यूक्रेन में मिला लिए जाने के बावजूद यह क्षेत्र पूरी तरह राष्ट्रवादी और यूक्रेन का सोवियत विरोधी हिस्सा बना रहा।

20.7 फिनलैंड का रूसीकरण

फिनलैंड रूसी साम्राज्य का हिस्सा था परंतु उसका एक विशेष स्थान था। नेपोलियन युद्धों के दौरान 1809 में इसे स्वीडेन से प्राप्त किया गया था। इसका विशेष संविधान था जिसमें कुछ जनतांत्रिक अधिकार भी उपलब्ध कराए गए थे, और यह साम्राज्य का मात्र एक प्रांत नहीं था बल्कि एक बृहद राज्य-क्षेत्र था जिसे ग्रैन्ड डची के नाम से भी जाना जाता था। देश में स्वीडिश सांस्कृतिक वर्चस्व इतना जबरदस्त था कि सच्चे अर्थो में पहला फिनिश व्याकरण विद्यालय 1858 में ही खुल सका। इसके बाद रूसी नीति का सार स्वीडिश भाषा और संस्कृति के स्थान पर फिनिश भाषा और संस्कृति को बढ़ावा देना था और 1902 में दोनों को सरकारी भाषा बना दिया गया। 1899 में फिनलैंड रूसी राष्ट्रवादी केंद्रीकरण की चपेट में आ गया जैसा कि 1880 के

दशक में बाल्टिक में हुआ था। अब रूसी भाषा भी आरोपित कर दी गई; 1907 के बाद स्वायत्ता का हनन किया गया; और 1910 से रूसी ड्यूमा (संसद) फिनलैंड के लिए भी कानून बनाने लगी। एक बार फिर फिनलैंड के विशेष संविधान पर आक्रमण किया जाने लगा। रूसी साम्राज्य के खिलाफ किसी राष्ट्रवादी राजद्रोह के कारण ऐसा नहीं किया गया बल्कि यह साम्राज्यिक आधुनिकीकरण और एकीकरण की राष्ट्रवादी रणनीति की मांग थी। लेकिन जिस साम्राज्य के विघटन को रोकने के लिए यह सब कुछ किया जा रहा था, उसी को इसने तेज कर दिया।

बोध प्रश्न 1

1) रूसी साम्राज्य किन अर्थों में औटोमन और हैब्सबर्ग साम्राज्यों से अलग था ?

....

....

....

....

....

2) अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं के रूसीकरण की प्रक्रिया में रूढ़िवादी चर्च की भूमिका पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

20.8 सोवियत पुनर्एकीकरण

युद्ध और उसमें हुई हार के कारण हैब्सबर्ग और औटोमन साम्राज्यों के समान रूसी साम्राज्य का अनेक राष्ट्र-राज्यों में विघटन नहीं हुआ। परंतु पश्चिमी रूसी साम्राज्य में नए राष्ट्र-राज्य अवश्य बने (फिनलैंड, एस्टोनिया, लैटविया, लिथुआनिया, पोलैंड और रोमानिया के हिस्से के तौर पर बेसरबिया/मोल्डेविया) और बाकी सोवियत संघ के तहत राष्ट्र-राज्य का संघीय गणतंत्र बन गए। यूरोपीय रूस में ऐसे क्षेत्र यूक्रेन, और बेलोरूस थे परंतु 1945 के बाद पौलेंड के अतिरिक्त अन्य सब भी संघीय गणराज्य बन गए। हैब्सबर्ग और औटोमन साम्राज्यों से इन प्रक्रियाओं में क्या अंतर है और इसमें क्या शामिल था ?

रूसी साम्राज्य ने भी अन्य दो साम्राज्यों के समान कई दुविधाओं और अन्तरविरोधों का सामना किया। ऐसा लग सकता है युद्ध में हारने के बावजूद मित्र-राष्ट्रों अर्थात विजेताओं के साथ रहने के कारण इसे फायदा हुआ और दूसरों की तरह यह टूटने से बच गया। परंतु ऐसी बात थी नहीं क्योंकि जर्मनों और मित्र-राष्ट्रों दोनों पक्षों ने रूसी साम्राज्य और इसके उत्तराधिकारी बोलोशेविक राज्य को तोड़ने का प्रयास किया था।

अक्टूबर 1917 में हुई बोलशेविक क्रांति के समय तक रूसी सेना जर्मन सेना से बुरी तरह पराजित हो चुकी थी; इसके बाद उन्होंने मार्च 1918 में बोलशेविक सरकार पर ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की संधि आरोपित की जिसके द्वारा रूसी साम्राज्य के पश्चिम प्रदेश सोवियत राज्य से अलग कर दिए गए। यह बाल्टिक, पोलैंड और यूक्रेन पर लागू हुआ। औटोमन सरकार ने काकेशस में बिलकुल ऐसा ही किया था जहां अप्रैल-मई 1918 में ज्योर्जिया, अरमेनिया और अजरबैजान नामक तीन स्वतंत्र राज्यों की स्थापना की गई। औटोमनों ने अरमेनिया को रौंद दिया; अजरबैजान और ज्योर्जिया क्रमशः औटोमन और जर्मन आश्रित राज्य बन गए। जर्मन और
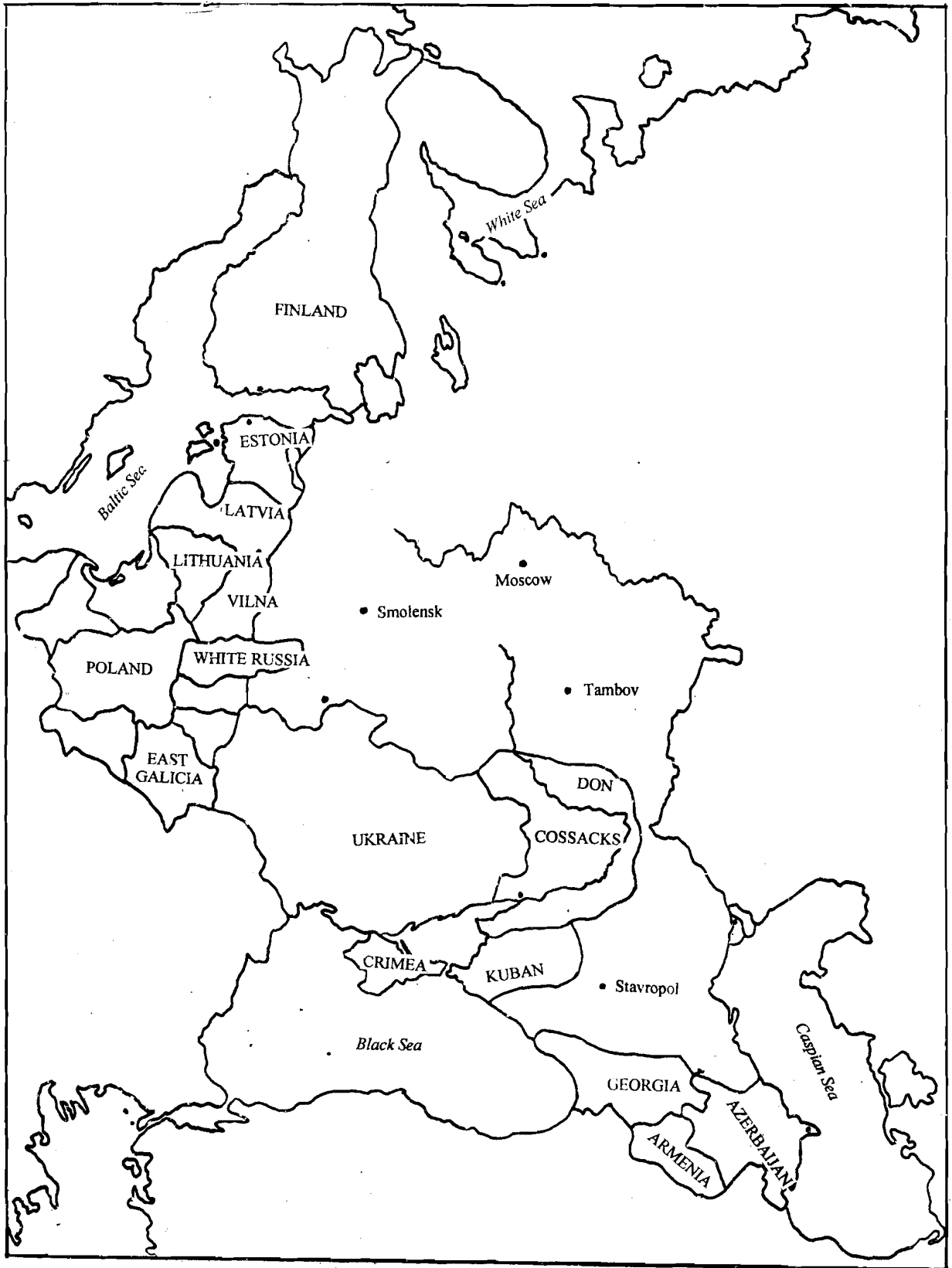
मानचित्र 7: सीमांत प्रदेश, 1919-20

औटोमन सरकारों ने बिलकुल वही किया था जो बाद में वर्साय की संधि (प्रथम विश्व युद्ध के बाद) में किया गया, अपने विरोधियों के राज्य-क्षेत्रों को तोड़ा गया और कई आश्रित राज्यों का निर्माण किया गया।

परंतु मित्र राष्ट्रों ने बोलशेविक राज्य पर आक्रमण कर एक ऐसी सरकार को स्थापित करने का प्रयत्न किया जो पूरब में युद्ध जारी रखे ताकि वह जर्मनी से अलग से शांति समझौता न करें जैसा कि बोलशेविकों ने मार्च 1918 में किया था। अतः 1918 के मध्य में रूसी गृह युद्ध शुरू होते ही ब्रिटेन मध्य एशिया के काकेशस में और उत्तर में बोलशेविक सरकार को अपदस्थ करने का षड्यंत्र करने लगा। अमेरिकी ओर जापानी कई स्थानों पर कई बार भिड़ चुके थे। दोनों कभी साम्राज्य को तोड़ने का तो कभी जोड़ने का प्रयास करते थे; दोनों की नीतियों में स्थिरता नहीं थी। इस प्रकार ब्रिटिश और जर्मनों ने एस्टोनिया (फरवरी 1919) और लाटविया (फरवरी 1920) की आजादी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लिथुआनिया ने अपने बल पर जुलाई 1920 में आजादी हासिल की; परंतु युद्ध के समय जर्मन आधिपत्य से काफी मदद मिली। फिनलैंड ने 1918 के मध्य में बोलशेविकों के खिलाफ शुद्ध राष्ट्रवादी स्वतंत्रता संग्राम छेड़कर स्वतंत्रता प्राप्त की। ये सारी घटनाएं विभिन्न दलों के बीच पूर्ण युद्ध का परिणाम थीं जिसमें राष्ट्रवाद की विजेता मोर्चे को लामबंद करने की क्षमता की परीक्षा की गई।

यहां तक दोनों साम्राज्यों की कहानी एक सी है; परंतु सोवियत संघ का क्या हुआ ? यहां पर हम सोवियत संघ के यूरोपीय हिस्से की बात कर रहे हैं; परंतु इससे यह पता चलता है कि राष्ट्रवादी लामबंदी के आधार पर सोवियत संघ का निर्माण और रक्षा कैसे की गयी ।

इसमें निम्नलिखित तत्व शामिल थे; हालांकि अलग-अलग गणतंत्रों में थोड़ी बहुत विभिन्नताएं मौजूद थीं;

1) भाषा, इतिहास और संस्कृति के आधार पर एक राष्ट्रीय क्षेत्र की पहचान की गई, और इसे सोवियत संघ का संघटक गणतंत्र बना दिया गया। पूर्व-क्रांतिकारी अवधि में किसी प्रकार का राष्ट्रीय क्षेत्र नहीं था, केवल कुछ प्रशासनिक प्रांत थे जिनका राष्ट्रीयता से कोई संबंध नहीं था। यह अंतर भारत में औपनिवेशिक प्रशासनिक विभाजन और बाद में भारतीय संघ के भाषाई राज्यों के निर्माण के समान ही था।

2) इसके बाद गणतंत्र की भाषा को स्थानीय उपयोग के लिए राजभाषा बनाया गया और रूसी भाषा को शेष सोवियत संघ से सम्प्रेषण की भाषा बनाया गया।

3) पूरे सोवियत संघ में व्यापक स्तर पर साक्षरता अभियान चलाया गया ताकि उस राष्ट्रीयता के और ज्यादा सदस्य अपनी भाषाओं को मानकीकृत रूप में पढ़ना, लिखना और बोलना सीख सकें और सभी स्तरों पर इसे इस प्रकार लागू किया जा सके जैसा इतिहास में कभी न किया गया हो।

4) प्राथमिक से लेकर उत्तर-माध्यमिक शिक्षा के लिए संम्पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था की गई ताकि राष्ट्रीयताओं के सदस्य अपने सांस्कृतिक परिवेश में ही, उच्च शिक्षा, ज्ञान और संस्कृति को हासिल कर सकें।

5) संग्रहालय, नाट्यशालाएं, प्रकाशन गृहों, रेडियो तथा बड़े समाचार पत्रों जैसी सभी प्रकार की राष्ट्रीय सांस्कृतिक संस्थाएं स्थापित की गई।

6) यथासंभव स्थानीय रोजगार में स्थानीय राष्ट्रीयताओं के लोगों को प्राथमिकताएं दी गईं; इस प्रक्रिया को इनाशिवाइजेशन या कोरेनिजाट्स्यिा के नाम से जाना जाता था।

इन सबको मिलाकर राष्ट्रवादियों की उपलब्धियां महत्वपूर्ण थीं। परंतु 20 के दशक में (1920) में उन्हें निम्नलिखित अनिवार्य शर्तो का पालन करना थाः

1) सभी नागरिकों को सोवियत राज्य के प्रति निष्ठावान होना होगा और साम्यवादी दल की तानाशाही के साथ-साथ इसकी धर्म विरोधी आक्रामकता को भी स्वीकार करना होगा।

2) गुप्तचर विभाग और रक्षा सेवा जैसी सुरक्षा की दृष्टि से संवेदनशील नौकरियों में रूसियों का नियंत्रण था और गणतंत्र के बड़े नेताओं पर निगरानी रखने के लिए हमेशा कुछ रूसियों को रखा जाएगा।

इस प्रकार राष्ट्रवादियों को रूसी साम्राज्य और बोलशेविकों को हटाने की इच्छा रखनेवाली प्रति-क्रांतिकारी शासन व्यवस्थाओं की तुलना में अपनी आशा से बढ़कर प्राप्ति हुई। असल में, श्वेत सेना जो गृह युद्ध में बोलशेविक विरोधी प्रमुख ताकत थी, रूसीकरण की स्थापना और रूसी साम्राज्य पर रूसी राष्ट्रीय आधिपत्य से आगे कुछ सोच ही नहीं सकती थी। मित्र-राष्ट्रों ने गृह युद्ध में इन ताकतों को समर्थन दिया। 1920 के दशक के राष्ट्रवादियों के लिए, क्रांतिकारी राजनीति के तमाम उलट-फेर और उठा-पटक के बावजूद, बोलशेविकों ने अंतरराष्ट्रीय संप्रभुता को छोड़कर लगभग सभी कुछ प्रदान कर दिया। इसके साथ ही किसानों और मजदूरों के प्रति बोलशेविकों के उग्र सुधारों ने किसानों और मजदूरों का ही नहीं पूरी जनता का समर्थन प्राप्त कर लिया। जनता को संघ में लामबंद करने के लिए समाजवाद को राष्ट्रवाद के साथ जोड़ दिया गया। तात्कालिक रूप से बोलशेविकों को उस समस्या का समाधान मिल गया जो साम्राज्यों के पास नहीं था।

20.8.1 बेलोरूस

मार्च 1921 में बेलोरूस सोवियत समाजवादी गणतंत्र की स्थापना हुई। पहली बार सोवियत परिसंघ के सदस्य के रूप में ही सही पर बेलोरूस राज्य का अस्तित्व कायम हुआ। पोलैंड द्वारा पश्चिम जिलों पर कब्जा कर लिए जाने के कारण राष्ट्रवादी अप्रसन्न थे; परंतु अगस्त में हुए नाजी सोवियत संधि के तहत अक्टूबर 1939 में इसे भी वापस ले लिया गया। इस प्रकार राष्ट्रवादियों को अपना पूरा देश साबुत प्राप्त हुआ।

इसके बाद शाही रूसी राज्य द्वारा किए रूसीकरण के बदले उस क्षेत्र में संस्कृति का बेलोरूसीकरण हुआ। इस प्रकार बेलोरूसी भाषा इस गणतंत्र की राजभाषा बन गई; इसे मानकीकृत किया गया; और प्रशासन के कई स्तरों पर रूसी पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके बाद उन्नीस अखबारों और पत्रिकाओं तथा शिक्षण, शोध और प्रकाशन जैसी संस्थागत व्यवस्थाओं के जरिए (इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है) एक राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण किया गया। निर्वासित राष्ट्रवादी प्रभावित हुए। अक्टूबर 1925 में निर्वासित बेलोरूसी राष्ट्रवादी गणतंत्र सरकार ने बेलोरूसी सोवियत समाजवादी गणतंत्र के पक्ष में अपने को विघटित कर दिया और बेलोरूस को एकमात्र वैधानिक सरकार मान लिया। लास्तोस्की और दोवनार-जापोलस्की जैसे राष्ट्रवादी नेता, जो दूर-दूर तक समाजवादी नहीं थे, घर लौट आए।

20.8.2 यूक्रेन

सोवियत संघ में यूक्रेन को मिलाना सोवियत संघ में राष्ट्रवादी समायोजन की सफलता की परीक्षा थी; यह उग्र राष्ट्रवादी था जहां कई प्रकार की अलगाववादी प्रवृत्तियां मौजूद थी। यह रूस के समान ही विकसित था और कई क्षेत्रों में रूस के समान इसका भी अपना इतिहास था। एक यूक्रेनियाई राष्ट्रीय राज्य की स्थापना हुई; यह राज्य राष्ट्रवादियों के चहेते सत्रहवीं शताब्दी के कोसैक राज्य से भी बड़ा था। इसकी जनता पहले से भी अधिक शिक्षित थी। इसकी राजभाषा यूक्रेनियाई थी और 1920 के दशक में यहां संस्कृति और पेशों का प्रभावशाली यूक्रेनीकरण हुआ था। 1939 और 1945 की युद्ध अवधि में यूक्रेन के इतिहास में पहली बार एक यूक्रेनियाई राज्य के तहत सभी यूक्रेनियाई भाषी क्षेत्रों को एक साथ इकट्ठा किया गया। यूक्रेनियाई गुप्तचर विभाग का निर्माण हुआ, सभी उच्च सांस्कृतिक पदों पर, देश के नेतृत्व पर और जन संचार माध्यमों, अखबारों और रेडियो पर उनका अधिकार हो गया। 1926 तक आधी नौकरशाही पर यूक्रेनियाइयों का अधिकार हो गया; 1927 तक आधा साम्यवादी दल यूक्रेनियाई हो गया। यह कोई छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं थी; देश के 70 % लोगों ने यूक्रेनियाई भाषा को अपनी मातृभाषा घोषित किया।

20.8.3 अल्प संख्यक राष्ट्रीयताएं

तातार, बाश्किर और वोल्गा की जनता या काकेशस जैसी छोटी राष्ट्रीयताओं का विकास भी इसी तरह हुआ। इन सभी राष्ट्रीयताओं ने एक राज्य-क्षेत्र पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। यहां अपनी भाषा और संस्कृति के विकास की संभावना बढ़ गई तथा स्थानीय, क्षेत्रीय या राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। सबसे बढ़कर बात यह हुई कि जहां मिली-जुली राष्ट्रीयताएं थीं वहां मास्को से दूसरी राष्ट्रीयताओं को स्थानीय वर्चस्व वाली राष्ट्रीयता से संरक्षण भी प्राप्त हुआ।

इस राष्ट्रीयता नीति की एक और विशेषता थी। कुछ राष्ट्रीयताओं को अपने ऐतिहासिक राज्य-क्षेत्र में अल्प मत होने के बावजूद विशिष्ट सुविधाएं और विशेषाधिकार प्राप्त हुए। इस प्रकार ततार, कालमिक्स, कारेलियन, मोरडेविया और काकेशस की कुछ राष्ट्रीयताओं को, जो अल्प मत में थीं, स्वायत्त गणतंत्र या स्वायत्त क्षेत्र प्रदान किया गया। उनकी भाषा और संस्कृति को बढ़ावा दिया गया, उन्हें नौकरी में विशेष छूट दी गई और स्थानीय स्तर पर उन्हें राजनैतिक जीवन में प्रवेश करने का मौका मिला। बहुसंख्यक मत वाले शुद्ध प्रजातंत्र में यह सब सुविधाएं मिलना असंभव था।

20.8.4 1930 के दशक का स्टालिन युग

20वीं शताब्दी में सोवियत संघ ने कुछ इस प्रकार की व्यवस्थाएं की जिससे बहु-राष्ट्रीय संघटन की समस्याओं पर काबू पाया जा सके। परंतु इसके लिए उन राष्ट्रवादियों को प्रमुख रियायतें देने की जरूरत थी जो समाजवादी नहीं थे और बोलशेविक व्यवस्था के खिलाफ थे। 1930 के दशक में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। यह दशक स्टालिन के जबरन औद्योगीकरण, सामूहीकरण, जनसंहार, मजदूर शिविर, मनुष्यकृत भयंकर अकाल, और अन्ततः पार्टी के नाम पर एक सैन्य व्यवस्था की तानाशाही का दशक था।

1920 के दशक की विशेष रियायतें समाप्त कर दी गईं। अब राष्ट्रवाद के उस रूप को बढ़ावा दिया गया जो 'रूप में राष्ट्रवादी और विषयवस्तु में समाजवादी' के नारे के रूप में बदनाम था। सभी गैर समाजवादी या पार्टी से अलग सोच रखने वाले राष्ट्रवादियों को दरकिनार कर दिया गया। पार्टी के निर्देशों का पालन करने के बाद ही वे अपने गणतंत्रों या क्षेत्रों में अपनी संस्कृति और अपनी जीवन शैली जारी रख सकते थे। इस युग में एकरूपता और केंद्रीकरण आरोपित करने की दिशा में कार्य हुआ जो जार के समय में या शाही नौकरशाही और विचारकों की सोच से भी आगे बढ़ गया। जारकालीन तानाशाही ने रूसीकरण की आकांक्षा की थी। समाजवादी नौकरशाहों ने स्टालिनवादी समाजवाद की मांग की। रूसीकरण के द्वारा नहीं बल्कि स्टालिनवादी समाज के जरिए सैद्धांतिक और सांस्कृतिक समरूपता आरोपित करने की कोशिश की गई। यूरोपीय सभ्यता के समानांतर एक नई सोवियत संस्कृति और एक नई सभ्यता का निर्माण किया जाना था। इसमें रूसी सबसे बड़े परंतु एकमात्र घटक थे। परंतु सोवियत विरोधी या धार्मिक होने पर अन्य राष्ट्रवादों की तरह रूसी संस्कृति पर भी आक्रमण किया गया। इस प्रकार रूसियों सहित सभी राष्ट्रवादियों को दंडित किया गया। दूसरी ओर केवल स्टालिनवाद के कड़े सैद्धांतिक और राजनैतिक ढांचे के भीतर राष्ट्रीय गणतंत्र, भाषाएं, सांस्कृतिक संस्थाएं, बुद्धिजीवी वर्ग और राजनैतिक नेतृत्व विकसित होते रहे।

इस शासन व्यवस्था के दमनकारी होने के बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी का दामन पकड़कर कोई गैर रूसी भी उन्नति कर सकता था और नेतृत्व में उसकी भागीदारी हो सकती थी। 1917 के पहले के रूसीकरण से यही प्रमुख अंतर था; उस समय कोई गैर रूसी सिद्धांततः रूसी राष्ट्रवादी रूसी साम्राज्य में स्थान पाने की आशा नहीं कर सकता था। अब केवल कम्युनिस्ट बनकर रूसी सहित सभी राष्ट्रीयताओं की बराबरी की जा सकती थी और राष्ट्रीय संस्कृति का विकास किया जा सकता था; परंतु 1917 के पहले गैर रूसी राष्ट्रीय संस्कृति को बढ़ावा देकर रूसी बनना संभव नहीं था। इसलिए स्टालिनवाद के आक्रामक और हिंसात्मक होने के बावजूद इसे राष्ट्रवादी प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा। उदाहरण के लिए जर्मन आक्रमण के दौरान यूक्रेन में राष्ट्रवाद की लहर फैल गई; परंतु जर्मन आतंक के कारण वे तेजी से सोवियत राष्ट्र भक्त बन गए। इसलिए 1980 के दशक के अंत में महान प्रेस्त्रोइका के आने तक सोवियत संघ राष्ट्रीय दृष्टि से शांत रहा; इसके बाद संघ टूट गया। सोवियत संघ ने राष्ट्रवाद को दबाने के बजाय उसे लामबंद कर बहु-राष्ट्रीय राज्य का निर्माण किया। फ्रांसीसी क्रांति द्वारा राष्ट्र-राज्यों की यूरोपीय अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था का यह एक मात्र अपवाद था। परंतु इसने भी यह सिद्ध कर दिया कि आधुनिक राज्य और आधुनिक अन्तरराष्ट्रीय संबंध व्यवस्था राष्ट्रवाद पर ही आधारित होनी चाहिए, हालांकि इसके लिए राष्ट्र-राज्य का होना अनिवार्य नहीं था।
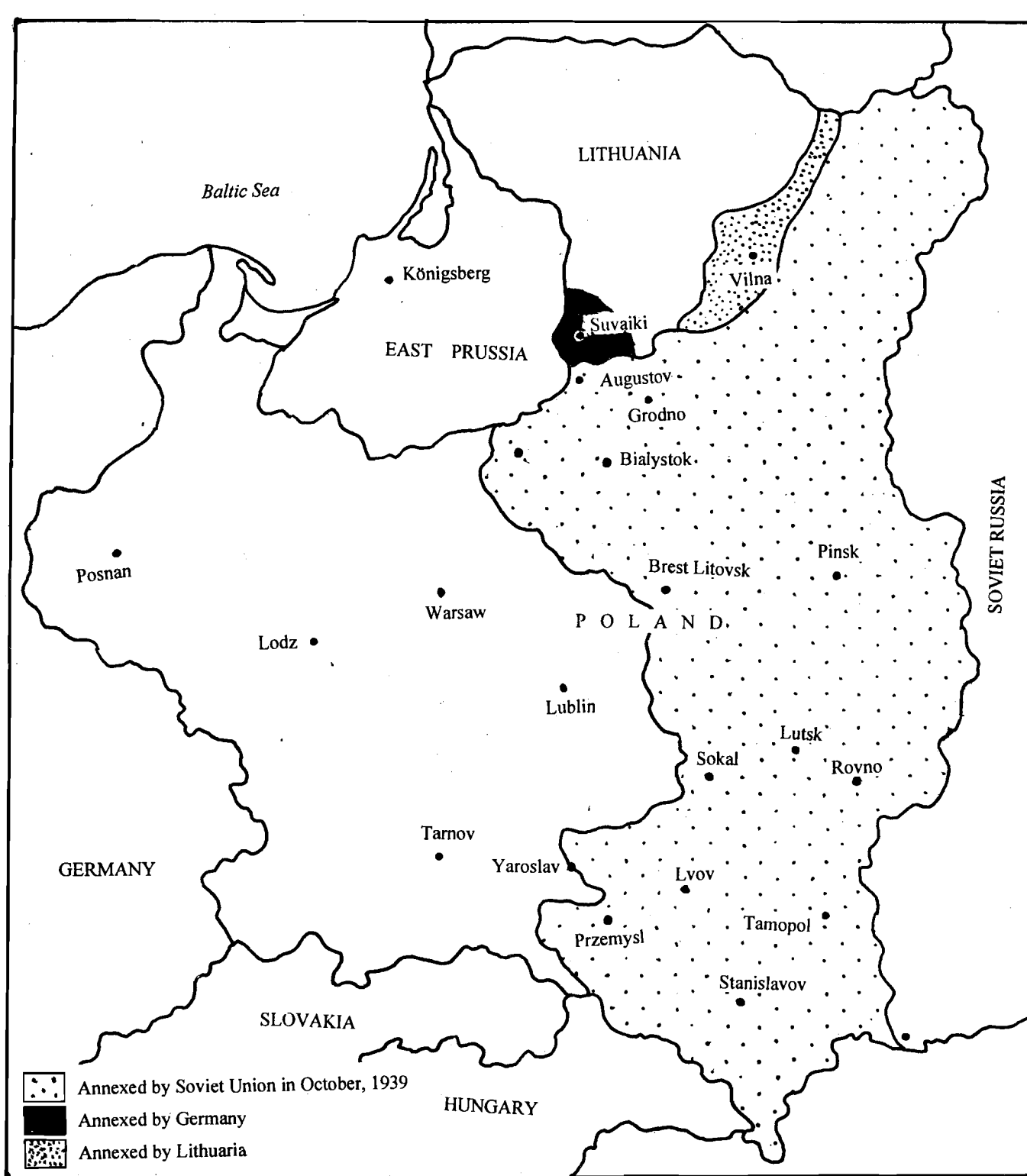
मानचित्र 8 : 1939 में पोलैंड का बंटवारा
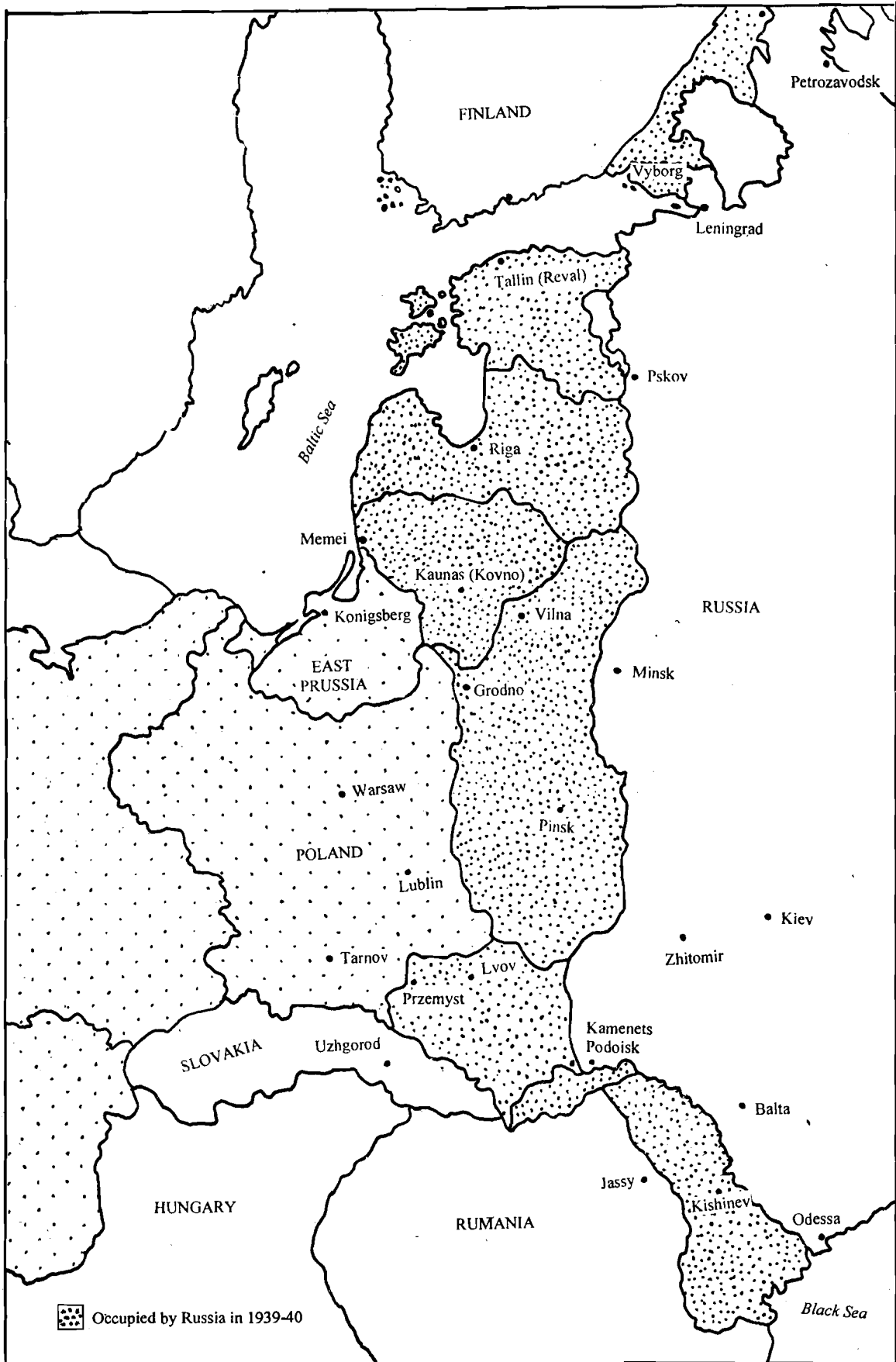
मानचित्र 9 : 1939-40 में सोवियत विस्तार

बोध प्रश्न 2

1) सोवियत संघ किस प्रकार रूसी साम्राज्य से अलग था ?

....

....

....

....

2) स्टालिन के नेतृत्व में सोवियत संघ में राष्ट्रीयताओं के संदर्भ में क्या परिवर्तन आए ?

....

....

....

....

20.9 सारांश

अबतक हुए विचार विमर्श के दौरान आपने यह देखा कि रूसी साम्राज्य अन्य दो साम्राज्यों से कई मामले में अलग था। रूस में आधुनिकीकरण अधिक प्रभावशाली था; युद्ध में इसे कम हानि उठानी पड़ी थी, अन्य राष्ट्रीयताओं के मुकाबले रूसियों की जनसंख्या ज्यादा थी। रूढ़िवादी चर्च की समर्थनवादी भूमिका के कारण अधिकांश लोग धार्मिक रूप से निष्ठावान थे, अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं का सांस्कृतिक और भाषायिक एकीकरण हुआ तथा रूसी राष्ट्रवाद ने इसमें प्रमुख भूमिका निभाई। प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप साम्राज्य के टूटने के बावजूद 20 वर्षों के भीतर सोवियत संघ ने अपनी सभी संघटक इकाइयों को एकल राष्ट्र-राज्य में जोड़ लिया।

20.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 20.2

1) देखिए भाग 20.4, 20.5, 20.6 और 20.7

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 20.8

1) देखिए उपभाग 20.8.4

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

ई.जे. हॅब्सबॉम : *नेशन ऐंड नेशनलिज्म सिन्स 1780: प्रोग्राम, मिथ रियलिटी*

बेनेडिक्ट ऐंडरसन : *इमैजिन्ड कम्युनिटिज: रिफ्लेक्शन ऑन द ऑरिजिन ऐंड स्प्रेड ऑफ नेशनलिज्म*

अर्नेस्ट गेलनर : *नेशन्स ऐंड नेशनलिज्म*

सी.टिली (स0) : *द फॉरमेशन ऑफ नेशनल स्टेट्स इन वेस्टर्न यूरोप*

इकाई 21 उपनिवेशवाद

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उपनिवेशवाद की आधारभूत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे;
- साम्राज्यवादी देश (मेट्रपोलिस) और उपनिवेश के आपसी रिश्ते को समझ सकेंगे; और
- उपनिवेशवाद के विभिन्न चरणों और उनकी खास विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

आधुनिक यूरोप का इतिहास विश्व का इतिहास बन गया। 18वीं शताब्दी के बाद प्रमुख यूरोपीय शक्तियों ने पूरी दुनिया में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए। पूंजीवाद पूरी दुनिया पर छा गया। बाजारों और कच्चे माल के स्रोतों पर एकाधिकार स्थापित करने से इसे और भी बल मिला। 19वीं शताब्दी तक आते-आते एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के देश यूरोपीय शक्तियों के औपनिवेशिक क्षेत्र बन गए। इन औपनिवेशिकों क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच अनगिनत युद्ध हुए। यूरोप शक्ति के कई आपसी टकराव वाले केंद्रों में विभाजित हो गया। यह समझौते की पद्धति के तहत हुआ तथा इसकी जरूरत उन साम्राज्यवादी शक्तियों को महसूस हुई जिनका प्रवेश पूंजीवादी व्यवस्था में देर से हुआ और वे भी इस व्यवस्था से उत्पन्न लाभों में अपना हिस्सा चाहते थे। उपनिवेशों की इस अंधी दौड़ में 19वीं और आरंभिक 20वीं शताब्दी में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिद्वंद्विता और तनाव का माहौल बना।

उपनिवेशों में मौजूद व्यवस्था को उपनिवेशवाद का नाम दिया गया। पिछली आधी शताब्दी में पूरी दुनिया में इस व्यवस्था की अवनति हुई और यह टूटने लगी। साम्राज्यों के हाथ से निकलने के कारण प्रमुख साम्राज्यवादी शक्ति ब्रिटेन संयुक्त राज्य अमेरिका पर आश्रित एक तीसरे दर्जे का देश रह गया। यह बड़ा ही रोचक तथ्य है कि उपनिवेशवाद की समाप्ति के साथ दुनिया की तस्वीर पूरी तरह बदल गई ठीक वैसे ही जैसे इसकी स्थापना के समय हुआ था। उपनिवेशों को आजादी हासिल हुई और इसके फ़लस्वरूप दुनिया की राजनीति में तीसरी दुनिया की एक महत्वपूर्ण भूमिका हो गई। उत्तर-औपनिवेशिक शब्दावली का इस्तेमाल इस बात

का द्योतक है कि उपनिवेशवाद से गुजरे हर देश में एक समानता यह है कि उनका एक औपनिवेशिक अतीत था। यह औपनिवेशिक अतीत आज भी उनके वर्तमान को प्रभावित करता है।

इस इकाई में हमने आधुनिक पूंजीवादी युग में उपनिवेशवाद की प्रकृति पर विचार-विमर्श किया है। हमने उपनिवेशवाद और आधुनिक साम्राज्यवादी देश (मेट्रोपोलिस) के बीच के संबंधों और उपनिवेशवाद के चरणों पर विशेष बल दिया है। हमने उपनिवेशवाद के विभिन्न रूपों और किसी खास उपनिवेश में इसके प्रभाव पर अलग-अलग विचार करने के बजाय हमने उपनिवेशवाद पर एक परिघटना के रूप में विचार किया है। अगली इकाई में हम तीन देशों का उदाहरण सामने रखेंगे और अध्ययन करेंगे।

21.2 उपनिवेशवाद क्या है ?

'उपनिवेशवाद' की प्रकृति का अध्ययन करने से पहले, आइए, इस शब्द के इतिहास पर विचार किया जाए।

उपनिवेशवाद पर सबसे पहले मार्क्स और एंगल्स ने टिप्पणी की थी। उन्होंने आयरलैंड पर औपनिवेशिक (वर्चस्व) आधिपत्य के बारे में लिखा था। मुख्य रूप से आर्थिक दृष्टि से उपनिवेशवाद की पहली आलोचना 19वीं शताब्दी के अंत में आरंभिक भारतीय राष्ट्रवादियों, जैसे दादाभाई नौरोजी, महादेव रानाडे, रमेशचंद दत्त और अन्य लोगों, ने की थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा धन बाहर भेजे जाने को उन्होंने धन के अपवहन की संज्ञा दी थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी लूट खसोट कर, कई प्रकार के शुल्क लगाकर, या सरकारी खर्चे के नाम पर तथा पूंजी का निजी हस्तांतरण कर भारत का धन इंग्लैंड भेजती थी। इसे ही राष्ट्रवादियों ने धन का अपवहन कहा। हॉबसन ने 1902 में अपनी पुस्तक *इम्परियलिज्म* प्रकाशित की। इस परिघटना को समझने में वित्तीय पूंजीवाद पर रूडोल्फ हिल्फरडिंग के लेखों, पूंजीवादी संग्रहण पर रोजा लक्जेमबर्ग की पुस्तक और लेनिन की *इम्परियलिज्म, द हाइएस्ट स्टेज ऑफ कैपिटलिज्म* से काफी सहायता मिली। लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, इन्डोनेसिया आदि में 1920 और 1930 में साम्राज्यवादी संबंधी अध्ययन किए गए जिससे इस परिघटना को समझने के लिए नए दृष्टिकोण सामने आए। 1960 के दशक के सफल स्वाधीनता आंदोलनों और क्यूबाई और अल्जीरियाई क्रांतियों के कारण उपनिवेशवाद पर कई किताबें प्रकाशित हुईं। इस क्षेत्र में आन्द्रे गुन्डर फ्रैंक, सी फर्टाडो, थियोडोरे, डोस सैन्टोसा, पाउल पेबिस, पाउल बारन, समीर आमीन, इमैनूअल वारलएस्टिन, आरघिरी इमैनूअल और एफ. कारडोसो का योगदान उल्लेखनीय है। डिपेंडेंसी स्कूल की एक धारा के विचारकों के अनुसार उपनिवेशों के राजनैतिक रूप से स्वतंत्र हो जाने के बावजूद उनकी आर्थिक निर्भरता तब तक बनी रहेगी जब तक पूंजीवादी व्यवस्था रहेगी क्योंकि उपनिवेशवाद के अधीन उनका अल्प विकास हुआ है। उनके अनुसार बुर्जुआ वर्ग आर्थिक विकास का जिम्मा अपने ऊपर लेने में असक्षम है। समाजवादी क्रांति के द्वारा ही निर्भर अर्थव्यवस्थाएं स्वतंत्र हो सकती हैं। भारत के उदाहरण ने डिपेंडेंसी स्कूल की विचारधारा पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया जहां स्वतंत्र बुर्जुआ वर्ग ने पूंजीवाद का विकास किया।

इमैनूअल वालरस्टीन के वर्ल्ड सिस्टम स्कूल ने एक अलग विचारधारा रखी। उन्होंने एक पूंजीवादी विश्व अर्थव्यवस्था की बात की और इसे केंद्र और परिधि में विभाजित किया। इस विशिष्ट विचारधारा की अनेक विशेषताएं हैं:

1) केंद्रीय अर्थव्यवस्थाओं से उच्च मूल्य उत्पाद जुड़े होते हैं जबकि गौण अर्थव्यवस्था में निम्न प्रौद्योगिकी और निम्न मजदूरी शामिल होती है।

2) असमान विनिमय या निर्यात अधिशेष दूसरी विशेषता है।

3) मुख्य राज्य मजबूत होते हैं जबकि परिधीय राज्य कमजोर होते हैं।

4) एक कमजोर देशी बुर्जुआ वर्ग।

5) इसकी अर्थव्यवस्था पर विदेशी पूंजी का वर्चस्व पांचवी विशेषता है।

वर्ल्ड सिस्टम सिद्धांत ने अर्ध-परिधीय की एक तीसरी श्रेणी का भी उल्लेख किया। इसमें राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय बाजार में राज्य के अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण वाले देशों का उल्लेख किया गया। आर्थिक राष्ट्रवाद

इन राज्यों की प्रमुख विशेषता थी। विश्व व्यवस्था के इस सिद्धांत के अन्तर्गत उपनिवेश की स्थिति में सुधार की गुंजाइश है।

कैबरल, फ्रैंज फेनन और एडवर्ड सेड ने उपनिवेशवाद के सांस्कृतिक पक्षों पर विचार किया है। विपनचंद्र ने औपनिवेशिक ढांचे, औपनिवेशिक आधुनिकीकरण, उपनिवेशवाद के चरणों और औपनिवेशिक राज्य का अध्ययन किया है।

21.3 उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद

उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक तरफ से देखने से यह उपनिवेशवाद है दूसरी तरफ से देखने से साम्राज्यवाद। आधुनिक साम्राज्यवादी देश (मेट्रोपोलिस) की तरफ से देखने से यह साम्राज्यवाद है जबकि उपनिवेश की दृष्टि से देखने पर यह उपनिवेशवाद है। ब्रिटेन में औद्योगिक पूंजीवाद के समान ही उपनिवेशवाद भी आधुनिक परिघटना है। दोनों का विकास साथ-साथ हुआ है। उपनिवेश के आधुनिक ऐतिहासिक विकास में उपनिवेशवाद एक विशिष्ट ऐतिहासिक चरण या युग है जिसने परम्परागत अर्थव्यवस्था और आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के बीच हस्तक्षेप किया। यह पूर्ण रूप से एक सुसंगठित और विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था है जिसमें अर्थव्यवस्था और समाज पर विदेशी पूंजीपति वर्ग का नियंत्रण होता है। उपनिवेश में यह व्यवस्था एक आश्रित और अधीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और बौद्धिक संरचना के तहत क्रियाशील होती है। इस संरचना का रूप पूंजीवाद के ऐतिहासिक विकास के बदलते परिवेशों से प्रभावित होने के कारण अलग-अलग होता है।

औपनिवेशिक समाजों के अधिकांश विद्वान उपनिवेशवाद को ठीक से समझ नहीं सके। एक विचार यह प्रचलित है कि औपनिवेशिक समाज एक परम्परागत समाज था जहां उत्पादन के पुराने संबंध मौजूद थे। यहां केवल विदेशी राजनैतिक आधिपत्य ही स्थापित हुआ। परंतु उपनिवेशवाद औपनिवेशिक नीति मात्र नहीं है। यह मात्र राजनैतिक आधिपत्य भी नहीं है। यह एक ढांचा है। एक अन्य धारणा के अनुसार उपनिवेशवाद एक संक्रांतिकालीन समाज था जो आधुनिकीकरण की ओर बढ़ रहा था और धीरे-धीरे इसे विकसित पूंजीवादी समाज में परिणत हो जाना था। क्या सचमुच उपनिवेशवाद का संबंध केवल आधुनिकीकरण से है ? क्या उपनिवेश आधुनिक राज्यों में परिणत हुए ? निश्चित रूप से नहीं। कुछ वामपंथी लेखक 'प्रतिबंधित विकास' की बात करते हैं और उनका मानना है कि उपनिवेशवाद एक अधूरा पूंजीवादी विकास था। अर्थव्यवस्था में उपस्थित पूर्व-पूंजीवादी तत्वों ने पूर्ण पूंजीवादी विकास को बाधित किया। यह भी माना गया कि पूंजीवादी व्यवस्थाओं से अलग जो कुछ भी था वह पूर्व-पूंजीवाद था। अधिकांश लेखक ऐसे औपनिवेशिक समाज की कल्पना नहीं कर सकते थे जो न तो पूंजीवादी हो और न ही पूर्व-पूंजीवादी। उदाहरण के लिए भारत में औपनिवेशिक शासन के तहत जिस कृषीय संबंध का विकास हुआ वह ब्रिटिश शासन की उपज था और उसकी प्रकृति औपनिवेशिक थी। भारत में ब्रिटिश नमूने पर पूंजीवादी कृषि के विकास के प्रयत्न का यह एक विकृत परिणाम था। यह मौलिक स्वरूप की भोंड़ी नकल थी।

उपनिवेश विश्व पूंजीवादी व्यवस्था का एक अन्तरंग हिस्सा बन गया परंतु इस विलयन से उपनिवेश में पूंजीवाद अर्थव्यवस्था के विकास में कोई मदद नहीं मिली। कई विद्वानों का मानना था कि उपनिवेश का विकास पूंजीवादी ढांचे के तहत ही संभव था। यह भी विश्वास था कि विश्व व्यवस्था होने के कारण पूंजीवाद सभी राष्ट्रों को बुर्जुआ व्यवस्था अपनाने को बाध्य करेगा। हालांकि यह महसूस नहीं किया गया कि उपनिवेश आधुनिक साम्राज्यवादी देशों (मेट्रोपोलिस) का प्रतिबिंब नहीं बन पाए। जिस प्रकार आधुनिक साम्राज्यवादी देशों में पूंजीवादी व्यवस्था विकसित हुई उस प्रकार उपनिवेशों में उसका विकास नहीं हो सका। अत: उपनिवेशों में पूंजीवाद की शुरुआत तो हुई परंतु पूंजीवाद का विकास नहीं हुआ। पुराने ढांचे नष्ट कर दिए गए परंतु नए ढांचों ने विकास को प्रोत्साहित नहीं किया। इसके बजाय इस व्यवस्था ने विकास के मार्ग को अवरुद्ध किया। उपनिवेश औद्योगिक क्रांति में हिस्सा नहीं ले सके। इस प्रकार साम्राज्यवाद ने उत्पादन के कई क्षेत्रों में पूंजीवादी संबंध तो विकसित किए परंतु वहां पूंजीवाद का विकास नहीं हुआ। उपनिवेश में उत्पादक शक्तियों का विकास नहीं हुआ। इस प्रकार पूंजीवाद की तरह उपनिवेशवाद सामाजिक विकास का बढ़ा हुआ चरण नहीं था। यह आधुनिक साम्राज्यवादी पूंजीवाद की प्रतिछवि था परंतु यह छवि नकारात्मक थी और इसमें

इसका गैर विकासात्मक पक्ष प्रतिबिंबित हुआ था। पूंजीवाद उत्पादक और सामाजिक शक्तियों का विकास करता है। दूसरी ओर उपनिवेशवाद उत्पादक और सामाजिक शक्तियों का विकास नहीं करता। विकास के इस अभाव के कारण इसमे आन्तरिक अन्तर्विरोध पैदा होते हैं।

21.4 उपनिवेशवाद : उत्पादन की एक विधि या एक सामाजिक संघटन

कुछ लेखक उपनिवेशवाद को उत्पादन का एक विशिष्ट तरीका मानते हैं। हम्ज़ा अलावी उपनिवेशवाद को *'औपनिवेशिक पूंजीवाद'* की संज्ञा देते हैं। *ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आन्तरिक बिखराव और बाह्य जुड़ाव* तथा *उपनिवेश में नहीं बल्कि साम्राज्यवादी आधुनिक देश में पूंजी के विस्तारित पुनरुत्पादन की प्राप्ति* उपनिवेशवाद की दो खास विशेषताएं हैं।

बिपनचंद्र के अनुसार उपनिवेशवाद एक सामाजिक संघटन है जिसमें कई प्रकार के उत्पादन के तरीके मौजूद रहते हैं जैसे सामंतवाद, दास प्रथा, बंधुआ प्रथा, छोटे स्तर पर वस्तुओं का उत्पादन, व्यापारी और सूदखोरों द्वारा शोषण और कृषीय तथा औद्योगिक और वित्तीय पूंजीवाद। उपनिवेशवाद में विभिन्न प्रकार के उत्पादन के तरीकों के जरिए सामाजिक अधिशेष का उपयोग किया जाता है। उपनिवेश के अधिशेष का उपयोग करने का संबंध आधुनिक साम्राज्यवादी देश (मेट्रोपोलिस) के बुर्जुआ वर्ग के उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से नहीं है बल्कि इसका संबंध राज्य शक्ति पर नियंत्रण से है। दूसरी ओर पूंजीवाद के अन्तर्गत अधिशेष का उपयोग उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के आधार पर होता है।

उत्पादन के विभिन्न तरीकों की अवधारणा से हमें इस बात का विश्लेषण करने में मदद मिलती है कि किस प्रकार उपनिवेशवाद ने विभिन्न सामाजिक स्तरों के बीच वर्गीय प्रतिरोध को स्वरूप प्रदान किया। इससे हमें समाज के प्रमुख वर्गों की भूमिकाओं को पहचानने और किसी भी चरण में आधारभूत अन्तर्विरोध को समझने में मदद मिलती है। जब हम उपनिवेशवाद को उत्पादन के एक तरीके के बजाय एक सामाजिक संघटन के रूप में देखते हैं तब हम वर्गीय आधारों की अपेक्षा सामाजिक आधार पर प्राथमिक अन्तर्विरोधों को देखने में सफल होते हैं। इसीलिए औपनिवेशिक शक्ति के खिलाफ वर्ग संघर्ष नहीं हुआ बल्कि एक राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की शुरुआत हुई। यह आंदोलन आरंभ से ही आर्थिक न होकर राजनैतिक था। वर्गों ने वर्ग संगठनों के जरिए उपनिवेश विरोधी आंदोलन में हिस्सा नहीं लिया बल्कि उंन्होंने जनता के एक हिस्से के रूप में भाग लिया।

21.5 उपनिवेशवाद की आधारभूत विशेषताएं

उपनिवेशवाद की निम्नलिखित चार आधारभूत विशेषताएं हैं :

1) विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के साथ उपनिवेश को जोड़ना जिसमें उपनिवेश की स्थिति अधीनता की होती है। आधुनिक साम्राज्यवादी देश की अर्थव्यवस्था की जरूरत और इसके पूंजीपति वर्ग उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था और समाज के आधारभूत मुद्दों का निर्धारण करते थे। विश्व बाजार से सम्पर्क की अपेक्षा यह अधीनता ज्यादा निर्णायक थी। हालांकि स्वतंत्र पूंजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्थाएं भी विश्व बाजार से जुड़ीं हुई थीं।

2) आरघिरी इमैनूएल और समीर अमीन ने उपनिवेवाद को *औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के आन्तरिक बिखराव और असमान विनिमय* की अवधारणाओं में समेट दिया। उनका यह मानना था कि विश्व बाजार और साम्राज्यवादी वर्चस्व के माध्यम से उपनिवेशों के कई निष्क्रिय हिस्से सक्रिय होकर केंद्रीय अर्थव्यवस्था से जुड़ जाते हैं। उपनिवेशों के कृषि क्षेत्र का संबंध इसके औद्योगिक क्षेत्र से नहीं होता बल्कि यह विश्व पूंजीवाद बाजार और मेट्रोपोलिस के बाजार से होता है। मार्क्स और एंगल्स ने इसी शोषणात्मक अन्तरराष्ट्रीय श्रम विभाजन की प्रक्रिया का उल्लेख किया था। इन आधुनिक साम्राज्यवादी देशों के पास उच्च प्रौद्योगिकी, उच्च उत्पादकता, और ऊंची मजदूरी की दर होती थी जबकि उपनिवेशों के पास निम्न प्रौद्योगिकी, निम्न उत्पादाकता और निम्न मजदूरी दर होती थी। इसी प्रकार उपनिवेश कच्चे माल का उत्पादन करते थे जबकि आधुनिक साम्राज्यवादी देश तैयार माल का निर्माण करते थे।

19 वीं शताब्दी में भारत में रेलवे का विकास भारतीय उद्योग के लिए नहीं बल्कि ब्रिटिश उद्योग के हितों की रक्षा करने के लिए किया गया था।

3) *धन का अपवहन* उपनिवेशवाद की तीसरी विशेषता है। इसके जरिए अधिशेष का एकतरफा हस्तांतरण होता है और उपनिवेशों से साम्राज्यवादी देशों की ओर धन का बहाव होता है। आरंभिक भारतीय राष्ट्रवादियों ने इस पर बल दिया था। सैनिक और असैनिक सेवाओं पर औपनिवेशिक राज्य के व्यय का एक बड़ा हिस्सा भी अधिशेष के बाह्य अपवहन का एक उदाहरण था। अतः अधिशेष का उत्पादन उपनिवेशों में होता था परंतु उसे विदेश भेज दिया जाता था। हमजा आलवी ने इस प्रक्रिया को *विकृत विस्तरित पुनरुत्पादन* (डिफॉर्म्ड एक्सटेंडेड रिप्रोडक्शन) कहा है।

4) *विदेशी राजनैतिक आधिपत्य* या औपनिवेशिक राज्य की मौजूदगी और भूमिका इसकी चौथी आधारभूत विशेषता है।

बोध प्रश्न 1

1) उपनिवेशवाद क्या है ? लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) लगभग 100 शब्दों में उपनिवेशवाद की आधारभूत विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

21.6 औपनिवेशिक राज्य

औपनिवेशिक राज्य में औपनिवेशिक क्या है ?

कुछ लोगों के विचार में यह एक वर्ग के बजाए सम्पूर्ण समाज के शोषण का एक माध्यम है। औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के निर्माण और कार्य में औपनिवेशिक राज्य अहम और अभिन्न भूमिका निभाता है। उपनिवेश के नियंत्रण और शोषण करने में गृह देश के पूंजीपति वर्ग की बड़ी भूमिका रहती है और राज्य उनके हाथों में खिलौना होता है। औपनिवेशिक राज्य समग्र रूप से मातृ देश के पूंजीपति वर्ग के दीर्घावधि हितों को पूरा करता है। यह बुर्जुआ वर्ग के अलग-अलग प्रतिस्पर्द्धा से युक्त हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। इसके विपरीत पूंजीवाद में राज्य किसी एक शक्तिशाली वर्ग के हाथ में खिलौना होता है।

उपनिवेशवाद विदेशी शासक वर्ग और सम्पूर्ण औपनिवेशिक जनता के बीच का संबंध है। उपनिवेशवाद के तहत देशी सामाजिक वर्ग शासक वर्ग में शामिल नहीं होते। उपनिवेश के सभी देशी वर्ग अधीनस्थ होते

हैं – यहां तक कि समृद्ध वर्ग भी उपनिवेशवादी व्यवस्था में कनिष्ठ साझेदार या अधीन साझेदार नहीं होते हैं। किसी भी साम्राज्यवादी देश के बुर्जुआ वर्ग के लिए उनके हितों की बलि चढ़ाई जा सकती है। उदाहरण के लिए राज्य ने कारखाना अधिनियम बनाया जिसका देशी बुर्जुआ वर्ग ने स्वागत नहीं किया क्योंकि इससे विदेशी, आयात की गई वस्तुएं भारतीय वस्तुओं से बेहतर प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में रहती हैं। इसलिए यहां तक कि उपनिवेश का सबसे ऊपरी वर्ग भी उपनिवेशवाद का विरोध कर सकता है क्योंकि यह उनके हितों के खिलाफ जाता है। यह याद रखना आवश्यक है कि पोलैंड और मिस्त्र में उपनिवेशवाद के विरोध में आंदोलन का नेतृत्व बड़े भूमिपतियों ने किया था। उपनिवेशों और अर्द्ध उपनिवेशों में यह एक बड़ा अन्तर है। अर्द्ध उपनिवेशों में देशी वर्ग शासकीय वर्ग का हिस्सा होता है। अर्द्ध उपनिवेशों का उच्च वर्ग शासकीय वर्ग का हिस्सा होता है। अरूण बोस ने बिलकुल सही कहा है कि उपनिवेश में जहां साम्राज्यवादी देश का शक्तिशाली वर्ग राज्य की प्रकृति का निर्धारण करता है वहां एक अर्द्ध उपनिवेश में राज्य की वर्ग प्रकृति राजनैतिक रूप से प्रभावशाली वर्ग की प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है।

औपनिवेशिक राज्य की भूमिका पूंजीवादी राज्य से अधिक है। यह उपनिवेशवाद का निर्माण करता है। यह एक अधिसंरचना मात्र नहीं होती बल्कि आर्थिक आधार का एक हिस्सा होता है। यह न केवल शासक वर्ग को अधिशेष वसूल करने की क्षमता प्रदान करती है बल्कि स्वयं अधिशेष प्राप्त करने का एक प्रमुख जरिया होता है। पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व होने से शासक वर्ग को राज्य पर नियंत्रण और आधिपत्य रखने में मदद मिलती है। उपनिवेशवाद के तहत औपनिवेशिक राज्य पर दूसरे देश का नियंत्रण होता है और उस देश का शासक वर्ग औपनिवेशिक समाज पर नियंत्रण रखता है और उसका शोषण करता है। उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के कारण नहीं बल्कि राज्य शक्ति पर नियंत्रण स्थापित होने से सामाजिक अधिशेष पर उनका नियंत्रण कायम होता है। उदाहरण के लिए भारत में राज्य का उत्पादन के साधनों पर कोई खास मालिकाना हक नहीं था परंतु फिर भी उसके पास काफी शक्ति थी।

औपनिवेशिक राज्य कानून और व्यवस्था लागू करता था और आंतरिक तथा बाह्य खतरों से अपनी सुरक्षा करता था। औपनिवेशिक हितों को खतरा पहुंचाने वाली देशी आर्थिक शक्तियों और प्रक्रियाओं को दबा दिया जाता था। यह अधिशेष वसूली का एक जरिया था। यह उपनिवेश में रहने वाले लोगों में एकता नहीं होने देता और इसके लिए जाति, वर्ग, समुदाय आदि का प्रश्न उठा कर लोगों को एक दूसरे का विरोधी बना देता था। राज्य पूंजी वसूली की प्रक्रिया जिसमें समानों और सेवाओं का उत्पादन शामिल था के लिए माहौल बनाने में प्रयत्नशील रहता था। उपनिवेशों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और वैधानिक ढांचों को बदलना एक महत्वपूर्ण कार्य था ताकि बड़े पैमाने पर पुनरुत्पादन किया जा सके। मन के अनुकूल कार्य किया जा सके। परंतु राज्य के निगरानी कार्यों और विकासात्मक कार्यों में अन्तर्विरोध आने से समस्या पैदा हो जाती थी। मौजूदा अल्प संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती थी और इससे विकास को ही हानि पहुंचती थी। साम्राज्यवाद विरोधी ताकतों के लिए उपनिवेशवाद की शोषणात्मक प्रकृति को बेनकाब करना बहुत आसान होता था क्योंकि औपनिवेशिक ढांचे और राज्य के बीच स्पष्ट और सीधा संबंध होता थी। अत: यहां आंदोलन को राजनैतिक रूप देने में आसानी होती थी। विकासशील देशों में राज्य और अर्थव्यवस्था के बीच का संबंध इतना स्पष्ट न होने के कारण ऐसा करना मुश्किल होता था। अत: औपनिवेशिक नियंत्रण को बेनकाब करना आसान था और गृह देश के औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग से इसका संबंध स्थापित किया जा सकता था। राज्य पर विदेशियों का स्पष्ट नियंत्रण होता था और नीति तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में उपनिवेश की जनता की कोई भूमिका नहीं थी। यदि पूंजीवादी राज्य से इसकी तुलना करें तो औपनिवेशिक राज्य नेतृत्व और सहमति के बजाए आधिपत्य और दमन पर आधारित था। अतएव यहां साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियां तेजी से उभरीं। इसके बाद राज्य को संकट का समाना करना पड़ा। हालांकि सिक्के का एक दूसरा पहलू यह है कि औपनिवेशिक राज्य एक बुर्जुआ राज्य था, इसमें नियम-कानून, संपत्ति संबंध, नौकरशाही को लागू किया गया और यहां तक कि यह अर्ध-निरंकुश और अर्ध-प्रजातांत्रिक राज्य में भी विकसित हो सकता था। अतएव उपनिवेश में संवैधानिक व्यवस्था की गुंजाइश होती था।

औपनिवेशिक विचारधारा के प्रश्न पर अभी तक पर्याप्त रूप में विचार नहीं किया गया है। अलग-अलग चरणों से अलग-अलग विचारधाराएं जुड़ी हैं – दूसरे चरण में इसका संबंध विकास से था और तीसरे चरण में अ-राजनीतिकरण और सद्भावना से जुड़ा था। जब बहिष्कार की नीति राजनीति में काम नहीं करती तो निष्ठावान राजनीति को बढ़ावा दिया जाता है।

21.7 उपनिवेशवाद के चरण

मार्क्स ने अपनी पुस्तक में उपनिवेशवाद के दो चरण बताएं हैं — एकाधिकार व्यापार और मुक्त व्यापार। अपनी प्रमुख पुस्तक *इंडिया टू डे* में रजनी पाम दत्त ने इसमें एक तीसरा चरण जोड़ा है जिसे वित्तीय साम्राज्यवाद कहा है और यह लेनिन के दर्शन पर आधारित है। समीर आमीन और कुछ विद्वानों के अनुसार यह तीसरा चरण ही उपनिवेशवाद को जन्म देता है। विभिन्न चरण अपने शुद्ध रूप में मौजूद नहीं होते और न ही इन चरणों के बीच कोई बहुत भेद होता है। प्रत्येक उपनिवेश में इन चरणों की समयावधि में अन्तर होता है। कुछ देश केवल एक या दो चरणों से ही गुजरते हैं; या वहां अन्य चरण घुले-मिले हुए होते हैं। उदाहरण के लिए भारत में तीसरे चरण की शुरुआत नहीं हो सकी जबकि मिस्र में पहले और दूसरे चरण एक दूसरे में मिले हुए थे और इन्डोनेशिया में दूसरा चरण ही देखने को मिलता है।

उपनिवेशवाद विश्व पूंजीवाद के साथ उपनिवेश की अर्थव्यवस्था और समाज का सम्पूर्ण परंतु जटिल गठजोड़ और एकीकरण है जो विभिन्न चरणों से उभरता हुआ दो शताब्दियों तक कायम रहा था। समय के साथ-साथ अधीनता का स्वरूप बदलता रहता है परंतु उपनिवेश की अधीनता बरकरार रहती थी। जैसे ही अधिशेष वसूली या अधीनता का स्वरूप बदलता था उसी तरह औपनिवेशिक नीति, राज्य और इसकी संस्थाएं, संस्कृति, विचार और विचारधाराएं भी बदलती रहती थीं। ये चरण विश्व व्यवस्था के रूप में पूंजीवाद के ऐतिहासिक विकास का परिणाम थे। वे साम्राज्यवादी देश के सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक विकास के बदलते स्वरूपों तथा विश्व अर्थव्यवस्था तथा राजनीति का भी परिणाम थे। उपनिवेश का अपना ऐतिहासिक विकास भी चरण के स्वरूप को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

21.7.1 पहला चरण

इस चरण के दो आधारभूत उद्देश्य थे :

व्यापार पर एकाधिकार। उदाहरण के लिए, ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा भारतीय माल सस्ते में खरीदने के लिए व्यापार पर एकाधिकार आवश्यक था। युद्ध के जरिए यूरोपीय प्रतिस्पर्धियों को दूर रखा गया। भारतीय व्यापारियों को लाभपूर्ण व्यापार से वंचित करने के लिए राजनैतिक स्तर पर क्षेत्रों को जीत कर उन पर अधिकार जमाया गया।

राज्य शक्ति का उपयोग कर राजस्व या अधिशेष की सीधी वसूली की जाती थी। यूरोपीय शक्तियों और देशी राजाओं के खिलाफ युद्ध करने के लिए बड़ी मात्रा में धन की जरूरत होती थी। यह धन उपनिवेश के राजस्व से ही प्राप्त किया जा सकता था। उपनिवेश से वसूले गए राजस्व से औपनिवेशिक वस्तुएं भी खरीदी जाती थीं। इसका प्रमुख कारण यह था कि साम्राज्यवादी देश स्वयं कई जरूरत की वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते थे और उपनिवेशों से खरीदे गए माल के लिए सोने और चांदी में भुगतान करना उस समय के वाणिज्यवादी सोच के अनुकूल नहीं था। उपनिवेशों पर राजनैतिक आधिपत्य स्थापित करने के बाद उनका शोषण किया गया तथा उनके अधिशेष पर अधिकार कर लिया गया। उपनिवेश से प्राप्त राजस्वों से पदाधिकारियों को ऊंचे वेतन दिए गए और कम्पनियों तथा निगमों ने मुनाफे कमाए। यह माना जाता है कि प्रथम चरण में भारत से ब्रिटेन को होने वाले धन का अपवहन काफी ज्यादा था। यह उस समय ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय का 2% से लेकर 3% तक था।

यह अवश्य याद रखना चाहिए कि प्रशासन, न्यायिक व्यवस्था, परिवहन और संचार के साधन, कृषीय और औद्योगिक उत्पादन के तरीकों, व्यवसाय प्रबंधन या आर्थिक संगठन के रूप, शिक्षा या बौद्धिक क्षेत्र, संस्कृति और सामजिक संगठन में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं किया गया। परिवर्तन केवल सैन्य संगठन और प्रौद्योगिकी तथा राजस्व प्रशासन के ऊपरी हिस्से में किया गया। हस्तक्षेप न करने का कारण यह था कि प्रथम चरण में उपनिवेशवाद परम्परागत अर्थव्यवस्था और राजनैतिक व्यवस्था पर अध्यारोपित कर दिया गया था। यदि आर्थिक अधिशेष वसूलने में परेशानी नहीं थी तो पहले के शासकों द्वारा जितना गांवों को केंद्रीय अर्थव्यवस्था से जोड़ लिया गया था उससे अधिक उपाय करने की जरूरत नहीं थी। उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था या राजनैतिक ढांचे में किसी प्रकार का आधारभूत रूपांतरण करना अनिवार्य नहीं था। इसलिए इस विचारधारा में विकास के लिए कोई स्थान नहीं था और परम्परागत मूल्यों, धर्म, रीति रिवाज, मान्यताओं

की समझ और आलोचना की तरफ ध्यान नहीं दिया गया। अध्ययन की परम्परागत प्रणालियों को प्रोत्साहित किया गया और देशी भाषाओं में प्रशासन का काम काज चलाया गया।

27.7.2 दूसरा चरण

उपनिवेशवाद के दूसरे चरण को मुक्त व्यापार के नाम से जाना जाता है। औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग , जिसने व्यापारिक कम्पनियों का स्थान ले लिया, ने शोषण कर अधिशेष की वसूली करने के तरीके का इस आधार पर विरोध किया कि सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को बचा कर रखना जरूरी है। साम्राज्यवादी देशों के औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग का हित उपनिवेश में इसलिए था कि वहां उनके तैयार माल का बाजार मौजूद था। इसके लिए उपनिवेश से निर्यात का बढ़ना जरूरी था ताकि आयातित तैयार माल को वे खरीद सकें। साम्राज्यवादी देश का बुर्जुआ वर्ग उपनिवेशों को कच्चा माल के उत्पादक के रूप में विकसित करना चाहता था ताकि अपने साम्राज्य के बाहर के स्रोतों पर उसे निर्भर न रहना पड़े। उपनिवेश से निर्यात बढ़ने से इन्हें ऊंचे वेतन देने और व्यापारियों को अधिक मुनाफा देने में भी सहूलियत हुई। व्यापार को सामाजिक अधिशेष प्राप्त करने का माध्यम बनाया गया।

नए तरीके से शोषण करने के लिए आर्थिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और वैधानिक ढांचों को रूपांतरित करना जरूरी था। इसके लिए विकास और आधुनिकीकरण का नारा दिया गया। उपनिवेश को विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और मातृ राष्ट्र से जोड़ा गया। विदेशी व्यापार पर सारे प्रतिबंध और शुल्क हटा लिए गए। पूंजीपतियों को खेती करने, व्यापार करने और परिवहन, खनन और उद्योग के क्षेत्र में कार्य करने की छूट दी गई। पूंजीवादी खेती की शुरुआत की गई। कच्चे मालों को बन्दरगाहों से बड़ी मात्रा में निर्यात करने के लिए रेलवे का विस्तार किया गया और आधुनिक डाक और तार व्यवस्था स्थापित की गई। प्रशासन का विस्तार किया गया ताकि आयातित माल आसानी से गांवों में भेजा जा सके और वहां से कच्चा माल निकाला जा सके। पूंजीवादी-वाणिज्यिक संबंध लागू किए गए। अनुबंधों को वैधता प्रदान करने के लिए वैधानिक व्यवस्था में सुधार किया गया। हालांकि व्यक्तिगत कानून में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। नए प्रशासन को संभलने के लिए आधुनिक शिक्षा लागू की गई। यह उम्मीद की गई थी कि पश्चिमीकरण से आयातित वस्तुओं की मांग बढ़ेगी।

राजनैतिक विचारधारा के क्षेत्र में उदारवादी साम्राज्यवाद पर विशेष बल दिया गया। उपनिवेश के लोगों को स्वशासन सिखाने के लिए यह दृष्टिकोण सामने आया। यह विश्वास जाहिर किया गया कि औपचारिक राजनैतिक नियंत्रण समाप्त होने के बावजूद आर्थिक संबंध कायम रहेंगे। आधुनिकीकरण की इस अवधारणा के साथ-साथ मौजूदा सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक शैलियों की आलोचना की गई। विकास को विचारधारा के रूप में सामने रखा गया। इसके पीछे मंशा यह थी कि देश को जानबूझकर अल्पविकसित न रखा जाए। अल्पविकास को उद्देश्य नहीं बनाया गया परंतु उपनिवेशवाद के तहत बाजारों की कार्य पद्धति और इसके आन्तरिक अन्तर्विरोधों के परिणामस्वरूप यही होना था। अतएव अल्पविकास का नहीं बल्कि केवल विकास का ही साम्राज्यवादी सिद्धांत मौजूद था।

21.7.3 तीसरा चरण

19वीं शताब्दी के मध्य तक विश्व पूंजीवादी प्रकृति में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। दुनिया में इंगलैंड के अलावा अन्य देशों में भी औद्योगीकरण फैला और ब्रिटेन की सर्वोच्चता समाप्त हुई। बाजार, कच्चे माल और खाद्यान्न के स्रोतों के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई। काफी पूंजी जमा हो गई और इसे निवेशित करने के लिए अच्छे और लाभप्रद अवसरों की तलाश की जाने लगी। जिन देशों के पास उपनिवेश थे वे बेहतर स्थिति में थे क्योंकि इन क्षेत्रों पर उनका एकाधिकार था। इसके अलावा अपने घरेलू राजनैतिक असंतोष से लोगों का ध्यान हटाने और आपस में संघर्षरत सामाजिक वर्गों के हितों को एक साथ जोड़ने के लिए साम्राज्य और इसकी प्रतिष्ठा का इस्तेमाल किया जाता था।

उपनिवेशवाद के तीसरे चरण में उपनिवेश पर नियंत्रण अत्यंत सघन हो गया। प्रतिक्रियावादी विचारधारा को प्रोत्साहन दिया गया। प्रशासन व्यापक और कुशल हो गया तथा नौकरशाही का नियंत्रण बढ़ा दिया गया क्योंकि सघन नियंत्रण के लिए यह आवश्यक था। इस समय स्वशसान की बात नहीं की गयी। इसके स्थान पर सद्भावपूर्ण तानाशाही नई विचारधारा के रूप में सामने आई। इसके अनुसार औपनिवेशिक जनता को

एक शिशु के रूप में देखा गया जिसके लिए हमेशा एक अभिभावक की जरूरत थी। द्वितीय चरण में जिस आधुनिकीकरण और पश्चिमी शिक्षा की बात की गयी थी तीसरे चरण में उसका कोई जिक्र नहीं था।

उपनिवेशवाद के भीतर दो प्रकार का अन्तर्विरोध था - एक बाहरी था, जो उपनिवेश के लोगों और व्यवस्था के बीच था जो साम्राज्यवादी विरोधी आंदोलनों के रूप में प्रकट हुआ। दूसरा आन्तरिक अन्तर्विरोध था - जिसमें उपनिवेश द्वारा साम्राज्यवादी देशों के पूंजीपति वर्ग के हितों की पूर्ति कर पाने में असमर्थ होना था। तीसरे चरण में साम्राज्यवादी देशों की पूंजी का इस्तेमाल कर पाना या कच्चे माल के निर्यात को बढ़ाना संभव नहीं था। इस कारण से सीमित आधुनिकीकरण की नीति लागू की गई। उपनिवेशवाद की अवधारणा में निहित अंतर्विरोध सामने आए तथा अल्प विकास ने उपनिवेश के शोषण में बाधा पहुंचाई।

तीसरे चरण की स्थिति उपनिवेशवाद के अन्तर्गत सामान्यत: नहीं उत्पन्न होती। अधिकांश पुराने उपनिवेशों से पूंजी का निर्यात किया जाता रहा। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि उपनिवेशवाद में इन उपनिवेशों की अर्थव्यवस्थाओं को इतना खोखला कर दिया जाता था कि उनमें पूंजी निवेश का सही उपयोग करने की क्षमता नहीं रह जाती थी। उपनिवेशवाद द्वारा उपनिवेशों की सारी क्षमताओं का दोहन किए जाने पर नव स्थापित उद्योगों में बने मालों की मांग कैसे संभव थी। अभी तक उन उत्पादों में पूंजी निवेशित की जा रही थी जिसके लिए विदेश में बाजार उपलब्ध था या निर्यातों के लिए आवश्यक अधिसंरचनाओं में पूंजी निवेशित की गई। कई उपनिवेशों में शोषण के पुराने रूप जारी रहे। उदाहरण के लिए भारत में तीसरे चरण में भी पिछले दो पुराने रूप मौजूद रहे।

बोध प्रश्न 2

1) औपनिवेशिक राज्य की खास विशिष्टताएं क्या हैं? लगभग 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) प्रथम चरण और द्वितीय चरण में उपनिवेशवाद में क्या अंतर होता है ?

....

....

....

....

....

....

21.8 सारांश

यूरोपीय शक्तियों द्वारा औपनिवेशिक आधिपत्य और इन उपनिवेशों को आधुनिक विश्व से जोड़नेवाली अर्थव्यवस्था पर विचार किए बिना आधुनिक यूरोप का इतिहास अधूरा रहेगा। इस व्यवस्था को उपनिवेशवाद के नाम से जाना जाता था। एक ओर यूरोप इन उपनिवेशों से प्राप्त अधिशेष के आधार पर प्रगति और

समृद्धि के पथ पर अग्रसर हो रहा था वहीं औपनिवेशिक शासन के अधीनस्थ क्षेत्र दिन प्रति दिन पिछड़ते चले गए। औपनिवेशिक आधिपत्य के परिणामस्वरूप विश्व का अधिकांश हिस्सा अल्प विकसित रह गया।

21.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उत्तर के लिए भाग 21.2 देखिए।

2) उत्तर के लिए भाग 21.2 और 21.5 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 21.6 देखिए।

2) भाग 21.7 देखिए।

इकाई 22 औपनिवेशिक आधिपत्य की पद्धतियां –1: प्रत्यक्ष शासन

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- जान पाएंगे कि दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में साम्राज्यवादी ताकतों ने किस प्रकार प्रत्यक्ष शासन किया,
- समझ सकेंगे कि इन उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था और समाज पर इस शासन का क्या प्रभाव पड़ा।

22.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने एक प्रणाली के रूप में उपनिवेशवाद की आधारभूत विशेषताओं का अध्ययन किया। इस इकाई में हम औपनिवेशिक शासन के प्रत्यक्ष स्वरूपों की चर्चा करेंगे; हमें याद रखना चाहिए कि विभिन्न यूरोपीय शक्तियों के उपनिवेशों के स्वरूप अलग-अलग थे। विशेष अध्ययन के लिए हमने दक्षिण एशिया, अफ्रीका और दक्षिण पूर्व एशिया को चुना है और इनमें भी भारत, मिस्र और इंडोनेशिया पर विशेष ध्यान केंद्रित किया है। अलग-अलग विशेषताओं पर विचार करने के लिए हमने ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच उपनिवेशवाद का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

22.2 भारत

भारत आदर्श उपनिवेश का एक अच्छा उदाहरण था। यह ब्रिटिश माल का बाजार, कच्चे माल और खाद्यान्नों की आपूर्ति का स्रोत और ब्रिटिश पूंजी के निवेश का एक क्षेत्र था। व्यापार, उद्योग, खनन, बैंकिंग, बीमा, जहाजरानी और परिवहन पर विदेशी कम्पनियों का नियंत्रण था। भारतीय सेना पूरी दुनिया में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा करती थी और भारतीय प्रशासन में बड़ी संख्या में युवा अंग्रेजों को रोजगार के अवसर प्राप्त हुए थे। इसके परिणामस्वरूप भारत अल्प विकसित बना रहा और ब्रिटेन तेजी से दुनिया का सबसे विकसित देश बन गया।

22.2.1 प्रथम चरण

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रथम चरण में भारत और पूर्व के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने पर बल दिया गया। प्रतिद्वंद्वी यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के साथ-साथ भारतीय व्यापारियों को भी व्यापार से वंचित किया गया। ब्रिटिश सम्राट ने भारत से अन्य व्यापारिक कम्पनियों के व्यापार करने पर प्रतिबंध लगाने के लिए एक चार्टर बनाया । यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों को प्रतिस्पर्धा से दूर रखने के लिए युद्ध का सहारा लिया गया। भारतीय व्यापारियों को लाभप्रद समुद्र तटीय और विदेशी व्यापार से दूर रखने के लिए कम्पनी ने अपनी श्रेष्ठ नौसैनिक शक्ति का उपयोग किया। शिल्पियों को अपना सामान सस्ते दामों में बेचने के लिए मजबूर करने और भारतीय व्यापारियों को भागीदारी न देने के लिए राजनैतिक शक्ति का उपयोग किया गया।

वित्तीय संसाधनों की तलाश में विभिन्न क्षेत्रों पर कब्जा किया गया। भारत में लड़े जाने वाले युद्धों और नौसेना तथा सेना के रख-रखाव के लिए भारतीय धन का प्रयोग किया गया। इसके लिए भारतीय राजस्व पर नियंत्रण स्थापित किया गया। विभिन्न क्षेत्रों पर अधिकार जमाया गया और वहां के करों से बड़ी मात्रा में धन प्राप्त किया गया। ब्रिटेन के औद्योगीकरण में निवेश करने के लिए भी धन की जरूरत थी। बंगाल और दक्षिण भारत पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण और व्यापारिक एकाधिकार पूरा हो गया। कम्पनी बंगाल से करों और दोहन के द्वारा बड़ी मात्रा में धन इकट्ठा करने लगी। बंगाल के राजस्व का 33% कम्पनी निर्यात के नाम पर बाहर भेज देती थी। इसमें कम्पनी के अधिकारियों द्वारा की गई अवैध वसूली शामिल नहीं थी। **भारत से हुआ धन का अपवहन उस समय के ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय का 2% से 3% था।**

प्रशासन के क्षेत्र में मौजूदा रीति रिवाजों और व्यवस्थाओं में कम से कम हस्तक्षेप करने की नीति अपनाई गई। जब तक अधिशेष को आराम से वसूला जा सकता था तब तक कानून, प्रशासन तथा उत्पादन के संगठन में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं थी। यह महत्वपूर्ण है कि कलकत्ता और बनारस में दो शैक्षिक संस्थाएं स्थापित की गई थीं जो परम्परागत शिक्षा का केंद्र थीं। इस समय तक अंग्रेजी शिक्षा या विचारों से लोगों को परिचित कराने का प्रयास नहीं किया गया।

उपनिवेशवाद के प्रथम चरण के अन्तर्विरोध क्या थे ? किसी भी व्यवस्था को समझने के लिए अन्तर्विरोधों को समझना जरूरी है क्योंकि अन्तर्विरोधों के सामने आने पर ही किसी व्यवस्था का समुचित अध्ययन किया जा सकता है। लघु अवधि और दीर्घ अवधि शोषण के प्रश्न पर मतभेद था। स्पष्ट रूप से किसी उपनिवेश को ज्यादा दिन तक बनाए रखने की दृष्टि से, ताकि वह अधिक लम्बे समय तक उपयोगी रह सके, लघु अवधि शोषण उचित नहीं होता। शोषण और राजस्व के दोहन से उपनिवेश की अर्थव्यवस्था के पुनरुत्पादन की शक्ति क्षीण हो जाती है। कम्पनी ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना चाहती थी जबकि औद्योगिक पूंजीपति साम्राज्य का विस्तार चाहते थे ताकि लम्बे समय तक इससे लाभ उठाया जा सके। व्यापारिक हित और औद्योगिक पूंजीपतियों के बीच तथा कम्पनी के हितों और पूरे ब्रिटिश सामाज के हित के बीच एक स्पष्ट अन्तर्विरोध था।

22.2.1 द्वितीय चरण

यह मुक्त व्यापार का चरण था। 19वीं शताब्दी के आरंभ में उत्पादक वर्ग और व्यापारिक वर्ग के हितों में

टकराव हुआ और इस बात के लिए तीव्र संघर्ष हुआ कि ब्रिटिश समाज का कौन सा वर्ग भारत पर नियंत्रण स्थापित करेगा। अनेक नियंत्रक अधिनियमों ने कम्पनी के अधिकार को सीमित कर दिया तथा ब्रिटिश सम्राट अब भारत में नियंत्रण शक्ति के रूप में उभरा। इस प्रकार ब्रिटिश अर्थव्यवस्था में हुए परिवर्तन के कारण उपनिवेशवाद के नए चरण का आरंभ हुआ।

व्यापारिक कम्पनियों से उत्पादक वर्ग के हित स्पष्ट रूप से अलग थे और पूंजीपति अपने उत्पादों के लिए बाजार और कच्चे मालों की आपूर्ति के स्रोत तथा तेजी से बढ़ती शहरी जनसंख्या के लिए खाद्यान्न चाहते थे। इस चरण को मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद कहा जाता है क्योंकि इस समय ब्रिटिश वस्तुओं पर सभी प्रकार के शुल्क हटा दिए गए थे। हालांकि उसका यह मतलब नहीं था कि यह छूट सबको दी गई थी। भारतीय वस्तुओं पर शुल्क लगाया जाता था। यही नहीं, ब्रिटेन में आयातित भारतीय उत्पादों पर ऊंचा शुल्क लगाया जाता था। भारतीय कपड़ों पर 30% से 70% के बीच शुल्क लगाया जाता था। भारत में भारतीय उत्पादकों पर सीमा शुल्क लगाया जाता था ताकि ब्रिटिश वस्तुओं से भारतीय उत्पाद प्रतिस्पर्धा न कर पाएं।

सबसे प्रमुख समस्या यह थी कि भारतीय राजस्व को किस प्रकार कच्चे माल के उत्पादन में प्रयोग में लाया जा सके। अंग्रेजों ने कपास, जूट, रेशम, तेलहन, गेहूं, खाल, चमड़ा और नील जैसे कृषीय कच्चे मालों के उत्पादों को बढ़ावा दिया। कभी दुनिया का सबसे बेहतरीन शिल्प उत्पादक रहा भारत अब मात्र कच्चे माल का एक उत्पादक भर रह गया। इसके अलावा पहले चरण से चले आ रहे शोषण का स्वरूप भी कायम रहा। भारत के अन्य भागों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए और अधिकारियों को ऊंचा वेतन देने के लिए भारतीय राजस्व की आवश्यकता थी।

उपनिवेश को उपयोगी बनाए रखने के लिए इसके आर्थिक, सामजिक और प्रशासनिक ढांचे में परिवर्तन करना आवश्यक था। आर्थिक स्तर पर मुक्त व्यापार का सिद्धांत लागू किया गया। प्रशासन में मूलभूत परिवर्तन किए गए। कानून व्यवस्था बनाए रखना माल को सुरक्षित एक स्थान से दूसरे स्थान को लाने ले जाने के लिए आवश्यक था। कानून के क्षेत्र में परिवर्तन लाकर स्वामित्व, संपत्ति तथा अनुबंध जैसी पूंजीवादी धारणाओं को लागू किया गया। इस समय नए वैधानिक नियम बनाए गए। देश को चलानेवाली एक नौकरशाही के अन्तर्गत क्लर्कों और छोटे कर्मचारियों की जरूरत थी; इस उद्देश्य से पश्चिमी शिक्षा लागू की गई। परिवहन और संचार के साधनों को आधुनिक बनाया गया और उनका विस्तार किया गया। सरकार ने रेलवे की स्थापना की। उदारवादी साम्राज्यवाद ही राजनैतिक विचारधारा थी अर्थात यह माना गया कि उपनिवेशों के राजनैतिक रूप से स्वतंत्र हो जाने पर भी इनका आर्थिक शोषण संभव था। इसलिए इस समय स्व-शासन की काफी चर्चा रही।

दूसरे चरण में भी अन्तर्विरोध सामने आए। भारत जैसे उपनिवेश में विकास के लिए वित्त सीमित था तथा इस कारण भारत के विकास में बाधाएं आईं। यह विकास पूंजीवादी तथा औद्योगिक शोषण के लिए जरूरी था। सभी साधनों को सैनिक और नागरिक खर्च के लिए उपयोग में लाया गया। इस कारण विकास के लिए समुचित राशि न खर्च की जा सकी। कृषि के क्षेत्र में दो परस्पर विरोधी जरूरतें उपस्थित थीं – एक ओर कृषि का विकास करना था और किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत करनी थी ताकि वह कच्चे माल का उत्पादन कर सकें और ब्रिटेन में तैयार माल के खरीददार बन सकें तथा दूसरी ओर साम्राज्य के लिए किसानों से अधिशेष भी वसूल किया जाना था। भारत को पुनरूत्पादनकारी उपनिवेश बनाने तथा उपनिवेशवाद के वास्तविक परिणामों, जो कि विकास को बाधित करते थे, के बीच अन्तर्विरोध था।

22.2.3 तृतीय चरण

इस चरण में उपनिवेशों में विदेशी निवेश हुआ और उपनिवेशों के लिए अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा शुरु हुई। तीन कारणों से औपनिवेशिक शोषण अपने तीसरे चरण में पहुंचा। विकसित दुनिया के बचे हुए देशों जैसे– अमेरिका, जापान आदि का औद्योगीकरण पहला कारण था। इसके साथ ही यूरोप, अमेरिका, रूस और जापान भी बाजारों और कच्चे माल की आपूर्ति के स्रोतों के लिए प्रतिस्पर्धी बन गए। दूसरे, 19वीं शताब्दी में हुए प्रमुख प्रौद्योगिकी विकासों के कारण कच्चे मालों और खाद्यान्नों की आवश्यकता बढ़ गई। तीसरे, विकसित पूंजीवादी देशों में काफी पूंजी जमा हो गई और इसे बाहर निवेशित किए जाने की जरूरत महसूस की जाने लगी। औपनिवेशिक विस्तार का एक अतिरिक्त लाभ यह था कि इसके द्वारा मजदूरों और किसानों के असंतोष

को कम किया जा सकता था। राष्ट्रीय महानता का स्वप्न और उद्धत देशभक्ति एक ऐसा हथियार था जिसके द्वारा कभी भी देश की जनता को राज्य के पक्ष में किया जा सकता था।

इस अवधि में उपनिवेश के भीतर संकीर्ण विचारधाराएं फिर से सामने आईं और साम्राज्यवादी नियंत्रण को पूरी ताकत के साथ स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। कर्जन दमन और नियमन की नीतियां लागू करने वाला अंतिम वायसराय था। रेलवे, बागानों, खनन, जूट, जहाजरानी, व्यापार और बैंकिंग में अंग्रेजों द्वारा किए गए विदेशी निवेश को संरक्षण प्रदान करने के लिए यह जरूरी था। पूर्ण नियंत्रण इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि साम्राज्य की सुरक्षा और विस्तार के लिए सेना का इस्तेमाल एक हथियार के रूप में किए जाने की आवश्यकता थी। अब स्व-शासन की बात नहीं की जा रही थी; इसके बजाय यह घोषणा की गई कि भारत की जनता अभी शैशव अवस्था में है और स्वयं शासन करने के लिए योग्य नहीं है।

उपनिवेश पर कड़े नियंत्रण के लिए बनाई गई इस बृहद योजना में अन्तर्विरोध उसमें निहित वित्तीय प्रतिबंधों के कारण था। सोने का अंडा देने वाली मुर्गी का जीवन ही खतरे में पड़ गया था। उपनिवेश का और भी शोषण करने के लिए इसे विकसित करना जरूरी था। परंतु जरूरत से ज्यादा शोषण ने देश को इतना पीछे धकेल दिया था कि विकास भी संभव नहीं था। इसका एक अन्तर्विरोध यह सामने आया कि आधुनिकीकरण से एक ऐसा सामाजिक वर्ग उत्पन्न हुआ जिसने उपनिवेशवाद के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया।

22.3 भारत में ब्रिटिश शासन का प्रभाव

भारत के औपनिवेशिक आधिपत्य ने इसे एक आदर्श उपनिवेश में परिणत कर दिया था जिसकी अर्थव्यवस्था साम्राज्यवादी देश ब्रिटेन के अधीन थी। भारत ब्रिटिश वस्तुओं के लिए बाजार और ब्रिटेन के लिए कच्चे माल और खाद्यान्न का आपूर्तिकर्ता बन गया था। एक विडंबना यह थी कि पूंजीवाद के प्रसार ने जहां यूरोप को आधुनिकीकरण और विकास के पथ पर आगे बढ़ाया था, वहीं उपनिवेश में पिछड़ेपन और अल्प विकास का माहौल पैदा किया था। पूरी अर्थव्यवस्था ब्रिटेन के हित के लिए काम कर रही थी।

22.3.1 कृषि

ब्रिटिश शासन का कृषि अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। भू-राजस्व की ऊंची दर तय करके कृषि से ज्यादा से ज्यादा अधिशेष उगाहने की कोशिश की गई। राजस्व वसूली को अधिक कुशल बनाने के लिए बंगाल के स्थाई बंदोबस्त के तहत जमींदरों का एक नया वर्ग सामने आया। पहले से राजस्व वसूल करने वालों को निजी भूमिपति बना दिया गया जिन्हें भूमिपतियों के कुछ अधिकार दिए गए परंतु वसूल किए गए राजस्व में से एक छोटा हिस्सा रखकर उन्हें सारा धन राज्य को देना पड़ता था। ये जमींदार मनमाने ढंग से किसानों का शोषण किया करते थे। मद्रास और बम्बई प्रेसिडेंसी में हर खेतिहर से व्यक्तिगत कर वसूल करने के तहत रैयतवाड़ी पद्धति लागू की गई। हालांकि राजस्व का बोझ ज्यादा होने का इतना ही मतलब था कि वे बंगाल के किसानों की अपेक्षा थोड़ी बहुत ही बेहतर स्थिति में थे।

किसान ऊंचे राजस्व दर के बोझ के तहत पिस रहा था। नए पूंजीवादी संबंधों के तहत भूमि खरीदी बेची जाने वाली चीज हो गई थी और कई किसान मालिक धीरे-धीरे कृषि मजदूरों में परिणत होते चले गए। भू-राजस्व देने के लिए अभागे किसान महाजनों, जमींदारों और अधिकारियों से ऋण लेते थे जिसके बदले में उन्हें अपनी जमीन गिरवी रखनी पड़ती थी। बाढ़, सूखा और अकाल के समय भी राजस्व वसूली में ढील नहीं की जाती थी। जमींदारों और राजस्व वसूलने वाले बिचौलियों ने अपने राजस्व अधिकार पट्टे में किराय वसूलने वाले बिचौलियों को दे दिए। यहां ऐसे कृषि संबंधों का विकास हुआ जो न तो पूंजीवादी थे और न तो सामंतवादी बल्कि यह अर्ध-सामंती और अर्ध-पूंजीवादी थे। कृषि की उत्पादन तकनीक में कोई विकास नहीं हुआ। औपनिवेशिक सरकार ने इस दिशा में आधुनिकीकरण करने का कोई प्रयास नहीं किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में अनाजों के स्थान पर कपास, जूट, तम्बाकू, गन्ना, और तेलहन जैसी नगदी फसलों के उत्पादन को प्राथमिकता देकर कृषि का व्यावसायीकरण किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में हुए गृह युद्ध के कारण वहां से कपास की आपूर्ति बन्द हो गई जिसके कारण भारत पर कपास उपलब्ध कराने का बोझ बढ़ गया। कपास की खेती करने के लिए व्यापारियों ने किसानों को ऋण उपलब्ध कराया। कपास

के अलावा विदेशी बाजार में के लिए अफीम और नील की भी खेती की जाने लगी। एक ओर अनाज का प्रति एकड़ उत्पादन प्रतिवर्ष 0.18 % घट गया जबकि गैर खाद्यान्न फसलों का प्रतिशत प्रतिवर्ष 1.31 बढ़ गया। नगदी फसल के उत्पादन में बढ़ोत्तरी होने से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महाजनों और सूदखोरों की भूमिका बढ़ गई। कुछ क्षेत्रों में समृद्ध किसान महाजनों के चंगुल से मुक्त रहे और नगद फसल उपजाकर पर्याप्त बचत कर पाए। इस प्रकार किसानों के बीच का अन्तर बढ़ने लगा।

22.3.2 व्यापार

भारत के विदेशी व्यापार की पद्धति और दिशा अंग्रेजों के हित में निर्धारित की जाती थी। निस्संदेह विदेशी व्यापार बढ़ा था। 1934 में 15 करोड़ रुपए से बढ़कर 1858 में 60 करोड़ रुपए, 1899 में 213 करोड़ रुपए और 1924 में 758 करोड़ रुपए हो गया था। परंतु यह व्यापार पूरी तरह ब्रिटिश हितों की पूर्ति करता था। भारत कच्चे माल और खाद्यान्न का निर्यात करता था और ब्रिटेन का तैयार माल भारत में आयात होता था। यहां तक कि आयात से ज्यादा निर्यात होने पर भी यह धन के अपवहन का एक जरिया था; यह कोई फायदे की स्थिति नहीं थी जैसा कि एक आजाद देश में होता है।

22.3.3 उद्योग

भारत के परम्परागत उद्योग नष्ट कर दिए गए। सबसे पहले कम्पनी ने शिल्पियों से माल खरीदने का एकाधिकार प्राप्त किया और उन्हें घाटे में काम करने के लिए बाध्य किया। उसके बाद ब्रिटेन से आयातित शुल्क-मुक्त तैयार वस्तुओं से उन्हें मुकाबला करना पड़ा। परम्परागत हस्तशिल्पों के विनाश के बाद शिल्पी कृषि की ओर लौटे जिससे कृषि पर बोझ बढ़ा और इसका प्रतिकूल प्रभाव उत्पादन पर भी पड़ा। इस प्रकिया को अनौद्योगीकरण कहा जाता है। एक प्रमुख आर्थिक इतिहासकार ए.के. बाग्ची के अनुसार 1809 -13 में मध्य गांगेय क्षेत्र में उद्योग पर आश्रित आधे लोग 1901 तक आते-आते अपनी रोजी-रोटी खो बैठे।

औपनिवेशिक युग में भारत में आधुनिक उद्योग का विकास हुआ। रोजी-रोटी से हाथ धोने वाले लाखों शिल्पी मजदूर बन गए। आधुनिक परिवहन और संचार व्यवस्था की स्थापना से एक अखिल भारतीय बाजार बन पाना संभव हुआ। सबसे पहले कपास और जूट, कोयला खनन और चाय बगानों जैसे उद्योग की शुरुआत हुई। इसके साथ-साथ सहायक उद्योगों की भी स्थापना हुई। व्यापार के प्रसार और गांवों से कच्चा माल और खाद्यान्न प्राप्त करने के लिए आर्थिक अधिसंरचनाओं का विकास जरूरी था। इससे भारतीय पूंजीपतियों को भी फायदा हुआ। रेलवे के विस्तार से रेलवे ओर इंजिनियरिंग कारखानों की स्थापना हुई। अधिकांश आधुनिक उद्योगों पर अंग्रेज पूंजीपतियों का नियंत्रण था और वे ही उनके मालिक थे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही वस्तुत: आधुनिक उद्योग विकसित हो सका। 1930 के दशक में हुई मंदी से भारतीय उद्योग को आगे बढ़ने में मदद मिली।

इस प्रकार, भारत में आधुनिक उद्योगों की स्थापना तो हुई परंतु यहां औद्योगिक क्रांति नहीं हुई। यहां बड़े पूंजी निवेश वाले भारी उद्योग भी नहीं स्थापित किए गए क्योंकि ब्रिटिश उद्योगपति भारत में मशीन बेचना चाहते थे। केवल वही उद्योग स्थापित किए गए जो ब्रिटिश उत्पादों से मुकाबला करने की स्थिति में नहीं थे। अतएव, **भारत का व्यापारिक रूपांतरण हुआ, औद्योगिक क्रांति नहीं हुई।** 1900-04 में कुल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र का अंशदान 12.7 % था, 1915-19 में 13.6 % और 1940-44 में 16.7 % था। इसके विपरीत 1900-04 में प्राथमिक क्षेत्र का अंशदान 63.6 % था, 1915-19 में 59.6 % और 1940 में 47.6 % था। भारत की प्रतिव्यक्ति आय 1938-39 के मूल्य आधार पर 1900-04 में 52.2 रुपए, 1915-19 में 57.3 रुपए और 1940-44 में 56.6 रुपए था। सांस्कृतिक और बौद्धिक क्षेत्रों में भी आधुनिक और प्रगतिशील दिशा में रूपांतरण नहीं हो सका। आधुनिक शिक्षा भी इस प्रकार आंशिक तौर पर लागू की गई ताकि लोगों की स्वतंत्र रूप से सोचने की शक्ति न बढ़े और प्रशासन चलाने के लिए क्लर्कों की आपूर्ति होती रहे। इसके बावजूद शिक्षित वर्ग पश्चिमी विचारों से परिचित हुआ और भारत में उदारवादी ब्रिटिश शासन की मांग की जाने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक सुधार की दिशा में कुछ प्रयत्न किए गए परंतु 1857 के विद्रोह के बाद इनको रोक दिया गया। कुल मिलाकर सामाजिक क्षेत्र में संकीर्ण और यहां तक कि प्रतिक्रियावादी नीतियां अपनाई गई। देश की जनता को एकजुट होने से रोकने के लिए साम्प्रदायिक फूट और जातिवादी मतभेद का सहारा लिया गया। फूट डालो और शासन करो अंग्रेज शासकों का मूलमंत्र था।

बोध प्रश्न 1

1) भारत में उपनिवेशवाद की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ?

....

....

....

....

....

....

2) भारतीय कृषि पर औपनिवेशिक शासन का क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

....

....

22.4 अफ्रीका

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में अफ्रीका पर आधिपत्य स्थापित किया गया। 1880 तक अफ्रीका के एक छोटे से हिस्से पर (मात्र 20 %) ही शासन कायम हो सका था। यूरोपीय शक्तियां अफ्रीका के साथ व्यापार करना चाहती थीं और आवश्यकता पड़ने पर अनौपचारिक राजनैतिक नियंत्रण भी स्थापित करना चाहती थीं। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के प्रसार होने से नई राजनैतिक महत्वाकांक्षाएं और प्रतिस्पर्धाएं सामने आईं। 'नव-साम्राज्यवाद' और प्रतिद्वंद्वी पूंजीवादी एकाधिकार के युग में प्रत्यक्ष राजनैतिक नियंत्रण पर बल दिया गया। यूरोप में प्रचलित उच्च औद्योगिकी तथा वहां के वित्तीय और सैनिक संसाधनों एवं यूरोप के अपेक्षाकृत स्थायित्व के बल पर उसने अफ्रीका पर आधिपत्य जमा लिया।

280 लाख वर्ग मी. से ज्यादा क्षेत्र में फैले इस महाद्वीप पर यूरोपीय शक्तियों ने कब्जा जमा लिया और इसका विभाजन कर दिया। इस प्रक्रिया में उन्होंने संधि और विजय अभियान जैसी रणनीतियां अपनाई। अनेक संधियां की गईं तथा इनके अंतर्गत यूरोपीय शक्तियों के प्रभाव क्षेत्रों को अंकित किया गया। इन संधियों में 1890 तथा 1893 की आंग्ल-जर्मन संधियां और 1891 की आंग्ल-इतालवी संधि और 1899 का आंग्ल-फ्रांसीसी सम्मेलन उल्लेखनीय हैं। फ्रांसीसी सैनिक अभियान की नीति में ज्यादा विश्वास रखते थे। ब्रिटेन का सैनिक साम्राज्यवाद भव्य होने के साथ-साथ क्रूरतापूर्ण था। इस शताब्दी के अन्त में नाइजिरिया पर धीरे-धीरे कब्जा जमा लिया गया। सूडान पर 1896 में कब्जा कर लिया गया। 1890 में जंजीबार संरक्षित राज्य बन गया और पूर्वी अफ्रीका का ब्रिटिश अभियान यहीं से संचालित किया गया। यूगांडा 1894 में संरक्षित राज्य बन गया। जांबिया (जिसे पहले उत्तरी रोडेशिया के नाम से जाना जाता था) पर 1901 में आधिपत्य स्थापित कर लिया गया। यह ध्यान देने की बात है कि परम्परागत रूप से अधीनस्थ क्षेत्रों में ही आधिपत्य स्थापित किया गया (पूरब में पुराने हाथी के दांत के व्यापार क्षेत्रों पर कब्जा किया गया)।

आधिपत्य के इस पूरे दौर को तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है। 1880-1991 को प्रथम चरण माना जा सकता है जिसमें विजय अभियान शुरु किए गए और आधिपत्य स्थापित किया गया। 1910 के बाद औपनिवेशिक व्यवस्था को मजबूत बनाया गया। दूसरा चरण, 1919-1935 समझौते का युग था। 1935 के बाद तीसरे चरण की शुरुआत होती है जिसमें स्वतंत्रता आंदोलन आरंभ हुए। 1935 के बाद 45 वर्षों में

अफ्रीका के अधिकांश क्षेत्रों (94 %) से औपनिवेशिक व्यवस्था को उखाड़ फेंका गया। औपनिवेशिक शासन औसतन 100 वर्षों तक कायम रहा।

22.4.1 औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था

द्वितीय विश्व युद्ध तक आते-आते औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई। 1880 और 1935 के बीच नए उत्पादन संबंध स्थापित किए गए। सड़क, रेल, और टेलीग्राफ संचार के विकास से नई अर्थव्यवस्था के आरंभिक संकेत मिले।

अफ्रीका की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्थाओं को नष्ट कर दिया गया या बदल दिया गया और उस पर औपनिवेशिक आधिपत्य स्थापित कर लिया गया। एक दूसरे के बीच के और विश्व के अन्य हिस्सों (साम्राज्यवादी शक्ति के अलावा) से उनके सम्पर्क सूत्रों को तोड़ दिया गया। मुद्रा अर्थव्यवस्था की शुरुआत की गई और वहां भूमि के क्षेत्र में क्रय-विक्रय संबंधों को विकसित किया गया। औपनिवेशिक हितों के अनुसार आधारभूत संरचनाओं के केंद्रीय अर्थव्व्यवस्थाओं से सम्पर्कों को प्रोत्साहित किया गया। औद्योगीकरण को हतोत्साहित किया गया। फिल्ड हाउस के अनुसार " 1945 के पहले संभवत: किसी भी औपनिवेशिक सरकार में उद्योग विभाग नहीं थे।'' परम्परागत शिल्प नष्ट कर दिए गए। 'एक फसल' अर्थव्यवस्था स्थापित की गई जिसमें नगदी फसलों पर विशेष बल दिया गया। विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़े अफ्रीका की स्थिति उसके लिए अलाभप्रद हो गई। अफ्रीका के भीतर के क्षेत्रों में होने वाला आपसी व्यापार वास्तव में समाप्त हो गया।

भूमि हस्तांतरण आमतौर पर प्रचलित किया गया। 1930 तक लगभग 2740,000 हैक्टर भूमि कीन्या में हस्तांतरित की गई। औपनिवेशिक आधिपत्य के परिणामस्वरूप अफ्रीकी समाज में विभेदीकरण बढ़ता चला गया। व्यापक तौर पर किसान अपने व्यवसाय को छोड़ने के लिए बाध्य हो गए। लेकिन 'मजदूरीकरण' की प्रक्रिया भी सीमित थी। अमीर किसानों का एक वर्ग सामने आया। यूरोपीय ताकतों ने वित्तीय पूंजी के आधार पर अफ्रीका की अर्थव्यवस्थाओं को औपनिवेशिक निर्भर क्षेत्रों में बदल दिया। स्वेज नहर के लिए लिए गए ऋण के कारण मिस्र कर्ज के जाल में फंसता चला गया। सोने और हीरे के खनन पर बड़ी अन्तरराष्ट्रीय कम्पनियों का नियंत्रण था।

22.4.2 औपनिवेशिक प्रभाव

अफ्रीका पर इतिहास लिखने वाले औपनिवेशिक इतिहासकारों ने यह बिलकुल गलत कहा है कि अफ्रीकावासियों ने औपनिवेशिक शासन का स्वागत किया था। इसी प्रकार सामाजिक डार्विनवाद के सिद्धांत ने इस मत के द्वारा उपनिवेशवाद को संगत ठहराया है कि कमजोर प्रजातियों पर मजबूत प्रजातियो का आधिपत्य अवश्यंभावी होता है; यूरोपीय प्रजाति की सर्वाधिक श्रेष्ठता के कारण यह तो होना ही था। एक अन्य सिद्धांत को शक्ति संतुलन के सिद्धांत के नाम से जाना जाता है जिनके अनुसार यूरोपीय राष्ट्रों के बीच होने वाला टकराव अफ्रीका में प्रस्फुटित हुआ ताकि यूरोप में यह संतुलन न गड़बड़ाए। परंतु यह स्पष्ट था कि औपनिवेशिक शासन का मुख्य उद्देश्य साम्राज्यवादी ताकतों के हितों में उपनिवेश का आर्थिक शोषण करना था।

कुछ पश्चिमी विद्वानों के अनुसार औपनिवेशिक शासन एक वरदान था। इसनेआधुनिक आधारभूत संरचनाओं, स्वास्थ्य और शिक्षा का प्रसार किया। डेविड फिल्ड हाउस ने इसके प्रभावों को "कुछ अच्छा और कुछ बुरा कहा है''। गैन और डिगनैन के अनुसार "सांस्कृतिक आदान-प्रदान महत्वपूर्ण था और केवल राजनैतिक शोषण पर बल देना गलत था।" दूसरी ओर, डब्ल्यू रोडने ने उपनिवेशवाद को "एक सशस्त्र डाकू कहा है।''

इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपनिवेशवाद का सीमित सकारात्मक प्रभाव एक संयोग था जो शोषण के लिए अपनाए गए उपायों से पैदा हुआ था। निश्चित रूप से शांति और स्थायित्व कायम हुआ था। परंतु आरंभ में चारो ओर अव्यवस्था थी। अफ्रीका का राजनैतिक स्वरूप बदल दिया गया। इसके पहले वंश एक इकाई थी और अब उसके स्थान पर क्षेत्रीय इकाइयां बना दी गईं। इसके बाद से जातीय टकराव शुरु हुआ। वास्तविक स्थिति को पूरी तरह से नजरंअदाज कर औपनिवेशिक शासन ने जिस प्रकार मनम ने ढंग से क्षेत्रीय इकाइयों का निर्धारण किया था उसी के परिणाम्स्वरूप जातीय टकराव शुरु हुए। कुछ हद तक यूरोपीय ढर्रे पर न्यायिक व्यवस्था और नौकरशाही तथा नई संस्थाओं की स्थापना की गई। परमपरागत रूप से पीड़ित

व्यक्ति की क्षतिपूर्ति के स्थान पर अपराधी को दड दिए जाने की अवधारणा सामने आई। अखिल अफ्रीकावाद और राष्ट्रवाद उपनिवेशवाद के ही परिणाम थे।

औपनिवेशिक शासन के नकारात्मक प्रभाव सर्वत्र नजर आते हैं। आर्थिक बदहाली के अलावा परम्परागत राजतंत्र और मुखिया राज जैसी देशी सरकारों की व्यवस्थाओं को क्षति पहुंचाई। गुलामी की मानसिकता का विकास हुआ। उपनिवेश पर नियमित सेना का एक बोझ लाद दिया गया। अफ्रीकी संप्रभुता का ध्वस्त होना औपनिवेशिक शासन के कारण हुई सबसे बड़ी त्रासदी थी। अपने ही देश के विकास पर उपनिवेश का नियंत्रण समाप्त हो गया। उपनिवेशवाद ने पूरी दुनिया में हो रहे विकास से अफ्रीका को वंचित रखा।

22.5 अफ्रीका में ब्रिटिश उपनिवेशवाद : मिस्र

अफ्रीका में नाइजीरिया, गोल्ड कोस्ट, गाम्बिया, सिएरा लेयोने, किनिया, तंगानयीका, न्यासलैंड, यूगांडा, उत्तरी और दक्षिणी रोडेसिया और साउथ अफ्रीका पर ब्रिटेन का अधिकार था। यहां हम उदाहरण के तौर पर मिस्र का अध्ययन करने जा रहे हैं जिससे यह पता चलता है कि प्रत्यक्ष औपचारिक राजनैतिक वर्चस्व के बिना भी किस प्रकार उपनिवेशवाद प्रभावी रूप से कार्य कर सकता है।

22.5.1 विजय अभियान

उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में नेपोलियन ने मिस्र पर कब्जा करने की असफल कोशिश की थी। अंग्रेजों की सेना ने फ्रांसीसी सेना को पीछे धकेल दिया और 1801 में मिस्र पर कब्जा कर लिया। हालांकि यह दो वर्षों तक ही कायम रहा और एमेंस की संधि के बाद मार्च 1803 तक अंग्रेजों की सेना मिस्र छोड़कर चली गई। अंग्रजों ने 1807 में मिस्र पर फिर से आक्रमण किया परंतु उन्हें वापस लौटना पड़ा। 1840 में नेपियर के नेतृत्व में अंग्रेजों की एक सेना ने एलेगजेन्ड्रिया पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर हुआ जिसके द्वारा मिस्र के शासक मोहम्मद अली की शक्ति सीमित कर दी गई। मिस्र वस्तुतः ब्रिटिश उपनिवेश बन गया। हालांकि नाममात्र के लिए मिस्र पर तुर्की शासन कायम रहा। परंतु ब्रिटेन और फ्रांस के वाणिज्य-प्रतिनिधियों के पास ही असली अधिकार थे। मिस्र पर फ्रांस और ब्रिटेन दोनों का संयुक्त नियंत्रण था और उनके बीच की प्रतिस्पर्धा के कारण ही मिस्र स्वतंत्र रहा।

1842 में 1838 की आंग्ल-तुर्की व्यापार संधि मिस्र पर लागू की गई। ब्रिटिश व्यापारियों और उद्योगपतियों को कपास सीधे उत्पादकों से खरीदने की अनुमति दी गई और मिस्र को निर्यात की गई ब्रिटिश वस्तुओं पर न्यूनतम सीमा शुल्क लगाया जाता था। 1845 तक इंग्लैंड मिस्र के व्यापार में बड़ा भागीदार था। मिस्र के आयात में एक चौथाई हिस्सा और निर्यात में एक तिहाई हिस्सा इंग्लैंड का था। 1851 में अंग्रजों को एलेगजेन्ड्रिया से लेकर काहिरा और स्वेज नहर तक रेल लाइन बिछाने के लिए रियायत दी गई जो भारत में ब्रिटेन के उपनिवेश की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था। रेलवे लाइन के निर्माण से मिस्र का महत्व बहुत बढ़ गया क्योंकि अब यहां से जहाज से उतरे सामान को कहीं भी आसानी से ले जाया जा सकता था। 1858 में भारत में हुए विद्रोह को दबाने के लिए इसी रास्ते से सेना भेजी गई।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने मिस्र को साम्राज्यवादी देश का एक कृषीय और कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता मात्र बना दिया। उपनिवेशवाद के दौरान मिस्र में विदेशी शक्तियों और विदेशी कम्पनियों ने मिस्र का दर्दनाक शोषण किया और उसे ऋण के बोझ तले दबा दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस ने मिस्र की राजनैतिक गतिविधियों को अपने नियंत्रण में रखा, सरकारें गिराईं और कठपुतली शासनों की स्थापना की। तूर्कों, मामलुकों, अलम्बानियन कुलीनों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के शोषण के परिणामस्वरूप, मिस्र में असंतोष फैला और इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

22.5.2 मिस्र में ब्रिटिश आर्थिक नीति

मिस्र में उपनिवेशवाद के दो चरण एक दूसरे में मिले हुए थे। ब्रिटिश उद्योगपतियों का मुख्य उद्देश्य अपने उद्योगों के लिए मिस्र को कपास का एक आपूर्तिकर्ता बनाना था। मिस्र में उनका दूसरा आकर्षण यह था कि वह वित्त पूंजी के निवेश के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। 1897-1007 के वित्तीय तेजी के दौरान मिस्र में विदेशी पूंजी का निवेश कुल मिलाकर 73.500.000 मिस्र पाउंड हो गया। इसमें औद्योगिक निवेश का

अनुपात काफी कम था। 1833-97 में यह कुल निवेश का 29% था जो वित्तीय तेजी के दौरान और भी नीचे आ गया। वाणिज्य बैंकों, ऋण बंधक बैंकों (Mortgage Banks), भूमि सौदों से संबंधित कम्पनियों और सार्वजनिक उद्योगों में अधिकांश विदेशी निवेश हुआ। अनुमानतः विदेशी निवेश का 79 % गैर उत्पादक क्षेत्रों जैसे सार्वजनिक ऋण बंधक बैंकों (Mortgage Banks) में था, व्यापार और परिवहन में 12.36 % था और उद्योग और निर्माण में 5% था।

ब्रिटिश उद्योगपतियों ने मिस्र को मुख्यत: एक कपास उगाने वाले देश में बदल दिया। इस काम के लिए सिंचाई के कई उपाय किए गए। 1879 में 495, 000 फेडेन क्षेत्र में कपास उपजाया जाता था जो 1913 में बढ़कर 1,723,000 फेडेन हो गया। 1910 और 1914 के बीच कुल कृषीय उत्पाद के मूल्य में कपास का हिस्सा 43 % था। 1913 में कुल निर्यात में कपास का हिस्सा 85 % था। 1860 और 1870 के बीच कपास का निर्यात बढ़कर पांचगुना हो गया था जबकि 1843 से 1872 के बीच आयात तिगुना हो गया था। तीस वर्षों में मिस्र के समुद्र पार व्यापार की कुल मात्रा पांच गुनी बढ़ गई।

मिस्र में एक फसल अर्थव्यवस्था होने के परिणामस्वरूप मिस्र को अनाज का आयात करना पड़ता था। विदेशियों के पास 7000,000 फेडेन जमीन थी जो निजी स्वामित्व वाली जमीन का 13 % थी। इसके अलावा उनका 27 % भूमि पर नियंत्रण था जो विदेशी कम्पनियों के पास गिरवी रखी गई थी। कपास संसाधित करने वाले और कपास की सफाई करने वाले उद्योग तथा पानी के जहाजों पर, जो कपास ढोकर ले जाते थे, अंग्रेजों का नियंत्रण था। मिस्र के सम्पूर्ण कपास व्यापार पर अंग्रेजों का नियंत्रण था। मिस्र के शोषण का यह एक बहुत बड़ा प्रमाण है कि वहां एक भी कपड़े की मिल नहीं थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परिवहन और संचार के साधनों का विकास हुआ। रेलवे, टेलीग्राफ लाइनों और पानी के जहाजों का प्रचलन बढ़ा। कुछ हद तक मिस्र में उद्योगों का भी तेजी से विकास हुआ। मिस्र में चीनी साफ करने, छोटे कपड़े और कटाई की मिलें, फाउन्ड्री और मरम्मत के कारखाने आदि जैसे उद्योगों की स्थापना हुई जिनमें अपेक्षाकृत निम्न स्तर के प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल होता था। शुल्क संरक्षण का अभाव उद्योग के लिए अलाभप्रद था।

22.5.3 स्वेज नहर

1850 के दशक में फ्रांस के एक शक्तिशाली पूंजीपति फर्डिनैंड डे लेसेप्स ने स्वेज नहर बनाने का प्रस्ताव रखा। अब्बास पासा, जिसने इस परियोजना का विरोध किया था कि मृत्यु के बाद नए शासक ने, जो डे लेसेप्स का व्यक्तिगत मित्र था , स्वेज नहर के निर्माण के लिए रियायतें दीं। मिस्र को उपनिवेश बनाने की प्रक्रिया को तेज करने के लिए स्वेज का निर्माण किया गया। कुल पूंजी का 44 % अंश मिस्र से आया; इसके अलावा श्रम और भूमि मुफ्त दी गई। मिस्र को जबरन इस परियोजना के लिए बड़ी मात्रा में विदेशी ऋण लेने के लिए बाध्य किया गया। लगभग 25,000 से लेकर 40,000 मजदूरों को काम पर लगाया गया। अत: यह मिस्र के *फेलाहिन* का अनिवार्य अर्ध दास श्रम था जिसने पूंजीवाद के एक सबसे बड़े ढांचे को निर्मित किया। जैसा कि हम जानते हैं उपनिवेशवाद पूंजीवादी पूर्व अर्थव्यवस्था के श्रम प्रारूपों का इस्तेमाल करता है। वस्तुत: मध्य काल से चली आ रही व्यवस्था मिस्र के पूंजीवादी विकास का एक विशेष लक्षण था। इससे कृषि और उद्योग दोनों क्षेत्रों के विकास और आधुनिकीकरण में बाधा पहुंची।

स्वेज नहर परियोजना ने मिस्र की सरकार को वित्तीय संकट में डाल दिया। मिस्र पर 400,00,000 फ्रैंक का कुल बोझ पड़ा। अपना अंश बेचकर इसमें से उसे केवल एक चौथाई राशि ही प्राप्त हुई। लाखों पौंड का ऋण उसके ऊपर थोप दिया गया जबकि इस परियोजना का उसे तनिक भी लाभ नहीं मिलना था। इस परियोजना का लाभ केवल साम्राज्यवादियों को मिलना था जिन्हें पूरब पहुंचने में कम समय और कम लागत लगती। लंदन के बैंकरों ने मिस्र की सरकार को लाखों पौंड उधार दिए। इन ऋणों पर दिया जाने वाला ब्याज समृद्ध प्रांतों के राजस्व के बराबर था। 1876 तक मिस्र का कुल विदेशी ऋण 94,000,000 पौंड हो गया। इस पर प्रतिवर्ष 8,000,000 पौंड ब्याज देना पड़ता था। सरकार ने इस परियोजना का अपना अंश ब्रिटेन को बेंच दिया। इसके बाद ब्रिटेन इस परियोजना का सबसे बड़ा अंशधारक हो गया और उसे इस स्थिति का फायदा मिला तथा वह फ्रांस को इस परियोजना पर पूर्ण नियंत्रण पाने के लिए हुई प्रतिद्वंद्विता में पिछाड़ने में सक्षम रहा। इस नई नीति की जड़ यूरोप में एकाधिकार पूंजीवाद के चरण की शुरुआत में निहित थी। यूरोपीय शक्तियों ने अपनी औपनिवेशिक नीति में अधिक आक्रामक रुख अपनाया।

ब्रिटेन ने मिस्र की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए एक जांच आयोग का गठन किया। उसके वित्त पर फ्रांस और ब्रिटेन का दोहरा नियंत्रण स्थापित किया गया। 1878 में मुख्य रूप से यूरोपीय अधिकारियों से युक्त एक नया मंत्रिमंडल स्थापित किया गया। अब मिस्र आंग्ल-फ्रांसीसी बैंकरों का एक उपनिवेश बन गया। इसके खिलाफ चारो ओर स्वाभाविक रूप से असंतोष की लहर फैली। राष्ट्रवादियों या *वतनेन* ने इस असंतोष को अभिव्यक्ति दी। अलोकप्रिय यूरोपीय मंत्रिमंडल के स्थान पर एक राष्ट्रवादी सरकार की स्थापना हुई। परंतु यह ज्यादा दिन न टिक सकी और यूरोपीय ताकतों ने अपनी शक्ति फिर से मजबूत कर ली।

22.5.4 राज्य संरचना

1882 में मिस्र ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया परंतु औपचारिक रूप से न तो इस पर आधिपत्य स्थापित किया गया और न ही इसे संरक्षित राज्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई। मिस्र आटोमन साम्राज्य का ही अंग बना रहा। ब्रिटेन के अनुसार उसने यहां अस्थाई आधिपत्य स्थापित किया था। अंग्रेज मिस्र पर कब्जा जमाने से हिचक रहे थे क्योंकि इससे गंभीर अन्तरराष्ट्रीय संकट उत्पन्न होने की आशंका थी। आन्तरिक अव्यवस्था का बहाना बनाकर आनेवाले दशकों में उनका आधिपत्य कायम रहा। फ्रांस ने 1904 में आंग्ल-फ्रांसीसी संधि के द्वारा मिस्र पर ब्रिटेन का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

स्वेज नहर पर अन्तरराष्ट्रीय आयोग का नियंत्रण स्थापित होना था। 1906 में, ब्रिटेन ने सिनाइ प्रायद्वीप पर कब्जा जमा लिया। मिस्र के वित्त पर दोहरा नियंत्रण समाप्त हो गया और इसके साथ ही साथ फ्रांसीसी प्रभाव की भी समाप्ति हो गई। व्यवहार में मुख्य शक्ति अंग्रेज प्रशासक के पास थी। हालांकि खेदिव नाम मात्र के लिए शासक था और विधान परिषद तथा महासभा की उपस्थिति भी दिखावा मात्र थी। ब्रिटेन का प्रधान राजदूत ब्रिटिश वित्त पूंजी का संरक्षक था। लॉर्ड कोमर सबसे ज्यादा दिन तक प्रशासक रहा। इसके बाद गोस्ट और जेनरल किशेनर वहां के प्रशासक बने।

मिस्र औपचारिक रूप से ब्रिटेन का उपनिवेश नहीं था। उसके बावजूद ब्रिटेन ने मिस्र ने प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लिया। युद्ध के लिए मिस्र के प्राकृतिक संसाधनों और मानव संसाधनों का उपयोग किया गया। उसकी सारी अर्थव्यवस्था युद्ध कर आग में झोंक दी गई। सेनाओं के लिए किसानों की फसलों पर बलपूर्वक कब्जा जमा लिया गया। मिस्र के राष्ट्रीय बैंक के स्वर्ण भंडार को ब्रिटिश राजकोष में डाल दिया गया। मिस्र को स्टरलिंग क्षेत्र में शामिल कर लिया गया जिससे ब्रिटेन के लिए अपने सैनिक खर्चे के लिए कागजी मुद्रा में भुगतान करना संभव हो सका। युद्ध के दौरान मुद्रा स्फिति में अचानक वृद्धि हुई। युद्ध के कारण विदेशी व्यापार के बाधित होने से मिस्र के स्थानीय उद्योग को बल मिला। 1914 में मार्शल लॉ लागू किया गया, राजनैतिक विरोधियों के प्रति तानाशाही शासन ने सख्ती की नीति अपनाई और हजारों बुद्धिजीवियों को देश से निकाल दिया गया। राष्ट्रीय आंदोलन तेजी से फैला। 18 दिसम्बर 1914 को मिस्र को औपचारिक तौर पर ब्रिटिश संरक्षित राज्य घोषित कर दिया गया।

22.6 अफ्रीका में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद

अब हम अफ्रीका में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद की चर्चा करने जा रहे हैं। इसके अन्तर्गत अल्जीरिया और ट्यूनीसिया पर विचार किया जाएगा।

22.6.1 अल्जीरिया

अल्जीरिया उत्तर अफ्रीका में फ्रांस का पहला उपनिवेश था। चार्ल्स X ने 1830 में वहां अपनी सेना भेजी। आगे आने वाले वर्षों में नागरिक प्रशासन को संगठित किया गया। 1839 तक 70,000 फ्रांसीसी अल्जीरिया में बस गए। 1839 के बाद फ्रांसीसी उपनिवेशवाद शुरु हुआ। स्थानीय जनजातियों की जमीन फ्रांसीसी उपनिवेशवादियों को दे दी गई जिन्होंने बड़े इस्टेट्स और विशाल महल बनाए। आरंभ में समुद्र तट पर बसे शहरों तक ही फ्रांस का नियंत्रण सीमित था। धीरे-धीरे उन्होंने पूरे देश पर कब्जा कर लिया।

अल्जीरिया को फ्रांस का एक कृषि आपूर्ति कर्ता बना दिया गया। वहां कच्चे माल का उत्पादन होता था और फ्रांसीसी उत्पाद वहां मुनाफे पर बेचे जाते थे। फ्रांसीसी विजय अभियान के पूर्व के घरेलू उद्योग और व्यापार

नष्ट हो गए। कारीगर बरबाद हो गए। जमीन पर कब्जा स्थापित किया गया तथा यह नियंत्रण का प्रमुख जरिया बना। 1871 तक बाहर से आकर बसने वाले औपनिवेशिक लोगों को 480,000 हेक्टेयर भूमि दे दी गई। फ्रांसीसी पूंजीवादी कम्पनियों ने भूमि का एक बड़ा हिस्सा हासिल किया। बड़ी पूंजीपति कम्पनियों के कब्जे में जमीन हो जाने के बावजूद अल्जीरिया में एक पिछड़ी कृषि अर्थव्यवस्था कायम रही। अल्जीरिया के खनिज पदार्थों का दोहन भी मुनाफे का एक अन्य स्रोत था। फ्रांसीसी कम्पनी कच्चे लोहे और फौसोफाइराइट के भंडारों का दोहन करती थी। व्यापार बढ़ाने और सैनिक तथा रणनीति से संबंधित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए रेलवे की स्थापना की गई। 1871 से लेकर 1914 तक विदेश व्यापार बढ़ा जिससे यह पता चलता है कि उपनिवेश के तौर पर अल्जीरिया की उपयोगिता बढ़ रही थी। कपड़ों का आयात तेजी से बढ़ा जिससे यह पता चलता है कि अल्जीरिया फ्रांस के उत्पादों का उपभोक्ता था।

1871 में दूसरे साम्राज्य के पतन के बाद अल्जीरियावासियों को फ्रांसीसी शासन को उखाड़ फेंकने का संकेत मिला। स्थानीय फ्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग ने पारीसियन बुर्जुआ वर्ग के एकाधिकार और सैनिक शासन का विरोध किया। शेष लोग भी औपनिवेशिक शासन के खिलाफ थे क्योंकि उपनिवेश के शासकों ने शोषण कर वहां की अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया था। 1866 और 1872 के बीच अकाल और महामारी के कारण कुल जनसंख्या का 1/5 वां हिस्सा मारा गया। 14 मार्च 1871 को मोहम्मद एल मोकरानी के नेतृत्व में अरब और बरबर विद्रोह हुए। विद्रोहियों को आरंभ में सैनिक विजय प्राप्त हुई परंतु पेरिस कम्यून की विफलता के बाद उनकी स्थिति बहुत कमजोर हो गई। अन्ततः विद्रोह को दबा दिया गया।

आने वाले वर्षों में औपनिवेशिक कुशासन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया और साम्राज्यवादी शासन अपने उत्कर्ष पर। अरबवासियों की जमीन पर कब्जा जमा लेने से फ्रांस जैसे औपनिवेशिक देश की स्थिति काफी मजबूत हो गई थी। उन्होंने 500,000 हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि हासिल कर ली और 1917 तक फ्रांस के पास कुल भूमि की 55 % जमीन थी। देशी किसानों और बंजारों को निर्जन क्षेत्रों में भेज दिया गया और वे बड़ी संख्या में मर गए। फ्रांसीसियों को राजनैतिक विशेषाधिकार दिए गए जबकि अरबवासियों और बरबरों को ये विशेषाधिकार नहीं दिए गए। फ्रांसीसी नागरिक थे जबकि अरब और बरबर उनके अधीन थे। उन पर अलग कानून और अलग कर की दरें लागू होती थीं। देशी अल्जीरियावासियों ने समानता और जनतंत्र की मांग की और भेदभाव का विरोध किया।

22.6.2 ट्यूनीसिया

तुर्की से स्वतंत्रता दिलाकर फ्रांस ने ट्यूनीसिया पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। 1837 में फ्रांस ने ट्यूनीसिया क्षेत्र पर आक्रमण किया परंतु ब्रिटेन के दबाव में उसे पीछे हटना पड़ा। आधुनिकीकरण के प्रयत्नों के कारण वहां के शासकों की वित्तीय स्थिति काफी कमजोर हो गई और उन्हें विदेशी बैंकों से प्रतिकूल शर्तों पर बड़ी मात्रा में ऋण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। किसानों और कारीगरों से जबरन कर वसूला गया और इसके लिए क्रूरता से ताकत का इस्तेमाल किया गया।

1881 में फ्रांस ने ट्यूनीसिया पर कब्जा जमा लिया। इटली वहां पहले से ही मौजूद था और वहां उसने रेलवे और टेलीग्राफ में रियायतें हासिल कर रखीं थीं। 1871 में प्रशा के हाथों फ्रांस की हार के कारण इटली को कुछ विशेषाधिकार हासिल करने का हौसला मिला। 1878 की बर्लिन कांग्रेस में यूरोपीय शक्तियों ने फ्रांस को औपचारिक रूप से ट्यूनीसिया पर कब्जा करने की अनुमति दे दी। सीमा विवाद के बहाने 1881 में कब्जा जमा लिया गया। फ्रांस ने घोषणा की कि भविष्य में ट्यूनीसिया के विदेशी संबंधों पर उसका नियंत्रण होगा। राज्य की शासन व्यवस्था को फ्रांसीसी एकाधिकार पूंजी के हितों की पूर्ति करनी थी। 1884 में अन्तरराष्ट्रीय आयोग से वित्तीय नियंत्रण फ्रांस के हाथ में आ गया। इसके बावजूद उपनिवेश में इटली की रुचि बनी रही और इटली का प्रभाव क्षेत्र कायम रहा। फ्रांसीसी विस्तारवाद पर नियंत्रण लगाने के लिए इटली ने जर्मनी और आस्ट्रिआ-हंग्री के साथ त्रिपक्षीय संधि पत्र पर हस्ताक्षर किए। 1896 में फ्रांसीसियों ने इटली निवासियों को विशेष दर्जा प्रदान किया और इसके बदले में इटली ने ट्यूनीसिया को फ्रांस का संरक्षित राज्य मान लिया। ट्यूनीसिया में इटलीवासियों की संख्या फ्रांसीसियों से ज्यादा हो गई। जमीन पर कब्जा किया जाना शोषण का सबसे आम तरीका था। खनिज भंडारों का दोहन एक दूसरा रूप था।

22.7 दक्षिण-पूर्व एशिया

1941-5 के प्रशांत युद्ध के समय से ही दक्षिण-पूर्व एशिया नाम का प्रयोग होता आ रहा है। इसमें बर्मा, थाइलैंड, उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम, कम्बोडिया, लाओस, मलेशियाई संघ, ब्रुनेई, इंडोनेशिया और फिलीपिन्स शामिल हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया में 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर 20 वीं शताब्दी के मध्य तक उपनिवेशवाद कायम रहा। यूरोप की सैनिक और नौसैनिक सर्वोच्चता ने उसे शेष दुनिया पर आधिपत्य जमाने का मौका दिया। तोप और भाप से चलने वाली सशस्त्र नौकाओं ने एशियाई देशों के अस्त्रों को अप्रभावी बना दिया। यूरोपीय देशों का उद्देश्य धन, सम्मान अर्जित करना और इसाई धर्म का प्रचार करना था। यहां तक कि मसाला व्यापार के स्वर्ण काल के बाद भी दक्षिण-पूर्व एशिया यूरोप के लिए महत्वपूर्ण था क्योंकि यहां से यूरोपीय उद्योग के लिए कच्चे माल की आपूर्ति होती थी; जैसे तेल, रबर, धातु, चावल, कॉफी, चाय और चीनी। 1870 के बाद अंदरूनी इलाकों का भी औपनिवेशीकरण हुआ। इससे थाइलैंड भी प्रभावित हुआ। हालांकि वह उपनिवेश नहीं था।

विक्टर पर्सेल के अनुसार " यूरोपीय विस्तार के लिए आग और तलवार का नहीं बल्कि व्यापार, संधि, प्रत्ययकारिता और वैधानिकता जैसे उपकरणों का इस्तेमाल किया गया।'' पुरानी राज्य व्यवस्थाएं ध्वस्त कर दी गई, वाणिज्य की पद्धतियां बदल दी गई और एशियाई सभ्यताओं की सांस्कृतिक और बौद्धिक समझ को चुनौती दी गई।

22.7.1 इंडोनेशिया

मसाले का व्यापार बहुत ही लाभप्रद था और इसने यूरोपीय शक्तियों को आकर्षित किया। 16 वीं शताब्दी के आरंभ में पुर्तगाली मलक्का आए परंतु 1600 ई. तक उनकी ताकत कमजोर पड़ गई। उन्होंने पहली बार मक्का, तंबाकू, सकरकन्द, और कोकोआ से लोगों को परिचित कराया। डच व्यापारियों ने 1594 में एक कम्पनी बनाई। 1602 में इन कम्पनियों को एकीकृत कर दिया गया और उन्हें एकसमान घोषणा पत्र प्रदान किया गया। व्यापार को बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय विस्तार किया गया। व्यापार करने और विरोधियों को बाहर रखने के लिए एक सुरक्षित क्षेत्र की जरूरत थी। राजस्व वसूली भी एक महत्वपूर्ण वित्तीय स्रोत था। 1682 तक फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के बीच प्रतिस्पर्धा चलती रही परंतु 1682 के बीच अंग्रेज और फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता से अलग हो गए। पेरिस की संधि के प्रावधानों के तहत 1784 में डच एकाधिकार प्रणाली समाप्त कर दी गई।

जावा के किसानों को निर्यात करने के लिए फसलें उगानी पड़ीं। स्थानीय लोगों को कम मजदूरी पर काम करने को बाध्य होना पड़ा और उन्हें डच व्यापारियों से मनमाने दाम पर वस्तुएं खरीदनी पड़ती थीं। कृषि का सारा निर्यात निदरलैंड को होता था। औपनिवेशिक शासकों की अनुमति के बिना किसान नगदी फसल नहीं उपजा सकते थे। डच अधिकारी बिना अनुमति के लगाए गए लौंग और जायफल के पेड़ों को नष्ट कर दिया करते थे।

उपनिवेश में बहुत कम पूंजी निवेश किया गया। खनन विकास अपनी शैशव अवस्था में था। 1860 के दशक में रेलवे का निर्माण किया गया। 1900 तक 3000 कि.मी. लम्बी रेल लाइन बिछाई गई थी। 1856 में टेलीग्राफ सेवा और 1866 में डाक सेवा की शुरुआत की गई।

उपनिवेशवाद ने द्वीप समूह की पुरानी राजनैतिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाला और नए ढांचों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। डच औपनिवेशिक शासन ने पुराने राज्यों का दमन कर एक आधुनिक राज्य के लिए जगह बनाई।

22.7.2 फ्रांसीसी हिन्द-चीन (इंडो-चीन)

फ्रांस ने 1859 में सैगांव पर अधिकार जमा लिया। 1861 में कम्बोडिया फ्रांस का संरक्षित राज्य बन गया। 1887 – में कोचिन चीन, अन्नम और टौंगकिंग को मिलाकर इंडो-चीन संघ बना।

अपने उद्योगों खासकर कपड़ा उद्योगों, लोहा और इस्पात तथा मशीन उद्योग को लाभ पहुंचाने के लिए फ्रांस

ने सीमा शुल्क लगाया। इसके परिणामस्वरूप काफी धीमी गति से औद्योगीकरण हुआ। कोयला, टिन और जिंक के खनन में विदेशी पूंजी लगाई गई। जंगलों में लकड़ी काटी गई और रबर के पेड़ लगाए गए। 1911 और 1912 के बीच फ्रांस से इंडो-चीन को होने वाले निर्यात में 19.6 % की वृद्धि हुई। 1838 तक यह बढ़कर 53% हो गया।

किसानों के स्वामित्व के स्थान पर भूमिपतियों का स्वामित्व हो गया। भूमिपतियों ने 80 % भूमि पर नियंत्रण स्थापित कर लिया और 200,000 लोगों को बटाईदार के रूप में काम पर लगाया गया। अनुपस्थित भूमिपति प्रथा का बोलबाला था। इसके परिणामस्वरूप गांवों पर जनसंख्या का दबाव, कुपोषण और गरीबी बढ़ी। उन पर कर का भार ज्यादा लाद दिया गया।

फ्रांस की औपनिवेशिक नीति का उद्देश्य अपने क्षेत्रों को "गैलिसाइज" (फ्रांसीसीकरण) करना था। इसके विपरीत अंग्रेजों और डचों ने परम्परागत तरीकों को अपनाया। अप्रत्यक्ष शासन दुहरा बोझ था क्योंकि इसमें दो नौकरशाहियों का भरण-पोषण करना था — एक फ्रांसीसी और दूसरा नाममात्र, निष्प्रभावी।

बोध प्रश्न 2

1) मिस्र में अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों पर लगभग 100 शब्दों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) अल्जीरिया और ट्यूनीसिया में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद का क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

....

....

22.8 सारांश

प्रत्यक्ष शासन के तहत औपनिवेशिक शोषण के मुख्यत: तीन चरण थे : शोषण और व्यापार पर एकाधिकार, मुक्त व्यापार और उपनिवेशों में पूंजी निवेश। हालांकि ये चरण समय के परिप्रेक्ष्य में एक के बाद एक आते हैं परंतु कई बार दूसरे और तीसरे चरण आपस में घुल मिल जाते हैं। मुक्त व्यापार की अवधारणा हाल तक कई रूपों में विद्यमान रही और कुछ उपनिवेशों में प्रत्यक्ष वित्तीय निवेश होता रहा। परंतु इन सभी रूपों में साम्राज्यवादियों और उपनिवेशों के बीच का संबंध शोषक और शोषित का रहा। उपनिवेशों का आर्थिक शोषण किया गया। उनके परम्परागत उद्योग नष्ट हो गए और कई बार वे साम्राज्यवादी देशों के उद्योगों के निर्माण और विकास के लिए कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता मात्र बन कर रह गए। उपनिवेशों के लिए यह हमेशा भेदभावपूर्ण संबंध रहा। इसमें उपनिवेश गरीब होते चले गए और साम्राज्यवादी देश समृद्धि की ओर बढ़ते चले गए।

22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर के लिए भाग 22.2 देखिए।

2) देखिए उपभाग 22.3.1

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 22.5.2

2) देखिए भाग 22.6

इकाई 23 औपनिवेशिक आधिपत्य की पद्धतियां – II : अप्रत्यक्ष शासन

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- अप्रत्यक्ष शासन की प्रकृति को समझ सकेंगे;
- इस प्रकार के शासन के उदय के कारणों से परिचित हो सकेंगे; और
- दुनिया के कई क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन के प्रभाव और वास्तविक कार्य पद्धति का विवेचन कर सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

जहां एशिया और अफ्रीका के बड़े हिस्सों में प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन स्थापित किया गया वहीं कुछ क्षेत्रों में उपनिवेशवाद का अप्रत्यक्ष रूप भी सामने आया। अप्रत्यक्ष शासन का क्या लाभ है ? इस प्रकार के शासन में, जिसे अर्ध उपनिवेशवाद भी कहा जाता है, देश की सत्ता स्थानीय शासकों के हाथ में होती है परंतु वे एक कमजोर और अप्रत्यक्ष शासक होते हैं। वहां की आर्थिक गतिविधियों पर साम्राज्यवादी शक्तियों का नियंत्रण होता है। वे वहां से अपनी जरूरत के अनुसार ज्यादा से ज्यादा कच्चा माल प्राप्त करते हैं और अपने तैयार मालों को बेचते हैं।

आर्थिक दृष्टि से अप्रत्यक्ष शासन को अर्ध उपनिवेशवाद भी कहा जा सकता है। आगे हम अप्रत्यक्ष शासन के बदले में अर्ध उपनिवेशवाद का ही इस्तेमाल करेंगे। इसका कारण यह है कि अर्ध उपनिवेशवाद कहने से साम्राज्यवादी शक्तियों और कम विकसित देशों के असमान संबंधों का खुलासा होता है। यह संबंध शोषणात्मक होता है जिसमें विभिन्न रणनीतियों और चतुराई द्वारा अर्ध उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था का उपयोग साम्राज्यवादी शक्तियों के लाभ के लिए किया जाता है। कुछ इतिहासकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष शासन में अन्तर करने के लिए 'औपचारिक' और 'अनौपचारिक' वर्गीकरण का उपयोग करते हैं।

23.2 अर्ध उपनिवेशवाद

अप्रत्यक्ष शासन की व्यवस्था के उदय के अनेक कारण थे। बहुपक्षीय व्यापार में वृद्धि, परस्पर विरोधी साम्राज्यवादी हितों में सामंजस्य स्थापित करना और कुछ परिस्थितियों में प्रत्यक्ष शासन की तुलना में अप्रत्यक्ष शासन करने में होने वाले कम खर्च जैसे कुछ कारक इसके उदय के लिए उत्तरदायी थे। 1860 के दशक के आस-पास अर्ध उपनिवेशवाद का उदय हुआ। इस तरह बहुपक्षीय व्यापार का उदय हुआ। अमेरिकी गृह युद्ध के कारण हुई आर्थिक तेजी और स्वेज नहर (यह 1869 में खुला था जिसकी जानकारी आपको इकाई 22 में दी जा चुकी है) का निर्माण भी अर्ध-उपनिवेशवाद के उदय के लिए उत्तरदायी कुछ महत्वपूर्ण कारक थे। समुद्री परिवहन में हुई प्रौद्योगिकी क्रांति के कारण माल भाड़े में कमी आई। इस समय तक बेल्जियम, फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी और रूस सभी औद्योगीकरण के विभिन्न चरणों से गुजर रहे थे, और अपने औद्योगिक उत्पादों के लिए कच्चा माल और बाजार तलाश कर रहे थे। इसके परिणामस्वरूप इस युग में बिना किसी रुकावट के पूरी दुनिया में व्यापार किया जाने लगा।

इस चरण में किसी भी साम्राज्यवादी शक्ति के लिए, किसी खास क्षेत्र पर नियंत्रण स्थापित करना मुश्किल था क्योंकि इंग्लैंड ने मुक्त व्यापार के सिद्धांत को सामने रखा था जिसके तहत प्रमुख साम्राज्यवादी ताकतों के बीच आपसी बंटवारे की व्यवस्था थी।

23.2.1 मुक्त व्यापार

मुक्त व्यापार का सिद्धांत पूर्ण उपनिवेशों के समान ही अर्ध उपनिवेशों के लिए भी उतना ही घातक था। औद्योगिक क्रांति की सफलता के बाद पश्चिमी दुनिया में जब ब्रिटेन को आर्थिक सर्वोच्चता मिल गई तो वह मुक्त व्यापार की बात करने लगा जिसके तहत व्यापार करने वाले सभी देशों द्वारा विदेशी व्यापार पर सभी प्रकार के शुल्क और कर हटा दिए जाने थे। जैसा कि कई राजनैतिक अर्थशास्त्रियों ने बताया है कि मुक्त व्यापार की अवधारणा एक मिथ्या थी। मुक्त व्यापार से केवल इंग्लैंड को ही फायदा था। मुक्त व्यापार व्यवस्था आदर्शत: उसी स्थिति में काम कर सकती थी जब सभी देश आर्थिक विकास के एक स्तर पर खड़े होते। 19वीं शताब्दी में वस्तुत: एशिया अफ्रीका की पिछड़ी अर्थव्यवस्था पर मुक्त व्यापार लादा गया जिनके उत्पाद जैसे हथकरघा से बना समान, इंग्लैंड के मिल में मशीन के बने कपड़ों के सामने टिक नहीं सकते थे। लैंकशायर और मैनचेस्टर में बने सस्ते कपड़े जल्द ही उपनिवेशों और अर्ध उपनिवेशों के बाजार में बड़ी संख्या में उपलब्ध हो गए। इसने देशी अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया।

23.2.2 जटिल परिस्थितियों में अप्रत्यक्ष शासन को प्राथमिकता

जिन देशों में अलग-अलग जातीय पृष्ठभूमि के लोग रहते थे और जहां कई प्रकार की सांस्कृतिक और राजनैतिक प्रथाएं मौजूद थीं उन क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष शासन लागू किया गया। औटोमन साम्राज्य और चीन इस प्रकार के शासन के उदाहरण हैं। इसका कारण यह था कि इन क्षेत्रों में साम्राज्यवादी ताकतों के लिए अनेक प्रांतीय राज्यों और शासकों की अपेक्षा एक केंद्रीकृत प्रशासन से निपटना ज्यादा आसान था। औटोमन साम्राज्य पर बातचीत करते समय हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे। साम्राज्यवादी ताकतों के बीच बंटवारे की व्यवस्था आराम से चलती रहे इसके लिए जरूरी था कि देश चलाने का काम देशी राज्य पर छोड़ दिया जाए। चाहे वह चीन के शासक हों या औटोमन साम्राज्य के, वे देश को सुव्यवस्थित रूप से चलाने में सक्षम थे परंतु वे पहले की तरह स्वतंत्र नहीं थे। बाहरी ताकतों के आदेशों का पालन करने वाले और कमजोर शासक को ही साम्राज्यवादी ताकतें पसंद करती थीं। उसे अपने क्षेत्र में कुछ हद तक राजनैतिक और आर्थिक आधुनिकीकरण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। अतएव 1830 के दशक से इस्तानबुल शासन (औटोमन साम्राज्य) की राजनैतिक पुनर्व्यवस्था या तंजिमात को यूरोपीय शक्तियों ने सक्रिय प्रोत्साहन दिया। इस पुनर्व्यवस्था के तहत सरकारी ढांचों का पश्चिमीकरण किया गया और राज्य का नए सिरे से केंद्रीकरण किया गया। 1860 के दशक से चीन में साम्राज्ञी सु-जी के नेतृत्व में आत्मदृढ़ीकरण आंदोलन चला।

साम्राज्यवादी ताकतों को अप्रत्यक्ष शासन से ज्यादा सहूलियत थी क्योंकि उन्हें सरकार की जिम्मेदारी नहीं लेनी पड़ती थी परंतु वे अर्ध उपनिवेशों की आन्तरिक राजनीति और झगड़ों में हस्तक्षेप करने से बाज नहीं

आते थे। इसका मतलब गह नहीं है कि प्रत्यक्ष शासन के लाभ नहीं थे। प्रत्यक्ष शासन या पूर्ण उपनिवेशवाद में साम्राज्यवादी ताकत को अपने हितों की पूर्ति के लिए अतिरिक्त आर्थिक साधन भी आसानी से प्राप्त होते थे। इसमें अन्य औद्योगिक देशों के व्यापार और निवेश को रोका जा सकता था, स्थानीय लोगों से कर वसूला जा सकता था और अधिक आसानी से उपनिवेश का धन अपने देश ले जाया जा सकता था। अर्ध उपनिवेशी स्थितियों में साम्राज्यवादी ताकतों ने मजबूत देशी मित्र बनाए जिन्होंने उनके हितों की पूर्ति में मदद की। चिली इसका एक अच्छा उदाहरण है। वहां देशी खनन में कार्यरत वर्ग और बड़े भूमिपतियों तथा आयात करने वाले व्यापारियों ने ब्रिटिश और अमेरिकी साम्राज्यवादियों के साथ सहयोग किया जिसे आन्द्रेगुंडर फ्रैंक 'अल्प विकास का विकास मानते हैं।'

23.2.3 परस्पर विरोधी साम्राज्यवादी हितों के बीच सामंजस्य

साम्राज्यवादी शक्तियों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण भी अर्ध उपनिवेशवाद का उदय हुआ। औटोमन साम्राज्यवाद इसका अच्छा उदाहरण है। 'यूरोप के बीमार आदमी' अर्थात तुर्की के मामले में ब्रिटेन और रूस के प्रतिद्वंद्वितापूर्ण साम्राज्यवादी हितों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। यही बात चीन पर भी लागू होती थी जहां खासकर रूस मंचु शासन को हटाऐ जाने की अपेक्षा उसे कायम रखने के पक्ष में था क्योंकि उसे हटाए जाने से चीन पर अंग्रेजों का नियंत्रण मजबूत हो जाता। वहां जापानियों और जर्मनों का भी स्वार्थ था। लैटिन अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहता था और इसी कारण से उसने सबको हटाने का प्रयत्न किया।

बोध प्रश्न 1

1) अर्ध उपनिवेशवाद या अप्रत्यक्ष शासन की प्रमुख विशेषताओं का 100 शब्दों में विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

23.3 अप्रत्यक्ष शासन के कुछ उदाहरण

जिन परिधीय देशों की चर्चा हम करने जा रहे हैं उनके कुछ अनुभव आपस में मिलते जुलते हैं। जैसा कि इतिहासकार सेवकेट पामुक ने अपने अध्ययन में बताया है कि "इस एकता के भीतर अनेकता भी मौजूद है। शेष दुनिया की अर्थव्यवस्था से संबंध स्थापित करने और इसके परिणमस्वरूप वहां विकसित ढांचे की दृष्टि से प्रत्येक देश का इतिहास अलग है''। जिन चार उदाहरणों चीन, औटोमन साम्राज्य, इरान और लैटिन अमेरिका का अध्ययन करने हम जा रहे हैं उसे पामुक दो वर्गों में विभाजित करते हैं। प्रथम तीन उदाहरणों को उसने एक वर्ग में रखा है जहां मजबूत राज्य संरचनाएं और केंद्रीकृत नौकरशाही विद्यमान थी। इन क्षेत्रों में अक्सर नौकरशाही और उन सामाजिक वर्गों के बीच संघर्ष चलता रहता था जो विश्व अर्थव्यवस्था के साथ अधिक तेजी से जुड़ना चाहते थे और प्रत्यक्ष संबंध रखना चाहते थे उदाहरण के लिए निर्यात उन्मुख भूमिपति। साम्राज्यवादी शक्तियें अपनी आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण सामाजिक वर्गों की अपेक्षा नौकरशाही से ज्यादा संपर्क में आती थीं। वे केंद्रीकृत संरचनाओं को राजनैतिक, सैनिक और वित्तीय 'समर्थन' देती थीं जो इस समय अपने को कमजोर और असमर्थ महसूस कर रही थीं। इस समर्थन के बदले साम्राज्यवादी शक्तियां प्रमुख बड़ी निवेश परियोजनाओं के लिए वाणिज्यिक विशेषाधिकार या रियायत प्राप्त करते थे। दूसरी ओर लैटिन अमेरिका के मामले में एक साम्राज्यवादी ताकत, जैसे अमेरिका, ने अपने प्रभाव का इस्तेमाल

किया था। विभिन्न लैटिन अमेरिकी देशों में शासक समुदायों के हितों की रक्षा करने की दृष्टि से व्यापार किया गया और साम्राज्यवादी शक्ति ने पूंजी निवेश किया।

23.3.1 चीन

अर्ध उपनिवेशवाद की स्थापना के संदर्भ में सबसे पहले हम चीन का उदाहरण सामने रखेंगे। चीन के मंचु शासन नें आरंभ से ही पश्चिमी शक्तियों का जम कर विरोध किया था और उन्हें 'बर्बर' कहा था। चीन के सम्राट ने विदेशियों को चीन के एक सीमित क्षेत्र में ही रोक रखने के लिए सभी संभव उपाय किए और अठारहवीं शताब्दी के बाद कई वर्षों तक यूरोपीय व्यापारियों को केवल कैंटन शहर के जरिए ही चीन से व्यापार करने की अनुमति मिली थी जो पिकिंग के बिलकुल दूसरे छोर पर स्थित था। पश्चिमी व्यापारियों के केवल चीनी व्यापारियों के साथ संबंध थे न कि सरकारी अधिकारियों के साथ। चीन से होने वाली प्रमुख निर्यात वस्तुओं, जैसे रेशम और चाय, को कैंटन से कम से कम 500 मील की दूरी तक जमीन के रास्ते ले जाना पड़ता था क्योंकि चीनी सरकार को यह आशंका थी कि यदि सामान नौका द्वारा भेजा गया तो व्यापारी सीमा शुल्क बचाने का प्रयत्न करेंगे। यूरोपीय व्यापारी केवल जाड़े के महीनों में ही कैंटन आ सकते थे, चीनी नौकर नहीं रख सकते थे या पालकी में नहीं बैठकर चीनी सम्राट के सामने अपना सिर जमीन पर लगाना पड़ता था। सकते थे। उन्हें चीनी सम्राट के सामने 'कोतो' भी करना पड़ता था अर्थात उन्हें घुटने के बल बैठकर चीनी सम्राट के सामने अपना सिर जमीन पर लगाना पड़ता था जिसे वे पसंद नहीं करते थे। इसी प्रकार 'पिंग' या रियायत के लिए सम्राट को आवेदन देने की प्रथा का भी यूरोपीय व्यापारी जमकर विरोध किया करते थे परंतु चीन के सत्ताधारी इस बात पर बल देते थे। व्यापारियों का यह विरोध चलता रहा। आरंभिक वर्षों में चीन को पश्चिमी वस्तुओं की जरूरत नहीं थी इसलिए चीन की चाय और रेशम के बदले पश्चिम को सोना और चांदी देना पड़ता था। परंतु अन्ततः चीन को पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों का आर्थिक गुलाम बनना पड़ा।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के पक्ष में व्यापार संतुलन बनाने में अफीम व्यापार का घृणित तरीका इस्तेमाल किया। अफीम व्यापार में ब्रिटेन, भारत और चीन शामिल था। इस व्यवस्था के तहत अंग्रजों की देखरेख में भारत के कई हिस्सों में काफी मात्रा में अफीम उपजाया जाता था और तब उसे पानी के जहाज में चीन भेजा जाता था। यूरोप के बाजार के लिए वहां से इसके बदले में चीनी, चाय प्राप्त की जाती थी। चीन के लोगीं में अफीम की बुरी लत फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई और वहां के उत्साही और बुद्धिमान लोग अफीम के नशे में धीरे-धीरे आलसी और कमजोर होते चले गए। चीन के अधिकारियों ने अफीम के व्यापार की दुष्प्रभावों को महसूस किया और इसे रोकने या कम से कम नियंत्रित करने का प्रयत्न किया। हु-क्वांग के गर्वनर जेनरल ने चेतावनी दी कि यदि अफीम को आने से नहीं रोका गया तो कुछ ही दशकों में चीन के पास शत्रु से लड़ने के लिए कोई योद्धा नहीं होगा। इसके अलावा सेना के रखरखाव के लिए पर्याप्त धन भी उपलब्ध नहीं होगा।

चीन के शासकों ने अफीम की आपूर्ति पर रोक लगाने की कोशिश की जिसके परिणामस्वरूप 1839-42 के अफीम युद्ध हुए। परंतु इस युद्ध के बाद चीन की सेना की कमजोरी सामने आई। वस्तुतः अफीम युद्धों में चीन की हार के बाद वहां पश्चिमी हस्तक्षेप के नए चरण की शुरुआत हुई। 29 अगस्त 1842 को बंदूक के जोर पर हुई नानकिंग की संधि की धारा 13 के तहत ब्रिटिश व्यापार के लिए 5 बन्दरगाह खोल दिए गए, हांगकांग के बन्दरगाह शहर पर ब्रिटेन का अधिकार हो गया और चीन को 21 मिलियन डॉलर का हर्जाना ब्रिटेन को देना पड़ा। इस प्रकार ब्रिटेन को चीन में एक विशेष देश का दर्जा मिल गया और उन्होंने अतिरिक्त क्षेत्रीय अधिकार भी प्राप्त कर लिए जिसके अनुसार चीन में अपराध करने वाले विदेशियों पर चीनी ट्रिब्यूनल में नहीं बल्कि उनकी अपनी अदालतों में मुकदमा चलाया जाता था। नई कर व्यवस्था के अन्तर्गत 5% आयात शुल्क निश्चित किया गया। यह दर मौजूदा दर से ज्यादा थी। इसलिए चीन के लोगों को यह लाभकारी प्रतीत हुआ परंतु लंबे समय में चीन की बजाय ब्रिटेन को इससे ज्यादा फायदा हुआ। इसका कारण यह था कि हमेशा के लिए कर तय कर देने से चीनियों ने भविष्य में शुल्क दर बढ़ाने का अधिकार खो दिया।

ब्रिटेन को जब ये रियायतें प्राप्त हो गईं तब उसके बाद फ्रांसीसी और अमेरिकी भी इसी प्रकार की संधियों की मांग करने लगे। चूंकि चीनी अधिक टकराव नहीं चाहते थे इसलिए उन्होंने अमेरिका और फ्रांस की

बात मान ली। उनका यह मानना था कि उनकी मांगे मान लेने से चीनियों को कोई घाटा होने वाला नहीं था क्योंकि उन्हें ब्रिटेन के मुनाफे में से ही हिस्सा मिलना था। 3 जुलाई 1844 को अमेरिका के साथ वांगशिया की संधि और 24 अक्टूबर 1844 को फ्रांसीसियों के साथ व्हमपोआ की संधि पर हस्ताक्षर किया गया। इन देशों को भी विशेषाधिकार मिले। अतिरिक्त – क्षेत्रीय अधिकार मिले और एक निश्चित शुल्क देने का अधिकार मिला। इन तीन राष्ट्रीय अधिकारों को देने के बाद चीन एक अर्ध औपनिवेशिक राज्य बन कर रह गया। स्थाई सीमा शुल्क दर के कारण चीन में बड़े पैमाने पर विदेशी सामान लाना आसान हो गया और चीन के हस्तशिल्प बरबाद हो गए। इस लिहाज से अर्ध उपनिवेशवाद के परिणाम पूर्ण उपनिवेशवाद से बहुत भिन्न नहीं थे। विदेशी शक्तियां चीनी सरकार के साथ विद्वेषपूर्ण रवैया अपनाने लगीं। 1858 में विदेशी प्रतिनिधियों को पिकिंग ले जाने के मार्ग के संबंध में हुई गलतफहमी के कारण ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेना राजधानी की ओर बढ़ी। सम्राट भागकर मंचूरिया चला गया। 1860 में इस युद्ध की समाप्ति के बाद चीन के साथ कई संधियां हुईं जिसके कारण पश्चिमी देश चीन में अन्दर तक प्रविष्ट हो गए। अफीम व्यापार को कानूनी बना दिया गया और इस पर कर लगाया गया। मंजूरी प्राप्त व्यापारिक केंद्रों की सूची में 11 और बन्दरगाह जोड़ दिए गए और विदेशियों को चीन के सभी हिस्सों में यात्रा करने का अधिकार दे दिया गया।

इन संधियों के बाद पश्चिमी ताकतों ने यह महसूस किया कि चिंग शासन को समाप्त कर ही वे लम्बे समय तक अपनी रियायतों को कायम रख सकते हैं। 1864 के बाद चिंग दरबार में 'पुनरूत्थान के स्पष्ट लक्षण' दिखाई देने लगे। वहां आत्मदृढ़ीकरण आंदोलन की शुरुआत की जिसमें पश्चिमी सैनिक और प्रौद्योगिकी के तरीकों का इस्तेमाल किया जाने लगा। राज्य की ताकत विधवा महारानी जू सी के पास थी जो अवयस्क सम्राट तुंग चिह के बदले में शासन चला रही थी। उसने 11 वर्षों तक शासन चलाया। 1862–74 के बीच सम्राट तुंग-ची एक कमजोर शासक सिद्ध हुआ। इस अवधि में आधुनिक जहाजरानी, रेलवे, खनन ओर टेलीग्राफ व्यवस्था की शुरुआत हुई। कुछ कपड़े के मिल, माचिस की कम्पनियां और लोहे के कारखाने भी स्थापित किए गए। निश्चित रूप से इनमें से अधिकांश की स्थापना विदेशी सहायता से हुई थी। पिकिंग में ब्रिटिश मंत्री और सीमा शुल्क के महानिरीक्षक राबर्ट हर्ट प्रमुख अधिकारी थे (1807 के बाद चीनी सीमा शुल्क सेवा के उच्चस्थ पदों पर विदेशियों की नियुक्ति हुई और महानिरीक्षक अंग्रेज होता था)। हालांकि आधुनिकीकरण के ये प्रयास काफी हद तक सतही थे और पश्चिमी राजनैतिक संस्थाएं नहीं अपनाई गईं। ये सभी प्रयत्न अंततः लड़खड़ाते हुए मंचु शासन को नहीं बचा सके।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में चीन का प्रभाव क्षेत्रों में विभाजन शुरु हो गया। पुराने विदेशी राष्ट्रों के अलावा जर्मनी और जापान भी चीन से रियायत प्राप्त करने की होड़ में शामिल हो गए। 1860 में चीन के एक बड़े हिस्से पर रूस का कब्जा होने के बाद ही यह सब शुरु हुआ। रूस ने मंचुरिया के चारो ओर अपना कब्जा जमा लिया और कोरिया के उत्तर में समस्त एशियाई समुद्र तट पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। कूटनीतिक और सैनिक तरीके अपनाकर फ्रांस ने स्याम (थाइलैंड) को छोड़कर पूरे इंडो-चीन (वियतनाम और कम्बोडिया) पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। चीन के दक्षिण प्रांत यूनान में ब्रिटिश अन्वेषक की हत्या के बाद ब्रिटन ने चीन से ऊपरी बर्मा पर अपने आधिपत्य की मांग की। 1886 में चीन ने उसकी यह मांग स्वीकार कर ली। जापानियों ने 1881 में रीयुकु द्वीप समूह (पूर्वी चीन समुद्र में) पर आधिपत्य की मांग की। 1887 में पुर्तगालियों ने मकाओ पर नियंत्रण स्थापित कर लिया जिसके लिए वे 300 वर्षों से प्रयत्नशील थे। 1894-95 में चीन जापान युद्ध में चीन की हार के बाद पूरी दुनिया के सामने इसकी कमजोरी सामने आ गई। रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और जापान– इन पांच बड़ी शक्तियों ने अपने-अपने हितों के अनुसार चीन के प्रमुख भागों को अनेक प्रभाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया। इस प्रकार चीन बड़ी शक्तियों पर आर्थिक रूप से निर्भर हो गया।

23.3.2 लैटिन अमेरिका

लैटिन अमेरिका के साथ अलग प्रकार की ही घटना घटी। 19वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में उसने अपने को स्पेन और पुर्तगालियों के प्रत्यक्ष शासन से मुक्त किया। इस 'आजादी' के बाद उसका साम्राज्यवादी शोषण शुरु हो गया। इसकी भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि संयुक्त राज्य अमेरिका, जो कि हाल में आजाद हुआ था, के वर्चस्व का खतरा इसके ऊपर मंडराने लगा। यह क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका के नजदीक था। अमेरिकियों

ने यहां स्वाभाविक रूप से प्रत्यक्ष शासन को प्राथमिकता दी क्योंकि वे खुद उपनिवेशवाद को न्यायोचित नहीं ठहरा सकते थे। परंतु मोनरो सिद्धांत लागू किए जाने से यह तय हो गया कि कोई भी दूसरी पश्चिमी शक्ति इस इलाके में, जिसे अमेरिका का "पिछवाड़ा" कहते थे, नहीं जा सकती थी। 1823 में बने इस सिद्धांत में कहा गया था कि संयुक्त राज्य अमेरिका मध्य या दक्षिणी अमेरिका में किसी भी पुराने औपनिवेशिक शासन की स्थापना या विस्तार का विरोध करेगा। किसी भी यूरोपीय शक्ति को इस इलाके में अपना प्रभाव बढ़ाने नहीं दिया जाएगा।

आज के मध्य और दक्षिण अमेरिका में शामिल 20 देशों को हम लैटिन अमेरिका कहते हैं। जब इस क्षेत्र ने आजादी पाई तो वहां 9 संप्रभुता सम्पन्न राज्य थे। 1860 तक विभाजन के द्वारा बढ़कर यह संख्या 13 हो गई।

लैटिन अमेरिका प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न था। यहां विविध प्रकार के खनिज पाए जाते थे। आधे दक्षिण अमेरिका में ब्राजिल का क्षेत्र था और कभी-कभी इसे महाद्वीप के भीतर एक महाद्वीप कहा जाता था। वहां सोना, लोहा, फॉस्फेट, सीसा, प्लैटिनम, बॉक्साइट, जिंक, टिन, क्रोम, कोबाल्ट और तमाम प्रकार के रेडियोधर्मी खनिज पाए जाते थे। चिली में नाइट्रेट का उत्पादन होता था। इस खनिज का इंग्लैंड में 19वीं शताब्दी में लम्बे समय तक उपयोग कृषि की उपज बढ़ाने के लिए किया गया।

19वीं शताब्दी के दौरान लैटिन अमेरिका का विकास कैसे हुआ ? एडवर्ड मैक नालबर्न्स, फिलिप ली रैल्फ, रॉबर्ट इ लर्नर और स्टैंडिश मैकेम ने अपनी पुस्तक *वर्ल्ड सिविलाइजेशन*, दिल्ली 1991, भाग सी, में इसकी चर्चा की है। जैसा कि 19वीं शताब्दी में औद्योगिक दुनिया के सम्पर्क में आए सभी पिछड़े उपनिवेशों में हुआ वैसा ही लैटिन अमेरिका में भी हुआ और वहां प्रौद्योगिकी आधुनिकीकरण हुआ। बिजली, पानी से चलने वाले जहाज जैसी सुविधाएं उपलब्ध हुईं। टेलीग्राफ और रेलवे लाइनें बिछाई गईं जिससे बन्दरगाह और अन्दरूनी इलाके जुड़ गए। हालांकि इन रेलवे लाइनों से निर्यात को ही बढ़ावा मिल सका पर आंतरिक आवागमन व्यवस्था में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ।

कृषि पर साम्राज्यवाद के कई प्रभाव पड़े। खेती और चरागाह की जमीन पर रेलवे लाइनें बिछाई गईं। रेलवे निर्माण की लागत के लिए वित्त प्राप्त करने के लिए किसानों पर अधिक कर का बोझ डाला गया। किसान निर्यात करने के लिए ज्यादा और स्थानीय बाजार के लिए कम से कम खाद्य सामग्री का उत्पादन करने लगे। इस कारण अन्तरराष्ट्रीय बाजार में होने वाले उतार चढ़ाव का उन पर सीधा प्रभाव पड़ने लगा।

समय-समय पर लैटिन अमेरिका के देशों के विभिन्न उत्पादों को अन्तरराष्ट्रीय बाजार में प्रसिद्धि मिली। सबसे पहले ब्राजिल के उत्पादों का ही उदाहरण लें। 1500 ई. में पुर्तगालियों ने ब्राजिल में पाई जाने वाली लाल लकड़ी की 'खोज' की जिसका उपयोग कपड़ा रगांई में किया जाता था। इसकी खूब मांग थी। एक शताब्दी बाद 1600-1700 ई. में ब्राजील ने पूरे यूरोप को चीनी की आपूर्ति की। सूडान, गिनी, अफ्रीका के पश्चिमी तट यहां तक कि अंगोला के दास श्रमिकों की सहायता से बड़ी मात्रा में गन्ना उपजाया गया जिसके कारण वहां की जमीन की ऊर्वरता में भी कमी आई। अन्ततः वेस्ट इंडिज इस प्रतिस्पर्धा में सामने आया और इस प्रकार ब्राजिल में चीनी का युग समाप्त हो गया। परंतु इससे ब्राजिल का आर्थिक महत्व कम नही हुआ। पूरी 18वीं शताब्दी में ब्राजिल ने पूरी दुनिया को सबसे ज्यादा सोना उपलब्ध कराया। यह कहा जाता है कि 1762 में जब पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन भूकम्प से नष्ट हो गई थी तो ब्राजिल से इसके पुनर्निर्माण को वित्त प्रदान करने के लिए डेढ़ टन सोना भेजा गया था। सोने के अलावा लोहा, फॉस्फेट, सीसा, प्लेटिनम और अन्य खनिज पदार्थों का भी निर्यात होता रहा। एक समय ऐसा आया जब अन्य सभी लैटिन अमेरिका देशों की तरह ब्राजिल की अर्थव्यवस्था भी बड़े ही नाजुक स्थिति में थी क्योंकि यह पूरी तरह एक या दो खनिज पदार्थों के निर्यात पर ही निर्भर थी। इन वस्तुओं का निर्यात अन्तरराष्ट्रीय बाजार के लिए होता था जो बड़ा ही अनियमित था और एक बार अन्तरराष्ट्रीय दामों के गिरने से देश की पूरी अर्थव्यवस्था को खतरा था।

1858 ओर 1868 के बीच कर्लिफोनिया और आस्ट्रेलिया के गेहूं बाजारों के बंद हो जाने के कारण चिली से गेहूं के निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसके कारण चिली में व्यापारियों को दिवालियापन का सामना करना पड़ा।

व्यवहार में लगभग सभी लैटिन अमेरिकी देशों में स्थानीय आर्थिक शक्तिशाली समूह थे जिन्होंने साम्राज्यवादी ताकतों के साथ गठजोड़ किया हुआ था। आन्द्रे गुंडर फ्रैंक ने प्रमाण देकर यह बताया है कि 1929 की मंदी तक चिली की अर्थव्यवस्था पर तीन समूहों का वर्चस्व था। उत्तर में खनन निर्यातकों, दक्षिण में कृषि और पशुधन निर्यातकों और सैन्टिगो तथा वैल्पारसो अर्थात केंद्र में स्थित बड़े आयात प्रतिष्ठानों (जो कि वास्तविक तौर पर पूरे देश में क्रियाशील थे) का पूरी अर्थव्यवस्था पर कब्जा था। वे आराम की जिन्दगी व्यतीत करते थे और यूरोप के विशिष्ट वर्गों की जीवन शैली की नकल किया करते थे। इन तीनों समूहों के देशी उद्योगों के विकास में तनिक भी रूचि नहीं थी। वे मुक्त व्यापार के पक्ष में थे और आन्तरिक विकास के बजाए वे व्यापार को ज्यादा से ज्यादा बढाना चाहते थे। 1930 के दशक तक आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में उनका बोलबाला रहा। गुंडर फ्रैंक ने इन्हें 'नकली- पूंजीवादी बुर्जुआ वर्ग' कहा है जो अपने देश के आम लोगों का शोषण करते थे और साम्राज्यवादियों की नकल किया करते थे।

लैटिन अमेरिका में उदारवादी जनतंत्र की स्थापना न हो सकी। हालांकि कई क्रांतियां हुई किंतु अधिकांश क्षेत्रों में तानाशाही स्थापित हो गई। इन क्रांतियों में अभूतपूर्व खून-खराबा हुआ। यह बड़ी ही विचित्र बात है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में रहने के बावजूद वहां पश्चिमी प्रजातंत्र के सिद्धांतों को नहीं अपनाया जा सका। यहां एक सवाल अक्सर उठता है कि क्या संयुक्त राज्य अमेरिका ने इन क्षेत्रों में प्रजातंत्र के विकास में बाधा पहुंचाई है ताकि उसके साम्राज्यवादी हितों को कोई हानि न पहुंचे।

ऐसा नहीं है कि लैटिन अमेरिका के देश स्वतंत्र रूप से आर्थिक विकास नहीं कर सकते थे। पेरेगुए का ही उदाहरण लें; दक्षिण अमेरिका के लगभग केंद्र में स्थित यह देश उत्तर में ब्राजिल से और दक्षिण में अर्जेनटिना से घिरा हुआ है। 1819 और 1870 के बीच लगातार तीन तानाशाहों के शासन काल में पेरेगुए ने खाद्यान्न में आत्म निर्भरता प्राप्त कर ली। बड़ी भू सम्पत्तियों पर कब्जा करके उन्हें छोटे किसानों को दे दिया गया। रेलवे और टेलीग्राफ की लाइनें बिछाई गईं और आधुनिक वाष्पचालित नौ सेना की स्थापना हुई। सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें विदेश से कोई ऋण नहीं लिया गया परंतु पेरिगुए की इस बढ़ती समृद्धि को देखकर अर्जेनटिना और ब्राजिल को इर्ष्या हुई और अन्तत: उरूगुए की सहायता से उन्होंने पेरिगुए पर आक्रमण कर लिया और यह युद्ध छ: वर्षो (1864-1870) तक चला। इस युद्ध के अंत तक पेरिगुए की 90 % पुरुष जनसंख्या का विध्वंस हो गया। अगले पांच वर्षों तक वहां सैनिक शासन रहा और इस दौरान पेरिगुए की सारी लोक संस्थाएं नष्ट कर दी गईं। विदेशी पूंजी का आयात किया गया और बड़ी भू सम्पत्तियां फिर से उभर आईं। बर्न्स, रैल्फ, लरनर, और नेखेम के अनुसार "पेरिगुए लैटिन अमेरिका का ऐसा देश था जो 20वीं शताब्दी में प्रविष्ट होते समय पिछड़ा और गरीब बन गया था।"

23.3.3 औटोमन साम्राज्यवाद

औटोमन साम्राज्य में एनोटोलिया (वर्तमान तुर्की), बालकन राज्य (ग्रीस, सर्बिया, बोसनिया, हर्जेगोविना, मोल्डािविया, बलाशिया, अल्बानिया और रूमानिया), मिस्त्र और सीरिया शामिल थे। आमतौर पर यह माना जाता है कि 17वीं शताब्दी के बाद औटोमन साम्राज्य विघटन की ओर उन्मुख था परंतु पामुक के मतानुसार यह आर्थिक से ज्यादा राजनैतिक विघटन प्रतीत होता है परंतु औटोमन साम्राज्य में विविध क्षेत्र शामिल थे और इनके बारे में कोई सामान्य धारणा नहीं बनाई जा सकती है। 16 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 17वीं शताब्दी के दौरान खासतौर पर अनाटोलिया में जहां हस्तशिल्प उत्पादन में गिरावट आई वहीं 18वीं शताब्दी के दौरान बालकन राज्यों, पश्चिमी अनाटोलिया और सीरिया से यूरोप को हुए कृषि निर्यात की मात्रा में वृद्धि हुई। नेपोलियन युद्धों के बाद यूरोप के साथ व्यापार तेजी से बढ़ा। परंतु यहां भी पूरा साम्राज्य बढ़ते हुए यूरोपीय व्यापार में शामिल नहीं हो पाया। इसमें बालकन राज्य और मिस्त्र ही भागीदार बन पाए। अनाटोलिया की भागीदारी अपेक्षकृत कम थी। इसके परिणामास्वरूप इस क्षेत्र में कृषि का उत्पादन मुख्य रूप से छोटे किसान करते रहे जबकि बालकन राज्यों और मिस्त्र में शक्तिशाली भूमिपति समूह उभर रहे थे। उनकी बड़ी भू सम्पत्तियां थीं और वे यूरोपीय बाजारों की कृषीय मांगों को पूरा करने की दिशा में प्रयत्नशील थे। 19वीं शताब्दी के दौरान औटोमन नौकरशाही की केंद्रीकृत राज्य संरचना के साथ यही भूमि से संबंधित हित टकराए।

पहले औटोमन साम्राज्य और ब्रिटेन के बीच 1838 में और बाद में अन्य यूरोपीय देशों के साथ मुक्त व्यापार संधि पर हस्ताक्षर हुए। यह संधि 1842 और 44 के बीच चीन में हुई संधियों की याद दिलाती है। इसके

बाद औटोमन अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार की हिस्सेदारी संभव हुई जो 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तेजी से बढ़ा। इसके कारण विश्व बाजार के लिए कृषीय उत्पाद में वृद्धि हुई और लगभग इसके साथ-साथ पश्चिमी वस्तुओं की उपलब्धता से उत्पन्न हुई प्रतिस्पर्धा के कारण हस्तशिल्प खासतौर पर कपड़े के उत्पादन में गिरावट आई। हालांकि ये प्रवृत्तियां तटीय क्षेत्रों में देखने को मिलीं। यहां तक कि 1870 के मध्य के दशक में कृषि उत्पादन का 12 % से 15 % तक ही निर्यात किया जाता था।

1850 के दशक में औटोमन राज्य ने यूरोपीय वित्तीय बाजारों से प्रतिकूल शर्तों पर भारी ऋण लेना शुरू किया। यूरोप से आए इस धन का ज्यादातर उपयोग विदेशों से सैनिक अस्त्र खरीदने के लिए किया गया। कुछ उपभोक्ता वस्तुएं भी खरीदी गईं। 1850 के दशक से खासतौर पर तटीय क्षेत्रों में रेलवे लाइन बिछाने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों ने सीधे तौर पर पूंजी लगाई। 1863 में कागज मुद्रित करने का एकाधिकार विदेशी स्वामित्व वाले आटोमन बैंकों को सौंप दिया गया और इस प्रकार औटोमन साम्राज्य स्वर्ण मानक व्यवस्था से जुड़ गया। 1866 में विदेशियों को औटोमन क्षेत्रों में कृषीय भूमि खरीदने की अनुमति दे दी गई। इसलिए जहां 1830 और 1870 के दशकों के बीच *तंजिमात* के तहत राजनैतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई उसी के साथ-साथ आर्थिक 'आधुनिकीकरण' या औटोमन साम्राज्य को विश्व बाजार के साथ जोड़ने तथा विदेशी व्यापार और निवेश के लिए आटोमन अर्थव्यवस्था का द्वार खोल दिया गया। राजनैतिक प्रक्रिया से आर्थिक विस्तार में मदद मिली। 1873 में मंदी का दौर आया जिसने यूरोपीय वित्तीय बाजारों के साथ औटोमन साम्राज्य को भी प्रभावित किया। बाहर से पूंजी और वित्त आना बंद हो गया। इसी समय 1873-74 में मध्य एनाटोलिया में भीषण अकाल पड़ा। 1877-78 के बीच हुए युद्ध में रूस से हार जाने के बाद औटोमन साम्राज्य को अपने काफी इलाकों से हाथ धोना पड़ा। इसके कारण वित्तीय संकट उत्पन्न हुआ। औटोमन साम्राज्यवाद बाहर से लिए गए ऋण की अदायगी करने में अपने को असमर्थ पाने लगा। मंदी के कारण औटोमन साम्राज्यवाद का विदेशी व्यापार भी घटा। 1896 में विश्व बाजार में अमेरिकी गेहूं आने के बाद अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर गेहूं की कीमतें काफी कम हो गई। अब औटोमन भूमिपतियों के सामने केवल अपने उत्पाद के निर्यात की ही समस्या नहीं थी बल्कि अमेरिकी गेहूं आयात किए जाने से आन्तरिक प्रतिस्पर्धा का भी खतरा पैदा हो गया था। निर्यात से होने वाली आय में कमी होने से देश में हस्तशिल्प के उत्पादन में भी कमी आई क्योंकि इसके खरीददार कम हो गए। विश्व स्तर पर कीमतों में आई कमी के कारण अब औटोमन साम्राज्य को अपने ऋण की अदायगी के लिए अधिक मुद्रा का भुगतान करना था। इस भुगतान के लिए मुद्रा उधार लेनी थी। इससे एक आन्तरिक राजकोषीय संकट पैदा हो गया और यूरोपीय पूंजीवाद के लिए औटोमन अर्थव्यवस्था में घुसपैठ करना आसान हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक, साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में ब्रिटेन लाभप्रद स्थिति में नहीं रह गया और ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, रूस और यहां तक कि इटली के बीच टकराव शुरू हुआ। औटोमन साम्राज्य में भी इनके बीच टकराव हुआ। प्रथम विश्व युद्ध तक औटोमन साम्राज्य के विदेशी व्यापार में ब्रिटिश अंश सबसे ज़्यादा था परंतु 1870 के दशक के बाद औटोमन साम्राज्य में ब्रिटिश निवेश लगभग समाप्त हो गया। औटोमन साम्राज्य ने जर्मनी और फ्रांस को रेल लाइन बिछाने जैसी रियायतें सौंप दीं। इससे यह साम्राज्य फ्रांसीसी और जर्मन प्रभाव क्षेत्र में विभाजित हो गया। रेलवे लाइनों की स्थापना और यूरोप में आर्थिक मंदी का दौर समाप्त होने पर 1890 के दशक के मध्य में विदेशी व्यापार तेजी से बैढ़ा। सेना के बढ़ते खर्च की पूर्ति आंतरिक राजस्व से पूरी न हो सकने के कारण इस्तानाबुल शासन यूरोपीय शक्तियों से बड़ी रकम उधार ले रहा था। इससे साम्राज्यवादी ताकतें औटोमन साम्राज्य पर अपना नियंत्रण आसानी से स्थापित कर सकीं। औटोमन साम्राज्य से यूरोप को काफी मात्रा में धन हस्तांरित हुआ। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में औटोमन साम्राज्य के कई हिस्से मैनचेस्टर, हैमबर्ग और मारसेल्स के प्रभाव क्षेत्र बन गए। औटोमन साम्राज्य की आंतरिक कड़ियां कमजोर पड़ती जा रही थीं।

23.3.4 इरान

फारस (तब इरान का यही नाम था) और औटोमन साम्राज्य की स्थिति लगभग एक सी थी। मध्यकालीन युग में औटोमन और फारस साम्राज्य प्रमुख मुस्लिम साम्राज्य थे। 16वीं शताब्दी में औटोमन शासकों के समय इरान के शाहों ने पूर्वी बाजारों में यूरोपीय व्यापारियों का स्वागत किया क्योंकि इससे उनके व्यापार में वृद्धि हुई। पहले पहल यूरोपीय शक्तियों और शासन के बीच समान शर्तों पर समझौते हुए। परंतु जैसे-जैसे

पश्चिम की सैन्य शक्ति मजबूत होती चली गई वैसे-वैसे विदेशी वर्चस्व सामने आया। इरानी शासक अपने क्षेत्रों में यूरोपीय सैनिक और नागरिक प्रौद्योगिकी को शामिल करना चाहते थे परंतु यह प्रौद्योगिकी काफी महंगी थी। इसके लिए उन्हें विदेशी बैंकों से ऋण लेना पड़ा। धीरे-धीरे इरानी सरकार ब्रिटिश और रूसी बैंकों की कर्जदार हो गई। विदेशियों को सीमा शुल्क से संबंधित कार्य सौंपा गया और उन्हें इरान के वित्त मंत्रालय में परामर्शदाता बनाया गया।

ब्रिटिश और रूस के आपसी वैमनस्य और अविश्वास के कारण चीन के ही समान इरान भी विदेशियों के कब्जे से बचा रहा। इसका फायदा उठाकर इरान के शासक एक साम्राज्यवादी शक्ति के खिलाफ दूसरी साम्राज्यवादी शक्ति को किसी न किसी बहाने लड़ाते रहते थे। लेकिन प्रसिद्ध इतिहासकार ह्यूज सेटोन-वास्टन का मानना है कि "आंग्ल-रूसी शक्ति संतुलन के कारण इरान सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अगतिशील बना रहा।"

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में पश्चिम के पूंजीवादी इरान में बड़ी संख्या में दाखिल होने लगे। इरानियों ने भी इनका विरोध किया। स्थानीय विरोध के कारण 1892 में नसीरूद्दिन शाह ने ब्रिटिश कम्पनी को तम्बाकू की तराई और बिक्री के लिए दिया गया एकाधिकार वापस ले लिया। इसके बावजूद इरान में आयात की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई और इससे इरान के व्यापारियों को काफी नुकसान पहुंचा।

बोध प्रश्न 2

1) चीन में अर्ध उपनिवेशवाद की व्यवस्था पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) लैटिन अमेरिका में अर्ध औपनिवेशिक शासन अन्य देशों से किस प्रकार अलग था ?

....

....

....

....

....

....

23.4 सारांश

क्या अप्रत्यक्ष शासन अपने शासित क्षेत्रों का आधुनिकीकरण कर सका ? इस मुद्दे पर काफी बहस हो चुकी है और यह अभी भी विवादास्पद बना हुआ है। पॉल बारन तथा ऐंद्रे गुंडर का मानना था कि पूंजीवाद स्वाभाविक रूप से शोषण करने वाली व्यवस्था है। अत: उपनिवेशवाद विकास और आधुनिकीकरण का विरोधी होता है। उपनिवेशों में हुए विकास को गुंडर ने "अल्पविकास का विकास" कहा। लैटिन अमेरिका के संदर्भ में यह निश्चित रूप से सही है जहां प्रजातंत्र और स्वतंत्र पूंजीवादी विकास को गहरा धक्का पहुंचा। इरान के बारे में भी यही सच है। गुंडर का मानना है कि पूंजीवादी ढांचे को तोड़ने के बाद ही कोई देश अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत बना सकता है। चीन की सफलता के पीछे देशी साम्यवादी आंदोलन की ताकत

थी जो विश्व पूंजीवाद की चंगुल से अपने को मुक्त कर सका। औटोमन साम्राज्य के हिस्से सामाजवादी या पूंजीवादी प्रभाव में थे। यह कहना सही नहीं है कि किसी उपनिवेश के लिए पूर्ण उपनिवेशवाद की अपेक्षा अर्ध उपनिवेशवाद बेहतर था। ऐसा प्रतीत होता है कि अर्ध उपनिवेशवाद में शोषकों के शोषण के खिलाफ देशी सरकार के प्रतिरोध की गुंजाइश रहती है। प्रत्यक्ष शासन में किसी देशी सरकार के न होने से यह गुंजाइश नहीं रहती। इसलिए 1860 और 1908 के बीच औटोमन राज्य ने आयात शुल्क लगाने ओर अपने देशी उत्पादों को संरक्षण प्रादान करने की कोशिश की। अन्य मामलों में अर्ध उपनिवेशवाद और पूर्ण उपनिवेशवाद के परिणामों में कोई खास अंतर नहीं होता। अर्ध उपनिवेशवाद में देशी समूह साम्राज्यवादी ताकतों से मिले होते हैं। अत: प्रत्यक्ष शासन की अपेक्षा अप्रत्यक्ष शासन में हो रहे आर्थिक शोषण को पहचानना बहुत ही मुश्किल होता है। उपर्युक्त वर्णित सभी क्षेत्रों में बीसवीं सदी के दौरान साम्राज्यवाद का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा। कहीं तो अर्थव्यवस्था का ग्रामीणकरण हुआ और कहीं औद्योगिक विकास अपेक्षाकृत धीमी गति से हुआ, कमजोर प्रजातांत्रिक ढांचा विकसित हुआ जिसके कारण किसी न किसी रूप में कट्टरपंथ का उदय हुआ।

23.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 23.2

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 23.3.1

2) देखिए उपभाग 23.3.2

इकाई 24 साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- साम्राज्यवाद के विभिन्न सिद्धांतों के बारे में जान पाएंगे;
- कई यूरोपीय शक्तियों के उदय की जानकारी हासिल कर सकेंगे जो पृथ्वी के बंटवारे में अपना भी हिस्सा चाहते थे; और
- प्रथम विश्व युद्ध के पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

अभी तक आप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दुनिया के कोने-कोने में उदित होने वाले उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की जानकारी हासिल कर रहे थे। इस इकाई में अब हम कुछ सैद्धांतिक पक्षों की चर्चा करेंगे और यह भी जानने की कोशिश करेंगे कि इन अवधारणाओं के बारे में विद्वान क्या सोचते हैं। उनके द्वारा बनाए गए विभिन्न सिद्धांतों की चर्चा की जाएगी। इसके साथ ही साथ इस इकाई में हम यूरोप की विभिन्न शक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्धा और विश्व मंच पर सर्वोच्चता हासिल करने के लिए उनके द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों की भी जानकारी हासिल करेंगे। उस समय तक कोई भी ऐसी शक्ति नहीं थी जिसे महाशक्ति का दर्जा दिया जा सके। इसलिए देशों ने संधियों के जरिए अपना अलग-अलग गुट बनाया जिसके परिणामस्वरूप अन्तत: 1914 में विश्व युद्ध छिड़ गया।

24.2 साम्राज्यवाद के सिद्धांत

जिस समय ये प्रतिस्पर्धाएं चल रही थीं उस समय अर्थशास्त्री और इतिहासकार साम्राज्यवाद की परिघटना को समझने का प्रयत्न कर रहे थे। उस समय इस शताब्दी के आरंभ में सभी प्रमुख बुद्धिजीवियों पर मार्क्सवादी सिद्धांत का प्रभाव था इसलिए वे स्वाभाविक रूप से साम्राज्यवाद के विकास की आर्थिक व्याख्या ढूंढ रहे थे। कार्ल मार्क्स ने स्वयं साम्राज्यवाद का सिद्धांत विकसित नहीं किया परंतु पूंजीवादी उत्पादन के अपने तरीके के विश्लेषण में उन्होंने इसकी ओर पर्याप्त इशारा किया है। अपनी पुस्तक **कैपिटल** में मार्क्स ने बताया है कि पूंजीवादी उत्पादन पद्धति मजदूरों के शोषण पर आधारित है। मजदूरों से प्राप्त अधिशेष से बनी वस्तुओं के लिए बाजार की खोज की गई। जे.ए. हॉब्सन ने अपनी पुस्तक **इम्पीरियलिज्म** (1902) में पहली बार इस विषय को विस्तार से सामने रखा है। हॉब्सन एक अंग्रेज अर्थशास्त्री था जो शुद्ध तौर पर मार्क्सवादी

नहीं था। इंग्लैंड की राजनीति में वह उस विचारधारा का अनुसरण करता था जहां उदारवादी राजनीति लेबर में सम्मिश्रित हो जाती थी। बाद में साम्राज्यवादी संबंधी उसका विचार लेबर पार्टी का आधिकारिक मत बन गया। उसने दिखाया कि जिन देशों में पूंजीवाद का विकास हुआ था वहां किस प्रकार राष्ट्रीय आय का असमान वितरण हुआ था। कम आय वाले लोगों की संख्या बहुत ज्यादा थी और इसका कारण यह था कि उनमें धन का समान वितरण नहीं हो रहा था। यदि धन का समान वितरण होता तो संख्या इतनी ज्यादा न होती (यदि राष्ट्रीय आय राष्ट्र के जनता के बीच समान रूप से वितरित कर दी जाती) पूंजीवादियों ने बहुत जल्द ही यह महसूस किया कि कम आय के कारण वे अपना माल अपने ही देश में नहीं बेच सकते थे। इसके बाद वे अन्य यूरोपीय देशों में बाजार ढूंढने लगे। परंतु वे देश भी औद्योगीकृत हो गए और वहां उन्हें प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप वे उन देशों की ओर उन्मुख होंगे जिनके पास अपना कोई उद्योग नहीं था और जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते थे। हॉब्सन के अनुसार साम्राज्यवाद के विस्तार के पीछे पूंजीवादियों द्वारा ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना प्रेरक शक्ति थी। निवेश और पुनर्निवेश करने के बाद पूंजीपतियों ने पाया कि अपने ही देश में वे मुनाफा नहीं कमा पाएंगे इसलिए वे मजबूर होकर दूसरी जगह निवेश करने का प्रयत्न करेंगे। अन्त में निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए हॉब्सन ने कहा कि साम्राज्यवाद को जन्म देना पूंजीवाद की प्रकृति है।

यह पाया गया कि साम्राज्यवाद विकसित पूंजीवाद की एक विशेषता थी। विकसित या बाद के पूंजीवाद की परिघटना के अनेक विश्लेषण किए गए। कुछ विश्लेषकों ने दावा किया कि यह पूंजीवाद का अन्तिम और सर्वाधिक पतनशील चरण है। साम्राज्यवाद के युग के आगमन के साथ पूंजीवाद की प्रगतिशील भूमिका समाप्त हो गई थी। विएना के एक बैंकर और पेशेवर अर्थशास्त्री आर. हिल्फर डिंग ने साम्राज्यवाद का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत स्थापित किया। उनकी पुस्तक **दास फाइनेंज कैपिटल** (वित्त पूंजी) 1910 में प्रकाशित हुई। इस समय तक औद्योगिक उत्पादन के मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी ब्रिटेन को पीछे छोड़ चुके थे। हिल्फर डिंग ने पाया कि इन दोनों देशों में औद्योगिक पूंजी को फैलाने और उस पर नियंत्रण स्थापित करने में बैंक (जो वित्त पूंजी का प्रतिनिधित्व करते थे) अग्रणी भूमिका अदा कर रहे हैं। हालांकि ब्रिटिश बैंक इस प्रकार की कोई भूमिका नहीं अदा कर रहे थे। परंतु पूरे औद्योगिक विश्व में वित्त और औद्योगिक पूंजीवाद के आपस में मिलने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। इससे एकाधिकार की परिस्थितियां बनीं। हिल्फर डिंग के अनुसार एकाधिकार पूंजीवादियों ने साम्राज्यवादी विस्तार को प्राथमिकता दी क्योंकि इससे उन्हें उन नए क्षेत्रों पर नियंत्रण का अधिकार मिलता जहां से वे कच्चा माल ला सकते थे। सुरक्षित पूंजी निवेश कर सकते थे और अपने उत्पादन के लिए बाजार सुनिश्चित कर सकते थे।

हिल्फर डिंग के अनुसार वित्त पूंजी के लिए एक मजबूत राज्य की आवश्यकता होती है जो विस्तार की नीति अपना सके और नए उपनिवेश हासिल कर सके। इसके लिए मुक्त व्यापार के सिद्धांत को छोड़ना जरूरी था जिसकी शुरुआत ब्रिटेन ने की थी। धीरे-धीरे विभिन्न राष्ट्रों के बीच एकाधिकार को लेकर टकराव शुरु हुआ। हालांकि इन राष्ट्रों के बीच एकाधिकारों को लेकर संधि और समझौता हो सकता था तथा इसके आधार पर वे सारी दुनिया को आपस में बांट सकते थे। परंतु इसे अन्तिम समझौता नहीं समझना चाहिए क्योंकि यह अस्थाई होगा और मौका मिलते ही कोई राष्ट्र अपने एकाधिकार क्षेत्र को बढ़ाने की कोशिश कर सकता था। इसी मानोवृत्ति के कारण बड़े राष्ट्र राज्यों की आर्थिक प्रतिस्पर्धा ने अन्ततः युद्ध को जन्म दिया। हालांकि यह इस कहानी का नकारात्मक पक्ष है। इसके अलावा हिल्फर डिंग ने एकाधिकार पूंजी की सकारात्मक भूमिका का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार :

> नए क्षेत्रों में पुराने सामाजिक संबंधों को पूरी तरह बदल दिया गया। इन राष्ट्रों में हजारों सालों से चली आ रही कृषि प्रथा को भी परिवर्तित किया गया ....
> ... स्वयं पूंजीवाद ने धीरे-धीरे शोषित जनता को उनकी अपनी स्वतंत्रता के हथियार दिए और तरीके बताए।

इस प्रकार की समझ स्पष्ट रूप से मार्क्स के पूंजीवाद की पुनरुत्पादन भूमिका की गलत समझ से पैदा हुई थी। भारत के दादा भाई नौरोजी और लैटिन अमेरिका के आन्द्रे गुंडर फ्रैंक ने उपनिवेशों पर साम्राज्यवाद के नकारात्मक प्रभाव का अध्ययन करते हुए इस समझ का जमकर विरोध किया।

रोजा लक्जेमबर्ग साम्राज्यवाद के एक बड़ी सिद्धांतकार थीं। उन्होंने 1913 में **एक्युमूलेशन ऑफ कैपिटल**

नामक एक पुस्तक लिखी थी। उन्होंने उस प्रक्रिया का उल्लेख किया था जिसके तहत विकसित शक्तियों ने अभी तक विश्व के बचे हुए गैर पूंजीवादी बाजारों पर नियंत्रण स्थापित किया और उन्हें और भी गरीब बना दिया । उन्होंने बताया कि अल्प विकसित गैर यूरोपीय देशों में पूंजी के निर्यात से स्थानीय औद्योगिक विकास नहीं हो पाता। पूरी दुनिया में एक कृत्रिम श्रम विभाजन हो जाता था जिसमें अल्प विकसित देश हमेशा के लिए प्राथमिक उत्पादक बनने को बाध्य होते थे। रोजा लक्जेमबर्ग हिल्फर डिंग की इस आशंका से सहमत थीं कि राष्ट्रवादी आर्थिक प्रतिस्पर्धाओं से युद्ध होना अवश्यंभावी था।

इस विचार को रूसी बॉलशेविक पार्टी के नेता वी.आई.लेनिन ने बड़ी ही स्पष्टता से सामने रखा। उन्होंने ज्यूरिख में **इम्पेरियलिज्म द हाइएस्ट स्टेज ऑफ कैपिटलिज्म** की रचना की। हॉब्सन के ही समान उन्होंने पूंजी के निर्यात के कारणों की व्याख्या की:

> जबतक पूंजीवाद पूंजीवाद रहता है तब तक अधिशेष पूंजी का उपयोग कभी भी जनता का जीवन स्तर उठाने के लिए नहीं किया जा सकेगा क्योंकि इससे पूंजीवादियों के मुनाफे में कमी होगी; इसके बदले इसका उपयोग बाहर पूंजी भेजकर मुनाफा बढ़ाने के लिए किया जाएगा। खासतौर पर यह पूंजी निर्यात पिछड़े देशों में होगा। पूंजी के निर्यात की जरूरत इसलिए पड़ी क्योंकि कुछ देशों में पूंजीवाद अपरिपक्व हो गया था और कृषि के पिछड़ेपन और जनता की गरीबी के कारण पूंजी के लाभदायक निवेश के अवसर उपलब्ध नहीं थे।

लेनिन की पुस्तक में यह प्रतिपादित किया गया है कि दुनिया के बंटवारे के लिए तथा उपनिवेशों, प्रभाव क्षेत्रों तथा वित्त पूंजी के वितरण और पुनर्वितरण के लिए ही प्रथम विश्व युद्ध लड़ा गया था और यह एक साम्राज्यवादी युद्ध था।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में साम्राज्यवाद के सिद्धांतकार इन्हीं आधारभूत मुद्दों पर बल दे रहे थे। हालांकि अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिए अल्प विकसित देशों को पूंजी के निर्यात की अवधारणा को उस समय चुनौती दी गई जिस समय यह पाया गया कि वास्तविकता में औद्योगिक देश अपनी अधिकांश अधिशेष पूंजी अल्प विकसित दुनिया को नहीं बल्कि अधिक औद्योगिक क्षेत्रों को निर्यात कर रहे थे। ब्रिटेन पर यह बात खासतौर पर लागू होती थी। 1914 के पहले ब्रिटिश पूंजी निर्यात का 20 % ही भारत सहित सभी ब्रिटिश उपनिवेशों में निवेशित किया गया था। प्रमुख निवेश खासतौर पर यूरोप और उत्तरी अमेरिका के अन्य पूंजीवादी देशों में किया गया था। 1914 के पहले और पुन: दो विश्व युद्धों के बीच का कम से कम तीन चौथाई हिस्सा सरकारी गारंटी प्राप्त सार्वजनिक क्षेत्रों को दे दिया गया। इसके अलावा बढ़ती एकाधिकार प्रवृत्तियों के बारे में हिल्फर डिंग का मत जर्मनी पर तो सटीक बैठा परंतु ब्रिटेन में 1920 के दशक से पहले एकाधिकार प्रतिष्ठानों के उदय की गति बहुत धीमी थी और फिर कम से कम 1914 तक दुनिया में अधिकांश विदेशी पूंजी ब्रिटेन की थी और अन्तत: यह देखा गया कि उपनिवेशों का अनौद्योगीकरण दीर्घावधि में साम्राज्यवादी ताकतों के लिए अलाभकारी सिद्ध हुआ। औपनिवेशिक जनता की गरीबी के कारण ब्रिटिश उद्योगों को अपना उत्पादन कम करना पड़ा जिसके कारण ब्रिटेन में बेरोजगारी तेजी से बढ़ी। वस्तुत: उत्तरी अमेरिका में यूरोपीय बस्तियों और यूरोपीय देशों को किए गए निर्यात से ज्यादा मुनाफा हुआ जहां ब्रिटेन के माल के लिए बाजार फैल रहा था।

1929 की विकट मंदी के बाद साम्राज्यवाद संबंधी लेखन में एक नई प्रवृत्ति उभरी। 1931 में जोसेफ स्कमपीटर की पुस्तक **इम्पेरियलिज्म ऐंड सोशल क्लासेज** प्रकाशित हुई। अपने आरंभिक वर्षों में स्कमपीटर जर्मनी में रहते थे और वहीं अपना लेखन कार्य किया करते थे। इसके बाद वे संयुक्त राज्य अमेरिका चले गए और वहां उन्होंने अपना लेखन कार्य अंग्रेजी में करना शुरु किया। वे जर्मनी के जुंकर वर्ग से बहुत प्रभावित थे। जुंकर एक सामंती भूमिपति का वर्ग था जिसने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जर्मनी के राजनैतिक और आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्होंने यह भी बताया कि ब्रिटेन द्वारा उत्तरी अमेरिका में साम्राज्य की स्थापना में सामंती कुलीनतंत्र का हाथ था। इसके आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि पूंजीवाद और साम्राज्यवाद दो अलग-अलग परिघटनाएं थी। उनके अनुसार साम्राज्यवाद का जन्म पूर्व-पंजीवादी सामाजिक और राजनैतिक ताकतों के हाथों हुआ था। यह एक तरह से

पीछे की ओर लौटना था। दूसरी ओर पूंजीवाद ने नए प्रयोग किए और विभिन्न तरीकों से उत्पादन के विभिन्न साधनों का विकास किया। पूंजीवाद का तर्क था कि वह मानव शक्ति का सकारात्मक उत्पादन कार्य में प्रयोग कर रहा था । दूसरी ओर युद्ध में मनुष्य की शक्ति का गैर उत्पादक प्रक्रियाओं के लिए प्रयोग किया गया। पूंजीवाद के लिए राज्य का विस्तार करना आवश्यक नहीं था; राज्य विस्तार किए बिना भी आर्थिक विकास प्राप्त किया जा सकता था।

तीस वर्षों बाद कैम्ब्रिज इतिहासकार जैक गैलेघर और आर.ई.रॉबिन्सन ने *अफ्रीका ऐंड द विक्टोरिएन्स* नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने इस धारणा का विरोध किया कि पूंजीवाद साम्राज्यवाद को जन्म देता है। उनके अनुसार साम्राज्यवाद यूरोपीय शक्तियों की राजनीति की देन था जो एशिया और अफ्रीका के देशों के लिए उनके द्वारा अपनाई गई आपसी अविश्वास की नीति में दिखाई देता था। कभी-कभी आपस में समझौता करके वे किसी क्षेत्र पर आधिपत्य न जमाकर उसे आपस में बांट लेने पर भी सहमत हो जाते थे जैसा कि उन्होंने चीन में किया था। यूरोपीय शक्तियां आपस में लड़ती झगड़ती रहती थीं और खाली स्थानों पर कब्जा जमाने के लिए इस प्रकार होड़ मचाया करती थीं ताकि कोई दूसरा प्रतिद्वंद्वी उस पर कब्जा न कर बैठे या उसकी स्थिति वहां मजबूत न हो सके (स्पष्ट है कि शीत युद्ध के अनुभव ने इन लेखकों को काफी प्रभावित किया था) । गैलेघर और रॉबिनसन ने बार-बार यह स्थापित करने की कोशिश की कि पूंजीवाद के आर्थिक कारण साम्राज्य निर्माण में किसी प्रकार की भूमिका अदा नहीं करते थे। उन्होंने तर्क दिया कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल में किसी भी समय कोई व्यापारी इसका सदस्य नहीं रहा। कुलीनतंत्र ने हमेशा इंग्लैंड पर राज्य किया और उनकी व्यापार में कोई रुचि नहीं थी। गैलेघर और रोबिनसन का मत निश्चित रूप से होशियारी से अपने तर्क को साबित करने का प्रयास था। ब्रिटिश मंत्रिमंडल में कभी कोई व्यापारी सदस्य नहीं था, यह कहकर वे कुछ भी साबित नहीं कर सके। व्यापारिक हित हमेशा अप्रत्यक्ष रूप से सक्रिय रहते थे और व्यापारिक दबाव हमेशा बना रहता जो विभिन्न गुटों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से किसी नीति को प्रभावित करते थे। इसके अलावा इस प्रकार के विश्लेषण में केवल साम्राज्यवाद की प्रक्रिया पर ध्यान दिया गया, उसके कारणों पर नहीं।

24.3 भू-मंडल पर आधिपत्य की होड़

अब हम यूरोप में बड़ी शक्तियों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्धाओं पर विचार करेंगे जिसकी परिणति अन्तत: प्रथम विश्व युद्ध में हुई। हम 1870 से लेकर 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने तक की अवधि पर विचार करने जा रहे हैं। यह यूरोप के इतिहास का एक महत्वपूर्ण दौर था। उस दौरान बिस्मार्क की कूटनीति सामने आई। इसके अलावा इस युग का खास महत्व इसलिए भी है क्योंकि इस समय प्रतिरक्षात्मक संधियों की एक अलग ढंग की व्यवस्था शुरु हुई जिसमें सभी यूरोपीय शक्तियां शामिल हुईं ताकि एक दूसरे को रोका जा सके और प्रत्यक्ष युद्ध से बचा जा सके।

1870 के फ्रांसीसी-प्रशा युद्ध में फ्रांस की हार और बाद में 1871 में फ्रैंकफर्ट शांति समझौते के बाद नई परिस्थितियां पैदा हुईं। फ्रैंकफर्ट की संधि के अन्तर्गत फ्रांस को हरजाने के तौर पर 200 मिलियन पाउंड अदा करना था और रकम दिए जाने तक 30,000 जर्मन सैनिकों को पेरिस में रहना था।

किसी ने यह सोचा भी नहीं था कि फ्रांस इस युद्ध में हार जाएगा। इस युद्ध के बाद बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी की प्रतिष्ठा काफी बढ़ गई थी। निश्चित रूप से अगले 20 वर्षों तक प्रशा की कूटनीति यूरोप की रणनीति पर हावी रही। अगाथा रैम के अनुसार बिस्मार्क ने "बड़ी यूरोपीय संधियों की व्यवस्था" की थी।

> "अन्तरराष्ट्रीय नियंत्रण और संतुलन की इस उल्लेखनीय व्यवस्था के कारण लोगों के बीच लंबे समय तक शांति कायम रही। परंतु बाद में इसी के कारण मनमुटाव भी बढ़ा। इस व्यवस्था में प्रतिस्पर्धावश संधि की जाती थी पर कोई आम सहमति नहीं बनती थी। यह शक्ति-संतुलन था शक्ति-सहमति नहीं। जैसे ही कोई गुट मजबूत होने लगता था तो उन राज्यों के लिए जो उस गुट से बाहर थे, ,खतरा बढ़ जाता था और अपने आप इसके खिलाफ गुटबंदी होने लगती थी। प्रतिस्पर्धापूर्ण

संधियों के कारण अस्त्रों की भी होड़ लगी और दो विरोधी गुटों के बीच की घृणा और भय की परिणति युद्ध में हुई।''

ये 'गुटबंदियां' और 'विरोधी गुटबंदियां' क्या थीं ? 'प्रतिस्पर्धायुक्त संधियां' कौन-कौन सी थीं और इन्होंने अन्ततः टकराव का रास्ता कैसे प्रशस्त किया ? इस अवधि में यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था पर गौर करने से बात स्पष्ट हो जाती है। 1870 तक जर्मन अर्थव्यवस्था ब्रिटेन से काफी पीछे थी परंतु अब प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह लोहे या इस्पात या क्षार का उत्पादन हो, उसने ब्रिटेन को पीछे छोड़ दिया। जर्मनी की बड़ी औद्योगिक इकाइयों को बड़े पैमाने पर मशीनीकृत करने की जरूरत थी। फ्रांसीसी पद्धति के अंतर्गत औद्योगीकरण काफी अलग तरह का था। डेविड लेंस के अनुसार फ्रांस का औद्योगीकरण "दबा हुआ औद्योगीकरण था", एक नपी-तुली और सोची समझी हुई प्रगति थी और उन लोगों ने जो फ्रांसीसी और जर्मन अर्थव्यवस्थाओं के बीच असमानता को देखकर स्तब्ध थे, इस धीमी प्रगति पर चेतावनी व्यक्त की। इटली, हंगरी तथा रूस ने नई प्रौद्योगिकी को अपनाया पर आर्थिक स्तर पर यह उन्नति उस पिछड़ेपन को दूर नहीं कर सकी जो अर्थव्यवस्था की अनेक इकाइयों में निहित थी।

ऊपर यूरोप के जिन देशों का उल्लेख हुआ है उनमें अलग-अलग गति से औद्योगिक प्रगति हुई थी। इस औद्योगिक प्रगति और दुनिया पर आधिपत्य जमाने में उसके महत्व के बीच संबंध स्थापित करना कठिन है। परंतु जर्मनी के मामले में यह कहा जा सकता है कि 1890 तक जर्मनी अपने आर्थिक बलबूते पर ही पूरे यूरोप पर छाया रहा।

जर्मनी की बढ़ती ताकत के साथ-साथ इस अवधि में रूस का भी विस्तार हुआ। औटोमन साम्राज्य के कमजोर होने और बालकन के राज्यों की राष्ट्रीय आकांक्षाओं के मजबूत होने पर रूस अपने आपको रोक नहीं सका। औटोमन साम्राज्य में स्लाव जातीयता के लोग भी रहते थे इसलिए उनका रूस के साथ एक मजबूत जातीय जुड़ाव था। इसलिए रूस ने विभिन्न बालकन समुदायों, खासकर रूमेनियाई और साइबेरियाई लोगों के विद्रोह को समर्थन दिया। यह ब्रिटेन के हित में नहीं था क्योंकि वह औटोमन साम्राज्य का विघटन नहीं चाहता था। फ्रांस भी नाखुश था। क्रूसेड के समय से ही फ्रांस को पूरब में इसाईयों के अधिकारों का संरक्षक माना जाता था। पंरतु अब रूसी जार परम्परागत या पूर्वी इसाई धर्म का पक्ष लेने लगा। बालकन क्षेत्र में इस धर्म के काफी अनुयाई थे। इस धार्मिक क्षेत्र पर पहले फ्रांसीसियों का प्रभाव था जिसे रूसी जार ने चुनौती दी थी।

फ्रांसीसी- प्रशन युद्ध के बाद जर्मनी यह सोच भी नहीं सकता था कि इस बुरी हार के बाद फ्रांस इससे जल्दी ही उबर भी पाएगा। परंतु फ्रांस ने ऐसा ही किया। उसने जर्मनी के हरजाने का भुगतान कर दिया। इसलिए जर्मनी को अपने आशानुरूप समय से पहले ही पेरिस से अपनी सेना हटानी पड़ी। उसे इस बात की जानकारी थी कि फ्रांस को आलस्स और लॉरेन प्रांतों को खोकर काफी सदमा पहुंचा था और यह मुद्दा भविष्य में दोनों शक्तियों के बीच टकराव का एक प्रमुख आधार बना रहा। इसके परिणामस्वरूप आनेवाले वर्षों में बिस्मार्क की कोशिश यह रही कि वह ब्रिटेन और फ्रांस का ध्यान यूरोपीय महाद्वीप से हटाकर अफ्रीका और अप्रत्यक्ष रूप में एशिया की ओर आकृष्ट करे।

1880 के दशक में अफ्रीका में फ्रांसीसी साम्राज्यवाद तेजी से फैला। 1881 में ट्युनिस पर कब्जा कर लिया गया। 1884 में मैडेगैसकर फ्रांसीसी नियंत्रण में आ गया। इसके बाद फ्रांस सहारा की ओर बढ़ना चाहता था इसके लिए उसे मोरक्को को अपने नियंत्रण में लेना पड़ता। परंतु जर्मनी और स्पेन की भी मोरक्को क्षेत्र में रुचि थी। सूडान में फ्रांस के प्रसार से वहां ब्रिटेन से उसका टकराव हुआ और नाइजर तथा फशोडा पर भी झगड़े हुए। इसके अलावा 1882 तक फ्रांस को ब्रिटेन के हक में मिस्र पर अपना नियंत्रण छोड़ना पड़ा।

यूरोप में केवल बालकन ही ऐसा क्षेत्र बचा था जहां आधिपत्य किया जा सकता था। बढ़ते राष्ट्रवादी आंदोलनों और तुर्की के लगातार होते पतन ने वहां नए अवसर प्रदान किए। रूस इस क्षेत्र पर आधिपत्य जमाने के लिए काफी उत्सुक था। बिस्मार्क को रूस के समर्थन की आवश्यकता थी इसलिए वह रूस का विरोध नहीं करना चाहता था।

1877 में रूस तथा तुर्की के बीच युद्ध हुआ और तुर्की की पराजय हुई। रूस ने कार, एरडेहन और एरजीरूम

के साथ-साथ अरमेनिया जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर कब्जा जमा लिया। रूसी तुर्की युद्ध की समाप्ति 1871 के सैनस्टिफैनो की संधि के साथ हुई। इसके बाद ब्रिटेन और रूस एक दूसरे के सामने युद्ध के लिए खड़े हो गए। ब्रिटिश युद्ध पोत को कौनसेंटटिनोपल की ओर रवाना होने का आदेश दिया गया और ब्रिटिश संसद ने डिजरेली के रूसी विरोधी प्रयत्नों के लिए 60 लाख पाउंड धन पारित किया। तुर्की अभियान के बाद रूसी सेना को कमजोर और नि:शक्त पाते हुए यदि जार अलेक्जेंडर II अपनी सेना को पीछे नहीं हटाता तो रूसी सेना की हार निश्चित थी। इसके बाद सैन स्टिफैनो की संधि को जून 1878 में बर्लिन में सभी प्रमुख यूरोपीय शक्तियों – ब्रिटेन, फ्रांस, तुर्की, रूस, इटली और जर्मनी – के एक सम्मेलन में पेश किया गया। रूस के आधिपत्य क्षेत्र को कम किया गया और बोस्निया तथा हर्जेगोविना पर आस्ट्रिया का नियंत्रण स्थापित कर दिया गया। ब्रिटेन को साइप्रस प्राप्त हुआ और फ्रांस को ट्युनिशिया के उत्तरी अफ्रीका क्षेत्र में मुक्त रूप से कार्य करने देने का वादा किया गया। हालांकि इस सम्मेलन में इटली और जर्मनी को कोई क्षेत्र प्राप्त नहीं हुआ। सम्मेलन में बिस्मार्क ने एक ईमानदार मध्यस्थ की भूमिका निभाई।

परंतु रूस और ब्रिटेन के बीच चल रहे टकराव को समाप्त करने के लिए यह काफी नहीं था। बेंजामिन डिजराइली या अर्ल ऑफ बेकांसफील्ड (जिस नाम से वह जाना जाता था) कट्टर रूसी विरोधी था। दूसरी ओर उसे तुर्की सुल्तान पर जरूरत से ज्यादा विश्वास था।

परंतु ब्रिटेन इससे भी ज्यादा चिंतित रूस के मध्य एशिया में विस्तार से था। 1807 के बाद रूस तुर्किस्तान क्षेत्र में तेजी से पैर फैला रहा था। पूर्वी तुर्किस्तान चीन का एक नाम मात्र का प्रांत था। इन क्षेत्रों से घुड़सवार डाकू इससे लगे रूसी प्रांतों में डाका डालते थे और रूस के सीमांत प्रांतों के राज्याध्यक्षों को बार-बार तुर्किस्तान में प्रवेश करके उन्हें दंडित करना पड़ता था। 1864 में ताशकंद रूसी अधिकार में आ गया। इसके बाद उन्होंने चंगेज खां और तैमूर के प्रसिद्ध शहर समरकंद पर कब्जा कर लिया। जल्द ही सम्पूर्ण पूर्वी तुर्किस्तान रूसी हाथों में आ गया। पश्चिमी क्षेत्र लम्बे समय तक विरोध करते रहे परंतु 1873 में खिवा के खान को जबरन मिला लिया गया। इससे रूसी प्रतिष्ठा काफी बढ़ी परंतु इससे रूस और ब्रिटेन एक दूसरे के आमने-सामने खड़े हो गए। ब्रिटेन को यह लगा कि इससे उसके सबसे महत्वपूर्ण उपनिवेश भारत के लिए खतरा उत्पन्न हो गया था। परंतु ब्रिटेन की तात्कालिक चिंता इस बात को लेकर थी कि रूस अफगानिस्तान को अपने कब्जे में लेने की कोशिश कर रहा था जो ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र के बीच में मध्यवर्ती राज्य की भूमिका अदा कर रहा था। 1885 में रूसी सेना ने अफगान क्षेत्र के एक हिस्से पर कब्जा जमा लिया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने संसद से 110 लाख पाउंड धन पारित करने को कहा ताकि रूस को आगे बढ़ने से रोका जा सके। परंतु एक बार फिर जार एलेक्जेंडर III ने अपने कदम पीछे खींचे और चीन की ओर विस्तार के लिए अपने कदम बढ़ाए।

24.4 प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि बनाने वाले शक्ति समीकरण

इस अवधि में आस्ट्रिया-हंगरी का महत्व तेजी से कम हो रहा था। परंतु जर्मनी के लिए, खासतौर पर रूस के खिलाफ, यह एक स्वाभाविक मित्र था। ड्रेकेसरबंड के नाम से प्रसिद्ध तीन सम्राटों (रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी) की संधि पर जून 1801 में हस्ताक्षर हुए और 1804 में इस संधि की अवधि बढ़ाई गई। परंतु यह संधि अन्ततः 1887 में टूट गई। जैसे-जैसे रूस और जर्मनी के बीच का मतभेद बढ़ा वैसे-वैसे आस्ट्रिया-हंगरी के साथ-साथ इटली भी जर्मनी के निकट आता गया। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 1882 में तिहरी संधि हुई।

1890 के दशक आते-आते रूस अकेला पड़ गया। फ्रांस की भी यही स्थिति थी। इसके कारण 1893 में दोनों के बीच दोहरी संधि हुई। इस प्रकार 1890 के दशक में दो प्रकार की संधियां कायम थीं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं था कि यूरोपीय महादेश दो भागों में बंट गया था। आनेवाले वर्षों में कई अवसरों पर रूस ने जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ सहयोग किया था और आस्ट्रिया तथा जर्मनी ने रूस और फ्रांस की मदद की थी।

केवल इंगलैंड ही अपने को अकेला महसूस कर रहा था। इसका कारण यह था कि फ्रांस तथा रूस के हित दुनिया के कई हिस्सों में (सूडान या फारस या अफगानिस्तान) ब्रिटेन के हितों से टकरा रहे थे और कभी-कभी

जर्मनी ने भी ब्रिटेन के युद्ध उद्देश्यों का विरोध करने में रूस और फ्रांस की मदद की थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में बर्लिन-बगदाद रेलवे के निर्माण की बात चल पड़ी और ऐसा लगा कि औटोमन साम्राज्य के संरक्षक के रूप में इंग्लैंड के स्थान पर जर्मनी अपना अधिकार जमाने के लिए पूरी तरह तैयार है।

ब्रिटेन ने यूरोप में अपने अलगाव को दूर करने के लिए 1898 में जर्मनी से समझौता करने का प्रयास किया परंतु जर्मनी ने इस दिशा में बहुत उत्साह नहीं दिखाया क्योंकि फ्रांसीसी-रूसी और ब्रिटिश गुटों के बीच उसकी स्थिति मजबूत थी और वह अपनी स्थिति नहीं बदलना चाहता था। 1901 में आंग्ल-जर्मन समझौते के लिए बातचीत सफल नहीं हुई क्योंकि जर्मनी सुदूर पूर्व में रूसी कब्जे के खिलाफ ब्रिटेन की सहायता करने के लिए तैयार नहीं था और इसी प्रकार ब्रिटेन पूर्वी यूरोप में रूस के खिलाफ जर्मनी को सहायता देने में ढील बरत रहा था।

सुदूर पूर्व में रूसी अभियान को रोकने के लिए 1902 में ब्रिटेन ने जापान के साथ संधि की। पंरतु यह इंग्लैंड की यूरोप में अलगाव की स्थिति को दूर करने के लिए काफी नहीं था। अतएव उसने फ्रांस की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया। फ्रांस भी दोस्ती का हाथ बढ़ाने के पक्ष में था क्योंकि फसोदा घटना के बाद, जब रूसियों ने फ्रांस को समर्थन देने से इनकार कर दिया, रूस से उनका रिश्ता कमजोर हो गया था। सूडान स्थित फसोदा में 1898 में अंग्रेज और फ्रांसीसी सेना में संघर्ष हुआ। दोनों शक्तियां सूडान पर नियंत्रण स्थापित करना चाहती थीं। अन्ततः फ्रांसीसियों ने अपने पैर पीछे खींच लिए और ब्रिटेन ने इस क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया।

1904 में एन्टेन्टे कॉर्डियाले अर्थात आंग्ल-फ्रांसीसी समझौते पर हस्ताक्षर हुआ। इससे उनके उपनिवेशों से संबंधित सभी मतभेदों को सुलझा लिया गया। फ्रांस ने मिस्र में अंग्रेजों के हितों को और इसके बदले में मोरक्को में ब्रिटेन ने फ्रांसीसी हितों को स्वीकार कर लिया गया। यह समझौता 'एक मित्रतापूर्ण आपसी समझ' थी कोई संधि नहीं। जर्मनी के आक्रामक रवैये(खासकर मोरक्को में) ने फ्रांस और ब्रिटेन को एक दूसरे के नजदीक ला दिया। 1906 में जर्मनी और फ्रांस युद्ध के लिए आमने सामने खड़े हो गए थे। इसी समय एलजेरिकास में एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें मोरक्को की स्वतंत्रता को पुनः दृढ़ता से स्वीकार की गई। इससे यह मुद्दा सुलझ गया।

1905 में जापान के हाथों रूस की करारी हार हुई। इसका काफी व्यापक प्रभाव पड़ा और 1905 के बाद रूस ब्रिटेन के साथ अपने संबंधों को सुधारने में काफी तत्पर रहा। ब्रिटेन भी रूस के साथ अपने औपनिवेशिक मतभेदों को दूर करने का इच्छुक था। 1907 के आंग्ल-रूसी समझौते से अफगानिस्तान, फारस और तिब्बत पर इन दो शक्तियों की पुरानी शत्रुता दूर हो गई।

इस प्रकार जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी और इटली के त्रिपक्षीय संधि के खिलाफ ब्रिटेन, फ्रांस और रूस का ट्रिपल एन्टेन्टे (त्रिपक्षीय समझौता) कायम हुआ। परंतु अब बालकन आकर्षण का प्रमुख केंद्र बन गया था।

1908 में तुर्की में क्रांति की शुरुआत होने से मामले की शुरुआत हुई। सुल्तान अब्दुल हमीद II के भ्रष्ट और पतनशील शासन व्यवस्था और सुधार के लिए बार-बार वादा करने और मुकर जाने की प्रवृत्ति से ऊबकर 'युवा तुर्क' के नाम से प्रसिद्ध उदारवादी देशभक्तों ने सुल्तान के शासन को उखाड़ फेंका था। इन घटनाओं के फलस्वरूप आस्ट्रिया ने बोस्निया और हर्जेगोविना को अपने राज्य में मिलाने का निर्णय लिया जहां की प्रशासन व्यवस्था वह 1878 से चला रहा था। रूस ने इसका विरोध किया। उसने मांग की कि आस्ट्रिया की इस कार्यवाई को अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन के समक्ष रखा जाए। बोस्निया-हर्जेगोविना पर नजर टिकाए सर्बिया ने भी इस विरोध में रूस का साथ दिया। परंतु जर्मनी और आस्ट्रिया का मानना था कि जब तक बोस्निया हर्जेगोविना के आधिपत्य को मंजूरी नहीं दी जाती तब तक वे किसी भी प्रकार के सम्मेलन के लिए राजी नहीं होंगे। अन्ततः उन्हीं का मत स्वीकार किया गया क्योंकि जापान के हाथों हारने के बाद अब रूस आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी से युद्ध करने की स्थिति में नहीं था। इस घटना से जर्मनी की बढ़ती शक्ति और ताकत का अंदाजा हुआ। हालांकि इस बार आस्ट्रिया सामने था और जर्मनी उसके पीछे खड़ा था। इस प्रवृत्ति का भविष्य में दूरगामी प्रभाव पड़ा।

बोस्निया संकट से तनाव का एक ऐसा सिलसिला बना जो प्रथम विश्वयुद्ध तक कायम रहा। रूस और सर्बिया अपमानित महसूस करने लगे। इटली भी अपमानित महसूस कर रहा था क्योंकि बोस्निया-हर्जेगोविना को

कब्जे में लेने से पहले आस्ट्रिया ने उससे परामर्श नहीं किया था। संभवत: इसी के परिणामस्वरूप 1909 में इटली ने रूस के साथ संधि की जिसमें उसने डारडानेल्स के जलडमरूमध में रूस के हितों को समर्थन देने का वादा किया जिसके बदले में रूस को त्रिपोली (लिबिया) में इटली के हितों को समर्थन देना था।

1911 में एक बार फिर से मोरक्को में संकट पैदा हो गया। मोरक्को में स्थानीय विद्रोह हुआ। फ्रांसीसी सेनाओं ने हस्तक्षेप किया। जर्मनी ने यह कहकर इसका विरोध किया कि यह मोरक्को की स्वतंत्रता का उल्लंघन था। उसने मोरक्को में जर्मन लोगों की रक्षा करने के लिए आगादीर नामक मोरक्को बंदरगाह पर पैंथर नाम का एक युद्धपोत भेजा। अन्तत: ब्रिटेन के प्रयास से जर्मनी को पीछे हटने के लिए मना लिया गया और संकट समाप्त हो गया। इस प्रकार यूरोप फिर एक बार युद्ध की तरफ उन्मुख था।

दूसरे मोरक्को संकट के दौरान ब्रिटेन को यह आशंका हुई कि जर्मनी मोरक्को में अपना नौसैनिक अड्डा स्थापित करना चाहता है जो ब्रिटेन के गिबरालटार स्थित अड्डे के लिए खतरा साबित हो सकता था। आंग्ल-जर्मन नौसैनिक प्रतिद्वंद्विता बहुत पहले ही शुरु हो चुकी थी। 1889 में इंग्लैंड ने 'द्वि-शक्ति मानदंड' अपनाया था जिसके तहत अंग्रेजों को दो मजबूत शक्तियों की मिली जुली नौसेना से 10 % अधिक मजबूत नौसैनिक बेड़ा बनाकर रखना था। 1898 में जर्मनी ने अपनी नौसेना में विस्तार किया जिसके कारण 1914 तक आते-आते जर्मनी विश्व की दूसरी मजबूत नौसैनिक शक्ति बन गई। यह बात इंग्लैंड को पसंद नहीं आई जिसका मानना था कि जर्मनी को नौसेना की जरूरत ही नहीं थी क्योंकि इसके पास पहले से ही एक शक्तिशाली थलसेना मौजूद थी। एक नौसेना के निर्माण का उद्देश्य भविष्य में ब्रिटेन की नौसेना की सर्वोच्चता को चुनौती देना था। कम से कम दो बार, पहली बार 1908 में और 1912 में, ब्रिटेन ने जर्मनी से अनुरोध किया कि वह अपना नौसैनिक विस्तार धीमा करे परंतु जर्मनी ने उसकी बात अनसुनी कर दी। इस नौसैनिक प्रतिद्वंद्विता के कारण जर्मनी और ब्रिटेन के संबंधों में और भी कड़वाहट पैदा हो गई।

अभी तक साम्राज्यवादी दौड़ में इटली की भूमिका पर हमने विस्तार से चर्चा नहीं की है। इटली भी उपनिवेशों के लिए इच्छुक था। वह औटोमन साम्राज्य के उत्तरी अफ्रीका के उपनिवेशों को हासिल करना चाहता था। अपेक्षाकृत कम ताकत होने के कारण इसे अपने लक्ष्य में सफलता नहीं मिली। 1912 में इटली ने अचानक ट्रिपोली पर कब्जा जमा लिया। इसने इस अभियान के लिए सभी बड़ी शक्तियों से अनुमति ले ली थी और इस प्रकार इस बार मोरक्को जैसा कोई बड़ा संकट नहीं उभरा। परंतु त्रिपोली पर किए गए कब्जे का परिणाम बहुत ही दूरगामी तथा आधारभूत सिद्ध हुआ। यदि औटोमन साम्राज्य से त्रिपोली छीना जा सकता था तो फिर सर्बिया और ग्रीस भी इसके क्षेत्रों को हड़पने का प्रयत्न क्यों नहीं कर सकते थे ? अक्टूबर 1912 में ग्रीस और सर्बिया ने औटोमन साम्राज्य पर आक्रमण किया और इसे बुरी तरह पराजित किया। मई 1913 की लंदन की संधि के तहत औटोमन साम्राज्य को अपने सारे यूरोपीय क्षेत्र छोड़ने पड़े। अब डारडेनेल्स के जलडमरूमध्य से लगे इलाके ही उसके पास बचे रह गए।

यह पहला बालकन युद्ध था। इसके एक महीने के भीतर दूसरा बालकन युद्ध हुआ। परंतु इस बार युद्ध में जीते गए हिस्सों के बंटवारे को लेकर संघर्ष हुआ। सर्बिया एड्रियाटिक की ओर रास्ता चाहता था जिसे आस्ट्रिया और इटली देने को तैयार नहीं थे। इसके बाद मैसेडोनिया में कुछ क्षेत्रों को लेकर बलगारिया और सर्बिया के बीच तनाव बढ़ गया। इस युद्ध में बलगारिया को पीछे हटना पड़ा और मैसेडोनिया का एक बड़ा हिस्सा ग्रीस और सर्बिया को देना पड़ा। सार्बिया की बढ़ती शक्ति और आक्रामक रुख भी प्रथम विश्वयुद्ध का माहौल बनाने में उत्तरदायी थे। यह छोटा सा देश अपना क्षेत्र बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध था और यह मैसेडोनियन क्षेत्रों से संतुष्ट नहीं था। इसने अब अल्बेनियाई क्षेत्रों पर भी अपना दावा पेश किया। इस प्रयत्न में रूस ने सर्बिया का समर्थन किया। अस्ट्रिया ने जमकर इसका विरोध किया। परंतु जर्मनी ने अस्ट्रिया को रोक दिया। इंग्लैंड और इटली अल्बेनिया की आजादी के पक्ष में थे। अन्तत: रूस ने सर्बिया को दिया गया अपना समर्थन वापस ले लिया और यह संकट टल गया। परंतु सर्बिया का आस्ट्रिया के खिलाफ रोष बना रहा।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि 28 जून 1914 को आस्ट्रिया गद्दी के उत्तराधिकारी आर्कड्यूक फ्रांसेस फर्डिनान्ड की बोस्निया की राजधानी साराजेवो में की गई हत्या प्रथम विश्व युद्ध का तात्कालिक कारण बना। 'ब्लैक हैन्ड' के नाम से जाने जानेवाले सर्बिया राष्ट्रवादियों के एक गुप्त दल को हत्या के लिए जिम्मेदार माना गया। हालांकि इस हत्या में सर्बियाई सरकार का कोई हाथ नहीं था परंतु इस हत्या के लिए आस्ट्रिया सर्बिया

को दंडित करने के लिए कटिबद्ध था। 28 अगस्त 1914 को इसने सर्बिया से कूटनीतिक संबंध तोड़ दिया और युद्ध की घोषणा कर दी। रूस ने सर्बिया का साथ देने की घोषणा की और आस्ट्रिया के खिलाफ युद्ध की तैयारी करने लगा। यह देखकर जर्मनी ने रूस को युद्ध की तैयारी रोकने का आदेश दिया। जार ने जब जर्मनी का आदेश मानने से इनकार किया तो जर्मनी ने 1 अगस्त 1914 को रूस पर युद्ध की घोषणा कर दी। इसके दो दिन बाद फ्रांस पर युद्ध की घोषणा कर दी गई। फ्रांस और बेल्जियम की सीमा पर आक्रमण करने की योजना बनाई गई। जर्मनी के बेल्जियम पर आक्रमण करते ही ब्रिटेन भी युद्ध में शामिल हो गया। इस प्रकार चौंतीस सालों से जिस यूरोपीय संघर्ष को रोकने के लिए तरह-तरह की सावधानियां बरती जा रही थी,वे सारे प्रयत्न नाकाम रहे। यह बड़ी ही विडम्बना है कि यूरोप के सबसे छोटे और नए देश सर्बिया ने प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत की। परंतु इतिहास इस बात का साक्षी है कि तात्कालिक कारण हमेशा अन्य गहरे कारणों का एक प्रतिबिंब मात्र होता है। सर्बिया से संबंधित घटना ने रूस और आस्ट्रिया की पुरानी दुश्मनी को पूर्ण रूप से युद्ध में परिवर्तित करने में सहायता प्रदान की। आस्ट्रिया के साथ जर्मनी था और रूस के साथ फ्रांस। जैसे ही फ्रांस पर आक्रमण का खतरा मंडराया वैसे ही ब्रिटेन ने अपने को असुरक्षित महसूस किया। इस प्रकार फ्रांस की रक्षा के लिए उसे आगे आना पड़ा। प्रथम विश्व युद्ध यूरोप में लड़ा गया परंतु यह युद्ध पूरे विश्व में फैल गया। चीन से लेकर भारत, मध्य एशिया, फारस, ग्रीस, बालकन और अफ्रीका तक यह युद्ध फैल गया। युद्ध के बाद हुए शांति समझौते में इन सभी क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा।

बोध प्रश्न 1

1) गैलेघर और रॉबिन्स द्वारा प्रतिपादित साम्राज्यवाद के सिद्धांत वी.आई. लेनिन के सिद्धांत से किस प्रकार अलग थे ?

....
....
....
....
....
....

2) 19वीं शताब्दी में रूसी के विस्तार पर 100 शब्द लिखिए।

....
....
....
....
....
....

3) 20वीं शताब्दी के आरंभ में फ्रांस ने अपने परम्परागत शत्रु ब्रिटेन से दोस्ती क्यों की ?

....
....
....
....
....

24.5 सारांश

साम्राज्यवाद के सिद्धांतों का निरूपण करने वाले अधिकांश विद्वानों ने इस दौर में मुख्य रूप से विश्व पर यूरोपीय आधिपत्य की चर्चा की है। बाद में 20 वीं शताब्दी में अमेरिका और जापान भी इस दौड़ में शामिल हुए। परंतु 1914-1918 में प्रथम विश्व युद्ध के समय तक यूरोपीय देश प्रमुख औपनिवेशिक शक्तियां थीं। सबसे पहले स्पेन और पुर्तगाल ने दुनिया के विभिन्न देशों में उपनिवेश स्थापित किए। अपनी श्रेष्ठ आर्थिक और सैनिक शक्ति के बल पर बाद में ब्रिटेन और फ्रांस ने उन्हें हटाकर अपना पैर जमाया। रूस ने अपने बल पर आसपास के क्षेत्रों पर कब्जा जमाया और यूरोप की एक बड़ी शक्ति बन गया। जर्मनी का प्रवेश थोड़ी देर से हुआ। परंतु वहां औद्योगीकरण इतनी तेजी से हुआ कि उसने एक बड़ी शक्ति का रूप ले लिया। परंतु इस समय तक औपनिवेशिक विस्तार की संभावनाएं काफी कम हो चुकी थीं। हालांकि अफ्रीका में उसे हिस्सा मिला था परंतु इससे वह संतुष्ट नहीं था और इसी असंतुष्टि के कारण पूरी दुनिया में प्रतिस्पर्द्धा का माहौल बन गया और कई राजनैतिक संधियां हुई। राजनैतिक और आर्थिक महत्वाकांक्षाओं पर आधारित इन संधियों ने अन्ततः प्रथम विश्व युद्ध को जन्म दिया।

24.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 24.2

2) देखिए भाग 24.3

3) देखिए भाग 24.4

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

अगाथा रैम : *यूरोप इन द नाइनटीन्थ सेन्चुरी,* 1789-1905

जेम्स जौल : *यूरोप सिन्स* 1870

डेविड थॉमसन : *यूरोप सिन्स नेपोलियन*

ओवन ऐंड सटक्लिफ (सं.) : *स्टडिज इन द थ्योरी आफ इम्पेरियलिज्म*

इकाई 25 उदारवादी जनतंत्र

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

यह इस खंड की पहली इकाई है। इसमें प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति और 1929 के आर्थिक संकट के बीच की अवधि की विशेषता बताई गई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- इस अवधि में ब्रिटेन, फ्रांस, और जर्मनी जैसे देशों में नई शासन व्यवस्थाओं की प्रकृति को रेखांकित कर सकेंगे,
- इस युग में सम्पूर्ण यूरोप में व्यापत संकट की प्रकृति का विवेचन कर सकेंगे,
- 1929 की आर्थिक मंदी के कारकों की चर्चा कर सकेंगे, और
- यह जान सकेंगे कि 1920 के दशक में होने वाली गतिविधियों ने किस प्रकार 1930 के दशक और उसके बाद घटने वाली राजनैतिक घटनाओं को प्रभावित किया।

25.1 प्रस्तावना

19वीं शताब्दी और 1920 के दशक का अध्ययन और तुलना करने पर आप इन दोनों कालों में आधारभूत परिवर्तन पाएंगे। इसका कारण यह है कि प्रथम विश्व युद्ध और इसके बाद अर्थव्यवस्था और कूटनीतिक संबंधों में आए बदलावों ने बीसवीं सदी के यूरोप को पूरी तरह बदल दिया। इस इकाई में 1920 के दशक में यूरोप में हुए परिवर्तन की प्रकृति और बाद के इतिहास पर पड़ने वाले इसके प्रभाव का विवेचन किया गया है। इसमें ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी की उदार जनतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं की प्रकृति पर विचार किया गया है। इसमें आपको अर्थव्यवस्था और राजनीति में आए उस संकट से भी परिचित कराया गया है जिसके कारण यूरोप की सारी प्रमुख घटनाएं प्रभावित हुईं।

25.2 पृष्ठभूमि

इतिहासकार और आलोचक एरिक हॉब्सबॉम ने 1914-1945 के बीच के अवधि को 30 वर्षीय युद्ध का काल कहा था। हॉब्सबॉम प्रथम विश्व युद्ध के बाद यूरोप के उस गहराते संकट की बात कर रहे थे जिसके

कारण फासीवाद का जन्म हुआ और इसकी परिणति द्वितीय विश्व युद्ध में हुई। दोनों विश्व युद्धों के बीच विभिन्न शासन व्यवस्थाओं ने इस संकट से उबरने का प्रयास किया; कई प्रकार की व्यवस्थाएं सामने आई जिसमें वामपंथी क्रांति से लेकर दक्षिण पंथी फासीवाद तक शामिल था।

उदारवादी जनतंत्र की क्या स्थिति थी ? प्रथम विश्व युद्ध के बाद व्याप्त संकट के बीच से उदारवादी जनतंत्र का जन्म हुआ। इसके लिए कई कारक उत्तरदायी थे। युद्ध की क्रूरता, भीषणता और पूरे यूरोप के अस्त व्यस्त हो जाने, अभाव और लोगों के विस्थापित होने के कारण यूरोप की जनता परिवर्तन के लिए बेचैन हो उठी जिसकी परिणति रूस की क्रांति और जर्मनी और हंगरी की असफल क्रांतियों में हुई। प्रमुख उदारवादी जनतंत्रों, इंगलैड और फ्रांस, में उदारवादी जनतांत्रिक राजनीति का पुराना प्रारूप मजूदरों के आंदोलनों से टकराया जो सामाजिक व्यवस्था को बदलने का प्रयास कर रहे थे। इसी दौरान स्त्रियों ने भी मताधिकार के लिए आवाज उठाई। 1929 के आर्थिक संकट और स्टॉक मार्केट में आई गिरावट के कारण उदारवादी जनतंत्र पर दबाव और भी बढ़ गया।

जर्मनी में वाईमार गणतंत्र प्रमुख उदारवादी जनतांत्रिक प्रयोग था। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की हार के बाद वाईमार गणतंत्र की स्थापना हुई जिसमें पहली बार उदारवादी जनतन्त्र के तहत वयस्क मताधिकार को लागू करने का प्रयास किया गया। हालांकि शुरुआत से ही जर्मनी में वाईमार शासन संकटग्रस्त रहा परंतु इसने दर्शन और राजनीति के क्षेत्र में कुछ नई बहसों की शुरुआत की और एक नया सांस्कृतिक अनुभव हुआ जिसके कारण 1920 के दशक में बर्लिन यूरोप की सांस्कृतिक राजधानी बन गया।

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर फ्रांस और इंगलैंड की उदारवादी जनतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं ने जर्मनी और रूसी क्रांति से उत्पन्न खतरे का सामना करने के लिए अलग-अलग रास्ता अपनाया और नीतियां अख्तियार की। जर्मनी के मामले में फ्रांस ने आक्रामक नीति अपनाई और मध्य और पूर्वी यूरोप के राज्यों से सुरक्षा संधि की नीति अपनाकर जर्मनी को चारों ओर से घेरने की कोशिश की। यूरोप और पूरे विश्व में चल रहे परिवर्तनमूलक आंदोलन और रूसी क्रांति ने खासतौर पर उदारवादी जनतंत्रों के सामने समस्याएं पैदा कीं। अंग्रेजों ने रूसी क्रांति के खिलाफ आक्रामक रूख अख्तियार किया क्योंकि वे इसे यूरोप की सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा मानते थे।

25.3 वर्साय और उसके बाद

वर्साय संधि पर विचार विमर्श करने से दो युद्धों के बीच उदारवादी जनतांत्रिक अनुभवों को जानने में मदद मिलेगी। पिछले विचार-विमर्श से हम जान चुके हैं कि वर्साय सम्मेलन विजयी मित्र राष्ट्रों का सम्मेलन था जो जर्मनी से उसकी हार की ज्यादा से ज्यादा कीमत वसूलना चाहते थे। इस सम्मेलन में तीन प्रमुख व्यक्ति कियाशील थे : संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति वुडरो विलसन, फ्रांस के ज्योर्ज्स क्लिमान्सो और ब्रिटेन के लॉयड जॉर्ज। मुख्य विवाद विलसन के युद्धोतर व्यवस्था संबंधी उदारवादी दृष्टिकोण ओर क्लिमान्सो के जर्मनी पर कठोर आघात और ज्यादा से ज्यादा शोषण संबंधी राष्ट्रवादी मांग के बीच था। क्लिमान्सो के लिए फ्रांस की सुरक्षा सबसे महत्वपूर्ण थी और उसकी सोच इसी से प्रभावित थी क्योंकि फ्रांस जर्मनी से जमीन के रास्ते जुड़ा हुआ था और उसे युद्ध में सबसे ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा था। इसलिए वह हमेशा हमेशा के लिए जर्मनी की ताकत को तोड़ देना चाहता था।

दूसरी तरफ विलसन की सोच और दृष्टि व्यापक थी। उसके 14 सूत्री योजना में आत्मनिर्णय, प्रभुसत्ता और न्याय के आदर्श शामिल थे। विलसन के आदर्श में आधुनिक राज्य प्रणाली को स्थायित्व देने का कार्य शामिल था (जो सतरहवीं शताब्दी की वेस्टफोलिया की संधि पर आधारित था)। यह स्थायित्व उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान यूरोप के विभिन्न देशों के बीच हुए संघर्ष से बाधित हुआ जिसकी परिणति प्रथम विश्व युद्ध में हुई। अमेरिकी इतिहासकार चार्ल्स मेयर ने बताया कि विलसन के आदर्शों और रूसी क्रांति के नेता लेनिन (जो वर्साय में शामिल नहीं थे) ने आधुनिक राज्य व्यवस्था के नए रास्ते अलग-अलग तरीके से दिखाए। एक तरफ विलसन उदारवादी कार्यक्रमों की वकालत करते हुए विश्व व्यवस्था, विश्व सरकार (लीग ऑफ नेशन्स) की बात कर रहे थे, दूसरी तरफ लेनिन विश्व क्रांति के द्वारा पुरानी राज्य व्यवस्था को पूरी तरह बदल देना चाहते थे। इसके अलावा लेनिन ने गैर यूरोपीय लोगों के आत्मसंकल्प का आह्वान कर अपना

अन्तरराष्ट्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया और वेस्टफेलिया व्यवस्था के आधार पर ही प्रश्न चिह्न लगा दिया जिसके तहत यूरोपीय ताकतों को दूसरों की तुलना में विशेषाधिकार प्राप्त थे। कुछ भी हो विलसन और लेनिन का अंतरराष्ट्रीयवाद वर्साय के समय के आस-पास ही उभरा और बीसवीं शताब्दी के दौरान इन विचारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

वर्साय सम्मेलन में क्लिमान्सो की कठोर नीतियों का ही वर्चस्व रहा। जर्मनी पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए। जर्मनी की सैन्य शक्ति क्षीण कर दी गई। उसकी सेना की संख्या घटाकर 1 लाख कर दी गई जिसमें लोगों को स्वैच्छिक सेवा करने की, पुराने सेना अधिकारियों को समाप्त करने और टैंक या भारी अस्त्र-शस्त्र रखने पर प्रतिबंध लगाया गया। उनकी सैन्य शक्ति में भारी कटौती की गई और पनडुब्बी कार्यक्रम को समाप्त कर दिया गया। जर्मनी से उसके सभी उपनिवेश छीन लिए गए जो लगभग 1 लाख वर्ग मील में फैले हुए थे। इसके साथ-साथ अलसास और लॉरेन प्रांतों को भी वापस ले लिया गया। 1871 में जर्मनी ने यह फ्रांस से ले लिया था। जर्मनी ने 15 वर्षों के लिए सार की कोयला खानों को फ्रांस के हवाले कर दिया और इस क्षेत्र पर लीग ऑफ नेशन्स का शासन स्थापित हो गया।

संधि प्रस्ताव की शर्तों में जो कठोरता थी और विजेताओं ने जर्मनी के साथ जैसा व्यवहार किया था तथा उपनिवेशों को आजादी न देने के उनके विचार से लेनिन और बोलशेविक धारणाओं को बल मिला कि प्रथम विश्व युद्ध मुख्य रूप से साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच दुनिया को आपस में फिर से बांटने के लिए लड़ा गया एक युद्ध था। इस दृष्टि से विलसन के उदारवादी अन्तरराष्ट्रीयतावाद के कार्यक्रम को प्रचारित करने के बावजूद वर्साय की संधि के बाद पश्चिमी उदारवाद के प्रति उपनिवेशों में रहने वाले लोगों का मोह भंग हुआ। राष्ट्रवादी बोलशेविक रूस की ओर आशा की नजर से देखने लगे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वर्साय सम्मेलन प्रथम विश्व युद्ध से पैदा हुई स्थिति से निपटने में असफल रहा। जैसा कि कार्ल पोलानी ने अपनी श्रेष्ठ रचना 'द ग्रेट ट्रान्सफॉर्मेशन' में लिखा है कि प्रथम विश्व युद्ध ने उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप के आधारों को नष्ट कर दिया जिससे यूरोप में संकट की स्थिति छा गई। वर्साय सम्मेलन ने इस संकट को और भी गहरा कर दिया जिसकी परिणति द्वितीय विश्व युद्ध की त्रासदी के रूप में हुई।

25.4 वाईमार गणतंत्र और उदारवादी जनतंत्र

प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी में स्थापित राजनैतिक व्यवस्था को वाईमार गणतंत्र के नाम से जाना जाता है जो 1913 में नाजी शासन की स्थापना तक कायम रही। इस गणतंत्र का संविधान जर्मनी के वाईमार नामक स्थान में बनाया गया था। इसलिए इसे वाईमार गणतंत्र के नाम से जाना जाता है। इस गणतंत्र का जन्म पराजय की पृष्ठभूमि में हुआ था। इसके अलावा उस समय वहां के क्रांतिकारी समाजवादी रूस के बोलशेविकों का अनुसरण कर रहे थे। वाईमार की स्थापना के प्रारंभिक दिनों में बर्लिन में सैनिकों ने प्रमुख क्रांतिकारी समाजवादी रोज़ा लक्जेमबॅर्ग और कार्ल लीबनेख्त की हत्या कर दी। नाजियों के उदय होने तक वर्साय काल में क्रांतिकारी समाजवादियों, जो बाद में साम्यवादी दल में परिणत हो गया था, का खतरा बराबर बना रहा।

यह गणतंत्र वयस्क मताधिकार, औपचारिक राजनैतिक स्वतंत्रता और एक जनतांत्रिक संसद के सिद्धांतों पर आधारित था जो यूरोपीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण कदम था। पुराने चुनाव संबंधी नियमों को समाप्त कर दिया गया जो सुधारवादी सामाजिक जनतंत्रियों के विकास में रोड़ा थे और इस प्रकार इस दल को विशेष महत्व मिला। मुख्य रूप से सामाजिक जनतांत्रिक प्रभाव में वाईमार में व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं और सामाजिक नीति के संबंध में नए कानून बने।

हालांकि जर्मन सामाजिक जनतंत्री भी अपने बल पर सरकार बनाने में समर्थ नहीं थे। इस स्थिति में एक मिली जुली संस्कृति का जन्म हुआ जिसमें मध्यमार्गी और दक्षिणपंथी दलों को उनकी ताकत से ज्यादा महत्व मिला। इस खास स्थिति में सबसे ज्यादा महत्व पीपुल्स पार्टी और उनके नेता गुस्तव स्त्रेजमान को मिला। 1924 के चुनाव में चांसलर बनने के बाद स्त्रेजमान 1929 में अपनी मृत्यु तक देश के सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिक नेता बने रहे। उनको इतना महत्वपूर्ण माना गया कि जर्मन राजनीति में इस युग को स्त्रेजमान युग के नाम से जाना जाता है।

स्त्रेजमान का उद्देश्य वाईमार झंडे के तहत जर्मन संभ्रांतवर्गों के कुछ हिस्सों को एकत्र करना और साम्यवादियों और नाजियों की ओर से आनेवाली सुधारवादी चुनौतियों से संघर्ष करना था। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्त्रेजमान वर्साय के जुए को अपने कंधे से उतार फेंकना चाहते थे और एक बार फिर जर्मनी को विश्व की एक ताकत के रूप में उभारना चाहते थे। वर्साय की संधि में जर्मनी की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के लिए स्त्रेजमान ने निम्नलिखित कार्य किए :

- उन्होंने फ्रांस द्वारा जर्मनी की रूर घाटी के आधिपत्य का जम कर विरोध किया।
- उन्होंने जर्मनी के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए 1924 की डावेस योजना को राईखस्टाग (जर्मन संसद) से पारित करवाया।
- उन्होंने 1926 में लीग ऑफ नेशन्स में जर्मनी को शामिल करवाया, और
- उन्होंने कई प्रकार के आर्थिक सुधारों के द्वारा जर्मन उद्योग को आगे बढ़ाया तथा भुगतान संकट को दूर करने के लिए निर्यात को प्रोत्साहित किया और इस प्रकार जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से आगे बढ़ाने का प्रयास किया। स्त्रेजमान ने जर्मन संभ्रांत वर्ग के विभिन्न गुटों के परस्पर विरोधी हितों के बीच सावधानीपूर्वक संतुलन स्थापित कर पुरानी शैली के अनुदार राष्ट्रवाद को बचाने की कोशिश की और इसे वाईमार के उदारवादी संविधान में शामिल किया।

चित्र 1: गुस्ताव स्त्रेज़मान

1929 के आर्थिक संकट के बोझ से वाईमार प्रयोग ढह गया। अर्थव्यवस्था के ढहने के साथ-साथ उद्योग और श्रमिकों तथा जर्मनी के पूंजीपतियों के विभिन्न गुटों के बीच का नाजुक सामाजिक समझौता टूट गया। संभ्रांत वर्ग ने समझौते की संस्कृति से अपने हाथ खींच लिए जो किसी भी जनतांत्रिक राजनीति का हिस्सा होता है और उन्हें इस संकट से उबरने की एक मात्र आशा की किरण नाजी सुधारवादी दक्षिणपंथी कार्यक्रम में नजर आई। इतिहासकार डेविड अब्राहम ने अपनी पुस्तक *द कोलैप्स ऑफ द वाईमार रिपब्लिक* में इस बात की विस्तार से चर्चा की है कि वाईमार में संभ्रांतों के बीच समझौते का एक स्वरूप था और जब संभ्रांत वर्ग किसी दूसरे समाधान की ओर मुड़े और किसी भी प्रकार के क्रांतिकारी परिवर्तन को दूर रखने का प्रयत्न किया तो उन्होंने नाजी को ही विकल्प के रूप में चुना।

वाईमार के पतन के बाद इंगलैंड और फ्रांस के उदारवादी जनतंत्र के अनुभवों के प्ररिप्रेक्ष्य में जर्मन 'खासियत' या जर्मनी के अनोखेपन की बातचीत की जाने लगी। यहां जर्मनी के अधूरे उदारवादी रूपांतरण को जर्मन खासियत (जो जर्मन में *ओन्डरवेग*) के रूप में देखा जाने लगा क्योंकि जर्मन उद्योगपतियों का अनुदार जंकरों (एक कृषीय भूमिपति वर्ग जिसका उदय पर्शिया में हुआ था) के साथ गठजोड़ था जो पूर्ण परिवर्तन नहीं चाहते थे। इस प्रकार जर्मनी का 'पिछड़ापन' उसे गैर जनतांत्रिक शासन की ओर ले गया। कई समकालीन इतिहासकारों ने 'खासियत' तर्क की जमकर आलोचना की। (देखिए एले ऐंड ब्लैकबॉर्न, *द पिक्यूलियारिटीज ऑफ जर्मन हिस्ट्री*) और उन्होंने उदारवाद के लिए फ्रांस और इंगलैंड को आदर्श मानदंड बनाने की समस्याओं की ओर ध्यान दिलाया। चाहे इस पर बहस जो भी हुई हो, पर यह स्पष्ट है कि वाइमार शासन व्यवस्था को एक बिलकुल नई प्रकार की नाजीवादी प्रतिक्रियावादी राजनीति में रूपांतरित होना था जिसका पूरे यूरोप पर दुष्प्रभाव पड़ना था।

अपने पतन के बावजूद वाईमार युग बीसवीं शताब्दी के यूरोप में प्रेरणास्पद प्रयोगों का सर्वोत्तम उदाहरण बन कर सामने आया। जैसा कि एक जर्मन इतिहासकार डेल्टेव पेकर्ट ने बताया है कि सार्वजनिक गृह निर्माण और स्वास्थ्य के क्षेत्र में वाईमार के सीमित सामाजिक प्रयोगों ने युद्धोतर पुनर्निर्माण में एक नमूने का काम

किया। बौद्धिक क्षेत्र में निस्संदेह वाईमार गणतंत्र द्वारा दी गई स्वतंत्रताओं द्वारा आलोचनात्मक ऊर्जा का संचार हुआ। दर्शन के क्षेत्र में वाईमार युग में मार्टिन हेडेगर ज्योर्ज लूकाच (जो स्वयं हंगरीवासी था), कार्ल मैनहिम और कई अन्य लेखकों की उत्कृष्ट रचनाएं शामिल थीं। फ्रैंकफर्ट सामाजिक अनुसंधान विद्यापीठ की स्थापना से बीसवीं शताब्दी के कई सर्वोत्कृष्ट बुद्धिजीवियों को एक मंच पर आने का मौका मिला, इनमें थ्यूडोर एडोरनो, मैक्स हौरखेमर, हरबर्ट मार्केज, एरिक फ्रॉर्म प्रमुख हैं। आलोचक वाल्टर बेंजामिन ने जर्मन त्रासदी पर महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी और एवरिन पिसकेटर और बरतॉल्त ब्रेख्त ने रंगमंच के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग किए। आलोचक सीगफ्रेड क्रेसर ने सिनेमा संबंधी अपने लेखों में फिल्म के दर्शकों की भूमिका के बारे में लिखा। खुद सिनेमा के क्षेत्र में फ्रिट्ज लैंग की फिल्मों ने विश्व सिनेमा में जर्मन सिनेमा को एक नई अभिव्यक्ति दी। अन्य क्षेत्रों में, बहास स्थापत्य विद्यापीठ (बहास स्कूल ऑफ आर्किटेक्चर) की स्थापना बर्लिन में हुई जहां इस्पात और शीशे का इमारत निर्माण में उपयोग कर आधुनिक डिजाइन तैयार करने की विधियां निकाली गई। नाजी शासन स्थापित होने के बाद वाल्टर ग्रोपियस और मियेस वैन डेर रोह जैसे स्थापत्यकार संयुक्त राज्य अमेरिका चले गए और वहां विश्व ख्याति प्राप्त की। ललितकलाओं और साहित्य के क्षेत्र में इस युग में नूतन और अभिनव प्रयोग हुए और बर्लिन यूरोप के बेहतरीन आधुनिक चित्रकारों और लेखकों का गढ़ बन गया। लेखक वाल्टर बेंजामिन ने पेरिस को उन्नीसवीं शताब्दी की राजधानी की संज्ञा दी थी क्योंकि उसने बड़े-बड़े साहित्यकारों को आकृष्ट किया और उन्होंने नए प्रयोग किए। इसी रूप में वाईमार बर्लिन 1920 के दशक की राजधानी थी जिसकी छाप गणतंत्र के पतन के काफी देर बाद तक बनी रही।

बोध प्रश्न 1

1) लेनिन और विलसन के आधुनिक राज्य व्यवस्था संबंधी दृष्टिकोण में क्या अन्तर था ?

....

....

....

....

....

....

2) वर्साय की संधि की प्रमुख विशेषताओं पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

3) वाईमार गणतंत्र का पतन क्यों हुआ ?

....

....

....

....

....

....

25.5 सामाजिक संघर्ष और स्थायित्व की खोज : ब्रिटेन और फ्रांस

जर्मनी के वाईमार गणतंत्र के अलावा फ्रांस और ब्रिटेन दो प्रमुख जनतांत्रिक शासन व्यवस्थाएं थीं। इन दोनों शासन व्यवस्थाओं में कई सामानताएं थीं परंतु वे कई मायनों में एक दूसरे से अलग भी थीं। ब्रिटेन एक आर्थिक महाशक्ति था परंतु बीसवीं शताब्दी के आरंभ में उसकी सर्वोच्च आर्थिक हैसियत लुप्त हो गई। दूसरी ओर युद्धोतर काल में फ्रांस अपनी आर्थिक समृद्धि को कायम रखने में सफल रहा। आइए, अर्थव्यवस्था और राजनीति के क्षेत्र में इन दोनों देशों में होने वाले विकासों का अध्ययन किया जाए।

25.5.1 ब्रिटेन

युद्ध के बाद विश्व अर्थव्यवस्था पर ब्रिटेन का वर्चस्व समाप्त होने लगा। ब्रिटेन का वर्चस्व उन्नीसवीं शताब्दी के मुक्त-व्यापार साम्राज्यवाद पर आधारित था जो इस शताब्दी के अन्तिम दशक में ही लड़खड़ाने लगा था। 1920 के दशक में ब्रिटेन धीरे-धीरे आर्थिक क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमेरिका पर निर्भर हो गया और उसके आगे बढ़ने के लिए रास्ता छोड़ दिया। युद्ध के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका पर ब्रिटेन की निर्भरता बढ़ी क्योंकि अब ब्रिटेन अकेले दम पर युद्ध करने की स्थिति में नहीं था। हालांकि 1924 में राज्य के वित्तीय हस्तक्षेप के कारण ब्रिटेन की आर्थिक हालत में थोड़ा सुधार आया। ऑटोमोबाइल और जहाजरानी जैसे उद्योगों को फिर शुरू किया गया और 1925 तक विंस्टन चर्चिल पौंड और डॉलर की समतुल्यता को युद्ध पूर्व स्थिति में ले आया और ब्रिटेन फिर से स्वर्ण मानदंड की ओर लौट आया। हालांकि इसके बावजूद ब्रिटेन अपनी पुरानी हैसियत नहीं प्राप्त कर सका। उद्योग युद्ध पूर्व स्थिति में कभी नहीं लौट पाए और विश्व व्यापार में ब्रिटेन को लगातार संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी और जापान की चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

इस दीर्घकालीन पतन की प्रक्रिया का असर राजनैतिक परिदृश्य पर पड़ा। लिबरल पार्टी, जिनकी राजनीति उन्नीसवीं शताब्दी के मुक्त व्यापार सिद्धांतों पर आधारित थी, का स्थान लेबर पार्टी लेने लगी। कामगार वर्ग द्वारा सामाजिक नागरिकता की बढ़ती मांगों को शामिल करना नई चुनौती के रूप में सामने आया। इसके कारण उन्नीसवीं शताब्दी की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में बदलाव की जरूरत महसूस की गई। मजदूर आंदोलन की प्रमुख प्रवक्ता लेबर पार्टी को इस नई स्थिति का सबसे ज्यादा लाभ मिला। 1924 और 1929 में लेबर और लिबरल पार्टी की साझा सरकारें बनीं जिसमें लेबर पार्टी का वर्चस्व रहा।

1920 के दशक में ब्रिटेन में मजदूरों ने संघर्ष किया और लंबी हड़तालें की जिसने पिछले 50 वर्षों की सामाजिक शांति को भंग किया। इसकी शुरुआत 1920 में खान मजदूरों की हड़ताल से हुई जिसमें लाखों मजूदर शामिल हुए और इसने लगभग एक आम हड़ताल का रूप ले लिया। श्रमिक आंदोलनों में खान में काम करने वाले मजदूर सबसे ज्यादा आक्रामक थे और उन्होंने हमेशा मजदूर आंदोलन के लिए उत्प्रेरक का काम किया। मई 1926 में खान मजदूरों ने फिर से हड़ताल की और इस बार आम हड़ताल हुई। लोहे और इस्पात मजदूर, भारी उद्योग की मुद्रण शाखाएं, इमारत निर्माण और अन्य उद्योगों के कई हिस्सों के मज़दूरों ने काम करना बंद कर दिया। उस समय की कंजरवेटिव सरकार ने हड़ताल तोड़ने के लिए सेना भेजी जिससे स्थिति और बिगड़ गई। अखबार बंद कर दिए गए और सरकार ने मजदूरों का जम कर दमन किया। नौ दिनों के बाद ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने हड़ताल वापस ले ली। कंजरवेटिव पार्टी ने मजदूर आंदोलन पर प्रहार किया और 1927 में कानून बनाकर हड़तालों पर प्रतिबंध लगा दिया।

श्रमिक आंदोलनों पर कंजरवेटिव पार्टी की अस्थाई जीत के बावजूद यह स्पष्ट था कि सामाजिक शांति, जो उन्नीसवीं शताब्दी के ब्रिटिश उदारवाद का लक्षण था, का युग समाप्त हो चुका था। विश्व अर्थव्यवस्था में ब्रिटिश वर्चस्व स्थापित करने और उपनिवेश कायम करने के लिए जिन मजदूरों की निष्ठा खरीदी गई थी वे अब राज्य के साथ नई सामाजिक व्यवस्था की मांग करने लगे। यहां पॉलेनी की उन्नीसवीं शताब्दी की पुरानी व्यवस्था की टूटने की अवधारणा कुछ हद तक सत्य साबित हुई और ब्रिटेन में लिबरल पार्टी इस परिस्थिति की सबसे पहले शिकार हुई।

25.5.2 फ्रांस

प्रथम विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन की अपेक्षा फ्रांस की आर्थिक स्थिति निस्सदेह तेजी से सुधरी। युद्ध के पहले विश्व अर्थव्यवस्था में फ्रांस कभी भी एक विकसित औद्योगिक देश नहीं था। फ्रांस के सकल राष्ट्रीय उत्पाद

में विदेशी व्यापार का अंशदान बहुत ही सीमित था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांसीसी औद्योगीकरण और कृषि का आधुनिकीकरण निश्चित रूप से तेजी से बढ़ रहा था परंतु इंगलैंड की औद्योगिक क्रांति और संयुक्त राज्य अमेरिका के पुनर्निर्माण से इस विकास की तुलना नहीं की जा सकती।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान युद्ध की जरूरतों को पूरा करने के लिए फ्रांसीसी उद्योगों ने काफी प्रगति की। युद्ध के बाद भी यह प्रगति जारी रही और अलसास और लॉरेन की वापसी से फ्रांस की औद्योगिक क्षमता में उछाल आया। युद्ध के दौरान यह निर्णय लिया गया कि कोयला के बदले जल बिजली ऊर्जा का विकास किया जाएगा। इससे कृषीय क्षेत्रों में भी औद्योगिक विकास हुआ। 1923 के बाद उत्पादक क्षमता में तेजी से वृद्धि हुई। 1925 तक आते-आते औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 1919 की तुलना में दोगुना हो गया और भुगतान संतुलन की स्थिति सुधर गई। परंतु समस्याएं बनी रहीं। क्रांति की विरासत के रूप में खाद्य पदार्थों की कीमतें ऊंची थीं और क्रांति के बाद एक संरक्षणवादी कृषि नीति अपनाई गई थी। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ मजदूरी की दर भी काफी ज्यादा थी (खाद्यान्न मूल्य ज्यादा होने के कारण) और इसके कारण फ्रांसीसी निर्यात का विदेशी बाजार में टिकना मुश्किल था।

1920 के दशक में राजनीति के क्षेत्र में फ्रांसीसी राजनीति वाम-दक्षिण में बंटी हुई थी। यह विशेषता आज भी मौजूद है। 1920 के दशक के आंरभ में ही वामपंथी दलों का तेजी से विकास हुआ। इसमें पुरानी सोशलिस्ट पार्टी के अलावा कम्युनिस्ट पार्टी भी शामिल थी। 1924 के चुनाव में पहली बार वामपंथियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई जिसमें कंजरवेटिव प्रधानमंत्री रेमंड प्वाइनकेयर के साथ-साथ दक्षिणपंथी राष्ट्रपति मिलरैंड चुनाव हार गए। फ्रांस में पहली बार वामपंथी मोर्चा (इसमें कम्युनिस्ट की भागीदारी नहीं थी) सत्ता में आया। परंतु यूरोप के अन्य सैद्धांतिक विचारों के तरह ही यह मोर्चा भी अस्थाई साबित हुआ और 1924 के चुनाव में प्वाइनकेयर जीत कर वापस आए।

वामपंथियों का मानना था कि फ्रांस की प्रमुख समस्या यह थी कि सत्ता का संकेंद्रण बैंक ऑफ फ्रांस से जुड़े वित्तीय कुलीनतंत्र के पास था। वामपंथियों का यह मानना था कि फ्रांस के 200 प्रमुख परिवार (इसमें 200 प्रमुख शेयर होल्डर शामिल थे) के हाथ में राजनैतिक सत्ता थी। हालांकि 1920 के दशक में फ्रांस में सामाजिक संघर्ष एक सामान्य स्तर पर कायम रहा – ये सारी स्थितियां 1929 के आर्थिक संकट के बाद बदल गईं।

25.6 कूटनीति का संकट

लीग ऑफ नेशन्स विलसन की एक महान अन्तरराष्ट्रीय परियोजना थी जिसके द्वारा वे नए युग की शुरुआत करना चाहते थे। युद्ध के बाद एक अन्तरराष्ट्रीय राज्य व्यवस्था कायम करने के लिए इस लीग ने एक आधार प्रस्तुत किया ताकि यूरोपीय शक्तियों के संघर्ष को रोका जा सके। लीग की प्रमुख परियोजना 'सामूहिक सुरक्षा' थी परंतु यूरोपीय परिदृश्य में इसमें कई प्रकार की मुश्किलें और दिक्कतें थीं। यूरोप के अलग-अलग देश सुरक्षा जरूरतों को अलग-अलग नजरिए से देखते थे। उदाहरण के लिए ब्रिटेन सोवियत रूस को अपना प्रमुख शत्रु मानता था। फ्रांस अपने पड़ोसी राज्य जर्मनी को सबसे बड़ा खतरा मानता था।

कई कारकों के कारण यूरोपीय परिदृश्य जटिल हो गया : जर्मनी की 'समस्या' और वर्साय समझौते की अनसुलझी विरासत; यूरोप में सुरक्षा के लिए फ्रांस की गुहार और रूसी क्रांति का खतरा।

सुरक्षा के प्रति फ्रांसीसी पूर्वाग्रह और जर्मनी समस्या एक दूसरे से संबद्ध थी क्योंकि जर्मनी से हर्जाना प्राप्त करने के फ्रांसीसी दुराग्रह के कारण अक्सर संकट की स्थिति पैदा हो जाती थी। सुरक्षा की खोज में फ्रांस लीग में अपने एजेंडा को आगे बढ़ाने की कोशिश करता था तथा इसके साथ ही साथ जर्मनी की सीमा पर बसे राज्यों से स्वतंत्र संधि का प्रयास भी करता था। लीग में फ्रांसीसी एजेंडा के आने से एक अवरोध पैदा हो जाता था क्योंकि निरस्त्रीकरण के मुद्दे पर फ्रांसीसी दुराग्रह के कारण अंग्रेजों को काफी क्षोभ होता था। इस स्थिति में फ्रांसीसी द्विपक्षीयता की नीति की ओर बढ़े।

इस परिवर्तन के फलस्वरूप 1925 में लोकार्नो संधि की गई। जर्मनी ने पहले भी अनुरोध किया था कि फ्रांस और जर्मनी के बीच एक दूसरे पर आक्रमण न करने की संधि की जाए जिसमें बहुत कुछ ब्रिटेन और बेल्जियम को भी शामिल होना था। इसी अनुरोध के फलस्वरूप लोकार्नो संधि को अंजाम दिया गया। 1925

में अंग्रजों ने इस प्रकार की संधि को स्वीकार किया जिसमें बेल्जियम जर्मन सीमा प्रदेश भी शामिल थे। लोकार्नो संधि का निष्कर्ष इस प्रकार सामने आया : ब्रिटेन भविष्य में जर्मन आक्रमण के खिलाफ बेल्जियम के सीमा प्रदेशों की रक्षा करेगा और पूर्व में फ्रांस पौलेंड और चेकोस्लोवाकिया की रक्षा करेगा। जर्मनी लीग ऑफ नेशन्स में शामिल होगा। लोकार्नो संधियों के बाद 1928 में केलॉग-ब्रियां संधि हुई जिसे पेरिस की संधि के नाम से जाना गया। यह संधि अपने क्षेत्र में सार्वभौम थी और इस पर हस्ताक्षर करने वालों ने अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में युद्ध को एक अस्त्र के रूप में अपनाए जाने की भर्त्सना की। अन्त में 65 राज्यों ने इस संधि पर हस्ताक्षर किए।

संधियों की श्रृंखला और गहन कूटनीति से यूरोप में शांति का माहौल कायम हुआ। यह आनेवाली आंधी के पहले की खामोशी थी और यह खामोशी बहुत जल्द ही भंग होने वाली थी।

25.7 आर्थिक संकट

युद्ध के तुरंत बाद यूरोपीय उद्योग में अमेरीकी अनुभवों के आधार पर सुधार किए गए। फोर्ड की नई कार्य पद्धति और नई श्रम व्यवस्था और स्तर के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्पादकता तेजी से बढ़ी। अमेरिका (प्रथम विश्व युद्ध के बाद यह विश्व का प्रमुख राष्ट्र बन गया) की सफलता ने यूरोप के लिए विकास का एक नमूना सामने रखा। लेनिन से लेकर मुसोलिनी जैसे अलग विचारों वाले नेताओं ने भी अमेरिकी कारखाना सुधार और श्रम व्यवस्था की प्रशंसा की।

वस्तुत: जर्मनी से लेकर रूस तक, फ्रांस से लेकर इटली तक, अमेरिकी शैली के सुधार के विभिन्न रूप सामने आए। इन सभी सुधारों को सस्ते अमेरिकी ऋण, मशीनरी, और पूंजीगत माल का समर्थन प्राप्त था। वस्तुत: इस युग में विश्व व्यापार के फिर से गतिशील होने का प्रमुख कारण यह था कि विश्व अर्थव्यवस्था में अमेरिका के ऋणदाताओं ने भारी मात्रा में कर्ज दिया था।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में यूरोप की गतिशीलता लगभग पूर्णत: अमेरिकी ऋण पर अवलंबित थी। इस प्रक्रिया के दौरान अमेरिकी ऋणदाताओं को लगातार अपने निवेश पर मुनाफा होने लगा। उदाहरण के लिए 1920 के दशक में अमेरिका ने जर्मनी को ऋण दिया। यह राशि जर्मनी ने हर्जाने के तौर पर फ्रांस और ब्रिटेन को दे दिया। फ्रांस और ब्रिटेन ने यह पैसा युद्ध के दौरान अमेरिका से लिए गए कर्जों के भुगतान के रूप में किया। विश्व अर्थव्यवस्था मुद्रा आपूर्ति से आप्लावित हो गई जिसमें अधिकांश पैसा अमेरिका का था। इस माहौल में सट्टेबाजी का बाजार गर्म हुआ और सट्टेबाजों ने अपना महत्व बढ़ाना शुरू कर दिया। इस युग में वित्तीय घपलों और कुप्रबंधों का बोलबाला रहा जो दशक का अंत आते-आते अपने चरम सीमा पर पहुंच गया।

वस्तुत: इस संकट का शुरुआत उत्तरी अमेरिका में कृषि मूल्यों में आई तीव्र गिरावट के साथ शुरू हुई। यूरोप में आर्थिक प्रगति होने के साथ-साथ विश्व स्तर पर कृषि अधिशेष भी बढ़ा और उत्तरी अमेरीकी उत्पादकों को मूल्यों में आई तीव्र गिरावट के कारण बहुत नुकसान उठाना पड़ा (इन्होंने युद्ध काल में अपना उत्पादन काफी बढ़ा लिया था)। अमेरीकी कृषि में दिवालियापन शुरू हो गया और खर्चे में काफी कमी आई। अब बहुत जल्द ही स्टॉक मार्केट भी प्रभावित होने वाला था।

अक्टूबर 1929 में घटनाएं करवट लेने लगीं। 24 और 29 अक्टूबर 1929 को तेरह और साढ़े सोलह मिलियन शेयर बेचे गए। इसी महीने अमेरीकी निवेशकों को 40 बिलियन डालर का घाटा लगा जो उस समय की एक बड़ी राशि थी। इस तीव्र गिरावट से दुनिया भर में कृषीय मूल्यों में कमी आने लगी। विश्व अर्थव्यवस्था में कृषि उत्पादों के एक दूसरे से संबंध होने के कारण लाखों प्राथमिक उत्पादक प्रभावित हुए। चीनी, कपास, तम्बाकू, गेहूं, चावल और अन्य कई उत्पादों के दाम में आई गिरावट के कारण इनके निर्यात पर भी प्रभाव पड़ा। बड़े-बड़े बागान और खेत बेकार हो गए और लाखों लोग बेरोजगार हो गए। दुनिया भर में लाखों कामगार लोगों की क्रयशक्ति ध्वस्त हो गई और अन्य वस्तुओं की मांग में भी गिरावट आने लगी। राष्ट्रों के बीच व्यापार कम होने लगा। कारखाने बंद हो गए, मजदूर सड़कों पर आ गए और आय में अस्थिरता आ गई। विश्व अर्थव्यवस्था पर अमेरीकी प्रभाव को सारी दुनिया महसूस करने लगी जैसे ही अमेरीकी बैंकों ने पैसा देना बंद किया वैसे ही विश्व स्तर पर ऋण स्रोत सूख गए (केवल अमेरिकी बैंक ही दीर्घकालीन ऋण देने का जोखिम उठा सके)।

कार्ल मार्क्स जैसे लेखकों ने इस संकट का पूर्वानुमान पहले ही कर लिया था और उन्होंने पूंजीवाद की इस प्रवृत्ति का जिक्र किया था। उन्होंने बताया था कि इसके अव्यवस्थित और अनियोजित स्वरूप के कारण एक खास समय में जरूरत से ज्यादा उत्पादन का संकट पैदा हो जाएगा। वस्तुतः कई लेखकों ने पूंजीवाद के इस जरूरत से ज्यादा उत्पादन की प्रवृत्ति (कम मजदूरी के साथ) का संबंध साम्राज्यवाद के सिद्धांत और घरेलू स्तर पर कम उपयोग के साथ जोड़ा। हालांकि विश्व अर्थव्यवस्था में इसके पहले आई गिरावटों की तुलना में 1929 के आंरभ में आई गिरावट का परिणाम गंभीर साबित हुआ। 1871 की मंदी इस अर्थ में महत्वपूर्ण थी कि इसने विश्व अर्थव्यवस्था में ब्रिटिश वर्चस्व को समाप्त किया परंतु उस समय विश्व स्तर पर मंदी नहीं आई। 1929 की व्यापक मंदी ने विश्व अर्थव्यवस्था की सभी ऊंचाइयों को तोड़ दिया। यह तो होना ही था। 1871 के बाद से विश्व अर्थव्यवस्था तेजी से फैली थी और विश्व के अधिक क्षेत्र इसमें शामिल हो गए थे और वहां मुद्रा व्यवस्था के अधीन आए थे। इस कारण यह संकट अब पूरी दुनिया में फैल गया।

केवल सोवियत संघ ही ऐसा देश था जो इस संकट से बचा रहा 'क्योंकि वहां एक देश में समाजवाद' का निर्माण हो रहा था। सोवियत अर्थव्यवस्था में दो पक्षों को आपस में संबद्ध किया गया था। सबसे पहले ग्रामीण निजी स्वामित्व को समाप्त कर सामूहिक रूप से खेती का अभियान चलाया गया और इससे प्राप्त अधिशेष को उद्योग में लगाया गया। पंचवर्षीय योजना के तहत औद्योगीकरण किया गया। 1928 में पहली पंचवर्षीय योजना शुरू की गई और एक लक्ष्य के तहत काम शुरु किया गया और यह दावा किया गया कि 1932 तक यानी एक साल पहले ही लक्ष्य से ज्यादा की प्राप्ति कर ली गई। रूसी उद्योग को फिर से गठित किया गया और सामूहिक खेती को बढ़ावा दिया गया। हालांकि यह भी जान लेना चाहिए कि इस कृषीय रूपांतरण में बड़े पैमाने पर लोगों की जानें गईं और उत्पादकता में कमी आई। इकाई 28 में इन पक्षों पर विस्तार से विचार किया जाएगा।

सोवियत नियोजन में उत्पादक वस्तुओं की तुलना में भारी उद्योग और इंजीनियरिंग के सामानों के उत्पादन पर विशेष बल दिया गया। आधिकारिक तौर पर इसके परिणाम बहुत ही प्रभावशाली रहे परंतु इसका प्रभाव मिला-जुला था। उत्पादन में वृद्धि जरूर हुई परंतु गुणवत्ता से समझौता करना पड़ा और बड़े पैमाने पर बर्बादी हुई। हालांकि उस समय सोवियत उद्योग का एकतरफा विकास महसूस नहीं किया गया। युद्ध के बाद इसे शिद्दत के साथ महसूस किया गया। सोवियत नियोजन की यह तीव्रता सोवियत नेताओं द्वारा महसूस किए जाने वाले खतरे का परिणाम था। स्टालिन ने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा की थी कि यदि सोवियत संघ को पश्चिम के साथ टक्कर लेनी है तो दस वर्षों में उनके स्तर पर पहुँचना होगा वरना वे हमें समाप्त कर देंगे। जिस समय पूंजीवादी विश्व आर्थिक संकट झेल रहा था उस समय किसी भी दृष्टि से सोवियत संघ की स्थिति काफी अच्छी थी। नियोजन के कारण सोवियत संघ मंदी की मार से बचा रहा। हालांकि उस समय सोवियत नियोजन की कमियां सामने नहीं आई थी और विश्व के कई हिस्सों में सुधारवादी सोवियत संघ की ओर आशा की नजर से देख रहे थे।

25.8 1920 के दशक को समझना

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कार्ल पोलोनी ने विचार प्रस्तुत किया था कि प्रथम विश्व युद्ध ने उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप का आधार ध्वस्त कर दिया था। सभी मामलों में आर्थिक संकट ने इस प्रकिया को पूरा कर दिया। यह संकट उन्नीसवीं शताब्दी के आर्थिक उदारवाद पर अन्तिम प्रहार था जो आत्मनियंत्रित विश्व बाजार और मुक्त व्यापार व्यवस्था संबंधी ब्रिटिश अवधारणा पर आधारित था। इस संकट के बाद राज्य की भूमिका प्रमुखता पाने लगी। इस रूपांतरण में अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड केन्स की रचनाओं का बहुत प्रभाव पड़ा जिसने यूरोप और अमेरिका में आर्थिक पुनरुत्थान को एक दिशा दिखाई। केन्स ने बताया कि वस्तुओं की मांग में वृद्धि करने के लिए राज्य का हस्तक्षेप जरूरी है। अतः सार्वजनिक कार्य करने, कमजोर उद्योगों को हस्तगत करने और बेरोजगारों को बेरोजगारी भत्ता देने के लिए राज्य को हस्तक्षेप करना होगा। यहीं से बीसवीं शताब्दी के उदारवाद में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। मुक्त व्यापार और निजी पूंजी के बजाय अब राज्य को मांग बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी थी। केन्स का विचार यूरोप और उत्तरी अमेरिका में मध्यमार्गी और वामपंथी राजनीति के लिए सक्रिय विचार के रूप में काम कर रहा था जो ब्रिटेन में लेबर पार्टी से लेकर अमेरिका में रूजवेल्ट के न्यू डील तक में प्रतिबिंबित होता है।

दक्षिणपंथियों ने भी इस संकट की आलोचना की। इनमें से अधिकांश विचार जर्मनी से प्रस्फुटित हुए। ओसवाल्ड स्पेंगलर ने 1918 में अपनी पुस्तक *डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट* लिखी जिसे 1920 के दशक में काफी पढ़ा गया। इसमें स्पेंगलर ने बताया था कि औद्योगीकरण में लिप्त पश्चिमी सभ्यता बीसवीं शताब्दी में पतन की ओर अग्रसर थी। स्पेंगलर ने *लेबेन्सफिलॉसफी* (जीवन का दर्शन) की जो वैकल्पिक अवधारणा प्रस्तुत की उसमें शास्त्रीय आधुनिकता की तर्कसंगतता पर प्रहार किया गया और 'जीवन' को एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया। राजनैतिक विचारक कार्ल श्मिट ने 1920 के दशक में संसदीय प्रजातंत्र की आलोचना करते हुए जनमत आधारित तानाशाही की वकालत की। दार्शनिक मार्टीन हेडेगर ने पश्चिमी आधुनिकता की आलोचना की जिसे उन्होंने प्रौद्योगिकी हिंसा और जीवन के खिलाफ एक दर्शन के रूप में परिभाषित किया। कई तरीकों से दक्षिण पंथियों के दर्शन ने 1930 के दशक में नाजी शासन व्यवस्था के लिए आधार का काम किया।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद दक्षिणपंथियों की सफलता क्षणभंगुर समझौतों पर टिकी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उदारवाद पर पहला प्रहार युद्ध ने किया और दूसरा प्रहार 1930 के दशक में समझौतों की समाप्ति के साथ हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) प्रथम विश्व युद्ध के बाद फ्रांस और ब्रिटेन की राजनीति और अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषताओं की विचेना कीजिए।

....

....

....

....

....

2) 1929 के आर्थिक संकट पर दस पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

25.9 सारांश

इस इकाई में प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति और 1929 की मंदी के बीच के समय पर विचार किया गय है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद यूरोप में वैचारिक आधारों पर दक्षिणपंथी, वामपंथी और मध्यमार्गी शासन व्यवस्थाओं का विभाजन एक प्रमुख विशेषता थी। इस इकाई में मुख्य रूप से 'मध्यमार्गी' अर्थात जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन के जनतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं का जिक्र किया गया है। इन तीनों शासन व्यवस्थाओं के सामने एक खास प्रकार की समस्या थी जिनका समाधान उन्हें करना था। वर्साय की संधि के द्वारा जर्मनी पर अपमानजनक शर्तें आरोपित की गई थीं। वाइमार गणतंत्र ने, जो मुख्य रूप से दक्षिणपंथी संगठन था, जर्मनी को युद्ध पूर्व आर्थिक स्थिति तक पहुंचाने का प्रयत्न किया। परंतु यह प्रयोग असफल रहा और इसने नाजीवाद के रूप में एक अति दक्षिणपंथी संगठन का मार्ग प्रशस्त किया। ब्रिटेन मध्यमार्गी वामपंथ पर चला और उदारवादियों के स्थान पर लेबर पार्टी एक प्रमुख राजनैतिक ताकत के रूप में उभरी। फ्रांस ने युद्ध

के बाद अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत कर ली और यहां दक्षिणपंथी और वामपंथी विभाजन स्पष्ट रूप से उभरा; वहां साझा सरकारें नहीं बनी बल्कि दोनों ताकतें एक दूसरे का विकल्प बनी रहीं।

इस त्रिपक्षीय वैचारिक विभाजन के अलावा युद्ध के बाद हुए विकास के परिणामस्वरूप यूरोप और समूचे विश्व को अभूतपूर्व आर्थिक संकट ने अपने शिकंजे में ले लिया। युद्ध के बाद की अवधि में होने वाले आर्थिक उछाल, कृषीय उत्पादों का जरूरत से ज्यादा उत्पादन और विश्व अर्थव्यवस्था पर अमेरिका के वर्चस्व ने विश्व पूंजीवाद के लिए अभूतपूर्व संकट पैदा कर दिया। संभवतः सोवियत रूस ही एक ऐसा देश था जो इस विश्व संकट से अप्रभावित रहा।

1920 का दशक यूरोप के इतिहास में उथल-पुथल से परिपूर्ण था। यदि विश्व युद्ध ने उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप का आधार नष्ट कर दिया तो मंदी ने यूरोप के रूपांतरण की प्रक्रिया पूरी कर दी। यूरोप पूरी तरह परिवर्तित हो गया। अगली इकाई में हम दक्षिणपंथी शासन व्यवस्थाओं – कंजरवेटिव पार्टी से लेकर फासी शासन व्यवस्थाओं – की प्रकृति पर विचार करेंगे।

25.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 25.3

2) इस प्रश्न का उत्तर देते समय यह बताइए कि जर्मनी पर किस प्रकार कड़ी शर्तें लगाई गई थीं मसलन, जर्मन सेना की शक्ति कम कर दी गई थी और उसके सारे उपनिवेश छीन लिए गए थे। देखिए भाग 25.3

3) इस प्रश्न का उत्तर देते समय आर्थिक संकट के प्रभाव और वाईमार गणतंत्र द्वारा संभ्रांत वर्ग के समर्थन खोने का जिक्र कर सकते हैं। देखिए भाग 25.4

बोध प्रश्न 2

1) जहां एक ओर ब्रिटिश राजनैतिक व्यवस्था में उदारवादियों के स्थान पर नियंत्रण लेबर पार्टी के हाथ में चला गया वहीं फ्रांस में राजनीतिक व्यवस्था में दक्षिणपंथियों और वामपंथियों के बीच तीखा विभाजन बना रहा। इस प्रश्न का उत्तर देते समय अर्थव्यवस्था और राजनीति के संबंध का भी उल्लेख कीजिए। देखिए उपभाग 25.2.1 और 25.2.2

2) देखिए भाग 25.7 इसमें विशेष रूप से अमेरिका के सर्वोच्च आर्थिक शक्ति के रूप उभरने और विश्व अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव का उल्लेख कीजिए।

इकाई 26 प्रतिक्रांति-I : फासीवाद से अनुदार तानाशाही तक

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य यूरोप में दो विश्व युद्धों के बीच अति दक्षिणपंथी आंदोलनों और शासन व्यवस्थाओं के विकास की चर्चा करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- फासीवाद के कुछ सामान्य लक्षण और इसके संगठन की प्रवृत्ति को जान सकेंगे,
- यूरोप में विभिन्न देशों में फासीवाद के वैचारिक स्वरूपों और संगठनात्मक शैली का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- इटली और स्पेन जैसे देशों में फासीवादी शासन व्यवस्था की प्रकृति को पहचान सकेंगे, और
- समूचे यूरोप में अर्धफासीवादी शासन व्यवस्थाओं और संगठनों के फैलाव का विवेचन कर सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

18वीं और 19वीं शताब्दी में चुनावों, दलों और प्रतिनिधियों के जरिए लोगों को संगठित करने की राजनीति को संस्थागत रूप देने का काम शुरू हो चुका था। इसके कारण वामपंथी से लेकर दक्षिणपंथी तक के कई विकल्प सामने आए। दबा हुआ सामाजिक मतभेद भी उभर कर सामने आ गया। 1870 के बाद एकाधिकार पूंजीवाद के विकास और इसके परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता से उपजे अतिराष्ट्रवादी विचारधाराओं और सैन्यवाद को प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यूरोप में दक्षिणपंथी फासीवादी तानाशाही के उदय की पृष्ठभूमि के रूप में देखा जा सकता है। इस नए संदर्भ में कार्य स्थल के बाहर बने नए और गैर वर्गीय

पहचानों को राजनैतिक समर्थन का आधार बनाया गया। इसके परिणामस्वरूप 'युद्ध सैनिक', 'करदाता', 'खेलप्रेमी' या 'राष्ट्रीय नागरिक' जैसी अनेक जनतांत्रिक संस्थाएं निर्मित की गईं।

पिछली इकाई में आपने युद्धोत्तर काल में यूरोप में जन्मी तीन विचारधाराओं और उनके वामपंथी, दक्षिणपंथी और मध्यमार्गी शासन व्यवस्थाओं का परिचय प्राप्त किया। पिछली इकाई में आपको 'मध्यमार्ग' अर्थात 1920 के दशक में ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी के उदारवादी जनतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं की जानकारी दी गई। इस इकाई में दक्षिणपंथी अर्थात इटली, जर्मनी (1930 और 1940 के दशक के आरंभ में हिटलर के नेतृत्व में) और स्पेन जैसे देशों, फासीवादी आंदोलनों और शासन व्यवस्थाओं पर विचार किया जा रहा है। इस इकाई में सबसे पहले फासीवाद के सामान्य लक्षणों की चर्चा की गई है। इसके बाद इसमें जर्मनी के अलावा अन्य देशों के संदर्भ में फासीवाद की चर्चा की गई है। जर्मनी पर अगली इकाई में अलग से चर्चा की जाएगी।

26.2. फासीवाद के सामान्य लक्षण

फासीवाद की व्याख्या कई रूपों में की जाती है। इसकी कुछ महत्वपूर्ण व्याख्याएं इस प्रकार हैं :

- मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार वित्तीय पूंजीवाद का एक हिंसक, तानाशाही एजेंट
- मध्यमार्गीय सुधारवाद की एक अनूठी अभिव्यक्ति;
- सांस्कृतिक और नैतिक गिरावट का प्रतिफलन;
- एक प्रकार के मानसिक असंतुलन और विकृति का परिणाम;
- पारिवारिक संबंधों, चर्च, श्रेणि और निवास स्थान आदि परम्परागत पहचानों के टूटने पर बेढंगे जनसमूह के उदय का प्रतिफलन; और
- बोनापार्टवाद का एक रूप या किसी खास वर्ग के प्रभुत्व से स्वतंत्र स्वायत्त सत्तावादी सरकार।

इस सूची में और भी कई बातें जोड़ी जा सकती हैं परंतु इन अलग-अलग व्याख्याओं से यह पता चल जाता है कि फासीवाद के अनेक चेहरे होते हैं। यूरोप में फासीवाद का उदय समग्र राष्ट्रवाद (अन्य सभी प्रकार के मानवीय पहचानों को पीछे छोड़ते हुए राष्ट्र की सौहार्द्रपूर्ण सामूहिकता में विश्वास) और गैर मार्क्सवादी समाजवाद के मिलन से हुआ। इस समग्र राष्ट्रवाद में साम्यवाद, संसद, लीग ऑफ नेशन्स, वित्तीय पूंज़ी और बहुराष्ट्रीय यहूदी समुदाय जैसे अन्तरराष्ट्रीय संगठनों और आंदोलनों तथा अन्तर-राष्ट्रवाद के प्रति गहरा वैमनस्य भाव था। फासीवाद का उदय एक ऐसे सुधारवादी आंदोलन के रूप में हुआ जिसमें उदारवाद, प्रजातंत्र और मार्क्सवाद जैसी अवधारणाओं को अस्वीकार किया गया। फासीवादी विचारधारा ने बौद्धिक जागरण से प्राप्त राजनैतिक संस्कृति और इसकी विचारधाराओं जैसे तर्कसंगत भौतिकवाद, व्यक्तिवाद और बहुल स्वायत्तता जैसे सिद्धांतों को नकार दिया। फासीवाद के अन्य सांस्कृतिक चेहरे सक्रियतावाद, जैवशक्तिवाद और सामाजिक-डार्विनवाद के रूप में उभर कर आते हैं। सोरेल का कार्य-दर्शन अन्तर्ज्ञान, ऊर्जा और जीवन शक्ति पर आधारित था। इसके सक्रियतावाद का उपयोग जनसमुदाय को संगठित करने के लिए किया जाता था। सामाजिक डार्विनवाद का मानना था कि समाज में लोग जीने के लिए आपस में संघर्ष करते हैं और इसमें श्रेष्ठ समूहों और नस्लों की जीत होती है।

फासीवाद का मूल 19वीं शताब्दी में उदारवादी प्रजातंत्र, संसदीय प्रणाली और मार्क्सवादी समाजवाद की आलोचनाओं में ढूंढा जा सकता है। हालांकि इनके विचार अनुदार सत्तवादी समूहों से अलग थे। सामान्य तौर पर धार्मिक विचारधारा अनुदार सत्तावाद का आधार थी जबकि फासीवाद जैवशक्तिवाद, गैर तर्कसंगतता या धर्मनिरपेक्ष नव-आदर्शवाद जैसे नए सांस्कृतिक दर्शनों पर आधारित था। अनुदारवादियों ने जहां परम्परागत विरासत का सहारा लिया वहीं फासीवादियों ने सुधारवादी संस्थागत परिवर्तन का आह्वान किया।

युद्ध से पैदा हुई सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों से फासीवाद को ठोस रूप ग्रहण करने में मदद मिली। इसने जनता और आर्थिक संसाधनों को जुटाने में राष्ट्रवाद की क्षमता को उजागर किया। इसने आधुनिक राज्य में आदेश, प्राधिकार, नैतिक समर्थन और अधिप्रचार के महत्व को प्रदर्शित किया। युद्ध के बाद, फासीवाद एक समान और एक सूत्र में बंधे लोगों की दृष्टि के रूप में उदित हुआ, जिन्हें सामुदायिक उपासना गीतों और मशाल जुलूसों के जरिए एकजुट किया गया और इसमें सम्प्रदाय विशेष की शारीरिक

शक्ति, हिंसा और क्रूरता को उजागर किया गया। ड्यूस (इटली) और फ्यूहरर (जर्मनी) के रूप में नेता को कमोबेश एक धार्मिक और पवित्र व्यक्तित्व मान लिया गया। जनतांत्रिक-बुर्जुआ संस्थाओं और मूल्यों का विरोध करने के बावजूद फासीवादी जनता के उपयोग, जनमंत और उनके द्वारा अपनाए गए राजनीति के तरीकों का इस्तेमाल करने में नहीं हिचके; परंतु वे समाज में बहुलता के सम्मान, व्यक्ति की स्वतंत्रता और नागरिक तथा राजनैतिक स्वतंत्रताओं पर आधारित प्रजातंत्र का विरोध करते थे। उन्होंने राजनीति का सैन्यीकरण कर और सैन्य प्रतीकों और शब्दावली का इस्तेमाल कर जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया। राष्ट्रवाद की भावना उभारने और लगातार संघर्ष करने के साथ-साथ विरोधियों का सफाया करने के लिए पार्टी सेना का अक्सर उपयोग किया जाता था। अपने समर्थकों के साथ राजनैतिक संबंधों के सैन्यकरण के क्रम में खासतौर पर पौरुष शक्ति को महत्व दिया गया और इसे समाज के एक समग्र के दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत किया गया। समग्र समाज संबंधी उनके इस दृष्टिकोण के अनुसार समाज के विभिन्न अंगों के आपसी संरचनात्मक संबंध केवल उनकी भूमिकाओं को परिभाषित और असीमित करते हैं और इसमें व्यक्तिगत पहचान और अधिकारों की भूमिका नगण्य होती है। युवाओं का उत्तेजक आह्वान और सत्तावाद, करिश्मा, नेतृत्व की व्यक्तिगत शैली (ऐच्छिक या अनैच्छिक) की खास प्रवृत्ति राजनीति के सैन्यकरण से जुड़े कुछ अन्य महत्वपूर्ण लक्षण थे।
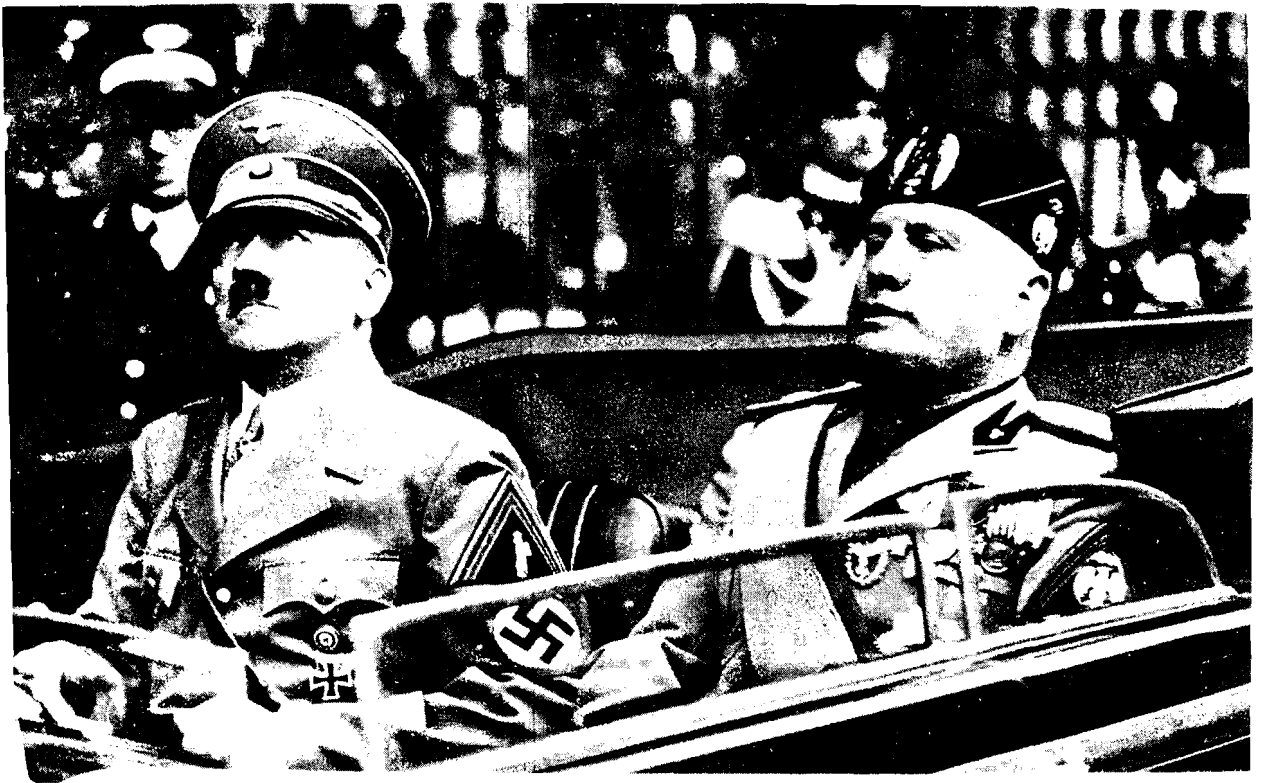
चित्र 1: फ्यूहरर और ड्यूसः हिटलर और मुसोलिनी, फासीवादी नेता

एक प्रकार का नियमित, बहु-वर्गीय, समन्वित राष्ट्रीय आर्थिक ढांचा (जिसे राष्ट्रीय संघ, राष्ट्रीय समाजवादी या राष्ट्रीय सिंडिकेटिस्ट के विविध नामों से जाना जाता था) भी फासीवादी दर्शन का एक अन्य महत्वपूर्ण लक्षण था। साम्राज्य का लक्ष्य या कम से कम अन्य ताकतों के साथ राष्ट्र के संबंधों में मूलभूत बदलाव भी एक निर्णायक कारक था।

26.3 फासीवादी की राजनैतिक पृष्ठभूमि

फासीवादी विचारों की शुरुआत 19वीं शताब्दी के अन्त और 20वीं शताब्दी के आरंभ से मानी जा सकती है। सामूहिकता के विचार (लोगों के समूह, वर्ग संघर्ष ने मुक्त उत्पादकों के समूह के रूप में) का उदय व्यक्तिवाद, सामाजिक आण्विकरण और नए केंद्रीकृत राज्यों के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। आरंभ में यह व्यक्तिगत

आधारों पर बंधे रहस्यात्मक 'समुदाय' की सामंती विचारधारा का अवशेष था। परंतु धीरे-धीरे इसने आधुनिक सुधारवादी, वर्ग-सामूहिकता का रूप धारण कर लिया। सामाजिक सामूहिकता (निगमों या संघों को दी गई स्वायतता पर आधारित) और राज्य सामूहिकता इसके दो विशिष्ट रूप थे। दूसरे स्तर पर अनुदारवाद से नवसत्तावाद की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। ऐक्शन फ्रांसेसे (फ्रांस में इसकी स्थापना 1899 में हुई) इसी नवसत्तावादी, नवराजतंत्रीय राष्ट्रवाद का प्रतिनिधित्व करता था। वैधानिक राजतंत्र और सामूहिक प्रतिनिधित्व इसका केंद्रीय सिद्धांत था। इसने शामी विरोधी और आक्रामक युवा कार्यकर्ताओं (फासीवादी सैन्य संगठन का पूर्व रूप) का भी उपयोग किया।

तीसरी प्रवृत्ति के रूप में फासीवादी अधिकारों को ठोस रूप प्रदान किया गया और उसे आधुनिक सुधारवादी अधिकार के रूप में पेश किया गया जिसमें घरेलू आधुनिकीकरण के साथ-साथ सैन्य राष्ट्रवाद का तत्व भी घुला हुआ था। इतालवी राष्ट्रीय संघ (इटालियन नेशनल एसोसिशन 1910 में स्थापित) इसका एक राजनैतिक स्वरूप था। राज्य सामूहिकता के इसके दर्शन के तहत इटली को एक मजबूत शक्तिशाली देश बनाने के लिए औद्योगिक उत्पादन के संयोजन की जरूरत महसूस की गई और इसकी सेना सेम्प्रे प्रॅन्टी (हमेशा तैयार) ने गुंडागर्दी के बल पर वामपंथी आंदोलन को दबाया।1880 के दशक में फ्रांस में पॉल डेरोलडेज की लीग ऑफ पैट्रोयियोस्टस और फ्रांस में बोलांगिस्ट आंदोलन एक प्रकार से जनता को आकर्षित करने, लोगों में सामूहिक राष्ट्रवाद की भावना भरने और सुधार की बात करने वाली संस्थाएं थीं जिनमें फासीवाद की झलक मिलती थी। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आस्ट्रिआई नेता ज्योर्ज रिटर वोन शेनेरर का अखिल जर्मनीवाद और नस्ली राष्ट्रवाद, चेक राष्ट्र समाजवादी पार्टी (1904) में शामिल मौरिस बैरिस का समाजवादी राष्ट्रवाद (1904) और जर्मन राष्ट्रीय समाजवादी कामगार दल और इसके नेता डॉ. वाल्टर रेल और रुडोल्फ जंग हिटलरवादी विचारों और कार्यक्रमों के बहुत करीब थे।

बोध प्रश्न 1

1) फासीवादी आन्दोलन के विकास में युद्ध का क्या योगदान था ?

....

....

....

....

....

2) फासीवाद के सामान्य लक्षण क्या हैं ?

....

....

....

....

....

3) अनुदार दक्षिणपंथी को आप फासीवादी आंदोलन से कैसे अलग करेंगे ? लगभग 5 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

26.4 इटली में फासीवादी राज्य की आधारभूमि

अब तक आप फासीवाद के सामान्य लक्षणों से परिचित हो चुके हैं। अब हम कुछ उदाहरणों का अध्ययन करेंगे। जर्मनी, इटली और स्पेन फासीवाद के कुछ उदाहरण हैं। जर्मन फासीवाद पर अगली इकाई में विचार किया जाएगा। यहां हम इटली और स्पेन में जन्मे फासीवाद के चेहरे को पहचानने का प्रयास करेंगे।

26.4.1 फासीवादी आन्दोलन का उदय और सत्ता पर नियंत्रण

इटली में फासीवाद के उदय के लिए कुछ घटनाएं और प्रवृत्तियां जिम्मेदार थीं। युद्ध में इटली की भागीदारी के मुद्दे पर 1914 में रेडिकल सिंडिकेलिस्ट कन्फिडिरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन (अतिवादी मजदूर संघ) में विभाजन हो गया। सिंडेकेलिस्ट 'उत्पादकों' की 'आत्म मुक्ति' में विश्वास रखते थे जो 'राज्य सत्ता की प्राप्ति' के जरिए नहीं बल्कि 'कारखाना स्तर पर नियमन' द्वारा प्राप्त किया जा सकता था। समय आने पर मजदूरों के सिंडिकेट या संघों को राज्य का स्थान लेना था जिन्हें उत्पादकों के आत्म शासन के औजार के रूप में काम करना था। फासीवाद की ओर बढ़े सिंडिकेलिस्टों ने अतिराष्ट्रवाद का अनुगमन किया और उन्होंने राष्ट्र को प्रोलेटेरियन या प्लुटोक्रेटिक (वर्ग संदर्भ में) के रूप में व्याख्यायित किया। भविष्यवाणीवादियों ने परम्परागत रीति रिवाजों और मौजूदा संस्थाओं को अस्वीकार कर दिया था और हिंसा का पक्ष लिया था। वे गति, शक्ति, मोटर और मशीन या सभी प्रकार की आधुनिक प्रौद्योगिकीय संभावनाओं से मुग्ध थे। इनके विचारों का भी काफी प्रभाव पड़ा। मुसोलिनी का नेतृत्व, और उसके जनता को इकट्ठा करने और राष्ट्रीय क्रांति संबंधी समाजवादी विचार और दृष्टिकोण तीसरा प्रमुख कारक था।

फासीवादियों ने आरंभ में मिलान में अपने कार्यक्रम के तहत *फैसाय डी कोमबैटिमेन्टो* (1919) की शुरुआत की जिसने गणतंत्र की स्थापना की मांग की और अतिवादी जनतांत्रिक और समाजवादी परिवर्तन किए जाने की आवाज उठाई। उन्होंने युद्ध के समय पूंजीपतियों द्वारा कमाए गए भारी मुनाफे को जब्त करने, बड़े ज्वाइंट स्टॉक कम्पनियों को दबाने और भूमिहीन किसानों के लिए जमीन की मांग की। 1920 में इस कार्यक्रम से ये वामपंथी तत्व निकाल दिए गए और केवल भावनात्मक स्तर पर घोर राष्ट्रवाद, युद्ध का औचित्य और राष्ट्रीयता महानता के सरोकारों तथा समाजवादी दल के प्रति विद्वेष जैसी भावनाओं को स्थान दिया। खासकर उत्तरी और मध्य इटली–पो वैली और टसकनी–में फासीवादी दस्तों का जन्म हुआ जिसका नेतृत्व अवकाश प्राप्त सैनिकों ने किया और स्थानीय पुलिस और सेना ने समर्थन दिया। इन दस्तों का निर्माण वामपंथ के वास्तविक या दिखावटी खतरे का सामना करने के लिए किया गया। इन दस्तों को अनुशासित करने के लिए जनवरी 1923 में मुसोलिनी ने स्थानीय दस्तों को अनुशासित करने और इनके नेताओं की शक्तियों पर पाबंदी लगाने के लिए फासीवाद सैन्य दल का निर्माण किया।

रोम में फासीवादियों ने जुलूस का जिस अव्यवस्थित ढंग से संयोजन किया (अक्टूबर 1922) उससे यह पता चलता है कि यदि राज्य में निर्णय लेने की शक्ति होती और उन्हें सेना के एक भाग का मूक समर्थन न मिला होता तो उन्हें सत्ता कभी प्राप्त नहीं होती। 29 अक्टूबर 1922 को राजा ने मुसोलिनी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया जिसने सत्ता प्राप्त करने के बाद कुछ दिनों तक संवैधानिक नियमों का पालन किया। हालांकि मुसोलिनी ने यह महसूस किया कि सत्ता में बने रहने के लिए बहुवर्गीय राष्ट्रवादी आंदोलनों को भी दक्षिणपंथी ताकतों से समझौता या साझा करना पड़ेगा। फरवरी 1923 में फासीवादी दल और इतालवी राष्ट्रवादी संघ (नेशनलिस्ट एसोसिएशन ऑफ इटली) का विलयन हो गया। सेना के अधिकारियों, शिक्षाविदों, प्रशासकों और व्यापारियों का व्यापक समर्थन प्राप्त करने के लिए अनुदारवादी, संभ्रांत, राजतंत्रीय दक्षिणपंथी दल के साथ यह विलयन जरूरी था। परम्परागत संभ्रांत वर्ग से समझौता करने की छाप फासीवाद दल और राज्य पर भी पड़ी। 1923 में एसेरबो बिल पारित करने में परम्परागत दक्षिणपंथी समूहों ने फासीवादियों को समर्थन दिया जिसमें यह प्रस्ताव किया गया कि चुनाव में एक चौथाई मत प्राप्त कर लेने पर किसी दल को अपने आप संसद में दो तिहाई बहुमत प्राप्त हो जाएगा।

26.4.2 शासन व्यवस्था का दृढ़ीकरण

ताकत और धोखाधड़ी का इस्तेमाल कर फासीवादियों ने 1924 का चुनाव जीत लिया और 1924 में समाजवादी उप-प्रधान मेटेओट्टी की मृत्यु से उत्पन्न अस्थाई अफरा-तफरी के बाद मुसोलिनी तानाशाही को संस्थागत

रूप देने के काम में लग गया। अक्टूबर 1926 में सभी विरोधी दलों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अखबारों पर बंधन लगा दिए गए और राज्य की सुरक्षा के लिए सार्वजनिक सुरक्षा कानून (1926) बनाकर व्यक्तिगत स्वतंत्रता समाप्त कर दी गई। सिंडिकेट कानून (1926) बनाकर उत्पादन के हित में श्रम को राज्य के नियंत्रण में ले लिया गया। कानून बनाकर फासीवादी संघों को समझौते का एकाधिकार दिया गया। अनिवार्य मध्यस्थता के लिए ट्रिब्यूनल बनाए गए और हड़तालों तथा काम रोको जैसे आंदोलनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। फासीवाद दल को भी नौकरशाही के ढांचे में ढाला गया। अक्टूबर 1926 में बनाए गए दल के नए संविधान में सभी शक्तियों का केंद्रीकरण किया गया जिसमें सभी पदों पर नियुक्तियां ऊपर से आरोपित होने का प्रावधान था। 1927 में मुसोलिनी ने दल और राज्य के बीच के संबंध के प्रश्न को सुलझा लिया जिसमें राज्य को वर्चस्व दिया गया। 1926 और 1929 के बीच 60 हजार दस्ता सदस्यों को दल से निष्काषित कर दिया गया और सिंडिकेट के नेता एडमोंडों रोसोनी को 1928 में हटा दिया गया। 1920 और 1930 के दशकों में आरंभिक फासीवाद के उत्पादन और औद्योगीकरण के लक्ष्यों को दरकिनार कर दिया गया और अर्ध सामूहिकता की सिंडिकेलिस्ट परियोजनाओं को औपचारिक रूप से समाप्त किए बिना निजी पूंजी से समझौता कर लिया गया। नियोक्ताओं और कर्मचारियों के 22 नए संयुक्त निगमों की सहायता से 1934 में औपचारिक रूप से 'निगम राज्य' (कॉरपोरेट स्टेट) की स्थापना की गई। परंतु इनके पास आर्थिक निर्णय लेने का वास्तविक अधिकार नहीं था।

मुसोलिनी ने चर्च को भी प्रसन्न करने की कोशिश की। युद्ध के दौरान टूटे हुए चर्चों की मरम्मत करने के लिए बड़ी अनुदान राशियां प्रदान की गईं। 1923 में माध्यमिक विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया गया। 1929 में लैटेरन समझौते पर हस्ताक्षर करके रोमन समस्या (रोम और पोप की प्रभुसत्ता का प्रश्न) को अन्तिम रूप से निपटा दिया गया। वैटिकन को संप्रभु राज्य बना दिया गया। 1860 और 1870 में पोप के क्षेत्रों के नुकसान के मुआवजे के तौर पर धन प्रदान किया गया। चर्च के प्रमुख संगठन कैथोलिक ऐक्शन को स्वतंत्रता प्रदान की गई बशर्ते कि वे राजनीति से अलग रहें।

26.4.3 फासीवाद जनसंगठनों के प्रमुख प्रकार

1922 में एक परामर्श संस्था के रूप में फासीवादी महापरिषद की स्थापना की गई जिसे 1928 में राज्य का एक अंग बना दिया गया परंतु निचले स्तर पर काम कर रहे संगठन ज्यादा महत्वपूर्ण थे। फासीवाद दस्तों के बीच से सैन्य दस्ते विकसित किए गए। उन्हें सभी तरह के अस्त्र चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था और इसके केंद्र में पेशेवर सैनिक हुआ करते थे। इस दस्ते के कार्यकर्ताओं को फासीवाद की घुट्टी पिलाई गई और विरोधियों के खिलाफ कार्य करने की प्रेरणा दी गई। बलिला नामक अर्ध सैनिक प्रचारक संस्था में युवा मोर्चा और युवा फासीवादी सम्मिलित हुए। इन संगठनों पर दल का आधिकारिक नियंत्रण था। मजदूरों का फासीवादी संघ एक दूसरा प्रमुख जनसंगठन था। 1925 में गठित ओपेरा नाजीनाले डोपेलवोरो (लोगों के मनोरंजन और आराम करने के साधन और तरीके निर्धारित करने हेतु) की स्थापना लोगों के विचारों को परिवर्तित करने के लिए की गई थी और उसका मुख्य उद्देश्य लोगों के खाली समय को संयोजित करना था। इसके तत्वाधान में स्थानीय क्लब और पुस्तकालय, बार, बिलियर्ड हॉल और खेलकूद के मैदानों से युक्त सुविधाओं वाले कई केंद्र स्थापित किए गए। डोपोलवारो द्वारा सम्मेलनों, नाटकों और फिल्म प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाता था, लोगों को घुमाने-फिराने की व्यवस्था की जाती थी और बच्चों के लिए गर्मी की छुट्टियों में सस्ती दर पर यात्रा आयोजित की जाती थी। 1930 के दशक में इटली में ऐसी 20 हजार संस्थाएं थीं।

26.4.4 फासीवादी राज्य की प्रकृति

हालांकि कुछ लोग इसे 'सर्वसत्तात्मक' राज्य की संज्ञा देते हैं परंतु राज्य की सत्ता प्रमुख रूप से संघर्ष के क्षेत्रों तक ही सीमित रही, इसका सम्पूर्ण नियंत्रण स्थापित न हो सका। नाजी जर्मन राज्य के समान इसका रोजमर्रा के कार्यों पर कभी भी नियंत्रण स्थापित न हो सका। नौकरशाही संरचना कभी भी जीवन के सभी क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने में सफल नहीं रही। यह एक ऐसी तानाशाही थी जो बहुल या अर्धबहुल व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती थी परंतु यह दार्शनिक दृष्टि से नहीं बल्कि संस्थागत दृष्टि से बहुलवादी थी। बड़े व्यापार, उद्योग, वित्त और यहां तक कि सेना ने भी काफी हद तक अपनी स्वायत्तता कायम कर रखी थी जबकि श्रमिकों के हितों को ज्यादा से ज्यादा नियंत्रित किया गया। प्रशासनिक तंत्र में किसी प्रकार का फेर-बदल

नहीं किया गया। नौकरशाही को कभी भी व्यवस्थित रूप से बदलने की कोशिश नहीं की गई और पहले की तरह इस पर पेशेवर अधिकारियों का वर्चस्व रहा। इसी प्रकार पुलिस और कार्बिनियेरी का भी राजनैतिकरण नहीं हुआ अर्थात उस पर दलीय पदाधिकारियों का कब्जा नहीं हुआ; हालांकि 1932 में ओवरा (OVRA) नामक नई राजनैतिक पुलिस का गठन हुआ। फासीवाद ने सत्ता हस्तगत करने के क्रम में स्थापित संस्थाओं और संभ्रांत लोगों से समझौता किया और कभी भी इस समझौते की सीमाओं से पूरी तरह उबर नहीं सका।

इस शासन के आरंभिक काल में देश के आर्थिक जीवन में राज्य का हस्तक्षेप न्यूनतम था। मंदी के दौरान प्रत्यक्ष राज्य निवेश मात्र एक आपातकालीन उपाय था। 1933 में आई.आर.आई (*इंस्टीच्यूट फॉर इन्डस्ट्रीयल रिकंस्ट्रक्शन*) और आई.एम.आई (*इंस्टीच्यूटो मोबिलियेर इटीलियानो*) की स्थापना के बाद राज्य का हस्तक्षेप बढ़ा। परंतु यहां तक कि 1940 में भी आई.आर.आई के पास इटली के उद्योग की समस्त पूंजी का लगभग 17.8 प्रतिशत पूंजी ही थी। राज्य ने मुख्य रूप से रासायनिक, विद्युत और मशीन उद्योग को बढ़ावा दिया और रेलवे के बिजलीकरण तथा टेलीफोन और रेडियो उद्योग को बढ़ावा देकर आधुनिकीकरण पर बल दिया। हालांकि इटली के फासीवादियों ने यह घोषणा कर रखी थी कि इटली निरंतर युद्ध की स्थिति में है परंतु इसमें आर्थिक सैन्यवाद देखने को नहीं मिलता है अर्थात सैन्य उत्पादन में अधिकांश निवेश नहीं हुआ था। इसके अलावा इटली में मानववादी बौद्धिक वर्ग का वर्चस्व बना रहा और तकनीकी विशेषज्ञों की तुलना में उनका महत्व खत्म नहीं हुआ।

1930 के दशक में फासीवादी राज्य ने मजदूरों के लिए कुछ कल्याणकारी योजनाएं भी शामिल कीं। 40 घंटे के कार्य सप्ताह की शुरुआत से आय में आई कमी की कुछ हद तक क्षतिपूर्ति के लिए 1934 में परिवार भत्ता प्रदान किया गया। मजदूरी के अन्तर्गत बीमारी और दुर्घटना के लिए बीमा की भी व्यवस्था की गई और 1930 के दशक के उत्तरार्द्ध में क्रिसमस बोनस और छुट्टी वेतन की व्यवस्था की गई।

इतालवी राज्य में कम से कम 1937 तक नस्लवादी शामी विरोधी नीति शामिल नहीं थी। वहां लगभग 45,000 यहूदी परिवार अमन-चैन से रहते थे। यहां तक कि 1938 में दल में 10,125 यहूदी सदस्य थे। हालांकि नवम्बर 1938 में नाजियों के प्रभावस्वरूप नस्ली कानून पारित किए गए जिसके द्वारा यहूदियों से शादी करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया, सार्वजनिक सेवाओं में उन्हें नौकरी नहीं दी जाने लगी, फासीवादी दल का सदस्य नहीं बनाया जाने लगा और उनके पास 50 हेक्टेयर से ज्यादा भूमि नहीं हो सकती थी।

26.4.5 पतन और सैलो गणतंत्र

1943 में मुसोलिनी के शासन को उखाड़ फेंका गया और इसका सामना करने के लिए उसके पास कोई सैनिक तैयारी नहीं थी। इसके बाद पुराने अनुदार दक्षिणपंथियों की एक तदर्थ साझा सरकार बनी जिसमें राजतंत्र, सेना और उच्च समृद्ध वर्ग को प्रतिनिधित्व मिला और इसका नेतृत्व नरम फासीवादी नेताओं ने किया। इस सौलो गणतंत्र में मजदूर परिषदों के लिए कुछ नियम बनाए गए और मुनाफे में उनका हिस्सा तय किया गया तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने का प्रयास किया परंतु यह सुधारवाद एक मरते हुए तंत्र का अंतिम प्रयास था।

बोध प्रश्न 2

1) इटली में फासीवाद के उदय के लिए उत्तरदायी दार्शनिक विचारों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

2) मुसोलिनी द्वारा सत्ता प्राप्त करने के बाद फासीवादी राज्य की प्रकृति में कैसे बदलाव आया ?

....

....

....

....

....

3) जर्मनी से इटली का फासीवाद किन अर्थों में भिन्न था ?

....

....

....

....

....

26.5 स्पेन में दक्षिणपंथी तानाशाही और आंदोलन

स्पेन में 1923-30 के बीच जेनरल मिगुएल प्राइमो डी रिवेरा ने सर्वसत्तात्मक सरकार के प्रथम चरण की नींव रखी। इसका उदय जनतांत्रिक सुधारों के लिए समाजवादी दबाव के जवाब में सैन्य प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। इसके अलावा मोरोक्को के सैनिक अभियान में आबिद-अल-करीम रिफियन विद्रोहियों ने स्पेन की सेना को तितर-बितर कर दिया था और उसके नौ हजार सैनिक मारे गए थे। स्पेन की संसद अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद इस सैनिक अभियान की असफलता का 'उत्तरदायित्व' तय करने में असफल रही थी। आरंभ में स्पेनिश संसद को समाप्त करने को एक स्थाई कदम के रूप में देखा जा रहा था परंतु धीरे-धीरे तानाशाही संस्थागत रूप लेने लगी। इस तानाशाही को कुछ लोग 'ऊपर से आरोपित फासीवाद' कहते हैं। यह फासीवाद आर्थिक राष्ट्रवाद, संरक्षणवाद और 'सामाजिक अव्यवस्था' को रोकने के लिए एक 'मजबूत' और 'पदानुक्रमिक' कार्यकारी की मांग पर आधारित था और इसमें ऊपर से ही लोगों को संगठित करने का प्रयास किया गया। यह खासतौर पर एनारको-सिंडिकेलिस्ट लेबर यूनियन,मजदूरों की राष्ट्रीय फैडरेशन (सी.एन.टी) और सोसिएलिस्ट यूनियन यू.जी.टी (यूनियन जेनरल डे ट्राबाजाडोर्स) का विरोधी था। तानाशाह ने लोकप्रिय संगठन को नियंत्रित करने के लिए एक यूनियन पेट्रोटिका पार्टी बनाई। यह दल उग्र कैथोलिक दर्शन पर आधारित था और इसमें कृषीय हितों को समर्थन दिया गया था। रिवेरा ने सोमाटेन को एक संस्थागत रूप दिया जो एक परम्परागत कैटेलन सैन्य दल था जिसने संकट और हड़तालों के दौरान पूंजीवादियों की रक्षा की। परंतु इस नए सैन्य दल पर कानून व्यवस्था लागू करने के लिए सरकारी अधिकारियों का ही नियंत्रण था और कभी भी यह सुधारवादी, फासीवाद सैन्य दल का दर्जा प्राप्त न कर सका।

रिवेरा की तानाशाही की समाप्ति के बाद जनतंत्र का एक नया चरण आरंभ हुआ और स्पेन की राजनीति में वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों ही दिशाओं में सुधार हुआ। 1933-36 के दौरान कॉनफेडरेशन ऑफ स्पेनिश राइट्स ग्रुप या सेडा प्रमुख अनुदार सर्वसत्तात्मक दल था। इसके युवा आन्दोलन (जे.ए.पी) में फासीवाद की कुछ प्रवृत्ति थी परंतु यह दोनों कार्टलिस्ट और अल्फोनसिनो मोनार्किस्ट दक्षिणपंथी सुधारवाद के दूसरे पक्ष का नेतृत्व करते थे। अल्फोनसिनो नव राजतंत्री फ्रांसीसी दक्षिणपंथी समूह होने के साथ-साथ इतालवी फासीवाद का दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी दल था। उनकी पत्रिका *एसिओन स्पेनोला* और उनके प्रमुख विचारक जोसे काल्वो सोटेलो परम्परागत संभ्रांत सेना, भूमिपतियों, चर्च आदि की सहायता से एक सर्वसत्तात्मक तानाशाही राज्य स्थापित करने का विचार प्रस्तुत कर रहे थे। हितों का प्रतिनिधित्व [illegible] एक अप्रत्यक्ष कॉरपोरेट चैम्बर की स्थापना करना चाहते थे। बाद में फ्रैंको शासन के दौरान सोटेलो के विचारों को संरचनागत और नीतिगत रूप दिया गया।

स्पेन की राजनीति में सीधे-सीधे तौर पर फासीवाद की [illegible] वाले समूह [illegible] 193।

और 1934 के बीच विद्यार्थियों के एक छोटे से समूह ने *जनतास डे ऑफेन्सिवा नेशनल सिंडिकेलिस्ट* (जोन्स) का संगठन किया। उनके कार्यक्रम में इटली के फासीवाद की झलक मिलती थी।

अक्टूबर 1933 में राष्ट्रीय सर्वसत्तात्मक आंदोलन को रूप और सैद्धांतिक आधार प्रदान करने के लिए जोसे एंटोनियो प्राइमो डे रिवेरा ने बास्क व्यापारियों से प्राप्त वित्तीय मदद से *फैलेन्जे एस्पेनोला* (या स्पेनिश फैनेक्स या जत्था) की स्थापना की। 1934 के आरंभ में जोन्स का फैलेन्ज में विलयन हो गया। हालांकि राजनैतिक दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं था और यह मुख्य रूप से विद्यार्थियों पर ही निर्भर था क्योंकि इसे निम्न या मध्य वर्ग का समर्थन प्राप्त नहीं था। 1935 तक इसने राष्ट्रीय श्रमिक संघवाद का अधिक परिवर्तनवादी रूप अपना लिया और इटली के फासीवाद की पूंजीवादी और संकीर्णतावादी कहकर आलोचना की। फैलेन्जे ने राष्ट्रवादी दर्शन की वकालत की, वे 'सत्ता, पदानुक्रम और व्यवस्था' में विश्वास रखते थे और उनके 27 सूत्रीय कार्यक्रम में राष्ट्रीय-श्रमिक संघवादी राज्य का विकास, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, ऋण सुविधाएं और बड़े भूमिपतियों की जमीनों को कब्जे में लेना शामिल था। उनके कार्यक्रमें में इतालवी फासीवादियों के सुधारवादी कार्यक्रमों की झलक मिलती थी। राजनैतिक स्तर पर धर्म विरोधी होने के बावजूद फेलेंजवाद की कैथोलिक धार्मिक पहचान ही बनी रही। स्पैनिश दक्षिणपंथियों के अधिकांश हिस्से फासीवादी हो गए परंतु यह फैलेन्ज जन समर्थन प्राप्त करने में असफल रहा। 1936 के चुनाव में इसे मात्र 44,000 या कुल मतों का 0.7 प्रतिशत मत ही प्राप्त हुए। एकीकृत स्पैनिश राष्ट्र-राज्य के खिलाफ कैटोलन्स बास्को के तीव्र क्षेत्रीय राष्ट्रवाद (या उप-राष्ट्रवाद) के कारण भी अंशत: स्पेन में उग्रवादी राष्ट्रवादी दर्शन असफल रहा। इसके अलावा स्पैनिश गृह युद्ध (1936-1939) के दौरान क्रांतिकारी-प्रतिक्रांतिकारी संघर्ष का ध्रुवीकरण हो गया जिसमें नेतृत्व पूर्णत: क्रांतिकारी राष्ट्रीय सेना के पास चला गया जिसने फ्रैंको शासन की स्थापना की और फैलेन्जे सैनिक तानाशाही के अधीनस्थ हो गया। 1937 में फ्रैंको ने फैलेन्जे आंदोलन को अपने हाथ में ले लिया और फैलेन्जवाद के आधार पर एक समन्वयवादी बहुजन राज्य दल की स्थापना की। इस नए दल में फैलेन्जवादी कैलिस्ट और विभिन्न प्रकार के दक्षिणपंथी सदस्य और जो भी इसमें शामिल होना चाहते थे उन सभी को मिलाकर एक नया दल बनाया गया। फैलेन्ज कार्यक्रम को सरकारी दर्जा प्रदान किया गया परंतु भविष्य की जरूरतों के अनुसार इसमें सुधार किया जाता रहा। इस नए तानाशाही फ्रैंकोवाद राज्य में पुराने फैलेन्जवादियों द्वारा बहुत थोड़ी सी भूमिका अदा की गई और यहां तक कि नए राज्य दल *फैलेन्ज स्पेनोला टैडिशियोनलिस्टा* के प्रशासन में भी उनकी भूमिका नगण्य रही। आरंभिक फ्रैंकविज्म (फ्रैंकोवाद) में फासीवाद के प्रमुख तत्व मौजूद थे परंतु दक्षिणपंथी, प्रेटोरियन, कैथोलिक और अर्ध-बहुल संरचना के बीच यह इस तरह प्रतिबंधित था कि इसे 'अर्ध फासीवाद' वर्ग में रखना ही संभवत: अधिक सही होगा। फ्रैंकविज्म की तुलना इतालवी फासीवाद से की जा सकती है जहां इसने राज्य फासीवाद दल का उपयोग किया और एक सीमित दायरे में कार्यकारी तानाशाही स्थापित की। 1945 तक एक अंशत: संगठित अर्ध-फासीवादी राज्य के स्थान पर एक गैर 'संगठित नौकरशाही' सर्वसत्तात्मक शासन की स्थापना हुई।

26.6 फ्रांसीसी दक्षिणपंथी और वीशी सरकार

फ्रांस में कई फासीवाद समूह थे परंतु इनमें से कोई भी दो प्रतिशत से ज्यादा मत हासिल करने में सफल नहीं हो सका, जो फ्रांसीसी मतदान व्यवस्था में प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए न्यूनतम शर्त थी। 1899 में स्थापित फ्रांसीसी ऐक्शन फ्रांसेसे एक प्रकार से फासीवादी प्रतिक्रियावादी आन्दोलन का आरंभिक रूप था। *ज्योर्ज वल्वा ला फैसो* (1925 में स्थापित) ने श्रमिक संघवाद और राष्ट्रवाद को एक साथ मिलाने की कोशिश की। मैट्रियाटिक यूथ या देशभक्त युवा (1924-1928) भी सैन्य पद्धति पर संगठित था और दंगे फसादों में विश्वास रखता था। कुछ अन्य समूहों ने व्यापक आधार भी अपनाया। *फ्रेंचसोलिडैरिटी* (1933) और *क्रौस ऑफ फायर* ऐसे ही समूह थे। कॉक्स डे फे को बड़े व्यपार और वित्त का समर्थन प्राप्त था। राजनैतिक तौर पर इसका झुकाव कैथोलिक संकीर्णतावाद की ओर था। 1936 में पोपुलर फ्रंट सरकार (लोकप्रिय मोर्चा) द्वार प्रतिबंधित किए जाने के बाद शीघ्र ही यह फ्रांसीसी सोशल पार्टी के रूप में पुन: संगठित हुआ। 1933 में मार्सेल बकार्ड द्वारा संगठित फ्रांसेस्टेस एक दूसरा दक्षिणपंथी समूह था।

पूर्व साम्यवादी जैक्स डोरियेट के नेतृत्व में गठित फ्रेंच पापुलर *पार्टी पोपुलेरे फ्रांसेसे* एक प्रकार से समाजवाद और राष्ट्रवाद का मिलाजुला रूप था। मार्शल डेट, जो समाजवाद से अलग हट चुका था, ने भी राष्ट्रीय नियोजन और उत्पादन ताकतों के एकीकरण की वकालत की। हालांकि जर्मन आधिपत्य के समय डेट फासीवाद

की ओर बढ़ा और उसके *रेजेम्बलेमेंट नेशनल पोपुलर रैली* (1941) ने फ्रांसीसी फासीवाद की अति वामपंथी शाखा गठित की।

जनतांत्रिक गणतंत्र के लिए समर्पित दलों (समाजवादी, साम्यवादी और सुधारवादी) ने फासीवाद के खिलाफ संयुक्त मोर्चा बनाया (1934-35)। 1936 में वामपंथियों द्वारा चुनाव में आगे बढ़ने और 1940 तक लोकप्रिय मोर्चा के समर्थन से बनी साझा सरकार के गठन के बाद वास्तविक या कल्पित फासीवादियों द्वारा सत्ता पर कब्जा प्राप्त करने का खतरा कम हो गया।

वीशी सरकार

फ्रांस के युद्ध में फ्रांसीसी सेना के बुरी तरह पराजित होने से युद्ध विराम की मांग उठने लगी। इस युद्ध में फ्रांस के 92,000 सैनिक मारे गए थे, 18,50,000 सैनिक जर्मन सेना द्वारा बंदी बना लिए गए थे। इसके बाद ही उप-प्रधानमंत्री मार्शल पेटेन और नए सेनाध्यक्ष वेगांड ने फ्रांस के शस्त्रीकरण की मांग की। फ्रांस के प्रधानमंत्री पॉल रेनो ने 16 जून 1940 को इस्तीफा दे दिया और मार्शल पेटेन ने युद्ध विराम की शर्तें तैयार की जिसके तहत फ्रांस की सेना में सैनिकों की संख्या घटाकर 1,00,000 कर देनी थी जिनका काम केवल कानून व्यवस्था की देख रेख करना था। इसके अन्तर्गत होम फ्लीट को विगठित किया जाना था, फ्रांस के अधिकांश हिस्सों पर जर्मनी का आधिपत्य होना था, आधिपत्य का खर्च भी फ्रांस को उठाना था और अन्तिम शांति समझौता होने तक फ्रांस के कैदियों को बंधक के रूप में रखा जाना था। मार्शल पेटेन ने 1 जुलाई 1940 को वाइशी के एस्पा शहर के सीलन भरे और असुविधाजनक होटल के बंद कमरे में अपनी सरकार बनाई। एक पराजित नेशनल एसेम्बली को नया संविधान बनाने का अधिकार दिया गया और मार्शल को 'पूर्णकार्यकारी और विधाई शक्तियां' प्रदान कीं। पेटेन के दृष्टिकोण को 'कार्य,परिवार और मातृभूमि' (फ्रांसीसी भाषा में तैवाई, फैमि और पात्ती) के रूप में देखा जा सकता है जो गणतंत्रवादियों के स्वतंत्रता, बंधुत्व और समानता का ही पर्याय था। वीशी सरकार सामाजिक पदानुक्रम और व्यवस्था को कायम रखने वाले इच्छुक 'संकीर्णतावादी संभ्रांत समूहों' का प्रतिनिधित्व करती थी। फासीवाद की अपेक्षा ऐक्शन फ्रांसेसे जैसे आंदोलनों से जुड़ा परम्परावाद इस सरकार की प्रमुख विशेषता थी। वीशी सरकार ने सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए नैतिक निर्देश जारी किए। घरेलू महिलाओं और माताओं की भूमिका को महिमा मंडित किया गया और घर से बाहर निकलकर काम करने वाली महिलाओं को हतोत्साहित करने का प्रयास किया गया। इसके परिणामस्वरूप इस शासन व्यवस्था को धर्म (धार्मिक गुरूओं) का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। अर्थव्यवस्था का उपयोग जर्मन हित में किया जाने लगा। 1943 तक कृषि उत्पाद का 15 प्रतिशत और औद्योगिक उत्पादन का 40 प्रतिशत आधिपत्य शुल्क के रूप में जर्मनी को निर्यात किया जाने लगा। उत्पादकों के आत्म नियमन के लिए दिसम्बर 1940 में स्थापित कृषि निगम तेजी से नौकरशाही तंत्र में बदलने लगा और व्यापार में सरकारी हस्तक्षेप बढ़ गया। उद्योग में भी जर्मनों की बढ़ती मांग के लिए योजना बनाई गई जिसमें युद्ध के बाद तकनीकी तंत्र के विकास को बढ़ावा मिला। व्यापारियों को फायदा पहुंचाने के लिए बनाई गई नीतियों को राष्ट्रभक्ति और सामूहिकता का जामा पहनाया गया। मजदूर संघों पर प्रतिबंध लगा दिया गया और सभी प्रकार के मजदूर संघों को क्रूरता से दबा दिया गया। स्थानीय स्तर पर निर्वाचित परिषदों के स्थान पर मेयरों की नियुक्ति की गई। व्यापक नागरिक सेवा के बल पर जनता और वीशी सरकार के बीच समझौता करने का प्रयास किया गया। इससे गैर निर्वाचित सामाजिक और प्रशासनिक संभ्रांत वर्ग का प्रभाव बढ़ा और नौकरशाही और निगमों के द्वारा इन्होंने अपना नियंत्रण बढ़ाया।

इस समर्थन के बदले वीशी ने उनसे युद्ध विराम की शर्तों पर और अनुकूल शांति समझौता किया था। हालांकि 1942 में अनाधिपत्य वाले क्षेत्र में जर्मनों के प्रवेश से वीशी की स्थिति एक परावलंबी उपग्रह के समान हो गई। आरंभ में कुछ ही फासीवादी सरकार के साथ जुड़े हुए थे। दिसम्बर 1943 में मार्शल डेट और जोसेफ डार्नेड को मंत्री बनाया गया।

वीशी का शामी विरोध नस्लवाद की अपेक्षा राष्ट्रवादी और कैथोलिक अधिक था। युद्ध विराम के तहत वीशी सरकार को जर्मन मूल के यहूदी शरणार्थियों को लौटाना पड़ा। अक्टूबर 1940 में एक कानून बनाकर बिजली घरों, नागरिक सेवाओं, अध्यापन और पत्रकारिता में यहूदियों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया और अधिकांश पेशों में उनके लिए कोटा निर्धारित कर दिया गया। हालांकि सैनिकों और पूर्ण रूप से घुले-मिले

यहूदियों को इससे मुक्त रखा गया। वीशी के सहयोग से आधिपत्य क्षेत्र में यहूदियों की सम्पत्ति जब्त कर ली गई और विदेशी यहूदियों को वापस भेज दिया गया। 1941 की ग्रीष्म ऋतु के बाद अनाधिपत्य क्षेत्र में भी नीतियों को लागू कर दिया गया।

जर्मन आधिपत्य और वीशी के सहयोग के खिलाफ धीरे-धीरे विरोध बढ़ा। अगस्त 1942 में जर्मनों द्वारा अनिवार्य श्रम सेवा कार्यक्रम लागू करने से प्रतिरोध की अग्नि और भड़क उठी। लगभग 40,000 विरोधियों को मौत के घाट उतार दिया गया और 60,000 लोगों को यातना शिविरों में भेज दिया गया।

मित्र राष्ट्रों की सेना 6 जून 1944 को नॉर्मेंडी के बन्दरगाह पर उतरी और 25 अगस्त 1944 को पेरिस स्वाधीन हुआ। 1944 के अन्त तक अधिकांश फ्रांस जर्मन आधिपत्य से मुक्त हो गया। जर्मन अधिकारियों ने वीशी सरकार को पूर्वी फ्रांस में जाने के लिए बाध्य किया और अन्ततः उसे स्वयं जर्मनी में ही बंधक बना लिया गया।

26.7 दक्षिणपंथी आंदोलन और तानाशाही : पूर्वी मध्य यूरोप और बाल्टिक राज्य

इटली और स्पेन के अलावा यूरोप के कई देशों में फासीवाद संक्षिप्त राजनैतिक प्रयोग और संगठन के रूप में भी सामने आया। इन सभी संगठनों में फासीवाद के आधारभूत तत्व विद्यमान नहीं थे। फासीवाद की मात्रा और व्यापकता में भी फर्क था। आइए, पोलैंड, हंगरी, बाल्टिक राज्यों और चेक-स्लाव देशों का उदाहरण देखा जाए।

26.7.1 पोलैंड

पोलैंड में फासीवाद आंदोलन कमजोर था। 1926 में पिलसुडस्कि सैनिक विद्रोह द्वारा तख्ता पलटने के परिणामस्वरूप एक मजबूत सर्वसत्तात्मक शासन की स्थापना हुई। 1935 तक यह नरमपंथी अर्ध बहुल व्यवस्था के रूप में काम करता रहा। पश्चिमी पोलैंड की नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी एक जन संसदीय दल था जिसने शामी विरोधी नीति की वकालत की और अन्य राष्ट्रीय अल्प संख्यकों के प्रति अधिक दमनात्मक नीति अपनाई। 1930 के दशक में इसकी सुधारवादी युवा शाखा राष्ट्रीय सुधारवादियों के रूप में अलग हो गई और ए. वी.सी और फलांगा जैसे दो फासीवादी संगठनों को जन्म दिया। फलांगा की विचारधारा अति कैथोलिकवादी थी और इसने अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की समाप्ति और एक प्रकार के राष्ट्रीय समाजवाद की स्थापना पर बल दिया।

1935 में एक नये नैगमिक, सर्वसत्तात्मक संविधान का निर्माण हुआ जिसने सहिष्णु बहुलवाद के विस्तार को कम कर दिया। 1935 में पिलसुडस्कि का भी देहांत हो गया और उसके उत्तराधिकारी कर्नल को ने एक नए फासीवादी राज्य दल - द कैम्प ऑफ नेशनल यूनिटी या ओ.जेड. एन - का निर्माण किया। इसका प्रथम निदेशक कर्नल को फलांगा के अध्यक्ष बोलेसलॉ पियासेकी पर काफी निर्भर था और इस संबंध के कारण को को निकाल बाहर किया गया और फलांगा से सारे संबंध तोड़ लिए गए। कुछ लोग इस व्यवस्था को 'निर्देशित जनतंत्र' कहते हैं परंतु 1939 तक यह शासन व्यवस्था संगठित राज्य संगठन और एक नियंत्रित एकदलीय व्यवस्था की ओर बढ़ रही थी।

26.7.2 हंगरी

हंगरी में विभिन्न प्रकार के फासीवाद, फासीवाद प्रकार के, दक्षिणपंथी सुधारवादी और सर्वसत्तात्मक राष्ट्रवादी समूहों का बड़ा जमघट था। साम्यवादी बेलाकुन विद्रोह (1919) के बाद नौकरशाही के बड़े बेरोजगार हिस्से ने फासीवाद के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दोनों विश्वयुद्धों के बीच हंगरी पर अधिकांशतः एडमिरल होर्थी का संकीर्णवादी सर्वसत्तात्मक शासन कायम रहा। इसने 19वीं शताब्दी के सामाजिक पदानुक्रम को महत्व प्रदान किया और सीमित मताधिकार के आधार पर आधारित प्रतिबंधित संसद द्वारा शासन करता रहा। नेशनल यूनिटी पार्टी सरकारी पार्टी थी। एक फासीवाद समूह 'सेजेड फासीवाद ' का नेतृत्व गियुला गम्बोस के हाथों में था जिसे जनता का समर्थन प्राप्त नहीं था परंतु 1932 में होर्थी ने उसे इस शर्त पर प्रधानमंत्री का पद देना स्वीकार किया कि वह अपने कार्यक्रम को नरम बनाएगा और शामी विरोध छोड़ देगा। उसने सरकारी नेशनल यूनिटी पार्टी में बदलाव लाने और राज्य को राष्ट्रीय समाजवाद की ओर ले जाने की

कोशिश की परंतु 1936 में उसकी मृत्यु हो जाने के कारण यह काम अधूरा रह गया।

फेरेंक जलाशी 'ऐरो क्रॉस' को जनता का अच्छा समर्थन प्राप्त था। यह आंदोलन हंगरी नस्लवाद में विश्वास रखता था और इसने बृहद डैन्यूब - कारपेथियन क्षेत्र को हंगरी में शामिल किए जाने का प्रस्ताव रखा था। परंतु गैर माग्यार लोगों के बहुसंख्यक क्षेत्र (लगभग 80-90 प्रतिशत) को स्वायत्ता देने का भी प्रस्ताव था। इसमें एक अन्तर्विरोध यह था कि सिद्धांत स्तर पर सलासी हिंसा को नकारते थे। उसका आंदोलन शामी विरोधी नहीं था परंतु उनके प्रति उनमें सहानुभूति भी नहीं थी। इसलिए उन्होंने सभी यहूदियों को हंगरी छोड़कर चले जाने की वकालत की थी जिसके तहत बृहत सामूहिकता के हित में बड़े भूमिपतियों और पूंजी को समाप्त करने की घोषणा की थी। 1930 के दशक के उतरार्द्ध में इसे मजदूरों और किसानों का काफी समर्थन प्राप्त था परंतु युद्ध के दौरान इसकी लोकप्रियता में काफी कमी आई। इस आंदोलन पर नाजीवाद का प्रभाव बढ़ा और 1944 में जर्मनों की कठपुतली के रूप में थोड़े समय के लिए इन्होंने सत्ता संभाली।

26.7.3 चेको-स्लोवाक

यहां प्रत्यक्षत: दो फासीवाद संगठन थे : नेशनलिस्ट फासीस्ट कम्यूनिटी (एन.ओ.एफ 1926 में स्थापित) और चेक - नेशनल सोशलिस्ट कैम्प जिसका उदय 1930 के दशक में हुआ। ये दोनों संगठन कमजोर बने रहे क्योंकि मजदूर समाजवाद से चिपके रहे और मध्यवर्ग विभिन्न प्रकार के उदारवाद के प्रभाव में थे। युद्ध अन्तराल की अवधि में स्लोवाकिया में प्रमुख राजनैतिक ताकत स्लोवाक पीपुल्स पार्टी का अंशत: फासीकरण हुआ। मूलत: यह एक नरमपंथी संकीर्णवादी सर्वसत्तात्मक कैथोलिक लोकवादी राष्ट्रीय पार्टी थी जिसका झुकाव सामूहिकता की ओर था। 1938 के बाद यह नाजीकरण से प्रभावित हुआ था और शामी विरोधी नीतियां अपनाई गईं जिसमें यहूदियों को व्यापार और पेशे से अलग कर दिया गया था। बाद में नाजियों के दबाव में बड़ी संख्या में यहूदियों को पोलैंड से बाहर निकाल दिया गया।

26.7.4 बाल्टिक राज्य

1936 के अंत में घरेलू चुनाव में वामपंथियों को भारी बहुमत प्राप्त कर लेने के बाद सैनिक विद्रोह के द्वारा लिथुआनिया में एक दक्षिणपंथी नरम तानाशाही की स्थापना हुई। 1940 में इसके लुप्त होने तक अन्टानास स्मेटोना राज्य का प्रमुख बना रहा। कुछ हद तक बहुलतावाद को सहन किया गया था। हालांकि 1940 में राज्य एकदलीय शासन व्यवस्था की ओर बढ़ रहा था। राज्य दल नेशनल यूनियन (ताउतनीन काई) को बुद्धिजीवियों और अमीर किसानों का सामाजिक समर्थन प्राप्त हुआ था।

इसके विपरीत 1934 में नरमपंथी ताकतों द्वारा सर्वसत्तावाद को रोकने के लिए लैटविया और स्टोनिया में 'सर्वसत्तात्मक प्रजातंत्र' की अधिक नरमपंथी शासन व्यवस्थाओं की स्थापना की गई थी। स्टोनिआई स्वतंत्रता सेनानियों के दक्षिणपंथी-सुधारवाद के प्रभाव को रोकने के लिए स्टोनिया में किसान दल के नेता कॉन्सटैनटिन पौट्स ने एक अधिक सर्वसत्तात्मक समाज की स्थापना की। लैटविया में एक नए उलामानिस सरकार की स्थापना की गई जो वामपंथियों की विरोधी थी। इसके अलावा यह थन्डर क्रॉस की भी विरोधी थी जो नाजीवाद से प्रभावित लैटविया का एक फासीवाद जैसा ही दल था। हालांकि राजनैतिक स्तर पर यह जर्मनी का घोर विरोधी था। हालांकि लैटेविया और स्टोनिया दोनों में बहुलतावाद के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई गई और इनमें से कहीं भी एक सुसंगठित तानाशाही का विकास नहीं हुआ।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं ? (सही कथन के सामने ✓ का और गलत कथन के सामने X गलत का निशान लगाइए)।

क) वीशी सरकार ने स्वतंत्र नीतियां बनाई थी।

ख) फ्रांसीसी दक्षिणपंथी जनतंत्र समर्थन प्राप्त करने में असफल रहे थे।

ग) स्पेन के फासीवादी संगठन-फैलेंजे जनरल फ्रैंको की तानाशाही के पीछे की प्रमुख शक्ति था।

घ) 'ऐरो क्रॉस' हंगरी का एक प्रमुख फासीवादी आंदोलन था।

2) फेलेंजे की विचारधारा पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

3) हंगरी के राजनैतिक जीवन में 'ऐरो क्रॉस' की क्या भूमिका की ? लगभग 100 शब्दों में अपना उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

....

26.8 सारांश

इस इकाई में आपने निम्नलिखित पक्षों का अध्ययन किया :

- फासीवाद आंदोलन के आधारभूत लक्षण;
- फासीवाद के लिए सामाजिक और मनोवैज्ञानिक माहौल बनाने में युद्ध की भूमिका, और
- फासीवाद और इसकी संगठनात्मक शैलियों के विकास में आधारभूत विचारधाराओं का योगदान।

फासीवाद और संकीर्णवादी दक्षिणपंथी आन्दोलन समाज और इसकी संस्थाओं को बदलना चाहते थे परंतु इन दोनों में काफी अन्तर था। इस इकाई में हमने फासीवाद के राजनैतिक पूर्व रूपों का भी विवेचन किया। यह कहना सही नहीं होगा कि विश्वव्यापी मंदी के कारण फासीवाद आन्दोलन अचानक ही आ टपका। हालांकि मंदी ने फासीवाद के विकास के लिए आदर्श स्थितियां पैदा की थीं परंतु इसकी जड़ें 19वीं शताब्दी के यूरोप और विश्व युद्ध में निहित थीं। आपने इटली, फ्रांस और स्पेन आदि में भी फासीवादी आन्दोलन के विभिन्न रूपों का अध्ययन भी किया। इटली में फासीवादी शासन व्यवस्था के उदय का विस्तार से विवेचन किया गया और राज्य की प्रकृति पर अलग से विचार किया गया। फ्रांस, स्पेन, पूर्वी मध्य यूरोप (पोलैंड, हंगरी और चेकोस्लोवाकिया) और बाल्टिक राज्यों के उदाहरणों का अध्ययन करने से आपको युद्ध-अन्तराल काल में फासीवादी राजनीति के विकास को समझने में मदद मिलेगी। हालांकि इस इकाई में हिटलर के नेतृत्व में यूरोप-जर्मनी के अति दक्षिणपंथी शासन व्यवस्था का जिक्र नहीं किया गया है। अगली इकाई में जर्मनी में फासीवाद के उदय की कहानी कही गई है।

26.9 शब्दावली

शामी-विरोधी : यहूदियों के खिलाफ पूर्वाग्रह, इसका आधुनिक रूप नस्लवाद और सामाजिक डारविनवाद की विचारधाराओं पर आधारित है।

सामूहिकता/नैगमिक एक अर्द्ध सामूहिकतावाद जिसमें एक संगठन में नियोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच सौहार्द्रपूर्ण संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है।

संभ्रांत सामाजिक तौर पर विशेषाधिकार प्राप्त समूह

उदारवादी जनतंत्र : साझा राजनीति का एक राजनैतिक सिद्धांत जिसमें सामाजिक बहुलता और स्वतंत्रता का आदर और आधुनिक ऐच्छिक संस्थाओं का निर्माण किया जाता है।

संगठन : किसी खास विचार के आधार पर लोगों को कार्यवाई के लिए एकजुट करना

राष्ट्रवाद : जनता या समुदाय का अपनी संस्कृति और इतिहास से लगाव और उस पर गर्व।

सामाजिक-डारविनवाद : समाज के विकास में डार्विन के विचारों का उपयोग। इस धारणा के अनुसार समाज में लोग जीने के लिए आपस में प्रतिस्पर्द्धा करते हैं और केवल श्रेष्ठ या मजबूत व्यक्ति, समूह और नस्ल ही विजयी होता है। इस धारणा का उपयोग जर्मनी और अन्य स्थानों पर जन्मे फासीवाद द्वारा यहूदी विरोधी नीतियों के निर्धारण के लिए किया।

समाजवाद : सामुदायिक संसाधनों के सामूहिक स्थायित्व संबंधी राजनैतिक धारणा।

सिंडिकेलिस्म/ श्रमिकसंघवाद : कारखाने में मजदूरों के सिंडिकेट या संघों के जरिए उत्पादकों की आत्म मुक्ति में विश्वास।

26.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 26.2
2) देखिए भाग 26.2
3) आपके उत्तर में फासीवाद के दर्शन की नवीनता और जन संगठन के आधुनिक तरीकों और फासीवादियों द्वारा किए गए संस्थागत बदलाव तथा दक्षिणपंथी संकीर्णतावाद से इनका अंतर स्पष्ट कीजिए। देखिए भाग 26.2

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 26.4.1
2) देखिए उपभाग 26.4.2 और 26.4.4
3) यहूदियों के प्रश्न पर उनके दृष्टिकोणों की तुलना कीजिए। देखिए उपभाग 26.4.4। अगली इकाई भी पढ़िए।

बोध प्रश्न 3

1) (क) (X) (ख) (✓) (ग) (x) (घ) (✓)
2) देखिए भाग 26.5
3) देखिए भाग 26.7, ,खासकर हंगरी के दक्षिणपंथी आन्दोलन वाला हिस्सा।

इकाई 27 प्रतिक्रांति-II : जर्मनी में राष्ट्रीय समाजवाद

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में हमने फासीवाद के सामान्य लक्षणों की चर्चा की थी और बताया था कि यह अति दक्षिणपंथी राजनैतिक गठन होता है। पिछली इकाई में इटली और स्पेन की दक्षिणपंथी शासन व्यवस्थाओं का भी जिक्र किया गया था। इस इकाई में जर्मनी में एक विशिष्ट फासीवादी शासन व्यवस्था के रूप में नाजी पार्टी के उदय के बारे में बताया जा रहा है। इसे पढ़ने के बाद आप :

- जर्मन में फासीवाद के उदय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे,
- नाजी पार्टी के गठन के लिए जिम्मेदार परिस्थितियों पर विचार कर सकेंगे,
- 1933 में नाजियों के शासन में आने पर जर्मन समाज में आए बदलावों को रेखांकित कर सकेंगे, और
- जर्मन फासीवाद की विशेषताओं को पहचान सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

दक्षिणपंथी शासन व्यवस्थाओं के विचारधारात्मक आधारों को जानना जरूरी है। सभी विचारधाराएं एक जैसी नहीं हैं और इसमें संकीर्णवादी शासन व्यवस्थाओं से लेकर अति फासीवादी शासन को एक साथ नहीं समेटा जा सकता। 1933 में जर्मनी में जो शासन व्यवस्था कायम हुई वह फासीवाद के चरमोत्कर्ष का प्रतिनिधित्व करती है। इस इकाई में आपको 19वीं शताब्दी के जर्मनी के इतिहास में जर्मन फासीवाद के लक्षणों की जानकारी दी जाएगी। इसके बाद 1920 के दशक में जर्मनी में संसदीय प्रजातंत्र के उस संकट पर विचार किया जाएगा जिसके कारण फासीवाद के उदय के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा हुईं। इसमें जर्मन फासीवाद की प्रकृति और इसके कारण जर्मन समाज में आए मूलभूत परिर्वतन की भी चर्चा की गई है ।

27.2 पृष्ठभूमि

जर्मनी का नाम लेते ही एडौल्फ हिटलर का नाम जरूर याद आता है परंतु उससे एक ऐसे काले शासन की याद आती है जो दुनिया के इतिहास की सबसे आपराधिक और विनाशकारी शासन व्यवस्था थी। एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध को भड़काने में उसने मदद की तो दूसरी ओर लोगों के कत्लेआम के लिए औद्योगिक प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल किया। युद्ध के दौरान 55 मिलियन लोग मारे गए और हिटलर ने 4 से लेकर 6 मिलियन यूरोपियन यहूदियों और जिप्सियों का कत्लेआम किया। आने वाले दशकों में भी इतिहासकार यह उत्तर ढूंढ रहे होंगे कि क्यों और कैसे इस प्रकार की नकारात्मक ऊर्जा का जन्म हुआ था जिसने पूरी दुनिया को तबाह कर दिया था। इस इकाई में नाजी शासन व्यवस्था के गठन और मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

हमें यह मान कर नहीं चलना चाहिए कि नाजीवाद के सैद्धांतिक और संरचनात्मक लक्षण अनूठे थे और जर्मनी के अतीत से उनका कोई संबंध नहीं था। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसके कई लक्षण मौजूद थे। कैसर विलियम II (1890-1914) एक प्रतिबद्ध जर्मन साम्राज्यवादी था; उसके शासन काल को विलहेलमाइन युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में जर्मन राजनीति में आमूल परिवर्तन आए। उसने बिस्मार्क को बर्खास्त कर दिया और आर्थिक विकास को तेज किया। इस परिवर्तन से कुछ खास तरह की समस्याएं पैदा हुई जैसे केंद्र सरकार की राज्यों पर वित्तीय निर्भरता; संकीर्णवादी प्रशियन व्यवस्था और वयस्क मताधिकार पर आधारित साम्राज्य के बीच मतभेद के कारण साम्राज्यवादी नीति में आई रूकावट। चूंकि चांसलर संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं थे इसलिए वास्तविक निर्णय संसद में नहीं लिए जाते थे। संवैधानिक सुधार के अभाव के कारण राजनैतिक दलों के पास कोई उत्तर नहीं था और इससे सांप्रदायिक और मताग्रही प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला और भूमिपति और औद्योगिक हितों के कारण राज्य में कामगार वर्ग को शामिल किए जाने के प्रयत्न में समाजवादी संशोधन की सफलता असंभव हो गई। इसके अलावा राज्य नौकरशाही में सैन्यवादी प्रवृत्तियों की मौजूदगी के कारण घरेलू जीवन में भी हुकुम बरदारी की संस्कृति का विकास हुआ। 1893 में सेना की संख्या में 83 हजार की बढ़ोत्तरी कर दी गई और 1913 में इसकी संख्या बढ़कर 780,000 हो गई। व्यवस्था के आंतरिक तनाव का प्रथम विश्व युद्ध के रूप में विस्फोट हुआ।

सैद्धांतिक क्षेत्र में भी नाजी युग के सिद्धांतों की एक मजबूत परम्परा देखने को मिलती है। विलहेलमाइन जर्मन संभ्रांतों में नस्लवाद और समाजवाद कूट-कूट कर भरा हुआ था जिनके लिए *वेल्टपॉलिटिक* मुहावरा शक्तिशाली बनने और दुनिया के नक्शे पर छाने की महत्वाकांक्षा को प्रदर्शित करता है। 1900 के अन्त में बॉक्सर विद्रोह के दौरान अपनी सेना भेजते समय कैसर ने हूनों की तरह व्यवहार करने की सलाह दी थी। 1880 के बाद जर्मनी भाषी दुनिया में शामी विरोधी राजनीति का उदय हुआ; रूस में भी कुछ इसी प्रकार की प्रवृत्ति का विकास हो रहा था। वियेना में क्रिशचन सोसलिस्ट मेयर ने सामाजिक और प्रशासनिक सुधारों को एक साथ मिलाते हुए सभी प्रकार की बुराइयों के लिए यहूदियों को बलि का बकरा बनाया। बर्लिन में न्यायालय प्रमुख एडौल्फ स्टॉकर ने बर्लिन में प्रोटेसटेंट क्रिशचन सामाजिक आन्दोलन का नेतृत्व किया और मौजूदा आर्थिक व्यवस्था पर आक्रमण करने के लिए शामी विरोधी और शुद्धतावादी हथियारों का प्रयोग किया।

प्रथम विश्व युद्ध शुरू होने के समय मुख्य धारा में शामिल जर्मन समाजवादी आंदोलन सरकार के युद्ध-उद्देश्यों से सहमत हो गया था। वे इस बात से आश्वस्त हो गए थे कि जर्मनी को प्रतिक्रियावादी रूसी अभिजात तंत्र से बचाना है और उन्होंने कैसर के पवित्र गृह शांति अभियान में उसका साथ दिया। अतिवामपंथी दल के अलावा जर्मन समाजवाद उस समय के देशभक्ति के जुनून में बह गया। यहां एक बात जान लेनी चाहिए कि इस अंध देशभक्ति की भावना को एक लोकप्रिय आधार प्राप्त था और इस परिप्रेक्ष्य में युद्धोतर काल में उग्रराष्ट्रवादी जन उत्तेजना की गूंज सुनाई पड़ी और उनके कार्यक्रमों को समर्थन प्राप्त हुआ।

27.3 युद्ध के बाद जर्मन राजनीति

वाइमार गणतंत्र (इसकी चर्चा हम इकाई 25 में कर चुके हैं) का जन्म सेना की पराजय और प्रशासनिक असफलता के बीच से हुआ था। जर्मनी के युद्ध शत्रुओं ने युद्ध विराम के लिए जर्मनी के सामने सरकार

की बर्खास्तगी की पूर्व शर्त रखी थी। कैसर के पद छोड़ने के दो दिन बाद ही 11 नवम्बर 1918 को संधि पत्र पर हस्ताक्षर हो सके। राजनैतिक व्यवस्थाओं की एक विडम्बना यह होती है कि जब संकट नहीं सुलझता है तो सत्ता अपने कटु आलोचकों के हाथ में सौंपनी पड़ती है और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि युद्ध की समाप्ति के समय फैले गंभीर सामाजिक असंतोष को कम करने की राजनीतिक दृष्टि और वैधता सोशल डेमोक्रेट्स (एस.पी.डी) के पास ही थी। 1917 में रूस की घटनाओं से प्रेरित होकर जर्मन सामाजिक जनतंत्र के अति वामपंथी पक्ष ने सत्ता हथियाने के लिए योजना बनानी शुरू की। स्पार्टासिस्ट के नाम से प्रसिद्ध इस धड़े ने 1918-19 की शीतऋतु में बर्लिन में एक विद्रोह का आयोजन किया। जिसके दौरान सरकार के सोशल डेमोक्रेट प्रभारी चांसलर एलबर्ट ने अपने एक मात्र बचाव के तहत सेना से समझौता किया। सेना ने इसका इस्तेमाल उनसे शांति समझौता करने और मजदूरों के विद्रोह को दबाने के लिए किया। इस समझौते के परिणामस्वरूप जर्मनी के एक सर्वाधिक संकीर्णवादी संगठन को हमेशा के लिए स्थायित्व प्रदान हो गया।

सोशल डेमोक्रेट्स द्वारा सत्ता प्राप्त करने और उसके बाद फ्रेकॉपर्स (विघठित सैनिकों से निर्मित) द्वारा रोजा लक्जेमबर्ग और कार्ल लेबनेख्त जैसे स्पार्टा नेताओं की हत्या के बाद जर्मन सोशल डेमोक्रेसी के वामपंथी और दक्षिणपंथी धड़ों के बीच संबंध हमेशा के लिए विच्छेद हो गया। 1919 में जर्मनी में चारो ओर क्रांति का माहौल था और इस दौरान कई मजदूर संघ बने और हैमबर्ग तथा बर्लिन में सैनिक परिषदें कायम हुईं। यहां तक कि बेवरिया में थोड़े समय के लिए सोवियत गणतंत्र भी स्थापित हुआ। इसके बाद साम्यवादी दल (के.पी.डी) की स्थापना हुई जिसने 'सोशल डेमोक्रेटिक' गणतंत्र को विद्रोह द्वारा हटाने के कई प्रयत्न किए। 1923 में मुद्रा स्फीति तेजी से बढ़ी और फ्रांस तथा बेल्जियम ने रूर पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। 1920 में एक विद्रोह हुआ और अक्टूबर 1923 में हैमबर्ग में साम्यवादियों ने आंदोलन किए जिसके बाद कुछ समय के लिए मार्शल लॉ (सैनिक कानून) लगा दिया गया। साम्यवादियों द्वारा सत्ता के आधिपत्य के लगातार सोवियत नुमा प्रयत्नों के कारण तनाव तीखा हो गया, मध्यवर्ग और संकीर्णवादी तत्वों के मन में भय समा गया और इसके कारण अर्थव्यवस्था ध्रुवीकरण का माहौल व्याप्त हो गया। यह स्थिति तब और बिगड़ गई जब विघटित सैनिक साम्यवादी और सोशल डेमोक्रेट्स पर युद्ध में धोखाघड़ी का आरोप लगाने लगे और उन्होंने लोगों को बताना शुरू किया कि युद्ध में हारने का एक प्रमुख कारण यह था कि इन्होंने पीठ में छुरा भोंका था (पीठ में छुरा भोंकने का कुख्यात सिद्धांत यही था)। वर्साय की संधि के बाद स्थिति और भी बिगड़ गई, जब विजेता शक्तियों ने जर्मनी से युद्ध का हर्जाना मांगा जिसमें जर्मनी को भारी राशि अदा करनी थी, अपनी सेना की शक्ति और सैनिकों की संख्या में भारी कटौती करनी थी और जर्मनी के प्रमुख औद्योगीकृत और खनिज समृद्ध क्षेत्रों पर भी उनका अस्थाई आधिपत्य हो गया था।

27.4 नाजी पार्टी का गठन और आरंभिक वर्ष

1919 में एन्ड्रेन ड्रेक्सलर ने म्यूनिख में जर्मन वरकर्स पाटी की स्थापना की। सैद्धांतिक स्तर पर इसमें सामाजिक सुधारवाद, अतिराष्ट्रवाद, स्लाव और यहूदियों के खिलाफ घृणा और हार की जिम्मेदारी किसी और पर थोपने की नीति काम कर रही थी। हिटलर को ऊपर उठाने में ड्रेकसलर ने अहम भूमिका निभाई और वह जनता के बीच उत्तेजना फैलाने के लिए कुख्यात हो गया। सेनाधिकारी अर्नस्ट रोम उसके आरंभिक साथियों में से था जिसने बाद में स्ट्रॉमटूपर्स (एस.एस) का नेतृत्व किया। 1920-21 में हिटलर इस दल के नेता के रूप में उभरा और उसने इसे जर्मन नेशनल सोशलिस्ट वरकर्स पार्टी (एन.एस.डी.ए.पी) का नाम दिया। इसका कार्यक्रम सुधारवादी और अंधराष्ट्रवादी था। इसमें निम्नलिखित कार्यक्रम शामिल किए गए:

- ज्यादा जमीन और उपनिवेश वाला बृहद जर्मनी,
- वर्साय संधि की शर्तों का उन्मूलन
- न्यासों और व्यापार का राष्ट्रीयकरण
- बड़ी कम्पनियों के मुनाफे में हिस्सेदारी
- अनर्जित आय की समाप्ति

- भूमि सुधार, और
- छोटे व्यापारियों को पट्टे पर दुकानें देना। संसद की ताकत को बढ़ाने की भी बात की गई थी परंतु 1933 में सत्ता में आने के बाद ये सभी सुधारवादी नारे भुला दिए गए।

1922-23 में वाइमार गणतंत्र संकट की स्थिति से गुजर रहा था। मुद्रा व्यवस्था के असफल हो जाने से मुद्रा स्फीति आसमान को छू रही थी और सितम्बर 1923 में एक पाउंड का विनिमय मूल्य 15 मिलयिन मार्क हो गया था। जनवरी 1923 में जर्मनी द्वारा हर्जाने का भुगतान न कर पाने के कारण फ्रांसीसी सेना ने रूर पर कब्जा कर लिया। सितम्बर में गुस्टेव स्ट्रेसमेन नया चांसलर बना और उसने वर्साय की संधि की शर्तों को मानने की नीति अपनाई जिससे दक्षिणपंथी नाराज हो गए। इसी समय 1922 में रोम में मुसोलिनी मार्च की सफलता से प्रभावित होकर हिटलर ने फील्ड मार्शल लुडेनडार्फ जैसे वरिष्ठ सेना अधिकारियों की सहायता से नवम्बर 1923 में सत्ता हथियानी चाही। हालांकि एक संस्था के रूप में राइकवैर वाइमार के प्रति निष्ठावान रहा और दंगों में 16 नाजी मारे गए। हिटलर को कैद की सजा सुनाई गई और 1924 में उसका ज्यादा समय जेल में ही बीता। इसी दौरान उसने अपनी प्रमुख पुस्तक *'मेन कैम्फ'* लिखी। यह किताब 1924 में प्रकाशित हुई जो उसकी लेबेनसरम (जर्मनी वासियों के लिए जीने की राह) की अवध ारणा, एक पूर्वी साम्राज्य, नस्लों और राष्ट्रों के बीच संघर्ष और पूंजीवाद तथा साम्यवाद दोनों के लिए अन्तरराष्ट्रीय यहूदी षडयंत्र संबंधी सिद्धांतों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। हिटलर ने लिखा है कि संसदीय जनतंत्र 'प्रकृति के आधारभूत अभिजातंत्रीय सिद्धांतों के खिलाफ एक धब्बा है'; 'लगभग सभी मानवीय संस्कृति आर्यों की सर्जनात्मक प्रतिभा का प्रमाण है केवल वे ही सभी उच्च मानवीयता के स्थापक हैं।' उसने यह भी लिखा है कि 'रूसी बोलशेविकों के प्रयत्नों को 20 वीं शताब्दी में यहूदियों द्वारा दुनिया में अपना वर्चस्व कायम करने के इच्छा के रूप में देखा जाना चाहिए।'

हिटलर के बंदी बनाए जाने के बाद नाजी पार्टी पर प्रतिबंध लगा दिया गया। हिटलर 24 दिसम्बर को जेल से छूटा। 1925 में प्रतिबंध हटा लिया गया और इस दल को पुनर्गठित किया गया और हिटलर इसका पहला सदस्य बना। उसने उत्तर में ग्रिगेर स्ट्रेसर द्वारा नियंत्रित 'वाम' शाखा पर तेजी से अपना नियंत्रण स्थापित किया जहां उसकी मुलाकात गोयबेल्स से हुई जिसने अंत तक उसका साथ दिया। नए गॉलेटर (जिला नेता) नियुक्त किए गए । एस.ए का नया अध्यक्ष बनाया गया और नेता की सर्वसत्तात्मक भूमिका तय की गई। फरवरी 1926 में हिटलर ने हैमबर्ग के उद्योगपतियों से मुलाकात की और अपने सुधारवादी और साम्यवादी विरोधी नारों से उनका मन जीत लिया। 1928 में गोयबेल्स ने प्रजातंत्र के बारे में जो बात कही थी वह स्पष्ट रूप में प्रजातंत्र के प्रति नाजियों की अवमानना को स्पष्ट करता है। उसने कहा था कि "हम वाईमार प्रजातंत्र को उसके ही हाथों पंगु बनाने के लिए राईखस्टाग के उप-प्रधान बने हैं। यदि प्रजातंत्र ने हमें इस उद्देश्य के लिए यात्रा भत्ता, दैनिक भत्ता दिया है तो वह उसकी मूर्खता है ....हम उनके शत्रु के रूप में आए हैं। हम भेड़ों की खाल पहनकर आए भेड़िया हैं, हम इस प्रकार छिप कर इनके पास आए हैं ।"

27.5 संसदीय गणतंत्र का संकट

वाइमार का पहला राष्ट्रपति एबर्ट (1919-25) जिसके संविधान के तहत राइखस्टाग (जर्मन संसद) को पहले से ज्यादा अधिकार मिले। अध्यक्ष चांसलर की नियुक्ति करता था और राजाज्ञा जारी करने का आपातकालीन अधिकार उसी को प्राप्त था। आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के फलस्वरूप छोटे-छोटे दलों का गठन हुआ जिन्होंने जनमत संग्रह का प्रावधान रखने और प्रांतीय अधिकारों को सीमित करने के साथ-साथ संवैधानिक कार्यप्रणाली को नजरअंदाज किया था। एस.पी.डी और सेंटर पार्टी ने गणतंत्र का समर्थन किया था। एबर्ट की मृत्यु (1919-25) के बाद फील्ड मार्शल वोन हिनडेनबर्ग अध्यक्ष/राष्ट्रपति बना (1925-34): वह एक समर्पित राजतंत्रवादी और युंकर (प्रशा का भूपति वर्ग) सेनाध्यक्ष था। जिसका कार्यकाल जर्मनी में प्रजातंत्र के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ।

इस गणतंत्र की स्थापना के बाद 1922-23 का संकट समाप्त हो गया। स्ट्रेसमेन सरकार ने रूर से फ्रांसीसी सेना को वापस भेजने में सफलता प्राप्त की, मुद्रा को स्थायित्व प्रदान किया, मित्र राष्ट्रों के साथ डॉस योजना पर समझौता किया जिसके तहत हर्जाने की रकम को स्वीकार्य स्तरों तक कम किया गया और विदेशी मुद्रा कर्ज के रूप में प्राप्त हुई जिसकी काफी जरूरत थी और दिसम्बर 1925 में ब्रिटेन और फ्रांस के साथ लोकार्नो

समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसके द्वारा जर्मनी ने अपनी पश्चिमी सीमा अंतिम रूप से निर्धारित कर ली। मार्च 1926 में जर्मनी को लीग ऑफ नेशन्स में शामिल कर लिया गया। 1929 की यंग योजना में मुआवजे की राशि और कम कर दी गई और फ्रांस तथा ब्रिटेन निर्धारित समय से पांच साल पहले ही 1930 में राइनलैंड से अपनी फौज हटा लेने को राजी हो गए। दूसरी ओर बेरोजगारी बहुत ज्यादा थी, विदेशी निवेश पर निर्भरता काफी अधिक थी और जर्मन कृषि में अवरोध उत्पन्न हो गया था। राजनैतिक अस्थिरता व्याप्त थी, किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं था और 1919 तथा 1928 के बीच 15 सरकारें बदलीं और दक्षिणपंथी और वामपंथी सुधारवाद की ओर लोगों का आकर्षण बढ़ा। इसके अलावा दक्षिणपंथी जनवाद का वरिष्ठ सेनाधिकारियों पर प्रभाव बढ़ रहा था और वे वर्साय संधि के निरस्त्रीकरण के प्रावधानों को नापसंद करते थे।

अमेरिकी ऋण की वापसी, निर्यात बाजार की समाप्ति और औद्योगिक उत्पादन के ढहने से अक्टूबर 1929 में हुए वॉल स्ट्रीट कैश का जर्मनी पर प्रभाव पड़ा। 1932 में बेरोजगारी 5.6 मिलियन तक पहुंच गई। करों में कमी होने और बेरोजगारी भत्ता बढ़ने से सरकार के ऊपर वित्तीय बोझ बढ़ गया जिसे संभालने के लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ रहा था। मई 1928 में हुए चौथे जर्मन संसद के चुनाव में आशावादी परिणाम सामने आया जिसमें नाजियों को 419 में से 12 सीट ही प्राप्त हो पाए और एस.पी.डी 22 सीटों की बढ़त लेकर 153 की संख्या तक पहुंच गया। के.पी.डी के पास 54 सीटें थीं (एस.पी.डी और के.पी.डी के पास कुल मिलाकर 42% सीटें थीं)। मूलर के नेतृत्व में वामपंथी दलों की एक साझा सरकार बनी परंतु यह आर्थिक नीति पर एकमत नहीं हो सकी। राज्य का संकट सुलझ नहीं सका। मार्च 1930 में मूलर के इस्तीफे के बाद वाईमार के संसदीय युग का अंत हो गया। सेंटर पार्टी के हेनरिक ब्रुनिंग नए चांसलर बने और उसने धारा 48 का उपयोग करके अलोकप्रिय वित्तीय नीतियों को लागू करना शुरु किया जिसमें अध यक्षीय राजाज्ञा से कानून बनाने का अधिकार था। इस संवैधानिक संकट के परिणामस्वरूप जर्मन संसद को भंग कर दिया गया। इसके बाद मुद्रा स्फीति को कम करने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए जैसे बेरोजगारी भत्तों को कम कर दिया गया, कर बढ़ा दिया गया और उन्हें राजाज्ञा द्वारा लागू किया गया। मजदूरी कम किए जाने से लोगों की कय शक्ति भी कम हुई। सितम्बर 1930 में ब्रुनिंग ने अपनी नीतियों को आजमाने का प्रयत्न किया। पांचवे जर्मन संसद के चुनाव में नाजियों को भारी सफलता मिली और उन्हें 107 सीटें प्राप्त हुईं। उनके वोट में 800 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अपने नरमपंथी सहयोगियों का सहयोग समाप्त होने पर ब्रुनिंग को एस.पी.डी के शिथिल सहयोग पर भरोसा करना पड़ा।

इसी समय राजनैतिक तनाव भी बढ़ रहा था और एस.ए तथा साम्यवादियों के बीच दंगे हो रहे थे। यह बिलकुल स्पष्ट था कि पुराने संकीर्णवादी गठबंधन उलट गए थे और अब हिटलर अच्छी स्थिति में था। अप्रैल 1932 में एस.ए पर प्रतिबंध लागने के सरकारी प्रयत्न पर संभ्रांत वर्ग के नाजी समर्थक काफी नाराज हुए जिसमें कैसर विलियम का पुत्र भी शामिल था। राष्ट्रपति हिन्डेनबर्ग ने मई 1932 में ब्रुनिंग को हटाकर फ्रिज वोन पेपेन को चांसलर बनाया जो एक दक्षिणपंथी विचारों वाला कुलीन था। वह पहला मध्यमार्गी राजनीतिज्ञ था जिसने हिटलर से सहायता ली थी। एस.ए से प्रतिबंध हटा लिया गया, प्रशा में एस.पी.डी प्रांतीय सरकार हटा दी गई, और जर्मन संसद को एक बार फिर भंग कर दिया गया। चुनाव में काफी हिंसा हुई। एस.ए ने अपने वास्तविक और अनुमानित शत्रुओं पर हमला किया। छठे जर्मन संसद में नाजियों को 230 सीटें और 37 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। एस.पी.डी को 133 और के.पी.डी को 39 सीटें प्राप्त हुईं। हिन्डेनबर्ग अभी भी हिटलर को चांसलर बनाने से हिचक रहा था जबकि हिटलर इसे पाने के लिए कटिबद्ध था। हिटलर ने वोन थाइसेन और हलमर शेख्त जैसे उद्योगपतियों और बैंकरों के साथ राइखलैंडबंड, जो प्रशा के भूमिपतियों का एक संगठन था, के सदस्यों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया। शीघ्र ही पेपेन ने नवम्बर 1932 में एक बार फिर चुनाव की घोषणा कर दी। सातवें जर्मन संसद के इस चुनाव में नाजी वोट में कमी आई और इस बार उन्हें पिछली बार से 34 सीटें कम यानी 196 सीटें प्राप्त हुईं। एस.पी.डी 121 और के.पी.डी को 100 सीटें प्राप्त हुईं। इसके बाद थोड़े समय के लिए रक्षा मंत्री श्लेखर ने पेपेन को चासंलर के पद से हटा दिया और इस दौरान उसने जर्मन संसद को भंग कर आपातकाल की घोषणा करने का प्रयत्न किया। जनवरी 1933 में कई राजनैतिक उथल-पुथल के बाद यह समझौता हुआ कि एक संकीर्णवादी साझा सरकार बनेगी और हिटलर को चांसलर बनाया जाएगा। 12 सदस्यी सरकार में केवल तीन नाजी सदस्य

थे और संकीर्णवदियों का यह मानना था कि वामपंथियों को दबाने में वे हिटलर का उपयोग कर सकेंगे। हिटलर ने उन्हें बुरी तरह निराश किया। उसने सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत की, सभी वास्तविक और संभावित विरोधियों को कुचल दिया और एक अतिकेंद्रित राज्य की स्थापना की। मार्च 1933 में आठवें जर्मन संसद के लिए चुनाव सम्पन्न हुआ। नाजियों ने 288 सीटों पर जीत हासिल की, के.पी.डी ने 81 सीटें जीतीं (उन सबों को तुरंत अयोग्य करार दिया गया) और एस.पी.डी को 120 स्थानों पर विजय मिली।

1928 और 1933 के बीच पांच आम चुनाव हुए। एन.एस.डी.ए.पी की सदस्यता 1925 में 27,000 थी जो 1926 में 49,000, 1927 में 72,000, 1928 में 108,000 और 1929 में 178,000 हो गई अर्थात केवल 5 वर्षों में 559 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। इस अचानक हुई वृद्धि के क्या कारण थे। निश्चित रूप से गणतंत्रवाद की असफलता और लोगों की सेवा करने के लिए विभिन्न राजनैतिक दलों में एकजुट होने की इच्छाशक्ति के अभाव के कारण ऐसा हुआ। स्टालिनवादी के.पी.डी के उग्रवादी वामपंथी रूख ने दक्षिणपंथियों के समान ही 'व्यवस्था' पर आक्रमण किया और आर्थिक संकट के कारण वैचारिक माहौल गहरे रूप में प्रभावित हुआ, राज्य के विभिन्न अंगों का अधोपतन हुआ और न्यायपालिका से भी लोगों का भरोसा उठने लगा क्योंकि वे दक्षिणपंथी सुधारवादियों को बचाने के लिए उनका पक्ष लेने लगे। (1930 के वसंत में चला लेपजिग मुकदमा इसका एक उदाहरण है, जिसमें सेना के तीन अधिकारियों पर देशद्रोह का आरोप लगाया गया था। हिटलर उनके पक्ष में उपस्थित हुआ और उसने न्यायालय को अपने नियंत्रण में लेने की धमकी दी, सजा केवल 18 महीने चलनी थी)। मार्क्स के विचारों पर बल देते हुए डेविड अब्राहम बताते हैं कि जर्मनी पर केवल पूंजीवादी उत्पादन के विकास का ही बुरा प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि इसके अधूरेपन से भी इसको नुकसान पहुंचा। उन्होंने ईस्ट एलबियन जंकर्स के राज्य नीति पर असंतुलित प्रभाव का विश्लेषण किया जिन्होंने प्रमुख पद हथिया लिए थे और वे एक प्रकार से शासक वर्ग की तरह कार्य करते थे। हालांकि राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 15 प्रतिशत से भी कम था और कृषि जनसंख्या कुल जनसंख्या की एक चौथाई से भी कम थी। वयस्क मताधिकार लागू होने से किसानों का राजनैतिक महत्व बढ़ गया और देहातों में संबंधों में परिवर्तन हुए। इसके अलावा संभ्रांत वर्गों के विभिन्न धड़ों में जमकर संघर्ष होने लगा। कृषि क्षेत्र और उद्योग क्षेत्र के बीच भिड़ंत हुई और पुराने भारी उद्योगपतियों और नए तथा गतिशील पूंजी आधारित उद्योगों के बीच प्रतिस्पर्द्धा सामने आई। चूंकि इन सभी धड़ों ने राजनैतिक साझा, संगठित श्रम, व्यापार और राजकोषीय नीतियों और मुआवजे पर अलग-अलग दृष्टिकोण व्यक्त किया अतः राज्य, जनतांत्रिक संस्थाओं के मद्दे नजर, उनके बीच काम चलाऊ संतुलन स्थापित न रख सकी। बुर्जुआ वर्ग के विभाजित हो जाने के बाद युंकरों ने एक साथ मिलकर राज्य और सेना नौकरशाही पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। 1929 के बाद निर्णय लेने वाले स्थानों की भी कमी पड़ गई क्योंकि संसद, विभिन्न दल, यहां तक कि केंद्रीय मंत्री भी अप्रासंगिक होते चले गए और आर.डी.आई (जर्मन उद्योग संघ) जैसे नैगमिक हित राज्य पर अपना प्रभाव जमाने लगे।

व्यापक मंदी के युग में जब एस.पी.डी ने मजदूर वर्गों के हितों को अपने कार्यक्रमों में शामिल किया तो बुर्जुआ वर्ग के लोग सावधान हो गए। आर्थिक और वित्तीय संकट के कारण सामाजिक सहयोग की लागत काफी बढ़ गई थी और हर्जाने की रकम के कारण प्रभुत्वशाली वर्ग के लिए स्थिति असहनीय हो रही थीं। पूंजीपतियों ने एस.पी.डी के साथ समझौता और प्रतिस्पर्द्धा का अपना कार्यक्रम छोड़ दिया जो 1925 और 30 के बीच स्थायित्व का कारण बना था। बार-बार चुनाव कराया जाना सत्ता के संकट को ही प्रतिबिंबित करता है। इसके कारण पूरे युग में अस्थिरता रही। एक बार यह स्पष्ट हो जाने पर कि नाजी सामाजिक व्यवस्था का समर्थन करेंगे, प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों ने पार्टी को विभिन्न भागों में विभाजित करने और इसे एक जनतंत्र आधार प्राप्त करने के विचार को स्वीकार किया और उन्हें यह कहकर राज्य का जिम्मा सौंपने का आह्वान किया कि वे राज्य को लोकप्रिय आधार प्रदान करवाएंगे जिसकी 1930 में सख्त कमी थी। पिछले वर्षों में वाईमार गणतंत्र के संकट को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य प्रभुत्वशाली वर्गों के हितों को संगठित करने में काफी हद तक असफल रहा था। वे मनमाने ढंग से कार्य करते थे। यह गणतंत्र मौजूदा सामाजिक संबंधों की रक्षा करने में असफल रहा। यहां कोई क्रांतिकारी खतरा नहीं था बल्कि प्रभुत्वशाली वर्गों के विभिन्न धड़ों के आपसी संघर्ष और परस्पर विरोधों के कारण यह स्थिति सामने आई। इसके अलावा पिछले वर्षों में अपनाई गई अस्पष्ट नीतियां भी इसके लिए जिम्मेदार थीं।

बोध प्रश्न 1

1) जर्मन फासीवाद का आधार कहे जाने वाले तत्वों पर 5 पंक्तियां लिखिए।

2) नाजी पार्टी की स्थापना और कार्यक्रम पर 10 पंक्तियां लिखिए।

3) किन परिस्थितियों में नाजी पार्टी ने सत्ता हस्तगत की ?

27.6 नाजियों का राजनैतिक दृढ़ीकरण

23 मार्च 1933 को एनैब्लिंग ऐक्ट (राईख और जनता की मुश्किलों को दूर करने के लिए निर्मित कानून) पारित किया गया। यह हिटलर की तानाशाही का कानूनी आधार बना। विधायी शक्ति कार्यकारी को सौंप दी गई, राजनैतिक रूप से गैर जरूरी और 'अनार्य' (जो आर्य प्रजाति से नहीं थे) प्रशासनिक अधिकारियों को नौकरी से निकाल दिया गया। राज्य का पुराना संघीय ढांचा राईख राज्यपालों की नियुक्ति करके नष्ट कर दिया गया। 31 मार्च को इस अधिनियम का उपयोग करते हुए सभी डायटों को भंग कर दिया गया और चुनाव में हुए मतदानों के आधार पर विधान सभाओं (एसेम्बली) को फिर से पुनर्गठित किया गया। 4 फरवरी 1933 को एक राजाज्ञा के द्वारा मूलभूत संवैधानिक अधिकारों को निलंबित कर दिया गया। 27 फरवरी 1933 को जर्मन संसद में आग लगने के बाद दूसरे दिन आपातकाल की घोषणा कर दी गई। युद्धोत्तर न्यूरेमबर्ग मुकदमे के एक प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार जर्मन संसद में आग लगाने की योजना गोयबेल्म ने बनाई थी और गैस्टापो के पूर्व प्रमुख ने यह भी कहा कि आग लगाने के पहले ही गोरिंग ने मरने वालों की सूची

बना ली थी। इन सबों के बावजूद और मई में पार्टी की इमारतों की नाकेबंदी, इसके अखबारों को बंद करने आदि के बावजूद एस.पी.डी ने मई 31 में हिटलर की विदेश नीति का समर्थन किया। 2 अगस्त 1934 में हिन्डेनबर्ग का देहान्त हो गया और हिटलर ने राष्ट्रपति का पद भी संभाल लिया और इसके बाद से सभी सैनिकों को फ्यूहरर और चांसलर की शपथ लेनी होती थी।

हिटलर ने स्टॉर्म ट्रूपर्स को स्वायत्त सुधारवादी संस्था के रूप में विकसित करने का प्रयत्न किया जिससे यह पता चल गया कि पार्टी (दल) और स्टेट (राज्य) को एक दूसरे से मिलाना चाहता था। एक बार फ्यूहरर (हिटलर इसी नाम से जाना जाता था) के हाथ में पूर्ण सत्ता आ जाने के बाद अर्नेस्ट रोयम ने चेतावनी देनी शुरू की (मध्य 1933 से) कि क्रांति में अवरोध पैदा हो रहा है। उसने 500,000 लोगों की मजबूत स्ट्रॉम ट्रूपर्स पर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयास किया और इसे संकीर्णतावादी संभ्रांत सेना के खिलाफ खड़ा किया। इन कारणों से हिटलर की बहुत चल न सकी। रोयम ने सलाह दी कि सशस्त्र सेनाओं एस.ए और एस.एस सभी योद्धा समूहों को नए रक्षा मंत्रालय के तहत समान दर्जा प्रदान किया जाए और उन्हें पीपुल्स आर्मी के रूप में संगठित किया जाए। जून 1934 में हिटलर ने एस.एस को आदेश दिया कि एस.ए के नेताओं को चुन-चुन कर मार दिया जाए और रोयम को अपनी देख रेख में गिरफ्तार करवाया जिसे बाद में कारावास में गोली मार दी गई। यह दल एक ऐसे मशीन में रूपांतरित हो गई जिसने नीचे से उठने वाली आवाजों को निर्ममता से दबाया और लोगों को राज्य के सर्वोच्च नेता के प्रति पूर्ण समर्पण के लिए राजी किया। यह बदलाव और जगहों पर भी नजर आया। 1935 में 5.1 प्रतिशत नौकरीपेशा लोग और 3.8 प्रतिशत किसान नाजी पार्टी के सदस्य थे, 1933-34 तक 20 प्रतिशत असैनिक कर्मचारी और 30 प्रतिशत शिक्षक इसके सदस्य बन चुके थे। 1 जनवरी 1934 को एन.एस.डी.ए.पी को जर्मनी की एक मात्र राजनैतिक पार्टी घोषित किया गया और अन्य दल संगठित करने को फौजदारी कानून के अन्तर्गत दंडनीय अपराध माना गया। अगले कुछ वर्षों में इसके सुधारवादी तत्व दबते चले गए और हिटलर का शासन परम्परागत संकीर्णवादी अवधारणाओं और नाजी आंदोलन से प्रभावित होता गया।

27.7 तीसरे राईख में राज्य और समाज

नाजी शासन के प्रथम 18 महीनों में दल एकाधिकार, केंद्रीकृत सरकारी तानाशाही और व्यक्तिगत निरंकुशता जैसे शक्ति के तीन केंद्रों के बीच तनाव और अस्थिर संतुलन बना रहा। दल/एस.ए की सुधारवादी शक्तियों ने संकीर्णतावादियों की 'नियंत्रात्मक' नीति पर विजय प्राप्त करने में हिटलर की मदद की। बीच-बीच में वह पक्ष बदलता रहा और उसने सुधारवादियों द्वारा सत्ता प्राप्त करने की प्रक्रिया को रोकने के लिए राज्य शक्ति का उपयोग किया। क्रांति और प्रतिक्रांति की विरोधी प्रक्रियाओं के कारण उसकी निरंकुशता को बल मिला। उसने अपनी इस तानाशाही का उपयोग राज्य के भीतर के हितों के टकराव को रोकने के लिए नहीं किया बल्कि इससे सम्पूर्ण ढांचे में एक अराजकता का माहौल व्याप्त हुआ। गेस्टापो (*द गेहेम स्टाट्सपोलिज़ी या राज्य की खुफिया पुलिस*) को अधिक महत्व दिया गया। और उसे आन्तरिक प्रशासन से अलग कर दिया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि वह मंत्रालय से संस्थागत रूप से स्वतंत्र हो गया। ब्लोमबर्ग फ्रित्ख और बेक जैसे आर्थिक और सैनिक विशेषज्ञों (वरिष्ठ सेनाध्यक्ष जो राइनलैंड पर कब्जा करने जैसे सैन्य अभियानों से अलग मत रखते थे) और पंचवर्षीय योजना के संयोजक स्शाख्त जैसे लोगों को मदमुक्त कर दिया गया। इससे राज्य के आंतरिक विघटन का पता चलता है। ब्लोमवर्ग फ्रितख जैसे संकीर्णवादी आलोचकों को समाप्त करने के लिए हिटलर अक्सर ब्लैक मेल करने की नीति अपनाता था। वह प्रशासन की बारीकियों और कायदे कानूनों से चलने का आदी नहीं था और वह बड़े ही मनमाने ढंग और सैनिक शैली में काम करता था। कभी-कभी इनका अर्थ भी समझ में नहीं आता था और इसका असर निर्णय पर पड़ता था। इस प्रकार के कार्यकलाप का नकारात्मक असर कानून और प्रशासन पर पड़ा। मंत्रिमंडल में कई मंत्री थे जो कमोबेश सीधे फ्यूहरर के प्रति समर्पित थे। सरकार अलग-अलग विभागों की बहुतंत्र बन कर रह गई और विभागीय आदेशों और नीतियों के द्वारा शासन चलाया जाने लगा। अब हम इस प्रकार की शासन पद्धति की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करने जा रहे हैं।

चित्र 1: हिटलर भाषण देते हुए

27.7.1 न्यायपालिका की अधीनस्थता

वाईमार गणतंत्र को इसके बड़े-से बड़े शत्रुओं ने भी कभी औपचारिक रूप से समाप्त नही किया। बिडम्बना

यह है कि इसे मिटाने के लिए इसके ही संविधान का उपयोग किया गया। एनेबलिंग ऐक्ट के पारित होने के बाद राज्य का न्यायिक आधार ही बदल गया। तीसरा राइख (या तीसरा साम्राज्य–पहला रोमन साम्राज्य तथा दूसरा बिस्मार्क का काल माना जाता है) ने गर्व के साथ यह घोषणा की थी कि 'हिटलर ही कानून है'। इसमें विधि आधारित राज्य को व्यक्ति/नेता आधारित राज्य या फ्यूरेस्टेट (नेता पर आधारित राज्य) के रूप में परिवर्तित करने के लिए सिद्धांत गढ़े गए। नेता को अतिरिक्त वैधानिक अधिकार दिए गए। सैनिक तथा असैनिक सेवाओं में काम करने वाले लोगों को नेता के प्रति निष्ठावान रहने के लिए शपथ लेनी पड़ती थी। प्रशासनिक कार्य पद्धति में इसका महत्व तेजी से बढ़ा और संवैधानिक कार्य पद्धति को तिलांजलि दे दी गई। प्रजातंत्र में जनता की इच्छा सर्वोपरि होती है परंतु इस व्यवस्था में नेता की इच्छा को ही सब कुछ मान लिया गया और उसकी वाणी को कानून का दर्जा प्राप्त हो गया। सभी न्यायाधीशों को नाजी न्यायाधीश संगठन में शामिल होना पड़ता था और तनिक भी संदेह होने पर उन्हें हटा दिया जाता था। जर्मन संसद के अग्निकांड के साम्यवादी आरोपियों में से 3 आरोपी जब सबूत के अभाव में छोड़ दिए गए तब देशद्रोह के सारे मामले उच्च न्यायालय से लेकर नव निर्मित पीपुल्स कोर्ट में स्थानांतरित कर दिए गए जिसके 7 सदस्यी न्यायपीठ में 5 नाजी थे। इस ट्रिब्यूनल ने अधिकांश लोगों को मृत्यु दंड दिया। राजनैतिक अपराध के सभी मामले साधारण न्यायालय से लेकर विशेष न्यायालय को सौंप दिए गए।

27.7.2 गस्टैपो

खुफिया राज्य पुलिस कार्यालय या गस्टैपो की स्थापना प्रशा के आन्तरिक मंत्रालय के तहत 1933 में हुई थी और तेजी से यह प्रांतीय सरकार से स्वायत्त होता चला गया। 1934 में हेनरिक हिमलर राष्ट्र-व्यापी गस्टैपो का अध्यक्ष बना। रेनहार्ड हेडरिक प्रशा शाखा का अध्यक्ष बना जो कुख्यात एस.एस के दलीय खुफिया संगठन एस.डी का भी प्रभारी था। पूरे देश में एस.डी के लगभग 100,000 भेदिए फैले हुए थे और अन्य गतिविधियों के अलावा वे यह पता लगाते थे कि हिटलर को न मानने वाले कितने लोग हैं। एस.एस का उदय 1920 के दशक के आंरभ में हिटलर के निजी सुरक्षा दस्ता के रूप में हुआ (क्योंकि हिटलर को एस.ए की निष्ठा पर भी पूरा विश्वास नहीं था) और 1931 में नाजियों की आंतरिक अनुशासनात्मक कार्यकारी समिति बन गया। 1935 में प्रशा सर्वोच्च न्यायालय ने यह घोषणा की कि गस्टैपो के निर्णयों की न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती थी। संक्षेप में हेडरिक को किसी भी जर्मन के जीवन और मौत के निर्णय करने का अधिकार मिल गया। 1936 में हिमलर एस.एस का सर्वोच्च प्रमुख बन गया। राज्य पुलिस और दलीय खुफिया संगठनों पर एक साथ नियंत्रण होने से घरेलू आतंकतंत्र अपने आप में स्वतंत्र हो गया और एस. एस स्टेट की स्थापना का आधार बना जिसने आगे आने वाले वर्षों में अपना राजनैतिक प्रशासन और नौकरशाही सेना की इकाइयां और कत्ले-आम करने के लिए तंत्र का विकास किया। आर.एस.एच.ए या राईख सुरक्षा कार्यालय इसकी केंद्रीय एजेंसी थी जिसका मुखिया हेडरिक था। पूर्वी यूरोप के आधिपत्य वाले क्षेत्रों में एस.एस खासतौर पर सक्रिय था।

27.7.3 मजदूर और किसान

नई शासन व्यवस्था की नीतियों के कारण कामगार लोगों का जीवन गहरे रूप में प्रभावित हुआ। नाजियों की अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप के कीन्स सिद्धांत के सैनिक रूपांतरण के चलते बेरोजगार लोगों की संख्या में तेजी से कमी आई जो 1932 में छः मिलियन से घटकर 1936 में एक मिलियन से भी कम रह गई। 1937 तक राष्ट्रीय उत्पादन 102 प्रतिशत बढ़ गया। शासन व्यवस्था ने इस अर्थव्यवस्था को 'युद्ध अर्थव्यवस्था' के रूप में परिभाषित करना शुरु कर दिया और अन्तिम युद्ध की तैयारी करने लगे। 21 मई 1935 को रक्षा कानून पारित हुआ जिसमें ह्यालामार शाख्ट को युद्ध अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक दूत बनाया गया जिसका मुख्य कार्य वर्साय की संधि के उल्लघंनों को छिपाना था। व्यापारियों ने नाजियों का समर्थन किया था और अब उन पर भारी कर लगाया गया था, 'विशेष सहयोग' देने के लिए कहा गया और राईख इकोनॉमिक चेम्बर का अनिवार्य तौर पर सदस्य बनना पड़ा। परंतु भारी उद्योग खासकर अस्त्र-शस्त्र उद्योग को भारी मुनाफा हुआ। वास्तविक अर्थों में मजदूरी घटी और हड़तालें बन्द हो गईं। इसका कारण यह था कि सभी मजदूर संघों के आन्दोलनों और वामपंथी राजनैतिक संगठनों खासकर सोशलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी और के.पी.डी को कुचल दिया गया था।

मालिकों द्वारा नियुक्त न्यासी मजदूरी निर्धारित करते थे (उनकी नियुक्ति के संबंध में मजदूरों से कोई सलाह नहीं ली जाती थी) अधिक काम और अधिक उत्पादन को ही आय बढ़ाने का आधार घोषित किया गया।

हालांकि बेरोजगारी में गिरावट आई परंतु राष्ट्रीय आय में जर्मन मजदूरों का हिस्सा 1932 में 56.9 प्रतिशत से गिर कर 1938 में 53.6 प्रतिशत हो गया। पूंजी से हुई आय 17.4 से बढ़कर 26.6 प्रतिशत हो गई। लगभग पूर्ण रोजगार के कारण मजदूरी और वेतन से हुई कुल आय में 66 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। परंतु व्यापार से होने वाली आय और गैर पूंजी में 146 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अक्टूबर 1934 में श्रमिक मोर्चा बनाया गया जिसे जर्मनों का सर्जनात्मक संगठन कहा गया। इसका ऊपरी रूप मजदूर संघ का था परंतु यह मूलत: एक प्रचार तंत्र था जिसमें नियोक्ता और पेशेवर लोग शामिल थे। अधिक से अधिक काम करना इसका कथित उद्देश्य था और इसके पदाधिकारी नाजी होते थे। इसके नियमों में सामंती मूल्य भी शामिल किए गए। नियोक्ताओं को अपने मजदूरों का ख्याल रखना था और उन्हें अपने नियोक्ताओं के प्रति निष्ठावान रहने के लिए कहा गया। सरकारी राजाज्ञा द्वारा मजदूरों के आवागमन की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और उन पर नौकरशाही और नियोक्ताओं का एक समान नियंत्रण होता था। मनोरंजन से शक्ति प्राप्त करने के आंदोलन के तहत लाखों लोगों को नियंत्रित मनोरंजन प्रदान किया गया और विशाल नौकरशाही ने लाखों की धन राशि गबन द्वारा प्राप्त की जिसमें मजदूर मोर्चा के नेता डॉ ले भी शामिल थे।

1933 में युद्ध के बाद कृषि से होने वाली आय सबसे कम थी और ऋण का बोझ 12 बिलियन मार्क्स था। हिटलर के अधिकांश लोकवादी जनोत्तेजक भाषण किसानों को ही संबोधित होते थे परंतु नाजियों ने कभी भी जंकरों के भूस्वामित्व को छेड़ने की कोशिश नहीं की। 29 सितम्बर 1933 के खेती कानून के तहत 125 हेक्टेयर तक के सभी खेतों को अभिजात्य अनुवांशिक परिसम्पदा का दर्जा दिया गया। किसान मुख्यत: अपनी जमीन से ही जुड़े रहे परंतु उन्हें भी कृषीय उत्पादों के मूल्यों में हुई बढ़ोत्तरी से थोड़ा फायदा हुआ।

27.7.4 महिलाएं

महिलाओं और परिवार के प्रति नए शासन का दृष्टिकोण अति संकीर्णवादी पितृसत्तात्मक और नाजी दर्शन के नस्लवादी जैववाद संबंधी दृष्टिकोण से प्रभावित था। इस दल ने अध्यादेश जारी कर सबसे पहले सभी संगठनों में उच्च पदों से महिलाओं को हटा दिया। महिलाओं की सामाजिक भूमिका के लिए 'किन्डर, किर्च और कुच' (बच्चे, चर्च, रसोई) का नारा दिया गया। ऐसी सामाजिक और आर्थिक स्थिति पैदा की गई कि उन्हें अपने आजीविका के लिए मजदूर बनना पड़ा। 1933 में जर्मनी में कुल मजदूरों की संख्या 37 प्रतिशत महिलाओं की संख्या थी। एक ही योग्यतावाली महिला मजदूर को पुरुष मजदूर की तुलना में समान काम के लिए 66 प्रतिशत कम मजदूरी मिलती थी। 1933 में विश्वविद्यालयों में कुल विद्यार्थियों में 20 प्रतिशत विद्यार्थी छात्राएं थीं। नाजी शासन ने एक नियम पारित कर इसकी संख्या 10 प्रतिशत तक घटा दी। युद्ध छिड़ने के साथ ही इस घोषणा को रद्द कर दिया गया। गोयबल्स ने कहा था कि इस दुनिया में सुन्दर बच्चों को लाना महिलाओं का मुख्य काम है और उसने यह भी कहा था कि सार्वजनिक जीवन से इसीलिए उन्हें अलग किया जा रहा है ताकि वे अपनी गरिमा पुन: प्राप्त कर सकें। शुद्ध नस्ल के बच्चे पैदा करना नाजियों के जुनून में शामिल था और अधिक से अधिक बच्चे पैदा करने के लिए कई प्रकार के वित्तीय और विचारधारात्मक सहायता प्रदान की गईं। विवाह ऋणों का इन्तजाम किया गया, बड़े आकार के परिवारों के माता-पिताओं को बच्चा पालने के लिए वित्तीय सहायता दी गई और 4,6,8 बच्चों की माताओं को कांस्य, रजत, और स्वर्ण सम्मान पदक प्रदान किए गए। इन नीतियों के साथ-साथ मानसिक रूप से विकलांग लोगों, शारीरिक रूप से विकृत लोगों, वधिर या नेत्रहीन लोगों की जबरदस्ती नसबंदी करा दी गई और यहूदी मिश्रित भ्रूणों को गिरा दिया गया। परिवार को बड़ा करने के अपने तमाम विचारधारात्मक वादों के बावजूद वास्तविकता यह थी कि शांति काल में तलाक की दर तेजी से बढ़ी, और बाल अपराध में वृद्धि हुई। एक बार युद्ध शुरु हो जाने पर महिला श्रमिकों पर निर्भरता बढ़ी और युद्ध के मैदान में अधिक से अधिक पुरुषों की जरूरत पड़ने लगी। इसी समय हिमलर के आदेश पर एस.एस कार्यकर्ता स्वयं और शुद्ध नस्ल वाले जर्मनों की मदद से अविवाहित महिलाओं को अवैध रूप से गर्भवती करने लगे ताकि वे फ्यूहरर (हिटलर) के लिए शुद्ध नस्ल के बच्चे पैदा कर सकें।

27.7.5 कला और साहित्य पर प्रतिबंध

नाजी उदारवादी और मिली जुली संस्कृति के बिलकुल खिलाफ थे। मई 1933 से गोयबेल्स की देखरेख में पुस्तकें जलाई जाने लगीं। स्टीफेन स्वैग, इ.एम रमार्क, एलबर्ट आइंस्टाइन और ह्यूगो प्रौइस जिसने वाईमार संविधान लिखा था की पुस्तकें इसमें शामिल की गईं। एच.जी.वेल्स, सिगमन फ्रायड, आंद्रे गिड, एमिल जोला

और अपटन सिंक्लेयर जैसे विदेशी लेखकों पर प्रतिबंध लगाया गया। किसी भी पश्चिमी देश में संस्कृति को इस प्रकार नियंत्रित नहीं किया गया था। सांस्कृतिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र जैसे ललित कला, संगीत, रंगमंच, साहित्य, अखबार, रेडियो और फिल्म के क्षेत्र में चैम्बरों की स्थापना की गई जिनके निर्णय को कानून का दर्जा प्राप्त था। यहूदियों को सांस्कृतिक जीवन से अलग कर दिया गया और सेजाने, वैन गोग, गाडगिन और पिकासो जैसे चित्रकारों के 65,000 चित्र कला वीथियों और संग्रहालयों से हटा दिए गए। एक जर्मन कला संस्थान का निर्माण किया गया। इस कला विध्वंस के प्रति जनता की प्रतिक्रिया को इसी बात से जाना जा सकता है कि नाजियों द्वारा प्रतिबंधित मार्डन आर्ट (जिसे नाजी पतित कला कहते थे) पर हुई प्रदर्शनी की लोकप्रियता के कारण उसे बन्द कर देना पड़ा।

27.7.6 प्रेस

समाचार पत्र, पत्रिकाएं गोयबेल्स के पूर्ण नियंत्रण में थे। उसने इसके लिए निर्देश जारी कर रखे थे और उसके मौखिक आदेश भी अखबार पर नियंत्रण रखते थे। राजनैतिक और नस्ली तौर पर सम्पादकों को 'शुद्ध' होना पड़ता था। उदारवादी और यहूदियों के अखबारों को जबरन बन्द कर दिया गया। 1933 और 37 के बीच दैनिक समाचार पत्रों की संख्या 3,607 से घटकर 2,671 हो गई। पूर्व सार्जेन्ट मैक्स अमन जर्मन प्रेस का वित्तीय तानाशाह बना और प्रतिदिन 25 मिलियन के वितरण (पत्र-पत्रिकाएं) का दो तिहाई हिस्सा नाजियों के सीधे नियंत्रण में आ गया। रेडियो और चलचित्रों को राज्य के अधिप्रचार का साधन बनाया गया। फिल्मों पर इतनी ज्यादा चुटकी ली जाने लगी कि आन्तरिक मंत्री को यह चेतावनी देनी पड़ी कि सिनेमा देखने वाले दर्शक समुचित व्यवहार करें।

27.7.7 शिक्षा नीति

जर्मनी की शिक्षा नीति नात्सी पार्टी के एक सैनिक तरीके पर संगठित दल (जो लोगों को असंगठित करने के लिए इस्तेमाल किए जाते थे) के हवाले की गई। यह सामाजिक जीवन पर नाजीवाद के पड़ने वाले विनाशकारी प्रभाव का एक संकेत मात्र था। 30 अप्रैल 1934 को एस.ए. का एक स्थानीय नेता बर्नहाडरस्ट विज्ञान, शिक्षा और लोकप्रिय संस्कृति मंत्री बना जबकि इसी रस्ट को 1930 में विक्षिप्त मानसिकता के लिए विद्यालय के शिक्षक पद से हटा दिया गया था। प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक के पाठ्यक्रम को नाजीवादी विचारों से भर दिया गया। स्थानीय प्राधिकारों और प्रांतीय सरकारों के शिक्षा संबंधी अधिकार समाप्त कर दिए गए। पाठ्य पुस्तकें फिर से लिखी गईं और *मेन कैम्फ* (हिटलर की पुस्तक) शिक्षा का केंद्रीय बिंदु बन गया। शिक्षकों को नाजी शिक्षक संघ में शामिल होना पड़ता था और हिटलर के प्रति निष्ठा रखने की शपथ लेनी पड़ती थी। विश्वविद्यालय और विद्यालय के अधिकांश शिक्षक अतिसंकीर्णवादी और शामी विरोधी दृष्टिकोण रखते थे और विद्यार्थियों को नाजीवाद की घुट्टी पिलाकर उन्होंने वाईमार गणतंत्र की प्रतिष्ठा कम करने में काफी मदद की। कुछ उदारवादी प्रोफेसर भाग गए या जहां उन्होंने शरण ली उन्हें मार दिया गया। कुछ अन्य लोगों ने हार मान ली। इनमें प्रसिद्ध दार्शनिक हेडेगर भी शामिल थे जो युद्ध के अन्त तक नाजी पार्टी के सदस्य बने रहे। एक समकालीन पर्यवेक्षक ने इन सारी गतिविधियों को देखते हुए टिप्पणी की थी कि "चारों ओर वेश्यालय का परिदृश्य था जिसने जर्मन शिक्षा की सम्मानजनक इतिहास को दागनुमा बना दिया"।

यहूदियों को अध्यापन से मुक्त कर दिया गया। पाठ्यक्रम में नस्ल विज्ञान की पढ़ाई की जाने लगी जिसमें नस्लवाद के सिद्धांत के तहत यह बताया जाने लगा कि आर्य-जर्मन नस्ल सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट है और यहूदी सभी बुराइयों को जन्म देने वाले हैं (1905 से 1931 तक दस जर्मन यहूदियों को विज्ञान में नोबल पुरस्कार मिला था)। आइंस्टाइन और फ्रैंक (भौतिक विज्ञान) और हेबर और वारबर्ग (रसायन विज्ञान) जैसे महान शिक्षकों को या तो बर्खास्त कर दिया गया या नौकरी से निकाल दिया गया था या देश छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया गया। जो बच गए वे 'जर्मन' भौतिक शास्त्र और गणित आदि पढ़ाने लगे। एक प्रोफेसर ने आधुनिक भौतिक विज्ञान को यहूदियों द्वारा जर्मन विज्ञान के विध्वंस करने के औजार के रूप में व्याख्यायित किया। सापेक्षता के सिद्धांत (आइंस्टाइन की खोज, जो एक यहूदी था) को एक षड्यंत्र कहकर खारिज किया गया। नाजीवाद के छह वर्षों के बाद विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या 127, 920 से घटकर 58,325 हो गई; और प्रौद्योगिकी पाठ्यक्रम पढ़नेवाले छात्रों की संख्या 20,474 से घटकर 9554 हो गई। शिक्षा के स्तर में तेजी से गिरावट आई। 1937 तक आते-आते युवा संगठनों में 6 से लेकर 21 वर्षों तक के 7.7 मिलियन सदस्य शामिल हो गए। जिन अभिभावकों ने विरोध करना चाहा उन्हें धमकी दी गई कि वे अपने बच्चों से हाथ धो बैठेंगे। योग्य युवा नाजियों को 'आर्डर कैसेल' में नियुक्त कर लिया गया।

27.7.8 धार्मिक असहिष्णुता

नाजीवाद के सैद्धांतिक आह्वान की भावोत्तेजक प्रकृति को देखते हुए उसके द्वारा लोकप्रिय धार्मिक मतों पर नियंत्रण स्थापित करने की चेष्टा पर बहुत आश्चर्य नहीं होना चाहिए। वैसे हिटलर एक कैथोलिक था परंतु ज्यादा से ज्यादा यह कह सकते हैं कि चर्च के प्रति उसका यह दृष्टिकोण उपयोगितावादी था। नाजी पार्टी के कार्यक्रम में सकारात्मक ईसाई धर्म की आवश्यकता पर बल दिया गया था। 20 जुलाई 1933 को वैटिकन के साथ एक संधि हुई जिसमें चर्च को अपना कार्य करने की स्वतंत्रता दी गई; हालांकि व्यवस्थित रूप से इसका उल्लंघन किया गया। परंतु इस समझौते से तीसरा राईख को एक सम्मानजनक स्थिति प्राप्त हुई जिसकी उसे अत्यंत आवश्यकता थी और इसके नेताओं के लिए यह आक्रामक रूख अपनाने का एक संकेत था। 30 जुलाई 1933 को कैथोलिक यूथ लीग को भंग कर दिया गया। अगले कुछ वर्षों में हजारों कैथोलिक पुजारी, नन और भक्तों को गिरफ्तार किया गया और 1934 में कई प्रमुख नेताओं की हत्या कर दी गई। 14 मार्च 1937 को पोप पायस XI ने "विथ वर्निंग सौरो" (दहकती पीड़ा के साथ) नाम से एक सार्वभौम पत्र जारी किया और नाजी सरकार पर संधि के उल्लंघन का आरोप लगाया। इसमें आरोप लगाया गया कि नाजी घृणा, निन्दा आदि का बीज बो रहे हैं और ईसा मसीह तथा चर्च के खिलाफ शत्रुता का रवैया अपना रहे हैं। उन्होंने चेतावनी दी कि विनाशकारी धार्मिक युद्ध के तूफानी बादल चारों ओर मंडरा रहे हैं जिनका उद्देश्य विध्वंस के सिवा कुछ भी नहीं हो सकता। जैसे-जैसे चीजें सामने आईं वैसे-वैसे शासन की प्रकृति के बारे में ये बातें सही सिद्ध होने लगीं।

प्रोटेस्टेन्ट परम्परा के भीतर भी मतभेद मौजूद थे परंतु नाजीवाद लूथरवादी शामीविरोधी पूर्वाग्रहों से ग्रस्त था (मार्टिन लूथर कट्टर यहूदी विरोधी था और सत्ता के प्रति पूर्ण निष्ठा में पूर्णतः विश्वास रखता था)। धर्मांध नाजियों ने जर्मन क्रिश्चन फेथ मूवमेंट जैसी पृथक धर्म सभाओं का आयोजन किया। हिटलर ने व्यक्तिगत तौर पर साइनोड के चुनाव में हस्तक्षेप किया जिसमें राईख विशप का चुनाव किया गया। हालांकि निजी तौर पर वह प्रोटेस्टेंट को छुद्र व्यक्ति और कुत्ते के समान दब्बू कहा करता था। "जर्मन क्रिश्चन" के बर्लिन नेता ने ओल्ड टेस्टामेंट को त्यागने की वकालत की और कहा कि इसें पशु के व्यापारियों और दलाली के सिवा कुछ भी नहीं था। उसने न्यू टेस्टामेंट के पुनर्लेखन की बात की और राष्ट्रीय समाजवाद की मांग को देखते हुए ईसा मसीह के उपदेशों को संशोधित करने की मांग की। पैस्टर निमोलर, जिन्होंने 1930 की घटनाओं का स्वागत किया था का एक वर्ष के अन्दर मोह भंग हो गया। उसने 'कॉन्फेसनल चर्च' का विरोध किया और उसने शामी विरोध की आलोचना की तथा राज्य के हस्तक्षेप को समाप्त करने की मांग की। सैकड़ों पुरोहित गिरफ्तार किए गए, मार डाले गए या यातना शिविरों में भेज दिए गए। 1 जुलाई 1937 को अपने अन्तिम उपदेश के बाद निमोलर गिरफ्तार कर लिए गए। उन्होंने अपने इस उपदेश वक्तव्य में ये स्मरणीय शब्द कहे थे "मनुष्य के आदेश पर अब हमें अधिक देर तक मौन धारण नहीं किए रहना चाहिए जबकि ईश्वर हमें बोलने का आदेश दे रहा है"। वे 1945 तक यातना शिविरों में पड़े रहे। हालांकि कुल मिलाकर चर्च शासन के प्रति निष्ठावान रहा और उसने अपने सभी पुरोहितों को फ्यूहरर के प्रति निष्ठा की शपथ लेने का आदेश दिया। युद्ध के दौरान जर्मनी के राष्ट्रीय राईख चर्च के 30 सूत्री कार्यक्रम में नाजी चर्च की नीति का उल्लेख किया गया था जिसमें इसाई धर्म के उपदेशों और बाइबल के प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया और चर्च की वेदी पर केवल मेनकैम्फ की प्रति और तलवार रखने की बात की गई थी।

27.8 यहूदियों का नरसंहार

यहूदियों की योजनाबद्ध हत्या हिटलर के शासन का सबसे दमनात्मक पक्ष था। नाजी पार्टी के दर्शन में यहूदियों के प्रति घृणा और आर्य शुद्धता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। 15 सितम्बर 1935 के न्यूरेमबर्ग कानून के तहत यहूदियों से जर्मन नागरिकता छीन ली गई और उन्हें "मातहत" का दर्जा प्रदान किया गया। यहूदियों और आर्यों के बीच वैवाहिक या विवाहेतर संबंध रखने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अगले कुछ वर्षों में तीन और कानून बनाकर उन्हें समाज से पूरी तरह बहिष्कृत कर दिया गया। बर्लिन ओलम्पिक के दौरान आधे यहूदी बेरोजगार हो गए थे। सामाजिक वहिष्कार की बात खुलमखुल्ला की जा रही थी और चारों ओर साइन बोर्ड और होर्डिंग पर ये बातें क्रूर रूप में लिखी होती थीं। 1933 और 1938

के बीच (9 नवम्बर 1938 के कुख्यात क्रिस्टल नाइट का वर्ष) 50,00,00 में से लगभग आधे से ज्यादा यहूदी देश छोड़कर बाहर चले गए। "आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही दृष्टियों से जर्मन स्वर्ग की जड़ें गहरे रूप में यहूदी नर्क से जुड़ी हुई थी।" (ग्रंडेनबर्ग, 579)

एस.ए के अधीन सबसे पहला यातना शिविर 1933 में बनाया गया। जून 1934 में रोयम के शुद्धिकरण के बाद यातना शिविर एस.एस के हाथों में सौंप दिया गया और वहां मौत के सौदागरों के हाथ में कमान थमा दी गई। डखाउ आ विट्ज और बुखेवाल्ड जैसे अज्ञात गांवों और शहरों के नाम कुख्यात हो गए। कत्लेआम की शुरुआत 1938 और 1941 के बीच हुई जब तथाकथित सुख-मृत्यु के नाम पर मानसिक रूप से विकलांग 70,000 जर्मनों को मार दिया गया। 1941 के उत्तरार्द्ध में यातना शिविर में काम न कर पाने वाले व्यक्तियों का भी यही अंत हुआ –15,000 यहूदियों को जहरीली गैस से मार डाला गया। मार्च 1942 में पोलैंड के ल्यूबिन जिले में बेलजेक गैस चेम्बर द्वारा जन हत्या का सिलसिला शुरू हुआ। यहूदी दास मजदूरों को चुन-चुन कर मशीनगन से भून दिया गया। आउशविज-विरकेन्यू सबसे बड़ा यातना शिविर था जहां 2 से 3 मीलियन यहूदियों के साथ-साथ जिप्सियों, पोलैंड वासियों और रूसी बंदियों की हत्या कर दी गई। ये हत्याएं किसी व्यक्तिगत कुंठा, आंतरिक कलह, किसी समाधान या युद्ध की अनिवार्यता के उद्देश्य से नहीं की जा रही थी। इन हत्याओं के पीछे नाजी दर्शन का जैविक आधारित उन्माद काम कर रहा था। अत: यह अतीत में हुए सभी प्रकार की आतंकवादी क्रांतियों या युद्धों से अलग था। यहां लोगों की व्यवस्थित रूप से हत्या की गई जिसमें व्यक्तिगत राग-द्वेष का कोई स्थान नहीं था। लोगों को इसलिए मारा गया क्योंकि ऐसा समझा जाता था कि वे छुद्र मानव थे, "कीड़े-मकोड़े" थे। कृषक हिमलर ने एक जैविक बीमारी की तरह इस समस्या का समाधान किया।

अपनी प्रसिद्ध जीवनी *हिटलर* में जोएखिम फेस्ट ने बताया है कि "हिटलर के शासन को अलग-थलग करके नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि उसे विस्तृत रूप में फैली सामाजिक क्रांति के आतंकवादी या जैकोबिन चरण के रूप में देखा जाना चाहिए जिसने जर्मनी को बीसवीं शदी में ढकेला और जो आज भी जारी है।" इसके अनुसार हिटलर के आने के साथ ही जर्मनी में 19 वीं शताब्दी का अंत हो गया। अपने पुरानपंथी के बावजूद वह अपने संकीर्णवादी विरोधियों की अपेक्षा अधिक आधुनिक था क्योंकि वह परिवर्तन की आवश्यकता को समझता था।

सर्वसत्तात्मक नेता राज्य की इच्छा के अनुसार प्रतिष्ठित संस्थान नष्ट कर दिए गए, लोगों के परम्परागत रहन-सहन, सोच और अधिकार को नकार दिया गया, विशेषाधिकार समाप्त कर दिए गए और हिटलर से उद्भूत या संरक्षित न होने वाले सभी प्राधिकारों को कुचल दिया गया। इसी के साथ हिटलर अतीत से संबंध विच्छेद से होने वाले भय या उत्सुकताओं को दबाने में सफल रहा।

चित्र 2: यहूदियों की दुकानों का बहिष्कार करने हेतु नाज़ी धरना पट्टिका पर लिखा है: जर्मन वासियों जवावी हमला करो यहूदियों से मत खरीदो!

फेस्ट के अनुसार हिटलर के शासन के दौरान क्रांति को उसके नैतिक या प्रगतिशील आवरण से मुक्त कर दिया गया। आधुनिकता संबंधी अपनी आवधारणा, परिवर्तन की आवश्यकता और 19वीं शताब्दी का संबंध 'प्रगति' की सकारात्मक अवधारणा से जोड़ते हुए वह खुद परस्पर विरोधी बातें करता है। उसने अपनी प्रशस्ति में नाजीवाद और स्टालिनवाद की तुलना करने का भी प्रयत्न किया और उसने लिखा कि सोवियत संघ में स्टालिन में भी व्यक्ति आधारित सर्वसत्तात्मकता नजर आती है और राष्ट्रपति रूजवेल्ट की काम करने की शैली भी निरंकुशतावादी थी। इसका जवाब देते हुए जे.पी स्टर्न ने इस प्रकार की तुलना की असंगति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि मार्क्सवाद और हिटलर के शासन में एक मूलभूत अंतर यह था कि मार्क्सवाद मानवीय समानता पर आधारित था जबकि हिटलर का शासन नस्ली साम्राज्यवाद पर केंद्रित था जिसमें यहूदियों, जिप्सियों और अन्य लोगों को छुद्र मानवों की श्रेणी में डालकर उनकी हत्या कर दी गई। अन्तत: तीसरा राईख का काला इतिहास व्यावहारिक और भौतिक कारणों के आधार पर किसी भी प्रकार के तर्कसंगत विश्लेषण को पूरी तरह नकारता है। स्टर्न के अनुसार "हिटलर का उद्देश्य विजय प्राप्त करना नहीं बल्कि जन हत्या करनी थी। नाजी शासन के एक अन्य विद्वान कहते हैं कि तीसरा राईख की तुलना दो मुहें बंदूक से की जा सकती है जिसका एक रूख बीसवीं शताब्दी की ओर था और दूसरा वर्साय की सामाजिक संधि की ओर; एक नली से पूर्व-औद्योगिक अतीत का मोह व्यक्त हो रहा था और दूसरे से युद्ध की तैयारी हो रही थी।" (ग्रनबरगर, 328)

चित्र 3: नाजी यातना शिविर का एक चित्र, जहां यहूदियों की हत्या की गई थी

बोध प्रश्न 2

1) नाजी पार्टी के शिक्षा और धर्म के प्रति नजरिए का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) आपके अनुसार नाजी शासन की आधारभूत विशेषताएं क्या हैं ?

....

....

....

....

....

27.9 सारांश

अति केंद्रीयता, चर्च, सेना तथा न्यायपालिका जैसी संस्थाओं पर नियंत्रण, नेता के प्रति निष्ठा और जैविक आधारों पर यहूदियों और जिप्सियों से घृणा, आर्यों की श्रेष्ठता में विश्वास आदि जर्मन फासीवाद के कुछ प्रमुख लक्षण हैं। हालांकि इसका जन्म यूरोप के युद्धोतर काल के खास संदर्भ में हुआ था परंतु इसकी जड़ें 19वीं शताब्दी तक जाती हैं। वर्साय में जर्मनी का अपमान, 1920 के दशक में राजनैतिक अस्थिरता और 1929 की मंदी ने जर्मन फासीवाद के एक संगठन नाजी पार्टी के उदय के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा कर दी। इसने उन जर्मनों को खासतौर पर प्रभावित किया जिनका राष्ट्रवाद बीसवीं शताब्दी की घटनाओं से आहत हुआ था।

एक बार सत्ता में आ जाने के बाद फासीवाद का भयानक चेहरा सामने आया। किसी भी प्रकार के विरोध को कठोरतापूर्वक कुचल दिया गया। न्यायपालिका को अधीनस्थ बना लिया गया। हिटलर के हाथों में सम्पूर्ण सत्ता आ गई। हिटलर के राजनैतिक विरोधियों को पहचानने के लिए खुफिया पुलिस (गस्टैपो) का उपयोग किया गया। नाजियों की आर्यो की नस्ली और जैविक श्रेष्ठता की अवधारणा को राजनीतिक व्यवस्था में शामिल कर लिया गया। महिलाओं को सभी महत्वपूर्ण पदों से हटा दिया गया। नाजी विचारधारा के तहत सभी यहूदियों को अभूतपूर्व भेदभाव का सामना करना पड़ा। उनसे जर्मन नागरिकता छीन ली गई। यहूदियों और जिप्सियों को यातना शिविर में डालकर मारा जाने लगा। 2 से 3 मीलियन यहूदियों को केवल एक यातना शिविर में मार डाला गया।

27.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 27.2
2) देखिए भाग 27.4
3) इस प्रश्न का उत्तर देते समय वाईमार गणतंत्र के संकट, आर्थिक संकट के प्रभाव और इसके बाद की राजनैतिक अस्थिरता का जिक्र कीजिए। देखिए भाग 27.5

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 27.7.7 और 27.7.8
2) एक सर्वसत्तात्मक शासन, राज्य और एक दल के प्रति समाज की पूरी मातहतता, फ्यूहरर के हाथों में सभी शक्ति, महिलाओं के खिलाफ संकीर्ण और भेदभावपूर्ण व्यवहार, कला, साहित्य और संस्कृति के अन्य रूपों पर राज्य का पूरा नियंत्रण, शिक्षा का मात्र नाजी अधिप्रचार के रूप में प्रयोग, धार्मिक असहिष्णुता और इनसे सबसे बढ़कर यहूदियों से घृणा और उनकी सामूहिक हत्या। देखिए भाग 27.7 और 27.8

इकाई 28 समाजवादी विश्व-I

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य

जैसा कि आप जानते हैं 20वीं शताब्दी के दौरान यूरोप की राजनैतिक व्यवस्था पर तीन प्रमुख विचारधाराओं का प्रभाव रहा है। इनमें से दो विचारधाराओं; उदारवादी जनतंत्र और दक्षिणपंथी शासन व्यवस्थाओं का अध्ययन आप कर चुके हैं। इस खंड की शेष दो इकाइयों में तीसरे सिद्धांत अर्थात समाजवाद और समाजवादी दुनिया की चर्चा की जाएगी। जैसा कि आप जानते हैं 19वीं शताब्दी से ही विचार के रूप में समाजवाद का अस्तित्व मौजूद था। परंतु रूस में हुई 1917 की क्रांति के बाद ही इसे ठोस राजनैतिक व्यवस्था के रूप में ढाला जा सका। इस इकाई में रूसी क्रांति की जानकारी देने के साथ-साथ 1928 तक की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। 1928 के बाद हुए विकास की चर्चा अगली इकाई में की जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रूस में उपस्थित उन परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे जिनके कारण पहली समाजवादी क्रांति संभव हुई।
- क्रांति के बाद रूस में समाजवाद के निर्माण की प्रक्रिया से अवगत हो सकेंगे,
- रूस में समाजवाद के निर्माण के महत्वपूर्ण चरणों के रूप में नई आर्थिक नीति और 'युद्ध साम्यवाद' का विवरण प्राप्त कर सकेंगे, और
- 'साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय' (कॉमिन्टर्न) के गठन द्वारा पूरी दुनिया में समाजवाद के फैलाने के लिए रूस के समाजवादी राज्य द्वारा किए गए प्रयत्नों का विवेचन कर सकेंगे।

28.1 प्रस्तावना

आप समाज के बारे में समाजवादी दृष्टि का थोड़ा बहुत अध्ययन पहले ही कर चुके हैं। समाजवादी दलों द्वारा मजदूरों से सम्पर्क विकसित करने से, आरंभिक 20वीं शताब्दी के संघर्षों ने यूरोप के लोकप्रिय संघर्षों में नया आयाम जोड़ दिया। मजदूर संघर्ष और समाजवादी दलों की गतिविधियां दोनों ही 20वीं शताब्दी में ताकतवर जन आंदोलनों के रूप में उभरी। उनके सहयोग से क्रांति को नए प्रतीक मिले और मजदूर वर्ग को एक नई शक्ति मिली; उदाहरणस्वरूप प्रदर्शन, आम हड़ताल, मजदूरों का रंगमंच, लाल झंडा, मजदूर दिवस के रूप में मई दिवस, अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में 8 मार्च। हालांकि इनकी गतिविधियां पूरे यूरोप में फैली हुई थी परंतु इसका सबसे अधिक प्रभाव रूस पर पड़ा जहां के सुधारवादी आंदोलनों ने पूंजीवादी विरोधी रुख और समाजवादी दृष्टिकोण अपनाया। 19वीं शताब्दी के अंत और आरंभिक 20 शताब्दी में कई क्रांतिकारी लहरें आईं जिसकी परिणति पहली सामाजिक क्रांति के रूप में हुई। इस इकाई में हम इतिहास की प्रथम समाजवादी क्रांति की चर्चा करेंगे जिसे अक्टूबर क्रांति या 1917 की बॉलशेविक क्रांति के रूप में जाना जाता है। हम समाजवादी निर्माण के प्रथम अनुभव की भी चर्चा करेंगे और यह देखने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार इनकी नीतियां पूंजीवादी राज्यों से अलग थी।

28.2 पहली समाजवादी क्रांति रूस में ही क्यों हुई ?

रूसी समाज में सचमुच क्या कुछ हो रहा था जिसके कारण यह सब संभव हुआ ? अपने अन्तिम दिनों में कार्ल मार्क्स ने 19 वीं शताब्दी के अन्त में रूस में बन रहे क्रांतिकारी माहौल की प्रशंसा की थी परंतु समाजवादी विचारधारा का सम्पूर्ण बल इस बात पर रहा था कि परिपक्व और सर्वाधिक विकसित पूंजीवादी देशों में हीं क्रांति होगी। ऐसी कल्पना की गई थी कि पूंजीवादी व्यवस्था जब पूरी तरह परिपक्व हो जाएगी तो वह अपने अन्तर्विरोधों, संघर्षों और तनावों से कमजोर पड़ने लगेगी। उन राष्ट्रों में निजी स्वामित्व और समाजीकृत उत्पादन के बीच विषम स्थिति पैदा हो जाएगी। वहां मजदूर वर्ग को अपने जंजीरों के सिवा और कुछ नहीं खोना होगा। पंरतु वास्तव में प्रथम समाजवादी क्रांति 'पिछड़े हुए' रूस में हुई। यहां के समाज में पूंजीवाद मौजूद था परंतु अभी भी यहां सामंती सामाजिक और आर्थिक शक्तियां जस की तस मौजूद थीं। मजदूर वर्ग अभी भी जमीन के साथ जुड़ा हुआ था और कृषक वर्ग मुख्यत: निजी भू-स्वामित्व की इच्छा रखता था। निश्चित रूप से रूस में बाद के और विकसित पूंजीवाद के बढ़ते अन्तर्विरोधों के कारण वहां क्रांति का सामाजिक माहौल तैयार हुआ।

28.2.1 राजनैतिक ढांचा

पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद की वृद्धि के साथ उदारवादी-संविधानवादी और संसदीय जनतंत्रों का उदय और विकास हुआ। 1917 तक रूस में जार का निरंकुश शासन कायम था। यूरोप के नागरिकों को सहज रूप में प्राप्त सभी व्यक्तिगत, नागरिक और मौलिक अधिकार तथा संगठन बनाने, हड़तालं करने और चुनाव का अधिकार जैसी सामूहिक अभिव्यक्तियों के सभी जनतांत्रिक रूपों पर रूस में प्रतिबंध था। संभवत: आप यह बात जानते हैं कि सम्पूर्ण रूसी समाज में केवल रूसी क्षेत्र ही शामिल नहीं था और इसमें केवल रूसी बोलनेवाले लोग ही नहीं रहते थे। इस साम्राज्य में कई गैर रूसी समुदाय और राष्ट्रीयताएं जैसे यूक्रेन, साइबेरिया, बाल्टिक राज्य आदि शामिल थे। रूस का निरंकुश शासन अपने साम्राज्य की सभी राष्ट्रीयताओं को दबाकर रखता था और यूरोप में होने वाले सभी जनतांत्रिक मामलों के खिलाफ डटकर खड़ा था। इसीलिए इसे 'यूरोप का पुलिस मैन' कहा जाता था। अतएव नई मांगों के परिप्रेक्ष्य में रूसी राज्य की प्रकृति लगातार असंगत होती जा रही थी और नई सामाजिक तथा आर्थिक ताकतों का उदय हो रहा था।

28.2.2 किसान और मजदूर वर्ग

परम्परागत तौर पर रूसी कृषि व्यवस्था में बंधुआ मजदूरी की प्रथा प्रचलित थी जो भूमि और भूमिपति से बंधे हुए थे। कृषिदास की यह प्रथा 1861 में समाप्त कर दी गई और कृषिदास मुक्त हुए तथा उन्हें अपनी मर्जी से कहीं भी आने जाने की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। परंतु 1861 के कृषि सुधारों से जार साम्राज्य की कृषि

समस्या समाप्त नहीं हुई। कृषि में पूंजीवाद के विकास के बावजूद भूमिधर कुलीनतंत्र का आधिपत्य बना रहा, किसान गरीब बने रहे और कृषि पिछड़ी रही। यहां तक कि कृषि के व्यावसायीकृत होने तथा 'कुलक' नामक अमीर कृषकों के उदय के बावजूद ग्रामीण इलाकों में भूमि, लगान, मजदूरी और सार्वजनिक जमीनों पर अधिकार को लेकर (जो भूमिपति कुलीनतंत्र के पास सुरक्षित था) संघर्ष की स्थिति बनी रही। अभी भी अधिकांश जमीन पर और समग्र रूप से कृषि व्यवस्था पर भूमिपति कुलीनतंत्र का अधिकार था।

भूमिपति कुलीनतंत्र के सामाजिक और आर्थिक प्रभुत्व के कारण राजनैतिक क्षेत्र में भी कुलीनतंत्र का दबदबा बना रहा जबकि 1861 के बाद ग्रामीण ढांचे में हुए टकराव के कारण आधुनिक किसान आंदोलन का जन्म हुआ जो धीरे-धीरे राजनैतिक रूप ग्रहण करने लगा। बड़े भूमिपतियों के स्वामित्व को समाप्त करने और किसानों के लिए जमीन की मांग उठने लगी जिसे बॉलशेविकों के सिवा न तो जार कुलीनतंत्र और न ही अन्य कोई राजनैतिक समूह मानने को तैयार था। इसके कारण किसान आन्दोलन हुए और उनके द्वारा जमीन पर कब्जा करने की मांग अक्टूबर 1917 की बॉलशेविक क्रांति का प्रमुख उद्देश्य रहा। इसके अलावा समाजवादी शासन व्यवस्था को मजबूत बनाना भी इस क्रांति का उद्देश्य था।

रूसी औद्योगीकरण की प्रकृति और समय के कारण मजदूर आंदोलन के लिए उपयुक्त माहौल तैयार हुआ। यह मजदूर आंदोलन हिंसात्मक और राजनैतिक था। रूसी समाज और राजनीति के विशिष्ट लक्षणों के कारण इस आंदोलन की प्रकृति सुधारात्मक की अपेक्षा क्रांतिकारी हो गई। देर से औद्योगीकरण होने और पश्चिमी देशों के स्तर तक पहुंचने के लिए औद्योगीकरण के आरंभिक चरणों में बड़े उद्योगों की स्थापना की गई। इंगलैंड या फ्रांस में इसका क्रमश: और धीमी गति से विकास हुआ था। रूस में तेजी से हुए इस औद्योगीकरण के कारण वर्ग चेतना का भी शीघ्रता से विकास हुआ और बुर्जुआ वर्ग द्वारा सामाजिक तथा राजनैतिक वर्चस्व कायम करने से पहले ही एक संगठित जन आंदोलन की शुरुआत हो चुकी थी। रूस में यह मजदूर आंदोलन बुर्जुआ वर्ग, संभ्रांत शासन, पूंजीवाद और तानाशाही के खिलाफ था। इसके अलावा कोई प्रभावी विधान या मजदूर संघ के पास कोई अधिकार न होने से आर्थिक मांगों को लेकर किया गया संघर्ष भी राजनैतिक रूप लेने लगा क्योंकि हड़ताल करने का मतलब था कानून तोड़ना। प्रतिनिधि संस्थाओं की कमजोरी के कारण मजदूर वर्ग के आंदोलन ने इन्हें उखाड़ फेंकने का क्रांतिकारी रास्ता अख्तियार किया। उन्होंने इंगलैंड, फ्रांस और जर्मनी की तरह सामाजिक- राजनैतिक समूहों के लिए अधिकांश प्रतिनिधित्व के जरिए इस पर नियंत्रण करने की कोशिश नहीं की। वस्तुत: मजदूर संघों का जन्म 1905 की क्रांति के बीच से ही हुआ था। बड़े कारखाने देहातों में, शहर से बाहर और नगर की सीमाओं पर लगाए गए थे और इसमें कई प्रकार के मजदूर काम करते थे (निपुण कारीगर, निपुण और अनिपुण कारखाना मजदूर, *कस्तार* या घरेलू व्यवस्था में काम करने वाले मजदूर उसके अलावा टेलीग्राफ, रेलवे निर्माण कार्य में लगे मजदूर)। इनमें से अधिकांश मजदूरों का संबंध अभी तक अपनी जमीन से था। इस कारण इस आंदोलन को व्यापकता मिली और यह केवल बड़े शहरों तक ही सीमित नहीं रहा।

28.2.3 राष्ट्रीय आत्म संकल्प

जार के शासन से राष्ट्रीय मुक्ति के साथ साथ समाजवादी क्रांति की विजय हुई। राजनैतिक और सांस्कृतिक भेदभाव के कारण बाल्टिक क्षेत्र, मध्य एशिया, ट्रान्सकाउकेसिया और अन्य क्षेत्रों के लोग अपने को अलग-थलग महसूस करते थे। जार की आर्थिक नीतियों के कारण ये इलाके आर्थिक दृष्टि से पिछड़े बने हुए थे। जार द्वारा यह प्रयत्न किया गया था कि इन इलाकों में मुख्य वर्ग खेती पर आश्रित रहे और लोग भूमि से बंधे रहें। इन स्थानों पर राष्ट्रीय आत्म संकल्प, अपनी भाषा और संस्कृति के अधिकारों की मांग करने और सामान्य अवसर उपलब्ध कराने और यहां तक कि पृथक राजनैतिक पहचान देने के लिए एक मजबूत आंदोलन उठ खड़ा हुआ। बॉलशेविकों ने किसानों के लिए भूमि की मांग का समर्थन किया और संबंध विच्छेद के अधिकार तथा स्वैच्छिक संघ बनाने के अधिकारों का समर्थन किया। अतएव इन क्षेत्रों में किसानों ने जार की तानाशाही शासन व्यवस्था के खिलाफ समाजवादी विकल्प के विषय में निर्णायक भूमिका निभाई और इस क्रम में राष्ट्रवादी विकल्पों पर तनिक भी विचार नहीं किया गया।

28.2.4 विचार और संगठन

आरंभिक 20वीं शताब्दी में समाजवादी क्रांतिकारी प्रमुख राजनैतिक प्रवृत्ति थी जो किसानों के वर्ग हितों का प्रतिनिधित्व करते थे और किसानों को क्रांति की प्रमुख प्रेरणा शक्ति मानते थे। विभिन्न विचारों वाले उदारवादी

रूस में पश्चिम यूरोप के संसदीय नमूने के तौर पर उपस्थित थे। मार्क्सवादी या सोशल डेमोक्रेट (साम्यवादी) की रणनीति और प्रेरणा मार्क्स के कम्यूनिस्ट मेनिफैस्टो और उनके गोथा कार्यक्रम की आलोचना (साम्यवादी घोषणा पत्र) से प्रभावित थी। इसके अलावा अधिकांश सुधारवादी बुद्धिजीवी वर्ग मार्क्स की पूंजीवादी आलोचना से काफी प्रभावित था। यूरोप में 1848 की क्रांति में उन्होंने यह अनुभव किया कि बुर्जुआ वर्ग ने उस समय क्रांति के साथ धोखा किया था और मजदूर लगातार एक क्रांतिकारी शक्ति बने हुए थे। अतएव रूस ने पश्चिमी यूरोप के समाप्त होते हुए उदारवाद की अपेक्षा वहां के सर्वाधिक आमूल परिवर्तनवादी विचार को ग्रहण किया।

चित्र 1: लेनिन : रूसी क्रांति का निर्माता

रूस में आरंभ से ही बुर्जुआ उदारवाद कमजोर था और आमूल परिवर्तनवादी वुद्धिजीवी वर्ग का समाजवादी रूझान और क्रांतिकारी नेतृत्व निर्णायक साबित हुआ। बॉलशेविकों ने उत्तर–क्रांतिकारी शासन व्यवस्था की राजनीति के रूप में समाजवाद की विजय का प्रतिनिधित्व किया।

लेनिन बॉलशेविक पार्टी के सर्वप्रमुख नेता थे। बॉलशेविक ने रूस में मार्क्सवाद को मात्र आरोपित नहीं किया। उन्होंने मार्क्सवाद के ढांचे मे रूस की विशिष्ट क्रांतिकारी समस्याओं का निदान ढूंढने की कोशिश की। उन्होंने बताया कि रूस के पिछड़े माहौल में और बुर्जुआ वर्ग के अपेक्षाकृत कमजोर होने के कारण बुर्जुआ जनतांत्रिक क्रांति लाने में इनकी भूमिका बहुत स्पष्ट नहीं होगी। मजदूर आंदोलन का सामना कर रहा बुर्जुआ वर्ग फ्रांसीसी और इंगलिश बुर्जुआ वर्ग की भूमिका नहीं दुहरा सकता। अतएव मजदूर वर्ग का आधिपत्य क्रांतिकारिता के प्रथम बुर्जुआ जनतांत्रिक चरण के साथ-साथ इसके दूसरे समाजवादी चरण के लिए भी जरूरी था। किसानों की संख्या ज्यादा थी और मजदूरों की कम। इसलिए क्रांतिकारी रणनीति के तहत मजदूरों और किसानों को संगठित किया गया। इस प्रकार उन्होंने दो चरण की क्रांति और मजदूर वर्ग के नेतृत्व को अपनी रणनीति में शामिल किया। आरंभिक 20 वीं शताब्दी के क्रांतिकारी आंदोलनों ने उनकी रणनीति को काफी हद तक सही सिद्ध किया।

बोध प्रश्न 1

1) रूस का राजनैतिक ढांचा अन्य यूरोपीय देशों से किस प्रकार अलग था ? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) रूस में सक्रिय विभिन्न राजनैतिक समूहों पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

28.3 क्रांति के चरण और बॉलशेविक विजय

रूसी क्रांति के तीन अलग-अलग चरण माने जा सकते हैं जिसे पूरा करने में बारह वर्ष लग गए। प्रथम चरण के दौरान ड्यूमा कहे जाने वाले संसद का निर्माण हुआ। 1917 की फरवरी क्रांति को दूसरा चरण माना जा सकता है जिसमें केंद्र में जार के शासन के साथ-साथ कामचलाऊ सरकार की स्थापना की गई। अक्टूबर 1917 में क्रांति का अंतिम और तीसरा चरण पूरा हुआ जिसमें जार के शासन को उखाड़ फेंका

गया और जन गणतंत्र की स्थापना हुई। आइए, इन तीनों चरणों पर विस्तार से विचार किया जाए।

9 जनवरी 1905 को मजदूर शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे थे; उन पर गोलियां चलाई गईं। इससे मजदूर भड़क उठे और 1905 में पहली बार तानाशाही शासन पर आक्रमण किया गया। इसे खूनी रविवार के नाम से जाना जाता है। मजदूर और किसान 'जनतांत्रिक गणतंत्र' की मांग करने लगे। उन्होंने किसानों, मजदूरों और सैनिकों का निर्वाचित और जन आधारित राजनैतिक संगठन बनाया जिसे प्रथम सोवियत के नाम से जाना जाता है। बाद में लेनिन ने इसे 'क्रांतिकारी शक्ति की जन्मदात्री' कहा और जो अन्ततः उत्तर-क्रांति राज्य के निर्माण का आधार बना जिससे समाजवादी राज्य ने सोवियत रूस का नाम ग्रहण किया। प्रथम विश्व युद्ध ने रूस की अर्थव्यवस्था और रूस के मजदूरों की आजीविका को बुरी तरह प्रभावित किया जिसके कारण मौजूदा शासन व्यवस्था के खिलाफ विरोध का माहौल बना और इससे रूसी क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

1917 की फरवरी क्रांति ने तानाशाही पर अन्तिम प्रहार किया। पेट्रोगार्ड में महिला मजदूरों के रोटी की कमी को लेकर किए गए प्रदर्शन से इस क्रांति का आरंभ हुआ जो दूसरे शहरों और गांवों तक फैल गया। समाज के सभी वर्गों ने हड़ताल कर दी, किसान आन्दोलित हो उठे और सेना के क्रांतिकारी कदम से तानाशाही की रही सही उम्मीद भी समाप्त हो गई। रूसी तानाशाही को उखाड़ फेंका गया और इसके स्थान पर उदारवादी बुर्जुआ के वर्चस्व वाली कामचलाऊ सरकार की स्थापना की गई।

फरवरी 1917 की क्रांति में पहली बार राजनैतिक स्वतंत्रता अर्जित की गई। मौलिक और नागरिक अधिकारों का सृजन किया गया। हजारों छोटे-छोटे संगठनों द्वारा कारखानों, बैरकों, गांवों और गलियों में सैकड़ों और हजारों पैम्फलेट बांटे गए। कारखाना समिति, ग्रामीण परिषद, सैनिक समूहों जैसे मंचों के जरिए लोगों ने अपनी नियति का निर्माण करना चाहा। एक बार फिर शहरों और गांवों में सोवियतों का चुनाव हुआ और एक बार फिर केंद्रीय सेवियत (जैसा कि 1905 में था) क्रांतिकारी शक्ति के वैकल्पिक स्रोत के रूप में उभरी और इसने कामचलाऊ सरकार का विरोध किया। कामचलाऊ सरकार में प्रतिनिधित्व पाए उदारवादी बुर्जुआ वर्ग के लोग अपनी क्रांति समाप्त कर चुके थे; जबकि मजदूर अभी इसकी शुरुआत ही कर रहे थे। फरवरी की क्रांति के बाद स्थापित नए शासन का यही प्रमुख अन्तर्विरोध था और यह बहुत दिन तक कायम न रह सका। किसान निराश थे कि उन्हें जमीन नहीं मिली; सम्पूर्ण मजदूर और सैनिक निराश थे क्योंकि युद्ध अभी जारी था; हड़तालों और प्रदर्शनों के जरिए असंतोष प्रकट किया गया; किसानों ने जमीनों पर कब्जा कर लिया; भोजन की कमी और इसके मूल्य में वृद्धि होने से दंगे हुए, युद्ध समाप्त न होने से सैनिकों को घोर निराशा हुई जो भूमि वितरण में भी हिस्सा लेना चाहते थे। बॉलशेविकों ने जनता की भावनाओं के अनुरूप नारा दिया और वे उनके चहेते बन गए । उनका नारा था :

- किसान के लिए जमीन
- युद्ध को तुरंत बंद किया जाए
- उद्योगों पर मजदूरों का नियंत्रण हो
- राष्ट्रीयताओं को आत्म संकल्प का अधिकार मिले, और सबसे ऊपर
- रोटी (ब्रेड)

शांति ! भूमि ! रोटी ! प्रजातंत्र ! तात्कालिक मांगे बन गई। सभी जनसंगठनों में बॉलशेविकों को बढ़त हासिल हो गई और अधिकांश मजदूर और सैनिक उनके पक्ष में थे। हालांकि एक विरोधी प्रेस ने इसके विपरीत माहौल बनाने की कोशिश की परंतु इस क्रांति को जनाधार प्राप्त था और यह लगभग खूनी रहित क्रांति थी। सेना (जिसमें ज्यादातर किसान शामिल थे) सहज रूप में क्रांतिकारी ताकतों की ओर खिंचे चले गए। कामचलाऊ सरकार उखाड़ फेंकी गई। इतिहास में पहली बार समाजवादी क्रांति वास्तविक रूप में सामने आई। नए राज्य ने अपने को मजदूरों का राज्य कहा। एक अमेरिकी पत्रकार जॉन रीड ने अपनी पुस्तक 'टेन डेज दैट शुक द वर्ल्ड' में 1917 की अक्टूबर क्रांति का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

28.4 समाजवाद का निर्माण

किसी भी देश में क्रांति के समान ही समाजवाद की स्थापना में शौर्य और साहस भरे संघर्ष की जरूरत होती है। बॉलशेविकों के सामने अपने प्रयोगों के लिए समाजवादी समाज का कोई ढांचा उपलब्ध नहीं था। मार्क्स ने पूंजीवाद का विश्लेषण अवश्य किया था परंतु व्यवहार में समाजवाद का कोई विस्तृत और व्यवहारिक नमूना उपलब्ध नहीं था। आरंभिक रूसी क्रांतिकारियों के सामने केवल उनके आदर्श और समाजवादी विचारकों के प्रमुख सिद्धांत थे। अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में आर्थिक विकास की दृष्टि से रूस अभी भी एक पिछड़ा हुआ देश था और आर्थिक विकास की एक ऐसी रणनीति बनाना आसान नहीं था जो पूंजीवादी व्यवस्था को पीछे छोड़ सके। इसके अलावा समाजवादी रूस को पूंजीवादी देशों का एक साथ सामना करना पड़ा। इस देश के प्रति उनका रवैया केवल मात्र शत्रुतापूर्ण नहीं था बल्कि वास्तव में वे इस नए राज्य के खिलाफ युद्ध कर रहे थे; दूसरी ओर रूस के पूर्ववर्ती भूमिपतियों और पूंजीपतियों ने गृह युद्ध छेड़ रखा था।

तीव्र आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, व्यक्तिगत मौलिक अधिकारों की गारंटी, सैद्धांतिक तौर तरीके जितने आसान लगते हैं व्यवहार में वे उतने ही कठिन लगते थे। समाजवाद के निर्माण के संबंध में तीखे राजनैतिक मतभेद थे; राणनीति और उद्देश्य पर बहस छिड़ी हुई थी और नए-नए प्रयोग तथा नीतियां बन रही थीं। पिछड़ेपन के कटु यथार्थ, सम्पूर्ण पूंजीवादी विश्व की शत्रुता और गृह युद्ध के परिप्रेक्ष्य में कई सपने अधूरे रह गए, कई आदर्श धूल चाटने लगे, कई इच्छाएं अस्वीकार कर दी गईं। यूरोप के कई देशों में क्रांतियां सफल नहीं हुईं। हालांकि बॉलशेविकों को 'समाजवादी विश्व क्रांति' में अपनी कई नीतियों की सफलता पर विश्वास था। आरंभिक सोवियत समाजवादी राज्य अकेला पड़ गया और इसमें आरंभिक प्रयोग की कई कमियां भी मौजूद थीं। मजदूर राज्य को कई प्रकार के खतरों से बचाना था। इस क्रांति की रक्षा में कई लोग मारे गए थे परंतु उन्होंने दुनिया को यह दिखा दिया कि विकास और आधुनिकता का यह भी एक रास्ता हो सकता है। उनकी उपलब्धियां कुछ मायनों में निश्चित रूप से मील का पत्थर थीं ।

28.4.1 परिवर्तन की प्रकृति-आरंभिक विधान

पूंजीवाद के वैधानिक और आर्थिक आधारों को समाप्त करना और समाजवाद की आधारशिला रखने के लिए कानून बनाए गए। इसका उद्देश्य पहले की विदेश नीति और निजी मुनाफे, व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद जैसे समस्त पूंजीवाद मूल्यों में आमूल परिवर्तन करना था।

सबसे पहले उद्योगों में निजी संसाधनों को समाप्त किया गया और उस पर मजदूरों का नियंत्रण स्थापित किया गया। कारखानों पर मजदूर राज्य का आधिपत्य हो गया और मजदूरों को प्रतिनिधित्व देकर उत्पादन प्रक्रिया में मजदूरों का नियंत्रण स्थापित करने का प्रयोग किया गया और उन्हें कारखानों में अधिकार दिए गए। सोवियत रूस और अन्य समाजवादी देशों में सामाजिक नियोजन के तहत उद्योग पर राज्य का अधिकार बना रहा परंतु युद्ध के दिनों में और बाद के वर्षों में केंद्रीकृत नियोजन के समय मजदूरों के नियंत्रण से कई मुश्किलें सामने आईं।

कृषि के क्षेत्र में भी परिवर्तन किए गए। नवम्बर 1917 की भू राज्याज्ञा के द्वारा भूमिपति प्रथा समाप्त कर दी गई, जमीन का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और निजी रूप से खेती करने के लिए तथा पीढ़ी दर पीढ़ी उपयोग करने के लिए जमीन किसानों के बीच बांट दी गई। परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर जमीन वितरित की गई। इस जमीन और इस पर किए जाने वाले श्रम से होने वाली आय पर निजी या व्यक्तिगत अर्थात परिवार के सदस्यों का अधिकार होता था; परंतु वे यह जमीन बेच नहीं सकते थे और न ही दूसरों के श्रमों का शोषण करने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता था। कृषि व्यवस्था से शोषण आधारित संबंधों को समाप्त कर दिया गया; और भूमि निजी सम्पत्ति नहीं रह गई, हालांकि उत्पादन और स्वामित्व का निजीकरण जारी रहा।

28 दिसम्बर 1917 को सभी निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और बैंक के सभी भागीदारों (शेयर होल्डर) का स्वामित्व समाप्त हो गया और सभी विदेशी ऋणों को नकार दिया गया। रूसी क्रांति ने वर्ग आधारित समाज को भी नष्ट कर दिया। वेतन में अंतर जरूर बना रहा और युद्ध की परिस्थितियों और

सीमित उत्पादकता के कारण लोगों को काम और योग्यता के अनुरूप वेतन नहीं मिल सका परंतु पूंजीवाद की अपेक्षा काफी हद तक सामाजिक न्याय की मांग पूरी हुई क्योंकि शारीरिक श्रम की अब ज्यादा देर तक उपेक्षा नहीं की जा सकी, मजदूरों और अधिकारियों के वेतन में काफी अंतर रहा और बिना काम किए या अपने लिए दूसरे से काम कराकर कमाई नहीं कर सकता था।

राजनैतिक स्तर पर नए राज्य ने अपने आप को 'सर्वहारा की तानाशाही' अर्थात समाजवादी जनतंत्र के रूप में परिभाषित किया। इसमें मुट्ठी भर लोगों की अपेक्षा जनता के हितों को प्राथमिकता दी गई; जनता में मजदूर और कामगार लोग शामिल थे। दूसरे, इसके जरिए क्रांति ने काम करने वाले लोगों का राजनैतिक आधिपत्य कायम किया जबकि पूंजीवादी व्यवस्था और बुर्जुआ जनतंत्र में राष्ट्रीय संसाधनों पर निजी नियंत्रण होता है। तीसरे, इस नए राज्य ने जनतंत्र की एक अधिक सकारात्मक अवधारणा सामने रखी जहां फ्रांसीसी विरासत को शामिल करते हुए व्यक्ति की जरूरतों को पूरा करने की ज्यादा जिम्मेदारी राज्य ने अपने ऊपर ले ली; यहां *लैसेज-फेयर* की अवधारणा के लिए कोई जगह नहीं थी जिसमें राज्य के अहस्तक्षेप से व्यक्ति की स्वतंत्रता जुड़ी होती है और व्यक्ति को काफी हद तक अपनी रक्षा करने के लिए अकेला छोड़ दिया जाता है।

क्रांति के कुछ महीनों के भीतर सरकार ने पुरानी सरकार की सभी गुप्त संधियां प्रकाशित कर दी और यह घोषणा की कि सोवियत रूस और अन्य देशों के बीच होने वाली संधियां स्पष्ट और सार्वजनिक होंगी। इसी शांति संबंधी राज्याज्ञा से उन्होंने शांति प्रस्ताव सामने रखा जिसमें आक्रमण, आधिपत्य या हार जाने को कोई स्थान नहीं दिया गया और उन क्षेत्रों से अपना दावा वापस ले लिया जिसके लिए जार की सरकार और कामचलाऊ सरकार भी लड़ रही थी। सार्वजनिक तौर पर वे उपनिवेशवाद के खिलाफ खड़े हुए और सभी राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्षों का उन्होंने समर्थन किया। यदि रूसी क्रांति न होती तो प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में विलसन के चौदह सूत्र सामने नहीं आते। जार साम्राज्य में शामिल सभी क्षेत्रों में रहने वाली राष्ट्रीयताओं के आत्म निर्धारण और संबंध-विच्छेद के अधिकार को बॉलशेविकों ने कबूल किया।

28.4.2 परिवर्तन की प्रकृति-लोकप्रिय पहल

बॉलशेविक नेतृत्व ने, पुरानी व्यवस्था के संस्थागत ढांचे को तोड़कर और नई की स्थापना कर, अपना वादा पूरा किया। किसानों और मजदूरों ने अपने ढंग से क्रांतिकारी परिवर्तन में भूमिका अदा की। आरंभिक वर्षों में स्थानीय स्तरों पर सहज भाव से और संगठित रूप में क्रांति आगे बढ़ती चली गई। भूमि कम्यूनों, ग्राम सभाओं और किसान सोवियतों ने गांवों में सामाजिक और राजनैतिक बदलाव के स्वतंत्र अंग के रूप में कार्य करना शुरू किया। बॉलशेविकों द्वारा मान्यता प्राप्त कृषि क्रांति की शुरुआत वस्तुतः यहीं से हुई थी और इसी से क्रांति के बाद का ग्रामीण ढांचा निर्मित हुआ था। कुछ ही वर्षों में लाखों एकड़ खेतों की मिल्कियत बदली और उन्हें किसानों में बांट दिया गया। गांव में पुरानी राज्य व्यवस्था पूर्णतः नष्ट हो गई।

शहरों में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति देखने को मिली। सोवियतों को सभी अधिकार देने और मजदूरों के नियंत्रण के नारे गूंजने लगे। इन नारों को कार्य रूप देने के लिए स्थानीय रूप से दो तिहाई कारखानों का राष्ट्रीयकरण किया गया और मजदूरों ने कारखानों और उसके उत्पादन पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। मजदूर संघ, कारखाना समितियां, मजदूर सोवियत और दलीय संगठन जगह-जगह पर पूंजी के असली मालिक बन बैठे।

आमतौर पर चारों ओर जनतंत्रीकरण, विकेंद्रीकरण, स्थानीय पहल और लोकप्रिय निर्णय लेने की लहर थी। सम्पूर्ण जार साम्राज्य में यही क्रांति की सक्रियता और बॉलशेविकों के विधानों पर आधारित नए संस्थागत ढांचों का आधार बना। बॉलशेविक गहरे रूप में इस प्रक्रिया से जुड़े हुए थे, हालांकि इन प्रयत्नों के पीछे कई प्रकार की खींचतान चल रही थी और केंद्रीय नेतृत्व राष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक ढांचे, सार्वजनिक वितरण प्रणाली और मजदूर किसान गठबंधन को संस्थागत रूप प्रदान कर क्रांति से प्राप्त लाभों को ठोस रूप देने का प्रयत्न कर रहा था।

28.5 युद्ध साम्यवाद

क्रांतिकारी परिवर्तन की यह समूची प्रक्रिया 1918 के मध्य तक आते-आते संकट में फंस गई। क्रांतिकारी ताकतों को गृह युद्ध का सामना करना पड़ा। भूमिपति अभिजाततंत्र और बुर्जुआ वर्ग की सशस्त्र सेनाओं और पूंजीवादी देशों की सेनाओं ने समाजवादी शासन को अपदस्थ करने के लिए आक्रमण किया। इस कारण उत्पादन में भारी कमी आई, वितरण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई और आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र सोवियत सरकार के हाथ से छिन गए और सोवियत नियंत्रित क्षेत्र की अनिवार्य वस्तुओं और भोजन की आपूर्ति काट दी गई। चारों ओर भूख, भुखमरी, मुद्रास्फीति और बीमारी का तांडव नृत्य होने लगा। यातायात अवरूद्ध हो गया। चारों ओर अव्यवस्था फैल गई। किसानों और मजदूरों ने अपने अभी-अभी प्राप्त अधिकारों की रक्षा करने के लिए अलग-अलग जगहों पर अपने ढंग से संघर्ष किया और परिणामस्वरूप सभी मोर्चों पर वर्ग संघर्ष छिड़ गया।

चित्र 2 : रूस में अकाल : रोटी बंटने की प्रतीक्षा में पंक्ति में खड़े किसान

स्थिति पर नियंत्रण करने के लिए जून 1918 में बॉलशेविकों ने कई आर्थिक और राजनैतिक कदम उठाए जिन्हें युद्ध साम्यवाद कहा गया। युद्ध के दौरान और युद्ध की स्थितियों से निपटने के लिए ये कदम उठाए गए थे। इसके अलावा मार्क्स और अन्य साम्यवादियों ने समाजवाद या साम्यवाद के विकास में आनेवाली इन दिक्कतों और समस्याओं का हवाला दिया था; इसी कारण इन्हें युद्ध साम्यवादी कहा गया।

28.5.1 आर्थिक पहल और नीतिगत निर्णय

भोजन की समस्या निस्संदेह युद्ध के कारण और भी विकट हो गई परंतु इस समस्या का संबंध क्रांति द्वारा निर्मित ढांचागत व्यवस्थाओं से भी था। किसानों के बीच भूमि वितरित करने से छोटे पैमाने पर कृषि उत्पादन आरंभ हुआ जिसमें किसान अधिक आमदनी और अपना जीवन स्तर सुधारने के लिए बेहतर उपभोक्ता वस्तुओं की आकांक्षा से प्रेरित होकर ज्यादा उत्पादन करना चाहता था। युद्ध के दौरान आर्थिक दृष्टि से समृद्ध संसाधनों की हानि और उत्पादक आधार को व्यापक बनाने और युद्ध के लिए उत्पादन पर बल देने से उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में गिरावट आई। इस कारण किसानों ने बाजार के लिए उत्पादन करना बंद कर दिया और केवल अपनी जरूरत भर का उत्पादन करने लगे जिसके कारण शहरी क्षेत्रों और युद्ध क्षेत्रों में भोजन की भारी कमी हो गई।

शहर में रहने वाले गरीबों और सैनिकों को भोजन उपलब्ध कराने के लिए सोवियत सरकार किसानों से अधिशेष अनाज जबरन वसूल करने लगी और उद्योग को पुन: जीवित करने के लिए सभी उद्यमों पर राज्य का नियंत्रण स्थापित कर दिया गया। सरकार ने सभी अनाजों और खाद्यान्नों को निर्धारित दाम पर वसूलना शुरु किया। खाद्यान्न वसूलने के लिए शहरी दस्तों का निर्माण किया गया, निजी व्यापार पर प्रतिबंध लगाया गया। अनाज के सार्वजनिक वितरण की व्यवस्था की गई। इसके जवाब में किसानों ने अपनी उत्पादकता और भी कम कर दी। इसके कारण अनाज का उत्पादन बहुत तेजी से गिरा जिससे खाद्यान्न संकट और भी गहरा हो गया और अन्तत: 1920-21 में अकाल पड़ गया। इस समय किसानों ने बड़े पैमाने पर जमाखोरी की और अनाज को काला बाजार में ऊंचे दामों पर बेचा और इस प्रकार वसूली प्रक्रिया की राज्य अधिसंरचना पूरी तरह बिखर गई। गृह युद्ध में जीत हासिल करने के बाद किसान सोवियत सरकार के विरोध में खुलकर सामने आ गए और : अभी तक वे बॉलशेविकों के साथ थे क्योंकि वे जानते थे कि भूमिपतियों की वापसी को केवल बॉलशेविक ही रोक सकते थे। कई प्रकार के प्रयोग किए गए; जैसे सहकारी संस्थाएं स्थापित की गईं और सामूहिकता की प्रेरणा और अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए राज्य ने खेती भी शुरु की; परंतु कृषि क्षेत्र में इसका हिस्सा काफी कम था।

अधिक से अधिक संसाधन जुटाने के लिए औद्योगिक उद्यमों का राष्ट्रीयकरण किया गया। मार्च 1918 के एक निर्णय के द्वारा रेलवे को 'मजदूरों के नियंत्रण' से छीन लिया गया और इसे अर्द्धसैनिक नेतृत्व के नियंत्रण में ले लिया गया। सितम्बर तक लगभग 80-90 प्रतिशत तक बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और 1920 तक 5 से कम मजदूरों वाली कार्यशालाओं को भी राज्य के अधीन ले लिया गया। इस अति राष्ट्रीयकरण से एक अलग तरह की अव्यवस्था फैली क्योंकि केंद्रीकृत निर्णय प्रक्रिया और प्रशासनिक अंगों के लिए कच्चे माल का आवंटन, उत्पादन और विपणन करना लगभग असंभव था। इस अव्यवस्था के दौर में अधिकांश हस्तांतरण और लेखा विवरण कागजी घोड़े साबित हुए और रूबल के ध्वस्त होने के बाद वस्तुओं के लेन देन द्वारा (बार्टर व्यवस्था) ही विनिमय होने लगा। 1920-21 में तैयार वस्तुओं और खनन उद्योगों का उत्पादन युद्ध के पहले के उत्पादन से और भी गिर गया। किसान और मजदूर के बीच के टकराव की संभावना और भी बढ़ गई।

28.5.2 युद्ध साम्यवाद के राजनैतिक पक्ष

आमतौर पर युद्ध साम्यवाद को इसके आर्थिक उपायों और इसकी प्रतिक्रिया के संदर्भ में ही देखा जाता है। वास्तव में इसका आयाम काफी विस्तृत था। इसमें अन्तर्निहित कठिनाइयों के कारण ही केवल इसका विरोध नहीं हुआ। जनतंत्र की अवधारणा, व्यक्तियों के रिश्ते, राज्य और लोकप्रिय संगठनों पर बहस की गई। युद्ध साम्यवाद में विशेषज्ञ या क्रांतिकारी (रेड) का नियंत्रण हो इसकी दुविधा उत्पन्न हो गई। अपनी जरूरतों और समाजवादी निर्माण की जरूरतों के कारण किसान और मजदूरों के बीच संघर्ष हुआ जिसने सोवियतों और दल संगठनों के गठन और स्वरूप को प्रभावित किया। आर्थिक स्तर पर हुई असफलता ने जहां एक ओर कृषक युद्ध और शहरी अलगाव को बढ़ावा दिया वहीं कालाबाजारी के उदय ने समाजवादी आदर्शों पर कुठाराघात किया। स्वेच्छा की भावना पर भी संकट के बादल गहराने लगे क्योंकि यूरोप में 'विश्व समाजवादी क्रांति' फलीभूत न हो सकी। लाल सेना के लिए भर्ती की समस्या पैदा हो गई। मजदूर राज्य नियंत्रण के सिद्धांत का विरोध करने लगे और चारो ओर किसानों के विद्रोह के बाद फरवरी 1921 में क्रांशटाट नगर के नौ सैनिकों के विद्रोह ने अंतिम कारक के रूप में कार्य किया। लेनिन को बाध्य होकर नीतिगत परिवर्तन की घोषणा करनी पड़ी। परंतु अधिकांश बॉलशेविकों ने बाद में यह महसूस किया कि इस संकट की घड़ी में सभी अस्थाई उपायों खासकर संस्थागत ढांचों में बदलाव लाना और तत्संबंधी नीतियों में परिवर्तन करना संभव नहीं था। युद्ध साम्यवाद के समय से ही समाजवादी जनतंत्र का राजनैतिक स्वरूप संकटग्रस्त था और यूरोप में क्रांतिकारी आंदोलन के मद्दे नजर बॉलशेविकों को खतरा महसूस हो रहा था।

बोध प्रश्न 2

1) रूसी क्रांति की शुरुआत कैसे हुई ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

2) सोवियत रूस में समाजवादी राज्य ने कौन से नए कदम उठाए ?

....

....

....

....

3) समाजवादी सरकार ने युद्ध साम्यवाद की शरण क्यों ली ?

....

....

....

....

....

28.6 नई आर्थिक नीति

हालांकि राजनैतिक और आर्थिक संकट से निपटने के लिए नई आर्थिक नीति का निर्माण हुआ था परंतु इसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक बदलाव लाना था जिसके कारण समाजवाद की ओर बढ़ने की रणनीति में परिवर्तन आया। इस नई आर्थिक नीति के द्वारा विभिन्न ताकतों के सामाजिक-आर्थिक संतुलन में बदलाव लाया गया।

मार्च 1921 से परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ हुई। अनाज वसूली के स्थान पर आयकर लगाया गया। आयकर के रूप में अनाज प्राप्त किया गया। यह आयकर अनाज वसूली की तुलना में काफी कम था। अब किसान बचा हुआ अनाज अपने पास रख सकते थे और निजी तौर पर उसे बेच सकते थे। अभी भी कृषि व्यक्तिगत उत्पादन पर आधारित था जिसमें बाजार में अनाज बेचकर और व्यापार कर 'मुनाफा' कमाया गया जो दूसरों के श्रम के शोषण पर आधारित नहीं था।

1924 में वस्तु कर के स्थान पर मुद्रा कर लगाया गया और निजी व्यापार का कानून पारित किया गया। 1925 में जमीन को पट्टे पर देने और मजदूर रखने पर लगे प्रतिबंध को ढीला कर दिया गया तथा कृषि कर और भी घटा दिया गया। अब शुद्ध आय पर कर लगाया गया। इसकी दरें अलग-अलग थीं। एक चौथाई हेक्टेयर से ज्यादा जमीन रखनेवालों पर 5 % और तीन हेक्टेयर से ज्यादा जमीन रखनेवालों पर 17 % कर लगाया गया। कर की अलग-अलग दरों के बावजूद, अदायगी के बाद कई कारणों से किसानों के बीच अंतर बढ़ा और कृषक समुदाय के भीतर एक धनी या 'कुलक' वर्ग का उदय हुआ। एक बार कर देने के बाद किसान व्यापार करने और अपना ग्राहक तय करने के लिए स्वतंत्र था। वह अधिक जमीन पट्टे पर दे सकता था और श्रम खरीद सकता था। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच बाजार सम्पर्क फिर से स्थापित हुआ, विनिमय में मुद्रा की भूमिका बढ़ी, केंद्रीकृत वितरण प्रणाली में कटौती हुई और व्यक्तिगत ठीकों को बढ़ावा मिला।

इसके साथ-साथ औद्योगिक क्षेत्र और इसके संगठनात्मक रूपों में भी परिवर्तन आया। 17 मई 1921 के छोटे उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की राज्याज्ञा को निरस्त कर दिया गया और छोटी इकाइयों को वस्तुतः इससे मुक्त कर दिया गया और इनमें से कुछ को उनके पूर्व मालिकों को सौंप दिया गया। केवल बैंकिंग, विदेश व्यापार और बड़े पैमाने पर होने वाले व्यापार तथा भारी उद्योग पर राज्य का नियंत्रण रहा जिसे लेनिन अर्थव्यवस्था का आधार स्तंभ कहता था। जुलाई 1921 तक सभी लोगों को पट्टे पर लघु उद्योग लगाने का अधिकार दिया गया। राज्य उद्यमों को वाणिज्यिक लेखा के आधार पर काम करना था; वेतन और मजदूरी नगद में भुगतान किया जाना था। उद्योगों से यह उम्मीद की जाती थी कि वे अपने बल पर कच्चा माल हासिल करें और अपने उत्पादों को अन्य औद्योगिक उद्यमों या कृषीय उत्पादों से स्वतंत्र ठीके द्वारा प्राप्त करें। इसके कारण निर्णय लेने की प्रक्रिया विकेंद्रित हुई, प्रतियोगिता बढ़ी, वाणिज्यीकरण बढ़ा और निजी

उद्यमियों के एक नए वर्ग का जन्म हुआ। इससे पूंजीवादी मूल्यों और नैतिकताओं को बढ़ावा मिला जिससे सहकारिता और राज्य के बड़े उद्योगों पर भी प्रभाव पड़ा जिसमें अभी भी ज्यादा उत्पादन होता था।

28.6.1 समाजवाद की ओर प्रयाण की रणनीति के रूप में नई आर्थिक नीति

युद्ध साम्यवाद के जरिए जहां एक ओर बॉलशेविकों ने तात्कालिक दिक्कतों पर विजय प्राप्त की और क्रांति को मजबूत बनाया वहीं नई आर्थिक नीति के द्वारा आने वाले वर्षों में आर्थिक समृद्धि प्राप्त की गई और अधिकांश किसानों का भरोसा हासिल करने में मदद मिली। 1918-21 की नीतियों के समान इस नीति का स्वरूप भी अस्थाई था और यह भविष्य की ओर बढ़ने का एक साधन मात्र था।

1920 के आरंभ में अकाल का प्रभाव दिखाई पड़ता है परंतु इसके बाद अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे सुधरने लगी और 1923 तक यह स्तर युद्ध-पूर्व स्तर के एक तिहाई हिस्से तक पहुंच गई। परंतु यदि युद्ध साम्यवाद चरण से तुलना की जाए तो 1928-29 तक कृषि उत्पादन में लगभग 40 %, कुल खेती में 45 % और अनाज क्षेत्र में 39-43 % की वृद्धि हुई। उद्योग में हुई वृद्धि की तुलना में यह वृद्धि दर ज्यादा थी जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक वस्तुओं के दाम बढ़े और उद्योग और कृषि उत्पादों के मूल्य स्तर का अंतर बढ़ा जिसमें उद्योग फायदे की स्थिति में थे, हालांकि इससे विपणन संबंधी दिक्कतें पैदा हुईं। इससे शहर और गांव, किसानों और मजदूर के बीच होने वाली संभावित टक्कर को रोकने के लिए उद्योगों पर दाम कम करने हेतु दबाव डाला गया। परंतु यह समस्या इतनी जल्दी सुलझने वाली नहीं थी क्योंकि नई आर्थिक नीति में खेती निजी क्षेत्र में था और अधिकांश उद्योगों पर अभी भी राज्य का एकाधिकार था।

दूसरी ओर नई आर्थिक नीति से आए बदलावों से समस्याएं और सामाजिक अन्तर्विरोध सुलझ न सके क्योंकि इनका उद्भव केवल युद्ध परिस्थिति या किसी खास नीतियों के कारण नहीं हुआ था बल्कि इसकी जड़ व्यापक सामाजिक अन्तर्विरोधों में निहित थी। किसानों की संख्या ज्यादा थी जबकि क्रांतिकारी मजदूरों से समाजवाद के निर्माण का आह्वान किया गया था। व्यक्तिगत कृषि अर्थव्यवस्था मे वर्ग शोषण की गुंजाइश तो कम थी परंतु इसके बावजूद यह बुर्जुआ संबंधों की ही अभिव्यक्ति थी। जब तक भूमि पर निजी अधिकार रहा, एक परिवार निजी तौर पर काम करता रहा और जबतक निजी तौर पर आमदनी होती रही, तब तक समाजवादी ढर्रे से खेती करने में किसानों को कोई विशेष रूचि नहीं थी। नई आर्थिक नीति में सहकारी खेती की बात सामने आई और किसानों को खुद ब खुद सामूहिकता के लाभ दिखाई पड़ने लगे। परंतु ट्रैक्टर खरीदने या खेतों पर एक साथ काम करने से समस्या का समाधान न हो सका क्योंकि व्यक्तिगत खेतिहरों के समान सहकारी समितियों और सामूहिक संगठन भी उसी बाजार और मुनाफे के सिद्धांत पर काम कर रहे थे। नई आर्थिक नीति के दौरान सहकारी समिति या सामूहिक खेती में कोई खास वृद्धि नहीं हुई और बाजार से जुड़ने तथा मुनाफे की दृष्टि से निजी व्यापार करने की ही दृष्टि सर्वोपरि रही। यही काम निजी किसान भी किया करते थे।

बाजार से जुड़ने और इसके परिणामस्वरूप कृषि के स्तरीकरण होने तथा निजी उद्यमियों का उदय होना साम्यवादी दर्शन में अन्तर्निहित समतावादी तत्व से मेल नहीं खाता था। इसमें सामूहिकता श्रम के सामाजिक लाभों को तो बढ़ावा नहीं मिला बल्कि इसमें सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए व्यक्तिवादी सिद्धांत को ही बढ़ावा मिला।

विकसित समाजवाद, जहां प्रत्येक व्यक्ति अपनी जरूरत के अनुसार वस्तुएं/लाभ प्राप्त कर सकता था, के लिए औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने की जरूरत थी। नई आर्थिक नीति में अर्थव्यवस्था के व्यक्तिगत तथा निजी क्षेत्र से समाजवादी क्षेत्रों की ओर संसाधनों के हस्तांतरण की गुंजाइश कम थी। चूंकि सोवियत रूस के पास कोई उपनिवेश नहीं था इसलिए यह एक बड़ी समस्या थी। इस नई आर्थिक नीति के परिवर्तनों के द्वारा सोवियत संघ को एक विकसित समाजवादी समाज में परिवर्तित करना संभव नहीं था। इसके अलावा इसके द्वारा लोगों के जीवन स्तर में भी सुधार नहीं किया जा सकता था तथा एक अधिक मानवीय, वैज्ञानिक और समता उन्मुख मनुष्य का निर्माण भी संभव नहीं था। जब व्यापार इकाइयों, सोवियतों और अन्य लोकप्रिय संगठनों को ज्यादा अधिकार दिए गए तबतक उनमें स्वेच्छा की बजाए आर्थिक लाभ की भावना घर कर चुकी थी। इस बृहद प्रति्प्रेक्ष्य में हमें भविष्य में दल में होने वाली बहसों, सामूहिकता अभियान और पार्टी तथा लोकप्रिय संगठनों के बीच होने वाले टकरावों को देखना होगा।

28.7 समाजवाद के सांस्कृति आयाम

समाजवादी यह मानते थे कि आरंभिक वर्षों में उन्हें कोई खास उपलब्धि हासिल नहीं हुई परंतु रूस में हुई क्रांति के पहले जो स्थिति थी और उस समय पूंजीवादी विश्व की जो प्राथमिकताएं और नैतिकताएं थीं उन्हें देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने काफी उपलब्धियां हासिल की थीं।

आरंभिक समाजवादी राज्य ने बड़े ही गौरवपूर्ण ढंग से सभी लोगों को रोजगार देने, मुफ्त सेवाएं उपलब्ध कराने, संस्कृति और सांस्कृतिक विकास का समान अवसर प्रदान करने और महिलाओं को समानता देने का वादा किया था। बॉलशेविक समाजवादी क्रांति ने सभी नागरिकों को अच्छा जीवन जीने का वैधानिक अधिकार देकर स्वतंत्रता के आयाम को विस्तार दिया था तथा सामाजिक तथा आर्थिक समानता की बात सामने रखी थी। रोजगार का अधिकार और सभी को उनके कार्य के अनुसार महत्व देने के सिद्धांत को स्वीकार कर इस समानता को ही कार्यान्वित किया गया। मुक्ति और अधिकारों का क्षेत्र विस्तृत हुआ जिसमें भूख से मुक्ति से लेकर अवसर की समानता को शामिल किया गया और वास्तविक अर्थों में लोगों को समान रूप से मनोरंजन की सुविधा प्रदान की गई तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में शामिल किया गया। अल्पसंख्यकों और महिलाओं समेत सभी लोगों को समान अवसर उपलब्ध कराने के लिए निजी सम्पत्ति का उन्मूलन और कल्याणकारी ढांचे का निर्माण किया गया। लोगों के बीच आर्थिक समानता स्थापित कर क्रांति ने संभ्रांत और लोक संस्कृति के बीच की खाई को पाटना चाहा और साहित्य, सिनेमा, कला और संगीत के क्षेत्र में कामगार लोगों के महत्वपूर्ण योगदान को संभव बनाया और इसके फलस्वरूप अल्पसंख्यकों के संगीत और भाषाओं का पुनरूत्थान हुआ। स्वतंत्रता के इस क्षेत्र के विस्तार के कारण बाद के वर्षों में उच्च कोटि की कलात्मक कृतियों के साथ-साथ बड़े पैमाने पर पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इस क्रांति ने दुनिया के सामने आधुनिकता का एक मौलिक विकल्प सामने रखा।

इससे दल, व्यक्ति और राज्य के बीच एक नया संबंध विकसित हुआ, एक सामूहिक राजनैतिक अभिव्यक्ति का जन्म हुआ, जनता राष्ट्रीय नीतियों का केंद्र बन गई और स्थानीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर जनता की भागीदारी बढ़ी। इसने पदों और विशेषाधिकारों का उन्मूलन करना चाहा और भागीदारीपूर्ण जनतंत्र का पैमाना ही बदल डाला।

इन उपलब्धियों को प्राप्त करने में कई प्रकार की बाधाएं सामने आईं। आरंभिक वर्षों में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सभी प्रकार की नीतियों और राजनैतिक जीवन को गृह युद्ध और उससे जुड़ी गतिविधियों ने प्रभावित किया। परंतु क्रांति ने आरंभिक वर्षो में अपने लिए एक मानदंड स्थापित कर लिया था जिसका मूल्यांकन दूसरों को नहीं बल्कि स्वयं क्रांतिकारियों और सम्पूर्ण सोवियत जनता को करना था।

28.8 कॉमिन्टर्न

बॉलशेविकों ने हमेशा से रूसी क्रांति को विश्व समाजवादी क्रांति के अंग के रूप में देखा है। क्रांति की शुरुआत होने से पहले बॉलशेविक और अन्य रूसी क्रांतिकारियों का मानना था कि रूस में क्रांति होने के बाद पश्चिम यूरोप में समाजवादी क्रांति होगी। उनका यह मानना था कि एक बार क्रांति की शुरुआत हो जाने पर पूरा यूरोप उनके पथ का अनुसरण करेगा। पूरे विश्व में मजदूरों के हितों की एकता का मार्क्सवादी सिद्धांत और एक शोषण रहित दुनिया की उनकी समाजवादी दृष्टि उनके अन्तरराष्ट्रीयवाद का आधार बना। इस अन्तरराष्ट्रीयवाद को अन्तरराष्ट्रीय समाजवाद का रूप दिया गया।

जब पश्चिम यूरोप में सामाजिक जनतांत्रिक दलों ने मजदूरों के पक्ष में शासक वर्ग का विरोध करने से इनकार कर दिया (जैसा कि बॉलशेविकों का मानना था) तो बॉलशेविक उनसे अलग हो गए और उन्होंने अपना नाम बदलकर साम्यवादी रख लिया और तदनुसार एक नया अन्तरराष्ट्रीय साम्यवाद का निर्माण किया। बॉलशेविक का मानना था कि उनकी क्रांति कहीं और जन्म लेगी क्योंकि रूस एक पिछड़ा राज्य था और उसमें विकसित समाजवाद को संभालने की शक्ति नहीं थी। अन्तरराष्ट्रीय साम्यवाद को इस क्रांति के अगुआ के रूप में देखा गया।

अन्तरराष्ट्रीय गृह युद्ध के माहौल में कॉमिन्टर्न का जन्म हुआ। इसकी सदस्यता के लिए जो शर्तें रखी गईं तथा जो नीतियां बनाई गईं उससे राष्ट्रीय आत्म निर्धारण, पूर्व रूसी क्षेत्र में राष्ट्रीयता के प्रश्न और विश्व क्रांति के लिए रणनीति बनाने संबंधी बॉलशेविक के नजरिए का पता चलता है। इससे खासतौर पर राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में किसानों के साथ बॉलशेविक के अनुभव का भी पता चलता है।

नवम्बर 1917 में जैसे ही बॉलशेविकों ने आत्म निर्धारण के रूप में संबंध विच्छेद के अधिकार की घोषणा की वैसे ही मित्र राष्ट्रों ने सशस्त्र आक्रमण के लिए इसे मुद्दा बना लिया। इस समय कॉमिन्टर्न ने विभिन्न क्षेत्रों में मजदूरों और किसानों के अधिकारों का निर्धारण किया। इसने यूरोप और सोवियत रूस में चल रहे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों और साम्यवादी दलों के बीच एक संयुक्त मोर्चा बनाने का विचार रखा। इन क्षेत्रों में साम्यवादियों की रणनीति कॉमिन्टर्न से काफी प्रभावित थी जहां राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों को अपने देश में न केवल साम्राज्यवादी शक्तियों और सामंतों के खिलाफ बल्कि बुर्जुआ वर्ग के विरोध के रूप में भी देखा जा रहा था। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों में कृषि क्रांति को आधार माना गया जिसमें मजदूरों को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। 1920 के दशक में नई आर्थिक नीति के तहत कृषक वर्ग के स्वरूप और स्वभाव में परिवर्तन आया और बॉलशेविकों के संघर्ष में भी परिवर्तन शुरू हुआ; वैसे ही राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों में सामाजिक शक्तियों के प्रति कॉमिन्टर्न नीति में भी बदलाव आ गया। कॉमिन्टर्न ने इन देशों में साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष करने में बुर्जुआ वर्ग की 'सकारात्मक' भूमिका को मान्यता प्रदान की और उसे अपना समर्थन दिया। 1920 के दशक में यह नीति कायम रही और कई एशियाई देशों में साम्यवादी दल कायम किए गए। खासतौर पर चीन के साथ मजबूत संबंध बने और चीन, भारत, तुर्की और अफगानिस्तान में साम्यवादी समूहों की आरंभिक रणनीतियां कॉमिन्टर्न नीतियों से बेहद प्रभावित हुईं। इन देशों के साम्यवादी सदस्यों को कॉमिन्टर्न में भी शामिल किया गया।

बोध प्रश्न 3

1) नई आर्थिक नीति युद्ध साम्यवाद से किन अर्थों में भिन्न थीं ?

....

....

....

....

....

2) कॉमिन्टर्न पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

28.9 सारांश

इस इकाई में समाजवादी दुनिया के निर्माण से जुड़े तीन महत्वपूर्ण पक्षों पर विचार किया गया है : समाजवादी क्रांति के पहले की परिस्थिति, समाजवादी क्रांति का निर्माण, और अपनी सभी सीमाओं और समस्याओं के साथ समाजवादी राज्य की कार्य पद्धति।

जैसा कि आप जानते हैं, 19वीं शताब्दी में यूरोप में एक बड़ा बुद्धिजीवी वर्ग मानव सभ्यता के विकास के लिए समाजवाद को एक प्रमुख दृष्टिकोण मानता था। अपने आप में अनूठी समाजवादी क्रांति की शुरुआत

रूस में 1917 में हुई। इस इकाई में रूस में क्रांतिकारी परिस्थितियों और क्रांति की चर्चा की गई है। क्रांति तीन चरणों से होकर गुजरी – 1905 में संसद के निर्माण से लेकर फरवरी 1917 में उदारवादी बुर्जुआ शासन के निर्माण तक, और अन्ततः अक्टूबर 1917 में बॉलशेविकों के नेतृत्व में सोवियत मजदूरों द्वारा सत्ता प्राप्ति ।

नए समाजवादी राज्य को कई प्रकार की समस्याओं और विरोधों का सामना करना पड़ा। सम्पूर्ण पूंजीवादी विश्व इसके खिलाफ था और रूस में पुरानी व्यवस्था के हिमायतियों ने गृह युद्ध छेड़ रखा था। 1918 से लेकर 1921 तक का समय युद्ध साम्यवाद का समय था। 1921 से एक नया चरण आंरभ हुआ जिसे नई आर्थिक नीति के रूप में जाना जाता है जो 1928 तक कायम रहा। परंतु अभी तक नया समाजवादी राज्य मजबूत नहीं बन सका था। अगली इकाई में हमने 1928 के बाद समाजवादी राज्य के विकास की चर्चा की है।

28.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इसमें आप रूस में उदारवादी संविधानवाद और संसदीय प्रजातंत्र की अनुपस्थिति की चर्चा कर सकते हैं। देखिए भाग 28.2

2) इसमें आप क्रांति पूर्व रूस में समाजवादी क्रांतिकारियों, उदारवादी और समाजवादी जनतांत्रिकों की चर्चा कर सकते हैं। देखिए उप भाग 28.2.4

बोध प्रश्न 2

1) 1905 के बाद क्रांति के विभिन्न चरणों का उल्लेख कीजिए। देखिए भाग 28.3

2) कानून और लोकप्रिय उपायों से आए बदलावों का जिक्र कीजिए। देखिए 28.4

3) इसमें आप पूर्व भूमिपतियों और पूंजीवादी देशों के विरोध के साथ-साथ क्रांति के तुरंत बाद पनपे आर्थिक संकट से शासन के समक्ष आनेवाली चुनौतियों और नए समाजवादी राज्य द्वारा युद्ध साम्यवाद की स्थापना का उल्लेख कीजिए। देखिए भाग 28.5

बोध प्रश्न 3

1) पढ़िए भाग 28.5 और 28.6 तथा राष्ट्रवाद, कृषि तथा उद्योग संबंधी सरकारी नीति में आए परिवर्तनों की चर्चा कीजिए।

2) देखिए भाग 28.8

इकाई 29 समाजवादी विश्व-II

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य

पिछली इकाई के विवरण को इस इकाई में भी जारी रखा गया है, इसमें सोवियत रूस की चर्चा को आगे बढ़ाया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 1930 के दशक में सोवियत रूस में प्रमुख राजनैतिक और आर्थिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- 1929 के बाद शुरु किए गए नियोजित औद्योगीकरण की प्रकृति का उल्लेख कर सकेंगे,
- कृषि की सामूहिकता और रूसी किसानों पर इसके प्रभाव पर प्रकाश डाल सकेंगे, और
- 1930 के दशक के राजनैतिक कारकों से परिचित हो सकेंगे जिसके चलते आतंक और नरसंहार की शुरुआत हुई। (इस नरसंहार को राज्य ने परिशोधन अर्थात सफाया करना कहा)

29.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में रूसी क्रांति और क्रांति के बाद की प्रमुख घटनाओं की चर्चा की गई थी। उसमें आपने क्रांति के बाद स्थापित हुए साम्यवाद की जानकारी प्राप्त की। 1921 के आसपास युद्ध साम्यवाद का स्थान नई आर्थिक नीति ने ले लिया। 1928 के आसपास नई आर्थिक नीति के स्थान पर सोवियत रूस में उद्योग और कृषि का योजनाबद्ध ढंग से विकास शुरु हुआ। इस इकाई में रूसी अर्थव्यवस्था के योजनाबद्ध चरण की कहानी कही गई है। सबसे पहले योजनाबद्ध या नियोजित अर्थव्यवस्था का अर्थ समझाया गया है। इसके

बाद 1930 के दशक की तीन प्रमुख घटनाओं की चर्चा की गई है; यह थी– नियोजित औद्योगीकरण, कृषीय सामूहिकता और 1930 के दशक का परिशोधन। इन तीनों ने सोवियत रूस के इतिहास को काफी प्रभावित किया।

29.2 पृष्ठभूमि

1926 ओर 1941 के बीच के कम समय में औद्योगीकरण का फैलाव तेजी से हुआ परंतु यह रूस में आधुनिक औद्योगीकरण की शुरुआत नहीं थी। 1890 के दशक में जार मंत्री एस.आई विट के प्रयास से इसकी शुरुआत हो चुकी थी। प्रथम विश्वयुद्ध के पहले औद्योगीकरण में उछाल आया, शस्त्र निर्माण और अभियांत्रिकी उद्योगों का तेजी से विकास हुआ। परंतु युद्ध के दौरान इतना तेज और व्यापक विकास हुआ कि 1930 के दशक तक सोवियत रूस एक बड़ी औद्योगिक शक्ति बन गया। द्वितीय विश्वयुद्ध की तबाही से उबरने के बाद महाशक्ति के रूप में उभरने का यही आधार बना। 1926 से 1941 के दौरान हुआ सोवियत आर्थिक विकास दुनिया का पहला विस्तृत राज्य नियोजन था और इस प्रकार विश्व औद्योगीकरण के इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

सोवियत सरकार में इस बात को लेकर कोई असहमति नहीं थी कि समाजवादी अर्थव्यवस्था और समाज का निर्माण आधुनिकीकरण और उद्योग के फैलाव से किया जा सकता है। इससे दुनिया के एकमात्र समाजवादी देश (1949 तक) को विरोधी पूंजीवादी दुनिया का सामना करने की ताकत मिलेगी। इस बात पर भी कोई असहमति नहीं थी कि औद्योगीकरण कृषि के आधुनिकीकरण के बिना आगे नहीं बढ़ सकता था। कृषि की उत्पादकता बढ़ाए बिना औद्योगिक मजदूरों की बढ़ती संख्या को एक बेहतर जीवन स्तर देना संभव नहीं था और प्रौद्योगिकी तथा मशीन के आयात के भुगतान के लिए अनाज का निर्यात जरूरी था तथा युद्ध और अकाल के समय के लिए अनाज का पर्याप्त भंडार सुरक्षित रखना भी जरूरी था।

सोवियत बोलशेविकों जैसे मार्क्सवादी सदैव अर्थव्यवस्था के 'नियोजन' में विश्वास रखते थे। मार्क्स ने कहा था कि एक समाजवादी समाज बाजार की ताकतों के निरंकुश नियंत्रण से या पूंजीपति वर्ग के अधिकतम मुनाफा कमाने के आत्म हित नियंत्रण से मुक्त होगा। इसके स्थान पर समाजवादी समाज लोगों की वास्तविक जरूरतों को पूरा करने के लिए संसाधनों पर सीधा नियंत्रण रखेगा और योजनाबद्ध ढंग से उत्पादन करेगा।

29.3 नियोजन और औद्योगीकरण

1920 से ही दस से पन्द्रह साल की दीर्घवधि योजना का विचार पनप रहा था। 1925 से वार्षिक नियंत्रण और अनुमान के लिए वार्षिक नियोजन पूर्वानुमान तैयार किया जा रहा था। 1926 से राज्य योजना आयोग (गौसप्लान) और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था परिषद (VSNKH) ने भावी पंचवर्षीय योजना के कई प्रारूप बना डाले थे। इसका दोहरा महत्व था। इससे औद्योगीकरण के प्रति प्रतिबद्धता की शुरुआत हुई और एक विस्तृत योजना के द्वारा राज्य के नेतृत्व में विकास हुआ। दूसरे, इसे कार्यान्वित करने के लिए अपेक्षाकृत कम समय की योजना बनाई गई।

1926 तक अधिकांश सोवियत उद्योग 1913 के उत्पादन स्तर तक पहुंच गए और कुछ उद्योगों ने यह स्तर भी पार कर लिया। इसके बाद सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति में निम्नलिखित पक्षों पर बल दिया :

- समाजवादी ढर्रे पर तीव्र औद्योगीकरण, और
- ऐसी औद्योगीकरण पद्धति जिसमें बड़े पैमाने के उद्योग उत्पादन तंत्र का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर वर्चस्व हो।

सोवियत रूस में समाजवाद का निर्माण हो रहा था और वह चारो ओर से शत्रुतापूर्ण पूंजीवादी विश्व से घिरा हुआ था; इसलिए सोवियत उद्योग का इस अर्थ में आत्म निर्भर होना जरूरी था कि किसी बड़े उत्पाद के लिए उसे पूंजीवादी देशों पर आश्रित न रहना पड़े। कम से कम समय में पूंजीवादी देशों से आगे बढ़ना एक प्रमुख उद्देश्य था।

इसके लिए पूंजी, उपकरण, रसायनों और अन्य विकसित उत्पादों के उत्पादन की क्षमता हासिल करना आवश्यक था जिसका जार युग उद्योग में अभाव था। आत्मनिर्भरता के लिए भी सोवियत उद्योग को अत्यधिक विकसित प्रौद्योगिकी को हासिल करना अनिवार्य था। इस बात पर भी सहमति थी कि उत्तर पश्चिम, मध्य यूरोपीय रूस और यूक्रेन जैसे आधुनिक उद्योग के परम्परागत केंद्र में नए कारखाने नहीं लगाए जाएंगे बल्कि इनकी स्थापना उराल और साइबेरिया तथा पिछड़े मध्य एशिया में की जाएगी। प्रतिरक्षा की जरूरतों को पूरा करने के लिए लोहे और इस्पात निर्माण, अभियांत्रिकी और अस्त्र बनाने वाले उद्योगों की स्थापना सोवियत रूस के उन क्षेत्रों में की गई जहां आसानी से पहुंचा नहीं जा सकता था।

29.3.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना, 1929-33

चूंकि 1928 औद्योगिक वृद्धि के लिए एक सफल वर्ष था अत: पुराने योजना लक्ष्यों को संशोधित कर आगे बढ़ाया गया। किसी को भी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की कार्य पद्धति को समझने की सांख्यिकी सूचना या सैद्धांतिक समझ नहीं थी। जैसे-जैसे नई आर्थिक नीति के तहत बाजार अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत वृद्धि की दर बढ़ने लगी वैसे-वैसे प्रमुख सोवियत नेता स्टालिन अधीर होते गए और सतर्क नियोजन का स्थान राजनीति ने ले लिया। अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं की देखभाल कर योजनाबद्ध ढंग से अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने के स्थान पर एक 'आदेशात्मक' अर्थव्यवस्था का आगमन हुआ जो राजनैतिक आदेशों और सरकार की प्राथमिकताओं से निर्देशित होती थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में लोहे और इस्पात पर अधिक ध्यान दिया गया परंतु ट्रैक्टर्स संयंत्रों को भी उच्च प्राथमिकता दी गई। विदेश से मशीन आयात की निर्भरता को समाप्त करने के लिए मशीन और औजार उद्योग का तेजी से विकास हुआ। स्टालिन के नेतृत्व में सोवियत नेतृत्व कुछ पूर्वाग्रहों से युक्त था जिसका प्रभाव नियोजन पर पड़ा। उनका मानना था कि बड़े-बड़े औद्योगिक परिसरों के निर्माण से ही औद्योगिक विकास हो सकता था। इसमें ऐसे बड़े औद्योगिक परिसरों के निर्माण की मांग की गई जिन्हें चलाने या बनाने के लिए संसाधन मौजूद नहीं था। परिणामस्वरूप इसे बनाने में ज्यादा समय लगा और बार-बार काम रुका तथा कुछ काम अधूरे भी छूट गए। आकार के साथ-साथ सब कुछ जल्दी में भी करने का आग्रह था। इसलिए इस समय तेज काम करने का नारा दिया गया। इसके लिए 1929 के मध्य में औपचारिक रूप से प्रथम पंचवर्षीय योजना अपनाई गई; इसकी शुरुआत अक्टूबर 1928 से मानी गई और अन्तत: जनवरी 1933 में इसकी समाप्ति की घोषणा की गई। इस प्रकार प्रथम पंचवर्षीय योजना पांच वर्षों में ही नहीं बल्कि सवा चार वर्षों में ही सम्पन्न हो गई।

चित्र 1: जोज़ेफ स्टालिन

उत्पादन की मात्रा के रूप में योजना के उद्देश्य निर्धारित किए गए। योजना में उत्पादन बढ़ाने के लिए वास्तविक सामग्री संसाधनों की उपलब्धता का बहुत ही अस्पष्ट संकेत दिया जाता था। उद्योग से यह उम्मीद की जाती थी कि वह केवल योजना के लक्ष्यों को ही न छुएं बल्कि उससे आगे भी बढ़ जाए। योजना का उद्देश्य संसाधन आवंटित करना या संतुलित मांगों की पूर्ति करना नहीं था बल्कि अर्थव्यवस्था को खींच-खींच कर आगे बढ़ाना था। उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता में तेजी से कमी आई और नई मशीने महंगी होने के बावजूद काफी खराब किस्म की थीं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के मिले जुले परिणाम सामने आए। हालांकि धातु उत्पादन बढ़ाने के लिए सबकुछ त्याग दिया गया परंतु कोयला, तेल, कच्चा लोहा और लौह पिंड का उत्पादन उम्मीद से काफी कम हुआ। मशीनरी और धातु कर्म में निर्धारित लक्ष्य से ज्यादा उत्पादन हुआ परंतु ऐसा भी अंशत: आंकड़ों के हेर-फेर से हुआ। 1940 में इस्पात उत्पादन, 1951 में बिजली उत्पादन और 1955 में तेल उत्पादन का लक्ष्य पूरा हुआ। भारी उद्योग में तेजी से विकास के लिए उपभोक्ता वस्तुओं, कृषि और थोड़े समय के लिए सैन्य शक्ति की भी बलि दे दी गई।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान राज्य ने संभवत: आपूर्ति और वितरण के संगठन का सर्वाधिक कठिन कार्य किया। एक दशक पूर्व गृह युद्ध के दौरान ऐसा करने का असफल प्रयत्न किया गया था, इसलिए राज्य ने शहरी अर्थव्यवस्था, वितरण और व्यापार का पूरा नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। इस बार 1980 के दशक तक यह स्थिति बनी रही। 1920 के दशक के अंत से निजी उत्पादन और व्यापार में कटौती की जाने लगी। नई आर्थिक योजना के लोगों (निजी व्यापारियों) के खिलाफ तेजी से कार्यवाई की गई। उनके खिलाफ

अखबारों में दुष्प्रचार किया गया, कानूनी और वित्तीय स्तर पर उन्हें परेशान किया गया और 1928-29 में 'अटकलबाजी' के आधार पर कई निजी उद्यमियों को गिरफ्तार कर लिया गया। 1930 के दशक के आरंभ में छोटे कारीगरों और दुकानदारों से भी उनका व्यापार छीन लिया गया था या उन्हें राज्य नियंत्रित सहकारी समितियों में शामिल होने के लिए बाध्य किया गया। अभी तक व्यापार और वितरण का वैकल्पिक ढांचा तैयार नहीं हुआ था। कृषि की सामूहिकता के साथ ही नई आर्थिक नीति की मिश्रित अर्थव्यवस्था जिसमें राज्य ओर निजी क्षेत्र मिलजुल काम करते थे पूर्णतया समाप्त हो गई।

29.3.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना, 1933-37

फरवरी में द्वितीय पंचवर्षीय योजना लागू की गई। इसके तीन निर्देशक सिद्धांत इस प्रकार थे :

- दृढ़ीकरण
- तकनीक पर अधिकार, और
- जीवन स्तर सुधारना

इस योजना में तर्कसंगत नियोजन के सिद्धांत को कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया। अधिक संतुलित और वास्तविक उत्पादक लक्ष्य रखे गए। उद्योगों की उत्पादकता बढ़ाना और निपुणता हासिल करना मुख्य उद्देश्य हो गया।

इस योजना में उत्पादक माल की अपेक्षा उपभोक्ता माल में अधिक निवेश और उत्पादन वृद्धि पर बल दिया गया। नगद मजदूरी में वृद्धि और चीजों की कीमतों में कमी आने से शहरों में रहने वाले मजदूरों की मजदूरी में वास्तविक बढ़ोत्तरी की उम्मीद की गई।

दूसरी योजना के दौरान बड़ी संख्या में औद्योगिक उद्यम स्थापित किए गए। इसका मतलब यह हुआ कि 1927 तक 80% औद्योगिक उत्पादों का उत्पादन नए या पूरी तरह पुनर्निर्मित उद्यमों में होने लगा। इस योजना के दौरान भारी उद्योगों के उद्देश्य लगभग पूरे कर लिए गए और मशीनों तथा बिजली के उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई।

हालांकि उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन उम्मीद से कम बढ़ा और 1928 के मुकाबले 1937 में जरूरी घरेलू वस्तुओं का प्रति व्यक्ति उपभोग कम रहा। मैग्निटोगोर्सक, कुजनेस्क और जापोरोझे में धातुकर्म का कार्य पूर्ण होने से सोवियत रूस की विदेशी पूंजी पर निर्भरता कम हो गई, भुगतान संतुलन का भार कम हुआ और पुराने ऋणों को चुकाने में सहूलियत हुई। 1937 तक आधारभूत मशीनें और प्रतिरक्षा सामान सोवियत रूस में बनाए जाने लगे। इस योजना के दौरान मध्य एशिया और कजाकिस्तान में पिछड़े राष्ट्रीय गणतंत्रों को विकसित करने का प्रयत्न किया गया। हालांकि सीमित संसाधनों के उपयोग को देखते हुए आर्थिक दृष्टि से यह सबसे अच्छा तरीका नहीं था।

29.3.3 नियोजित औद्योगीकरण के परिणाम

1928 के बाद के दशक में विश्व अर्थव्यवस्था के इतिहास में सोवियत उद्योगों का विकास अभूतपूर्व दर और गति से हुआ। सोवियत सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1928 की तुलना में 1937 में औद्योगिक उत्पादन 446 % बढ़ गया, संकुचित पश्चिमी आकलन के अनुसार 239 % की वृद्धि हुई। इसी प्रकार सोवियत आंकड़ों के अनुसार वृद्धि दर 18 % और पश्चिमी आंकड़ों के अनुसार यह वृद्धि 10.5 % थी।

सोवियत सरकारी आंकड़ों के अनुसार विश्व उत्पादन में सोवियत रूस का हिस्सा जहां 1913 में 2.6 % और 1929 में 3.7 % था वहीं 1937 में यह बढ़कर 13.7 % हो गया। सोवियत रूस एक तरफ ऊंचाइयों को छू रहा था जबकि पश्चिमी देश भयंकर मंदी और व्यापक बेरोजगारी से गुजर रहे थे। 1928 में सोवियत रूस का औद्योगिक उत्पादन जर्मनी, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन जैसे द्वितीय श्रेणी के पूंजीवादी देशों के स्तर का था। 1937 तक केवल संयुक्त राज्य अमेरिका इससे आगे रह गया। तब तक प्रमुख यूरोपीय शक्तियों के मुकाबले सोवियत संघ की उत्पादन शक्ति दोगुनी हो चुकी थी। सोवियत उद्योग बड़े पैमाने के उद्योग में परिणत हो गया: 1913 में सोवियत औद्योगिक उत्पादन का एक तिहाई हिस्सा लघु उद्योगों में होता था जबकि 1937

तक यह अनुपात गिरकर मात्र 6 % रह गया। पश्चिम से मशीनों और जानकारियों का भारी मात्रा में निर्यात कर प्रमुख नए उद्योगों की स्थापना की गई। 1937 तक आते-आते सोवियत संघ बड़ी मात्रा में लोहा और इस्पात तथा बिजली के उपकरण, ट्रैक्टर, फसल कटाई के उपकरण, टैंक और हवाई जहाज के साथ-साथ सभी प्रकार के मशीन उपकरण बनाने लगा; और सभी उद्योग में प्रौद्योगिकी का स्तर ऊपर उठा। श्रम उत्पादकता (कार्यरत प्रति व्यक्ति उत्पादन) में प्रतिवर्ष औसतन 6 % की वृद्धि हुई। 19वीं शताब्दी में किसी भी समय ब्रिटेन या संयुक्त राज्य अमेरिका में इतनी तेजी से वृद्धि नहीं हुई थी।

यूराल और उसके आगे के क्षेत्र में नए औद्योगिक परिसरों का निर्माण हुआ और दूसरे विश्व युद्ध के गहरे संकट के समय यही सोवियत शस्त्र उद्योग का आधार बना जबकि अधिकांश यूरोपीय सोवियत संघ पर दुश्मनों कर कब्जा हो गया था। कुछ अति पिछड़े गणतंत्रों में आधुनिक उद्योगों की भी स्थापना की गई।

29.3.4 तृतीय पंचवर्षीय योजना, 1938-41

1938 और 1941 के बीच जर्मनों ने सोवियत संघ पर आक्रमण किया। तीसरी पंचवर्षीय योजना का साढ़े तीन वर्ष इसी में खप गया। 1 जून 1941 में द्वितीय विश्वयुद्ध से योजना में बाधा पड़ी और यह कभी पूरा नहीं हो पाया। इस समय भी पांच वर्षों के दौरान प्रभावी प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया : औद्योगिक उत्पादन में 92, इस्पात में 58, मशीन और अभियांत्रिकी में 129। एक बार फिर उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा भारी उद्योग को प्राथमिकता दी गई।

बोध प्रश्न 1

1) नियोजित औद्योगीकरण से आप क्या समझते हैं ? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं ने रूसी अर्थव्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित किया ? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

29.4 सामूहिक खेती

पिछले भाग में औद्योगीकरण पर बातचीत करने के कम में हमने देखा कि सोवियत नेतृत्व ने सफलतापूर्वक अपने देश को विकसित औद्योगिक अर्थव्यवस्था में परिणत कर दिया। हालांकि कृषि में प्रमुख बदलाव लाए बिना औद्योगीकरण संभव नहीं था। गृहयुद्ध के बाद उत्पाद में हुई पर्याप्त वृद्धि के बावजूद प्रति हेक्टेयर उत्पादन और श्रम उत्पादकता दोनों ही दृष्टियों से सोवियत कृषि किसी भी प्रमुख यूरोपीय देश से बहुत पिछड़ा हुआ था। अधिकांश उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर राज्य ने उद्योग के एक बड़े हिस्से पर अपनी पकड़ मजबूत बना ली थी परंतु कृषि क्षेत्र में निजी कृषक खेतों की मौजूदगी के कारण कृषि क्षेत्र में उत्पादन और विपणन निर्णयों पर राज्य का नियंत्रण नहीं था और वे केंद्रीय नियोजन के दायरे से बाहर थीं।

बोलशेविकों का मानना था कि पूंजीवादी कृषि को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। बड़े खेतों में अधिक उत्पादन संभव होगा क्योंकि इनमें मशीनों और उर्वरकों का इस्तेमाल अच्छे ढंग से किया जा सकता था। इनसे औद्योगीकरण के लिए कृषि अधिशेष का निर्माण होगा। इसके अलावा उत्पादन संसाधनों को एक बड़े खेत में लगाने से किसानों के बीच धन की असमानता भी दूर होगी। बोलशेविकों का मानना था कि किसानों को सामूहिक और समाजवादी खेती के लिए राजी करने में काफी वक्त लगेगा और यह दुरूह प्रक्रिया होगी। अपने एक लेख 'सहयोग की ओर' में लेनिन ने लिखा था कि सरकार को किसानों को इस बात के लिए राजी करने का प्रयास करना चाहिए कि वे अपने निजी खेत छोड़ दें और सामूहिक खेतों में मिल जुलकर काम करें। इसके लिए किसानों को आधुनिक उपकरण, ऋण और कृषि संबंधी सभी प्रकार की सहायता दी जाएगी।

नई आर्थिक नीति में विकसित प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल पर बल नहीं दिया गया जिससे कि किसानों को सामूहिक खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। जब तक सोवियत रूस में ट्रैक्टर आए अधिकांश बोलशेविकों का मानना था कि समाजवादी कृषि की तैयारी के लिए कई कदम उठाने होंगे। किसानों को धीरे-धीरे सामूहिक खेती की ओर बढ़ना होगा। इसके लिए पहले उपभोक्ता वस्तुओं को बेचने, कृषि उत्पादों के विपणन और आपूर्ति के लिए सहकारी समितियां बनानी होगी और मशीन, बीज, भूमि सुधार, निर्माण के लिए सहकारी समितियों को ऋण उपलब्ध कराना होगा और अंत में उन्हें सामूहिक खेती के लिए प्रेरित करना होगा।

1920 के दशक में कृषिशास्त्रियों और भूमि चकबंदी विशेषज्ञों को कुछ किसानों को सामूहिक खेती के लिए प्रेरित करने में थोड़ी बहुत सफलता मिली। परंतु अभी काफी कम किसान इस प्रकार की खेती के लिए राजी थे। यह सोचकर कि सहकारी समितियों के निर्माण से किसानों में सामूहिकता की भावना बढ़ेगी, सोवियत राज्य ने सहकारी समितियों को आसान ऋण, कर छूट और दुर्लभ उत्पादित वस्तुओं की आपूर्ति में प्राथमिकता देने का वादा किया। परंतु सहकारी समितियां भी किसानों को आकर्षित करने में बहुत सफल नहीं रहीं।

ग्रामीण पूंजीवाद के प्रसार से किसानों के बीच बढ़ता अंतर सोवियत नेतृत्व के लिए चिंता का विषय था। ग्रामीण पूंजीवाद से केवल अमीर कृषकों या *कुलक* को ही फायदा हो रहा था जिसकी कीमत पूरे कृषक समुदाय को चुकानी पड़ रही थी। तीन तरीकों से किसानों के बीच अंतर बढ़ रहा था, जैसे पट्टे पर जमीन देना; ऋण, पशु, उपकरण और मशीन की उपलब्धता; और मजदूरों को मजदूरी पर रखना। कुलक उन्हें कहा गया जो मजदूर रखते थे, खरीदकर या पट्टे पर जमीन प्राप्त करते थे, जिनके पास बड़ी मिल्कियत थी और जो कृषि के उत्पादन के साधनों को पट्टे पर उठाया करते थे तथा जिनकी वाणिज्यिक और वित्तीय कारोबार से आमदनी थी। परंतु कभी भी कुलक की स्पष्ट और सुनिश्चित परिभाषा प्रस्तुत नहीं की जा सकी।

29.4.1 नई आर्थिक नीति में कृषि की कमजोरियां

नई आर्थिक नीति के दौरान किसानों के खेती करने का तरीका और प्रौद्योगिकी काफी पिछड़ी हुई थी। 1927 में, खेती योग्य जमीन का 88 प्रतिशत हिस्सा छोटे-छोटे खेतों में विभक्त था और पांच प्रतिशत से कम खेतों की पूरी तरह या आंशिक रूप से घेराबंदी की गई थी। खेतों के छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटे होने के कारण खेती की आधुनिक तकनीकों और बेहतर उपकरणों का उपयोग संभव नहीं था। पूरे साल में खेतों में दो फसलें उगाई जाती थी; और पहले चक्र में शरत ऋतु में राई, गेहूं तथा दूसरे चक्र में वसंत ऋतु में गेहूं या अन्य फसल बोई जाती थी और तीसरे चक्र में खेत परती छोड़ दिया जाता था; इसे तीन चक्रीय खेती व्यवस्था के रूप में जाना जाता था और सोवियत संघ में यही पद्धति सबसे ज्यादा प्रचलित थी। इसके अलावा इससे भी पुरानी अलग-अलग खेतों पर खेती करने या स्थानांतरित खेती प्रथा भी मौजूद थी। इसके परिणामस्वरूप एक तिहाई हिस्सा हमेशा परती पड़ा रहता था।

सरकार जल्द से जल्द प्रौद्योगिकी में सुधार लाना चाहती थी परंतु यह इतना आसान नहीं था। 1927 में रूसी संघ के लगभग एक चौथाई किसानों के पास घोड़ा या बैल नहीं था और एक तिहाई किसानों के पास खेत जोतने के उपकरण नहीं थे। अधिकांश किसानों के पास बिना घोड़े के उपयोग किए जानेवाले उपकरण थे; कई किसानों के पास यह भी नहीं था पर वे भी इसी प्रकार के औजार का इस्तेमाल करते थे। मशीनों का इस्तेमाल मुख्य तौर पर अनाज उत्पादन करने वाले प्रमुख देहाती क्षेत्रों में ही होता था।

29.4.2 अनाज का उत्पादन और विपणन

हालांकि 1920 के दशक तक अनाज का उत्पादन युद्ध पूर्व स्तर तक पहुंच गया था परंतु 1920 के दशक में प्रथम विश्व युद्ध के पहले की तुलना में अनाज का विपणन काफी कम हुआ था। ऐसा अंशत: गांव की जनसंख्या में वृद्धि के कारण हुआ 1913 और 1926 के बीच 60 लाख आबादी बढ़ी जबकि 1913 की तुलना में इस समय प्रति व्यक्ति अनाज उत्पादन में 16 प्रतिशत की कमी आई।

चित्र– 2 यूक्रेन में सामूहिक खेती का एक दृश्य

एक प्रमुख समस्या यह थी कि कृषि उत्पादों की बिक्री के लिए एक से अधिक बाजार थे। अन्न और अन्य फसलों के बाजारों में राज्य और सहकारी प्रयत्नों का हिस्सा काफी कम था और निजी बाजार में उत्पादकों को लाभ के कई विकल्प उपलब्ध थे। राज्य खरीद अभिकरणों की अपेक्षा किसानों के लिए निजी बाजार में अनाज बेचना ज्यादा लाभप्रद था क्योंकि यहां ऊंची कीमतें मिलती थीं। निजी व्यापारियों से किसानों को अपनी ओर खींचना राज्य की एक बहुत बड़ी समस्या थी।

व्यापार की शर्तें या औद्योगिक खुदरा मूल्यों और राज्य के कृषि खरीद मूल्य के बीच का संबंध युद्ध पूर्व समय की अपेक्षा किसानों के लिए कम अनुकूल था। अपने उत्पादों के लिए प्रतिकूल मूल्य अनुपात के अलावा युद्ध पूर्व समय की अपेक्षा किसानों की औद्योगिक वस्तुओं तक पहुंच भी कम हो गई। 1920 के पूरे दशक में औद्योगिक वस्तुएं महंगी, खराब कोटि की और दुर्लभ हो गईं।

राज्य के अनाज का खरीद मूल्य (जागातोवकी) इतना कम होता था कि इससे अक्सर उत्पादन की लागत भी नहीं निकल पाती थी। पशुधन उत्पाद और औद्योगिक फसलों का मूल्य किसानों के अधिक अनुकूल था और इससे अनाज वितरण को धक्का पहुंचा।

1917-20 की कृषि क्रांति के बाद गांवों में सामाजिक और आर्थिक संगठनों में हुए परिवर्तन से भी कृषि विपणन में गिरावट आई। बड़ी निजी सम्पदाओं के पुनर्विभाजन से वे कृषि इकाइयां समाप्त हो गईं जो अधिक बाजारोन्मुख थीं।

29.4.3 1927-28 का वसूली संकट

1927 की खरीफ की फसल अच्छी होने के बावजूद किसान अपेक्षाकृत कम अनाज बाजार में ले गए और सरकार इतना अनाज न खरीद सकी जिससे शहर के लोगों और सेना का भरणपोषण तथा मशीनों के आयात के लिए अनाज का निर्यात किया जा सके। यदि राज्य निजी बाजारों के मूल्यों का मुकाबला करने के लिए

अनाज का खरीद मूल्य बढ़ाता तो औद्योगिक विकास के लिए आवंटित राशि में कटौती करनी पड़ती।

1927-28 के दौरान औद्योगिक निवेश में हुई तीव्र वृद्धि अक्टूबर 1927 के बाद से होने वाले अनाज संकट का प्रमुख कारण था। भारी उद्योग में निवेश किए जाने के कारण उपभोक्ता वस्तुओं की और भी कमी पड़ गई; और अनाज का राज्य खरीद मूल्य कम होने के कारण उन्हें खरीदना और भी महंगा पड़ता था।

उत्पादन की इस कमी के जवाब में किसानों ने 'उत्पादन हड़ताल' कर दी और राज्य द्वारा निर्धारित मूल्यों पर राज्य को अनाज बेचने से मना कर दिया। किसानों ने या तो निजी व्यापारियों को ऊंचे दामों पर अनाज बेचा या कर चुकाने के लिए महंगी औद्योगिक फसलों या पशु उत्पादों की बिक्री की।

दूसरे शब्दों में, 1927 का संकट इस अर्थ में कोई आर्थिक संकट नहीं था जिसमें बाजार तंत्र बिखर गया हो या उत्पादकता क्षमता कम हो गई हो। यह इस बात से स्पष्ट है कि फसल का बड़ा हिस्सा बाजार में बेचा जाता था पर अक्सर वे निजी व्यापारियों के पास जाते थे। किसान अधिशेष उत्पादन के लिए तैयार थे और उनके पास इसकी क्षमता भी थी परंतु वे चाहते थे कि अपने इस अधिशेष से वे औद्योगिक वस्तुएं खरीद सकें।

दिसम्बर 1927 में स्टालिन ने कहा कि किसानों के छोटे-छोटे और बिखरे खेतों को एकत्रित करने का काम धीरे-धीरे शुरू किया जाना चाहिए। इसके लिए जोर जबरदस्ती नहीं की जानी चाहिए बल्कि समझाने बुझाने का रास्ता अख्तियार करना चाहिए। अगले महीने जनवरी 1928 में उन्होंने कहा कि "हम कुलक की सनक पर अपने उद्योग को आश्रित नहीं कर सकते; (सामूहिक खेती) पूरे जोर शोर से लागू करनी होगी......ताकि तीन या चार वर्षों (1931 या 1932 तक) के भीतर वे राज्य के अनाज की जरूरत के कम से कम एक तिहाई हिस्से की आपूर्ति कर सकें।''

दल नेतृत्व ने किसानों से बातचीत करने की अपेक्षा टकराव का रास्ता अपनाया। 1928 के आरंभ में बाजार बंद कर दिए गए और किसानों तथा व्यापारियों से अनाज जब्त कर लिया गया। जिन लोगों ने अनाज छिपाने या दबाने और आपूर्ति करने में आनाकानी की उन्हें जेल में बंद कर दिया गया और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। इसके परिणामस्वरूप राज्य ने बड़ी मात्रा में अनाज वसूली की।

1928 की गर्मी में पार्टी ने पिछले वर्षों की अपेक्षा अधिक तेजी से ज्यादा से ज्यादा अनाज वसूलने का अभियान छेड़ा। नवंबर में प्राधिकारियों ने पांच महीने के भीतर प्रमुख अनाज उत्पादक क्षेत्रों में व्यापक पैमाने पर सामूहिक खेती लागू करने की घोषणा की। 1928 में प्रमुख अनाज उत्पादक क्षेत्रों यूक्रेन और उत्तरी काकेशस में पैदावार अच्छी नहीं हुई। देश के दूरस्थ पूर्वी भागों (वोल्गा क्षेत्रों, कजाकिस्तान, यूराल और साइबेरिया) में पैदावार सर्वोत्तम हुई परंतु यहां राज्य वसूली तंत्र सबसे कमजोर था, सूचना, संचार आदि अधिसंरचना अल्प विकसित थी जो जाड़े में ज्यादा ही धीमी हो जाती थी। उत्पादित वस्तुओं की कमी से संकट और भी गहरा हो गया। अनाजों के विपणन में तेजी से गिरावट आई और राज्य अभिकरण अनाज वसूली में असफल रहे। राइ, (एक प्रकार का अनाज जिसका उत्पादन यूरोप में होता है) गेहूं और खाद्यान्नों की कम वसूली के कारण राज्य को अनाज के निर्यात में कटौती करनी पड़ी और शांति काल में भी राशन व्यवस्था पुनः लागू की गई।

सोवियत नेताओं के सामने दो विकल्प मौजूद थे। वे नई आर्थिक नीति, संतुलित औद्योगीकरण, धीरे-धीरे सामूहीकरण और किसानों को बाजार में अधिक अनाज लाने के लिए कृषि आपूर्ति मूल्य का समायोजन का रास्ता अपना सकते थे; बुखारिन जैसे नेताओं ने इसी प्रकार की नीति की वकालत की थी। इसके अलावा वे जोर जबरदस्ती से सामूहीकरण और औद्योगीकरण की नीति अपना सकते थे। स्टालिन ने दूसरा विकल्प चुना।

सामूहीकरण नीति के अन्तर्गत गांव और जिलों में बड़े-बड़े खेतों का निर्माण करना था। 1929 के वसंत में व्यापक पैमाने पर सामूहीकरण अपनाने के लिए कुछ जिलों को चुना गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग सभी घरों को सामूहीकृत किया गया। जुलाई के आरंभ तक ऐसे लगभग 11 जिलों को चुना गया।

जिस समय व्यापक पैमाने पर सामूहीकरण किया गया उसके लिए कोई लम्बी चौड़ी योजना नहीं बनाई गई। यहां तक कि [illegible] में भी कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं किया गया। यह मान

लिया गया था कि 1934 में चार में से तीन किसानों के खेत अभी भी निजी मिल्कियत में रहेंगे और अनाज की मंडी में आधे से ज्यादा अनाज की पूर्ति यही करेंगे। सामूहिकता आरोपित करने का निर्णय तीव्रता से लिया गया। यह न तो पार्टी का निर्णय था और न ही इसमें कानूनी सलाह ली गई थी। [illegible] में कुलक को समाप्त करना था और पूरे ग्रामीण इलाकों में सामूहीकरण का अभियान चलाना था ताकि गांवों को कुलक विहीन कर दिया जाए। अनाज वसूली अभियान और किसानों को [illegible] कोलखोज (सामूहिक भू क्षेत्र) में मिलाने का कार्यक्रम एक साथ मिला दिया गया।

इस सामूहिक कार्यकलाप के बारे में कोई ढांचा या संगठन नहीं बनाया गया; यह भी नहीं तय किया गया कि निर्णय किस प्रकार लिया जाएगा और सदस्यों को भुगतान किस प्रकार किया जाएगा। सात सप्ताहों के भीतर फरवरी 1930 तक लगभग आधे किसान सामूहीकरण अभियान की लपेट में आ [illegible]।

29.4.4 किसानों द्वारा सामूहिक खेती का विरोध

किसानों पर जबरदस्ती सामूहिकता थोप दी गई जिसका किसानों ने जमकर मूक और सशस्त्र विद्रोह किया। किसानों ने जमकर शासन का विरोध किया और चारों ओर हजारों किसानों ने जन प्रदर्शन किए। इसके अलावा आतंकवादी गतिविधियां हुईं जिसमें लोगों को मारा पीटा गया, हत्याएं की गईं, आगजनी और लूटपाट मचाई गई। कुल मिलाकर किसानों का यह विद्रोह स्थानीय और मुखर था परंतु इसमें शस्त्रों का उपयोग अपेक्षाकृत कम हुआ था। समृद्ध किसानों का प्रतिरोध सबसे ज्यादा मुखर था परंतु यह स्पष्ट था कि किसानों का हर वर्ग इससे प्रभावित हुआ था और सामूहीकरण के विरोध में सारे किसान शामिल थे।

कोलखोज (सामूहिक भू क्षेत्र) को अपने पशु सौंपने की अपेक्षा कई किसानों ने अपने पशुओं की हत्या कर दी (16 जनवरी 1930 की राज्याज्ञा के द्वारा इस प्रकार की हत्याओं पर प्रतिबंध लगाया गया था और इस अपराध के लिए सम्पत्ति जब्त की जा सकती थी और कारावास या देश निकाला की सजा हो सकती थी) या नजदीक के शहर में जाकर उसे बेच दिया। इसके परिणामस्वरूप 1928 के मुकाबले 1933 में एक तिहाई भेड़, आधे घोड़े और सूअर तथा 54 प्रतिशत कम जानवर रह गए।

कृषि अर्थव्यवस्था पर आक्रमण करने के साथ-साथ परम्परागत कृषक संस्कृति के केंद्र में कट्टरपंथी चर्च के खिलाफ भी तेज अभियान चलाया गया। सभी ऐतिहासिक चर्चों को ध्वस्त कर दिया गया और कई पुजारियों को बंदी बना लिया गया। मठ बंद कर दिए गए। इनमें से अधिकांश में नमूने के तौर पर कृषि सहकारी समितियां चलाई गईं और हजारों पुजारियों और पुजारिनों को साइबेरिया भेज दिया गया। 1930 के अंत तक लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण चर्च बन्द हो चुके थे। कुलक विरोधी अभियान के द्वारा लगभग 1,000,000 किसान परिवार (औसतन प्रति गांव एक परिवार) या लगभग 50 से 60 लाख लोग अपनी जमीन और घर से हाथ धो बैठे।

रूस के देहातों में गृह युद्ध छिड़ा हुआ था जिसके कई रूप थे। बचे हुए पशुधन अस्त व्यस्त हालत में थे और वसंत में होने वाली खेती बीज के अभाव में नहीं हो पा रही थी। मार्च 1930 में स्टालिन ने अपने एक लेख "डिजी विट सक्सेस" में उन्होंने इस ज्यादती का आरोप अपने अधिकारियों पर लगाया। उसने थोड़े दिन के लिए सामूहीकरण अभियान बंद कर दिया ओर आदेश दिया कि कुलकों को छोड़कर [illegible] के एकत्र किए पशु उनके मालिकों को लौटा दिया जाए और इस प्रकार कृषक बाजार को पूरी तरह समाप्त करने का प्रयत्न खत्म हुआ। किसानों ने यह समझा कि अनिवार्य सामूहीकरण वापस ले लिया गया है और अधिकांश किसान तीव्रता से सामूहीकरण से अलग हो गए। सरकारी आंकड़े के अनुसार [illegible] मार्च और 1 जून 1930 के बीच सोवियत रूस में सामूहिकृत कृषक परिवारों का प्रतिशत 56 से [illegible] तक पहुंच गया और अगस्त में यह 21.4 रह गया।

कोलखोज के एक नए मॉडल अधिनियम में इसके सदस्यों को एक गाय, भेड़ और [illegible] रखने और अपने छोटे व्यक्तिगत खेत पर खुद काम करने के लिए कृषि औजार रखने की रियायत दी गई। इन छोटे निजी खेतों से किसानों को आमदनी होती थी, उनका खाना-पीना चलता था और अनाज बेचकर वे अपनी छोटी-मोटी जरूरतें पूरी करते थे।

सामूहीकरण अभियान थोड़े दिनों के लिए ही शिथिल किया गया था। 1930 में मौसम अनुकूल और फसल बेजोड़ रही। जैसे ही राज्य के भंडारों में अनाज भरा वैसे ही इस बार स्पष्ट निर्देशों के साथ सामूहीकरण

अभियान वापस शुरू कर दिया गया। कोलखोज संगठनकर्ताओं और अध्यक्ष के रूप में काम करने के लिए दस हजार साम्यवादी और शहरी मजदूरों को गांवों में भेजा गया। ग्रामीण जनता से जबरदस्ती की गई और उन पर मनमाने ढंग से कर लादा गया ताकि वह सामूहीकरण में लौट जाएं। 1937 तक कुल फसल क्षेत्र का 86 प्रतिशत कोलखोजों के अधीन आ गया था, 89 प्रतिशत अनाज सामूहिक खेतों में पैदा हुआ और सरकार ने 87 प्रतिशत वसूली इन्हीं खेतों से की।

29.4.5 सामूहिकता की प्रकृति

सामूहीकरण को कभी-कभी 'दूसरी क्रांति' भी कहा जाता है क्योंकि इसने किसानों के जीवन को बोलशेविक क्रांति से भी ज्यादा प्रभावित किया। किसानों ने इसको अपने आप स्वीकार नहीं किया बल्कि इसे शहरी और सर्वहारा दल के द्वारा जबरदस्ती लादा गया; कहने का तात्पर्य यह है कि यह ऊपर से आरोपित क्रांति थी। सामूहीकरण के पहले और बाद किसानों की स्थिति में प्रमुख और आधारभूत अन्तर यह था कि एक सामूहिक किसान का सामूहिक खेती से उगाए अनाज और नगदी फसल पर कोई अधिकार नहीं था। अधिकांश सामूहिक खेत पूर्ववर्ती कम्युन के समान थे और किसानों की हालत लगभग कृषि दासों जैसी हो गई थी।

किसानों को खेत छोड़कर जाने का अधिकार नही था; कृषकों के मन में यह बात घर करने लगी कि यह सामूहीकरण कृषिदास प्रथा का ही नया रूप था। किसान व्यंग्य किया करते थे कि अखिल संघ साम्यवादी दल (रूसी भाषा में वी के पी) "कृषि दास व्यवस्था" (वतोरो क्रेपोस्तनो प्रावो) का ही दूसरा नाम है।

सामूहीकरण के द्वारा राज्य ने अनाज, आलू और सब्जियों की वसूली बढ़ाई; इससे उद्योगों को कृषक मजदूर मिले, परंतु इससे पशुधन की हानि हुई; कृषि का उत्पादन जारी रहा और ग्रामीण शहरी लोगों का जीवन स्तर कायम रहा। परंतु इसमें कृषि में किए गए विस्तार से लोगों की बढ़ती मांग पूरी नहीं की जा सकी और इस अर्थ में यह असफल रहा।

अनाज उत्पादन, उपज और राज्य वसूली

वर्ष	अनाज उत्पादन मिलियन टन	उपज क्विंटल प्रति हेक्टेयर	वसूली
1909-13	72.5	6.9	–
1928-32	73.6	7.5	18.1
1933-37	72.9	7.1	27.5
1938-40	77.9	7.7	32.1

स्रोत : मोशे लेविन, **द मेकिंग ऑफ द सोवियत सिस्टम: एस्सेज इन द सोशल हिस्ट्री ऑफ इन्टरवार रशिया**, लंदन: मेथ्यून, 1985, टेबुल 6.2 पृष्ठ 167

बोध प्रश्न 2

1) कृषि सामूहिकता का समावेश किस प्रकार किया गया। दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

2) सामूहीकरण अभियान की किसानों पर क्या प्रतिक्रिया हुई ? पचास शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

29.5 आतंक और परिशोधन

सामूहीकरण और औद्योगीकरण के जबरदस्ती लागू करने से सोवियत जनता के जीवन में कोई सुधार नहीं आया बल्कि ऊपर से आरोपित क्रांति धीरे-धीरे आतंक के राज्य में परिणत हो गई। यह केवल किसानों और पूंजीवाद के समर्थकों के खिलाफ ही नहीं था बल्कि आनेवाले वर्षों में औद्योगिक मजदूरों और कम्यूनिस्ट पार्टी के खिलाफ भी इसने कार्यवाई की और लोगों को गिरफ्तार किया, मुकदमे चलाए गए और अंततः विरोधियों का सफाया करने वाले और आतंक मचाने वाले खुफिया पुलिस के खिलाफ भी यही कार्य किया गया।

1930 के दशक में स्टालिन की कम से कम तीन राजनैतिक जरूरतों की चर्चा इतिहासकारों ने की है। उन्होंने सबसे पहले साम्यवादी दल के भीतर उसकी नीतियों के खिलाफ उठने वाले विरोधी स्वरों और आलोचनाओं को दबाया। 1933-34 में इसी दबाव के कारण औद्योगीकरण और सामूहीकरण अभियान में ढील दी गई, मजदूरों को रियायत दी गई और पूर्व विरोधियों से समझौता किया गया। उनकी दूसरी जरूरत न केवल विरोधियों को परास्त करना था बल्कि सभी प्रकार के संभावित विरोधों को जड़ से उखाड़ फेंकना था और उन पर आक्रमण करने के साथ-साथ दलीय नेतृत्व की जनतांत्रिक परम्पराओं में निहित आलोचना के स्वर को समाप्त करना था। इसकी परिणति स्टालिन की तीसरी जरूरत के रूप में हुई जिसमें उन्होंने एकदलीय शासन व्यवस्था को एकशासक राज्य सत्ता में बदलने का प्रयास किया। अपने इस कार्य के समर्थन में स्टालिन केवल यही तर्क दिया करता था कि वह यह सब कुछ राज्य सत्ता के खिलाफ हो रहे षडयंत्र को रोकने के लिए कर रहा था। उसका कहना था कि इस षड्यंत्र में केवल दलीय संगठन ही नहीं बल्कि खुफिया पुलिस और सेना भी शामिल थी। बिगड़ती अन्तरराष्ट्रीय स्थिति और युद्ध का खतरा दिखाकर बताया गया कि शासन खतरे में था परंतु जिन लोगों को मारा गया उनमें से एक भी व्यक्ति को जासूस या षड्यंत्रकारी साबित नहीं किया गया।

29.5.1 चार मुकदमे

1936,1937 और 1938 में चार मुकदमे चलाए गए जो विरोधियों को समाप्त करने के सबसे नाटकीय उदाहरण थे।

1) अगस्त 1936 में 16 लोगों पर चलाए गए मुकदमे में अभियोगकर्ता विशिंस्की द्वारा कैमिनेव, जिनौविवे और अन्य लोगों पर ट्रौटस्की के साथ षडयंत्र कर राज्य सत्ता को उखाड़ने और स्टालिन तथा पोलितब्यूरो के अन्य सदस्यों को हटाने का आरोप लगाया गया। आरोपियों ने कथित रूप से अपने ऊपर लगाए गए आरोपों को स्वीकार किया और कुछ अन्य दक्षिणपंथियों पर आरोप लगाया। उन्हें गोली मार दी गई।

2) जनवरी 1937 को 17 लोगों पर चले मुकदमे में पियाताकोव, मोरालोव और रडेक जैसे लोगों पर जापान और जर्मनी से मिलकर षड्यंत्र करने का आरोप लगाया गया। उन्होंने अपराध स्वीकार किया और उन्हें भी मृत्यु दंड दिया गया।

3) लाल सेना को प्रभावी बनाने वाले मार्शल तूखाचेवेस्की और अन्य सेनाप्रमुखों ने इन मुकदमों की जमकर आलोचना की। मई 1937 में उन्हें और अन्य प्रमुख सेनाध्यक्षों को गिरफ्तार किया गया और उन पर जर्मनी और जापान के साथ मिलकर षड्यंत्र करने का आरोप लगाया गया; उन्हें भी गोली मार दी गई।

4) मार्च 1938 में 21लोगों पर चले मुकदमे में बुखारिन, रीकोव और यागोडा भी शामिल थे। अभियोगकर्ताओं ने यह दावा किया कि विदेशी जासूसी एजेंसियां सोवियत रूस में बुर्जुआ पूंजीवादी राज्य सत्ता की स्थापना के लिए दक्षिणपंथी और ट्रॉटस्की के समर्थकों का एक दल निर्मित करना चाहती थीं और सोवियत रूस से गैर रूसी क्षेत्र को अलग कर देना चाहती थीं।

ये बस थोड़े से ही उदाहरण हैं। 1937 और 1938 के पूरे दो वर्षों में सरकार, दल, मजदूर और सेना और यहां तक कि पुलिस में काम करने वाले लोगों को जनता का शत्रु कहकर गिरफ्तार किया गया और उन्हें जेलों और श्रमिक शिविरों में बंद कर दिया गया। स्टालिन के अलावा लेनिन के पोलित ब्यूरो के सभी सदस्यों पर या तो मुकदमा चलाकर मार दिया गया या दूसरे तरीकों से उनकी मृत्यु हो गई। एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री, साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय (कॉमिन्टर्न) के दो भूतपूर्व अध्यक्ष, मजदूर संगठन के प्रमुख और राजनैतिक पुलिस के दो अध्यक्षों को मृत्युदंड दिया गया।

29.5.2 परिशोधन और साम्यवादी दल

परिशोधन कार्यक्रम में राज्य द्वारा बड़े स्तर पर लोगों को राज्य विरोधी कह कर हत्याएं की गईं जिन्हें राज्य ने परिशोधन का नाम दिया। इसका सबसे ज्यादा असर दल के भीतर हुआ। क्रांति के पहले भूमिगत रहकर, गृहयुद्ध और सामूहीकरण के युग तथा पंचवर्षीय योजना के दौरान पनपे साम्यवादी नेताओं के समूह को नेस्तनाबूद कर दिया गया। 1941 में जब रूस ने द्वितीय विश्वयुद्ध में हिस्सा लिया तबतक रूसी क्रांति के नेतृत्व से उसके सारे सम्पर्क लगभग टूट चुके थे। इस प्रकार आतंक के राज्य ने पुराने साम्यवादी दल को नष्ट कर दिया जिसे बाद में ख्रुश्चेव के जमाने में ही फिर से गंभीरतापूर्वक गठित किया जा सका। पुराने साम्यवादी दल के नष्ट हो जाने से स्टालिन की दल, सरकार और देश पर पकड मजबूत हो गई।

29.5.3 परिशोधन और सेना

केवल दल ही ध्वस्त नहीं हुआ बल्कि सेना के बड़े अधिकारियों का भी परिशोधन कर दिया गया। व्यापक सफाया कार्यक्रम के अन्तर्गत सोवियत सेना के 35 से 50 प्रतिशत सेनाधिकारियों का सफाया कर दिया गया। सेनाध्यक्ष कार्यालय के जाने माने सदस्य जैसे मार्शल टुखासेवेस्की और ब्लेशर और जेनरल गमारनिक और यामिर को मार दिया गया। उसके अलावा सर्वोच्च युद्ध परिषद के सदस्यों, पांच में से तीन मार्शलों, सोलह में से चौदह सेनाध्यक्षों और सभी एडमिरलों की हत्या कर दी गई। जिला के सभी सेना प्रमुखों, रेजिमेंटल कमांडर में से आधे लोगों तथा एक को छोड़कर सभी फ्लीट कमांडरों को गोली मार दी गई।

इन सफाया कार्यक्रमों के चलते लाल सेना की देशभक्ति का अपमान हुआ और इससे सेना कमजोर हो गई। नाजियों के खिलाफ युद्ध करते समय जितने वरिष्ठ सेना अधिकारी नहीं मारे गए थे उससे ज्यादा इस सफाया कार्यक्रम के दौरान मारे गए।

29.5.4 परिशोधन और सोवियत समाज

1930 के दशक का आतंक घर-घर में प्रवेश कर गया और सोवियत जनता ने बहुत गहराई से इसे अनुभव किया। सब लोग इस बात से सहमत हैं कि 5 प्रतिशत लोगों को जेल में डाल दिया गया था; लगभग अस्सी लाख लोगों को बंदी बनाया गया था जिसमें 10 प्रतिशत लोगों की हत्या कर दी गई। 1938 तक लगभग हर घर से एक व्यक्ति जेल में बंद था। शिक्षित समुदायों में यह अनुपात और भी ज्यादा था।

1930 के दशक का आतंक सामूहीकरण से इस अर्थ में भिन्न था कि यह शहरी जनसंख्या, राजनैतिक नेताओं, सैनिक अधिकारियों तथा पढ़े लिखे बुद्धिजीवी वर्गों के खिलाफ था। लोगों को इसलिए दंड दिया गया क्योंकि उन पर शक था कि वे सोवियत समाज को नुकसान पहुंचा सकते थे। इसका निर्धारण उनके सामाजिक वर्गीकरण, सामाजिक उत्पत्ति, राष्ट्रीयता या समूह सदस्यता के आधार पर किया गया। सामाजिक वर्गीकरण लोगों की नियति का आधार बन गया। यह बताना जरा मुश्किल है कि कितने लोगों को गिरफ्तार किया गया और कितने लोगों को मार डाला गया क्योंकि ये आंकड़ें अभी भी फाइलों में बंद है। 1990 में सोवियत अनुसंधानकर्ताओं ने दावा किया कि 1931 और 1953 के बीच सरकारी ट्रिब्यूनल ने लगभग चालिस लाख को हिरासत में ले लिया जिनमें से [illegible] लोगों को मृत्यु दंड दिया गया परंतु बहुत लोगों की मौत दर्ज नहीं की गई और आंकड़ों में हेर-फेर किया गया [illegible] खो गए या नष्ट कर दिए गए। इसलिए ये संख्या निश्चित रूप से सत्य से बहुत दूर हैं और इनमे आकडो को बहुत कम करके बताया गया है।

बोध प्रश्न 3

1) इतिहासकारों के अनुसार 1930 के दशक में स्टालिन की प्रमुख राजनैतिक प्राथमिकताएं क्या थीं? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) 1930 के दशक के विरोधी सफाया कार्यक्रम ने साम्यवादी दल और सेना को किस प्रकार प्रभावित किया? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

29.6 सारांश

इस इकाई में 1928 और 1941 के बीच की रूसी अर्थव्यवस्था और राजनैतिक व्यवस्था के विभिन्न पक्षों का विवेचन किया गया है: योजनाबद्ध औद्योगीकरण, कृषि का सामूहीकरण और 1930 के दशक का परिशोधन या संहार। योजनाबद्ध औद्योगीकरण के तहत पांच वर्षों के लिए औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया और व्यवस्थित रूप से इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। कृषि के सामूहीकरण के द्वारा निजी खेतों को एक साथ मिला दिया गया और उन पर आधुनिक ढंग से राज्य के नियंत्रण में खेती की गई। दल के भीतर और बाहर स्टालिन की नीतियों का बड़े पैमाने पर विरोध हुआ जो रूस की बहुदलीय शासन व्यवस्था को एकशासक राज्य व्यवस्था में परिवर्तित करना चाहता था, परिणामस्वरूप 1930 के दशक में विरोधियों का सफाया किया गया। इन सफाया कार्यक्रमों के तहत पुराने बोलशेविक, लेनिन के पोलित ब्यूरो के सदस्यों, सेना के कई अधिकारियों और राज्य के कई अधिकारियों को मृत्युदंड दिया गया। वस्तुत: जिसने भी स्टालिन की नीतियों से अपनी असहमति जताई उसे मौत के घाट उतार दिया गया। सामूहीकरण में निशाना ग्रामीण जनता को बनाया गया था जबकि 1930 के दशकों के सफाया कार्यक्रम में मुख्य रूप से शहरी लोगों, सेना के उच्च अधिकारियों और राजनेताओं तथा शिक्षित जनता को निशाना बनाया गया था। यह कहा जा सकता है कि 1930 के दशक की सरकारी नीतियों के लिए रूसी समाज को भारी कीमत चुकानी पड़ी थी।

29.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) योजनाबद्ध उद्योग में औद्योगिक विकास की दिशा पूर्व निर्धारित होती है और पांच वर्षों के उत्पादन के लिए उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित कर लिया जाता है। देखिए भाग 29.3

2) सोवियत रूस में कम समय में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। देखिए उपभाग 29.3.1, 29.3.2 और 29.3.3

बोध प्रश्न 2

1) नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत खेती योग्य जमीन जो कुलकों (अमीर किसान) के नियंत्रण में थी उसे सामूहिकों के नियंत्रण में ले लिया गया। अब खेती के लिए आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल किया जा सकता था। देखिए भाग 29.4

2) हालांकि सभी वर्ग के किसानों ने सोवियत सरकार के सामूहीकरण अभियान का विरोध किया परंतु अमीर किसानों ने ज्यादा विरोध किया क्योंकि उनका नुकसान ज्यादा होना था। देखिए उपभाग 29.4.4

बोध प्रश्न 3

1) इस प्रश्न का उत्तर देते समय बताइए कि स्टालिन ने एकदलीय सत्ता से एक शासक सत्ता की ओर बढ़ने के लिए किस प्रकार अपने सभी राजनैतिक विरोधों का सफाया कर दिया। देखिए भाग 29.5

2) परिशोधन कार्यक्रम के अन्तर्गत पुराने साम्यवादी दल का और क्रांति के समय के सैनिक नेतृत्व वर्ग का सफाया कर दिया गया।

इस खंड के लिये कुछ उपयोगी पुस्तकें

हॉब्सबॉम, एरिक, *द ऐज ऑफ एम्पायर,* न्यू यार्क, 1987

जॉल, जेम्स, *यूरोप सिन्स 1870, ऐन इन्टरनेशनल हिस्ट्री,* पेंग्विन, 1976

शिरेर, विलियम, *राइस ऐंड फॉल ऑफ द थर्ड राईख,* ग्रीनविच, 1959

कार्र, ई.एच., *द रशियन रिवोल्यूशन फ्रॉम लेनिन टू स्टालिन: 1917-21,* लंदन

स्टिजपैट्रिक, शीला, *द रशियन रिवोल्यूशन,* ऑक्सफोर्ड, 1982

रॉबर्ट, जे.एम. *पेंग्विन हिस्ट्री ऑफ यूरोप*

इकाई 30 दो विश्व युद्ध

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- औद्योगीकरण के फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में आए बदलावों को रेखांकित कर सकेंगे,
- एकल, अबाधित प्रक्रिया के रूप में दो विश्व युद्धों के बीच की निरंतरता को समझ सकेंगे, और
- विचारधारात्मक आधारों पर खेमों में विभाजित समूहों के बारे में जान सकेंगे।

30.1 प्रस्तावना

अभी तक हमने औद्योगिक पूंजीवाद की प्रकृति और परिणामों तथा आधुनिक राजनीति के उद्‌भव पर विचार किया है। इसके पहले की इकाइयों में हम राष्ट्र-राज्यों के उद्‌भव और साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता की प्रकृति का अध्ययन कर चुके हैं। हम समझते हैं कि अब आप यह समझने की स्थिति में होंगे कि कैसे इन विविध प्रक्रियाओं के फलस्वरूप दो विश्व युद्ध लड़े गए। औद्योगीकरण से नए राज्यों का उद्‌भव हुआ और वे पूरी दुनिया पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए लड़ने लगे। अन्तरराष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विताओं का शांतिपूर्ण ढंग से समाधान करने का कोई तंत्र मौजूद न होने के कारण पूरी दुनिया में सशस्त्र लड़ाई छिड़ गई। चूंकि यूरोप विचारधारात्मक खेमों में बंट चुका था अत: यह युद्ध भी इन विचारधाराओं से जुड़ गया। प्रथम विश्व युद्ध में विचारधारा अभी पृष्ठभूमि में थी परंतु द्वितीय विश्व युद्ध में निश्चित रूप से उदारवादी जनतंत्र और समाजवाद एकजुट हुए और उन्होंने दक्षिणपंथी निरंकुश शासनों का विरोध किया। विडंबना यह है कि युद्ध ने कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया। सशस्त्र टकराव के बाद शीत युद्ध का युग आरंभ हो गया।

30.2 युद्धों के कारक

इन दो युद्धों के लिए कई कारक उत्तरदायी थे। इस शताब्दी के आंरभ में अलग-अलग विचारधाराओं के आधार पर विश्व प्रमुख अन्तरराष्ट्रीय ताकतों में विभाजित हो गया। ये सभी ताकतें आधुनिक युद्ध के हथियारों से युक्त थीं। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में उन्होंने पूरे विश्व पर कब्जा जमाने के लिए प्रतिद्वंद्विता आरंभ की। इनके इस टकराव और प्रतिद्वंद्विता को सुलझाने के लिए कोई शांतिपूर्ण तरीका मौजूद नहीं था इसलिए दो विश्व युद्ध लड़े गए। आइए इस पर विस्तार से विचार करें।

3.2.1 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएं और राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता

औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप अन्तरराष्ट्रीय शक्ति संतुलन में मूलभूत परिवर्तन आया। राष्ट्र-राज्यों के उद्भव और औद्योगिक संसाधनों में हुई वृद्धि के कारण बड़े पैमाने पर राज्य ने मानव और सामग्री संसाधन जुटाए और इससे उन्होंने लड़ने की शक्ति अर्जित की। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में औद्योगिक--उत्पादन तकनीक का इंग्लैंड के बाहर प्रसार हुआ तथा बेल्जियम (1815-30), स्वीडेन, फ्रांस, अमेरीका और प्रशा (1840-60), नौर्वे, रूस और जापान (1870-90) जैसे अनेक राज्यों में यह तकनीक प्रचलित हुई। धीरे-धीरे इन औद्योगिक विकासों के परिणामस्वरूप एक ऐसी व्यापक टकराव की संभावना बनने लगी जो आज तक वास्तविकता का रूप नहीं ले पाई थी। आगे आने वाले भागों में हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे। औद्योगीकरण के क्षेत्र में देर से प्रवेश करने वाले देशों ने पूंजी बाजारों से संबंधित नए पहलुओं जैसे बैंकों और वित्तीय संस्थानों तथा व्यापार संगठन के नए पहलूओं जैसे संयुक्त स्टॉक कम्पनियों, जिनकी सीमित जिम्मेदारी थी, और संरक्षणवाद तथा प्रोत्साहन की राज्य की सक्रिय नीति जैसे पहलूओं का उपयोग किया। रेलवे के प्रसार ने पूरी दुनिया को एक अर्थव्यवस्था के सूत्र में बांध दिया। हालांकि अभी भी यह प्रौद्योगिकी वाष्प और कोयले पर आधारित थी परंतु बिजली उत्पादन और रासायनिक तकनीक तथा तेल उद्योग ने इस युग में काफी प्रगति की। 1880 के दशक के बाद औद्योगिक और औद्योगीकृत देशों का आर्थिक विकास काफी तेज हुआ। बिजली उत्पादन की नई प्रौद्योगिकियों के कारण उत्पादन बड़े पैमानें पर होने लगा। उत्पादन की नई तकनीकों के कारण नए उत्पाद (जैसे आटोमोबाइल) सामने आए। हालांकि ब्रिटेन सबसे प्रभावी शक्ति बना रहा परंतु अमेरीकी और जर्मन अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास के कारण स्थिति बदलने लगी और 1880 के दशक के बाद से इंग्लैंड की स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर होने लगी। मेजी पुनर्स्थापना (1868) के बाद जापान की उन्नति और रूस के औद्योगीकरण से विश्व आर्थिक माहौल और भी बदल गया। औद्योगीकरण के तेजी से फैलने के कारण कोयले की ऊर्जा का भी ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल होने लगा। यहां तक कि 1913 में कोयले से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में पूरी दुनिया की 90 % ऊर्जा प्राप्त की जाती थी लेकिन 1880 के दशक से खासकर अमेरीका में विद्युत ऊर्जा धीरे-धीरे महत्वपूर्ण हो गई। अमेरीकी और जर्मन कम्पनियां या फर्म ब्रिटिश उत्पादनकर्ताओं से कड़ी प्रतिस्पर्द्धा करने लगे। उद्योग के रासायनिक और विद्युत क्षेत्रों में उनके पास श्रेष्ठ प्रौद्योगिकी उपलब्ध थी। 19वीं शताब्दी के मध्य के आस-पास ब्रिटिश अर्थव्यवस्था, खासकर रेलवे के विकास के लिए, दीर्घ अवधि वित्त की आपूर्ति करने वाले बैंकर की भूमिका निभा रही थी। अतएव यूरोप के अन्य दो प्रतिस्पर्द्धियों- फ्रांसीसियों ओर जर्मनों- ने यूरोप की परिधि पर स्थित औद्योगीकृत राष्ट्रों पर अपना ध्यान केंद्रित किया। 1890 के दशक के बाद और खासकर 1900 के बाद फ्रांस ओर जर्मनी द्वारा विदेशी निवेश पूरी दुनिया में किया जाने लगा जैसे अमेरीका, लैटिन अमेरीका, अफ्रीका, रूस और चीन। इन आर्थिक विकासों के परिणामस्वरूप यूरोप में कई आर्थिक-राजनैतिक शक्ति केंद्रों का उद्भव हुआ। ये ताकतें एक दूसरे की प्रतिद्वंद्वी थीं और विश्व अर्थव्यवस्था में ब्रिटेन के वर्चस्व को चुनौती दे रही थीं।

बढ़ता औद्योगीकरण अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण का कारण बना रहा और इससे एक संकट भी उत्पन्न हुआ। वस्तुत: अभी भी 'राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं' के बीच प्रतिस्पर्द्धा के रूप में पूंजीवाद की विश्व व्यवस्था मौजूद थी। 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में यह प्रवृत्ति ठोस रूप लेने लगी। औद्योगीकरण के क्षेत्र में देर से आने वाले (जैसे प्रशा, रूस और जापान) भी 'राष्ट्रीय क्षेत्रों' के बाहर भी अपना दावा करने लगे। अब आर्थिक और राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता सैद्धांतिक गठबंधनों का रूप लेने लगी। हालांकि ये संघटन काफी ढीले ढाले थे। 1893 में स्थापित अखिल जर्मन लीग में दक्षिणपंथी संकीर्णवादी ताकतों का वर्चस्व था जो मध्य यूरोप (*मितेलयूरोपा*) पर आर्थिक और क्षेत्रीय आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। वे बेल्जियम, फ्रांसीसी जिले लौंगवी-ब्रे जहां कच्चा लोहा पाया जाता था, सोमे तक जाने वाला फ्रांसीसी तटीय प्रदेश, तोलोन स्थित भूमध्यसागरीय अड्डे के साथ-साथ पोलैंड और बाल्टिक राज्यों पर भी अपना आधिपत्य जमाना चाहते थे। उन्होंने जर्मनी के नेतृत्व में आस्ट्रिया-हंगरी, बुल्गारिया, रोमानिया, नीदरलैंड, स्वीटजरलैंड, डेनमार्क, स्वीडेन, नौर्वे और फिनलैंड के साथ-साथ जर्मन, फ्रांसीसी और बेल्जियम उपनिवेशों को शामिल कर एक मध्य यूरोपीय परिसंघ बनाने की भी परिकल्पना की। मई 1915 में केंद्रीय जर्मन उद्योग परिसंघ और अन्य औद्योगिक तथा कृषीय हितों ने भी इन योजनाओं को अपना समर्थन दिया। यह अकस्मात नहीं था कि युद्ध के दौरान जर्मनी द्वारा समर्थित गठबंधनों तथा बुखारेस्ट तथा ब्रेस्ट-लिटोवस्क (1918) की संधियों ने काफी हद तक जर्मन सपने को साकार किया। हिटलर केवल आस्ट्रिया के साथ संघ (ऐन्शलस) ही नहीं बनाना चाहता था बल्कि वह जर्मनवासियों के लिए पर्याप्त रियायतें (*लेबेन्सराउम*) भी चाहता था।

इसी प्रकार दक्षिणपंथी इतालवी 'प्रोलेटेरियन' (सर्वहारा) और प्लुटोकैटिक (समर्थ) की वर्ग संबंधी अवधारणाओं का उपयोग अन्तरराष्ट्रीय संबंधों को पुन: परिभाषित करने और 'सर्वहारा' इटली के लिए उपनिवेशों की मांग करने के लिए किया। इसी प्रकार जापान में दक्षिणपंथी गरम दल राष्ट्रवादियों (ब्लैक ड्रैगन सोसाइटी 1901), अम्पायर फाउंडेशन सोसाइटी (1926) और जापान प्रोडक्शन पार्टी (1931), ने "विश्व संसाधनों के समतावादी वितरण" की मांग की। यहां तक कि उन्होंने जापान के नेतृत्व में पूरब में 'एक सह-समृद्धि क्षेत्र' बनाने के लिए सैनिक कार्यवाई का भी समर्थन किया।

3.2.2 अन्तरराष्ट्रीय संबंध और खेमों की स्थापना

औद्योगीकरण के कारण शक्ति के कई केंद्र बन गए और इसके कारण दुनिया पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए नए दावेदार दौड़ में शामिल हो गए। विभिन्न प्रतिद्वंद्वियों के दावों को निपटाने या टकरावों को सुलझाने का कोई तरीका मौजूद नहीं था। टकरावों को सुलझाने के दिशाहीन प्रयास किए गए। प्रथम और द्वितीय हेग सम्मेलनों (1899 और 1907) में हथियारों में कमी लाने का असफल प्रयत्न किया गया। अन्तर-राज्य टकरावों को रोकने के लिए हेग में स्थापित मध्यस्थता न्यायालय भी अशक्त बेकार साबित हुआ। बड़े युद्ध का खतरा मंडराने लगा। इस युद्ध की संभावना को देखते हुए यूरोपीय शक्तियों के बीच हथियारों की तथा सैनिक शक्ति बढ़ाने की होड़ हो गई। अपनी-अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं (कमजोर) के संरक्षण के लिए की जा रही सैनिक तैयारियों को जनता का अच्छा समर्थन मिला। यूरोपीय शक्तियों ने सुरक्षा उपायों के तहत जो सैनिक गठबंधन किए थे उनसे यह स्पष्ट था कि यदि युद्ध छिड़ा तो इसमें केवल दो ही देश शामिल नहीं होंगे बल्कि उनसे जुड़े सभी देश इससे प्रभावित होंगे। इस प्रकार के गठबंधन से एक देश को एक ऐसे 'शत्रु' के खिलाफ युद्ध करना पड़ सकता था जिससे उसकी कोई सीधी दुश्मनी नहीं थी। इन गठबंधनों की शर्तों के गुप्त रखे जाने के भी गंभीर विनाशकारी परिणाम हुए। 1879 में जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी ने यह समझौता किया कि रूस द्वारा आक्रमण किए जाने पर वे मिलकर उसका सामना करेंगे। 1882 में इटली भी समझौते में शामिल हो गया और इसे त्रिपक्षीय गठबंधन के नाम से जाना गया। 1894 में फ्रांस और रूस ने आपस में समझौता किया कि यदि त्रिपक्षीय गठबंधन में सम्मिलित कोई देश सेना की लामबंदी करता है तो वे भी अपनी सेना को युद्ध के लिए लामबंद करेंगे। उन्होंने यह भी समझौता किया कि जर्मनी द्वारा आक्रमण किए जाने पर वे मिलकर उनका सामना करेंगे। 1904 में जर्मनी द्वारा नौसैनिक शक्ति के बढ़ाए जाने के कारण ब्रिटेन ने अपनी "गौरवशाली अलगाव" की नीति को त्याग दिया। ब्रिटेन ने न केवल फ्रांस के साथ उपनिवेश संबंधी पुराने मतभेदों को सुलझा लिया बल्कि उसके साथ *एन्टेटे कौडिएले* (मित्रतापूर्ण समझौता) पर हस्ताक्षर भी किए। हालांकि इस समझौते में सैन्य समर्थन की कोई बात नहीं थी परंतु दोनों देशों ने संयुक्त सेना योजनाओं पर विचार-विमर्श करना शुरू कर दिया। 1907 में रूस भी *एन्टेटे कौडिएले* में शामिल हो गया और इसे *ट्रिपल एन्टेटे* के नाम से जाना जाने लगा। इन समझौतों से यूरोप दो प्रतिद्वंद्वी खेमों में बंट गया।

भूमंडलीय वर्चस्व के प्रश्न को निपटाने के लिए इन दोनों खेमों के बीच 1914-1918 में प्रथम विश्व युद्ध हुआ। संधियों (वर्सायलेस, रिगा, लाउसाने, लोकार्नो आदि) के कारण यूरोप का नक्शा परिवर्तित हो गया। रूसी रोमानोव, होहेनजौलर्न, हैब्सबर्ग और औटोमन जैसे चार बड़े साम्राज्य पराजित हुए और उनका पतन हो गया। साम्यवादी शासन की स्थापना के पहले रूस में खून खराबे से युक्त गृह युद्ध हुआ। जर्मनी एक गणतंत्र बन गया तथा उसे पराजय का अपमान सहना पड़ा और वह विरोधी खेमे की क्षतिपूर्ति के बोझ के तले दब गया। विजयी पश्चिमी जनतंत्रों को अनेक क्षेत्र प्राप्त हुए। उदाहरण के लिए फ्रांस को अल्साके-लौरेन प्राप्त हुआ जो 1871 से जर्मनी के पास था। ब्रिटेन को और ज्यादा औपनिवेशिक क्षेत्र मिले परंतु उसके साम्राज्य की सुरक्षा पर अभी भी खतरे के बादल मंडरा रहे थे । वस्तुत: इतने बड़े पैमाने पर हुए युद्ध के बावजूद विश्व स्तर पर वर्चस्व की समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। 1922 में ब्रिटेन को मजबूरन अमेरिका के साथ नौसैनिक समानता को स्वीकार करना पड़ा और आंग्ल-जापानी समझौता त्याग देना पड़ा जो उनके सुदूरपूर्व साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बहुत उपयोगी था। इटली और जापान को जो क्षेत्र प्राप्त हुए थे उससे वे संतुष्ट नहीं थे। फ्रांस, ब्रिटेन ने शांति के लिए जो कड़ी शर्तें रखी थीं और जो नई सीमाएं निर्धारित की थीं उसमें भविष्य के टकराव की अपार संभावनाएं थीं।

अमेरीकी राष्ट्रपति वुडरो विलसन ने पूरे विश्व में शांति स्थापित करने के लिए विश्व संगठन का विचार सामने रखा परंतु उसे इसमें खास सफलता नहीं मिली क्योंकि लीग ऑफ नेशन्स जो कि वर्साय की संधि का सबसे महत्वपूर्ण पहलू था को अमेरीका की भी मंजूरी नहीं मिली। इसके अलावा पराजित ताकतों को भी इसमें सदस्य नहीं बनाया

गया। जर्मनी को 1926 में लीग में शामिल होने की अनुमति दी गई। 1921 और 1930 में नौसैनिक निरस्त्रीकरण में आंशिक सफलता मिली जब ब्रिटेन, अमेरिका और जापान ने अपने कुछ युद्ध पोतों और पनडुब्बियों की संख्या कम करने का समझौता किया परंतु जेनेवा में सम्पन्न हुए (1932-34) लीग द्वारा प्रायोजित निरस्त्रीकरण सम्मेलन में कोई समझौता न हो सका। 1930 के दशक के आरंभ में विश्व शांति की दिशा में रूकावट आई। लीग के पास शांतिपूर्ण समाधान अध्यारोपित करने की कोई कार्यकारी शक्ति नहीं थी। जापानी सैन्यवाद, इतालवी फासीवाद और जर्मन नाजीवाद अपनी मांगों के प्रति लगातार कड़े होते चले गए। 1931 में जापानी सेनाओं ने चीन के एक प्राकृतिक संसाधनों से युक्त क्षेत्र मंचुरिया पर कब्जा जमा लिया और इसे कठपुतली राज्य बना लिया जिसे मंचुकुओ के नाम से जाना जाता था। कुछ इतिहासकार इस घटना को दूसरे विश्व युद्ध की शुरुआत मानते हैं। इस जलती आग में घी डालने का काम तब हुआ जब इतालवी सेनाओं ने एबिसिनिया (आधुनिक इथोपिया) पर आक्रमण किया और मई 1936 तक इस पर कब्जा जमा लिया। जर्मनी में हिटलर ने वर्साय की संधि शर्तों का उल्लंघन करते हुए सैन्य शक्ति बढ़ाने का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर शुरू किया। मार्च 1936 में उसने पश्चिमी ताकतों के सामने जर्मन वायुसेना (*लुफ्तवफे*) की स्थापना की घोषणा की। इसी वर्ष जर्मनी और इटली ने एक समझौता किया जिसे रोम-बर्लिन धुरी के नाम से जाना गया जिसमें 1940 में जापान भी शामिल हो गया। मार्च 1938 में जर्मनी के साथ आस्ट्रिया का संघ (*आंशुलस*) बनाने के लिए जर्मन सेना ने आस्ट्रिया में कदम रखा। 1938 में जर्मन भाषी लोगों के वर्चस्व वाले पश्चिमी चेकोस्लोवाकिया के क्षेत्र सूडेटैनलैंड पर हिटलर ने नियंत्रण स्थापित करना चाहा। ब्रिटेन किसी भी कीमत पर शांति स्थापित करने को इच्छुक था। इसके लिए वह हिटलर की मांग को मानने और तुष्टिकरण की नीति अपनाने के लिए भी तैयार था। सितम्बर 1938 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री नेवीले चेम्बरलेन और फ्रांसीसी प्रमुख डालाडेर जर्मनी को सूडेटैनलैंड वापस करने के लिए राजी हो गए और चेकोस्लोवाकिया को यह समझौता (जिसे म्युनिख समझौते के नाम से जाना गया) मानने के लिए बाध्य किया। तुष्टिकरण की असफलता तुरंत सामने आई। हिटलर ने मार्च 1939 में म्युनिख समझौते का उल्लंघन किया और बाकी बचे चेकोस्लोवाकिया पर भी कब्जा जमा लिया। बाद में पोलैंड के साथ भी उसने ऐसा ही किया।

स्पेन में विचारधारात्मक टकरावों के परिणामस्वरूप गृह युद्ध (1936-39) हुआ जो द्वितीय विश्व युद्ध का पूर्व-अभ्यास था। 1936 में स्पेन में गणतंत्रवादियों, समाजवादियों, अराजकतावादियों और सिंडिकेलिस्टों के 'लोकप्रिय मंच' ने सत्ता पर अधिकार स्थापित कर लिया। सेनाध्यक्षों और दक्षिणपंथी दल इस मंच के कार्यक्रमों से घबरा गए और उन्होंने जेनरल फ्रैंको के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। इस स्थिति में दुनिया की अन्य सैन्य ताकतों को भी अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने का मौका मिला। विभाजन पूर्णतः स्पष्ट थे। फासीवादी और नाजी शासन व्यवस्थाओं ने जेनरल फ्रैंको को सैनिक समर्थन दिया जबकि सोवियत संघ ने गणतंत्रवादियों की मदद की। गणतांत्रिक ताकतों को कई देशों से 'स्वंय सेवक' भी प्राप्त हुए। हालांकि इस बार उदारवादी प्रजातंत्रों की इसमें प्रत्यक्ष राष्ट्रीय भागीदारी नही रही।

30.3 विश्व युद्धों में हिस्सा लेने वाले राष्ट्र

प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत बाल्कन क्षेत्र से हुई जहां अनेक राष्ट्रीयताएं आपस में उलझ रही थीं और जातीय संघर्ष अपनी चरम सीमा पर था। प्रथम विश्व युद्ध इस प्रकार शुरू हुआ। आस्ट्रिया-हंगरी ने 28 जुलाई 1914 को सर्बिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जर्मनी ने 1 अगस्त को रूस पर और 3 अगस्त को फ्रांस के विरूद्ध लड़ाई की घोषणा कर दी। 3 अगस्त को जर्मन सेना ने बेल्जियम पर आक्रमण कर दिया और 4 अगस्त को फ्रांस पर आक्रमण हुआ। जर्मनी द्वारा बेल्जियम की तटस्थता की नीति के उल्लघन के बाद ब्रिटेन को फ्रांस और रूस के पक्ष में युद्ध में शामिल होने का एक बहाना मिल गया। ब्रिटेन के पूरे विश्व में निजी हितों की रक्षा रूपी स्वार्थ के कारण युद्ध पूरी दुनिया में फैल गया और इसमें आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका और सबसे बड़ा ब्रिटिश उपनिवेश भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका जिसके ब्रिटेन के साथ नजदीकी संबंध थे भी इसमें शामिल हो गया। आस्ट्रिया-हंगरी ने रूस पर 6 अगस्त को आक्रमण कर दिया और फ्रांस तथा ब्रिटेन ने 12 अगस्त को आस्ट्रिया-हंगरी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इटली ने कूटनीतिक ढंग से 1882 के त्रिपक्षीय समझौते के बाद से अपने को आस्ट्रिया और जर्मनी के साथ जोड़ कर रखा और उसने 3 अगस्त को अपनी तटस्थता की घोषणा कर दी। आगे आने वाले महीनों में फ्रांस और ब्रिटेन ने उससे

काफी आग्रह किया। 23 मई 1915 को इटली की सरकार मित्र राष्ट्रों के दबाव में आ गई और उसने क्षेत्रीय विस्तार के लिए आस्ट्रिया-हंगरी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान प्रथम विश्व युद्ध की तरह ही दुनिया दो सैनिक खेमों में विभक्त हो गई। कुछ बदलाव के साथ खेमे पहले की ही तरह बने रहे। केवल इटली, जापान, तुर्की, रोमानिया जैसे राज्यों ने खेमे बदले क्योंकि वे प्रथम विश्व युद्ध के बाद प्राप्त क्षेत्रीय अधिकारों या विचारधारात्मक कारणों से असंतुष्ट थे। जर्मनी, इटली और जापान (धुरी राष्ट्रों) के दल में बुल्गारिया, हंगरी, रोमानिया, अल्बानिया, फिनलैंड और थाइलैंड शामिल हो गए। मित्र राष्ट्रों के खेमे में ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ, बेल्जियम, डेनमार्क, तुर्की और संयुक्त राज्य अमेरिका शामिल थे। मित्र राष्ट्रों के खेमे में अन्य राष्ट्र इस प्रकार थे – अर्जेनटिना, आस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्राजिल, ग्रीस, चेकोस्लोवाकिया, मिस्र, दक्षिण अफ्रीका, निदरलैंड, नार्वे, पोलैंड आदि।

बोध प्रश्न 1

1) औद्योगीकरण ने शक्तियों के संबंधों को कैसे प्रभावित किया ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) सैनिक समझौतों की व्यवस्था के कारण विश्व युद्ध का मार्ग किस प्रकार प्रशस्त हुआ ? लगभग 100 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं ?

क) सैनिक समझौतों की व्यवस्था सुरक्षा उद्देश्य के लिए की गई थी परंतु इससे विश्व और भी असुरक्षित हो गया।

ख) स्पेन का गृह युद्ध उस देश का आन्तरिक मामला था।

ग) ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई तुष्टिकरण की नीति का कोई फायदा नहीं हुआ।

घ) प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान बने सशस्त्र खेमे उद्देश्य प्राप्ति के संदर्भ में एक समान नहीं थे।

30.4 आपसी टकराव वाली विचारधाराओं के रूप में युद्ध

18वीं और 19वीं शताब्दियों की क्रांतियों से आधुनिक राजनीति की शुरुआत हुई और इसे चुनावों, दलों और प्रतिनिधित्व के जरिए संस्थागत रूप प्रदान किया गया जिससे पूरा यूरोपीय समाज और राजनैतिक व्यवस्था

विभिन्न विचारधाराओं में बंट गए– वामपंथी धारा, मध्यमार्गी धारा, (उदारवादी जनतांत्रिक) और दक्षिणपंथी विचारधारा (प्रति-क्रांतिकारी)। आगे आने वाले उपभागों में हम राजनैतिक परिदृश्य के सृजन और विशेषताओं पर चर्चा करेंगे।

30.4.1 दो विश्व युद्धों में विचारधाराओं द्वारा सृजित सशस्त्र खेमे

दोनों विरोधी खेमों में विभाजन की स्थिति पहले की तरह ही बनी हुई थी और युद्धोन्मुख देश गठबंधनों में पहले की तरह ही विभाजित थे। ज्यादातर मामलों में इन क्षेत्रों के रूप में रेखांकित इन राज्यों का गठबंधन इनके आधारभूत गहरे राजनैतिक झुकाव पर आधारित था। ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका दोनों युद्धों में एक साथ मिल कर लड़े थे। उनके पास सुस्थापित उदारवादी जनतांत्रिक परम्परा थी। जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली, जापान तथा हंगरी में इस प्रकार की जनतांत्रिक परम्पराओं का अभाव था। हालांकि जापान और इटली ने प्रथम विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों के खेमे की सहायता की थी परंतु दोनों युद्धों के अन्तराल में उन्होंने उनका साथ छोड़ दिया था और वहां स्थापित तानाशाही और निरंकुश शासन व्यवस्थाओं ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अपने से मिलती जुलती ताकतों के साथ समझौता किया था। रोमेनोव की रूसी तानाशाही सरकार ने आर्थिक दबावों के कारण पश्चिमी जनतंत्रों को समर्थन दिया क्योंकि बाहरी निवेश में फ्रांस का हिस्सा 25 % था (1914) और रूसी बैंकिंग, रेलवे विकास और दक्षिणी रूसी औद्योगिक परिसर ये सभी फ्रांसीसी पूंजी पर आश्रित थे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अन्तर-युद्ध प्रत्यारोपों के बावजूद अति दक्षिणपंथी तानाशाही के खतरे के खिलाफ साम्यवादी सोवियत संघ पुन: वैचारिक दबावों के कारण पश्चिमी उदारवादी जनतंत्रों से समझौता करने पर मजबूर हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान औटोमन साम्राज्य ने केंद्रीय शक्तियों को समर्थन दिया था। परंतु द्वितीय विश्व युद्ध में जनतांत्रिक सुधारों के कारण वह मित्र राष्ट्रों के खेमें में शामिल हो गया।

उदारवादी जनतांत्रिक विश्व से मध्य यूरोपीय साम्राज्यों का अन्तर मात्र चुनाव, मतदान के अधिकार और संसदों के कारण ही नहीं था बल्कि वहां एक अधिक उत्तरदायी और जवाबदेह सरकारें भी कायम थीं। फ्रांस-प्रशा युद्ध (1870) के बाद बिस्मार्क द्वारा स्थापित जर्मन साम्राज्य 'ऊपर से हुई क्रांति' का परिणाम था जिसमें प्रशा की सेना की सहायता ली गई थी। 1871 के जर्मन संविधान के द्वारा संघीय परिषद (बंडस्रैट) को औपचारिक संप्रभुता प्रदान की गई जिसके सदस्यों को सदस्य राज्यों के कार्यकारियों द्वारा मनोनीत किया जाता था। इस संविधान के द्वारा एक प्रत्यक्ष, गुप्त, वयस्क पुरुष मताधिकार द्वारा *राइखस्टैग* या 400 सदस्यों वाली संसद की स्थापना की गई। परंतु इस व्यवस्था में संसदीय उत्तरदायित्व का पूर्ण अभाव था क्योंकि सम्राट द्वारा नियुक्त शाही चांसलर के पास आपार शक्ति थी और वह *राइखस्टैग* के प्रति जवाबदेह नहीं था। इस प्रकार जर्मन साम्राज्य में प्रशा के सैनिक वर्चस्व और साम्राज्यिक परिसंघ का मिला जुला रूप सामने आया जिसमें आधुनिक मतदान के साथ-साथ प्राचीन राजतंत्रीय सत्ता भी मौजूद थी। प्रभुत्वशाली प्रशा राज्य में सम्राट का निरंकुशता के तीन स्तंभों सेना, नौकरशाही और विदेशी मामलों पर नियंत्रण बना रहा। प्रशा के भूमिपति या जुंकर इस राज्य के प्रमुख स्तंभ बने रहे। जर्मन राज्य के बारे में कार्ल मार्क्स ने कहा है कि "यह एक सैनिक निरंकुश शासन था जिसे संसदीय मुखौटा पहनाया गया था और इसमें सामंती तत्व मौजूद थे। इस पर बुर्जुआ वर्ग का प्रभाव था, नौकरशाही का नियंत्रण था और पुलिस का इसे संरक्षण प्राप्त था।"

इसी प्रकार आस्ट्रिया-हंगरी के हैब्सबर्ग राजतंत्र और औटोमन साम्राज्य पर भी मध्ययुगीन सामाजिक संस्थाओं और सैनिक तौर-तरीकों का प्रभाव था। हालांकि 1861 में आस्ट्रिया-हंगरी में एक संसदीय सरकार की स्थापना का स्वांग रचा गया था परंतु संसद में प्रतिनिधित्व पर नियंत्रण लगा हुआ था और इसमें पुजारी वर्ग और बड़े भूमिपति वर्गों से मनोनीत सदस्यों का बाहुल्य था। 1907 में सार्वभौम वयस्क पुरुष मताधिकार लागू किया गया परंतु इससे राज्य की प्रकृति में बहुत बदलाव नहीं आया। इसी प्रकार 1908 में युवा तुर्कों के नेतृत्व में एक प्रातिनिधिक संसदीय सरकार की स्थापना की गई और औटोमन साम्राज्य का विघटन होने लगा। 1922 में सुल्तान मुहम्मद के शासन के समापन के तुरंत बाद ही तुर्की में जनतांत्रिक सुधार हुआ और जनतांत्रिक नीतियां सामने आईं।

युद्ध के दौरान प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी का पक्ष लेना पड़ा। लाखों लोगों के लिए यह अस्तित्व की पहचान का प्रश्न बन गया। बाहरी शत्रु का सामना करने के लिए आंतरिक, वैचारिक मतभेदों को भुला दिया गया। युद्ध के कारण वैचारिक प्रचार या प्रभुत्व पर नियंत्रण स्थापित किया गया। इसने क्षेत्रीय रूप से रेखांकित राज्यों के नागरिकों में एकता लाने का प्रयत्न किया। युद्ध, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा और शत्रु राष्ट्रों की निंदा के रूप में यह एकता का दृष्टिकोण पूरी तरह उभर कर सामने आया। हालांकि अस्तित्व की पहचान की यह प्रक्रिया

निर्विघ्न और आसानी से सुलझने वाली प्रक्रिया नहीं थी उदाहरण के लिए जर्मन संसद में सैकड़ों ऐसे समाजवादी सदस्य थे जो वर्षों से अन्तरराष्ट्रीयतावाद के प्रति समर्पित थे। परंतु केवल कार्ल लिएबकनेख्त ने अकेले 1914 में युद्ध के लिए लिए जाने वाले ऋणों का विरोध किया था। ब्रिटिश लेबर पार्टी के शांतिप्रिय नेता ज्योर्ज लांसब्यूरी को इसलिए दल के नेतृत्व से हटा दिया गया क्योंकि वे ब्रिटेन के बड़े पैमाने पर फिर से सैन्यीकरण के विरोधी थे।

30.4.2 युद्ध की शुरुआत के समय यूरोप का राजनैतिक परिदृश्य

इस विभाजन के वामपंथी हिस्से मुख्य रूप से समाजवादी विचारधारा से प्रभावित थे। 1864 में अन्तरराष्ट्रीय कामगार पुरुष संघ या प्रथम अन्तरराष्ट्रीय का जन्म हुआ। हालांकि अपने आंतरिक अन्तर्विरोधों को न सुलझा पाने के कारण 1876 में यह ध्वस्त हो गया परंतु मुख्यत: राष्ट्रीय आधारों पर संगठित समाजवादी और सामाजिक जनतांत्रिक दलों को इसने जन्म दिया। 1875 में सार्वभौम जर्मन कामगार पुरुष संघ का विलयन मार्क्सवादी समूह में हुआ और परिणामस्वरूप जर्मन समाजवादी जनतांत्रिक दल का उदय हुआ। 1878-90 में बिस्मार्क द्वारा लगाए गए प्रतिबंध के बावजूद इसका प्रभाव बढ़ा। 1872 में लोकप्रिय मत में इसका हिस्सा 3.2% था जो 1912 में बढ़कर 34.8 % हो गया। 1879 में जूल्स गेस्डे ने फ्रांस में समाजवादी दल की स्थापना की। 1890 के दशक में फ्रांस में पांच समाजवादी दल थे। जेन ज्योर्स का स्वतंत्र समाजवादी दल (1893) इनमें प्रमुख था। 1905 में दोनों प्रमुख समाजवादी दल आपस में मिल गए और फ्रेंच चेम्बर ऑफ डेपुटिज में समाजवादी प्रतिनिधियों की संख्या 1906 में 52 से बढ़कर 1914 में 102 हो गई। ब्रिटेन में 1884 में समाजवाद का प्रचार करने के लिए फेबियन सोसाइटी की स्थापना की गई। बाद में 1893 में स्वतंत्र लेबर पार्टी की स्थापना हुई जो संसदीय तरीकों द्वारा समाजवाद लाना चाहता था। 1900 में ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स में इसके सदस्यों की संख्या मात्र 2 थी तो 1910 में बढ़कर 42 हो गई। 1880 के दशक के बाद इसी प्रकार इटली, रूस, हंगरी, बेल्जियम, स्वीडेन, स्वीटरजरलैंड आदि में समाजवादी-जनतांत्रिक दलों की स्थापना हुई। 1889 में राष्ट्रीय समाजवादी दलों के एक लचीले परिसंघ के रूप में दूसरे समाजवादी अन्तरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई। इसमें मार्क्सवादियों के नेतृत्व में उग्र वामपंथी और सुधारवादी शाखा थी जो मौजूदा संस्थाओं और सामाजिक संरचना के भीतर उदारवादी जनतांत्रिक राज्य और दलों से समझौता कर मजदूरों की स्थिति सुधारना चाहती थी।

इसी प्रकार उदारवादी जनतांत्रिक दल अपने-अपने देशों में औद्योगिक पूंजीवाद को बढ़ावा देने की मध्यमार्गी राजनीति का प्रतिनिधित्व करते थे। फ्रांस के तीसरे गणतंत्र के गणतंत्रवादियों, ब्रिटेन में विग या उदारवादी दल, जर्मनी में उदारवादी दल और कैथोलिक सेंटर पार्टी तथा इटली में कैथोलिक पिपुल्स पार्टी तथा रूस में कैडेट पार्टी मध्यमार्गी राजनीति के ही उदाहरण थे। फ्रांसीसी लेजिटिमिस्ट, जो फ्रांस में राजतंत्र की पुन: स्थापना करना चाहते थे, ब्रिटेन में टोरी या संकीर्णतावादी, जर्मनी में कृषीय लीग और जर्मन कामगार पार्टी (1903 में स्थापित डी. ए. पी.) दक्षिणपंथी राजनीति के प्रमुख उदाहरण थे। आस्ट्रिया में *हेमवर*, फ्रांस में ऐक्शन फ्रांसेसे (1899 में स्थापित), इतालवी राष्ट्रवादी संघ (या 1910 में स्थापित ए एन आई) और फ्रांस में अतिराष्ट्रवादी बोलंगावादी जैसी 20वीं शताब्दी की कुछ अर्द्ध सैनिक ताकतें अति दक्षिणपंथी संस्थाएं थीं।

युद्ध के बाद केंद्रीय यूरोपीय साम्राज्यों पर उदारवादी जनतंत्रों ने अपना नियंत्रण पुन: स्थापित किया। कई मामलों में सुधारवादी और समझौतापसंद समाजवादी नेताओं ने इसमें सहायता की। हालांकि फासीवादी और दक्षिणपंथी तानाशाहों ने आर्थिक समस्याओं से जुड़े अतिवादी राष्ट्रवादी नारों का सहारा लिया और इसके परिणामस्वरूप इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, पोलैंड, स्पेन और जापान जैसे देशों में शक्तिशाली दक्षिणपंथी सैन्य संगठन बनने की गति तेज हुई। जनतांत्रिक संस्थाओं की परम्पराओं से रहित देशों में खासतौर पर इस प्रकार की तानाशाही व्यवस्थाओं का उद्भव हुआ। उदारवादी जनतांत्रिकों की अवधारणा की तहत राज्य का अस्तित्व व्यक्ति के लिए था जबकि इन विभिन्न तानाशाही व्यवस्थाओं में राज्य की सर्वोच्चता ही मूल सिद्धांत थी।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका आदि जैसे उदारवादी प्रजातंत्र और साम्यवादी सोवियत संघ दक्षिणपंथी तानाशाही को समाप्त करने के लिए एकजुट हुए। इसके परिणामस्वरूप 1945 में दो सशस्त्र खेमों की स्थापना हुई – पश्चिमी जनतांत्रिक खेमा और साम्यवादी खेमा जिनके विचार एक दूसरे से अलग थे परंतु उनका उद्देश्य एक था अर्थात विश्व पर अपना वर्चस्व स्थापित करना।

30.5 शीत युद्ध की शुरुआत

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पूरा विश्व साम्यवादी खेमे और गैर साम्यवादी खेमे में विभक्त हो गया और बहुत थोड़े से राज्य इससे तटस्थ रह सके। फरवरी 1945 में चर्चिल (ब्रिटिश प्रधानमंत्री), रूजवेल्ट (अमेरिकी राष्ट्रपति) और सोवियत संघ के नेता स्टालिन की बैठक क्रीमिया में याल्टा में हुई। जर्मनी और जापान को परास्त करने के उद्देश्यों पर सहमत होना मित्र राष्ट्रों के लिए आसान था। पंरतु जैसे ही भविष्य का प्रश्न सामने आया हितों, विचारों और दृष्टिकोणों का मतभेद उभर कर सामने आ गया। ब्रिटेन और अमेरिका साम्यवाद को नापंसद करते थे और उन्हें इसके यूरोप के अन्य देशों में भी फैलने का डर था। युद्ध के दौरान रूसी शक्ति प्रदर्शन से भी वे सतर्क हो गए थे। मित्र राष्ट्र पोलैंड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, बुल्गारिया, युगोस्लाविया और अल्बिनिया जैसे पूर्व यूरोपीय देशों में 'रेड सेना'' के हटने के बाद निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए तैयार हो गए। परंतु स्टालिन ने इन देशों में साम्यवादी सरकारें स्थापित कर दीं। स्टालिन ने जर्मन सिलेसिया के बदले में पूर्वी पोलैंड पर अधिकार प्राप्त कर लिया और इसके बाद रूसी प्रभाव वाली सीमा पश्चिम दिशा में और आगे बढ़ा ली गई। ब्रिटेन ने ग्रीस में हस्तक्षेप किया और वहां स्थापित साम्यवादी सरकार को गिरा दिया। आरंभ में जर्मनी चार क्षेत्रों में विभाजित था। रूसी नियंत्रित क्षेत्र में स्थित राजधानी शहर बर्लिन भी इसी प्रकार विभाजित था। 1948 में तीन पश्चिमी क्षेत्रों ने पूर्वी क्षेत्रों से सलाह किए बिना एक नई मुद्रा जारी कर दी जिसके परिणामस्वरूप सोवियत संघ ने आठ महीनों तक रेल और रोड यातायात को अवरुद्ध रखा और इस दौरान ब्रिटेन तथा अमेरिका ने बर्लिन में सभी समान हवाई जहाज से पहुंचाया। एक तरफ सोवियत रूस था दूसरी तरफ ब्रिटेन और फ्रांस। हर मामले में ये एक दूसरे का विरोध करते थे । सोवियत नेतृत्व में पूर्वी यूरोपीय देशों ने अपनी अर्थव्यवस्था की पुन: संरचना के लिए मार्शल योजना के तहत अमेरिकी सहायता प्राप्त करने से इनकार कर दिया। 1949 में सोवियत संघ ने परमाणु बम बनाया और माहौल इतना विद्वेषपूर्ण हो गया कि इसे शीत युद्ध कहा गया। प्रत्यक्ष रूप में शांति बनी रही पर परदे के पीछे विचारधारात्मक तनाव बना रहा और अनेक बार इन महाशक्ति खेमों की ओर से सैनिक कार्यवाई किए जाने या परमाणु बम के उपयोग की धमकी दी जाती रही।

बोध प्रश्न 2

1) विश्व युद्धों के सैन्य खेमे आपसी विचाराधारात्मक मतभेदों से जूझ रहे थे। लगभग 150 शब्दों में टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

....

1) शीत युद्ध से आप क्या समझते हैं ? 10 पंक्तियों में समझाइए।

....

....

....

....

....

....

30.6 सारांश

इस इकाई में आपने यह देखा कि पश्चिमी देशों के औद्योगीकरण होने से इस दुनिया पर सर्वोच्चता का दावा करने वाले कई दावेदार सामने आए। ऐसी किसी प्रकार की अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था का अभाव था जहां इन दावों को मध्यस्थता और शांतिपूर्ण तरीके से सुलझाया जा सकता था। इसलिए पूरी दुनिया में सशस्त्र टकराव होना अवश्यंभावी हो गया था। हमने यह भी देखा कि 19वीं शताब्दी में वैचारिक स्तर पर यूरोप तीन हिस्सों में बंट गया था और इसके कारण इनके सुपरिभाषित सैन्य खेमे भी बने। इसलिए हम यह भी देखते हैं कि दोनों विश्व युद्धों में हिस्सा लेने वाले देश जिन खेमों में बंटे थे वे उद्देश्य प्राप्ति के संदर्भ में एक समान थे। 1914 में शुरू हुआ युद्ध लम्बे समय तक चला। 1919 और 39 के बीच इसमें एक लम्बा अन्तराल आया। इस दौरान इतिहास के रंगमंच पर कई उतार-चढ़ाव आए और अन्तत: उदारवादी जनतंत्र और समाजवाद के गठबंधन ने दक्षिणपंथी प्रति-क्रांतिकारी खेमे को नष्ट कर दिया। इस प्रबल संघर्ष के बावजूद शांति स्थापित न हो सकी और एक अप्रत्यक्ष तथा विचारधारात्मक विद्वेष का युग शुरू हुआ जिसे शीत युंद्ध के नाम से जाना जाता है। 1945 के बाद से दुनिया दो खेमे में बंट गई। एक में पश्चिमी उदारवादी जनतांत्रिक देश थे और दूसरी ओर सोवियत संघ के नेतृत्व में साम्यवादी खेमा।

30.7 शब्दावली

अंशुलस : जर्मन संघ और आस्ट्रिया की अखिल जर्मन विचारधारा के संदर्भ में प्रयुक्त संघ के लिए जर्मन शब्द।

तुष्टिकरण : नाजी सरकार की आक्रामक नीतियों को कम करने के लिए उसकी मांग को पूरा करने की नीति।

लैबेन्सरॉम : नाजियों की एक विचारधारा जो जर्मन प्रजाति को एक विशिष्ट सर्वोच्च स्थान देना चाहते थे।

लामबंदी : लड़ाई के लिए सेना जुटाने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द।

राष्ट्रीय आत्म निर्धारण : किसी राष्ट्रीयता को अपना भविष्य निर्धारित करने का अधिकार

हर्जाना : युद्ध में हुए नुकसान की भरपाई।

मतदान : राज्य द्वारा अपने नागरिकों को दिया गया मत देने का अधिकार।

30.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 30.2.1 और 30.2.2

2) देखिए भाग 30.3

3) क) सही ख) गलत ग) सही घ) गलत

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 30.4.2 को संक्षेप में लिखें

2) देखिए उपभाग 30.5

इकाई 31 युद्धों के स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने उन कारकों का अध्ययन किया जिनके परिणामस्वरूप दो विश्व युद्ध हुए। आप यह भी जानते हैं कि विद्वानों ने दो विश्व युद्धों के बीच के अंतराल के 30 वर्षों को भी युद्ध की ही संज्ञा दी है। इसलिए प्रस्तुत इकाई में इस अनवरत चलते युद्ध की प्रकृति पर विचार किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक युद्ध की प्रकृति, इसकी सम्पूर्ण प्रकृति और मानव समाज पर इसके प्रभाव का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- प्रमुख तकनीकी विकास और इसके परिणामस्वरूप नए-नए हथियारों के निर्माण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- आधुनिक युद्ध प्रणाली के कारण सैनिक संस्थाओं की प्रकृति में आए बदलावों को जान सकेंगे;
- युद्ध के कारण हुए व्यापक विध्वंस, नर-संहार और घर बार छूटने की प्रकृति को जान सकेंगे;
- एकल, अबाधित प्रक्रिया के रूप में दो विश्व युद्धों के बीच की निरंतरता को समझ सकेंगे; और
- विचारधारात्मक आधारों पर खेमों में विभाजित समूहों के बारे में जान सकेंगे।

31.1 प्रस्तावना

दो साथ-साथ चल रही प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप आधुनिक युद्ध प्रणाली की प्रकृति निर्धारित हुई। इसमें आधुनिक राजनीति के उदय का बहुत बड़ा योगदान था जिसके कारण किसी खास विचार, उद्देश्य या नीति

केंद्र में रखकर जनता को लामबंद किया गया था। 'युद्धरत राष्ट्र' के विचार या फ्रांसीसी क्रांति में अनिवार्य सैनिक भर्ती में इसी विचार का प्रतिफलन हुआ था। 'युद्ध के जनतांत्रीकरण' के कारण युद्ध जनता ा युद्ध में बदल गए जिसमें सैनिक रणनीति के तहत नागरिक और नागरिक जीवन को भी निशाना बनाया गया। आधुनिक युद्ध प्रणाली को प्रभावित करने में औद्योगिक अर्थव्यवस्था का भी प्रमुख हाथ था जिसके कारण व्यापक पैमाने पर युद्ध लड़ने के लिए संसाधन, संगठनात्मक तकनीक और बड़े पैमाने पर युद्ध लड़ने के लिए प्रेरणा के तरीके भी उपलब्ध कराए गए और इस प्रकार युद्ध पूर्ण युद्ध में परिवर्तित हो गया अर्थात पूरा औद्योगिक समाज युद्ध में शामिल हो गया। अमेरिकी गृह युद्ध (1861-65) ऐसा पहला आधुनिक युद्ध था जिसमें 20वीं शताब्दी के दौरान पूरी दुनिया में आने वाले समय में होने वाले टकरावों की प्रकृति और स्वरूप की झलक मिलती है।

31.2 पूर्ण युद्ध की धारणा और इसके प्रभाव

19वीं और 20वीं शताब्दी में युद्ध के स्वरूप में परिवर्तन आया। इससे पहले पेशेवर सैनिक समूह अपनी निपुणता या अपने युद्ध कौशल के आधार पर युद्ध में भाग लेते थे; अब हथियार बनाने में औद्योगिक संसाधनों की पूर्ण लामबंदी की गई और समस्त औद्योगिक समाज पूर्ण रूप से पूरी दुनिया में सैनिक और असैनिक ठिकानों को मशीनी हथियारों से लैस फौज के द्वारा निशाना बनाने लगा। सम्पूर्ण विनाश करने हेतु हथियार बनाने के लिए वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी तथा इन हथियारों के उपयोग द्वारा शत्रु देशों को पूर्ण रूप से नष्ट करने तथा इस पृथ्वी पर मानव जाति के जीवन को खतरे में डालने के प्रयास किए गए। 1907 में विभिन्न शक्तियों के बीच समझौता करने के लिए हेग (1907) में अन्तरराष्ट्रीय मध्यस्थता अदालत की स्थापना की गई। परंतु प्रमुख शक्तियों के बीच हथियारों की होड़ चलती रही। निजी उद्यमों के लाभ कमाने की मंशा ने भी आग में घी का काम किया। जर्मनी में क्रुप, ब्रिटेन में विकर्स-आर्मस्ट्रांग, फ्रांस में श्नेडर-क्रेसोट, आस्ट्रिया में स्कोदा और रूस में प्युटिलोफ ऐसी ही कुछ निजी उद्यम थे जिन्हें 'मौत के सौदागर' के नाम से जाना जाता था। इस युग के अति राष्ट्रीयतावाद ने भी बढ़ते सैन्यवाद को मदद पहुंचाई।

31.2.1 लंबे समय तक युद्ध करने की सामर्थ्य पाने के लिए अपनाई गई खंदक युद्ध प्रणाली

जिस समय प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ उस समय अधिकांश राजनीतिज्ञों और लोगों को लग रहा था कि यह युद्ध ज्यादा दिन तक नहीं चलेगा और जल्द ही समाप्त हो जाएगा। लेकिन जल्दी ही एक ऐसी स्थिति सामने आई कि यह युद्ध लंबा खिंचने लगा। स्वीटजरलैंड से लेकर उत्तरी सागर तक फैले 600 मील लंबे पश्चिमी सीमांत में खंदक युद्ध प्रणाली शुरू हो गई। इस लंबे सीमांत पर चल रहे युद्ध के कारण स्थानीय, छोटे स्तर पर और प्रतिबंधित युद्ध प्रणाली का अन्त हो गया। वस्तुत: 18वीं शताब्दी की प्रतिबंधित युद्ध प्रणाली निरंकुश और वंशानुगत व्यवस्था का हिस्सा थी। यह सामंती यूरोप के सैन्य संगठन का बचा हुआ अंश था जिसमें सेना का नेतृत्व सामंत किया करते थे। अब लाखों लोग रेत की बोरियां सामने रखकर और खंदक खोदकर एक दूसरे पर आक्रमण करते थे तथा चूहे और जूं के साथ उनकी जैसी जिंदगी बिताते थे। टेढ़े-मेढ़े, लकड़ी से और रेत के बोरे से ढके खंदकों के बाहर कंटीले तारों के जाल और सैनिकों के छिपने के लिए इधर-उधर फैले ढके हुए गड्ढे बनाए गए।

अक्सर, खंदक में कई सतहें होती थीं। शत्रु सेनाओं द्वारा प्रयोग की गई भारी तोप और मशीनगन की गोलाबारी से आगे बढ पाना लगभग असंभव था। इस गतिरोध को तोड़ने के लिए प्रत्येक पक्ष अपना युद्ध-उत्पादन बढ़ाना चाहता था। इसके कारण मानव और औद्योगिक संसाधनों की पूर्ण लामबंदी आवश्यक हो गई। युद्ध राष्ट्रीय संसाधनों रूपी औद्योगिक ताकत और आपूर्ति क्षमता के पूरे इस्तेमाल के लिए होड़ में तबदील हो गया जिसमें इस बात का ज्यादा महत्व ा गया कि किसमें लंबे समय तक युद्ध करने की सामर्थ्य है। इसके लिए युद्धरत राज्यों के लोगों के पूरे जीवन और अर्थव्यवस्था को युद्ध की तैयारी और युद्ध लड़ने में झोंकने की आवश्यकता थी। युद्धरत राष्ट्रों के सभी वर्गों और समूहों में व्यक्तिगत लगाव की भावना उजागर करने की जरूरत पड़ी क्योंकि जनता युद्ध का निशाना बनने लगी। वेडरन के युद्ध (फरवरी-जुलाई 1916) में, जिसमें जर्मनी ने सफलता प्राप्त करने की कोशिश की, दो लाख लोग शामिल हुए थे और इसमें एक लाख लोग मारे गए थे। वेडरन में किए गए आक्रमण को रोकने के लिए ब्रिटेन ने सोम्मे पर हमला किया। इसमें 420,000 ब्रिटिश लोग मारे गए।

इस युद्ध में ब्रिटिश तोप तथा टैंकों का प्रयोग करने वाले सेना के अंग को 23,000 टन प्रक्षेपक उपलब्ध कराया गया था जबकि वाटरलू के प्रसिद्ध युद्ध में मात्र 100 टन प्रक्षेपकों का इस्तेमाल हुआ था। येपरस का तीसरा युद्ध (1917) 19 सालों तक चला। इसमें ब्रिटेन ने 43 लाख बम के गोले बरसाए जिनका वजन 107,000 टन था और जिन्हें 55,000 मजदूरों ने एक साल की कड़ी मेहनत के फलस्वरूप बनाया था। यह युद्ध यूरोप तक सीमित था परंतु संसाधन इतनी तीव्रता से समाप्त हुए कि यूरोपीय शक्तियों को पूरी दुनिया से आपूर्ति की वस्तुएं मंगानी पड़ी।

31.2.2 नौसेना नाकाबंदी और पनडुब्बी युद्ध

युद्ध के समय दार्शनिक कार्ल वॉन क्लास्विज ने युद्ध को 'सीमाओं का अतिक्रमण कर की गई हिंसा' के रूप में परिभाषित किया था। पूर्ण युद्ध के युग में 'असैनिक' और 'सैनिक' ठिकानों और खर्चों में कोई अंतर नहीं रह गया था। युद्ध के हथियारों और रोजमर्रा की जरूरत की वस्तुओं का महत्व बढ़ा क्योंकि खंदक में रहने वाले सैनिकों के लिए अनवरत समान की आपूर्ति की जरूरत थी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान 'घरेलू मोर्चा' मुहावरा काफी प्रचलित हो गया था। सैन्य रणनीति के तहत सबसे पहले दुश्मनों के आपूर्ति स्रोत और मार्ग पर हमला किया जाता था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान नौसैनिक नाकाबंदी और अप्रतिबंधित पनडुब्बी युद्ध प्रणाली युद्ध के आर्थिक पहलू को दर्शाती है। इसके बाद द्वितीय विश्व युद्ध में नागरिकों पर बम गिराए गए और दुश्मन के पूरे समाज का विनाश करने का प्रयास किया गया।

मित्र राष्ट्रों ने केंद्रीय शक्तियों (जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी) और उनके युद्धरत साथियों जैसे तुर्की और बुल्गारिया की नौसैनिक नाकाबंदी करने का प्रयास किया। यह नाकेबंदी असफल रही क्योंकि केंद्रीय शक्तियों को कुछ तटस्थ देशों से सामानों की आपूर्ति होती रही। जर्मनी ने अपनी –यू नौकाओं–पनडुब्बियों से अक्टूबर 1914 में मित्र राष्ट्रों के व्यापारिक जहाजों पर आक्रमण किया। 1915-17 में यह आक्रमण और तेज हो गया। 1915 के मध्य तक मित्र राष्ट्रों के जहाजों के डूबने का औसत 116,000 टन (भार के हिसाब से) था जो अप्रैल 1917 में बढ़कर 866,000 टन हो गया। इस प्रकार संसाधनों के नुकसान से अधिक राजनैतिक आघात पहुंचा तथा अमेरिका ने जहाजों के डुबोए जाने पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की। मित्र राष्ट्रों ने भी पनडुब्बियों का मुकाबला करने का तरीका निकाला। रक्षा व्यवस्था शुरू की गई, जहाजों का उत्पादन बढ़ाया गया और जहाजों की आवागमन गतिविधियों के बीच बेहतर तालमेल और प्रंबधन स्थापित किया गया।

31.2.3 द्वितीय विश्व युद्ध में लामबंदी की प्रकृति

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान औद्योगिक लामबंदी की प्रकृति बिलकुल बदल गई। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जहां कुछ क्षेत्रों में ही व्यापक स्तर पर उत्पादन शुरू हुआ था वहीं दूसरे विश्व युद्ध में लगभग सभी उद्योगों को शामिल कर लिया गया। युद्ध में काम आने वाले इंजन, टैंक, वायुयान, रडार आदि में उच्च तकनीक का प्रयोग किया गया था और ये संवेदनशील थे। इसके लिए अलग-अलग समय तालिकाओं और प्राथमिकताओं के अनुसार लाखों की संख्या में बड़े पैमाने पर उत्पादन की जरूरत थी जिसके लिए एक बृहद व्यवस्था और प्रणाली की आवश्यकता थी। ये प्राथमिकताएं तकनीकी विकास और युद्ध रणनीति के अनुसार बदलती रहती थीं। इन्हें केवल राज्यों द्वारा आर्थिक विकास के उच्च स्तर की स्थिति में ही योजनाबद्ध तरीके से बनाया जा सकता था। 1933-38 के दौरान विश्व की सभी शक्तियां सेना पर काफी धन खर्च कर रही थीं। जर्मनी और सोवियत संघ ने क्रमश: 28680 लाख तथा 28080 लाख खर्च किया था। जापान (12660 लाख), यूनाइटेड किंगडम (12000 लाख) और संयुक्त राज्य अमेरिका (11750 लाख) भी इस प्रक्रिया में बहुत पीछे नहीं थे। पूर्ण युद्ध के युग में 'सैनिक' और 'असैनिक' निवेशों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं था। युद्ध शुरू होने पर सभी प्रकार के उत्पादनों का रुख युद्ध की ओर किया गया। 1944 के अंत में मित्र राष्ट्रों ने मिलकर 180000[illegible] लाख गोलों का निर्माण किया था। केंद्रीय शक्तियों ने 1000000 लाख गोले बनाए थे। युद्ध के पांच वर्षों [illegible] अमेरिकी अर्थव्यवस्था ने 300000 सैनिक वायुयान और 86,700 टैंक बनाए थे। जर्मनी ने इसी अवधि [illegible] 44,857 टैंक और बंदूकें तथा 1933-44 के दौरान 111767 वायुयान बनाए थे। ब्रिटेन ने सितम्बर 19[illegible] और जून 1945 के बीच 123819 सैनिक वायुयानों का उत्पादन किया था। सोवियत संघ ने युद्ध के दौरा[illegible] 136800 वायुयान, 102500 टैंक और स्वचालित बंदूकें बनाई थीं। 1943-44 में विश्व के कुल उत्पादन [illegible] एक तिहाई हिस्सा युद्ध के लिए काम आने वाली वस्तुओं के उत्पाद में लगा दिया गया। सशस्त्र सेना [illegible] आधुनिकीकरण, रख रखाव तथा वृद्धि रूपी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था और नागरिक जीव[illegible]

को अनिवार्य रूप से सेना के लिए लामबंद करना जरूरी हो गया था। आधुनिक युद्ध प्रणाली में सभी नागरिक युद्ध में शामिल हो जाते हैं और उनमें से अधिकांश को लामबंद किया जाता है। युद्ध हथियारों से लड़ा जाता है इसलिए इनके उत्पादन का दायित्व पूरी अर्थव्यवस्था पर डाल दिया जाता है और भारी मात्रा में इनका उत्पादन किया जाता है। इन कारखानों या इनमें काम करने वाले लोगों का विध्वंस करना 'वैध' माना जाता है। कार्यशालाओं और कृषि क्षेत्र में उत्पादन में कमी लड़ाई के मैदान में हार से जुड़ी थी। सैन्य रणनीति के क्रूर तर्क के अगले स्वाभाविक चरण के रूप में शहरों में निहत्थे नागरिकों पर बड़े पैमाने पर बम गिराए गए।

बड़े पैमाने पर सशस्त्र लामबंदी की गई। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अधिकांश शक्तियों ने लगभग 20% संसाधनों का उपयोग किया। यह लामबंदी कुछ वर्षों तक चली। इससे स्त्री रोजगार के क्षेत्र में एक तरह की सामाजिक क्रांति आ गई क्योंकि महिलाएं भी घर से बाहर निकलकर उत्पादन की प्रक्रिया में शामिल हो गईं। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान यह प्रवृत्ति थोड़े समय के लिए रही। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान इसमें स्थायित्व आ गया। केवल जर्मनी में महिलाओं को घर से बाहर मजदूरी करने की अनुमति नहीं थी क्योंकि नाजी राज्य का सैद्धांतिक मत था कि महिलाएं अपने घर से बाहर काम करने के योग्य नहीं थीं (देखिए खंड 7 इकाई 27)

जर्मनी में युद्ध से जुड़ी उत्पादन प्रक्रियाओं और उद्योगों में लगभग 150 लाख दास मजदूर काम कर रहे थे जो पराजित देशों से थे। इस युद्ध का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी था कि इस युद्ध में कोई पक्ष या तो पूरी तरह हारता था या जीतता था। इससे पहले युद्ध किसी खास या सीमित उद्देश्यों के लिए लड़े जाते थे। परंतु दोनों विश्व युद्धों में लक्ष्यों की कोई सीमा नहीं थी। दूसरे विश्व युद्ध में प्रयुक्त 'बिना किसी शर्त के आत्म समर्पण' का मुहावरा इसी का प्रतिफलन था। इसी कारण से उत्पादन के सभी संसाधनों को पूर्ण युद्ध में झोंक दिया गया। ये संसाधन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं एवं सहयोगी अर्थव्यवस्थाओं दोनों से लिए गए। इसकी पुष्टि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के उदाहरण से की जा सकती है। हालांकि इसके पूरे संसाधन हथियारों के उत्पादन में लगे हुए थे। परंतु इसके बावजूद इसकी जरूरतों की पूर्ति नहीं हो पा रही थी और इसे अस्त्रों की पूर्ति के लिए अमेरीका पर निर्भर रहना पड़ रहा था जो खुद को गर्वपूर्वक 'प्रजातंत्र का शस्त्रागार' मानता था। संयुक्त राज्य अमेरीका ने मित्र राष्ट्रों से हुए शस्त्र संबंधी सभी अनुबंधों पर सभी प्रकार के प्रतिबंध हटा दिए। उधार-पट्टे रूपी समझौते के तहत तुरंत राशि भुगतान जैसे प्रतिबंधों को भी हटा दिया गया।

31.3 जन-हत्या के लिए अपनाई गई परिष्कृत प्रौद्योगिकी

19वीं और 20वीं शताब्दी में हथियार बनाने के लिए औद्योगिक और तकनीकी साधनों का प्रयोग किया गया ताकि ये अधिक से अधिक विनाश कुशलता से पूरे विश्व में दूर-दूर तक कर सकें।

31.3.1 तोप तथा टैंकों का प्रयोग करने वाला सशस्त्र सेना का एक अंग

19वीं शताब्दी के अंत तक युद्ध हथियार बनाने में ब्लैक पाउडर का इस्तेमाल किया जाता था। इसके बाद से नाइट्रोसेल्यूलस का इस्तेमाल किया जाने लगा गया जो 'बारूदी रूई' के नाम से प्रसिद्ध था। इससे ब्लैक पाउडर की तुलना में तीन गुनी ऊर्जा पैदा होती थी। यह नमी से खराब नहीं होता था और इसे जलाने पर खूब धुंआ निकलता था जिसके कारण बंदूक की नली में कम गंदगी बैठती थी। इसके अलावा बंदूकों तथा उससे चलाई जाने वाली गोली के स्वरूप में भी काफी तकनीकी सुधार हुआ। एलफर्ड क्रुप (1951) ने पूर्णतः इस्पात की बंदूकें बनाई जिसे एक ही सांचे में ढाला गया था। 1860 ओर 1870 के दशक में नाल के पीछे से गोली डालने की तकनीक शुरू हुई जिसमें बीच से बंदूक को खोलकर उसमें गोली भरी जाती थी। इससे राइफल चलाने में भी सुविधा होती थी। इस विधि से निशाना भी अचूक लगता था। इस तकनीकी से लंबी गोली की क्षमता और मजबूती भी बढ़ी। इसकी हवा में मार करने की भी शक्ति बढ़ी क्योंकि इससे निकली हुई गोली हवा में तेजी के साथ बढ़ती थी। इसके अलावा बंदूक की तकनीक में सुधार लाया गया। इस सुधार के अन्तर्गत गोली छूटने के बाद फिर बंदूक अपने पहले की स्थिति में आ जाती थी। प्रथम विश्व युद्ध की खंदक युद्ध प्रणाली के कारण लंबी दूरी तक वार करने वाली और अचूक निशाने वाली भारी बंदूकें बड़ी संख्या में बनाई जाने लगीं। अब युद्ध में टोह लेकर दुश्मन के ठिकानों का पता लगाया जाता था। दुश्मन के ठिकानों का नक्शा तैयार करके सावधानीपूर्वक सोच समझ कर हमला किया जाता था। मोर्चे पर टेलीफोन और रेडियो के प्रयोग से भी तोपों

और मशीनों के कुशल प्रयोग में सहायता मिली। द्वितीय विश्व युद्ध में विमानभेदी तोपों को विकसित किया गया और इससे क्षति पहुंचाने की क्षमता बढ़ी। थल सेना और नौसेना में तोपों तथा मशीनों का प्रयोग करने वाले सेना के अंग की भूमिका कम होने लगी और बम गिराने वाले हवाई जहाजों का महत्व भी कम हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हल्की और इधर-उधर ले जाने वाली बंदूकों और तोपों की अधिक मांग हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उपयोग में लाई गई कुछ प्रमुख विमानभेदी तोपों के नाम इस प्रकार है : अमेरिका और इंग्लैंड की 40 मी.मी. बोफोर्स तोप, सोवियत एम–1939 37 मी.मी. तोप और जर्मन 88 मी.मी. तोपें। हथियारभेदी हथियारों (शस्त्र) के विकास से टैंकों के प्रयोग में बाधा पहुंची।

31.3.2 पैदल चलने वाला सशस्त्र सेना का अंग

अमेरिका की गैटलिंग गन और फ्रांसीसी मित्राल्यूस आरंभिक मशीनगनें थीं। प्रथम विश्व युद्ध में भारी मशीनगनों का निर्माण हुआ। हिराम स्टीवेन्स मैक्सेम ने पहली बार सफलतापूर्वक स्वचालित मशीनगन का निर्माण किया। सबसे पहले 1895 में ब्रिटिश सेना ने इसका उपयोग किया और जापान युद्ध (1904-05) में इसका बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अपने बड़े आकार और वजन के कारण इसका उपयोग प्रतिरक्षा के लिए किया गया। फ्रांसीसी हॉचकिस गैस द्वारा संचालित तथा वायु से ठंडी होने वाली भारी मशीनगन थीं जबकि आस्ट्रिआई श्वार्जलोस का उपयोग करते थे। 1915 के बाद हल्की मशीनगन का निर्माण तथा उपयोग शुरु हुआ, जैसे ब्रिटिश लेविस गन, फ्रांसीसी शौशेट और अमेरिकी ब्राउनिंग स्वचालित राइफल। इन्हें आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सकता था। 1918 में लूइस शिमेसर नामक एक जर्मन व्यक्ति ने एक उपमशीनगन का निर्माण किया परंतु द्वितीय विश्व युद्ध में भारी मशीनगनों का ही इस्तेमाल होता रहा। हल्की मशीनगन जैसे जर्मन एम जी–34/42, सोवियत डेगट्रेव, ब्रिटिश ब्रेन और यूएस बीएआर प्रति मिनट 350-600 गोलियां बरसाती थीं। सब-मशीनगन जैसे जर्मन एम पी–38/40 सीरिज जो 'बर्प' बंदूकों के नाम से प्रसिद्ध थीं; सोवियत पीपीडी और पीपीएसएच अमेरिकी थॉमसन और ब्रिटिश स्टेन नामक हल्की मशीनगनों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद पूर्ण रूप से स्वचालित शस्त्रों जैसे हमला करने वाली राइफलों का निर्माण किया गया जिनमें सब-मशीनगन की वार करने की क्षमता और राइफल के अचूक निशाने जैसी तकनीकों का सम्मिश्रण था। इनमें जर्मन एमपी-44 और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सोवियत कलाशनिकोव और एके 47 प्रमुख थीं।

31.3.3 मशीनी युद्ध के अंतर्गत उभरे नए पहलू

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान टैंक, वायुया, पनडुब्बी, वायुयान वाहक पोत बनाए गए परंतु द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ही उनकी विनाश करने की क्षमता का पूरी तरह से प्रयोग हुआ। 20वीं शताब्दी के आरंभ में चक्केवाले हथियारबंद वाहनों के विकास के साथ-साथ टैंकों का भी विकास हुआ। इसके बाद खंदकों को तोड़ने वाले हथियारबंद वाहनों का विकास हुआ। 1915 में ब्रिटेन में पहली बार 'लिटिल विली' और 'विग विली' टैंकों का निर्माण किया गया। फ्रांसीसियों ने श्नेडर का निर्माण किया। 1917-18 में फ्रांस अमेरिका और इटली में पैदल चलने वाले सशस्त्र सेना के अंग की मदद के लिए हल्के और तीव्र गति से चलने वाले टैंकों का निर्माण किया गया। दो विश्व युद्धों के अंतराल के दौरान टैंकों या हथियारयुक्त टैंकों का उत्पादन हुआ। दो विश्व युद्धों के अंतराल के दौरान सोवियत संघ ने सबसे ज्यादा टैंकों का उत्पादन किया। 1930-39 के बीच 20 हजार टैंक बनाए गए जो 75-76 मी.मी. गनों से युक्त थे। 1939 में जर्मनी के पास केवल 3195 टैंक थे परंतु इन टैंकों को अलग-अलग यूनिटों में भेजने के बजाए उन्हें पैंजर डिविजन के अन्तर्गत एक ही साथ रखा गया जो द्वितीय विश्व युद्ध के प्रथम दो वर्षों में उसके शत्रुओं के लिए एक बड़ी चुनौती साबित हुआ। सोवियत रूस, ब्रिटेन, जर्मनी और अमेरिका में बड़े पैमाने पर टैंकों का उत्पादन किया गया। टैंकों ने युद्ध के मोर्चे पर गतिविधियों को बढ़ावा दिया और उसे लचीला बना दिया और दुश्मन के इलाके में तेजी से घुसकर वार करने की क्षमता बढ़ गई तथा नागरिकों के लिए यह विनाशकारी साबित हुआ। प्रथम विश्व युद्ध में पनडुब्बी भी बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाई गई। जर्मनी ने पानी के भीतर से वार करने वाले मिसाइलों या टोरपीडो का इस्तेमाल कर मालवाहक जहाजों को ध्वस्त किया। जर्मनी द्वारा एटलांटिक सागर में और अमेरिकी नौसेना द्वारा प्रशांत महासागर में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान बड़े पैमाने पर इनका इस्तेमाल किया गया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जर्मन यू-बोट (अन्डर सी-बोट) अत्यन्त हीं घातक सिद्ध हुई। नौसेना युद्ध में युद्ध अन्तराल के दौरान अमेरिकी नौसेना का एग्रोनॉट और दूसरे विश्व युद्ध में गाटो और बलाओ पनडुब्बियों ने निर्णायक भूमिका अदा की। संसाधनों के योजनाबद्ध उपयोग और रणनीति के संदर्भ में समुद्र पर नियंत्रण स्थापित करना

जरूरी हो गया था और इसलिए युद्धपोतों ने इसमें निर्णायक भूमिका अदा की। ब्रिटिश रॉयल नेवी ने 'ड्रेड नॉट' नाम का एक भारी जहाज बनाया। हालांकि लड़ाकू विमानों के आने के बाद नौसैनिक युद्ध का क्षेत्र और भी व्यापक हो गया। केवल प्रथम विश्व युद्ध में ही इसके कारण जहाज की वार करने की क्षमता और समुद्र के व्यापक क्षेत्र पर नजर रखने की क्षमता बढ़ गई। इस प्रकार विमान वाहक युद्धपोतों का युग शुरू हुआ। हालांकि इन युद्धपोतों से पूरी लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती थी। आधुनिक नौसैनिक युद्ध में समुद्र पर नियंत्रण रखने का मतलब यह था कि समुद्र के ऊपर वायु में और समुद्र के नीचे भी नियंत्रण रखा जाए। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका का 27,500 टन एसेक्स कैरियर प्रमुख विमान वाहक युद्धपोत था जो 100 विमानों को ढो सकता था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान प्रशांत महासागर में यह अमेरिका का प्रमुख युद्धपोत था। इसी प्रकार पर्ल हार्बर (1941) और कोरल समुद्र के युद्ध (मई 1942) में जापान के युद्धपोतों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

31.3.4 सेना वैमानिकी पूर्ण युद्ध के काल में

पूर्ण युद्ध के युग में उन सभी आविष्कारों और खोजों को जो युद्ध के लिए संसाधन विकसित करने में प्रयुक्त हो सकते थे उनका इस्तेमाल किया गया। प्रथम विश्व युद्ध में प्रारंभिक तौर पर जर्मनी के जेपलिन नामक लड़ाकू विमानों का उपयोग किया गया। परंतु यह बहुत प्रभावी साबित नहीं हुआ। जर्मन जेपलिन ने 1915 से लेकर अगस्त 1918 तक 51 हवाई हमले किए और कुल 196.5 टन के 5,806 बम गिराए। इन हवाई हमलों में केवल 557 लोग मारे गए और 1,358 घायल हुए। युद्ध के दौरान फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, इटली और अमेरिका ने वायुयानों के बड़े दस्ते बनाए। युद्ध अंतराल के युग में इंजनों में काफी सुधार किया गया और उन्हें एयरकूल के स्थान पर लिक्विड कूल बनाया गया। इसके अलावा इनमें ऊपरी आवरण के तौर पर लकड़ी के स्थान पर धातु का उपयोग किया जाने लगा। लड़ाकू विमानों के इंजन के डिजाइन बनाने और बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली प्रमुख कम्पनियां इस प्रकार थीं: जर्मनी की डेवलर-बेंज, अमेरिका में जेनरल मोटर्स का एलिसन डिविजन, ग्रेट ब्रिटेन में रायल्स राय और नेपियर। लड़ाकू विमानों में भी सुधार किया गया। 1931 में बोइंग एयर काफ्ट कम्पनी ने बी 9 नामक बोम्बरों का निर्माण किया। इसे आधुनिक लडाकू विमानों का प्रारंभिक स्वरूप माना जा सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध में बड़ी संख्या में लड़ाकू विमानों, बोम्बरों (हल्के, मध्यम और भारी) और मालवाहक जहाजों के लिए वायुयानों का उत्पादन किया गया। इन बोम्बरों से बड़े पैमाने पर विध्वंस होता था ओर यह दुश्मन के ठिकानों का विनाश कर देते थे। हालांकि हवाई जहाज से नागरिक ठिकानों पर बम गिराया जाना काफी भयानक और डरावना होता था परंतु इसमें भी खंदक युद्ध प्रणाली का हवाई स्वरूप सिद्ध हुआ जिसमें जान-माल की अपेक्षाकृत कम हानि होती थी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुई कुल मौतों में से मात्र 3 % मौतें हवाई जहाज से बम गिराए जाने की वजह से हुई थीं और यह तरीका दुश्मनों के शस्त्र उत्पादन उद्योगों को नष्ट करने में पूरी तरह असफल रहा और जल्द ही यह बहुत मंहगा साबित हुआ। अप्रैल 1942-45 के बीच 593,000 जर्मन मारे गए और जर्मनी में 33 लाख घर नष्ट हुए। परमाणु बम सैन्य दृष्टि से लक्ष्य को प्राप्त करने की रणनीति का एक अपेक्षाकृत कम खर्चीला साधन था।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान युद्ध से जुड़ी यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं ने भी अमेरिका की व्यापक-उत्पादन की व्यवस्था का अनुगमन किया। बड़ी तादाद में मानकीकृत अन्तरपरिवर्तनीय हिस्सों का निर्माण किया गया और फिर अंतिम उत्पाद कई हिस्सों को जोड़कर तैयार किया गया । यह बड़ी ही अजीब बात है कि उत्पादन की यह व्यवस्था सबसे पहले 1860 के दशक में किनसिनाटी और शिकागो के बूचड़खाने में शुरू की गई थी।

31.3.5 रासायनिक युद्ध

जर्मनी ने फ्रांसीसी और अल्जिरियाई क्षेत्रीय सेना के खिलाफ 22 अप्रैल 1915 को येप्रेस के 6 किलोमीटर के मोर्चे पर क्लोरिन का उपयोग किया था। बाद में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान फोसजिन और मस्टर्ड गैस का भी प्रयोग किया गया था। परंतु बेहतर गैस मास्क और रसायन के दुष्प्रभाव से रक्षा करने वाले कपड़ों के निर्माण से रासायनिक युद्ध प्रणाली का प्रभाव कम हो गया था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान लगभग 100,000 टन रासायनिक पदार्थों का उपयोग हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रासायनिक हथियार जुटाए गए थे। परंतु उनका उपयोग नहीं किया गया। सैन्य दृष्टि से इनके निष्प्रभावी होने और दूसरों द्वारा भी इनके प्रयोग किए जाने के भय से इनका प्रयोग नहीं किया गया।

बोध प्रश्न 1

1) पूर्ण युद्ध से आप क्या समझते हैं ? सैनिक रणनीति को इसने किस प्रकार प्रभावित किया? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) मशीनी युद्ध प्रणाली के क्षेत्र में प्रयोग हुई परिष्कृत प्रौद्योगिकी की सूची बनाइए। इन तकनीकों ने युद्ध की प्रकृति को किस प्रकार परिवर्तित किया ? अपना उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित में से कौन से वक्तव्य सही (/) और कौन से गलत (X) हैं – निशान लगाइए।

i) प्रथम विश्व युद्ध के दौरान खंदक युद्ध प्रणाली जमीन पर पूर्ण युद्ध को परिलक्षित करती थी।

ii) औद्योगीकरण ने सैनिक रणनीति को प्रभावित नहीं किया।

iii) आधुनिक व्यापक युद्धों में 'नागरिक' और 'सैनिक' ठिकानों का अन्तर समाप्त हो गया।

iv) द्वितीय विश्व युद्ध में नागरिक ठिकानों पर बड़े पैमाने पर बम गिराया जाना निर्णायक साबित हुआ।

v) नैतिक/कानूनी कारणों से विश्व युद्धों में रासायनिक हथियारों का उपयोग सीमित रहा।

31.4 परमाणु हथियार : पूरी दुनिया को नष्ट करने के लिए तकनीकी सामर्थ्य की प्राप्ति

परमाणु बम का बनना, सन 30 के दशक में आधुनिक भौतिकी में हुई कुछ विशेषज्ञ खोजों के कारण संभव हुआ। इनमें प्रमुख हैं कृत्रिम रेडियोएक्रिवता की खोज और अमेरीकी वैज्ञानिक एनरिको फर्मी के प्रयोग। अपने प्रयोग में एनरिको फर्मी ने जब यूरेनियम नाभिक पर कम वेग वाले न्यूट्रॉनों से बमबारी की तो उन्होंने पाया कि यूरेनियम नाभिक का विखण्डन हो गया और बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा निकली। नाभिकीय विखण्डन (nuclear fission) की यह प्रक्रिया परमाणु बम के निर्माण का आधार बनी। संयुक्त राज्य अमेरीका द्वितीय विश्व युद्ध में दिसंबर 1941 से सक्रिय हुआ और तभी से परमाणु बम के निर्माण के लिए मैनहैटन परियोजना शुरू की गई। कर्नल लेसली ग्रोव्ज मैनहैटन इंजीनियर जिले के प्रमुख बने। अक्टूबर 1942 को, इस योजना का पुनर्गठन हुआ और वैज्ञानिक जे. रॉबर्ट ओपेनहाइमर प्रोजेक्ट Y नामक समूह के निदेशक बने। यही वह समूह था जिसने परमाणु बम को डिजाइन किया।

परमाणु बम के पीछे प्रमुख सिद्धांत यह था : यूरेनियम, प्लूटोनियम जैसे कुछ नाभिकों की विखण्डन प्रक्रिया में अत्यधिक ऊर्जा के साथ-साथ न्यूट्रॉन भी निकलते हैं। इनमें से कुछ न्यूट्रॉन अन्य नाभिकों का विखण्डन करते हैं। अब सवाल यह था कि यूरेनियम या प्लूटोनियम की कितनी मात्रा होनी चाहिए कि उनके विखण्डन में इतने ज्यादा न्यूट्रॉन उत्पन्न हो कि वह प्रक्रिया लगातार चलती रहे। मैनहैटन योजना में 1944 तक इस विशेष मात्रा की खोज और इस प्रक्रिया के नियंत्रण पर लगभग 1 अरब डॉलर खर्च किए जा रहे थे। जुलाई 1945 में, दक्षिण केंद्रीय न्यू मेक्सिको में प्लूटोनियम के विखण्डन पर आधारित परमाणु बम का परीक्षण किया गया। 6 अगस्त, 1945 को 8.15 प्रात: स्थानीय समय पर हिरोशिमा पर, इनोला ग्रे नामक अमेरीकी बी-29 बॉम्बर हवाई जहाज उड़ा। इस जहाज से लिटिल बॉय नामक एक यूरेनियम बम का शहर से 1900 फीट ऊंचाई पर विस्फोट किया गया ताकि अधिकाधिक विनाश हो सके।

इस बम में 130 पाउन्ड से भी कम यूरेनियम के इस्तेमाल से इतनी ऊर्जा निकली जो टी.एन.टी. नामक रासायनिक विस्फोटक की 15000 टन मात्रा से निकलती है। इसके परिणाम घनघोर विनाशकारी थे।

31.5 सैनिक संस्थाओं और प्रशासनिक तंत्र में बदलाव

बड़े पैमाने पर हुए युद्ध के कारण उत्पादन संगठन और प्रबंधन को भी व्यापक बनाने की जरूरत पड़ी। यहां तक कि मनुष्य जीवन को नष्ट करने की प्रक्रिया को भी एक व्यवस्थित रूप दिया गया। जर्मनी के यातना शिविर इसके प्रमाण थे।

नए सैनिक उद्यमों में बड़े औद्योगिक उद्यमों की कई विशेषताएं शामिल हो गईं। इसमें आधुनिक व्यापार के तरीके, कार्यक्रम संगठन, रिकॉर्ड रखने की व्यवस्था, मूल प्रति की नकल करने की व्यवस्था, अलग-अलग खानों में विभक्त करने की व्यवस्था की गई। इसके अलावा संचार के विभिन्न साधनों और उन सभी तंत्रों का इस्तेमाल किया गया जो एक बड़े उद्योग चलाने के लिए जरूरी थे। इस प्रकार सैनिक रणनीति के प्रबंधन में एक प्रकार का व्यापारिक नेतृत्व सामने आया जिसमें बड़े व्यापार निगम की कई विशेषताएं शामिल थीं। मशीनी युद्ध प्रणाली और तात्कालिक संचार व्यवस्था, जो कि प्रौद्योगिकी और व्यवस्थागत संसाधनों का उपयोग जैसे पहलुओं को प्रतिबिंबित करते थे, के कारण सैन्य कार्य प्रणाली नौकरशाही द्वारा संचालित होती रही और दैनिक कार्यकलापों नियमों, कानूनों में बंधती चली गई। सेनाधिकारी वस्तुत: 'हिंसा के प्रबंधक' बन गए। सेना में बड़े पैमाने पर हुई लामबंदी के कारण उसमें युद्ध करने वालों की तुलना में युद्ध न करने वाले कार्मिकों के प्रतिशत में भी अंतर आया। सामान जुटाने, आपूर्ति करने, संचार व्यवस्था जुटाने आदि से जुड़े कार्मिकों की संख्या बढ़ी। उदाहरण के लिए 1945 में कुल अमेरीकी सेना में ऐसे कार्मिकों की संख्या 45% थी। इसके अलावे युद्धरत आधुनिक समाज में डिपो, अस्त्रागारों और कारखानों को चलाने के लिए नागरिक कामगारों और विशेषज्ञों की जरूरत थी। संसाधन और उत्पादन के कारकों को दिशा निर्देश देने के लिए नए प्रशासनिक नियंत्रण से संबंधित उपाय लागू किए गए।

अधिकांश युद्धरत देशों में बाजार व्यवस्था को बाजार के रूझानों से अलग कर दिया गया और उस पर नियंत्रण स्थापित किया गया। पूरी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को युद्ध उत्पादन की प्राथमिकताओं और आवश्यकताओं के अनुसार ढाला गया। अब युद्ध केवल कुछ वित्त जुटाने तक ही सीमित नहीं रह गया बल्कि इसमें सभी आर्थिक संसाधनों को जुटाने की बात की जाने लगी। मूल्यों, मजदूरी, करों और ऋणों जैसे वित्तीय नियंत्रण के उपाय तो किए ही जा रहे थे परंतु इसके साथ-साथ उत्पादन की अधिक से अधिक शाखाओं को प्रशासनिक नियोजन और नियंत्रण के अधीन लाया गया। उत्पादन प्राथमिकताओं का निर्धारण केंद्रीय प्रशासनिक एजेंसियों को करना था [जैसे अमेरीका में युद्ध उत्पादन बोर्ड (1942), या युद्ध लामबंदी कार्यालय (1943-45) , जर्मनी में युद्ध उत्पादन मंत्रालय (1943-44) और नवम्बर 1943 के बाद जापान में शस्त्र मंत्रालय] । अब सरकारी प्रशासन में अर्थशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, सांख्यिकीविदों, इंजीनियरों और व्यापारियों जैसे नए विशेषज्ञों की भी जरूरत थी।

अर्थव्यवस्था के बारे में सही-सही जानकारी प्राप्त करने और प्राथमिकता के आधार पर निर्णयों को लागू किए जाने के लिए बृहद प्रशासनिक संगठनों की आवश्यकता थी। जनतांत्रिक देशों में भी प्राथमिकताओं का निर्धारण नौकरशाही करने लगी। एक प्रकार के आर्थिक निर्णयों के लिए एक ही प्रकार के प्रशासनिक समाधान किए जाने लगे। युद्ध के कारण 'सेना-उद्योग परिसर' का विकास हुआ जो सेना, उद्योग, बैंकिंग, श्रम

शैक्षिक क्षेत्र के संभ्रांत लोगों का मिला जुला रूप था। इनका काम हथियारों के लिए बाजार ढूंढना तथा पूरी दुनिया में अर्थव्यवस्था का विस्तार करना था। 1900 के बाद से अधिकांश औद्योगिक राज्यों में सेना, उद्योग और राजनीतिज्ञों के बीच आपसी सहयोग और हितों की परस्पर निर्भरता देखी जा सकती थी। सैनिक शक्ति बढ़ने से राजनीतिज्ञों को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बल मिला, उद्योगपतियों को भारी मुनाफा हुआ और सत्ता के नजदीक आने का मौका मिला तथा सैन्य कार्यक्रम के हिस्से के रूप में वैज्ञानिकों को शोध परियोजनाओं के लिए धन मिला। सेना के कार्मिकों ने नए उत्पादों की मांग की और नई प्रौद्योगिकी की उपलब्धता के कारण नई युद्ध योजनाएं बनाने का अवसर प्राप्त हुआ। अन्ततः मजबूत सैन्य उद्योगों के कारण मंदी के दौर में भी काफी लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ। युद्ध ने अस्त्र निर्माण के बड़े कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया और इसके लिए वित्त की उपलब्धता कराई।

31.6 पूर्ण युद्ध के परिणाम

युद्ध ने भारी तबाही मचाई और जान-माल की काफी हानि हुई। इससे पहले कभी भी एक घटना में इतने लोग नहीं मारे गए थे। इस युद्ध में जितना व्यापक विध्वंस और नर-संहार हुआ था जितने लोग एक साथ बेघर हुए थे उतना पहले कभी नहीं हुआ था।

31.6.1 व्यापक विध्वंस

पूर्ण युद्ध के दौरान व्यापक पैमाने पर विजिताओं और पराजिताओं दोनों के जान-माल की व्यापक हानि हुई और इससे उनकी उत्पादन क्षमता पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान युद्ध और उससे जुड़े कारणों से लगभग 80 लाख से ज्यादा लोग मारे गए। द्वितीय विश्व युद्ध में अनुमानतः प्रथम विश्व युद्ध की तुलना में 3 से 5 गुना लोग मारे गए। यह संख्या इतनी ज्यादा थी कि सही संख्या का अनुमान लगाना बेमानी हो गई। द्वितीय विश्व युद्ध में लगभग 51 लाख यहूदियों को बलि पर चढ़ा दिया गया। दूसरे विश्व युद्ध में सोवियत संघ, पोलैंड और युगोस्लाविया की कुल जनसंख्या के लगभग 20% लोग मारे गए। जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया, हंगरी, जापान और चीन के 4 से लेकर 6% लोग मारे गए। ब्रिटेन और फ्रांस में केवल 1% लोग मारे गए। उत्पादन क्षमता में भी भारी कमी आई। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सोवियत संघ में युद्ध से पूर्व की पूंजी में लगभग 20%, जर्मनी में 13%, इटली में 8%, फ्रांस में 7% और ब्रिटेन में 3% की गिरावट आई। परंतु अमेरीकी अर्थव्यवस्था में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान प्रतिवर्ष 10% की दर से उछाल आया क्योंकि यह युद्ध क्षेत्र से दूर था और मित्र राष्ट्रों की अस्त्रों की बढ़ती मांग की पूर्ति यही कर रहा था। सोवियत संघ में काफी लोग मारे गए और काफी सम्पति का नुकसान हुआ। वहां 17,000 शहर और 70 हजार गांव या तो पूरी तरह नष्ट हो गए या उनको काफी नुकसान पहुंचा। कारखानों, रेल लाइनों, अस्पतालों, स्कूलों, पुस्तकालयों और सामूहिक खेतों को भी नुकसान पहुंचा। यूरोप और सुदूर पूर्व क्षेत्रों में अधिसंरचना को काफी नुकसान पहुंचा।

31.6.2 नर-संहार

पूर्ण युद्ध के दौरान पहली बार पूरी की पूरी आबादी को नष्ट करने के लिए आधुनिक तरीकों का इस्तेमाल किया गया। प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की ने असंख्य अर्मेनियाइयों (लगभग 15 लाख लोगों) की हत्या कर दी गई। इसी प्रकार के प्रयत्नों और संगठित समूहों खासकर सरकार द्वारा किसी खास राष्ट्रीय, राजनैतिक, जातीय या धार्मिक समूहों को योजनाबद्ध तरीके से मारने को नर-संहार की संज्ञा दी गई।

नवम्बर 1938 की रात 'टूटे शीशों की रात' (जर्मन में कृस्टैलनैच) साबित हुई और उस रात नाजियों ने लगभग 51 लाख यूरोपीय यहूदियों का कत्ल कर दिया। 9 नवम्बर 1938 की रात को भी यहूदियों की हत्या की गई और लगभग 20 से 30 हजार यहूदियों को यातना शिविरों में भेज दिया गया और उनके व्यावसायों को तथा प्रार्थना घरों को नष्ट कर दिया गया। पोलैंड, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, फ्रांस और सोवियत संघ के बड़े हिस्से पर जर्मनों का आधिपत्य हो जाने से और भी यहूदी नाजी नियंत्रण में आ गए। उन्हें गैस चैम्बरों में डालकर मारा गया। कारखानों में दास मजदूरों के रूप में काम कराया गया। उन्हें तरह-तरह की यातनाएं दी गईं। इस प्रकार तर्कसंगत नौकरशाही व्यवस्था द्वारा नाजियों पर अत्याचार किए गए।

31.6.3 बेघर होना

पूर्ण युद्ध न केवल हत्याओं का युग साबित हुआ बल्कि इस दौरान काफी लोगों को अपना घर बार छोड़ना पड़ा। प्रथम विश्व युद्ध के बाद बड़ी संख्या में लोग बेघर हुए और उनका देश उनसे छूट गया। रूसी क्रांति और उसके बाद हुए गृह युद्ध के दौरान लगभग 20 लाख लोग अपना घर बार छोड़ बैठे थे। 1 करोड़ 30 लाख ग्रीकों को तुर्की से निकालकर ग्रीस भेज दिया गया। 1914-22 के दौरान लगभग 40 से 50 लाख लोग शरणार्थी बन गए थे। लीग ऑफ नेशन्स ने एफ नानसेन की अध्यक्षता में एक शरणार्थी संगठन का गठन किया था जिसका उद्देश्य लोगों की सहायता करना था जिनका इस बढ़ते अधिकारतंत्रीय समाज में किसी राज्य में किसी अधिकारतंत्र के अन्तर्गत अस्तित्व नहीं था। 1920 के दशक में लीग ऑफ नेशन के शरणार्थी हाई कमीशन की संतुति पर राष्ट्रीय प्राधिकारों द्वारा एक सर्टिफिकेट जारी किया गया जिसे 'नानसेन पासपोर्ट' कहा गया। इस यात्रा दस्तावेज को 50 राष्ट्रों ने स्वीकार किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यूरोप में 4 करोड़ 50 लाख लोग बेघर हो गए थे ओर उनका देश उनसे छूट गया। इसमें जर्मनी में गैर जर्मन बेगार करने वाले श्रमिक और वे जर्मन शामिल नहीं थे जो सोवियत सेना के आने के पहले भाग गए थे। पोलैंड और सोवियत संघ के कब्जे वाले जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया और दक्षिणी पूर्वी यूरोप के हिस्सों से लगभग 1 करोड़ 30 लाख जर्मनों को निकाल बाहर किया गया। युद्ध से पैदा हुई स्थितियों जैसे भारत के विभाजन और कोरिया युद्ध से क्रमश: 1 करोड़ 50 लाख और 50 लाख लोग बेघर हुए। इजराइल की स्थापना जो युद्ध का ही एक परिणाम था से 13 लाख फिलिस्तिनी बेघर हुए।

बोध प्रश्न 2

1) पूर्ण युद्ध ने आर्थिक संगठन को किस प्रकार प्रभावित किया ? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) सैनिक-औद्योगिक समूह से आप क्या समझते हैं? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

31.7 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि आधुनिक युद्ध प्रणाली में व्यापक स्तर पर लामबंदी की गई। इसमें विचारधारात्मक प्रेरणा भी काम कर रही थी और नई प्रौद्योगिकी तथा तकनीकी में बदलाव से युद्ध प्रणाली में भी परिवर्तन आया। पूर्ण युद्ध की एक संकल्पना सामने आई। इसमें लोगों की निर्मम हत्याएं की गईं। इतने बड़े पैमाने पर सामाजिक लामबंदी की मांग के परिणामस्वरूप हुए संस्थागत और नीतिगत परिवर्तनों का भी हमने विश्लेषण किया। इस इकाई में हमने यह भी देखा कि किस प्रकार पूर्ण युद्ध लोगों को एकजुट करने

की राज्य की इच्छा पर ही निर्भर नहीं था बल्कि इसका सारा दारोमदार इसकी वास्तविक संगठनात्मक क्षमता पर था। इस युद्ध के दौरान निष्ठा और पहचान का प्रश्न भी उभर कर सामने आया और इसके परिणाम भी सामने आए। व्यक्ति और समूह युद्ध के कारण किसी न किसी का पक्ष लेने पर मजबूर हुए और युद्ध के बाद बहुत से लोगों के देश छूट गए और वे नई प्रशासनिक व्यवस्था में पहचान की तलाश में घूमते रहे।

31.8 शब्दावली

बेघर होना : व्यापक युद्ध के कारण लोगों का घर-बार छूटना।

विखंडीकरण : यूरेनियम, थोरियम, प्लुटोनियम जैसे भारी तत्वों को तोड़कर नए तत्व बनाने की प्रक्रिया।

विखंड्य पदार्थ : यूरेनियम 235 या प्लुटोनियम 239 जैसे तत्व जिनका विखंडीकरण किया जा सके।

नर-संहार : किसी संगठित समूह खासकर राज्य द्वारा खास राष्ट्रीय, राजनैतिक, जातीय या धार्मिक समूहों का व्यवस्थित रूप से संहार करना।

सैनिक औद्योगिक समूह : एक ऐसा जटिल समूह जिसमें सेना, उद्योग, बैंकिंग, श्रम और शोध क्षेत्र के संभ्रांत शामिल थे जिनका हित बड़े पैमाने पर अस्त्र उत्पादन में निहित था।

पूर्ण युद्ध : इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1918 में जर्मन जेनरल एरिक लुडेन ड्रॉफ ने किया था जिसका तात्पर्य था कि आधुनिक युद्ध लड़ने की प्रक्रिया में सभी पदार्थों तथा नैतिक ऊर्जाओं की लामबंदी करना।

युद्ध का सामर्थ्य : युद्धरत राज्यों की भौतिक, औद्योगिक और आपूर्ति क्षमता।

31.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 31.3 और 31.2

2) देखिए भाग 31.3 (खासकर 31.3.3)

3) (i) ✓ (ii) X (iii) ✓ (iv) X (v) X

बोध प्रश्न 2

1) आर्थिक नियंत्रण, उत्पादन विधियों आदि के लिए देखिए भाग 31.5

2) 31.5 भाग का अन्तिम अनुच्छेद देखिए।

3) देखिए भाग 31.6

इकाई 32 युद्धोत्तर विश्व की झलक

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य

यह इस पाठ्यक्रम की अन्तिम इकाई है। इस इकाई में युद्ध के अंत में यूरोप में मौजूद राजनीति और अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों की जानकारी दी जाएगी। इसे पढ़ने के बाद आप :

- यूरोप में तात्कालिक युद्धोत्तर परिस्थिति के बारे में जान सकेंगे;
- युद्धोत्तर काल में विभिन्न यूरोपीय देशों में राजनीति अर्थव्यवस्था की प्रकृति का पता लगा सकेंगे; और
- यूरोप के घटनाक्रम में अमेरिका जैसी गैर यूरोपीय ताकतों के प्रभाव की प्रकृति और फैलाव का मूल्यांकन कर सकेंगे।

32.1 प्रस्तावना

इस खंड की इकाई 30 में 31 में आप दोनों विश्वयुद्धों के दो महत्वपूर्ण पक्षों का अध्ययन कर चुके हैं। सबसे पहली बात यह है कि इन दोनों विश्वयुद्धों की एक लम्बे युद्ध के रूप में व्याख्या की जा सकती है जिसकी शुरुआत लगभग 1914 के आसपास हुई और बीच में लम्बे अंतराल के बाद 1945 में फिर से युद्ध की शुरुआत हो गई जिसमें स्पष्ट रूप से विजेता और पराजित पक्ष का निर्णय हो गया। प्रथम युद्ध (या युद्ध का पहला चरण) के कुछ अनसुलझे मुद्दे दूसरे युद्ध में निर्णायक और अन्तिम रूप से सुलझ गए। दूसरी बात यह कि युद्ध मुख्य रूप से यूरोप में लड़ा गया था और यूरोपीय देश इसमें प्रमुख रूप से हिस्सा ले रहे थे (जापान ओर अमेरिका को छोड़कर) परंतु सही अर्थों में यह युद्ध केवल यूरोप तक ही सीमित नहीं था बल्कि यह पूरी दुनिया में फैला हुआ था। पिछले खंड 7 में आपने यह पढ़ा था कि यूरोप तीन वैचारिक समूहों में विभक्त हो गया था – उदारवादी जनतंत्र (प्रमुख रूप से ब्रिटेन और फ्रांस इसका प्रतिनिधित्व करते थे), फासीवाद (हिटलर के शासन में जर्मनी और मुसोलिनी के शासन में इटली इसका प्रतिनिधित्व करते थे) और समाजवादी दुनिया (सोवियत संघ इसका प्रतिनिधित्व करता था)। इन्हीं तीन शक्तियों ने पृथ्वी पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा की। युद्ध के निर्णायक दौर में उदारवादी जनतंत्र और समाजवादी शक्तियों ने मिलकर तीसरी शक्ति फासीवाद को हराने और समाप्त करने का प्रयास किया।

कुल मिलाकर विश्व युद्ध का यही सार था। युद्धोत्तर काल में बची हुई दो शक्तियों (उदारवादी जनतंत्र और समाजवाद) के बीच बिना किसी युद्ध के कड़ी प्रतिस्पर्द्धा चलती रही। इस इकाई में युद्धोत्तर विश्व के इन्हीं पक्षों पर हम बातचीत करने जा रहे हैं।

32.2 युद्धोत्तर परिदृश्य

महाद्वीपों की अर्थव्यवस्था में परस्पर संबद्ध होने के कारण यूरोप के भीतर वर्चस्व स्थापित करने के लिए लड़ा गया युद्ध वस्तुत: इतिहास के पहले भूमंडलीय युद्ध में परिणत हो गया। इसी कारण युद्ध के बाद के यूरोप के इतिहास को यूरोप से बाहर घट रही घटनाओं से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। खासकर इसलिए क्योंकि ये परस्पर सम्पर्क और भी शक्तिशाली और जटिल होते चले गए। परिणामत: 1980 के दशक के अन्त तक यूरोप के भीतर कुछ गैर यूरोपीय ताकतें भी महत्व पा चुकी थीं। उदाहरण के लिए यूरोप के मामले में अमेरिका का बढ़ता प्रभाव, विश्व वित्तीय व्यवस्था में डॉलर का प्रभुत्व और युद्ध के बाद जन्में दो सैन्यीकृत राजनैतिक आर्थिक खेमों के बीच बढ़ती शत्रुता।

32.2.1 तात्कालिक प्राथमिकताएं

कुछ प्राथमिकताएं इस प्रकार थीं : 1) प्रत्येक देश में विश्व युद्ध के कारण उत्पन्न हुए सामाजिक और आर्थिक संकट को सुलझाना। 2) राष्ट्र-राज्यों के मौजूदा पदानुक्रम की वैधता समाप्त होने के कारण महाद्वीपीय स्तर पर यूरोप के राजनैतिक नक्शे को फिर से निर्धारित करना। 3) उपनिवेशों की समाप्ति के कारण पश्चिमी यूरोप को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा। 4) इन मुद्दों को सुलझाने के क्रम में पूंजीवाद और समाजवाद के बीच का व्यवस्था संबंधी टकराव पूरे यूरोप में फैल गया। इससे पूर्व और पश्चिमी यूरोप के बीच के परम्परागत, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विभाजन में एक और आयाम जुड़ गया और इसने अगले 40 वर्षों में यूरोप में होने वाली घटनाओं को प्रभावित किया।

जिन प्रथम तीन प्रक्रियाओं का ऊपर उल्लेख किया गया है वे एक साथ मिल गईं और उनकी अभिव्यक्ति यूरोप के दो भागों या पूर्व-पश्चिम विभाजन द्वारा हुई। यूरोप के भीतर भी शक्ति संतुलन सोवियत संघ के पक्ष में झुकने लगा जो पूर्वी यूरोप में अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना चाहता था। युद्ध के दौरान सोवियत संघ और आंग्ल-अमेरीकी गठबंधन ने यूरोप को दो हिस्सों में बांट लिया था और एक दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करने पर सहमत हो गए थे। पश्चिमी यूरोपीय शक्तियां, खासकर यूनाइटेड किंगडम की युद्ध के कारण वित्तीय हालत काफी खराब हो गई थी और अब वह महाशक्ति नहीं रह गई थी। इसके बाद काफी हिचक और सीमित उत्साह से वे अमेरिका की अधिशेष पूंजी पर आश्रित हो गए। उन यूरोपीय देशों को जो रणनीतिक गणित के दायरे से बाहर पड़ते थे कूटनीतिक तटस्थता से लेकर व्यावहारिक द्वैधता जैसी नीतियां अपनाने की स्वतंत्रता थी। केवन जर्मनी के भाग्य का निर्णय ही खेमों के टकराव का परिणाम था। इसके परिणामस्वरूप दो राज्यों का निर्माण हुआ – पश्चिम जर्मनी या फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी और पूर्वी जर्मनी या जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक। बहुत दिनों तक ये एक दूसरे के अस्तित्व को अस्वीकार करते रहे। पूरे यूरोप में युद्ध के राजनैतिक और आर्थिक परिणाम एक जैसे नहीं थे। ब्रिटेन और सोवियत संघ के कुछ हिस्सों को छोड़कर राष्ट्रीय राजनीति की नई पद्धतियां और नए अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र संबंधी मतभेद उभर कर सामने आए। जर्मनी के कब्जे वाले क्षेत्रों में युद्ध के दौरान राजनैतिक रूप से प्रतिबद्ध सशस्त्र प्रतिरोध समूहों को संगठित किया गया। इसके साथ ही साथ देश से निष्कासित इन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाली राष्ट्रीय सरकारें मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर एक दबाव समूहों का काम करने लगीं। वैचारिक और कभी-कभी जातीय टकरावों (जैसे जातीय बहुल युगोस्लाविया) से स्थिति और भी विकट हो गई। फ्रांस में साम्यवादियों के प्रभाव वाले मैक्विस ने जर्मनों के खिलाफ प्रतिरोध को संगठित किया। फ्रांस के बाहर फ्री फ्रेंच और इसकी फ्रांसीसी राष्ट्रीय समिति लंदन से कार्य करती थी और चौथे फ्रांसीसी गणतंत्र की शुरुआत के पहले यह समिति अस्थाई सरकार के रूप में विकसित हुई।

32.2.2 यूगोस्लाविया

युद्धोत्तर व्यवस्थाओं पर मतभेद उभरे और इसके फलस्वरूप वामपंथी प्रतिरोधी खेमे और निष्कासित उदारवादी या दक्षिणपंथी सरकारों में कट्टर शत्रुता विकसित हुई। युगोस्लाविया में दो अलग-अलग दबाव समूहों की उपस्थिति

से स्थिति जटिल हो गई। एक ओर जोसिफ ब्रॉज टिटो के नेतृत्व में कम्यूनिस्ट नेशनल लिबरल फ्रंट था और दूसरी ओर ड्राजा निहैलोविच के नेतृत्व में रोयालिस्ट चेकनिक्स और राष्ट्रवादी थे। राष्ट्रीय राजनीति में इस प्रकार के आधारभूत आन्तरिक टकरावों में बाहरी हस्तक्षेप किसी न किसी रूप में होता ही था। पूर्वी यूरोप में इसने अर्धसैनिक हस्तक्षेप का स्वरूप धारण किया। पश्चिमी यूरोप में प्रतिद्वंद्वी दावेदारों को सत्ता से बाहर निकालने के लिए संस्थागत व्यवस्था के साथ-साथ सैनिक सहायता का सहारा भी लिया गया। पूर्वी यूरोप में की गई व्यवस्था से केवल तात्कालिक संकट को टाला भर जा सका जो 1900 के दशक में उभर कर सामने आ गया और पश्चिमी यूरोपीय संदर्भ में जो समाधान अपनाया गया उससे सरकार को और भी कई संकटों का सामना करना पड़ा और कभी-कभी व्यवस्था पर भी संकट आ गया। युगोस्लाविया साम्यवादियों के लिए अपवाद था जहां उन्होंने लाल सेना की सहायता के बिना ही सत्ता प्राप्त कर ली। इसके बाद यह सोवियत खेमे में शामिल हो गया और बाद में अपनी इच्छा से यह इससे बाहर हो गया। अन्ततः इसके पड़ोसी देशों के समान इस देश में भी जातीय विभाजन हुआ और व्यवस्था बिखर गई।

32.2.3 पोलैंड

युद्ध के दौरान पोलैंड को जर्मनी और सोवियत संघ ने आपस में बांट लिया था। अतः आरंभ में यहां जर्मन और सोवियत विरोध की भावना होना स्वाभाविक था। राष्ट्रवादी होम सेना लंदन में स्थित निष्कासित सरकार के सहयोग से काम कर रही थी परंतु 1944 में वार्सा आंदोलन की असफलता के बाद जर्मनी ने इसे ध्वस्त कर दिया। सोवियत कब्जे वाले पोलैंड में साम्यवादी नेतृत्व में पोलिश कमिटी ऑफ नेशनल लिबरेशन ने आगे बढ़ती हुई सोवियत लाल सेना की मदद से स्थिति को अपने अस्थाई नियंत्रण में ले लिया। घरेलू सेना (होम आर्मी) के विघटन के बाद यह राष्ट्रीय एकता की अस्थाई सरकार पर वर्चस्व स्थापित करने में सफल हुई जिसका गठन लंदन स्थित अस्थाई सरकार और सोवियत कब्जे वाले पोलैंड की सरकार (जिनकी पहले आपस में प्रतिद्वंद्विता थी) के विलयन से हुआ था।

32.2.4 ग्रीस

दूसरी ओर ग्रीस में सुधार की प्रक्रिया लम्बी चली और इसमें एक अनिश्चितता भी थी क्योंकि प्रतिरोध साम्यवादी नेतृत्व वाले नेशनल लिबरेशन फ्रंट और दक्षिणपंथी रिपब्लिकन नेशनल डेमोक्रेटिक लीग के बीच बंटा हुआ था। ज्योर्जिएस पैपेन्ड्रियस के नेतृत्व में और ब्रिटिश द्वारा समर्थित राष्ट्रीय एकता की सरकार ने 1944 में नेशनल लिबरेशन फ्रंट पर पाबंदी लगाने की कोशिश की। परंतु इससे गृह युद्ध छिड़ गया जिसे 1945 के वर्जिका समझौते के कारण टाला जा सका। चुनावों और जनमत संग्रह में धोखाधड़ी करके रॉयलिस्ट (राजतंत्रवादी) और रॉयल्टी (राजवंशी) सत्ता में आ गए। इससे एक बार फिर गृह युद्ध छिड़ गया और अमेरिकियों ने साम्यवादियों के खिलाफ हस्तक्षेप किया। इसके बाद ग्रीस में जल्दी-जल्दी कई अस्थिर सरकारें बनीं और इनका राजतंत्र से झगड़ा चलता रहा जिसके फलस्वरूप सातवें दशक के मध्य तक सैनिक तानाशाही कायम रही।

परंतु यूरोप में हर जगह ऐसा नहीं हुआ। डेनमार्क, नीदरलैंड और नौर्वे में विरोध आंदोलन अपेक्षाकृत एकीकृत था। युद्धोत्तर राष्ट्रीय राजनैतिक पुनरूत्थान में उनके सामने कोई खास दिक्कत नहीं आई। स्थाई बहुदलीय संयुक्त मोर्चे ने सत्ता संभाली और 'सामाजिक, जनतांत्रिक सर्वसम्मति' के आधार पर सामाजिक कल्याण, वित्तीय स्तर पर आय का हस्तांतरण और एक मध्यमार्गी तथा धीरे-धीरे आगे बढ़ने वाले सामाजिक आर्थिक सुधार लागू करने की प्रतिबद्धता जाहिर की। चुनाव के स्तर पर इस नीति को भारी सामर्थन मिला। युद्धोत्तर समस्याओं के तात्कालिक समाधान की विधि कुछ भी रही हो 1940 के दशक के अन्त तक सोचने और कार्य करने की दृष्टि से पूरे विश्व का पूरब और पश्चिम खेमे के रूप में द्विध्रुवीकरण हो गया। यह केवल अन्तरराष्ट्रीय और घरेलू राजनीति से ही स्पष्ट नहीं था बल्कि विद्वता के स्तर पर और पत्रकारिता के आधारभूत स्तरों पर भी यह समान रूप से अभिव्यक्त होता था। इस प्रकार इसके कारण उस समय के टकरावों, आपसी एकता तथा विरोधों से ध्यान हट गया। जर्मनी और तटस्थ देश कुछ हद तक इसके अपवाद थे। इस प्रकार का स्तरीकरण कभी-कभी भ्रामक भी होता है परंतु राष्ट्रों के अन्तरराष्ट्रीय कूटनीतिक पक्षों और उनकी घरेलू नीति के महत्वपूर्ण पक्षों पर खेमे से जुड़ाव और तनाव का असर अवश्य पड़ता था। उन्होंने महा-राष्ट्रीय परियोजनाओं के उद्भव में भी सहयोग दिया जिसकी विडम्बना यह थी कि इसके विकास के साथ ही खेमे के हिस्सों के बीच मतभेद उभरने लगे। गैर सोवियत खेमे के संबंध में यह बात अधिक स्पष्टता और पारदर्शिता से लागू होती थी।

32.2.5 जर्मनी का विभाजन

जर्मनी का विभाजन इस प्रकार की महा-राष्ट्रीय परियोजनाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और संभवत: विशिष्ट था। जर्मनी के संबंध में मित्र राष्ट्र किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे और बर्लिन पर नियंत्रण के लिए उनके बीच होड़ मच गई जिसे 'रेस फॉर बर्लिन' के नाम से जाना जाता है। इसके फलस्वरूप जर्मनी का चार हिस्सों में विभाजन हो गया और उन्हें चार शक्तियों के हाथों में सौंप दिया गया। यह इस बात का द्योतक था कि जर्मनी के सैनिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के संबंध में पश्चिमी खेमे में मतभेद था। इसके साथ ही इससे युद्धोत्तर रणनैतिक प्रतिद्वंद्विता का भी पता चलता है जिसके कारण एक दशक के भीतर दो अलग राज्य स्थापित कर दिए गए।

ब्रिटेन के विरोध के बावजूद फ्रांसीसी अमेरिकी प्रस्ताव में जर्मनी के अनौद्योगीकरण का मुद्दा सामने आया। यह तय किया गया कि जर्मनी में न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति तक उत्पादन किया जाए तथा नुकसान की भरपाई के लिए उपलब्ध हथियारों को जर्मनी के बाहर भेज दिया जाए। अमेरीका और सोवियत संघ के बीच गहराती दुश्मनी के कारण इन परियोजनाओं को बदलना पड़ा। अमेरीका 'पहले अमेरीका' के अपेक्षाकृत अलगाववादी दृष्टिकोण को छोड़कर स्पष्ट हस्तक्षेप की नीति की ओर आगे बढ़ा जिसे 'मुक्त विश्व के नेतृत्व' की प्राप्ति के रूप में देखा गया। इसके बाद ही ट्रूमैन सिद्धांत ने 'सशस्त्र अल्प संख्यकों या बाहर के दबावों का विरोध कर रही जनता को मुक्त करने' का समर्थन किया और मार्शल योजना द्वारा जिसे आधिकारिक तौर पर यूरोपीयन रिकवरी प्रोग्राम के नाम से जाना जाता है, पूरे यूरोप (पश्चिमी जर्मनी सहित) के पुनर्सृजन और पुनर्निर्माण का प्रयास किया गया। मार्शल योजना अमेरीकी डॉलर की सर्वोच्चता को दृढ़ करने और व्यापार बंधनों को तोड़ने के नए मुद्रा संबंधित और व्यापारिक ढांचे पर आधारित थी। ब्रिटेन वुड्स की संस्थाओं (विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष) और गैट (जेनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ ट्रेड) के द्वारा व्यापारिक बंधनों और सीमाओं का अतिक्रमण किया गया।

इसी के तहत पश्चिम जर्मनी के आर्थिक पुनरूत्थान का प्रस्ताव सामने आया। 1946 की उद्योग योजना के स्तर को जिसने उत्पादन स्तर को 1938 के स्तर से आधा कर दिया था, निरस्त कर दिया गया। राजनैतिक सुधार के तहत बहुदलीय चुनाव कराए गए, मजदूर संघों पर सख्त नियंत्रण स्थापित किया गया और 'अवांछित' राजनैतिक प्रवृत्तियों को दूर कर दिया गया। मुद्रा सुधार के द्वारा पुराने राइखमार्क के स्थान पर नए डेख मार्क को लागू किया गया। 1949 में फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरीका के बीच समझौता हुआ और इनके आधिपत्य क्षेत्रों को मिलाकर फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी (पश्चिम जर्मनी) का निर्माण किया गया। परंतु जर्मन गणतंत्र को 1955 के बाद ही संप्रभुता प्रदान की गई। संप्रभुता देने के पहले इसकी सैन्य शक्ति काफी कम कर दी गई और इसे नाटो में शामिल कर लिया गया। सोवियत आधिपत्य वाले क्षेत्र या पूर्वी जर्मनी में भी पुनर्रचना की यही प्रक्रिया चली और वहां सोवियत व्यवस्था लागू की गई। 1949 में यह नया राज्य बना। यहां साम्यवादी दल का वर्चस्व कायम हुआ। लोकप्रिय जन आंदोलनों को दबा दिया गया। विकास के लिए सोवियत पद्धति अपनाई गई। अविभाजित जर्मनी की राजधानी बर्लिन का भी विभाजन किया गया और यह विद्वेष का कारण बना रहा। 1948 में इस पार से उस पार आना जाना बंद हुआ और 1961 में दीवार बना दी गई।

दोनों खेमों की शत्रुता के संदर्भ में प्रत्येक खेमे द्वारा अपने को और मजबूत करने के लिए महा-राष्ट्रीय परियोजनाएं लगातार बनाई जाती रहीं। यूरोप में साम्यवादी गतिविधियों को संयोजित करने के लिए 1947 में पूरब में कौमिनफॉर्म की स्थापना की गई। परंतु इसके पश्चिम यूरोप में प्रविष्ट कर जाने के कारण 1956 में दोस्ती का संकेत देते हुए इस पर रोक लगा दी गई। अधिक आर्थिक एकीकरण के लिए 1949 में काउंसिल ऑफ मुचुअल इकोनोमिक एसिसटेंस (कॉमेकॉन) की स्थापना की गई जबकि सैनिक संयोजन के लिए 1955 में वार्सा संधि की गई। इनसे अलग-अलग गुट बने और इनमें कई देश शामिल हुए। 1949 में नाटो (नॉर्थ एटलांटिक ट्रीटी ऑरगनाइजेशन) की स्थापना की गई जो एक अखिल महाद्वीपीय सैन्य संस्था थी। 1951 में विशिष्ट आर्थिक सरोकारों से युक्त यूरोपीयन कोल ऐंड स्टील कम्यूनिटी का गठन किया गया। दूसरी तरफ 1957 में यूरोपीयन इकोनोमिक कम्यूनिटी के उद्देश्य विस्तृत थे तथा संप्रभुता की हानि की आशंका के कारण ब्रिटेन ने 1959 में यूरोपीयन फ्री ट्रेड एसोसिएशन (एफ्टा) की शुरुआत की। विद्वेष के माहौल में हुआ पुनर्निर्माण काफी हद तक इन एजेंसियों पर आधारित था।

बोध प्रश्न 1

1) जर्मनी के दो राष्ट्र-राज्यों में विभाजन की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) युद्ध के बाद यूरोपीय देशों की तात्कालिक प्राथमिकताओं पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

32.3 युद्धोत्तर यूरोप में आर्थिक पुनर्निर्माण

युद्ध से लगभग सभी यूरोपीय देशों को आर्थिक नुकसान पहुंचा। इसलिए सबसे पहला कार्य उन नुकसानों की भरपाई करना और आर्थिक विकास को युद्ध पूर्व के स्तर तक पहुंचाना था। आर्थिक समृद्धि के स्तर को प्राप्त करना दूसरा चरण था। उदारवादी जनतांत्रिक और समाजवादी दुनिया में आर्थिक पुनरूत्थान और विकास की यह प्रक्रिया अलग-अलग तरीके से आगे बढ़ी। आइए, सबसे पहले देखें कि यूरोप के उदारवादी जनतांत्रिक हिस्सों में क्या हुआ।

32.3.1 पूंजीवादी यूरोप में अर्थव्यवस्था : पुनरूत्थान और उत्कर्ष

1945 से लेकर 1947 तक आर्थिक पुनरूत्थान के पहले चरण का आरंभ मुख्य रूप से अमेरिकी ऋण और अनुदान तथा संयुक्त राष्ट्र राहत और पुनर्वास एजेंसी के जरिए वितरित खाद्यान्न सहायता से हुआ। औद्योगिक मंदी और खराब फसल होने के कारण अर्थव्यवस्था में जो लड़खड़ाहट आई थी उसे बचाने में इससे काफी सहायता मिली और अर्थव्यवस्था को गिरने से बचा लिया गया। युद्ध-पूर्व स्तर तक पहुंचने के लिए ये सहायताएं पर्याप्त थीं। अमेरिका के दो प्रमुख दीर्घावधि उद्देश्य थे, पहला एक ऐसी मुद्रा और व्यापारिक व्यवस्था का निर्माण करना जिसमें बिना किसी प्रतिबंध के पूंजी और वस्तुओं का आवागमन हो सके और दूसरा एक ऐसे राजनैतिक सैनिक मित्रों का गुट तैयार करना ताकि किसी की सुरक्षा पर आंच न आए। परंतु यूरोप अमेरिका के कर्ज में दबा हुआ था और वहां डॉलर का अभाव था। अमेरिका के उपर्युक्त किसी भी उद्देश्य की पूर्ति आर्थिक विस्तार के बिना संभव नहीं थी ।

पुनरूत्थान के दूसरे चरण, 1948-1951, में अमेरीका द्वारा समर्थित पुनरूत्थान और उत्कर्ष कार्यक्रम में भाग लेने के इच्छुक यूरोपीय देशों को 13 बिलियन डॉलर प्राप्त हुए। इसके अलावा अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्तरराष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक (विश्व बैंक) ने 1 बिलियन डॉलर ऋण प्रदान किया। ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और पश्चिम जर्मनी को इस कार्यक्रम से सबसे ज्यादा फायदा मिला। इन अनुदान प्राप्त करने वाले राष्ट्रों का एक अन्तरराष्ट्रीय निकाय स्थापित किया गया। यह यूरोपीय आर्थिक सहयोग का एक संगठन था जिसमें प्रत्येक राष्ट्र को प्रत्येक 4 वर्षों में अपनी राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत करनी थी। अनुदान प्राप्त करने वाले इन राष्ट्रों को 'प्रतिपक्ष' धारा के तहत प्राप्त सहायता के बराबर घरेलू मुद्रा कोष उपलब्ध कराना होता था

और इसे अमेरीकी योजना के तहत खर्च करना होता था। उन्हें इस बात पर भी राजी होना पड़ता था कि प्राप्त अनुदान से वे केवल अमेरिका से ही अनाज खरीदें चाहें दूसरे स्रोतों से यह सस्ता ही क्यों न प्राप्त हो रहा हो। उन्हें अमेरीकी जहाजरानी सेवा को बाध्य होकर प्रयोग करना पड़ता था और अनुदान से खरीदी गई वस्तुओं का 50 % बीमा करना पड़ता था तथा अमेरीकी तेल व्यापार से संबंधित हितों को भी वरीयता देनी पड़ती थी।

1947 और 1951 के बीच पश्चिमी यूरोपीय अर्थव्यवस्था में वित्तीय सुधार आया। हालांकि पूरे यूरोप में कार्य निष्पादन और नीति पर अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग ढंग से बल दिया गया था परंतु कुछ विशेषताएं सामान्य थीं : राज्य द्वारा अर्थव्यवस्था का प्रबंधन, ऊर्जा, परिवहन और बैंकिंग जैसे प्रमुख क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण और कीमतों में गिरावट जैसी नीतियां (जिसके कारण सरकार के व्यय और ऋण पर प्रतिबंध लगा दिया गया था) जिससे बेरोजगारी में वृद्धि हुई। इससे एक बड़ी आर्थिक तेजी आई जो 1970 के दशक तक चली। नीतियों से लोगों को रोजगार मिले तथा 1970 के दशक के बाद लगभग पूर्ण रोजगार की स्थिति बन गई। इससे लगभग पूर्ण रोजगार , उच्च उत्पादकता, उच्च मजदूरी और व्यापक सामाजिक कल्याण के 'नए पूंजीवाद' का उद्‌भव हुआ। इनके परिणामस्वरूप स्पष्ट रूप से वर्ग प्रतिरोध घटा और सहमतिजन्य राजनीति का उदय हुआ। यूनाइटेड किंगडम की बेवरिज रिपोर्ट और दूसरे देशों के ऐसे ही महत्वाकांक्षी समाज कल्याण कार्यक्रमों के कारण सरकारी खर्च तेजी से बढ़ा; जबकि 1947-1951 मितव्ययिता के वर्ष रहे। इस प्रकार के खर्चों से मांग बढ़ी और निवेश में वृद्धि हुई; इसी समय संतुलित बजटों के हित में कर राजस्व भी बढ़ाया गया। औद्योगिक और कृषीय गतिविधि भी बढ़ाई गई; निर्यात बढ़ा, जिससे अमेरीका के साथ व्यापार घाटे में कमी आई, संग्रहण में वृद्धि हुई।

परंतु पूरे पश्चिमी यूरोप में इसके परिणाम एक जैसे नहीं थे। आयरलैंड, स्पेन और पुर्तगाल जैसे कम विकसित देश अधिक विकसित अर्थव्यवस्थाओं की अपेक्षा गुणात्मक और परिमाणात्मक परिर्वानों से कम प्रभावित हुए थे। विभिन्न देशों के बीच विकास और जीवन स्तर के साथ-साथ आय वितरण पद्धतियों में भी अंतर था। आशानुरूप आर्थिक प्रबंधन, राज्य हस्तक्षेप, योजना की भूमिका और परिष्कृति, प्रत्येक अर्थव्यवस्था में राज्य और निजी उद्योगों का अनुपात, राज्य नियोजकों और संघों के बीच के संबंध और कार्य करने के तरीके तथा सामाजिक कल्याण के तरीके तथा अनुपात में भी काफी अंतर था। इसी प्रकार यूरोपीय देशों में अलग-अलग समयों पर आर्थिक तेजी आई और इसमें भी विभिन्नता थी। कहीं-कहीं यूरोपीय देशों को वार्षिक मंदी, व्यापार असंतुलन, खराब फसल आदि जैसे आर्थिक संकटों का भी सामना करना पड़ा। इन सबके बावजूद 1950 और 1970 के दशक के आरंभ तक यूरोप ने उत्पादकता और जीवन स्तर के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति की। इससे यह अवधारणा सामने आई कि एक नए प्रकार के प्रबंधन-युक्त पूंजीवाद की स्थापना हो चुकी थी। यह पूंजीवाद के आन्तरिक संकटों और भयावह चक्रीय प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर सकेगा तथा सरकार के हस्तक्षेप से आम समाज कल्याण को प्रभावी बनाया जाएगा।

परंतु 1973 में यह व्यापक तेजी का दौर समाप्त हो गया। तेल उत्पादक देशों ने तेल की कीमतें एकतरफा और नाटकीय रूप से बढ़ा दी। यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रास्फीति का दबाव बढ़ने लगा, उत्पादन कम हुआ और बेरोजगारी बढ़ी। उन्होंने तुरंत आर्थिक प्रबंधन की मौजूदा व्यवस्था की सीमाओं के भीतर प्रतिबंधात्मक नीतियां लागू कीं और धीरे-धीरे अपने आर्थिक नजरिए को बदलने का प्रयास किया। 1970 के दशक के उत्तरार्ध से एक देश के बाद दूसरे देश में सामाजिक जनतांत्रिक सहमति बिखरनी शुरू हो गई। नए राजनीतिक कार्यक्रमों में सामाजिक कल्याण को न्यूनतम अनिवार्यता तक प्रतिबंधित कर दिया गया। उन्होंने सरकार के हस्तक्षेप और मांग प्रबंधन का परित्याग कर दिया। उन्होंने बाजार की शक्ति को खुली छूट देने में आई प्रमुख संस्थागत बाधा अर्थात मजदूर संघों को अस्वीकार कर दिया। इन सबसे राष्ट्रीयकृत उद्योगों का निजीकरण हुआ। नियमों की बंदिश कम से कम की गई और मुद्रा से संबंधित तथा आपूर्ति पक्षीय नीतियां अपनाई गई। उदाहरण के लिए पूरे यूरोप में सबसे ज्यादा फ्रांस में राज्य हस्तक्षेप और नियोजन प्रभावी था। 1982-83 की समाजवादी सरकार की अन्तरिम योजना में अधिक से अधिक उद्यमों को राज्य के नियंत्रण में लाया गया और 80 के दशक तक कई व्यवस्थित योजनाएं शुरू की गईं। परंतु 1986 ओर 88 के बीच जैक्वेस शिराक ने इन नीतियों को उलट दिया और व्यापक पैमाने पर निजीकरण किया। आगे आने वाली समाजवादी सरकार ने न तो राष्ट्रीयकरण किया और न ही निजीकरण। वस्तुत: अधिकांश पूंजीवादी यूरोप में एक नए 'मुक्त बाजार' की सर्वसम्मति बनी।

32.3.2 समाजवादी यूरोप में अर्थव्यवस्था

सोवियत संघ की अपेक्षाकृत कम क्षमता के कारण सोवियत खेमे में पुनर्निर्माण का कार्य धीमी गति से हुआ। बाहर से पूंजी कम मात्रा में उपलब्ध थी। जिन शर्तों पर यह पूंजी उपलब्ध थी वह सोवियत व्यवस्था को मंजूर नहीं थी। इसलिए औद्योगीकरण कार्यक्रम के लिए अन्दर से ही पूंजी जुटानी पड़ी। इसलिए सोवियत पुनरूत्थान और उत्कर्ष कार्यक्रमों को अपने मित्रों, जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक और आस्ट्रिया, से 1950 के दशक के मध्य तक हर्जाने की भरपाई के रूप में मदद की जरूरत पड़ती रही। नए सोवियत देशों में राष्ट्रीयकरण के कारण भारी उद्योग की स्थापना में तेजी से वृद्धि हुई। सोवियत नमूने के आधार पर सामूहिक खेती और खेती के सामूहीकरण जैसे सुधारवादी कृषि कार्यक्रमों से कृषि क्षेत्र में संकट पैदा हो गया जिसके कारण खाद्यान्न की कमी हो गई। इस प्रकार पूर्वी यूरोप के देश उत्पादन की नई व्यवस्था के अनुरूप अपने को ढालने में व्यस्त थे तथा उन्हें उन क्षेत्रों में गतिरोध का सामना करना पड़ा जो क्षेत्र पहले पश्चिमी यूरोपीय समृद्धि के आधार बने हुए थे।

सोवियत संघ को छोड़कर पूर्वी खेमे की योजनाबद्ध अर्थव्यवस्थाओं को बहुत निम्न औद्योगिक आधार प्राप्त हुआ। अल्बानिया और बुल्गारिया मुख्य रूप से कृषि प्रधान देश थे और पोलैंड का उत्पादन आधार सिलेसिया और वार्सा तक सीमित था। निवेश संबंधी प्राथमिकताएं राज्य द्वारा तय की जानी थी। राष्ट्रीय योजनाओं में भारी उद्योग के विकास पर अधिक बल दिया गया। इस असंतुलन के कारण उपभोक्ता वस्तुओं की काफी कमी हो गई जबकि पश्चिम में उपभोक्ता वस्तुओं की भरमार थी। हालांकि सामूहिक और राज्य खेती के द्वारा कृषि क्षेत्र में निजी गतिविधि को बिल्कुल कम कर दिया गया, परंतु पोलैंड में अधिकांश कृषि उत्पादन का आधार निजी खेत थे। संक्षेप में, पोलैंड में 1940 के दशक और 1950 के दशक के आरंभ में समूहीकरण पद्धति असफल सिद्ध हुई। युगोस्लाविया में उद्योगों पर राज्य का अधिकार नहीं था बल्कि मुनाफा कमाने के लिए इसे मजदूर परिषद को सौंप दिया गया। संसाधनों की घरेलू अनुपलब्धता के कारण ये देश सोवियत संघ पर काफी हद तक निर्भर थे।

आरंभ में व्यापारिक और आर्थिक संबंध इस क्षेत्र अर्थात पूर्वी खेमे तक ही सीमित रहा। परंतु पूंजी और कृषि उत्पादन खासकर गेंहू की कमी के कारण पश्चिमी देशों पर निर्भरता बढ़ी। पोलैंड और रोमानिया ने 1970 के दशक में पश्चिम से अपने औद्योगीकरण कार्यक्रमों के लिए काफी वित्त लिया परंतु ऋण चुकाने के लिए खर्च में कमी करने जैसे कड़े कदम उठाने पड़े और खाद्यान्नों पर रियायतें हटाने से उनकी कीमतों में बढोत्तरी हुई। बुल्गारिया और हंगरी में उपभोक्ता वस्तुओं की कमी और निवेश को सही जगह आवंटित न किए जाने के परिणामस्वरूप योजना को विकेंद्रित करने और निवेश बढ़ाने के लिए सुधार किए गए। चेकोस्लोवाकिया पर सोवियत आक्रमण के बाद बुल्गारिया में यह कार्यक्रम रद्द कर दिया गया।

1970 के दशक के आरंभ में सोवियत संघ को अमेरिका से मजबूरन खाद्यान्न आयात करना पड़ा। पश्चिम से (जहां वित्तीय रूप से मजबूत देश थे) खाद्यान्न और हल्के औद्योगिक आयात से कुल मिलाकर 1975 तक 10 बिलियन डॉलर का भुगतान रूपी असंतुलन तथा घाटा कायम हो गया। पश्चिमी बैंकों से कर्ज लेकर यह वित्त प्राप्त किया गया था। आयात को कम किया गया और घाटे को समाप्त किया गया परंतु 1982 तक पश्चिमी खेमों का ऋण 81 बिलियन डॉलर था और इसका ऋण सेवा अनुपात 100 % था जिसका मतलब यह हुआ कि वे केवल ऋण चुकाने के लिए ऋण ले रहे थे। 1980 के दशक के मध्य में पूरे विश्व में तेल के मूल्य में कमी आने से सोवियत की निर्यात आय भी कम हुई। इसके अलावा घरेलू दबावों के कारण आयात प्रतिबंधों को भी कम करना पड़ा। अत: सोने को बेचकर व्यापार असंतुलन को कम कर दिया गया। पूर्वी यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं में पोलैंड सबसे बड़ा कर्जदार था और उस पर 35 बिलियन डॉलर का कर्ज था।

पूर्वी अर्थव्यवस्थाओं ने भारी उद्योग के क्षेत्र में काफी तेजी से प्रगति की थी पंरतु उनके पास उपभोक्ता वस्तुओं का अभाव था, कृषीय उत्पादन की कमी थी, सेना के रख-रखाव में निवेश के कारण यह स्थिति और भी विकट हो गई और 1980 के दशक के मध्य तक आते-आते एक गतिरोध और घरेलू संकट पैदा हो गया। इसके परिणामस्वरूप अन्तत: पश्चिमी तर्ज पर यहां भी मुक्त बाजार मॉडल अपना लिया गया।

बोध प्रश्न 2

1) पूंजीवादी यूरोप में आर्थिक विकास के चरणों पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

2) किन अर्थों में समाजवादी यूरोप का आर्थिक विकास पूंजीवादी यूरोप से अलग था। पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

32.4 युद्धोत्तर यूरोप में राजनीति

जैसा कि आप जानते हैं युद्ध के बाद यूरोप दो विजयी शक्तियों के बीच विभाजित हो गया। यूरोप समाजवादी और पूंजीवादी खेमे या भौगोलिक दृष्टि से पूर्वी यूरोप खेमे और पश्चिम यूरोप खेमे में विभाजित हो गया। यूरोप का यह विभाजन अर्थव्यवस्था के साथ-साथ राजनीति में भी हुआ। पिछले भाग में आपने पूर्वी और पश्चिमी खेमे में अपनाई जाने वाली विभिन्न आर्थिक पद्धतियों की जानकारी प्राप्त की। इस भाग में हम इन दो खेमों में अपनाई जाने वाली विभिन्न राजनैतिक पद्धतियों की जानकारी देंगे।

जहां तक राजनैतिक क्षेत्र का सवाल है पश्चिम यूरोप में कई प्रकार की राजनैतिक व्यवस्थाएं मौजूद थीं जिसमें चुने गए प्रजातंत्र से लेकर तानाशाही तक मौजूद थे। पूर्वी खेमे में अधिक एकरूपता और समानता थी। वहां विचारधारात्मक एकता थी। यहां की राजनैतिक व्यवस्था पर साम्यवादी दलों का नियंत्रण था। परंतु व्यवहार में यहां भी कुछ विभिन्नताएं दिखाई पड़ती थीं और कभी-कभी ये राजनैतिक व्यवस्थाएं शुद्ध साम्यवादी स्वरूप से थोड़ा बहुत हटकर भी होती थीं और कभी-कभी विरोध का स्वर भी सुनाई पडता था।

32.4.1 पूंजीवादी यूरोप

पश्चिमी यूरोप में, जिसने 'सामाजिक जनतांत्रिक' सर्वसम्मति को स्वीकार किया था , वामपंथी, मध्यमार्गी और दक्षिणपंथी दलों के बीच नाम मात्र का अंतर रखा गया था। परंतु विषय वस्तु और कार्यक्रम का अंतर काफी कम कर दिया गया। 1953 में ही संकीर्णतावाद के प्रबल प्रवक्ता विन्सटन चर्चिल को, कंजरवेटिव पार्टी द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था स्वीकार किए जाने के बाद यह मानने को मजबूर होना पड़ा कि 'विभिन्न दलों में व्यावहारिक अन्तर इस बात का है कि वे उस पर किस तरह बल देते हैं।

'सामाजिक जनतांत्रिक सर्व सम्मति' का विचार अपने आप में केवल युद्धोत्तर काल में ही वैधता पा सका। यह संकीर्णवाद के मूलभूत तत्वों (निजी सम्पत्ति को सुरक्षित रखना) और उदारवाद (सीमित राज्य) को शामिल करने के सामाजिक जनतंत्र के युद्ध पूर्व कार्यक्रम जिसको काफी बदला गया था का व्यावहारकिता से जुड़ा हुआ रूप था। इस प्रकार सामाजिक जनतंत्र ने पूंजीवाद के कमशः सुधार की संभावना को त्याग दिया। इस पुनर्निर्मित

सामाजिक जनतांत्रिक प्रस्ताव को संकीर्णतावादियों द्वारा स्वीकार किया जाना भी मौजूदा सामाजिक और अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुकूल ही था। इस प्रकार अवसर प्राप्त होते ही इस पर आधारित संरचना को ध्वस्त कर दिया गया।

इस सर्वसम्मति के कारण दक्षिण मध्य और वाम-मध्य समूहीकरण के स्थाई संयुक्त मोर्चे का निर्माण संभव हुआ। कभी-कभी कड़े चुनावी संघर्ष के तुरंत बाद वाम और दक्षिण ने भी मिलकर साझा सरकार बनाई। पश्चिमी यूरोप में ब्रिटेन को छोड़कर अधिकांश देशों में गठबंधन सरकार के गठन की प्रवृत्ति पाई जाती थी। यह प्रवृत्ति वहां भी पाई जाती थी जहां चुनाव प्रणाली अनुपातिक प्रतिनिधित्व पर आधारित नहीं थी। इस प्रकार की सरकार के बनने के पहले अक्सर नीतियों तथा प्राथमिकताओं और पदों के बंटवारे को लेकर चुनाव के बाद खींचतान चलती थी। स्कैनडिनेवियन गठबंधन सरकारें स्थाई थीं क्योंकि सामाजिक जनतांत्रिक दल राष्ट्रीय राजनीति से पूरी तरह जुड़े हुए थे। परंतु यहां भी सर्वसम्मति का अनुपात अलग-अलग था। ब्रिटेन में जहां गठबंधन राजनीति उभर नहीं पाई वहां 1959 से लेकर 1964 तक टोरी या कंजरवेटिव शासन रहा तथा वहां सार्वभौमिक कल्याण कार्यों को आघात पहुंचा। महाद्वीपीय सामाजिक जनतंत्र ने लेबर पार्टी के साथ तालमेल बैठाया किंतु ब्रिटेन में लेबर पार्टी के साथ ऐसा तालमेल संभव न हो सका। 1951 से पार्टी के अन्दर बेवनआइट के विरोध के उभरने के कारण ऐसी स्थिति सामने आई।

चुनावी प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं में इटली की राजनैतिक व्यवस्था एक अपवाद थी जहां की सरकार में काफी अस्थायित्व था और साम्यवादियों का बहुत दबदबा था। इस दृष्टि से यह चौथे फ्रांसीसी गणतंत्र के समान था जिसे डे गावले द्वारा स्थापित पांचवे फ्रांसीसी गणतंत्र के बाद भंग कर दिया गया था। इटली की सरकार में क्रिश्चिन डेमोक्रेटिक पार्टी का वर्चस्व था। इस पार्टी का आधार काफी बड़ा था जिसमें कई प्रकार की प्रवृत्तियों को स्थान मिला था। इसमें क्लर्को-फासीवाद जैसे दक्षिणवादी सिद्धांत और कैथोलिक कम्यूनिज्म जैसे वामपंथी सिद्धांत शामिल थे परंतु इसका गुरूत्व-केंद्र नरम संकीर्णतावादी गुट ही था। परंतु वामपंथियों के साम्यवादियों और समाजवादियों में विभाजन होने से इसे मदद मिली।

सोवियत खेमे के बाहर प्रमुख यूरोपीय देशों जैसे स्पेन, पुर्तगाल और ग्रीस में काफी समय तक तानाशाही बनी रही। 1970 के दशक तक इन देशों में चुनाव आधारित जनतंत्र की स्थापना नहीं की गई थी। ग्रीस में अमेरिका की सहायता से साम्यवादियों को परास्त करने के बाद 1967 तक अस्थिर सरकारें बनती और गिरती रहीं। इसके बाद सेना ने सत्ता अपने हाथ में ले ली। पंरतु जन असंतोष और गृह युद्ध के खतरे को देखते हुए अन्ततः फिर से नागरिक शासन बहाल करना पड़ा। आइबेरियन उपमहाद्वीप में स्पेन और पुर्तगाल दोनों ही युद्ध से अप्रभावित रहे अतः वहां युद्ध पूर्व स्थापित तानाशाही चलती रही और वहां अपेक्षाकृत निरंकुश और अलगाववादी नीतियां चलती रहीं। 1975 में फ्रांसीसको फ्रैंको की मृत्यु के बाद स्पेन में लम्बी तानाशाही का युग समाप्त हुआ और संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना की गई। पुर्तगाल में सेना के उग्र सुधारवादी गुट के हस्तक्षेप से कई क्रांतिकारी घटनाएं घटीं और उसके बाद समाजवादी दल के नेतृत्व में चुनी गई नागरिक सरकार की स्थापना हुई। पूर्व साम्राज्यिक देशों में औपनिवेशीकरण ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में राजनैतिक संकट पैदा किया। फ्रांस में हिंद-चीन और अल्जेरियाई युद्धों के कारण ऐसा संकट पैदा हुआ जिसने चौथे गणतंत्र को हिला कर रख दिया। 12 वर्षों के शासन काल में 23 सरकारें बनाई गईं और अन्ततः 1958 में चौथे गणतंत्र को भंग कर दिया गया और एक नया पांचवा गणतंत्र स्थापित किया गया जिसका स्वरूप कार्यकारिणी ने निर्धारित किया। बेल्जियम पहले से ही उत्तर-दक्षिण फ्लेमिश-बैलून विभाजन से और सम्राट लियोपोर्ड के भविष्य को लेकर अनिश्चितता जैसी उलझनों से ग्रस्त था। परंतु कांगों की स्वतंत्रता के फलस्वरूप आर्थिक स्तर पर खर्च में कटौती जैसे कठोर उपाय लागू किए गए जिसके कारण 1960-61 में हड़ताल हुई। पुर्तगाल में, गिनिया-बिसाऊ, अंगोला और मोजाम्बिक स्वाधीनता संग्रामों के परिप्रेक्ष्य में, 'नए राज्य' की तानाशाही के खिलाफ सैनिक विद्रोह हो गया जो 1930 के दशक से सत्ता में था। यहां तक कि ब्रिटेन ने भी अपने औपनिवेशिक क्षेत्रों को धीरे-धीरे मुक्त किया। 1956 में स्वेज नहर क्षेत्र में अपने साम्राज्यिक हितों की रक्षा के लिए अपनाई गई नीति के कारण प्रधानमंत्री एंथोनी एडेन को इस्तीफा देना पड़ा।

32.4.2 समाजवादी यूरोप

पश्चिम के विपरीत पूर्वी खेमे में आमतौर पर साम्यवादी दलों ने सत्ता पर एकाधिकार स्थापित किया था। पार्टी के भीतर रहकर और एक सीमा तक ही मतभेद व्यक्त करने की अनुमति थी और उसी के भीतर गहन सत्ता संघर्ष चलता रहता था। सोवियत संघ से स्वायत्तता की मात्रा कई कारकों पर आश्रित थी जिसमें लोकप्रिय

लामबंदी भी शामिल थी। पोलैंड में साम्यवादी शासन के आरंभिक चरण की शुरुआत व्लादिसस्लाव गोमुल्का ने राष्ट्रीय आंदोलन से की परंतु उसे भी दल से निष्कासित कर दिया गया। 1956 में पोजनान में सोवियत विरोधी दंगे हुए और सोवियत संघ से सहानुभूति रखने वालों को मार डाला गया। गोमुल्का सत्ता में आया और कठोर नियंत्रण में थोड़ी ढील दी गई। 1960 के दशक में इन अपेक्षाकृत उदारवादी प्रवृत्तियों को पुनः समाप्त कर दिया गया। पोलैंड में किसी न किसी रूप में बराबर असंतोष और विरोध किया जाता रहा। मजदूरों ने काम करने के परिवेश के खिलाफ दंगे किए और औद्योगीकरण के लिए वित्त मुहैया कराने के लिए जब खाद्य पदार्थों के मूल्यों पर से रियायत हटाई गई और उनके मूल्य बढ़े तब इन नीति के खिलाफ जनता ने प्रदर्शन किया। इन सब कारणों से गोमुल्का के स्थान पर एडवर्ड गेरेक सत्ता में आया। 1980 के दशक में खाद्यान्नों का मूल्य बढ़ने के कारण फिर से आंदोलन हुए। पोलिश राजनीति में एक नया कारक सामने आया। सरकार ने हड़ताली मजदूरों के सामने घुटने टेक दिए और पार्टी नियंत्रण से अलग संघ बनाने की उनकी मांग को मान लिया। उसके बाद सॉलिडारिटी नाम का एक स्वतंत्र मजदूर संघ बनाया गया। सौलिडरिटी के लंबे समय तक चले विरोध के कारण अन्ततः साम्यवादी दल का शासन समाप्त हो गया।

पूर्वी जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया और हंगरी में आरंभ में सामाजिक नियंत्रण में ढील देने और सोवियत संघ से कुछ स्वायत्ता हासिल करने का प्रयास किया गया परंतु इसे कठोरता से दबा दिया गया। 1953 में पूर्वी जर्मनी में सोवियत विरोधी दंगे हुए जिसे सोवियत नेताओं ने दबा दिया। हंगरी में 1953 के बाद आमूल चूल आर्थिक और राजनैतिक सुधार किए गए। सबसे पहले 1955 में वहां के प्रधानमंत्री इमरे नेगी को हटाया गया। उसके बाद 1956 में एक सशस्त्र क्रांति द्वारा वह वापस आया और एक नई क्रांतिकारी सरकार की स्थापना हुई और अन्ततः सोवियत नेताओं के हस्तक्षेप से जेनोस कदार को सत्ता सौंप दी गई। चेकोस्लोवाकिया में एलेक्जेंडर ड्यूबेक के अधीन, जिसने एंटोनिन नोवोटनी को हटाया था, इसी प्रकार के सुधार का प्रयत्न किया गया परंतु वहां भी वर्साय संधि सेनाओं के हस्तक्षेप से यह प्रयत्न असफल रहा। निवेश और आधारभूत कच्चे मालों के लिए सोवियत संघ पर बुल्गारिया की निर्भरता के बावजूद रोमानिया और बुल्गारिया अपेक्षाकृत अधिक स्वायत्त थे। 1960 के दशक तक बुल्गारिया में अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में कुछ स्थानीय और निजी पहल की गई। परंतु बुल्गारिया पर चेकेस्लोवाक आक्रमण के बाद इन सुधारों को वापस ले लिया गया। 1970 के दशक तक बुल्गारिया ने पश्चिम के साथ व्यापार संबंध स्थापित कर लिए थे और 1980 में विदेशी निवेश के लिए अपनी अर्थव्यवस्था के द्वार खोल दिए थे। हालांकि रोमानिया आधारभूत सोवियत संरचना का हिस्सा बना रहा। परंतु 1960 के दशक तक आते-आते विदेश नीति के मामले में वह सोवियत संघ से अलग नीति अपनाने लगा। इसने न केवल चेकोस्लोवाकिया द्वारा आक्रमण की भर्त्सना की बल्कि पश्चिमी यूरोपीय देशों से व्यापारिक संबंध स्थापित किए और वहां से पूंजी और तेल प्राप्त किया। 1962-63 में बुल्गारिया और रोमानिया दोनों ने सोवियत संघ के इस प्रस्ताव का विरोध किया कि एक महा-राष्ट्रीय प्राधिकरण संघ कॉमेकॉन की स्थापना की जानी चाहिए जिसके द्वारा सभी सदस्य राज्यों के सामर्थ्य के अनुसार कुछ क्षेत्रों में उनकी विशेषज्ञता को बढ़ावा दिया जाएगा।

अल्बेनिया और युगोस्लाविया दोनों हालांकि यूरोपीय साम्यवादी दुनिया के हिस्से थे परंतु वे साम्यवादी दुनिया से जितने दूर थे उतने ही एक दूसरे से भी दूर थे। अल्बेनिया आरंभ में सोवियत प्रभाव क्षेत्र का एक हिस्सा था परंतु 1958 तक आते-आते इससे अलग होने लगा। 1968 में इसे कॉमेकॉन और वार्सा संधि दोनों से निष्कासित कर दिया गया। इसने अपने आपको बिलकुल अलग कर लिया और यहां आत्मकेंद्रित व्यवस्था स्थापित हो गई। 1990 के दशक तक पूर्व और पश्चिम खेमें के प्रति इसका रवैया विद्वेषपूर्ण रहा। 1948 में युगोस्लाविया ने मास्को की अवहेलना की और स्टालिन ने 'भ्रात्रीय साम्यवादी दलों के परिवार' से इसे निष्कासित कर दिया। हालांकि 1953 के बाद कूटनीतिक और आर्थिक संबंध फिर से स्थापित किए गए। राजनैतिक स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप युगोस्लाविया की राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था पूर्वी खेमे में सबसे ज्यादा विकेंद्रित थी और अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में इसने अपनी विदेश नीति के अंतर्गत गुट निरपेक्षता का समर्थन किया।

1980 के दशक के अन्त में घरेलू संकट इस हद तक बढ़ गया कि दमन के परम्परागत तरीके अप्रभावी सिद्ध होने लगे। सोवियत संघ में कुछ हद तक सुधार लागू किए जाने के कारण शेष साम्यवादी खेमे में जो कि पुनर्सृजित नहीं हुआ था, विरोध और असंतोष का स्वर सुनाई पड़ने लगा तथा। 1990 में रोमानिया से इसकी शुरुआत

हुई। इसके बाद पूर्वी खेमे का मौजूदा राजनैतिक ढांचा ध्वस्त हो गया और बहुदलीय चुनावों के आधारों पर नई व्यवस्था कायम की गई। अलगाववादी दबावों के कारण बहुजातीय देशों का विभाजन हुआ और उनकी राष्ट्रीय सीमाएं दोबारा निर्धारित की गईं। दूसरी ओर जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक को फेडरल रिपब्लिक जर्मन में मिला दिया गया।

बोध प्रश्न 3

1) पश्चिमी यूरोपीय देशों में विकसित राजनीति की प्रकृति पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

2) पश्चिम खेमे और पूर्वी खेमे की राजनीति में क्या अंतर है। पांच पंक्तियों में अपना उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

2.5 सारांश

20वीं शताब्दी में यूरोप तीन प्रमुख विचारधाराओं (उदारवादी जनतंत्र, फासीवाद, समाजवाद) में विभाजित हो गया जो एक दूसरे से भिन्न और अलग थीं। युद्ध के अंतिम चरण में दो विचारधाराओं ने (उदारवादी जनतंत्र और समाजवाद) तीसरी विचारधारा (फासीवाद) के खिलाफ गठजोड़ कर लिया। युद्ध में तीसरी विचारधारा की हार के बाद उदारवादी जनतंत्र और समाजवाद के बीच का गठबंधन टूट गया और नई दुनिया में अधिक हिस्सेदारी प्राप्त करने के लिए उनके बीच कड़ी प्रतिद्वंद्विता को आमतौर पर 'शीत युद्ध ' के नाम से जाना जाता था। 'शीत युद्ध' के समय पूर्वी और पश्चिमी खेमे ने अलग प्रकार के आर्थिक और राजनैतिक स्वरूपों को मजबूती प्रदान की। आर्थिक क्षेत्र में पूर्वी यूरोपीय देशों (समाजवादी खेमा) ने राज्य के नियंत्रण में भारी उद्योगों के निर्माण पर अपना ध्यान केंद्रित किया और सामूहिक खेती की शुरुआत की। विभिन्न देशों में इस व्यवस्था में थोड़ा बहुत अंतर भी था। दूसरी ओर पश्चिमी यूरोपीय देशों (पूंजीवादी खेमे) के आर्थिक विकास को अमेरिका ने वित्त प्रदान किया और उन पर अपना नियंत्रण भी रखा। युद्ध के बाद आर्थिक पुनरूत्थान के पश्चात उन अर्थव्यवस्थाओं में अभूतपूर्व तेजी आई जिसके कारण ये देश समृद्धि की ऊंचाई छूने लगे। राजनैतिक क्षेत्र में पश्चिमी देशों में चुनावी जनतंत्र से लेकर तानाशाही तक कई प्रकार की राजनैतिक व्यवस्थाएं कायम थीं। दूसरी ओर पूर्वी देशों में अधिक एकरूपता थी और सोवियत संघ का उन पर किसी न किसी रूप में नियंत्रण था। इन देशों ने पश्चिमी यूरोप के बहुदलीय शासन से अलग एकदलीय पार्टी व्यवस्था स्थापित की।

इस प्रकार युद्ध-पूर्व काल के दौरान यूरोप का 'त्रि विचारात्मक विभाजन' 'शीत युद्ध' के चरण में तब्दील हो गया जहां बिना कोई वास्तविक युद्ध लड़े दो शक्तियां एक दूसरे के खिलाफ प्रतिस्पर्द्धा करने लगीं। इन दो 'व्यवस्थाओं' ने लगभग 50 वर्षों तक आर्थिक, राजनैतिक और सैनिक सर्वोच्चता के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा

की। 1980 के दशक में समाजवादी खेमे के अकस्मात अंत और पूंजीवादी विश्व से सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्द्धा न कर पाने के कारण शीत युद्ध का दौर समाप्त हो गया।

32.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 32.2.5

2) देखिए उपभाग 32.2.1

बोध प्रश्न 2

1) अपने उत्तर में आप अमेरीका की भूमिका, आरंभ में कीमतों में गिरावट की नीतियां अपनाने से आई आर्थिक तेजी और अन्ततः पूंजीवादी यूरोप में आर्थिक सर्वसम्मति के उद्भव की चर्चा कीजिए। देखिए उपभाग 32.3.1

2) अपने उत्तर में निम्नलिखित बिंदुओं पर प्रकाश डालिए:

   क) अमेरिका और सोवियत संघ की अपने-अपने खेमे में भूमिका;

   ख) समाजवादी खेमे में कृषि के सामूहीकरण का प्रयत्न; और

   ग) भारी उद्योग और सैनिक निवेश में समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं द्वारा की गई प्रगति। देखिए उपभाग 32.3.2

बोध प्रश्न 3

1) देखिए उपभाग 32.4.1

2) देखिए भाग 32.4

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

ए.जे.पी टेलर, *द स्ट्रगल फॉर मास्टरी इन यूरोप*

ए.जे.पी टेलर, *द ऑरिजिन्स ऑफ द सेकेंड वर्ल्ड वार*

डेविड थॉमसॉन, *यूरोप सिन्स नेपोलियन*

ई.जे. हैब्सबॉर्न, *द एज ऑफ एक्सट्रिम्स*

स्टिफेन, जे.ली, *आसपेक्ट्स ऑफ यूरोपीयन हिस्ट्री, 1789-1980*

परिशिष्ट

यूरोपीय इतिहास की प्रमुख घटनाएं

सप्तवर्षीय युद्ध	1756 से 1763
अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम	1776
इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति	1760
फ्रांसीसी क्रांति	1789 से 1815
नेपोलियन बोनापार्ट का शासन	1799 से 1815
वियेना कांग्रेस	1814 से 1815
यूरोप सम्मेलन	1815 से 1825
जुलाई क्रांति	1830
फरवरी क्रांति	1848
मेटरनिख युग	1815 से 1848
क्रीमिया युद्ध	1853 से 1856
नेपोलियन III और दूसरा फ्रांसीसी गणतंत्र	1848 से 1870
पेरिस कम्यून	1871
तीसरा गणतंत्र	1875 से 1914
इटली का एकीकरण	1850 से 1870
जर्मनी का एकीकरण	1850 से 1871
नया जर्मनी	1871 से 1918
बिस्मार्क का शासन	1870 से 1890
कैसर विलियम शासन	1888 से 1918
जर्मन गणतंत्र	1918 से 1932
रूस	1815 से 1917
जार एलेक्जेंडर I	1801 से 1825
निकोलस I	1825 से 1855
जार एलेक्जेंडर II	1855 से 1881
जार एलेक्जेंडर III	1881 से 1898
निकोलस II	1894 से 1917
बालकन युद्ध	1912 से 1913
प्रथम विश्व युद्ध	1914 से 1918
पेरिस शांति	1919
वर्साय संधि	1919

विश्व युद्ध

रूस में बॉलशेविक क्रांति	1917
लीग ऑफ नेशन्स: लोकार्नो संधि: जेनेवा प्रोटोकॉल-1924, केलॉन्ग-ब्रैन्ड संधि 1928, निरस्त्रीकरण, 1932।	1922
मुसोलिनी का शासन	1922 से 1943
लेनिन का शासन	1917 से 1924
यूरोप में आर्थिक मंदी	1929 से 1933
हिटलर और नाजी जर्मनी	1919 से 1939
स्टालिन और रूस	1928 से 1953
रोम-बर्लिन-टोकियो-धुरी	1937
म्यूनिख संधि	1938
तीसरा राइख	1933 से 1939
कमाल पाशा (तुर्की)	1919 से 1939
दूसरा विश्व युद्ध	1939 से 1945
शीत युद्ध की शुरुआत	1947
ट्रूमैन सिद्धांत	1947